इकाई 1 कृषि और आर्थिक वृद्धि

संरचना

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 कृषि विकास के लिए शर्तें : सैद्धांतिक पृष्ठभूमि

1.2.1 द्वि-क्षेत्रक अर्थव्यवस्था प्रतिमान : लुईस का तर्क

1.2.2 औद्योगिकीकरण से त्रि-प्रावस्था संबंधन : फाई और रेनिस

1.2.3 सेक्टर संबंधी अंतरण के लिए आवश्यक शर्तें : शूल्त्ज–जॉर्गेनसन

1.2.4 पहले कृषि बनाम संतुलित वृद्धि दृष्टिकोण

1.3 कृषि विकास के निर्धारक तत्त्व

1.4 कृषि विकास नीतियाँ

1.4.1 कृषि विकास नीति के लक्ष्य

1.4.2 कृषि विकास नीतियों का वर्गीकरण

1.5 कृषि विकास : औद्योगिकीकरण की प्रस्तावना

1.5.1 आर्थिक वृद्धि के लिए कृषि का योगदान

1.5.2 उद्योग पर कृषि की निर्भरता

1.6 सारांश

1.7 शब्दावली

1.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1.9 बोध प्रश्नों के उत्तर/संकेत

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

1.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप :

- कृषि प्रगति और आर्थिक विकास के बीच संबंध स्पष्ट कर सकेंगे;
- समग्र आर्थिक वृद्धि से कृषि प्रगति को जोड़ने वाली कुछ सैद्धांतिक पूर्वधारणाओं का वर्णन कर सकेंगे;
- कृषि विकास के निर्धारण तत्त्वों की पहचान कर सकेंगे;
- कृषि विकास के लिए आर्थिक नीतियों का महत्त्व समझ सकेंगे; और
- खासतौर पर कृषि विकास और सामान्य रूप में समग्र आर्थिक विकास के लिए कृषि विकास के महत्त्व का वर्णन कर सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था में आजीविका का मुख्य स्रोत रहा है। पिछले छह दशकों के दौरान

अर्थव्यवस्था के क्षेत्रीय विवरण में बड़े संरचनात्मक परिवर्तनों के बावजूद भारत में श्रमिक बल के बहुत बड़े भाग की आजीविका का मुख्य स्रोत कृषि रहा है। इसलिए कृषि को देश की समग्र नीति में महत्त्वपूर्ण सेक्टर माना जाता रहा है। यह अनुमान लगाया गया है कि कृषि द्वारा उत्पन्न किए गए प्रत्येक अतिरिक्त रुपए में ग्रामीण क्षेत्रों में विभिन्न आर्थिक कार्यों से आय में तीन अन्य अतिरिक्त रुपए जुड़ते हैं। इसके अलावा, शहरी अर्थव्यवस्था (जैसे उद्योग, परिवर्तन, बैंकिंग आदि) के बहुत से द्वितीयक और तृतीयक सेक्टरों को इसके गुणक प्रभावित करते हैं। भारतीय अर्थव्यवस्था के कुल GDP में कृषि सेक्टर के सापेक्ष महत्त्व में पिछले छह दशकों में स्पष्ट गिरावट दिखाई है। अर्थव्यवस्था दोहरे अंकों में संवृद्धि के लिए कृषि में न्यूनतम की संवृद्धि अत्यावश्यक मानी जा रही है। यदि ऐसा है तो हमें कृषि विकास के लिए आवश्यक शर्तें जानना उचित होना। इसके उत्तर के लिए हम कुछ महत्त्वपूर्ण सैद्धांतिक पूर्वधारणाओं पर चर्चा करेंगे।

1.2 कृषि विकास के लिए शर्तें : सैद्धांतिक पृष्ठभूमि

आर्थिक विकास में कृषि की भूमिका फिजियोक्रेट्स या प्रकृतितंत्रवादी (अर्थात् अंग्रेज क्लासिकी आर्थिक सिद्धांतवादियों से पहले फ्रांसीसी अर्थशास्त्रियों के वर्ग) के समय से ही स्वीकार की गई है। फिजियोक्रेट्स के अनुसार यह केवल कृषि सेक्टर था जिसने उत्पादन लागत से अधिक आर्थिक अधिशेष उत्पादित किया। वे इस दृष्टि से विनिर्माण और वाणिज्य को अनुत्पादनकारी समझते थे कि इन सेक्टरों द्वारा प्रयुक्त कच्चे माल के मूल्य में वृद्धि उत्पादन की प्रक्रिया में प्रयुक्त श्रम और पूँजी का भुगतान करने के लिए ही पर्याप्त है। इस दृष्टि से फिजियोक्रेट्स ने कृषि को आर्थिक विकास में सबसे अधिक महत्त्वशाली समझा।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वाद्ध के दौरान प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने भी आर्थिक विकास में कृषि का महत्त्व स्वीकार किया किंतु उसकी वृद्धि को उन्होंने उद्योग की वृद्धि से यथाविधि जोड़कर ही देखा। उदाहरण के लिए, एडम स्मिथ के बुनियादी संवृद्धि प्रतिमान ने समग्र आर्थिक विकास के लिए आवश्यक गैर-कृषि उत्पादन की सहायता करने के लिए कृषि अधिशेष के उत्पादन पर विचार किया। सामान्यतः इन अर्थशात्रियों का रोचक तर्क परिसंचरण (circularity) की अवधारणा थी जिसमें ''प्रौद्योगिकी, निवेश और लाभ'' के बीच अंतःसंबंध की विशेषता बताई गई थी। इसका अभिप्राय है कि प्रौद्योगिकी का स्तर निवेश के स्तर पर निर्भर करता है, निवेश लाभ पर निर्भर करता है और लाभ आंशिक रूप से प्रौद्योगिकी के स्तर पर निर्भर करता है। इसलिए चिर प्रतिष्ठित अर्थशात्रियों ने स्वतः कृषि विकास पर ध्यान केंद्रित नहीं किया। परन्तु उन्होंने आर्थिक वृद्धि को कृषि के विकास पर अप्रत्यक्ष रूप से आश्रित माना, क्योंकि, आर्थिक संक्रमण काल की प्रारंभिक अवस्था में अधिकांश अर्थव्यवस्थाएँ (विशेष कर कृषि से विकसित हो रही अर्थव्यवस्थाएँ) अपने अधिकांश श्रमिक बल के भरण पोषण के लिए कृषि पर निर्भर होंगी। कोई भी कल्पना कर सकता है कि आधुनिक समय में भी जब बहुत से देशों में खाद्य सामग्री के लिए दंगे देखे गए हैं, विश्वव्यापी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए वहां पर्याप्त उत्पादन करने के संबंध में कृषि का महत्त्व सुनिश्चित किया जाना चाहिए, [वास्तव में उत्पादन कहीं भी हो]। विकास के क्लासिकी सिद्धांतों ने वृद्धि और विकास के बीच स्पष्ट अंतर नहीं किया परन्तु माना है कि विकास अपनी स्वाभाविक वृद्धि का अनुसरण करेगा। द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति समय, अर्थात् 1945 के आस-पास विकास अपने आप में अध्ययन का एक महत्त्वपूर्ण क्षेत्र बन गया। इस भाग में हम ऐसे चार सिद्धांतों का अध्ययन करेंगे : (i) लुईस का द्वि-क्षेत्रक (दो सेक्टर) आर्थिक प्रतिमान (1954); (ii) फाई और रेनिस द्वारा प्रतिपादित ''औद्योगिकीकरण के लिए तीन प्रावस्था संबंधन'' (1961), (iii) शूल्त्ज—जॉर्गेनसन द्वारा रचित ''सेक्टर संबंधी अंतरण के लिए आवश्यक शर्तें'' प्रतिमान (1964), और (iv) अनेक

योगदान कर्ताओं द्वारा प्रस्तुत ''विकास युक्ति के रूप में कृषि पहलें'' या ''संतुलित वृद्धि दृष्टिकोण'' जिन्होंने विकास योजना के प्रमुख भाग के रूप में सेक्टर संबंधन के पारस्परिक सहयोगशील संबंध को देखा।

1.2.1 द्वि-क्षेत्रक अर्थव्यवस्था प्रतिमान : लुईस का तर्क

डब्ल्यू आर्थर लुईस (1954) ने अपना प्रतिमान इस तर्क पर स्थापित किया कि बहुत से विकासशील देशों में कृषि सेक्टर जीवन निर्वाह करने वाला विशाल श्रम बल विद्यमान था जिसकी सीमांत उत्पादिता बहुत कम (शून्य के समीप) थी और इसलिए निर्वाह मजदूरी स्तर पर उपलब्ध अधिवेशन श्रम बल को अधिक उत्पादनकारी आधुनिक (औद्योगिक) सेक्टर में स्थानांतरित किया जा सकता था। ये स्थानांतरण कृषि सेक्टर के निर्वाह मजदूरी से किंचित अधिक मजदूरी दर पर किया जा सकता है (ताकि कृषि सेक्टर से ''पूँजीवादी सेक्टर'' में जाने का अवरोध समाप्त हो सके)। परन्तु पूँजीवादी सेक्टर को तो ''कुशल कामगारों'' की आवश्यकता होती है। किंतु इस बात को लुईस ने अस्थायी अवरोध ही माना था, क्योंकि ''अकुशल कामगारों'' को उनकी कुशलता का स्तर बढ़ाने के लिए प्रशिक्षण दिया जा सकता है।

अधिक निवेश और प्रौद्योगिकी के कारण ''पूँजीवादी सेक्टर (अर्थात् औद्योगिक सेक्टर या गैर-कृषि सेक्टर) में श्रम की सीमांत उत्पादकता कृषि सेक्टर में प्रभावी मजदूरी दर की अपेक्षा उच्चतर होगी। इसलिए यह पूँजी अधिशेष का सृजन करता है जिसे आगे पूँजी निर्माण के उच्चतर स्तरों में निवेश किया जा सकता है। बढ़ा हुआ निवेश पूँजीवादी सेक्टर में श्रम की सीमांत उत्पादकता आगे बढ़ा सकता है। आगे चलकर यह निर्वाह क्षेत्र के अधिक लोगों के लिए रोजगार के अवसर संभव बना सकता है। पूँजीवादी नियोक्ता तब तक कृषि से अतिरिक्त श्रमिकों की भर्ती करेंगे जब तक श्रम की आपूर्ति मजदूरी प्रति लोचशील हो। कुछ आलोचकों ने उल्लेख किया है कि कृषि से प्रछन्न बेरोजगारों के विलयन द्वारा विकास संबंधी लुईस का आशावाद अवास्तविक है क्योंकि कृषि उत्पाद में गिरावट के बिना बड़ी संख्या में श्रमिकों का स्थानांतरण संभव नहीं है। फिर भी, लुईस का प्रतिमान विवेकशीलता और पूर्ण प्रतिस्पर्धा की मान्यताओं पर आधारित है। इन मान्यताओं को ध्यान में रखते हुए (जो विरले ही वास्तविकता में पूर्ण होती हैं, क्योंकि शासन/संस्थागत चुनौतियां उनके उल्लंघन के परिणामों को न्यूनतम करने के इर्दगिर्द केंद्रित होती हैं)। लुईस का तर्क विशाल कृषि अर्थव्यवस्थाओं के लिए लागू होता है। अन्यों द्वारा की गई क्रमिक प्राप्ति लुईस के द्वि-क्षेत्रक सिद्धांत को परिष्कृत करती है और इसे पूँजीवादी बाजार आधारित अर्थव्यवस्थाओं की व्यावहारिताओं के अधिक अनुरूप बनाता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

''वास्तव में, लुईस ने कल्पना की थी कि श्रम स्थानांतरण की प्रक्रिया अनिश्चित काल तक जारी नहीं रखी जा सकती और किसी न किसी समय पर समाप्त होनी चाहिए। इसलिए उसने तर्क दिया कि जब वह हो जाता है तो, अन्य श्रम अधिशेष देशों से आप्रवासन प्रोत्साहित कर, या निर्वाह मजदूरी दर पर श्रमिकों की प्रचुर आपूर्ति वाले देशों को पूँजी का निर्यात कर पूँजी निर्माण की प्रक्रिया जारी रखी जा सकती है। इस प्रकार लुईस का मॉडल सामान्यतः आर्थिक विकास की प्रक्रिया समझने के लिए अपने आप में पूरी रूपरेखा प्रदान करता है। फिर भी उसके सिद्धांत के विरुद्ध की गई तर्कसंगत आलोचनाओं में निम्नलिखित शामिल हैं : (i) श्रम स्थानांतरण की प्रक्रिया लाभ की दर और पूँजी निर्माण की दर बनाए रखने के लिए योगदानकारी कृषि मजदूरी को भी आशा से अधिक नीचे ले जाएगी; (ii) पूँजीवादी नियोक्ता अधिशेष शेष का प्रयोग विकास प्रयोजनों में उसे वापस लगाने के बदले गैर-उत्पादनकारी

कार्य में लगा सकता है, (iii) अपनी बढ़ती हुई प्रत्याशाओं को पूरा करने के लिए ग्रामीण गरीब भी अधिक खपत और कम बचत कर सकते हैं, इससे विकास की गति मंद पड़ सकती है, इत्यादि। रेनिस और फाई ने इस मॉडल में एक सुधार सुझाया था। उन्होंने ''उपेक्षित'' कृषि सेक्टर की भूमिका का पहले विश्लेषण कर अपने सिद्धांत पर गहनता से विचार किया और तब कृषि उत्पादकता में वृद्धि की संभावना प्रयोग कर स्थैतिक (States) विश्लेषण को सामान्य नियम का रूप दिया।

1.2.2 औद्योगिकीकरण से त्रि-प्रावस्था संबंधन : फाई और रेनिस

फाई और रेनिस ने कृषि से उद्योग में अधिशेष श्रमिक स्थानांतरण की तीन पृथक प्रावस्थाएं बताई हैं। पहली ''अधिशेष श्रमिकों'' के संग्रह की विद्यमानता तक रहेगी। इस प्रावस्था के दौरान कृषि से उद्योग में श्रमिकों के स्थानांतरण से कृषि उत्पादन पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं होगा। दूसरी प्रावस्था में, उस अधिशेष श्रमिक संग्रह होने वाला है, लुईस का वर्तन बिंदु (संधिकाय) कहलाता है। यहां कृषि में श्रम की सीमांत उत्पादकता बढ़नी शुरू होगी। यहां कृषि से उद्योग में श्रम के स्थानांतरण के लिए सकारात्मक अवसर लागत होती है, अर्थात्, कृषि में उत्पादन में गिरावट के बिना श्रम स्थानांतरित नहीं हो सकता। परन्तु इस अवस्था में भी जब तक कृषि मजदूरी दर की अपेक्षा औद्योगिक मजदूर दर अधिक रहेगी, अर्थात् द्वि-क्षेत्रक मजदूरी दर कृषि से उद्योग में श्रमिकों का स्थानांतरण जारी रहेगा। इसका परिणाम होगा कि कृषि उत्पाद में सीमांत गिरावट के साथ अर्थव्यवस्था के उत्पाद में वृद्धि होगी। परन्तु एक स्थिति में जब कृषि श्रम का सीमांत उत्पाद औद्योगिक मजदूरी के बराबर हो जाता है (जैसे तीसरी प्रवस्था में) तो आर्थिक संवृद्धि में आगे प्रगति निम्नलिखित से संरोधित हो जाती है : (i) प्रौद्योगिकी प्रगति और (ii) उन्नत आधारभूत संरचना द्वारा अर्थव्यवस्था की समावेश क्षमता। फाई और रेनिस के विश्लेषण से मुख्य संदेश यह निकलता है कि आर्थिक रूपांतरण की प्रारंभिक अवस्थाओं में कृषि समग्र आर्थिक वृद्धि को कोई क्षति पहुंचाए बिना अधिशेष श्रम मुहैया कराती है। परन्तु बाद की अवस्थाओं में ऐसा आवश्यक नहीं रहता है। यद्यपि इस स्थिति का सामना करते समय संतुलित संवृद्धि कार्यनीति (अर्थात् कृषि और उद्योग दोनों की समन्वित वृद्धि) बहुत से सिद्धांतवादियों द्वारा प्रस्तुत की गई थी परन्तु शूल्त्ज–जॉर्गेनसन ने सेक्टर संबंधी अंतरण के लिए आवश्यक शर्तों का निरूपण किया है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

1.2.3 सेक्टर संबंधी अंतरण के लिए आवश्यक शर्तें : शूल्त्ज – जॉर्गेनसन

शूल्त्ज (1964) ने तर्क दिया था कि कृषि से कामगारों की किसी भी परिवार की निकासी का परिणाम कृषि उत्पादकता का ह्रास होकर, अर्थात् वह इस बात पर दृढ़ रहा कि कृषि में श्रम की सीमांत उत्पादकता कभी भी शून्य या ऋणात्मक नहीं होती है। परन्तु उसका दृढ़ विश्वास था यदि दो अंतर्निहित महत्त्वपूर्ण मुद्दों का उत्तर दिया जा सके तो अर्थव्यवस्था में उत्पाद का समग्र मूल्य कृषि सेक्टर में अधिशेष श्रम का उपयोग करके बढ़ाया जा सकता है : (i) वे कौन सी दशाएं हैं जिनमें कृषि से अतिरिक्त श्रम को कृषि में उत्पादन घटाए बिना स्थानांतरित किया जा सकता है ? और (ii) संभाव्य श्रम बल की क्या अपेक्षिताएं हैं ताकि यह पारस्परिक रूप से संपूरक तरीके में दोनों क्षेत्रों को लाभान्वित कर सके ? जन प्रवाह की उपार्जनकारी आयु की रूपरेखा का अध्ययन करने के लिए ''मानवपूँजी'' के विचार का प्रयोग करते हुए शूल्तज ने सिद्धांत प्रस्तुत किया है कि शिक्षा अनुभवहीन या अकुशल श्रमिक की प्रस्थिति को कुशल श्रमिक में रूपांतरित करेगी ये उन्हें बाहरी प्रतिघातों का सामना करने योग्य बनाएगी। इस बिंदु को उदाहरण सहित स्पष्ट करते हुए उसने विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में उन किसानों

का उदाहरण दिया जिन्हें उन अनिश्चित आर्थिक दशाओं से निपटना पड़ता है जो उनकी स्वयं की बनाई हुई नहीं हैं। उसने तर्क दिया कि शिक्षा लोगों को ऐसे शोषण के न्यूनतमीकरण के आर्थिक वातावरण के संबंध में सूचना संसाधित करने के लिए अधिक सक्षम बनाती है जिसका वे शिकार हो सकते हैं। शूल्त्ज के समकालीन जार्गेनसन ने इस मुद्दे को संसाधनों के अंतः सेक्टर प्रवाह के दृष्टिकोण से देखा और उल्लेख किया कि गैर-कृषि से सेक्टर की वृद्धि धनात्मक और बढ़ते हुए ''कृषि अधिशेष'' पर निर्भर होती है। जार्गेनसन का मुख्य दावा था कि कृषि में प्रौद्योगिकीय परिवर्तन काफी तेज नहीं होते हैं, तो कृषि कभी भी न तो खाद्य अधिशेष उत्पादन कर सकती है, और न ही उद्योग के लिए अपने ''अधिशेष श्रमिक'' छोड़ सकती है। इसलिए शूल्त्ज–जार्गेनसन द्वारा प्रस्तुत सिद्धांत में यह संदेश निहित है कि कृषि और उद्योग की साथ-साथ वृद्धि आपस में संपूरक तरीके में दोनों सेक्टरों की ''टिकाऊ वृद्धि'' के लिए और ''अधिशेष श्रम'' का सफल हस्तांतरण के लिए भी आवश्यक है। इस प्रकार शूल्त्ज–जार्गेनसन का तर्क लुईस द्वारा इंगित और फाई और रेनिस द्वारा प्रस्तुत श्रम स्थानांतरण की संभावना फलीभूत करने में महत्त्वपूर्ण कड़ी है। अब हम ''संतुलित संवृद्धि दृष्टिकोण'' पर विचार करेंगे जिसमें कृषि और उद्योग दोनों के विकास रणनीति को ध्यान में रखा गया है।

1.2.4 पहले कृषि बनाम संतुलित वृद्धि दृष्टिकोण

बहुत से सिद्धांतकार के अनुसार एक महत्त्वपूर्ण समस्या अर्थव्यवस्था में मांग को उत्प्रेरित करने से संबंधित है। यह सत्य है कि आर्थिक रूपांतरण की प्रारंभिक अवस्थाओं में जनसंख्या का बहुत बड़ा भाग ग्रामीण क्षेत्रों में रहता है जो अपनी आजीविका के लिए मुख्यतया कृषि पर निर्भर होता है। वे गरीब और कम लिखे पढ़े हैं और उनके लिए कृषि केंद्रित व्यवसायी के कार्यों से ही अपनी आय बढ़ाना महत्त्वपूर्ण है। यह नहीं होने पर औद्योगिक सेक्टर के उत्पादों के लिए मांग भी कम रहेगी। इस परिस्थिति से निपटने के लिए रोजेनस्टीन रोड (1943) ने ''बिग पुश'' या प्रबल चेष्टा नाम का सिद्धांत प्रस्तुत किया, जिसका उद्देश्य अर्थव्यवस्था के भिन्न-भिन्न सेक्टरों में 'उत्पादन' रोजगार और उपभोग का समन्वित विस्तार है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

'बिग पुश' ने विकास के लिए आर्थिक बाधाओं से निपटने के लिए अपेक्षित निवेश की कुछ न्यूनतम उच्च मात्रा को महत्त्व दिया। ऐसी स्थिति का अभिप्राय आपस में संपूरक तरीके में कृषि और गैर-कृषि दोनों सेक्टरों में अंतःसंबद्ध आर्थिक गतिविधियों की विशाल पटल पर ''संतुलित संवृद्धि'' आसान बनाना है। यह दृष्टिकोण एक ओर गरीबी (जो मुख्यतया ग्रामीण गरीबों में प्रभावशाली मांग के अभाव के कारण है) के दुश्चक्र की गंभीर समस्या के समाधान में सहायक होगा, तथा दूसरी ओर ''अर्थव्यवस्था के सामाजिक-आर्थिक आधार'' को विस्तृत बनाने में भी सहायक होगा। कृषि और गैर-कृषि दोनों सेक्टरों में ऐसा निवेश बहुमुखी लाभ सुनिश्चित करेगाः i) ग्रामीण आय बढ़ाना, इससे औद्योगिक और गैर-कृषि माल की मांग में वृद्धि होगी; ii) विशाल ग्रामीण जनसंख्या की रुचियों और आय के स्तरों के अनुकूल माल की आपूर्ति बढ़ाना; और iii) विदेशी व्यापार आदि द्वारा औद्योगिक पूँजी का प्रवेश करने के लिए कृषि की क्षमता सुधारना। इसलिए अधिशेष के वास्तविक प्रदाता के रूप में कृषि की भूमिका और वास्तविक मांग प्रदान करने में भी उसकी भूमिका के बीच संघर्ष का समाधान करना ही नीतिगत चुनौती है। वस्तुतः ये सारे तर्क कृषि विकास को प्राथमिकता देने उसके शेष अर्थव्यवस्था से अंतर्संबंधों को बल प्रदान करने का आग्रह करते हैं।

बोध प्रश्न 1

लगभग 50 शब्दों में उत्तर दीजिए

1) परिसंचरण की अवधारणा क्या है।

....

....

....

....

2) फिजियोक्रेट्स के (प्रकृतितंत्रवादी) कौन थे ? आर्थिक संवृद्धि पर उनके विचार संक्षेप में बताइए।

....

....

....

....

3) लुईस, फेई रेनिस तथा शूल्त्ज—जार्गेनसन द्वारा प्रस्तुत सिद्धांतों में आप को क्या तत्त्व सांझे लगते हैं। लुईस द्वारा निर्दिष्ट'' अधिशेष श्रम'' का लाभ प्राप्त करने के लिए शूल्त्ज – जार्गेनसन के अनुसार महत्त्वपूर्ण क्या है ?

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

....

....

1.3 कृषि विकास के निर्धारक तत्त्व

कृषि विकास को प्रभावित करने वाले कारक अनेक हैं। उनमें भौतिक, प्रौद्योकीय, आर्थिक, सामाजिक सांस्कृतिक, संस्थागत, संगठनात्मक, राजनीतिक कारक शामिल हैं। ये सभी कारक भिन्न-भिन्न स्तरों पर कार्य करते हैं, जैसे : परिवार, गांव, जिला, राज्य, राष्ट्र और समग्र रूप में विश्व। इनकी नियंत्रण विधि के आधार पर विकास पर इन कारकों का अनुकूल और प्रतिकूल प्रभाव हो सकता है। उदाहरण के लिए, यदि देश के मानव संसाधन उचित पोषण, स्वास्थ्य देख-भाल, शिक्षा और प्रशिक्षण द्वारा समुचित ढंग से विकसित नहीं किए जाते हैं, तो उन्हें उत्पादकता की दृष्टि से प्रयुक्त नहीं किया जा सकता है। ऐसे संसाधन विकास के लिए बोझ और बाधा बन जाते हैं। परन्तु, यदि उन्हें समुचित ढंग से विकसित किया जाता है और उपयोग में लाया जाता है, तो, वे विकास के लिए बड़ी परिसंपत्तियां और प्रमुख सहयोगी कारक होते हैं। कृषि विकास पर विभिन्न निर्धारक तत्त्वों के प्रभाव के स्वरूप और परिणाम के बारे में ज्ञान, दक्षता और प्रभाविकता से आगे बढ़ना आवश्यक है।

विशेष रूप से अच्छी ''ग्रामीण आधारभूत संरचना'' को कृषि उत्पादन और उत्पादकता बढ़ाने में महत्त्वपूर्ण माना गया है। इसमें विभिन्न कारक, जैसे सड़कें, सिचाई, बिजली आपूर्ति, बैंकिंग, संचार आदि शामिल हैं। कृषि आधारभूत संरचना का अधिक विशिष्ट स्वरूप ''सामाजिक आध

ाारभूत, संरचना'' है, जिसमें, शिक्षा और स्वास्थ्य सुविधाएं, विस्तार सेवाएं और सूचना प्रसारण प्रणालियाँ सहयोगशील क्रियाविधियाँ, कृषि अनुसंधान और प्रौद्योगिकी (RRT) आदि जैसे कारक आते हैं। कृषि विकास की प्रगति को प्रभावित करने वाली ग्रामीण आधारभूत संरचना की मुख्य कमियों में बचत जुटाने और ऋण देने के लिए वित्तीय संस्थाओं की अपर्याप्तता है। सार्वजनिक निवेश की भूमिका एवं अन्य मान्य कारक है जो कृषि विकास को काफी अधिक प्रभावित करता है।

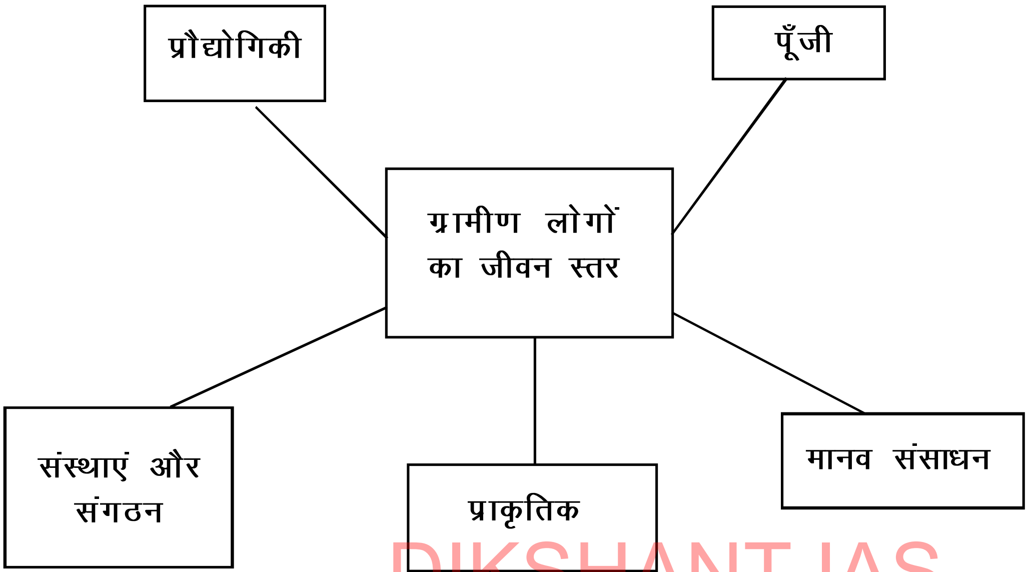

DIKSHANT IAS

चित्र 1.1 : कृषि विकास के निर्धारण तत्व

Call us @7428092240

शीत भंडारण, विपणन, बिक्री केंद्र आदि सुविधाएँ सुलभ कराने के लिए कृषि में सार्वजनिक निवेश विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है, (जहाँ कृषक समुदाय का बहुत बड़ा भाग ''छोटे और सीमांत श्रेणी'' के विकास होते हैं, जिनकी आय और जीवन निर्वाह स्तर गरीबी स्तर की सीमा पर होती है।) यह भारत के संपर्क में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद की अवधि में मान्य सत्य है कि सकल पूँजी निर्माण के अनुपात के रूप में सार्वजनिक निवेश के अनुपात में अत्यधिक गिरावट आई है। पूँजीनिरुद्ध देशों में निवेश आकर्षित करने के लिए (सार्वजनिक निजी भागीदारी (PPP) को ऐसी आधारभूत संरचना सुविधाएं सुधारने के लिए विकल्प समझा गया है जो कृषि विकास के लिए अत्यधिक आवश्यक है।

1.4 कृषि विकास नीतियाँ

मोटेतौर पर ''नीति'' को विकल्पों के समूह में से चुनी हुई निश्चित कार्रवाई के रूप में परिभाषित किया गया है। अधिक सामान्य दृष्टि में ''नीति प्रक्रिया'' का संबंध विशिष्ट रूप से परिभाषित कार्य योजना का निरूपण, प्रख्यापन और अनुप्रयोग से है। यहां हम सार्वजनिक कृषि विकास नीतियों से संबद्ध रहेंगे, जिसका अभिप्राय कृषि संवर्धन के निश्चित उद्देश्यों के अनुसरण में सरकार द्वारा की गई कार्रवाई है।

इस संदर्भ में (क) नीति; (ख) कार्यक्रम; और (ग) परियोजना के बीच अंतर करना महत्त्वपूर्ण है। नीति एक व्यापक शब्द है जिसमें बहुत से कार्यक्रम सम्मिलित होते हैं। इसी प्रकार कार्यक्रम में बहुत परियोजनाए होती हैं। नीति कार्यान्वयन से पहले कई कार्यक्रमों को

निर्धारित किया जाता है। कार्यक्रम ही निर्दिष्ट करते हैं कि क्या, कैसे, जिसके द्वारा और कहां किया जाना है। परियोजना भी उद्देश्यों, अवस्थिति, अवधि, फंड, निष्पादनकारी एजेंसी आदि के अनुसार अधिक सुस्पष्ट और ब्योरेवार होती है। इस प्रकार परियोजना नीति कार्रवाई की अंतिम ''इकाई'' के रूप में आती है। कार्यक्रम में कई परियोजनाएं हो सकती हैं। इसलिए कृषि विकास परियोजना को ऐसे निवेश कार्य के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जहां संसाधनों को कतिपय पूर्व निर्धारित लक्ष्य प्राप्त करने के लिए निश्चित समयावधि में लगाया जाता है।

1.4.1 कृषि विकास नीति के लक्ष्य

कृषि विकास नीतियाँ उन दशाओं को सुधारने के लिए तैयार की जाती हैं जिनमें ग्रामीण लोग कार्य करते हैं और रहते हैं। नीतियों के लक्ष्य लोगों की इच्छा द्वारा नियंत्रित होते हैं। ''नीति उपाय'' इस बात को महत्त्व देता है कि लोग क्या सोचते हैं, सरकार क्या कर सकती है और वांछित परिवर्तन लाने के लिए क्या करना चाहिए, यह सार्वजनिक नीति का सिद्धांत है। परिवर्तन केवल तभी वांछित होते हैं, जब लोग जिस तरीके में काम हो रहा है, उसे पसंद नहीं करते सार्वजनिक कार्रवाई के लिए दबाव तब उत्पन्न होते हैं जब लोग अनुभव करते हैं कि वे व्यक्तिशः रूप से वांछित परिवर्तन नहीं ला सकते। उनके मन में आदर्श स्थिति के कुछ मानदंड या कुछ छवि होती है, जिसकी वे आकांक्षा करते हैं। ये मानदंड नीति के लक्ष्य हो जाते हैं जिनकी ओर सुस्पष्ट कार्यक्रमों के उद्देश्यों को दिग्वर्तित किया जाता है।

भारत के संविधान में प्रतिष्ठापित ''राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांतों में आर्थिक नीति के दो प्रबल लक्ष्यों को देखना संभव है : i) राष्ट्रीय आय बढ़ाना और ii) समाज के सदस्यों में राष्ट्रीय आय के वितरण में सुधार करना। इसलिए ये लक्ष्य उन सभी आर्थिक नीतियों में परिलक्षित किए जाते हैं जो पंचवर्षीय योजनाओं में निर्दिष्ट होते हैं। जो लक्ष्य ''समावेशी वृद्धि'' प्राप्त करने का प्रयास करता है उसे राजनीति के चार महत्त्वपूर्ण आयामों के संदर्भ में देखा जाना आवश्यक है : i) नागरिकों के ''जीवन स्तर'' का सुधार, ii) ''उत्पादनकारी रोजगार'' अवसर पैदा करना; iii) संतुलित क्षेत्रीय विकास की स्थापना; और iv) आत्मनिर्भरता प्राप्त करना।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

अधिकांश कृषि विकास नीतियां भिन्न-भिन्न लक्ष्यों के मिश्रण हैं जिनके क्रियान्वयन में भिन्न-भिन्न उपायों की आवश्यकता होती है। कई कार्यक्रमों या परियोजनाओं में विभाजित सरकारी एजेंसी विशेष को उसके क्रियान्वयन के लिए पदनामित किया जाता है। ये एजेंसियां अपनी निगरानी और नियंत्रण के अधीन स्वयंसेवी और निजी एजेंसियों को क्रियान्वित करने के लिए विशिष्ट परियोजनाएं सौंप सकती हैं। संसाधनों की छीजन और अदक्ष प्रयोग रोकने के लिए उनहें विभिन्न शर्तों द्वारा सीमित किया जाता है। इस प्रकार ये शर्तें निर्णायक कारक होती हैं जो मिलकर परियोजनाओं/कार्यक्रमों का दक्ष क्रियान्वयन निश्चित करते हैं।

1.4.2 कृषि विकास नीतियों का वर्गीकरण

टिनबेर्जेन गुणात्मक नीति और परिमाणात्मक नीति के बीच अंतर करता है। गुणात्मक नीति नए संस्थानों के निर्माण, विद्यमान संस्थाओं का संशोधन और प्राइवेट फर्मों के संवर्धन द्वारा आर्थिक संरचना को परिवर्तन करने का प्रयास करती है। परिमाणात्मक नीति कुछ प्राचलों के आकार (जैसे कर-दर में परिवर्तन) बदलने का प्रयास करती हैं। एक उदाहरण, जो गुणात्मक और परिमाणात्मक दोनों का निरूपण करता है, निःशुल्क शिक्षा प्रणाली प्रारंभ करने की नीति है, यह गुणात्मक भी है, क्योंकि, यह आर्थिक संरचना में परिवर्तन लाने का प्रयास करता है; और परिमाणात्मक है, क्योंकि, यह सेवा के लिए ली गई फीस से परिवर्तन दर्शाता है।

हेडी कृषि नीतियों को (i) विकास नीतियों और (ii) प्रतिपूर्ति नीतियों में वर्गीकृत करता है। विकास नीति (i) पण्य वस्तुओं और संसाधनों की आपूर्ति बढ़ाने और (ii) उत्पादों और निवेश में सुधार करने का प्रयास करती है। प्रतिपूर्ति नीति का उद्देश्य उपने लक्ष्य समूहों को विभिन्न तरीकों से प्रतिपूर्ति करना है।

बोध प्रश्न 2

लगभग 50 शब्दों में उत्तर दीजिए।

1) कृषि विकास के मुख्य निर्धारक तत्त्वों का उल्लेख करें।

....

....

....

....

2) नीति में परियोजनाएं सम्मिलित होती हैं। क्या आप इस कथन से सहमत हैं ?

....

....

....

....

DIKSHANT IAS

3) प्रत्येक का उदाहरण देते हुए विकास नीति और प्रतिपूर्ति नीति में अंतर बताइए।

Call us @7428092240

....

....

....

....

1.5 कृषि विकास : औद्योगिकीकरण का प्रस्तावना

साधारणतया लुईस द्वारा प्रस्तुत सिद्धांत आर्थिक रूपांतरण की प्रक्रिया सभी अर्थव्यवस्थाओं, अर्थात् विकसित और विकासशील दोनों के लिए लागू होती है। परन्तु किसी देश के रूपांतरण की गति प्रत्यक्ष रूप से उस गति से भिन्न है जिस पर देश द्वारा आवश्यक संस्थागत क्रिया-विधियाँ संस्थापित की गई हैं। ऐसे रूपांतरण से कृषि पर आश्रित श्रमिक बल के अनुपात में गिरावट आएगी और गैर-कृषि सेक्टर (अर्थात् उद्योग और सेवाओं) उसमें बढ़ोतरी होगी। तालिका 1.1 भारत और विकसित अर्थव्यवस्थाओं का रोजगार और आय (अर्थात् राष्ट्रीय आय) में अर्थव्यवस्था के तीन मुख्य सेक्टरों के सापेक्ष अंश की तुलनात्मक जानकारी दी गई है। यद्यपि भारत में कृषि सेक्टर में कामगारों का अनुपात अब लगभग 52 प्रतिशत है, विकसित देशों में यह केवल 1 से 5 प्रतिशत की सीमा में है। भारत का औद्योगिक रोजगार का अंश, (कुल रोजगार में) अब लगभग 14 प्रतिशत है, किंतु ये विकसित अर्थव्यवस्थाओं के अंश का लगभग आधा है। इसके अलावा भारत में 1950–2010 की छह दशाब्दियों की अवधि में औद्योगिक रोजगार का स्तर केवल लगभग 4 से 5 प्रतिशत बिंदु तक बढ़ा है (यह 1950 के दशक के दौरान लगभग 9–10 प्रतिशत था। जो छह दशकों की लंबी अवधि के दौरान भारत

की औद्योगिकीकरण की काफी कम उपलब्धि दर्शाता है। इसके बावजूद कृषि रोजगार के शेयर में गिरावट (इस अवधि में) कम नहीं है। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय यह 72 प्रतिशत था जो 2002 के बाद के वर्षों में 52 प्रतिशत हो गया। यद्यपि यह गिरावट श्रम स्थानांतरण की इस कल्पना को बल देता है कि श्रमिक कृषि से गैर-कृषि (अर्थात् उद्योग + सेवा) में स्थानांतरित हुई है, जैसा कि लुईस द्वारा प्रस्तुत किया गया है, फिर भी विकसित अर्थव्यवस्था का स्तर प्राप्त करने के लिए भारत को अभी ठोस तरीके से आगे बढ़ना है।

तालिका 1.1: भारत और विकसित अर्थव्यवस्थाओं में रोजगार और आय में संरचनात्मक संयोजन

प्रतिशत

प्रमुख आर्थिक सेक्टर	विकसित अर्थव्यवस्था 2000 के बाद		भारत (2009–10)	
	आय	रोजगार	आय	रोजगार
कृषि	1–4	1–5	14.6	52
उद्योग	22–30	21–33	28.6	14
सेवाएं	68–73	63–74	57.2	34

परन्तु तीन व्यापक आर्थिक सेक्टरों द्वारा आय के वितरण के आधार पर उद्योगों और सेवाओं दोनों के संबंध में भारत विकसित अर्थव्यवस्था स्तर के समीप है। प्रवृत्ति से प्रतीत होता है कि ग्रामीण औद्योगिकीकरण कार्यक्रम की अधिक सुदृढ़ नीति पर फोकस करने की आवश्यकता है। आप हमारे ग्रामीण औद्योगिकीकरण और उनकी उपलब्धि के बारे में इस पाठ्यक्रम की इकाई 10 में अधिक विस्तार से पढ़ेंगे। इसी बीच हमें यह जानना महत्त्वपूर्ण है कि समग्र आर्थिक विकास के लिए कृषि किस तरीके से महत्त्वपूर्ण योगदान कर सकती है। हम अब इसी पर विचार करेंगे।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

1.5.1 आर्थिक वृद्धि के लिए कृषि का योगदान

कुजनेट्स ने समग्र आर्थिक विकास में चार संभव योगदानों की पहचान की है जिन्हें करने की क्षमता कृषि सेक्टर में होती है। ये हैं :

- उत्पाद योगदान – खाद्य और कच्चा माल उपलब्ध करना;
- बाजार योगदान – गैर-कृषि क्षेत्र के उत्पादकों और उपभोक्ता माल के लिए बाजार मुहैया करना;
- कारक योगदान – गैर-कृषि सेक्टर के श्रम और पूँजी उपलब्ध करना; और
- व्यापार में योगदान और विदेशी मुद्रा अर्जित करना (अर्थात् पूँजी अंतर्वाह)।

कृषि सेक्टर के उपयुक्त योगदानों पर निम्न प्रकार से आगे अधिक विस्तार से चर्चा हो सकती है।

i) बुनियादी निर्वाह सामग्री अर्थात् खाद्यवस्तुओं की आपूर्ति का स्रोत।

खाद्य की कमी अर्थव्यवस्था में असंतुलन उत्पन्न करती है जो आर्थिक विकास के लिए दबाव के रूप में कार्य करता है। पर्याप्त घरेलू आपूर्ति के अभाव में निर्यात के लिए कोई अधिशेष नहीं रहता।

ii) खाद्य अभाव और सामान्य कीमत स्तर

विकासशील देशों में खाद्य मांग में तीव्र वृद्धि का एक मुख्य कारण जनसंख्या की वृद्धि है। इन देशों में, जनसंख्या वृद्धि लगभग 2.5 प्रतिशत प्रतिवर्ष है। साथ ही, प्रति व्यक्ति आय में लगभग 3.4 प्रतिशत प्रति वर्ष की वृद्धि होने से खाद्य की मांग की आय लोच के कारण भी बढ़ रही है। मांग की आय लोच को हम Y_{ED} द्वारा दिखा रहे हैं। अनुमान है कि खाद्य के लिए Y_{ED} विकसित देशों की 0.2 से 0.3 की तुलना में अधिकांश विकासशील में लगभग 0.5 से 0.6 है। इन दशाओं अधीन खाद्य मांग की वृद्धि की दर समीकरण $D = P + (Y_{ED})\,Y$ द्वारा दी गई है, जहां D खाद्य मांग की वृद्धि दर है, P जनसंख्या वृद्धि दर है और Y प्रति व्यक्ति आय की वृद्धि की दर है। उपर्युक्त समीकरण में इन आंकड़ों को प्रतिस्थापित करने पर ''प्रारूपित (टिपिकल)'' विकासशील देश में मोटे अनुमान के रूप में हम पाते हैं : $D = 2.5 + 0.5\,(3.4)$ या 4.2 प्रतिशत। यदि घरेलू खाद्य उत्पादन लगभग इस दर से नहीं बढ़ रहा है, तो खाद्य की कमी इन वस्तुओं की कीमतें ऊपर की ओर बढ़ाएगी। खाद्य वस्तुएं बुनियादी निर्वाह सामग्री होने के कारण इनकी कीमतों में वृद्धि औद्योगिक सेक्टर में उच्चतर मजदूरी की मांग उठाती है। उद्योग में उच्चतर मजदूरी से वहां उत्पादन लागत बढ़ती है, (विशेष कर उन उद्योगों में जिनमें मजदूरी बिल उत्पादन की कुल लागत का महत्त्वपूर्ण घटक है)। इसके परिणामस्वरूप बड़ा समष्टि आर्थिक व्यावधान उत्पन्न कर सकता है, जो किसी भी देश की आर्थिक स्थिति के लिए गंभीर चिंता का विषय है।

iii) खाद्य अभाव और भुगतान संतुलन (BOP)

यद्यपि आयात द्वारा खाद्यान्न की किसी भी घरेलू कमी को पूरा करना संभव है परन्तु इससे भुगतान संतुलन (BOP) की समस्या उत्पन्न हो सकती है। प्रतिस्वरूप देश को खाद्यान्न के आयात के कारण पूँजीगत माल जैसे मशीनरी, तकनीकी जानकारी आदि का अधिक आवश्यक आयात छोड़ना आवश्यक हो सकता है। ऐसी स्थिति में अर्थव्यवस्था की संवृद्धि संभावना को ठेस पहुँच सकती है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

iv) खाद्य अभाव और मानवपूँजी निर्माण

अभी हाल ही तक अर्थशास्त्रियों में खाद्य को केवल एक उपभोग सामग्री के मानने की प्रवृत्ति थी। परन्तु अब यह माना गया है कि खाद्य उपयोग के एक भाग को निवेश के रूप में समझा जाना चाहिए, क्योंकि यह श्रमिक बल की गुणवत्ता बनाए रखने के लिए अत्यधिक आवश्यक है। इसके अभाव में कुपोषण के परिणाम संभावित मानव पूँजी को प्रभावित कर सकते हैं। इससे कामगारों की अनुपस्थिति और उत्पादकता में गिरावट भी हो सकती है। वैसे भी विकासशील देशों में खाद्य उपभोग न केवल कैलेरीज में है बल्कि प्रोटीन में भी त्रुटिपूर्ण है। यह विकासशील देशों में श्रमिक बल अपेक्षाकृत कम उत्पादनकारी होने के कई कारणों में एक है।

v) उद्योग के लिए निवेश

कृषि आधारित उद्योगों के लिए अपेक्षित कच्चा माल प्रायः कृषि सेक्टर से ही प्राप्त किया जाता है। सभी प्रौद्योगिकीय और वैज्ञानिक प्रगति के बावजूद उद्योगों के लिए कृषि सेक्टर से कच्चा माल, जैसे कपास, जूट, गन्ना आदि की पर्याप्त आपूर्ति प्राप्त करना संभव नहीं हुआ है। इसके अलावा, जैसा कि हम अब भलीभांति जानते हैं, (औद्योगिकीकरण में वृद्धि के फलस्वरूप) इस संक्रातिकाल के वर्षों में कृषि सेक्टर से अतिरिक्त श्रमिकों को निकाल कर श्रमिकों के लिए बढ़ती हुई मांग पूरी करना आवश्यक है। जैसे-जैसे अधिकाधिक कामगार कृषि से छोड़े जाते

हैं, वैसे-वैसे कृषि में शेष कामगारों के लिए खाद्य आपूर्तियों को बनाए रखने के लिए अपनी उत्पादिता बढ़ाना आवश्यक हो जाता है। इस प्रकार उद्योग और कृषि दोनों के लिए आदान वृद्धि के प्रभाव परस्पर संवर्धक हो जाएंगे। कृषि उत्पाद बढ़ाने के लिए अनुसंधान और निवास (R&D) प्रयासों का किया जाना आदि आवश्यक होगा।

vi) विदेशी मुद्रा का स्रोत

अपनी शैशव अवस्था में उद्योग बहुत कम विदेशी मुद्रा अर्जित करते हैं परन्तु स्थानीय रूप से अनुपलब्ध मशीनरी, प्रौद्योगिकी और निवेश के लिए अपनी आवश्यकता के अनुसार इसकी बहुत अधिक मांग करते हैं। यदि कृषि निर्यात विदेशी मुद्रा प्रदान नहीं करता है, देश को भुगतान संतुलन के दबाव का सामना करना पड़ेगा, जिससे देश की औद्योगिक प्रगति बाधित हो सकती है।

vii) पूँजी निर्माण का स्रोत

सुविकसित कृषि गैर-कृषि क्षेत्र में पूँजी निर्माण में वास्तविक योगदान कर सकती है। इस मत के समर्थन में तीन तर्क हैं : i) कृषि में पूँजी-उत्पाद अनुपात उद्योग की तुलना में अपेक्षाकृत कम है, इसलिए कृषि में उत्पादकता बढ़ाने की बहुत संभावना है जिसके लिए बहुत सामान्य सी पूँजी की आवश्यकता होगी। ii) व्यापार की शर्तों के कृषि क्षेत्र के पक्ष में होने की प्रबल प्रवृत्ति होती है। इससे कृषि आय में अपेक्षकृत तीव्र वृद्धि हो सकती है; (iii) कृषि समुदाय परम्परागत रूप में कम उपभोग के आदि हैं। इसमें विकास के फलस्वरूप कृषि आय की संभावित वृद्धि के अनुरूप वृद्धि की संभावना भी नहीं होती।

DIKSHANT IAS

viii) औद्योगिक उत्पादों के लिए बाजार

Call us @7428092240

औद्योगिक माल की मांग पर कृषि विकास कर प्रभाव दोनों दिशाओं में कार्य करता है : i) बढ़ा हुआ कृषि उत्पादन और बढ़ती हुई आय औद्योगिक माल की मांग को प्रोत्साहित करती है : और ii) कृषि और औद्योगिक सेक्टरों के बीच व्यापार की शर्तें औद्योगिक माल को अधिक मंहगा बना कर कृषि के पक्ष में मोड़ सकती है। ग्रामीण क्षेत्रों में व्यापार की शर्तों के प्रभाव निम्न और उच्च आयवर्ग के व्यक्तियों के लिए भिन्न-भिन्न होते हैं। यद्यपि निम्न आयवर्ग के व्यक्तियों के लिए निर्वाह वस्तु और औद्योगिक माल दोनों के लिए मांग लोचहीन होगी और उच्च आयवर्ग के व्यक्तियों के लिए कृषि मूल्य बढ़ने से प्राप्त अधिक आय के कारण मांग पर भी भिन्न प्रभाव होगा। इस प्रकार कृषि निष्पादन उत्पादन प्रभाव और व्यापार की शर्तों के प्रभाव से औद्योगिक माल की मांग प्रभावित हो सकती है। वास्तव में यह उन आवश्यक शर्तों में से एक है जिससे अर्थव्यवस्था अपनी आत्मनिर्भर संवृद्धि की प्रक्रिया के लिए तैयार होती है। उससे पहले ही इसे पूरा किया जाना चाहिए।

1.5.2 उद्योग पर कृषि की निर्भरता

उपर्युक्त समीक्षा में कृषि विकासनीतियों और कार्यक्रमों को औद्योगिक विकास की नीतियों और कार्यक्रमों से सामंजस्य स्थापित करने के महत्त्व को रेखांकित किया गया है। इस पर पुनः बल देने के लिए हम भिन्न तरीकों की सूची बना सकते हैं जिनमें कृषि की प्रगति के लिए उद्योग योगदान करता है।

– उर्वरक, कीटनाशक दवाइयों और यहां तक कि जल सहित अधिक आधुनिक आदान उद्योगों द्वारा उपलब्ध किए जाते हैं।

– उद्योग फार्मों पर अपेक्षित मशीनरी सलाई करता है।

– कृषि इंजीनियरी उद्योग की महत्त्वपूर्ण शाखा है।

– अधिकांश अनुसंधान, जो भारत में ''हरित क्रांति'' पूरा करने कि लिए किये गये थे, वह ऐसे आरंभ किये गये कि औद्योगिक संस्कृति के रूप में उन पर वर्णन किया जा सकता है।

– उद्योग कृषि की प्रगति के लिए अपेक्षित आवश्यक आधारभूत संरचना तैयार करने में सहायता करता है। यह परिवहन, और संचार, व्यापार और वाणिज्य, बैंकिंग और विपणन की सुविधाओं आदि के रूप में हो सकता है।

– उद्योग बढ़ती हुई जनसंख्या और कृषि सेक्टर में आय वृद्धि के फलस्वरूप ग्रामीण क्षेत्र में उपभोक्ता माल के लिए बढ़ती हुई मांग पूरा करने में सहायता करता है।

संक्षेप में, आर्थिक विकास और संरचनात्मक रूपांतरण के दौरान कृषि और उद्योग के बीच पारस्परिक संपूरक स्वरूप का समर्थन करना युक्ति संगत है। संसाधनों, उत्पादों और कारकों की अंतःक्षेत्रीय मांग और पूर्ति का सापेक्षित बल न केवल विकास की गति निश्चित करता है बल्कि वृद्धि की अवस्था की अभिव्यक्ति भी करता है। परन्तु सेक्टरों के बीच ऐसे संबंध भी हैं कि धारणीय विकास के लिए कृषि उत्पादकता में वृद्धि पहले होनी चाहिए और बाद की अवस्थाओं में गैर-कृषि सेक्टरों का विकास सतत् बनाए रखा जाना चाहिए।

बोध प्रश्न 3

लगभग 50 शब्दों में उत्तर दीजिए।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

1) किस संबंध में भारत की प्रगति विकसित अर्थव्यवस्थाओं के समीप है? क्षेत्रानुसार आय अंश के वितरण का प्रयोग करते हुए उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

2) देश के कृषि सेक्टर के समग्र आर्थिक विकास में कुजनेट्स द्वारा निर्धारित योगदान के चार प्रकार क्या हैं?

....

....

....

....

3) खाद्य अभाव मानव संसाधन निर्माण पर कैसे प्रभाव डालता है ?

....

....

....

....

4) बढ़ता हुआ कृषि विकास को कृषि और उद्योग दोनों की वृद्धि स्थायी रखने के लिए अतिरिक्त R&D प्रयासों की आवश्यकता होगी, क्यों ?

....

....

....

....

1.6 सारांश

यह इकाई उन मुख्य सिद्धांतों की समीक्षा से आरंभ की गई है, जिनमें आग्रह है कि समग्र आर्थिक विकास के लिए कृषि विकास एक आवश्यक शर्त है। हमने देखा कि मानव संसाधन विकास पर (सामाजिक सेक्टर निवेश के तरीके से जैसे, शिक्षा स्वास्थ्य, आधारभूत संरचना आदि पर) पर्याप्त ध्यान देना अर्थव्यवस्था के चहुंमुखी विकास के लिए महत्त्वपूर्ण है। सामान्यतया क्षेत्रीय विकास के लिए, और विशेष रूप से कृषि विकास के लिए, निर्धारित लक्ष्यों और उद्देश्य प्राप्त करने में नीतियों, कार्यक्रमों और परियोजनाओं का महत्त्व भी नोट किया गया। हमने देखा कि (i) भारत विकास की मध्यवर्ती अवस्था में है जिसमें लुईस आदि द्वारा अभिग्रहीत क्षेत्रीय श्रमिक स्थानांतरण की प्रक्रिया कार्य कर रही है, और (ii) 4 प्रतिशत वार्षिक दर से कृषि उत्पादन की वृद्धि देश की धारणीय समन्वित आर्थिक प्रगति के लिए आवश्यक है। इकाई के अंत में हमने जाना है कि इस प्रकार की विकास नीति की सफलता के लिए कृषि और उद्योग में समन्वय अत्यावश्यक है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

1.7 शब्दावली

संतुलित संवृद्धि दृष्टिकोण : वह दृष्टिकोण, जिसमें कृषि और उद्योग दोनों सेक्टरों पर विकास के लिए समान रूप से फोकस किया जाता है।

द्वि-क्षेत्रक आर्थिक प्रतिमान : ऐसा प्रतिमान, जिसमें अर्थ व्यावस्था को द्वि-खंडीय माना जाता है : (i) श्रमिक बल का भार वहन करने वाला अल्प उत्पादिता कृषि क्षेत्र, जिसकी सीमांत उत्पादिता बहुत कम है, और (ii) अधिक उत्पादनकारी गैर-कृषि क्षेत्र (अर्थात् उद्योग + सेवाएं) जिनकी वृद्धि और धारणीयता सफल कृषि सेक्टर पर निर्भर है। इस आधार पर निर्मित प्रतिमान इष्टतम विकास लक्ष्य प्राप्त करने के लिए आवश्यक नीति दृष्टिकोण को स्पष्टता प्रदान करते हैं।

1.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1) Ashok Gulati and Tim Kelley (2003): *Trade Liberalisation and Indian Agriculture*, Oxford, New Delhi.

2) G.S. Bhalla (2007): *Indian Agriculture Since Independence*, NBT, New Delhi.

3) Kartar Singh (2009): *Rural Development: Principles, Policies and Management*, Sage, 3rd Edition.

4) Ranis, Gustav (2004): *Arthur Lewis's Contribution to Development Thinking and Policy*, The Manchester School, Volume 72, No. 6, December, pp 712-723.

1.9 बोध प्रश्नों के उत्तर/संकेत

बोध प्रश्न 1

1) "प्रौद्योगिकी, निदेश और लाभ" के बीच अंतःसंबद्धता देखिए।

   भाग 1.2 देखिए

2) भाग 1.2 देखिए और उत्तर दीजिए

3) उपभाग 1.2.1 से 1.2.3 तक देखिए और उत्तर दीजिए।

बोध प्रश्न 2

1) i) भौतिक/तकनीकी/आर्थिक/.... आदि ii) ग्रामीण/सामाजिक आधारभूत संरचना iii) ऋण और iv) सार्वजनिक निवेश

2) भाग 1.4 देखिए और उत्तर दीजिए।

3) उपभाग 1.4.2 देखिए और उत्तर दीजिए।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 3

1) उपभाग 1.5.1 देखिए तालिका 1.1 देखिए और उत्तर दीजिए।

2) उपभाग 1.5.1 देखिए और उत्तर दीजिए।

3) उपभाग 1.5.1 (iv) देखिए और उत्तर दीजिए।

4) उपभाग 1.5.1 (v) देखिए और उत्तर दीजिए।

इकाई 2 भूमि उपयोग और फसल प्रतिरूप

संरचना

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 भूमि उपयोग का विवरण

2.2.1 प्रयोग के प्रकार के अनुसार भूमि का वर्गीकरण

2.2.2 भारत में भूमि उपयोग प्रतिरूप में प्रवृत्तियाँ

2.3 मृदाएं और उनकी परिवर्तनशीलता

2.3.1 मृदा के प्रकार

2.3.2 मृदा अपरदन को प्रभावित करने वाले कारक

2.4 भारत में फसल प्रतिरूप

2.4.1 फसल प्रतिरूप के प्रकार

2.4.2 फसल प्रतिरूप भिन्न क्यों होते हैं ?

2.4.3 फसल प्रतिरूप को प्रभावित करने वाले कारक

2.4.4 फसल प्रतिरूप में उभरती हुई प्रवृत्तियाँ

2.4.5 फसल प्रतिरूप में वर्तमान प्रवृत्तियों के दूरगामी प्रभाव

2.5 चुनिंदा फसल उत्पादन पर विश्व में भारत की स्थिति

2.6 सारांश

2.7 शब्दावली

2.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

2.9 बोध प्रश्नों के उत्तर/संकेत

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

2.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप :

- स्पष्ट कर सकेंगे, भूमि उपयोग में प्रवृत्तियों का अध्ययन करना महत्त्वपूर्ण क्यों है;
- भारत में भूमि उपयोग को प्रभावित करने वाले कारकों की पहचान कर सकेंगे;
- फसल का सकल/निवल क्षेत्रफल और फसल घनता के बीच अंतर कर सकेंगे;
- देश में फसल प्रतिरूप में परिवर्तन के सहायक कारकों की चर्चा कर सकेंगे; और
- भारत के फसल प्रतिरूप में प्रवृत्तियों के दीर्घकालिक प्रभावों की समीक्षा कर सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना

देश में भूमि की उपलब्धता उसकी भौगोलिक सीमाओं द्वारा सीमित रहती है। प्रतिस्पर्धी सेक्टरों (जैसे उद्योग, नगर विकास) की भूमि की आवश्यकताओं को पूरा करना भी जरूरी है।

यह कार्य बहुधा कृषि प्रयोजनों के लिए प्रयुक्त भूमि कम करके किया जाता है। इस प्रकार खेती के लिए उपलब्ध भूमि का विस्तार करने की गुंजाइश बहुत कम होती है। दूसरी ओर, खाद्यान्नों की आवश्यकता जनसंख्या वृद्धि, बदलती हुई रुचियों और उन्नत आय स्तरों के कारण तथा भूमंडलीय आर्थिक परिदृश्य को नियंत्रित करने वाले कारकों के कारण निरंतर बढ़ रही है। यद्यपि यह तर्क दिया जा सकता है कि देश के अंदर कृषि उत्पादों को पैदा करना वैश्वीकरण के युग में इतना महत्त्वपूर्ण नहीं है, किंतु भारत जैसे विकासशील देशों में, जहां जनसंख्या का बहुत बड़ा भाग अपनी आजीविका के लिए निर्वाही कृषि पर निर्भर रहता है, वहां नीतिगत उपायों (जैसे ऋण आपूर्ति, विस्तार सेवाओं) द्वारा कृषि उत्पादों की सहायता करना आवश्यक है। कृषि कार्यों की वाणिज्यिक व्यावहारिकता ने वैश्वीकृत अर्थव्यवस्था में अत्यधिक महत्त्व धारण कर लिया किया है। इसलिए बहुत से कारणों से सामान्य भूमि उपयोग प्रतिरूप को और विशेष रूप से फसल उत्पादन के प्रतिरूप को प्रभावित करने वाले निहित कारकों के अध्ययन को महत्त्व दिया जाता है। इस इकाई में भारत के संदर्भ में भूमि उपयोग और फसल प्रतिरूप, दो विषयों का विवेचन करने का प्रयास किया गया है।

2.2 भूमि उपयोग का विवरण

यह सत्य है कि कृषि भूमि के विभिन्न हिस्से खेती के लिए प्रभावी ढंग से प्रयुक्त नहीं हो सकते। यह तब स्पष्ट होगा जब हम वैकल्पिक प्रयोग पर विचार करेंगे कि कौन सी भूमि गैर-कृषि कार्यों के लिए प्रयुक्त की जा सकती है। इसलिए वस्तुतः खेती के लिए उपलब्ध वास्तविक भूमि (फसल का सकल क्षेत्रफल कहा जाता है) सदा सीमित होती है। अतः सबसे पहले हम भूमि के प्रयोग के प्रकार के आधार पर उसके वर्गीकरण से परिचित होंगे। बाद में हम भारत में भूमि के वितरण की रचना पर उसके ''प्रयोग के प्रकार'' पर इस फोकस के साथ विचार करेंगे कि कालांतर में प्रयोग के उसके प्रतिरूप में क्या-क्या परिवर्तन हुए हैं। इसके लिए हम तुलना के लिए दो अवधियां लेंगे : स्वतंत्रता के समय के निकट (1950) और नवीनतम वर्ष (1980) जिसके आंकड़े हमें उपलब्ध हैं। हम देखेंगे कि खेती के अधीन कुल क्षेत्रफल (गैर-कृषि कार्यों के लिए भूमि प्रयोग के बावजूद) इस दौरान वास्तव में बढ़ा है। यह कैसे संभव है? इस उपलब्धि के लिए किसका योगदान रहा है ? ये पहलू हैं जिन पर हम इस भाग में ज्ञान कर सकेंगे।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

2.2.1 प्रयोग के प्रकार के अनुसार भूमि का वर्गीकरण

कुल भूमि क्षेत्रफल को, मोटेतौर पर, ''प्रयोग के प्रकार'' के अनुसार इस प्रकार वर्गीकृत किया जाता है (i) कृष्यभूमि (अर्थात् निवल बोआई क्षेत्रफल), (ii) पड़ती भूमि (जोताई किया गया क्षेत्रफल, परन्तु बोआई के बिना छोड़ा गया) (iii) गैर-कृषि प्रयोग के अधीन क्षेत्रफल (vi) बंजर और अकृष्य भूमि, (v) स्थायी चारागाह और अन्य चराई भूमि, (vi) विविध वृक्ष और फसलों के अधीन क्षेत्रफल (निवई बोआई क्षेत्रफल) और (vii) 'वन' के अधीन क्षेत्रफल और (viii) ''कृषि योग्य बंजर'' के अधीन क्षेत्रफल। गैर-कृषि प्रयोग के अधीन क्षेत्रफल का उदाहरण उद्योगों के लिए प्रयुक्त भूमि है। वन और स्थायी चारागाह/चराई के अधीन भूमि पशुओं और सृष्टि में अन्य जीवों की आवश्यकता के अनुसार पारिस्थितिकी संतुलन बनाए रखने के लिए आवश्यक है। इसलिए भूमि के प्रयोग के व्यापक प्रारूप से यह भी स्पष्ट होता है कि कृषि उत्पाद की वृद्धि दर केवल बेहतर रीति और प्रौद्योगिकी के प्रयोग द्वारा बढ़ाई जा सकती है। इस प्रकार कृषि की बेहतर और नई रीतियां सामान्य तथा खाद्य अभाव और विशेष रूप से गरीब किसानों की समस्या दूर करने की दृष्टि से आवश्यक हैं।

भारत जैसी उन विकासशील अर्थव्यवस्थाओं के संदर्भ में भूमि उपयोग से संबंधित कुछ महत्त्वपूर्ण समस्याएं हैं जिनकी जनसंख्या का बहुत बड़ा भाग कृषि पर आश्रित है। सबसे पहली समस्या खंडित जोतों की बहुत अधिक संख्या है। यद्यपि कृषि अभी भी रोजगार आय का प्रमुख स्रोत है, किंतु ऐसी छोटी जोतों पर ही परिवार निर्भर है ऐसे मामलों में खेती के नए तरीकों के क्रियान्वयन की गुंजाइश सीमित है। बहुत से कारक जैसे पूँजी का अभाव/दबाव, निम्न साक्षरता स्तर, आदि नई रीतियों को अपनाने में बड़ी बाधाएं हैं। इसके साथ ही भूमि के दुरुपयोग, और पर्यावरण पर इसके प्रभाव की समस्याएं हैं। दूसरा, औद्योगिकीकरण के लिए भूमि उपलब्ध कराने पर विकासनीति का सदा मुख्य आग्रह रहता है। इसका कारण विश्व भर में विकास के साथ-साथ विकास कृषि पर निर्भरता में कमी और उद्योग के पक्ष में की प्रवृत्ति संरचनात्मक परिवर्तन है। यह प्रवृत्ति, उद्योग द्वारा भूमि पर प्रतिस्पर्धी दावों के साथ-साथ बाधित आजीविका, आबंटन और पर्यावरण चिंताओं से निपटने की नीति का भी संकेत देती है। हाल ही के वर्षों में पुनर्वास और पुनर्स्थापना (R&R) की नीति के अंतर्गत कई उपाय हुए हैं जिनके अनुसार अधिगृहीत भूमि के लिए वित्तीय क्षतिपूर्ति के अलावा, नौकरी के आश्वासन की गारंटी, विधायी प्रावधानों द्वारा दी गई है। वनरोपण उपायों जैसे कार्यों से वन भूमि का भाग बढ़ाने और पर्यावरण संबंधी समस्या दूर करने का लक्ष्य रखा गया है। ये सरकार की नीति के मुख्य आग्रह हैं।

2.2.2 भारत में भूमि उपयोग प्रतिरूप में प्रवृत्तियां

तालिका 2.1 में 1950 से 2008 तक की अवधि में भूमि उपयोग में प्रतिरूप में प्रवृत्तियां प्रस्तुत की गई हैं। तालिका के आंकड़ों के आधार पर भूमि उपयोग की ये मुख्य विशेषताएं हैं :

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

- सकल फसली क्षेत्रफल 1950–2008 की अवधि में (1950 में 131.89 mha से 2008 में 195.83 mha) 63.94 मिलियन हेक्टयर (mha) बढ़ा है। इसके अलावा कुल भूमि क्षेत्रफल का लगभग 70 प्रतिशत (1950 में 56 प्रतिशत की तुलना में 2008 में 68.9 प्रतिशत) में निवल फसल और वन क्षेत्र है।

- निवल बोआई क्षेत्रफल (अर्थात् खेती के लिए वस्तुतः प्रयुक्त भूमि) 1950–2008 की अवधि में भमि उपयोग पर कुल सूचित क्षेत्रफल 22.1 mha (41.8 से 46.1 प्रतिशत) की वृद्धि हुई है।

- गैर-कृषि उपयोग के अधीन क्षेत्रफल, जिसमें मुख्यतया उद्योगों और कस्बों/शहरों के विकास के लिए प्रयुक्त भूमि शामिल है, 1950 में 3.3 प्रतिशत से बढ़कर 2008 में 8.4 प्रतिशत हुई है। यह देश में बढ़ता हुआ शहरीकरण और औद्योगिकीकरण का संकेत है।

तालिका 2.1 : भूमि उपयोग प्रतिरूप (mha में)

प्रकार/उपयोग के अनुसार	1950		2008	
	क्षेत्रफल	प्रतिशत	क्षेत्रफल	प्रतिशत
क) कुल भौगोलिक क्षेत्रफल	328.73		328.73	
1. निवल बोइ गई फसली क्षेत्र	118.75	41.8	140.86	46.1
2. पड़ती भूमि	28.12	9.9	25.15	8.23
3. गैर-कृषि के अधीन क्षेत्रफल	9.36	3.3	25.54	8.4
4. बंजर भूमि, खेती के योग्य नहीं	38.16	13.4	17.3	5.7
5. स्थायी चारागाह/चराई भूमि	6.68	2.3	10.4	3.4
6. विविध वृक्षों/फसलों/उपवनों के अधीन भूमि	19.8	6.96	3.3	1.1
7. वन भूमि	40.5	14.2	69.7	22.8
8. अकृष्य भूमि का क्षेत्रफल	23.0	8.1	13.1	4.3
ख) भूमि उपयोग के लिए रिपोर्टिंग क्षेत्रफल	284.37	100.00	305.35	100.00
ग) फसल का सकल क्षेत्रफल	131.89		195.83	
फसल सघनता ('ग' का 'क' (1) से प्रतिशत)	110.1		139	

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

नोट : कालम 3 और 4 में दिखाए गए प्रतिशत, कुल भूमि उपयोग पर सूचित किए गए कुल क्षेत्रफल के हैं। जो (1) से (8) में दर्शाए गए आंकड़ों का योग है।

स्रोत : पर्यावरण और वन मंत्रालय (MoFE) 2010

– बंजर/अकृष्य भूमि का अनुपात घटा है। यह 1950 में 13.5 प्रतिशत से घटकर 2008 में 5.7 प्रतिशत रह गया। यह अकृष्य भूमि विकास के क्षेत्र में की गई प्राप्ति का संकेत है।

– स्थायी चारागाह/चराई भूमि का क्षेत्रफल 1950–2008 की अवधि में 2.3 प्रतिशत से बढ़कर 3.4 प्रतिशत हुआ है।

– वन क्षेत्र भी 1950–2008 की अवधि में 14.2 प्रतिशत से बढ़कर 22.8 प्रतिशत हुआ है।

– कृष्य बंजर भूमि का क्षेत्रफल 1950–2008 की अवधि में 8.1 प्रतिशत से घटकर 4.3 प्रतिशत रह गया है।

भूमि उपयोग प्रतिरूप में सुधार का वास्तविक प्रभाव 'फसल सघनता' द्वारा निर्दिष्ट किया गया। सरल शब्दों में फसल सघनता उस संख्या को निर्दिष्ट करता है जितनी बाद वर्ष में फसल उगाने के लिए खेत का प्रयोग किया जाता है। यह निवल फसली क्षेत्रफल से सकल फसली क्षेत्रफल के अनुपात के रूप में व्यक्त किया जाता है। 1950–2008 के अवधि में 110

प्रतिशत से बढ़कर 139 प्रतिशत हुआ है। स्पष्टतया जैसा कि उपर्युक्त विश्लेषण से प्रकट होता है, यह उपलब्धि बंजर/अकृष्य भूमि के और खेती योग्य भूमि के अनुपात में कमी करने से संभव हुआ है। उन दोनों में तेजी से कमी हुई है (अर्थात् उन्हें सुधारा गया है)। यह भूमि के अधिक दक्ष ढंग से प्रयोग करने का सूचक है। यह ध्यान रखना भी महत्त्वपूर्ण है कि इसके साथ-साथ वन और स्थायी चारागाह/चराई की भूमि के अधीन क्षेत्रफल में अत्यधिक वृद्धि भी प्राप्त हुई है। ये दोनों ही वृहद् स्तर पर पारिस्थितिक संतुलन बनाए रखने की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं।

2.3 मृदाएं और उनकी परिवर्तनशीलता

मृदा की किस्म और गुणवत्ता फसलों की उस किस्म को अत्यधिक प्रभावित करती है जो किसी क्षेत्र में उगाए जा सकते हैं। ये पौधों की वृद्धि के लिए आवश्यक आदान हैं, किंतु सभी जगह एक जैसी गुणसंपन्न मृदा नहीं मिलती। मृदा की विभिन्न किस्में अपनी विशिष्ट भौतिक, रासायनिक और जैविक विशेषताओं द्वारा विभिन्न फसलों को अलग-अलग तरीके से लाभ पहुंचाती हैं। उदाहरण के लिए, ''जलोढ़ मृदा'' में भरपूर पोटैशियम होता है और यह धान, गन्ना और केला जैसी फसलों के लिए बहुत उपयुक्त है। इसी प्रकार लाल मृदा में अत्यधिक लौह मात्रा होती है और यह चनों की भिन्न-भिन्न किस्मों (जैसे लाल, बंगाली, हरे), मूंगफली और एरंडी बीज उगाने के लिए बहुत उपयुक्त है। अधिक पैदावार और अच्छी उपज तभी प्राप्त की जा सकती है जब फसल के लिए सही किस्म की मृदा प्रयुक्त की गई हो। क्षेत्र में उपलब्ध मृदा की गुणवत्ता का परीक्षण मृदा परीक्षण प्रयोगशालाओं में किया जा सकता है। उन क्षेत्रों के लिए, जिनमें उपयुक्त मृदा उपलब्ध नहीं है, उर्वरक के रूप में उसे उपजाऊ बनाने के लिए पोषक तत्त्व जोड़े जा सकते हैं। ऐसे क्षेत्रों में मृदा का वैज्ञानिक परीक्षण उपयोगी होता है। एक ही फसल को बार-बार लगाने से मृदा की उर्वरता क्षीण भी हो जाती है। प्राकृतिक कारकों, जैसे वायु और पानी से मृदा का अपादान भी हो सकता है। इसलिए मृदा की गहराई/गुणवत्ता प्रत्येक क्षेत्र में अलग-अलग होती है। इस अनुभाग में हम संक्षेप में भारत के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में विद्यमान मृदा की किस्मों और उसके क्षारण में सहायक कारकों के बारे में जानने का प्रयास करेंगे।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

2.3.1 मृदा के प्रकार

मृदा का वर्गीकरण क्षेत्र और उसे प्रभावित करने वाले कारकों पर निर्भर करता है। क्षेत्रीय और प्राकृतिक कारकों के योगदान (जैसे पर्वतीय क्षेत्र, मरु भूमि, समुद्रतट के समीप की मृदा) पर निर्भर करते हुए मृदा का रंग और उसकी उर्वरता के स्तर अलग-अलग होते हैं। मृदा की कुछ किस्में उनके रंग (जैसे लाल मृदा, काली मृदा आदि) से पहचानी जा सकती हैं। कुछ अन्य (जैसे लैटेराइट, जलोढ़ आदि) उनकी रासायनिक/भौगोलिक विशेषताओं के आधार पर पहचानी जाती हैं। देश में मृदा की किस्मों और उनके क्षेत्रों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है;

i) **लाल मृदा :** यह वह मृदा है जिसके रंग में विभिन्न लौह आक्साइड की उपस्थिति के कारण लाली होती है। इस किस्म की मृदा में जैव पदार्थ कम होते हैं जो मृदा की उर्वरता विशेषता बढ़ाने के लिए महत्त्वपूर्ण हैं। तमिलनाडु में फसल के क्षेत्रफल का लगभग दो तिहाई भाग इस किस्म की मृदा है। दक्षिण भारत के अन्य भागों, (जैसे कर्नाटक, गोवा, दमन और द्वीप, आंध्र प्रदेश) दक्षिण पूर्वी महाराष्ट्र, छत्तीसगढ़, उड़ीसा और झारखंड, बिहार और पश्चिम बंगाल के कुछ भागों में भी लाल मृदा बहुतायत में है।

ii) **काली मृदा :** यह वह मृदा है जो दक्षिण पठार में पाई जाती है। यह गहरी भूरी से काले भूरे रंग की हो सकती हैं। इस प्रकार की मृदा जैव पदार्थ में समृद्ध होती है और कपास की खेती के लिए बहुत उपयुक्त है। यह पोटैशियम, और मैग्नेशियम जैसे उपयोगी रासायनों से समृद्ध है। कपास, तंबाकू, मिर्च, तिलहन, ज्वार, रागी और मकई जैसे फसलें इस किस्म की मृदा में अच्छी उगती हैं। यह महाराष्ट्र के बड़े भागों और मध्य प्रदेश के भागों, गुजरात और तमिलनाडु में पाई जाती है। निचले स्थानों की अपेक्षा की उच्च भूमि में पायी गयी काली मृदा अपेक्षाकृत कम उत्पादनकारी है।

iii) **भूरी मृदा :** यह तीसरी किस्म की मृदा है जो उसके रंग से पहचानी जाती है, पृष्ठीय मृदा भूरे रंग की होती है। यह देश के सबसे अधिक भागों में पाई गई सामान्य मृदा है और जैवपदार्थों से सामान्यतः समृद्ध होती है।

iv) **लैटेराइट मृदा :** लेटेराइट मृदा कर्नाटक, केरल, मध्यप्रदेश के पहाड़ों, उड़ीसा, पश्चिमी बंगाल और तमिलनाडु के पूर्वी घाटों में पायी जाती है। यह कम ऊंचाइयों में जैवपदार्थ से समृद्ध है और धान की पैदावार के लिए उपयुक्त है। अधिक ऊंचाईयों में यह चाय, सिन्कोना, काफी और रबड़ उगाने के लिए उपयुक्त है। यह मृदा उन क्षेत्रों में विद्यमान है जहां विरामी आर्द्र जलवायु होती है।

v) **जलोढ़ मृदा :** यह भारत का विशालतम और सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण मृदा समूह है और कृषि में इस मृदा का अंश सबसे अधिक है। उत्तर और पूर्व (अर्थात् उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल और असम के क्षेत्रों) में गंगा और ब्रह्मपुत्र नदियों के डेल्टा और पश्चिम/दक्षिण (अर्थात् गुजरात, तमिलनाडु, केरल) के डेल्टा/तटीय क्षेत्र द्वारा निर्मित ये मृदा चूने में समृद्ध है परन्तु पर्याप्त लवणीय और क्षारीय भी है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

vi) **मरूभूमि :** यह बलुई मिट्टी है, इसमें जैव पदार्थ कम है। वे पश्चिमी राजस्थान, हरियाणा और पंजाब में पाई जाती है। सिन्धु नदी समूह और अरावली पर्वत श्रृंखला द्वारा प्रभावित यह मृदा भी क्षारीय से लवणीय होती है। बहुत से जल विलेय खनिजों के बावजूद इसमें पोषक तत्त्व कम होते हैं। फिर भी जहां बहुत अधिक वर्षा होती है ये मृदा क्षेत्रों में नारियल, काजू और कैजुआराइना उगाने के लिए उपयुक्त है।

vii) **तराई मृदा :** तराई मृदा हिमालय क्षेत्र की पहाड़ियों पाया जाती है। यह क्षेत्र जम्मू और कश्मीर, उत्तर प्रदेश, बिहार और पश्चिम बंगाल राज्यों में फैला है। यह निम्न हिमालयली क्षेत्र से सामग्रियों के नीचे की ओर संचनन द्वारा निर्मित हुई है।

viii) **लवणीय और क्षारीय मृदा :** इनमें विलेय नमक की बहुत मात्रा होती है, भारत में लगभग 7 मिलियन हेक्टर भूमि लवणीय है, जो खेती के लिए अनुयुक्त है।

2.3.2 मृदा अपरदन को प्रभावित करने वाले कारक

वर्षा, वायु, पशुओं की अतिचराई, निर्माण जैसे मानवीय कार्यों द्वारा मृदा का अपरदन होता है। भारत में जल द्वारा अपरदन की समस्या सबसे अधिक गंभीर है, विशेषकर पूर्वी भागों में, जहाँ वर्षा की ऋतुओं के दौरान आप्लावन की गंभीर समस्या उत्पन्न होती है। जल द्वारा मृदा अपरदन का अनुमान प्रतिवर्ष लगभग 5334 मिलियन टन लगाया गया है। इसमें से लगभग 30 प्रतिवर्ष स्थायी रूप से समुद्र में चला जाता है। जल के बाद मृदा अपरदन के लिए प्रमुख दोषी कारक वायु है। यह शुष्क राजस्थान, हरियाणा, गुजरात और पंजाब के शुष्क क्षेत्रों (अर्थात् शुष्क जहां वर्षा नहीं होती है) गंभीर समस्या है। वायु द्वारा अपरदन उन तटीय क्षेत्रों

में भी व्यापक रूप से होता है जहां बलुई मृदा अधिक है। इन प्राकृतिक कारकों के अलावा, मानव प्रेरित कारक जैसे प्राकृतिक वानस्पतिक आवरण का अत्यधिक विदोहन (सीमांत क्षेत्रों में कृषि के विस्तार और अत्यधिक चराई द्वारा) भी वायु द्वारा मृदा के अधिक अपरदन के लिए उत्तरदायी हो जाते हैं।

मृदा अपरदन और निम्नीकरण का एक अन्य प्रमुख्य कारण **जलाक्रांति** है। वर्षा ऋतु (प्राकृतिक कारक) के दौरान बाढ़ और सिंचित क्षेत्रों में जल के अत्यधिक प्रयोग तथा नहर रिसाव (मानव निर्मित कारक) के कारण भारत में कृष्य भूमि के बहुत बड़े भाग में जलाक्रांति की समस्या बनी रहती है। फसल वृद्धि में बाधा डालने के अलावा जलाक्रांति से मृदा उत्पादकता घटाने/निम्नीकरण करने की संभावना होती है। भारत में जलाक्रांति के प्रतिकूल प्रभाव का अनुमान लगभग 8 मिलियन हेक्टेयर भूमि पर बताया गया है। मृदा गुणवत्ता ह्रास का एक अन्य कारक (जो मृदा गुणवत्ता के अपरदन का एक रूप ही है) **लवणीकरण** है। जमीन के स्तर से बहुत नीचे गहराई से पानी निकालकर नहरी सिचाईं के बढ़े हुए प्रयोग के कारण भूमिगत जल स्तर और मृदा के ऊपरी स्तर के बीच फासला बढ़ गया है। इसे भौमजल स्तर का गिरना भी कहा जाता है। मृदा की ऊपरी स्तर से जल का वाष्पीकरण और गिरता हुआ जल स्तर ''मृदा लवणीकरण'' उत्पन्न करता है। आगे इस प्रक्रिया से ''क्षारीकरण'' नाम की रासायनिक प्रतिक्रिया होती है जिससे मृदा की गुणवत्ता अत्यधिक अपरदित हो जाती है। दूसरे शब्दों में पृथ्वी के अंदर की गहराई से अत्यधिक पानी खींचने से प्राकृतिक कारकों को बाधित करने से क्षारीयकरण/लवणीकरण द्वारा मृदा की गुणवत्ता घटने की संभावना होती है। यह पारिस्थितिक संतुलन बिगाड़ने की मानव निर्मित प्रक्रिया भी है जिसके लिए भारत में बहुत से सामाजिक, राजनीतिक कारकों ने योगदान किया है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 1

लगभग 50 शब्दों में उत्तर लिखिए।

1) भूमि के भिन्न-भिन्न उपयोगों का उल्लेख कीजिए जिनमें कुल भूक्षेत्र वर्गीकृत किया जाता है।

....

....

....

2) क्या भारत में भूमि उपयोग पर उपलब्ध प्रवृत्तियाँ फसल के लिए प्रयुक्त कुल भूमि क्षेत्रफल में ह्रास दिखाती हैं? क्या आप अकृष्य भूमि विकास में प्रगति का कोई संकेत देखते हैं ?

....

....

....

3) (क) चाय, काफी और रबर तथा (ख) नारियल तथा काजू की पैदावार के लिए किस किस्म की मृदा अधिक उपयुक्त है ? किस/किन राज्य/राज्यों में इस किस्म की मृदा पाई जाती है ? क्या लवणीय/ क्षारीय मृदा फसल उगाई के लिए उच्छी है ?

....

....

....

4) उन चार कारकों का उल्लेख कीजिए, जो मृदा अपरदन के लिए उत्तरदायी होते हैं। उनमें से मानवनिर्मित दो कारक कौन से हैं ?

....

....

....

....

2.4 भारत में फसल प्रतिरूप

फसल प्रतिरूप के बहुत आयाम हैं। हम यहाँ पर उसके दो मुख्य आयामों का विशेष रूप से उल्लेख करेंगे। इसे क्षेत्र/खेत में उगाई गई फसलों की संख्या के अनुसार देखा जा सकता है। इस परिप्रेक्ष्य से इसका संबंध अपनाई गई फसल प्रणाली से है। (अर्थात् एक फसल, बहुफसल आदि)। हम उपभाग 2.4.1 में इस पर अधिक विस्तार से चर्चा करेंगे। इसके एक अन्य संक्षिप्त विवरण में उगाई गई फसलों के प्रकार बताए गए हैं (अर्थात् चावल आधारित फसल प्रतिरूप मकई आधारित फसल प्रतिरूप आदि)। इसे भारत में आम प्रचलित फसल प्रतिरूप (मानसून के बाद की फसल) खरीफ फसल प्रतिरूप (मानसूनी फसल) के रूप में दो फसल प्रतिरूपों से जोड़ा गया है। इसके अधीन क्षेत्र के बोआई क्षेत्रफल के अधिकतम प्रतिशत में जो फसल पैदा की जाती है उसी के आधार पर फसल के प्रतिरूप का नाम रखा जाता है। अन्य बोई गई फसलों को स्थानापन्न फसलों के रूप में माना जाता है। इस आधार पर स्थानापन्न के अधीन रबी फसल प्रतिरूप को गेहूं/चना आधारित और ज्वार आधारित फसल प्रतिरूप में विभाजित किया जाता है। दूसरी ओर खरीफ फसल पैटर्न में उगाई गई/बोई गई आधार फसलें बहुत होती हैं, जैसे चावल आधारित, धान आधारित, मकई आधारित, ज्वार आधारित, बाजरा आधारित, मूंगफली आधारित, कपास आधारित आदि।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

2.4.1 फसल प्रतिरूप के प्रकार

एक फसल और बहुफसल : यदि वर्ष दर वर्ष भूमि के टुकड़े पर एक ही फसल उगाई जाती है इसे **एक फसल** प्रणाली कहा जाता है। ऐसी प्रथा या तो जलवायु की अत्यंत उपयुक्तता के कारण अपनाई जाती है या किसी की सामाजिक, आर्थिक दशा के कारण। यह फसल के उस खास प्रकार में उगाने में किसान की विशेषज्ञता के कारण भी हो सकता है। उदाहरण के लिए, नहर सिंचित क्षेत्रों में जलाक्रांति दशाओं में केवल धान बोया जा सकता है, क्योंकि ऐसी दशाओं कोई अन्य फसल बोना संभव नहीं है।

एक कलैंडर वर्ष में उसी भूमि के टुकड़े पर एक से अधिक फसल उगाने को बहु फसल प्रणाली कहा जाता है। इसलिए बहु फसल का अभिप्राय समय पर फसल की सघनता और स्थान का विस्तार है। अर्थात्, एक समय में एक फसल और किसी भी निर्धारित समय में उसी भूमि पर एक से अधिक फसलें। फसल प्रतिरूप की तीन किस्म, अर्थात्, अंतरा फसल मिश्रित फसल और अनुक्रम फसल, भी व्यवहार में लाई गई बहु फसल प्रणाली के ही अंतर्भेद हैं।

अंतरासस्यन का अर्थ निश्चित पंक्ति पद्धति से भूमि के एक ही खंड पर एक साथ एक से अधिक फसल उगाना है। इस रीति का अनुसरण कुछ स्पष्ट अनुपात जैसे 5 : 1 में किया जा सकता है जिसमें खास फसल प्रत्येक पांच पंक्तियों के साथ भिन्न प्रकार की फसल की एक पंक्ति होगी। यह प्रणाली स्थान के वितान पर अधिक फसल घनता दे सकती है। प्रारंभ में अंतरासस्यन प्रणाली फसल विफलता के बीमे के रूप प्रयोग की गई थी। अभी हाल ही में

इसका उद्देश्य बदल गया है, अब उत्पादन में स्थायित्व के अलावा अधिक उपज प्राप्त करना भी इसका उद्देश्य हो गया है।

अंतरासस्यन की सफलता के लिए कुछ शर्तों का पालन करना आवश्यक है। ये हैं : (i) भिन्न-भिन्न बोई गई फसलों में प्रकाश के लिए प्रतिस्पर्धा न्यूनतम होनी चाहिए; (ii) घटक फसलों की पोषण तत्त्वों की अधिकतम भाग का समय परस्परव्यापी नहीं होना चाहिए, और (iv) घटक फसलों की परिपक्वता में अंतर कम से कम 30 दिन का होना चाहिए।

मिश्र सस्यन (मिश्रित खेती) : मिश्र सस्यन का संबंध किसी निश्चित पंक्ति पैटर्न के बिना दो या दो से अधिक फसलें साथ-साथ उगाना है। यह रीति सबसे अधिक सामान्यतः शुष्क भू-क्षेत्रों में अपनाया जाता है। इस प्रणाली में भिन्न-भिन्न फसलों के बीजों को कुछ मात्रा में मिला कर बोया जाता है। उद्देश्य धान्य, दलहन और सब्जियों के लिए परिवार की आवश्यकता पूरी करना है।

अनुक्रम सस्यन : अनुक्रम सस्यन का संबंध फसल वर्ष में भूमि के उसी खंड पर अनुक्रम में एक से अधिक फसल उगाने से है, इस प्रणाली को फसलों के लिए दुहरा, तिहरा या चौहरा पैटर्न कहा जा सकता है, इसमें क्रमशः दो, तीन और चार फसलें शामिल होती हैं।

(अनुपद)/पेड़ी फसल : फसल की वह प्रणाली जिसमें पिछली फसल के उत्पाद की कटाई से पहले ही अगली फसल बोयी जाती है। पेड़ी (रतून) सस्यन का संबंध पिछली काटी हुई फसल की जड़ों या डंठलों से पुनर्जनन से फसल उगाने से है।

समाकलित कृषि प्रणाली : इसका संबंध भिन्न-भिन्न प्रकार के फसल पैटर्न अपनाते हुए पशुपालन के संबद्ध क्षेत्रों जैसे डेयरी, कुक्कट पालन, मत्स्यपालन, मधुमक्खी पालन आदि करने से है। सौहार्दपूर्ण तरीके का पालन करने पर बल दिया जाता है ताकि मृदा और पर्यावरण के कम से कम क्षति हो ध्यान रखते हुए संसाधनों के कुछ उपयोग से अधिकतम लाभ हो।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

2.4.2 फसल प्रतिरूप भिन्न क्यों होते हैं ?

क्षेत्रों में फसल पैटर्न भिन्न क्यों होते हैं ? इसका बुनियादी कारण यही है कि मौसम में एक स्थान से दूसरे स्थान पर वर्षा की औसत मात्रा बहुत अधिक भिन्न होती है। देश में कृष्य क्षेत्रफल को मोटेतौर पर तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है : (i) 1150 मिलिमीटर से अधिक वर्षा वाले क्षेत्र; (ii) 750–1250 मिमि. के बीच वर्षा वाले क्षेत्र; और (iii) 750 मिमी. से कम वर्षा पाने वाले क्षेत्र। असम, केरल, उड़ीसा और पश्चिम बंगाल के अधिकांश क्षेत्र पहले समूह में आते हैं। इन क्षेत्रों की बुनियादी समस्या सीमित सिंचाई और घटिया जल निकास है। इन क्षेत्रों में उगाई गई मुख्य फसल चावल है। तमिलनाडु, उत्तर प्रदेश और आंध्र प्रदेश दूसरी श्रेणी में आते हैं। इन क्षेत्रों में लघु और बड़ी सिचाई सुविधाएं स्थापित करने की पर्याप्त संभावना है। तीसरी श्रेणी के अंतर्गत आने वाले क्षेत्रों में, अपेक्षाकृत कम वर्षा के कारण फसल की सघनता सुधारने की कम संभावना होती है, इनमें आंध्रप्रदेश, कर्नाटक, महाराष्ट्र और राजस्थान के भाग शामिल हैं। किसी क्षेत्र में वर्षा में विविधता और सिचाई सुविधाओं के कारक के अलावा अन्य कारण जो फसल पैटर्न में अंतर के लिए योगदान करते हैं, निम्नलिखित हैं:

- परम्परागत सामाजिक प्रथाएं और दैनिक आहार।
- स्थानीय पारिस्थितिकी/पर्यावरण के अनुकूल साध्य रोग/कीट नियंत्रण प्रबंधन से फसल का बचाव की संभावना;

– फसलें, जो सर्वाधिक लाभकारी या उच्च उपज देती हैं जैसे वाणिज्यिक व्यावहारिता का विचार; और

– ऐसी फसलों का संयोजन जो स्थायित्व और जोखिम सुरक्षा देते हुए लाभ अधिकतमीकरण और लागत न्यूनतमीकरण सुनिश्चित करती हैं।

2.4.3 फसल प्रतिरूप को प्रभावित करने वाले कारक

विभिन्न कारक, जैसे किसानों की सामाजिक आर्थिक दशाएं, सांस्कृतिक कारक, जलवायु दशाएं आदि क्षेत्र में फसल प्रतिरूप निर्धारित या प्रभावित करते हैं। इस संबंध में मुख्य कारक निम्नलिखित हो सकते हैं।

i) **भूमि जोत का आकार** : इकाई की प्रस्तावना में उल्लिखित, भारत में छोटे और सीमांत किसान कृषि समुदाय का बहुत बड़ा भाग हैं। इस कारण से एक फसल प्रतिरूप बहुत अधिक प्रचलित है क्योंकि यह किसान के परिवार खाद्य आवश्यकताएं पूरी करता है। स्थिति ऐसी होती है कि वाणिज्यिक फसल की बहुत कम गुंजाइश रहती है।

ii) **साक्षरता** : फसल के लिए बेहतर तरीके अपनाने के लिए शिक्षा का कुछ स्तर प्राप्त करना आवश्यक है। यह भारत के संदर्भ में छोटे और सीमांत किसान समुदाय में अत्यधिक निरक्षरता के कारण है जो बड़ी संख्या में हैं। प्रौद्योगिकीय आदानों की आवश्यकता वाले मिश्र फसल प्रतिरूप में अंतर्निहित वैज्ञानिक तरीकों का प्रयोग में यह कारक (अर्थात् निरक्षरता) बड़ी बाधा है।

DIKSHANT IAS

iii) **वित्तीय आवश्यकता स्थायित्व** : बड़ी संख्या में किसानों की खराब आर्थिक दशा के कारण मध्यम से उच्च पूँजी आवश्यकता वाले फसल प्रतिरूप किसानों द्वारा नही अपनाए जा सकते। वे कम लागत के ऐसी फसल प्रतिरूप अपनाने के लिए विवश होते हैं जो कम उत्पाद और आय देते हैं।

Call us @7428092240

iv) **रोग/कीट प्रवर्धन/नियंत्रण** : यह ऊपर उल्लिखित छोटे किसानों की वित्तीय और शैक्षिक स्थिति के कारकों को जोड़ देता है। इसके कारण किसान आधुनिक रोग/कीट नियंत्रण उपाय नही अपना सकते।

v) **पारिस्थितिक उपयुक्तता** : क्षेत्र का फसल प्रतिरूप फसलों के लिए पारिस्थितिक उपयुक्तता पर अत्यधिक निर्भर करता है। स्थानीय पारिस्थितिक कारकों के अनुकूल फसल प्रतिरूप अपनाने में मृदा परीक्षण और प्रचलित दशाओं के लिए अपेक्षित आदानों के प्रयोग की आवश्यकता होगी। एक बार फिर सामाजिक/ आर्थिक हैसियत प्राकृतिक दशा के इस स्वरूप का सामना करने में बाधक कारक होता है।

vi) **आर्द्रता उपलब्धता** : यह क्षेत्र में जलवायु संबंधी कारक अर्थात् वर्षा से जुड़ा है। इसका सामना करने के लिए आधुनिक सिंचाई सुविधाएं आवश्यक हैं। इस सभी के लिए कुछ स्तर की जानकारी और आर्थिक आधार आवश्यक हैं जो भारत में श्रेष्ठतम कृषि प्रथाएं अपनाने के लिए सहायक नहीं हैं।

ऊपर गिनाए गए विभिन्न कारक अनिवार्यतः एक दूसरे के प्रतिकूल प्रभावकारी प्रभावों से आपस में जुड़े हुए है। फिर भी उभरती हुई प्रवृत्तियों का बहुत बड़ा वर्ग उसी प्रकार की असमर्थता से लगातार पीड़ित होने के बावजूद इन जमीनी वास्तविकताओं में सुधार दिखाता है। अब हम अगले भाग में इन प्रवृत्तियों पर विचार करेंगे।

2.4.4 फसल प्रतिरूप में उभरती हुई प्रवृत्तियाँ

भारत कृषि उत्पादन में विश्व का नेतृत्व करता है, समग्र कृषि उत्पादन में इसका दूसरा स्थान है। फिर भी, भारत में फसल प्रतिरूप की प्रमुखता जारी रखने की प्रवृत्तियाँ कुछ चिंताजनक हैं। ये निम्न प्रकार हो सकती हैं :

– सभी प्रकार के कृषि उत्पादन में (जैसे खाद्यान्न, धान्य, दलहन, फल और सब्जियाँ आदि) में धान्य फसलों की प्रमुखता है। चूंकि धान्य गरीब लोगों की बुनियादी आवश्यकताएं बताता है इसलिए यह निर्वाही कृषि में लगे हुए गरीब लोगों की विशाल संख्या को दर्शाता है। चूंकि अधिकांश किसान ''छोटे और सीमांत किसान'' होते हैं, (अर्थात् जिनकी जोत 0–5 एकड़ के बीच होती है) गरीब लोगों में स्वयं अपने उपयोग के लिए कृषि कार्यों में लगे रहने की प्रवृत्ति प्रमुख होती है। यही वास्तविकता यह भी सूचित करती है कि खाद्य से भिन्न नकदी फसलों की ओर जाने, जिसके लिए अधिक मात्रा में निवेश की आवश्यकता में वे असमर्थ हैं।

यद्यपि कृषि ऋण और अनुदान की आपूर्ति में वृद्धि हुई है, फिर भी बुनियादी प्रवृत्ति अभी भी चिंताजनक बनी हुई है।

– दूसरे, कुछ समय से कृषि उत्पादकता में सुधार के बावजूद, यह अभी भी विश्वव्यापी स्तर से काफी नीचे है, अनेक अध्ययनों से प्रकट हुआ है कि भारत में माध्य कृषि उत्पाद विश्व में अधिकतम औसत उत्पाद का केवल 30–50 प्रतिशत है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

– निम्न उत्पादकता स्तर भी रोजगार और जी डी पी के अनुपात द्वारा रेखांकित किया गया है। जबकि लगभग 500 मिलियन व्यक्तियों का अनुमानित कुल श्रमिक बल का 50 प्रतिशत से अधिक कृषि में बना रहता है, कृषि उत्पादन का जी डी पी में निवल योगदान लगभग 15 प्रतिशत है। यद्यपि यह उल्लेखनीय है कि कृषि पर लोगों की निर्भरता नीचे आई है। (यह स्वतंत्रता के समय लगभग 70 प्रतिशत के स्तर से घटकर अब लगभग 50 प्रतिशत है) किंतु यह अभी भी विकसित देशों में तद्नुरूपी स्तर से काफी ऊंची है। वहां तो श्रमिक बल का लगभग 5 प्रतिशत से भी कम अंश भारत के औसत उत्पादन स्तरों की तुलना में काफी अधिक उत्पादन करता है। प्रवृत्ति, छोटे किसानों के सामाजिक-आर्थिक परिस्थिति में निम्न स्तर के कारण वैज्ञानिक प्रगति का कम प्रयोग दर्शाती है।

  खाद्यान्न उत्पादन से नकदी फसल, जैसे फल और सब्जियों के उत्पादन की ओर स्पष्ट परिवर्तन दिखाई दे रहा है। (आज भारत कुछ फलों, जैसे पपीता, सपोटा, केला आदि के उत्पादन में विश्व में प्रथम स्थान पर है) यही नहीं, फलों के विश्व उत्पादन का लगभग 10 प्रतिशत भारत में ही हो रहा है। इसके बावजूद उच्च कीमत वाणिज्यिक फसलों की ओर परिवर्तन विश्वव्यापी वाणिज्यिक मानकों के अनुसार अभी भी बहुत कम है। परिणामस्वरूप विश्वव्यापी फसल उत्पादन पर और उसमें भारत के समग्र शेयर पर प्रभाव बहुत ही महत्त्वहीन रहता है।

– भारत की जनसंख्या गेहूं और चावल उत्पादन करने की उसकी क्षमता की तुलना में तेज गति से बढ़ रही है। यदि अन्य देशों से इन चीजों का आयात कम किया जाता है तो इस प्रवृत्ति को उलटने और सुधारने की आवश्यकता है।

2.4.5 फसल प्रतिरूप में वर्तमान प्रवृत्तियों के दूरगामी प्रभाव

वर्तमान फसल प्रतिरूप के दूरगामी प्रभाव निम्न प्रकार कहे जा सकते हैं :

उर्वरकों और कीटनाशी दवाओं का अत्यधिक प्रयोग : अजैविक उर्वरकों और कीटनाशी दवाओं का अत्यधिक प्रयोग से कृषि उत्पादों में विषाक्तता बहुत बढ़ जाती है। रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशी दवाओं के भारी प्रयोग से व्यापक जल और पर्यावरण संबंधी प्रदूषण भी हुआ है। इसके फलस्वरूप समुदाय में बहुत सी स्वास्थ्य समस्याएं होती हैं। इसके साथ कीटों में प्रतिरक्षा क्षमता में वृद्धि हुई है और इससे प्रयुक्त कीटनाशी दवाएँ अप्रभावी हो रही हैं।

संकर और उच्च पैदावार वाली किस्में

संकर और उच्च पैदावार वाली किस्मों के अत्यधिक प्रयोग के फलस्वरूप स्थानीय किस्में लुप्त हुई हैं जो अपने पोषक स्तरों के लिए जानी जाती थीं। इससे प्राकृतिक और जैविक खेती की तकनीक अपनाने के महत्त्व पर जागरूकता बढ़ी है। परन्तु इन प्रणालियों के प्रयोग का स्तर ऊँचा उठेगा तभी ये सारी व्यवस्था में महत्त्वपूर्ण योगदान दे पाएंगी। यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि ये ही तरीके तब भी थे और इन्होंने हरित क्रांति के लाभ प्राप्त करने में योगदान किया था। परम्परागत प्रथाओं और आधुनिक तरीकों के बीच संतुलन स्थापित करना आवश्यक है।

जल की बढ़ी मांग : यह अनुमान लगाया गया है कि कुल प्रयुक्त जल का लगभग 70 प्रतिशत पानी कृषि सेक्टर लेता है। इसके अलावा, बढ़ी हुई फसल सघनता से कृषि के लिए जल की आवश्यकता भी बढ़ी है। इससे अन्य प्रतिस्पर्धी सेक्टरों को पानी की मांग पूरी नहीं हो पा रही है। पानी के अधिक उपयोग से भौमजल का स्तर नीचे गिरा है। बढ़ी हुई सिंचाई सुविधाओं के परिणामस्वरूप बहुत से छोटी और बड़ी सिंचाई परियोजनाएं आरंभ करनी पड़ी हैं। प्रायः इन परियोजनाओं ने सामाजिक और पर्यावरण संबंधी बाधाएं उत्पन्न की हैं। यह प्रवृत्ति बढ़ रही है कि गैर-कृषि प्रयोजनों के लिए कृषि भूमि अधिग्रहण की जाती है। यद्यपि इस प्रवृत्ति पर स्वतः प्रश्न नहीं उठाया जा सकता, क्योंकि, श्रमिक की खपत और कृषि की उत्पादकता स्तर की तुलना में उद्योग के इन स्तरों से नहीं की जा सकती। हां, जल संरक्षण तरीकों और रीतियों का अपनाना भी आवश्यक है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

वन क्षेत्र का अवक्षय : उच्चतर फसल सघनता एक दूरगामी आशंकित प्रभाव वन क्षेत्र का ह्रास था (जो पारिस्थितिकीय संतुलन बनाए रखने के लिए महत्त्वपूर्ण हैं)। फिर भी, हमने उपभाग 2.2.2 में नोट किया कि वनीकरण के उपयोग ने सामान्यतः देश में न केवल समग्र वन आवरण बनाए रखने, बल्कि सुधारने में भी योगदान किया है। फिर भी निश्चित क्षेत्रों और स्थानों में पारिस्थितिक मानकों का असंतुलन बढ़े हुए फसल उत्पादन और अन्य गैर-कृषि कार्यों के उच्चतर स्तर के कारण एक वास्तविकता बन गया है। चिंता के इस मामले का समाधान स्थानीय स्तर पर होना आवश्यक है।

संक्षेप में, दीर्घकालिक चिंता के क्षेत्रों के रूप में उपर्युक्त निर्धारित कारकों में से प्रत्येक दोधारी प्रभावशाली साधन हैं जिनके उपयोगी और हानिकर दोनों प्रभाव हैं। आज एक प्रभावी विकास चुनौती यही है कि उन साधनों के सकारात्मक प्रभावों से बचते हुए उनका लाभ कैसे उठाया जाए।

2.5 चुनिंदा फसल उत्पादन पर विश्व में भारत की स्थिति

विश्व में भारत भैंस के दूध के उत्पादन में पहले स्थान पर है। कई अन्य उत्पाद हैं जिनमें भारत का स्थान विश्व में अपने उत्पादन में पहला है (जैसे ताजे फल, धनिया, नीबू, काजू, सूखी मिर्च और कालीमिर्च, अदरक, हल्दी, जूट, गर्म मसाले, दलहन, एरंड का तेल, ज्वार, बाजरा आदि (मिलेट), कुसुम बीज, खट्टा नीबू, बकरी का दूध आदि)। हम धान (चावल) के उत्पादन में विश्व में दूसरे स्थान पर हैं। 2008 में लगभग 148 मिलियन टन समग्र उत्पादन हुआ था। अन्य वस्तुओं, जिनमें विश्व में भारत दूसरे सबसे बड़े उत्पादक के रूप में उभरा है, वे हैं गेहूं, गाय का दूध, ताजी सब्जियां, बिनौला, बैंगन, लहसुन, रेशम, इलायची, प्याज, गन्ना, सूखी सेम, हरी मटर, कद्दू, आलू, स्थलीय मछली आदि। कई उत्पादों, जिनमें भारत विश्व बाजार में तीसरे स्थान पर है, उनमें शामिल है : ज्वार, तंबाकू, नारियल, तोरियाबीज, टमाटर, मुर्गी के अंडे आदि। काफी उत्पादन में भारत का स्थान विश्व में छठा है। इसलिए पिछले भागों में सामान्यतया सामने आने वाली चुनौतियों के रूप में साथ-साथ कार्य करते हुए भारतीय कृषि की विभिन्न विशेषताओं का उल्लेख करने के बाद यह जानना भी समान रूप से महत्त्वपूर्ण है कि कृषि के बहुत से उत्पादों में हम भी विश्व नेताओं में है।

बोध प्रश्न 2

लगभग 50 शब्दों में उत्तर दीजिए।

1) फसल प्रतिरूप के संदर्भ में प्रतिस्थानी फसल से आधार फसल किस प्रकार भिन्न है ?

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

....

....

2) ''बहु फसल'' व्यवस्था के तीन प्रकार भेदों का उल्लेख कीजिए। ''समाकलित कृषि प्रणाली'' का क्या अभिप्राय है?

....

....

....

....

3) वर्षा के अलावा फसल प्रतिरूप में अंतर के लिए कौन से अन्य कारकों का योगदान होता है।

....

....

....

....

4) किन्हीं पांच कारकों का उल्लेख कीजिए जो भारत में फसल प्रतिरूप को प्रभावित करते हैं ?

....

....

....

....

5) वह कौन सा कारक है जो फसल प्रतिरूप को प्रभावित करता है और जिसका सामना आधुनिक सिंचाई सुविधाओं द्वारा किया जा सकता है।

....

....

....

....

2.6 सारांश

इस इकाई में भारत में भूमि उपयोग और फसल प्रतिरूप दो विषयों पर चर्चा की गई है। हमने भूमि के सामान्य वर्गीकरण से प्रारंभ किया। ये आठ उपयोगों में वर्गीकृत किए गए हैं। हमने नोट किया है कि कृषि प्रयोग के लिए भूमि 1950 से 2008 तक शीर्ष स्थान पर रही है। यह प्रवृत्ति सुरक्षित वनों के अवक्षय या स्थायी चारागाह और चराई की कीमत पर नहीं रही है जो समग्र पारिस्थितिक संतुलन बनाए रखने के लिए महत्त्वपूर्ण है। वास्तव में, इन दोनों प्रयोजनों के लिए उपलब्ध भू-क्षेत्र, इस दौरान बढ़ा है। यह तथ्य हमें बताता है कि प्रारंभ किए गए अन्य उपायों का (जैसे वनीकरण, सामान्य जागरूकता अभियान आदि) देश में भूमि उपयोग प्रतिरूप पर सकारात्मक प्रभाव रहा है। यद्यपि भिन्न-भिन्न प्रकार के फसल प्रतिरूप प्रयोग किए जाते हैं, फिर भी समस्या के कुछ संवेदनशील क्षेत्रों, (जैसे छोटी जोत, निम्न साक्षरता स्तर, आर्थिक क्षमता बढ़ाना आदि) पर ध्यान केंद्रित करना अवश्यक है। ये सभी फसल रीति में वैज्ञानिक तरीकों के प्रयोग के अपेक्षाकृत निम्न स्तर के कारण हैं। कृषि में बाधा डालने वाली कई कमियों के बावजूद बहुत से कृषि उत्पादों में भारत की गणना विश्व-नेताओं में की जाती है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

2.7 शब्दावली

फसल की सघनता : निवल फसल क्षेत्रफल से सकल फसल क्षेत्रफल का अनुपात

निवल बोया गया क्षेत्रफल : निवल फसल क्षेत्रफल के भांति इसे निम्न समीकरण के रूप में व्यक्त किया जा सकता है निवल बोया गया क्षेत्रफल = सकल बोया गया क्षेत्रफल (पड़ती भूमि + खेती योग्य बंजर) + K गुना (एक से अधिक बार फसल का क्षेत्रफल); जहाँ K वह संख्या है जितनी बार खेती के लिए भूमिका टुकड़ा प्रयुक्त किया गया है।

छोटे/सीमांत किसान : यह शब्द साधारणतया भारत के संदर्भ में प्रयुक्त किया जाता है। यह 2.5 हेक्टयर (1 हैक्टेयर = 2.5 एकड़) से कम भूमि जोत वाले किसानों के लिए प्रयुक्त किया जाता है। छोटा किसान उसे कहा जाता है जिसके पास 2 एकड़ से कम भूमि है

जबकि एक एकड़ से कम भूमि वाले को सीमांत किसान कहा जाता है। भारतीय रिजर्व बैंक ने प्राथमिकता के आधार पर ऋण देने के प्रयोजन के लिए (प्राथमिकता सेक्टर में कमजोर वर्गों में) ''छोटे और सीमांत किसान'' उन्हें परिभाषित किया है जिनके पास 5 एकड़ से कम असिंचित भूमि या 2.5 एकड़ सिंचित भूमि और भूमिहीन श्रमिक, पट्टेदार किसान और बटाईदार', परिभाषित किया है। उन्हें अनिवार्यतः अपनी खेती के कार्यों पर रहना पड़ता है क्योंकि उनके पास अन्य उपयुक्त विकल्प नहीं होता है। गरीब होने के कारण, वे अपने उपयोग के लिए फसल पैदा करते हैं, इसलिए ''जीवन निर्वाह खेती या किसान'' शब्दों का प्रयोग भी इनके लिए होता है। चूंकि वे संख्या में बहुत हैं और खेती के आधुनिक नए तरीके अपनाने के लिए (साक्षरता के निम्न स्तर और आधुनिक तरीके को काम ले लाने के लिए अपेक्षित निवेश के अभाव जैसे कारणों के कारण), अपनी उत्पादकता और आय के स्तर बढ़ाने के लिए उनकी योग्यता नीति की मुख्य चुनौती है। प्रमुख रूप से पुराने कानूनों को बदलना भूमि सुधार में कहा जाता है, इस संबंध में इसकी बहुत आवश्यकता की वकालत की गई है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

लवणता/क्षारीयता : इसका संबंध लवण की उस मात्रा से है जो पानी/मृदा को खारा बनाता है। जब ऐसी मृदा गर्म सूर्य किरणों के संपर्क में आती है, परिणाम में रासायनिक प्रतिक्रिया होती है जिससे स्वरूप में मृदा क्षारीय हो जाती है। ऐसी मृदा खेती के कार्यों के लिए सबसे अधिक अनुपयुक्त होती है।

2.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Chadha G K , S. Sen and H. R. Sharma (2004): *Land Resources , State of Indian Farmer: A Millennium Study*, Vol. 2, Academic Publishers, New Delhi.

Govt. of India (2001): Report of the Working Group on Agricultural Statistics (for the X Five Year Plan), Planning Commission, New Delhi.

(http://planningcommission.nic.in/aboutus/committee/wrkgrp/wgagristat.pdf)

Rajiv Ranjan Shrivastava (2007): *Emerging Trends of Cropping Pattern in India*, DK Publishers, New Delhi.

2.9 बोध प्रश्नों के उत्तर/संकेत

1) उपभाग 2.2.2 देखिए और उत्तर दीजिए।

2) उपभाग 2.2.2 देखिए और उत्तर दीजिए।

3) उपभाग 2.3.1 देखिए और उत्तर दीजिए।

4) उपभाग 2.3.2 देखिए और उत्तर दीजिए।

बोध प्रश्न 2

1) भाग 2.4 देखिए और उत्तर दीजिए।

2) उपभाग 2.4.1 देखिए और उत्तर दीजिए।

3) उपभाग 2.4.2 देखिए और उत्तर दीजिए।

4) उपभाग 2.4.3 देखिए और उत्तर दीजिए।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इकाई 3 जल और सिचाई संसाधन

संरचना

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 भारत में जल संसाधन

3.2.1 प्रयोज्य जल संसाधन क्षमता

3.3 जल संसाधनों के प्रबंधन से संबंधित मुद्दे

3.3.1 बाढ़ और बाढ़ नियंत्रण

3.3.2 जलाक्रांति

3.3.3 जल की धारणीयता

3.3.4 बहु एजेंसियों के बीच समन्वय का अभाव

3.3.5 नदियों को आपस में जोड़कर अंतःजल क्षेत्र अंतरण

3.3.6 जल संघर्ष

3.3.7 अंतर्राज्यीय नदी विवाद

3.3.8 अंतर्देशीय जल समस्याएं

3.4 भारत में सिंचाई

3.4.1 सिंचाई के प्रकार

3.4.2 सिंचाई के स्रोत

3.4.3 चरम सिंचाई क्षमता (UIP)

3.5 पंचवर्षीय योजनाओं के अधीन सिंचाई की प्रगति

3.6 सिंचाई प्रणालियों की वित्तीय व्यवहार्यता

3.7 प्रणालीबद्ध सिंचाई सुधारों की आवश्यकता

3.8 राष्ट्रीय जल नीति की आवश्यकता

3.9 सारांश

3.10 शब्दावली

3.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

3.12 बोध प्रश्नों के उत्तर/संकेत

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

3.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप :

- जल संसाधनों से संबंधित मुद्दों की पहचान कर सकेंगे;
- भारत की कृषि में सिंचाई की आवश्यकता समझ सकेंगे;
- भारत में काम में लाए गए सिंचाई के विभिन्न तरीकों पर चर्चा कर सकेंगे;

- बड़ी, मझोली और लघु सिंचाई परियोजनाओं के गुणात्मक विश्लेषण कर सकेंगे;
- प्रयोज्य और चरम सिंचाई क्षमता की तुलना कर सकेंगे;
- भारत में जल और सिंचाई सेवाओं, के प्रशासन में लगी हुई विभिन्न एजेंसियों/प्राधिकरणों का उल्लेख कर सकेंगे; और
- नदियों को आपसे जोड़ने के महत्त्व बता सकेंगे और उस पर चर्चा कर सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना

मानवीय परिप्रेक्ष्य से जल बहु उपयोगी वस्तुओं में से एक है जो (i) जीवन बुनियादी आवश्यकता, और अधिकार है, सुखसाधन और सफाई अभिकर्ता है, (ii) सामाजिक कल्याण अर्थात् अग्निशमन, अस्पताल के प्रयोग आदि) के लिए, (iii) आर्थिक कार्यकलाप के लिए आवश्यकता होती है (कृषि, उद्योग आदि के लिए) है, (v) हमारी सामाजिक राजनीतिक और सांस्कृतिक जीवन का अंग है और (vi) पवित्र पदार्थ है। साथ ही जल एक साथ ही स्थानीय संसाधन, राज्य संसाधन, राष्ट्रीय संसाधन और क्षेत्रीय संसाधन है। कृषि प्रधान देश होने के कारण भारत को खेतों की सिंचाई के लिए बहुत बड़ी मात्रा में पानी की आवश्यकता होती है क्योंकि मानसून विश्वसनीय जल स्रोत नहीं हैं। इस प्रकार जल एक साथ ही संसाधन, पण्यवस्तु, आधारभूत अधिकार है। संस्कृति निरूपणकर्ता के साथ-साथ इसका भू-राजनीति स्वरूप भी है।

भारत का क्षेत्रफल विश्व के कुल क्षेत्रफल का केवल 4 प्रतिशत है, जबकि इसकी जनसंख्या विश्व की जनसंख्या का 16 प्रतिशत है। परन्तु इसके पास कुल उपलब्ध स्वच्छ जल आपूर्ति का केवल 4 प्रतिशत है। इससे जल संरक्षण, विकास और इष्टतम प्रयोग की आवश्यकता सहज ही प्रतिपादित हो जाती है। भाग्यवश मैक्रो स्तर पर भारत में जल की कमी नहीं है। परन्तु समस्या उसके प्रबंधन में निहित है। इस समस्या की विकरालता आठवीं पंच वर्षीय योजना में किए गए निम्नलिखित प्रेक्षणों द्वारा आंकी जा सकती है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

i) शायद ही होई ऐसा शहर हो जो 24 घंटे पेयजल प्राप्त करता हो;

ii) बहुत ग्रामीण बस्तियों में, जिन्हें पेयजल योजना के अंतर्गत लाया गया है, अब पुनः पेयजल में आर्सेनिक (शंखिया), नाइट्रेट, और फ्लोराइड की मात्रा पाई जा रही है जो स्वास्थ्य के लिए गंभीर खतरा है;

iii) बहुत भागों में अति दोहन से भौमजल स्तर बहुत तेजी से घट रहा है। यह उन किसानों पर अतिरिक्त वित्तीय भार डाल रहा है जो अपने कुंओं को अधिक गहरा करना चाहते हैं और अपने पम्पसेटों को बदलना चाहते हैं। राज्य सरकारों के लिए बिजली आपूर्ति पर साहाय्य का भार बढ़ रहा है;

iv) बहुत सी बड़ी और मध्यम सिंचाई (MMI) परियोजनाएं पूरी होने का नाम ही नहीं ले रही हैं। वे बहुत भारी लागत और अतिरिक्त अवधि का भार लिए एक योजना से दूसरी योजना में घिसटती जा रही हैं;

v) रखरखाव की कमी के कारण प्रतिस्थापित प्रणालियों की क्षमता का ह्रास हो रहा है;

vi) सकल सिंचित क्षेत्रफल सिंचाई में निवेश के अनुसार नहीं बढ़ रहा है। निर्मित क्षमता और वास्तविक सिंचित क्षेत्रफल के बीच अंतर बहुत बना रहता है;

vii) देश के बहुत भागों में बाढ़ एक आवर्ती समस्या है। जलग्रहण क्षेत्र की कोटि निम्नीकरण और शहरी विकास और कृषि के लिए जल फैलाव मैदानों के प्रयोग से बाढ़ों की तीव्रता में वृद्धि हुई है;

viii) हमारी नदियों और झीलों में जल की गुणवत्ता पीने के लिए दूर की बात है, स्नान करने लायक भी नहीं है। कस्बों और शहरों से अनुपचारित या आंशिक रूप से उपचारित अब जल और अनुपचारित या अपर्याप्त रूप में उपचारित औद्योगिक बहिःस्राव को नदियों में छोड़ा जाता है जिससे वे प्रदूषित हो रही हैं;

ix) प्रदूषित जलाशय भी भौमजल को संदूषित करते हैं; और

x) जल की गुणवत्ता, धारा के उपरि क्षेत्र बनाम अनुप्रवाह क्षेत्र के उपभोक्ताओं के जल पर अधिकार के बारे में जल विवाद, भौमजल का औद्योगिक प्रयोग और भौमजल स्तर आदि।

3.2 भारत में जल संसाधन

जल संसाधनों को दो मुख्य स्रोतों में वर्गीकृत किया जाता है, अर्थात् (i) पृष्ठीय जल और (ii) भौमजल। उनकी माप की इकाई विलियन घन मीटर (bcm) है। वर्षा से पानी विशाल मात्रा में मिलता है जो बरबाद चला जाता है। इसके अलावा, उपलब्ध जल भी पूरी तरह से प्रयुक्त नहीं किया जाता है। क्योंकि उपयोगिता तो उसके भंडारण और प्रयोग के अपेक्षित स्थानों पर आपूर्ति पर निर्भर है। इस संदर्भ में "प्रयोज्य जल संसाधन क्षमता" को उपलब्ध जल स्रोत से पृथक करना आवश्यक है। हम भलीभांति जानते हैं (और साथ में इकाई में पढ़ेंगे) भारत के ऐसे भाग हैं जहां बाढ़ की पुनरावृत्तिक स्थिति होती है। वैसे ही, अन्य ऐसे भाग हैं, जहां जल एक स्थान पर एकत्र किया जाता है और तब उन स्थानों पर नहर से पहुंचाया जाता है जहां समय-समय पर गंभीर सूखा पड़ता है। इसलिए जब तक एक स्थान पर उपलब्ध अतिरिक्त जल एकत्र कर उसे ऐसे स्थान पर नहर से नहीं ले जाया जाता है जहां यह दुर्लभ है, तब तक उपलब्ध जल संसाधनों का भरपूर प्रयोग नहीं हो पाएगा। इसलिए आइए, हम भारत में उपलब्ध/प्रयोज्य जल पर विचार करें।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

3.2.1 प्रयोज्य जल संसाधन क्षमता

तालिका 3.1 में भारत में उपलब्ध और प्रयोग योग्य जल संसाधनों का सार दिखाया गया है। पृष्ठीय जल की कुल उपलब्धता का अनुमान 1953 bcm लगाया गया है जिसमें से केवल 35 प्रतिशत का उपयोग किया जाता है। परन्तु भौमजल की कुल उपलब्धता (अनुमानतः 432 bcm) में से लगभग 92 प्रतिशत का (काफी अधिक) उपयोग होता है। इस प्रकार यह परिदृश्य पृष्ठीय जल क्षमता की तुलना में भौमजल क्षमता का बहुत अधिक उपयोग होने का सूचक है। यदि जल संसाधनों के दोनों स्रोतों को लें तो वर्तमान उपयोग का प्रतिशत लगभग 46 प्रतिशत है। पृष्ठीय जल संभावना को एकत्र करने और नहर से (या परिवहन) ले जाने के लिए अपेक्षित आधारभूत संरचना के निर्माण की अपर्याप्त उपलब्धि के कारण भौमजल क्षमता की निकासी बहुत अधिक है। इसलिए स्पष्टतः उपलब्ध पृष्ठीय जल क्षमता को काम में लाने पर ध्यान केंद्रित करना आवश्यक है, (जिसके लिए अपेक्षित भंडारण क्षमता निर्माण करना आवश्यक है) प्रयोग जल की कुल उपलब्धता का अनुमान 1086 bcm लगाया गया है जो 2050 तक 1180 bcm की अनुमानित कुल जल की अनुमानित आवश्यकता से कम है। इस स्थिति में जल संरक्षण और प्रबंधन उपायों का गंभीरतापूर्वक अनुसरण करना

आवश्यक है। जबकि यह जल की उपलब्धता/उपयोग की संक्षिप्त विवरण है, इसके उपयोग पर विचार करने का दूसरा तरीका उसकी क्षेत्रीय मांग/आवश्यकता के आधार पर है।

तालिका 3.1: भारत में जल संसाधन की उपलब्धता

(उपलब्धता/उपयोग क्षमता, जल की मात्रा सभी आंकड़े bcm में हैं।)

उपलब्धता/प्रयोजन क्षमता के अनुसार जलस्रोत	मात्रा/क्षमता
उपलब्ध पृष्ठीय जल	1953
प्रयोज्य पृष्ठीय जल	690 (35.3)
उपलब्ध भौमजल	432
प्रयोज्य भौमजल	396 (91.7)
कुल उपलब्ध जल (पृष्ठीय + भौम)	2385
कुल प्रयोग जल (पृष्ठीय + भौम)	1086 (45.5)
प्रयोग की अनुमानित वर्तमान मात्रा	600
वर्ष 2050 में अनुमानित कुल जल आवश्यकता	973/1180 (निम्न/उच्च मान)
भारतीय भू-संहति पर वर्षा	4000

DIKSHANT IAS

स्रोत : राष्ट्रीय सिंचित जल संसाधन विकास आयोग

Call us @7428092240

नोट : कोष्ठकों के आंकड़े संबंधित योग का प्रतिशत हैं।

तालिका 3.2: प्रयोग के क्षेत्रानुसार अनुमानित जल मांग – 2010 से 2050

सैक्टर	वर्ष में जल की मांग (bcm में)		
	2010	2025	2050
सिंचाई	688 (84.6)	910 (83.2)	1072 (74.1)
पेयजल	56 (6.9)	73 (6.7)	102 (7.0)
उद्योग	12 (1.5)	23 (2.1)	63 (4.4)
ऊर्जा	5 (0.6)	15 (1.4)	130 (9.0)
अन्य	52 (6.4)	72 (6.6)	80 (5.5)
जोड़	**813 (100.0)**	**1093 (100.3)**	**1447 (100.0)**

स्रोत : ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना

भारत में जल के लिए क्षेत्रानुसार मांग पर ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना (2007–12) में सिंचाई के लिए (वर्ष 2025 तक) लगभग 83 प्रतिशत की उच्चतम मांग रखी गई है। जबकि पेयजल

के लिए मांग मोटे तौर पर वैसी रहने की आशा की गई है। (2010 से 2050 की अवधि में कुल मांग का लगभग 7 प्रतिशत) "ऊर्जा सेक्टर" और "औद्योगिक सेक्टर" को वर्ष 2050 तक उसकी वर्तमान और अनुमानित मांग की तुलना में) अधिक की आवश्यकता होगी। स्पष्ट है कि जीवन स्तर में सुधारों और बढ़ती हुई जनसंख्या से इन दो सेक्टरों (अर्थात्) ऊर्जा और उद्योग) से जल की मांग अधिक होगी।

चिंता के क्षेत्र इन सेक्टरों के समानांतर वे क्षेत्र हैं जो प्रदूषण स्तर बढ़ा रहे हैं और परिमाणतः जल संसाधनों की गुणवत्ता घटा रहे हैं। इसलिए ये भी ऐसे संवेदनशील क्षेत्र हैं जिन पर उच्च नीति और अनुसंधान की आवश्यकता है।

बोध प्रश्न 1

लगभग 50 शब्दों में उत्तर दीजिए।

1) जल संसाधनों का अध्ययन करना क्यों आवश्यक है? किन्ही तीन बिंदुओं का उल्लेख कीजिए।

....

....

....

....

2) जल के दो प्रमुख स्रोत क्या हैं? इन दो मुख्य स्रोतों में किसका अति दोहन किया गया है?

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

....

....

3) प्रयोज्य जल संसाधनों और संभावित जल उपलब्धता के बीच अंतर बताइए?

....

....

....

....

4) आगामी दशाब्दियों में जल आपूर्ति के उच्चतर शेयर की आवश्यकता किन दो सेक्टरों को होगी?

....

....

....

....

3.3 जल संसाधनों के प्रबंधन से संबंधित मुद्दे

बाढ़ नियंत्रण, जल प्लावन, जल की गुणवत्ता और औद्योगिक कार्यों के कारण जल प्रदूषण आदि जल प्रबंधन की कुछ समस्याओं का उल्लेख अनुवर्ती दो उपभागों में किया गया है। हम भारतीय कृषि में लिए सिंचाई के महत्त्व के बारे में अध्ययन करने से पहले इस भाग में इन मुद्दों पर कुछ अधिक विस्तार से चर्चा करेंगे।

3.3.1 बाढ़ और बाढ़ नियंत्रण

प्रत्येक वर्ष देश के कोई न कोई भाग बाढ़ग्रस्त होते रहते हैं। हाल में, बाढ़ों की विकरालता और गंभीरता बढ़ रही है। ग्यारहवीं योजना ने *बाढ़ निवारण, संरक्षण और नियंत्रण पर बल दिया है*। इसके अधीन बाढ़ नियंत्रण कार्यक्रम नाम का एक पृथक राज्य सेक्टर कार्यक्रम में 8,000 करोड़ रुपये की अनुमानित लागत से प्रारंभ किया गया है। बाढ़ों के प्रभावकारी नियंत्रण के लिए एक बहुमुखी दृष्टिकोण अपनाया गया है जिसमें निवारण, संरक्षण, नियंत्रण, पूर्वानुमान और पूर्व चेतावनी जैसे आवश्यक उपाय शामिल किए गए हैं। नदियों के जलग्रहण क्षेत्र के जल विभाजक प्रबंधन द्वारा बाढ़ रोकी जा सकती है या उनकी विकरालता कम की जा सकती है। नेपाल, भूटान और भारत के पर्वतीय क्षेत्र से निकलने वाली नदियों के पर्वतीय जलग्रहणों में जल विभाजक प्रबंध विशिष्ट रूप से चुना जाना चाहिए और संयुक्त प्रक्रिया के माध्यम से क्रियान्वयन किया जाना चाहिए। *बाढ़ नियंत्रण के लिए आदर्श समाधान बाढ़ प्रवण नदी प्रणालियों में पर्याप्त भंडारों का निर्माण है*। गंगा और उसकी सहायक नदियों के लिए उत्तर में तथा ब्रह्मपुत्र और उसकी सहायक नदियों के लिए उत्तर पूर्व में भंडारण जलाशयों का निर्माण करना आवश्यक है। इन भंडारण परियोजनाओं का अन्वेषण, डिजाइन और निष्पादन शीघ्रता से किए जाने की जरूरत है। गंगा की उत्तरी सहायक नदियों के लिए नेपाल से सहयोग आवश्यक होगा। विचार विनिमय तथ्यात्मक दृष्टि से रचनात्मक और दूरदर्शितापूर्ण होना चाहिए। तटबंधों द्वारा बाढ़ नियंत्रण की रणनीति राज्यों द्वारा कुछ सालों से अपनायी जा रही है। परन्तु इसके सीमित परिणाम हुए हैं। पूरी सहायक नदी या सहायक नदी के विशाल क्षेत्र को ध्यान में रखना आवश्यक है। जहां कहीं व्यावधान हो, बाढ़ संरक्षण परियोजना के लिए एक बार का निर्णायक निवेश किया जाना चाहिए।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बाढ़ नियंत्रण योजनाओं को सड़क, रेलवे, स्थलीय जलमार्गों और नहरों तथा कमांड क्षेत्र विकास कार्यों से जोड़ा जाना चाहिए। देश के महत्त्वपूर्ण स्थानों में जल निकास सुधारने को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। चुनिन्दा स्थानों (जैसे नदियों और सहायक नदियों के मुहानों पर) तल मर्जन से तेज जल निकास द्वारा निचले स्थानों में बाढ़ का स्तर घटाने में सहायक होता है। नदियों द्वारा मिट्टी का कटाव का प्रबंधन उपयुक्त लागत प्रभावी उपायों से होना चाहिए। *जल विज्ञानी तरीकों पर आधारित बाढ़ प्रवण क्षेत्रों का प्रणालीबद्ध रेखाचित्र आवश्यक है*। ऊपरी नदी तटीय राज्यों के बांधों से जल के अचानक छोड़ने से निचले राज्यों के आप्लावन की समस्या कुछ अंतः राज्य नदी जल क्षेत्रों में उत्पन्न हो रही है। इस समस्या के समाधान के लिए ऐसे बेसिनों में बड़े जलाशयों के लिए प्रचालनात्मक नियमों पर पुनः विचार करना आवश्यक है।

3.3.2 जलाक्रांति

जलाक्रांति का मुद्दा बाढ़ समस्या से जुड़ा हुआ है। इसका संबंध उस दशा से है जहां भौमजल स्तर बढ़कर सतह के समीप आ जाता है और अपर्याप्त निकास के कारण जल स्थलाकृतीय अवदाब में एकत्र हो जाता है। विशिष्ट जलाक्रांत क्षेत्र में भूमि की स्थिति को इस प्रकार

वर्गीकृत किया जा सकता है : (क) जलाक्रांति निम्नभूमि (उत्तरी बिहार में चौड़ कहा जाता है) (ख) मध्यभूमि जहां अस्थायी रूप में आप्लावन होता है। परन्तु दिसंबर से आगे शुष्क रहता है); और (ग) उच्चभूमि जो कभी भी आप्लावित नहीं होती। जलप्लावन मुख्यतया सड़कों, रेलवे, नहरों, हवाई अड्डों, कस्बों आदि द्वारा प्राकृतिक जल निकास में बाधा के फलस्वरूप होता है। उचित जल निकास के बिना सिंचाई से भी आप्लावन होता है। इसलिए आप्लावित क्षेत्रों के लिए नए पैकेज में सबसे अधिक तुरत कार्य समीपतम जल मार्ग से जलक्षेत्रों को जोड़कर व्यापक जल निकास योजना बनाना आवश्यक है। इसके लिए गांवों और पंचायतों के साथ सावधानीपूर्वक योजना बनाना और समन्वय करना अपेक्षित है। देश में जलाक्रांति से प्रभावित कुल क्षेत्र का अनुमान लगभग 6 मिलियन हेक्टेयर लगाया गया है।

3.3.3 जल की धारणीयता

जल संसाधन प्रबंधन से संबद्ध बड़ी चुनौतियों में एक गुणात्मक और परिमाणात्मक दोनों रूप में जल की धारणीयता सुनिश्चित करने से संबंधित है ताकि जल की आवश्यकताएं पूरी की जा सकें। भौमजल का प्रयोग उसके औसत रिचार्ज के स्तर तक सीमित रखा जाए। जल की गुणवत्ता को जैविक और रासायनिक संदूषण से जल स्रोतों को बचाकर सुधारा जाना चाहिए। जल की गुणवत्ता का संकट (i) अनुपचारित औद्योगिक प्रवाह, (ii) बस्तियों से नगरपालिका अवजल, (iii) खुले में मल त्याग से प्रदूषण; और उर्वरकों और कीटनाशक दवाओं वाले खेतों से अपवाहों से है। समग्र स्वच्छता अभियान (TSC) कार्यक्रम ग्रामीण सफाई, औद्योगिक प्रवाह मानकों का सख्त प्रवर्तन और सभी नगरपालिका अपशिष्टों के उपचार के लिए आवश्यक है। इसी समय खेती के तरीकों में भी रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशक दवाओं का प्रयोग उस वांछित स्तर तक कम करना आवश्यक है जिससे अपवाह जल में इनका अवशेष कम से कम हो।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

3.3.4 बहु एजेंसियों के बीच समन्वय का अभाव

सरकार ने घरेलू और कृषि उपयोग के लिए पर्याप्त जल की उपलब्धता सुनिश्चित करने के लिए विभिन्न जल प्रबंधन प्रणालियां और प्राधिकरण गठित किए हैं। जल संसाधन मंत्रालय बड़ी, मझोली और लघु सिंचाई परियोजनाओं के क्रियान्वयन के लिए उत्तरदायी है (ब्यौरों के लिए 3.4.2 देखिए); जल विभाजक प्रबंधन के लिए भूमि संसाधन विभाग और कई विकास और रोजगार संवर्धन कार्यक्रमों के क्रियान्वयन के लिए ग्रामीण विकास विभाग और जल उपयोग दक्षता सुनिश्चित करने के लिए कृषि विभाग उत्तरदायी है। इसी प्रकार ग्रामीण पेयजल कार्यक्रमों का क्रियान्वयन ग्राम विकास मंत्रालय में पेयजल आपूर्ति विभाग द्वारा किया जाता है। शहरीकरण बढ़ने से शहरी और औद्योगिक जल आपूर्ति का मुद्दा महत्त्वपूर्ण बनता जा रहा है, इसके लिए ग्राम केंद्रित परियोजनाओं पर समन्वित कार्रवाई आवश्यक है, क्योंकि, वे बहुधा जल आपूर्ति के एक ही स्रोत का दोहन करते हैं। इस समय, संस्थानक दुर्बलताओं के अलावा संबंधित विभागीय अधिकारियों के बीच समन्वय का अभाव है (परिणाम उचित तकनीकी मूल्यांकन के बिना परियोजनाओं का क्रियान्वयन और उस क्रियान्वयन में विलंब होता है)। क्योंकि इनमें सम्मिलित अधिकारियों में तकनीकी और प्रबंधकीय क्षमता अपर्याप्त होती है। "जल उपभोक्ता संघ" (WUAs) की कमी या प्रभावहीनता भी विकसित संस्थागत क्रियाविधियों की एक बड़ी त्रुटि है।

3.3.5 नदियों को आपस में जोड़कर अंतःजलक्षेत्र स्थानांतरण

अतिरिक्त जल वाली हिमालयी नदियों को भारत के पश्चिमी और प्रायद्वीप को जल के अभाव वाले भागों से जोड़ने का विचार पिछले 150 वर्षों से चक्कर काट रहा है। साररूप में ये विचार

30 संयोजनों, दर्जनों विशाल बांधों और हजारों मील लंबी नहरों से 37 नदियों को जोड़ता है। यह बाढ़ और सूखे के विरोधाभास का स्थायी समाधान प्रदान करने वाली विश्व में विशालतम जल योजना होगी। प्रस्तावित 34 संयोजनों में 14 हिमालय में और 16 प्रायद्वीप में हैं। नदियों को आपस में जोड़ने के कार्यबल ने (task force) लगभग 220 bcm पानी के स्थानांतरण के लिए प्रस्तावों का सेट तैयार किया है। परन्तु निम्नलिखित कारणों से विशेषज्ञों और पर्यावरणविदों ने चिंता व्यक्त की है; (i) नदियां 70–100 वर्षों में अपना मार्ग बदलती हैं और यदि उन्हें आपस में जोड़ा गया तो मार्ग परिवर्तन अनिश्चित समस्याएं उत्पन्न कर सकता है; (ii) कुछ मार्गों में नहरों के निर्माण के लिए विशाल मात्रा में निर्वनीकरण हो सकता है; (iii) नए बांधों की संभावना से आवासयुक्त भूमि के लिए संकट पैदा हो सकता है जिससे प्रभावित लोगों के पुनर्वास के लिए नए क्षेत्रों की आवश्यकता होगी, और (iv) अज्ञात गहनता के भूकंप संकट भी माने गए हैं।

परस्पर विरोधी चिंताओं की इस पहेली पर लेखकों के अच्छे तर्कों सहित वाद विवाद तुषार शाह द्वारा संपादित पुस्तक *"इंडियन रिवर लिकिंग–प्रोजेक्ट दी स्टेट आफ दी डिवेट"* में नदियों को जोड़ने के मुद्दे पर पुनः विचार अच्छा बताते हुए सात कारण दिए गए हैं। ये हैं: (i) $ 2 ट्रिलियन आकार की भारतीय अर्थव्यवस्था अति विशाल जल आधारभूत संरचना निवेश के विचारों को अधिक उत्साह से ले सकती है (जिसे पहले यह सोचने का विश्वास नहीं था); (ii) आधारभूत संरचना निर्माण से सार्वजनिक प्रणालियों का उन्नत निष्पादन और सड़कों, विद्युत आदि के प्रबंधन ने संभवतः ऐसा विशाल कार्य करने के लिए सरकार की क्षमता में सार्वजनिक विश्वास बहाल हुआ है। (iii) परियोजना प्रभावित लोगों के पुनर्वास और पुनर्स्थापन (R&R) सुधारने के दबाव ने आधार प्राप्त किया इसके फलस्वरूप संस्थानिक क्रियाविधि अपनाई गई है; (iv) वर्तमान जल दुर्लभता को आर्थिक जल दुर्लभता में रूपांतरित करने से वित्तीय व्यावहारिकता और जल आधारभूत संरचना की धारणीयता में सुधार होगा; (v) बढ़ती हुई प्रयोज्य आय ने मतदाताओं को शहरी क्षेत्रों में बेहतर जल निकायों की मांग के लिए प्रेरित किया है और इसी प्रकार कृषि जल मांग के लिए भी दबाव बढ़ सकता है। (भारतीय कृषि के विविधीकरण के कारण जो पानी की प्रति घन मीटर अधिक उत्पाद मूल्य उत्पन्न करता है इससे किसान जितना आज भुगतान करते हैं, उससे काफी अधिक भुगतान करने के लिए तैयार होंगे); (vi) बढ़ती हुई ऊर्जा लागत पम्प सिंचाई को लगातार अनाकर्षक बनाएगी और (vii) शहरी वर्ग में तेज वृद्धि भौमजल आश्रित आपूर्ति प्रणालियों पर गंभीर दबाव डालेगी। अतः अंतःक्षेत्रीय अंतरण करना आर्थिक दृष्टि से व्यावहारिक और राजनीतिक दृष्टि से अनिवार्य होगा। इन परिवर्तनों की पृष्ठभूमि में भारत सरकार ने बड़ी नदियों को आपस में जोड़ने की अपनी महत्त्वाकांक्षा की पुनः घोषणा की है। नीति अभी चर्चा और बहस की अवस्था में है जिसमें योजना के लाभ और हानि के बारे में दृढ़ विचार व्यक्त किए जा रहे हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

3.3.6 जल संघर्ष

हाल ही में पुणे के निकट मवाल में किसानों का विरोध प्रदर्शन इस बाद का स्मरण कराता है कि शहरी और ग्रामीण आवश्यकताओं के लिए पानी के प्रयोग पर संघर्ष भविष्य में (शहरी आबादी में तेजी से वृद्धि के साथ) और गहन हो सकता है। किसान भूमि अधिग्रहण और गैर-कृषि कार्यों के लिए जल के पृथक्करण के मुद्दों पर सरकार से अधिकाधिक दूरी अनुभव कर रहे हैं और सरकार के आश्वासन पा विश्वास नहीं कर पा रहे हैं। चाहे यह नोएडा भूमि अधिग्रहण उपद्रव हो या महाराष्ट्र में सिंचाई परियोजनाओं से उद्योगों के लिए जल का पथांतरण या उड़ीसा में हीराकुंड बांध से जल के अधिक अंश के लिए किसानों द्वारा आंदोलन

हो, किसान लगातार ठगे जाना महसूस कर रहे हैं। इसके फलस्वरूप इन आकांक्षाओं के कारण महाराष्ट्र में विद्युत परियोजनाओं के विरुद्ध विरोध प्रदर्शन हुए हैं क्योंकि नए संयंत्रों से सिंचाई के लिए उपलब्ध जल की मात्रा कम हो जाएगी। बारहवीं पंचवर्षीय योजना (2012–2017) के दृष्टिकोण पत्र जल प्रबंधन पर बल देता है परन्तु ऐसी स्थिति का समाधान कैसे किया जा सकता है, इस पर पूर्व विचार के अधिक प्रमाण की अभी प्रतीक्षा है।

3.3.7 अंतर्राज्यीय नदी विवाद

सभी जल संबंधी संघर्षों में अंतर्राज्यीय नदी जल विवाद सबसे अधिक प्रमुख है। एक जल क्षेत्र की नदी पर किसी का अधिकार नहीं होता है परन्तु सभी राज्य उसके जल पर उपभोक्ता अधिकारों का दावा करते हैं। इसलिए किसी भी भावी संभावित अंतर्राज्यीय नदी जल विवाद का समाधान करने के लिए समझौते की बातचीत करने, सुलह करने आदि की कानूनी क्रियाविधि स्थापित करने का प्रयास किए जाने चाहिए ताकि ऐसे विवादों को रोका जा सके। केंद्र में अंतर्राज्यीय परिषद को, जो संवैधानिक निकाय है, इस संबंध में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभानी चाहिए। (भारत के संविधान के अनुच्छेद 262 और 2002 में यथा संशोधित अंतर्राज्यीय जल विवाद अधिनियम 1956 द्वारा यथा प्रदत्त) न्यायनिर्णयन तभी अपनाए जाएं जब उपर्युक्त सभी उपाय समाप्त हो जाते हैं।

3.3.8 अंतर्देशीय जल समस्याएं

सीमा अवस्थित या सीमा के आर-पार नदी से संबंधित सभी देशों के बीच परामर्श और समन्वय के लिए संस्थागत व्यवस्था होनी चाहिए। बहुपक्षीय व्यवस्था विफल होने पर द्विपक्षीय व्यवस्थाओं के सबसे अच्छों/दूसरे रास्ते के लिए प्रयास किए जाने चाहिए।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 2

लगभग 50 शब्दों में उत्तर दीजिए।

1) जल संसाधनों से संबंधित समस्याओं का उल्लेख कीजिए।

....

....

....

....

2) बाढ़ नियंत्रण परियोजनाएं क्यों आवश्यक हैं ?

....

....

....

....

3) जल प्रबंधन में अंतर्निहित भिन्न-भिन्न एजेंसियों/प्राधिकरणों का उल्लेख कीजिए।

....

....

....

....

3.4 भारत में सिंचाई

हमने तालिका 3.2 से नोट किया था कि सिंचाई देश में जल का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण प्रयोग है और आगे भी रहेगा। इसी में तीन चौथाई अर्थात् 75 प्रतिशत से अधिक जल का प्रयोग होता है। कृषि उत्पादन सुधारने के लिए सिंचाई को सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण साधन माना जाता है। इसके अलावा फसल/मृदा के लिए उपयुक्त खास किस्म की सिंचाई का प्रयोग कर फसलों की अधिक विकसित किस्म पैदा की जा सकती है। यह सत्य है कि खाद और बीजों की उन्नत किस्में जल के अपेक्षित योगदान के अभाव में फसल की उपज नहीं बढ़ा सकती। इसके अलावा अच्छी सिंचित भूमि में मृदा की नमी के प्रयोग से शुष्क अवधि में दूसरी फसल भी उगाई जा सकती हैं। इन प्रमुख कारणों के अलावा सिंचाई के लिए अन्य महत्त्वपूर्ण कारणों का उल्लेख इस प्रकार किया जा सकता है:

i) मानसून की अनिश्चितता के कारण फसल को सूखे से बचाने के लिए सिंचाई आवश्यक है;

ii) देश के सभी भागों में समान रूप से वर्षा नहीं होती है। इसलिए कम वर्षा के क्षेत्रों में कृषि के लिए सिंचाई आवश्यक है;

iii) कुछ क्षेत्रों की मिट्टी बलुई और दुमट होती है और इसलिए सरंध्र है जिसके कारण वर्षा जल का बड़ा अंश शीघ्र ही नीचे चला जाता है। इस प्रकार की मृदा जलोढ़ और काली मिट्टी की भांति जल नहीं रोक सकती है। इसलिए बलुई और दुमट मृदा वाले क्षेत्रों में खेती के लिए सिंचाई आवश्यक है;

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

iv) पहाड़ी ढलानों से वर्षा जल बहुत तेजी से बहता है। इसलिए ऐसे क्षेत्रों में फसलें उगाने के लिए सिंचाई आवश्यक है;

v) भारत कृषि की दृष्टि से बहुत घनी आबादी वाला देश है, अभी भी 50 प्रतिशत से अधिक लोग कृषि पर आश्रित हैं। बढ़ते हुए लाखों लोगों को खिलाने के लिए बड़ी मात्रा में खाद्य फसलें और कृषि उत्पाद उगाने के लिए गहन खेती और फसलों का हेरफेर आवश्यक है। इसलिए, अधिक उत्पादन के लिए व्यापक सिंचाई जरूरी है। समुचित और समय पर सिंचाई द्वारा खाद्य और खाद्य से भिन्न दोनों फसलों का उत्पादन बढ़ाया जा सकता है।

3.4.1 सिंचाई के प्रकार

सिंचाई के भिन्न-भिन्न प्रकारों को दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है : (i) प्रवाह सिंचाई और उत्थित सिंचाई और (ii) लघु/मध्य/बड़ी सिंचाई। जलाशय या टैंक से तभी अच्छा प्रवाह होता है, जब जल आपूर्ति का स्रोत खेतों के स्तर की अपेक्षा अधिक ऊँचे स्थान पर हो। ऐसी सिंचाई को प्रवाह सिंचाई के नाम से जाना जाता है और साधारणतया मैदानी क्षेत्रों में संभव है। परन्तु जहां खेत की भूमि अधिक ऊँचे स्तर पर होती है, भूमि की सिंचाई करने के लिए पम्प द्वारा पानी को ऊपर ले जाना आवश्यक होता है। इसलिए उपयुक्त तरीके, जैसे, बिजली के मोटर पम्पों या डीजल पम्प सेटों द्वारा कुओं और टैंकों से जल को उत्थित किया जाता है। सिंचाई का यह तरीका *उत्थित (lift) सिंचाई* के नाम से जाना जाता है। एक अन्य प्रचलित तरीका *छिड़काव सिंचाई* है, यह उन फसलों की सिंचाई के लिए प्रयुक्त की जाती है जिन्हें जल की कम आवश्यकता होती है। इसके अलावा भिन्न-भिन्न प्रकार की जल संचय सुविधा के अनुसार जैसे कुंए या टैंक या कृषि भूमि के आपूर्ति स्रोत से बहने के लिए पानी

के निर्मित मार्ग, टैंक सिंचाई, कुंआ सिंचाई और नहर सिंचाई के बीच अंतर भी किया जाता है। भारत में सिंचाई के अधीन आने वाले कुल क्षेत्रफल में लगभग 40 प्रतिशत क्षेत्रफल नहरों द्वारा सींचा जाता है। शेष 8 प्रतिशत अन्य स्रोतों द्वारा सींचा जाता है।

3.4.2 सिंचाई के स्रोत

मोटे तौर पर सिंचाई के स्रोत (क) भौमजल स्रोत और (ख) पृष्ठीय जल स्रोत में विभक्त किए जा सकते हैं। पृष्ठीय जल स्रोतों आगे (i) लघु सिंचाई और (ii) बड़ी या मझोली सिंचाई परियोजनाओं में बांटा जा सकता है।

भौमजल स्रोत

अधिकांशतः भौमजल का विकास व्यक्तिगत प्रयासों से किया जाता है। 1951–2007 की अविध में भौमजल से सिंचित क्षेत्रफल 6.3 गुणा बढ़ा है। इस प्रकार भौमजल का प्रयोग अधिक तेजी से फैला है क्योंकि इस सिंचाई पर व्यक्तिगत नियंत्रण होता है। इसकी वृद्धि विद्युतीकरण के विस्तार और राजकीय सहाय्य प्राप्त विद्युत द्वारा भी प्रोत्साहित हुई है। इस युक्ति के कारण बड़ी सिंचाई परियोजनाओं के कमांड क्षेत्र में भी किसान नहर के पानी के संपूर्ण के लिए भौमजल का प्रयोग करते हैं और अधिक से अधिक कृषि पैदावार पाने का प्रयास करते हैं। *इससे देश में भौमजल का अतिदोहन हुआ है*। जैसे-जैसे भौमजल का स्तर गिरता है, कुओं को अधिक गहरा करना पड़ता है और जल को पम्प करने के लिए अधिक ऊर्जा का प्रयोग करना पड़ता है। लघु सिंचाई परियोजना के कम निष्पादन के मुख्य कारण है : (i) छोटे और सीमांत किसानों की खराब आर्थिक स्थिति; (ii) सुनिश्चित विद्युत आपूर्ति की अनुपलब्धता; (iii) नहर कमांड क्षेत्र में अत्यधिक रियायती दर पर जल, जबकि भौमजल विकास के लिए कोई सहायता नहीं है; (iv) कठोर चट्टानी क्षेत्रों में भौमजल संसाधन प्राप्त करने की संभावना बहुत कम होती है; और (v) संवेदनशील क्षेत्रों में अति दोहन के कारण भौमजल स्तर का ह्रास हुआ है, परिणामतः कुंए सूख गए हैं। अति निष्कर्षण पहलू वास्तव में इतना महत्त्वपूर्ण हो गया है, इस पर पृथक चर्चा करना आवश्यक है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

भौमजल विषयक चिंताएं: भौमजल के अधिक विदोहन ने आधारणीय रूप धारण कर लिया है इस कारण से देश के कई भागों में भौमजल तालिकाएं बड़ी तेजी से नीचे गिर रही हैं। भौमजल स्तर के अवक्षय के फलस्वरूप देश के बहुत भागों में भौमजल विफल हुआ है। 1995 और 2004 के बीच असुरक्षित जिलों का अनुपात अर्द्धक्रांतिक, क्रांतिक और अधिक उपयोगी 9 प्रतिशत से बढ़कर 31 प्रतिशत से 33 प्रतिशत तथा प्रभावित जनसंख्या में 7 प्रतिशत से 35 प्रतिशत हुआ है। भौमजल में इस वेग से अवक्षय का मुख्य कारण नलकूपों द्वारा बहुत गहराई से जल निकालने पर अत्यधिक निर्भरता है जो सिंचाई का 40 प्रतिशत से भी अधिक है। देश में भौमजल संसाधनों द्वारा "अंतिम सिंचाई क्षमता (UIP)" का आकलन लगभग 64 मिलियन हेक्टेयर (mha) किया गया है। इसमें से लगभग 46 mha दसवीं योजना (2002–2007) अवधि के अंत तक प्राप्त किया गया। चूंकि भौमजल निर्वाध सुलभ संसाधन है और प्रत्येक इसका अधिकारी है, इसकी धारणीयता की कोई चिंता किए बिना इसका अति दोहन किया गया। किसानों द्वारा समय-समय पर अपने कुंए गहरे करने से **सिंचाई की लागत** में वृद्धि हुई। भौमजल की धारणीयता और स्वामित्व की समस्या हल करने के लिए सरकार ने "भौमजल प्रबंधन और स्वामित्व" पर विशेषज्ञ बल का गठन किया। समूह ने सिफारिश की, भूमि के नीचे भौमजल का स्वामित्व भूमि के स्वामी के पास तभी तक जारी रहेगा जब तक अन्य भूस्वामियों और जनता के भौमजल स्तरों में अवक्षय का कारण नहीं होता है। जहां कहीं भी भौमजल का स्तर पुनःपूर्ति स्तर से नीचे चला जाता है, प्रभावित क्षेत्र

को "संकट के अधीन" क्षेत्र के रूप में घोषित किया जायेगा, और आगे दोहन विनियमित किया जाएगा। केंद्रीय भौमजल प्राधिकरण पर्यावरण अधिनियम, 1986 के प्रावधानों के अधीन ऐसी घोषणाएं करने के लिए अधिकृत है और यह सुनिश्चित करना राज्य सरकार का उत्तरदायित्व होगा कि क्षेत्र में दोहन विनियमित किया जाता है। भौमजल का विनियमन सरकार द्वारा केवल पंचायतराज संस्थाओं (PRLs) को शामिल कर उपयोक्ता समूहों के सहयोग और समुदाय की सहभागिता से प्रभावी ढंग से किया जा सकता है। उपयोक्ता समूह विभिन्न सेक्टरों, जैसे सिंचाई, पेयजल, और औद्योगिक प्रयोग में भौमजल प्रयोग का विनियमन करने के लिए उत्तरदायी होगा। उपयोक्ता समूह द्वारा ऐसा विनियमन केवल तभी प्रभावशाली बनाया जा सकता है यदि राज्य/केंद्रीय भौमजल बोर्ड (CGWB) वैज्ञानिक विधि ा से रिकार्ड किए गए भौमजल स्तरों के आधार पर सुरक्षित निष्कर्षण योग्य जल की मॉनीटरिंग करता है और सूचना प्रदान करता है।

लघु सिंचाई परियोजनाएं

2000 हेक्टेयर तक के खेती योग्य कमांड क्षेत्र में पृष्ठीय सिंचाई के स्रोत को लघु सिंचाई परियोजनाएं कहा जाता है। यद्यपि कई ऐसी परियोजनाएं स्वातंत्र्योत्तर अवधि में प्रारंभ की गई थीं, परन्तु देश में उनमें से अधिकांश लघु सिंचाई स्रोत टैंक हैं। इन टैंकों का बहुधा सिंचाई के परम्परागत स्रोतों के रूप में उल्लेख किया जाता है। उचित रखरखाव के अभाव में कारण इन परम्परागत स्रोतों के अधीन सिंचित क्षेत्र में तेजी से गिरावट हुई है।

बड़ी और मझोली सिंचाई परियोजनाएं

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

जल संकट और सिंचाई आवश्यकताओं के लिए दृष्टिकोण के रूप में सरकार ने बार-बार आने वाली बाढ़ से सुरक्षा प्रदान करने के लिए, और समीपवर्ती खेतों और फार्मों को सिंचाई सुविधाएं प्रदान कर प्राकृतिक जल संसाधनों का प्रभावशाली प्रयोग के लिए विशाल बांधों और जलाशयों का निर्माण शुरू किया। ऐसी परियोजनाएं जल विद्युत उत्पादन के लिए भी थीं। इन्हें विशेष रूप से बहुप्रयोजनीय परियोजनाओं के रूप में तैयार किया गया है।

इन परियोजनाओं के मुख्य उद्देश्य हैंः (i) बाढ़ नियंत्रण (ii) सिंचाई (iii) जल विद्युत उत्पादन (iv) नौवहन (v) मृदा संरक्षण (vi) वनीकरण (vii) मत्स्यपालन (viii) जल आपूर्ति आदि। इसके अलावा ये परियोजनाएं पर्यटन रुचि के स्थान भी हैं। जल विद्युत उत्पादन के कारण इन क्षेत्रों में औद्योगिक प्रगति भी हुई है। भारत में कुछ विशाल बांध और जलाशय हैं : (i) नागार्जुन सागर बांध, आंध्र प्रदेश; (ii) नर्मदा नदी पर निर्मित सरदार सरोवर परियोजना, गुजरात (iii) सतलुज नदी पर निर्मित भाखड़ा नांगल बांध, (हि.प्र.); (iv) गोविन्द सागर और महाराणा प्रताप सागर बांध, हिमाचल प्रदेश; (v) कावेरी नदी पर कृष्ण राजा सागर बांध, कर्नाटक (vi) तुंगभद्रा बांध, आंध्र प्रदेश; (vii) नेय्यर बांध, केरल; (viii) नर्मदा बांध परियोजना, मध्य प्रदेश; (ix) महानदी पर हीराकुंड बांध, ओडीशा (x) फरक्का बराज, पश्चिम बंगाल।

बड़ी सरकारी परियोजनाओं से संबंधित समस्याएं

बड़ी सिंचाई परियोजनाओं पर व्यय कृषि अनुसंधान और विकास (R&R) क्षेत्र पर होने वाले व्यय की तुलना में अधिक है। सिंचाई पर व्यय किए गए संसाधन सिंचाई के अधीन लाए गए क्षेत्र के विस्तार के अनुसार नहीं दिखाई देते। निश्चित अध्ययनों से ऐसी रिपोर्ट है कि पुरानी नहरों से जोड़ी गई बहुत सी सहायक नदियां सूखी हैं। सामान्यतया बड़ी नहर परियोजनाओं की अवधि 15–20 वर्षों की होती है जबकि मझोली परियोजनाएं पूरी होने में 5–10 वर्ष लेती हैं। इन मानदंडों की तुलना में बड़ी तथा मझोली परियोजनाएं भी 30–40 से अधिक वर्षों से चल रही हैं। इसके कारणों में निम्नलिखित शामिल हैं : (i) बहुत परियोजनाओं में निधि के

अल्प वितरण के कारण अपर्याप्त धन; (ii) समय बीतने के कारण लागत में वृद्धि (iii) कार्यों के क्षेत्र में परिवर्तन (iv) अन्य एजेंसियों के शामिल होने से अदृष्ट रुकावटें; (v) परियोजना प्रभावित व्यक्तियों द्वारा विरोध आदि। यद्यपि सिंचाई राज्य का विषय है फिर भी राज्यों में रुकी हुई या विलंबित बहु प्रयोजनीय योजना का पूरा करना आसान बनाने के लिए केंद्र ने 1996–97 में "त्वरित सिंचाई लाभ कार्यक्रम" (ABP) शुरू किया।

माइक्रो सिंचाई प्रणालियां

माइक्रो सिंचाई प्रणालियों में टपकन (ड्रिप) और छिड़काव सिंचाई होती है। हाल ही में, यह जल संसाधनों के प्रभावकारी प्रबंधन के साधनों के रूप में उभरा है। यह अन्य सिंचाई प्रणालियों की भांति नहीं है, वे जल समान रूप से वितरित करते हैं। ड्रिप सिंचाई उद्यान कृषि और नकदी फसलों जैसे, गन्ना के लिए अत्यंत उपयुक्त है। यह अनुमान लगाया गया है कि ड्रिप सिंचाई 25–60 प्रतिशत जल बचाती है और उपज में 40 प्रतिशत तक वृद्धि करती है। छिड़काव सिंचाई खाद्यान्न फसलों के लिए मैदानी क्षेत्र में उपयोगी है। उनसे भी अनुमान लगाया गया है कि वे 25–33 प्रतिशत जल बचाते हैं। देश में 69 mha निवल सिंचित क्षेत्रफल में ड्रिप सिंचाई के अधीन केवल 0.5 mha और छिड़काव सिंचाई के अधीन 0.7 mha आता है। महाराष्ट्र में ड्रिप सिंचाई के अधीन उसके क्षेत्र का 46 प्रतिशत है यह कर्नाटक, तमिलनाडु और आंध्र प्रदेश से आगे है, इनका ड्रिप सिंचाई के अधीन क्रमशः 21, 14 और 12 प्रतिशत है। कुछ अन्य राज्यों ने भी ड्रिप सिंचाई परियोजनाओं के प्रयास किए हैं। यह मत है कि नई सिंचाई परियोजनाएं स्वीकृत करते समय कमांड क्षेत्र का कम से कम 10 प्रतिशत माइक्रो सिंचाई के क्रियान्वयन के लिए अनिवार्य बनाया जाना चाहिए।

3.4.3 चरम सिंचाई क्षमता (UIP)

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

भारत में सिंचाई के लिए जल की मांग बहुत विशाल है। परन्तु जल के संचयन और अंतरण की सीमाएं सिंचाई की क्षमता को सीमित करती हैं। सिंचाई क्षमता का निर्माण जल के वितरण की प्रणाली की दक्षता और अनुप्रयोग स्तर पर उसके इष्टतम प्रयोग पर निर्भर करता है। इसी प्रकार भौमजल के मामले में नदी के तटों के साथ-साथ बाढ़कृत मैदानों में जल संचयन द्वारा भौमजल की पुनःपूर्ति के नए तरीकों से भौमजल से अंतिम सिंचाई क्षमता बढ़ सकती है। परम्परागत रूप में जल आपूर्ति समस्याओं का समाधान करने के प्रयासों ने बड़ी और मझोली सिंचाई परियोजनाओं पर ध्यान केंद्रित किया है। परिणामस्वरूप जहां कहीं ऐसी बड़ी/मझोली परियोजनाओं से सिंचाई के लिए जल आपूर्ति नहीं पहुंचती है, सिंचाई के लिए भौमजल का प्रयोग सामान्य प्रथा बनती है। भारत में भौमजल के वार्षिक निष्कर्षण का अनुमान 210 बिलियन घन मीटर लगाया गया है, जो विश्व में सबसे अधिक है। आज देश में वास्तविक सिंचित क्षेत्रफल का 60 प्रतिशत से भी अधिक भौमजल से है। इसने पिछले 30 वर्षों में सिंचित क्षेत्रफल को 85 प्रतिशत से भी अधिक बढ़ा दिया है। नहरों और टैंकों द्वारा सिंचित क्षेत्रफल में 1990 के बाद से गिरावट आई है। चूंकि अत्यधिक निष्कर्षित भौमजल के पुनर्भरण पर कोई ध्यान नहीं दिया गया है इसलिए "भौमजल के बारे में चिंताओं" की गंभीर समस्या पर पहले चर्चा की गई है।

हमने पिछली इकाई में देखा कि भारत में वर्ष 2008 में निवल बुआई/फसल क्षेत्रफल 140.9 mha (मिलियन हेक्टेयर) था। इसमें से मझोले और बड़ी सिंचाई परियोजनाएं अनुमानित UTP की 58.5 mha (अर्थात् 41.5 प्रतिशत) और लघु सिंचाई की 60.4mha (अर्थात् 42.9 प्रतिशत) था। इस प्रकार इन दोनों प्रकार की परियोजनाओं (बड़ी/लघु सिंचाई परियोजनाओं) द्वारा उनकी अंतिम क्षमता निर्माण और प्राप्ति में सिंचाई सुविधा प्रदान करने की संभावना देश में कुल निवल बुआई/फसल क्षेत्रफल का लगभग 85 प्रतिशत है।

3.5 पंचवर्षीय योजनाओं के अधीन सिंचाई की प्रगति

सिंचाई सेक्टर का योजनाबद्ध विकास ठीक पहली पंचवर्षीय योजना (1951–56) से आरंभ हुआ। सिंचाई के अधीन क्षेत्र का विस्तार करने के लिए 1966–69 को वार्षिक योजनाओं तक नई परियोजनाएं सभी योजनाओं में शुरू की गई थीं। चूंकि सिंचाई की बहुत सी परियोजनाएं अधूरी थीं इसलिए चौथी पंचवर्षीय योजना के दौरान केवल चल रही परियोजनाओं को ही पूरा करने पर बल दिया गया। निर्माण की संभावना और उसकी वास्तविक प्राप्ति के बीच भारी अंतर पांचवी योजना (1974–78) में स्वीकार किया गया था। इसे सुधारने के लिए कमांड क्षेत्र विकास (CAD) कार्यक्रम प्रारंभ किया गया। वार्षिक योजनाओं (1978–80) और छठी योजना में पहले से आरंभ की गई परियोजनाओं को पूरा करने पर सतत् फोकस के साथ नई शुरुआत देखी गई। आठवीं योजना (1996–1997) के अंत तक त्वरित सिंचाई लाभ कार्यक्रम (ABP) के अधीन परियोजनाएं पूरी करने के लिए राज्य सरकारों को केंद्रीय सहायता दी गई। पिछली छह दशाब्दियों की अवधि के दौरान कितनी अतिरिक्त सिंचाई क्षमता निर्मित हुई है? अंतिम सिंचाई क्षमता की प्राप्ति में किन कारकों ने बाधा डाली? आइए, हम इस पर शीघ्र एक दृष्टि डालें। 1950 में कुल निवल बुआई क्षेत्रफल 118.8 mha था जिसमें से कुल फार्मभूमि (अर्थात् लगभग 20.2 mha कुल बुआई क्षेत्रफल) के लगभग 17 प्रतिशत को सिंचाई की जा सकती थी। 2008 तक देश में सकल सिंचित क्षेत्रफल 3 गुणा (62.3 mha) हो गया। फिर भी 2008 में कुल निवल बुआई क्षेत्रफल 140.9 mha हो जाने से देश में निवल सिंचाई सुविधा केवल 44 प्रतिशत कृषित क्षेत्र को ही प्राप्त हो सकी। यद्यपि सिंचाई पर योजना व्यय पहली योजना में 441.8 करोड़ रुपये से बढ़कर दसवीं योजना (2002–2007) में 95,743 करोड़ रुपये हो चुका है। कुल योजना व्यय में इसका अंश पहली योजना में 23 प्रतिशत से घटकर दसवीं योजना में 6.3 हो गया। योजनाबद्ध बजटों में अपर्याप्त आबंटन के अलावा प्रगति/दक्षता के अभाव के कारण निम्नलिखित मुद्दों के इर्द-गिर्द हो सकता है जैसे : (i) निर्मित सिंचाई प्रणालियों की वित्तीय व्यावहारिकता; (ii) देश में "सर्वांगी सिंचाई सुधार लागू करने की आवश्यकता और सबसे अधिक (iii) राष्ट्रीय जलनीति की आवश्यकता। हम इन पहलुओं पर भाग 3.6 से 3.8 में विचार करेंगे।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

3.6 सिंचाई प्रणालियों की आर्थिक व्यवहार्यता

राज्यों में सिंचाई को प्रभावित करने वाली बड़ी समस्या बहुत कम जल प्रभारों के कारण वित्तीय प्रस्थिति का गंभीर क्षरण है। यह न केवल अकुशल जल प्रयोग और नहर के सिरे के प्रयोक्ताओं की जल सघन फसल अपनाने की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित करता है। यह ऐसा भी वातावरण उत्पन्न करता है जिसमें सिंचाई प्रभारों से प्रचालन लागत भी नहीं मिलती है। इसके रख-रखाव की निरंतर अनदेखी होती है। इससे कुशलता भी घटती है। सिंचाई जल का मूल्य निर्धारण स्पष्टतः से महत्त्वपूर्ण विषय है। यह तर्क दिखलाता है कि जितनी सिंचाई की सुलभता होगी उतनी ही भूमि की उत्पादकता बढ़ेगी। इसलिए किसानों की आय में जल को किसी अन्य आदान की भांति माना जाना चाहिए और आपूर्ति की लागत के आधार पर मूल्य निर्धारित होने चाहिए। यह निर्णय करना किसानों पर छोड़ दिया जाए कि कौन से आदानों का (सिंचाई की मात्रा सहित) कौन सा संयोजन उनके सबसे अच्छे लाभ के लिए उपयुक्त होगा। इससे जल का अधिक सावधानी के साथ प्रयोग होगा, साथ ही वे स्थान विशिष्ट कृषि पारिस्थिकीय दशाओं के अनुसार फसल प्रतिमानों का चयन भी कर सकेंगे। इसके अलावा, चूंकि वर्तमान दरें जहां वे होनी चाहिए, उससे बहुत नीचे हैं, इसलिए वृद्धि इस तरीके से की जानी चाहिए जो किसानों की वास्तविक समस्याओं का निदान कर सकें। सिंचाई

जल के मूल्य निर्धारण का मामला मात्रा और विश्वसनीयता के आधार पर अनिश्चित गुणवत्ता ने कमजोर कर दिया है। फिर भी, कुछ सीमा तक यह वित्तीय कमजोरी का भी परिणाम है जो कम कीमत निर्धारण से हुई है। इसलिए चुनौती को ऐसा एजेंडा सुस्पष्ट करना है जो भारत में नहरी सिंचाई का निष्पादन सुधार सकें।

3.7 प्रणालीबद्ध सिंचाई सुधारों की आवश्यकता

नहरी सिंचाई में जल का साम्ययुक्त और इष्टतम प्रयोग लगातार चिंता का मामला रहा है। यह अनुमान लगाया गया है कि देश में अधिकांश मामलों में सिंचाई जल का अति उपयोग/दुरुपयोग से सिंचाई की कुशलता में 25–35 प्रतिशत की हानि हुई है। सिंचाई कुशलता में कमी के कारणों की पहचान हो गई है, ये हैं : (1) नहरों से पहले बांध निर्माण कार्य पूरा होना (2) जीर्ण शीर्ण सिंचाई प्रणालियां (3) खेतों से जल निकास की कमी (4) पलस्तरहीन नहर प्रणालियों से अत्यधिक रिसाव (5) अनुपयुक्त खेत समतलन (6) उपयुक्त आयतनमापी आपूर्ति का अभाव (7) अपर्याप्त विस्तार सेवाएं, और (8) जल के लिए कम दर।

सिंचाईकर्ताओं के दृष्टिकोण से सिंचाई प्रणाली के कार्य का मूल्यांकन उस के नियंत्रण स्तर द्वारा किया जाता है। जल नियंत्रण फसलों तक इष्टतम समय में जल की उचित मात्रा और गुणवत्ता अनुप्रयोग करने की क्षमता के रूप में परिभाषित किया जाता है। सिंचाई के नहरी क्षेत्रों के स्तर में भारी सुधार विशाल सिंचाई परियोजनाओं के कार्य सुधारने के लिए महत्त्वपूर्ण है। इसके लिए मानव संसाधनों (विशेष रूप से इंजीनियर केंद्रित विभागों से अधिक बहुविषयक संरचनाओं तक) की बहुत भिन्न-भिन्न संरचनाएं आवश्यक हैं जो सिंचाई प्रबंधन में सक्रियता से भाग लेने के लिए किसानों को गतिशील बनाने की वास्तविक चुनौतियों का सामना करने में सक्षम हों। इसके लिए प्रणालियों को चलाने के तकनीकी और प्रबंधकीय पहलुओं पर किसानों को प्रशिक्षण देना आवश्यक है। पलस्तर रहित चेनलों से रिसाव के कारण जल की पर्याप्त क्षति होती है। पम्पिंग द्वारा चेनलों से रिसाव की क्षतियां एक तिहाई से आधे तक और उन्हें पलस्तर करके लगभग 80 प्रतिशत क्षति बचाई जा सकती है। परन्तु वित्तीय और अन्य दबावों के कारण से सभी चैनलों के पलस्तर का कार्य करवाना व्यावहारिक नहीं हुआ है। वैसे भी यह कार्य पूरी तरह पर एक साथ नहीं हो सकता।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

क्षेत्र में वास्तवकि सिंचाई आवश्यकता कई कारकों, जैसे मृदा की किस्म, जलवायु, प्रभावी वर्षा से योगदान, फसलों की किस्मों आदि पर निर्भर करता है। सिंचाई प्रणाली का प्रचालन मुख्यतया प्रमुख फसल की मांग द्वारा नियंत्रित होता है। सिंचाई आपूर्तियों की अनुसूची का उद्देश्य समय पर पादप वृद्धि की विभिन्न आवश्यकताओं को पूरा करना है। जहां ये पूरी तरह से पूरी नहीं हो सकती हैं, वहां चैनलों का बहाव प्रमुख फसल की खेती की अवस्थाओं के अनुरूप होना चाहिए।

बोध प्रश्न 3

लगभग 50 शब्दों उत्तर में दीजिए।

1) भारत में सिंचाई की आवश्यकता के पांच कारण बताइए।

....

....

....

2) भारत में परियोजना आधार पर चलाए गए सिंचाई के तीन मुख्य प्रकारों का उल्लेख कीजिए। इनमें से किससे जल स्तरों का तेजी से क्षीणन हो रहा है ?

....

....

....

....

3) बहुप्रयोजनीय नदी घाटी परियोजनाओं के मुख्य उद्देश्य क्या हैं ?

....

....

....

....

4) भौमजल उपयोग के बारे में मुख्य चिंता बताइए।

....

....

....

....

5) सिंचाई जल का मूल्य निर्धारण का मुद्दा क्यों महत्त्वपूर्ण है ?

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

....

....

3.8 राष्ट्रीय जल नीति की आवश्यकता

जल प्रबंधन नीतियों में शामिल हैं : (i) सिंचाई प्रबंधन नीति, (ii) जल संसाधन आबंटन करने के लिए राष्ट्रीय नीति दिशानिर्देश, जब नदी एक से अधिक राज्यों से गुजरती है, (iii) "एकीकृत जल संसाधन विकास योजना" के लिए राष्ट्रीय आयोग और इत्यादि। नीति दिशानिर्देशों और कार्यक्रमों का निर्धारण करना जल संसाधन मंत्रालय का उत्तरदायित्व है। यह अंतर्राज्यीय नदियों के विनियमन और विकास का भी निरीक्षण करता है। इस कार्य में मंत्रालय अपने निर्माणाधीन लगभग पंद्रह संगठनों से सहायता प्राप्त करता है। परन्तु जल राज्य का विषय होने के कारण इस संसाधन के प्रयोग और नियंत्रण का मुख्य उत्तरदायित्व राज्य सरकारों का है।

जल संसाधन प्रबंधन पर आमूल पुनर्विचार आवश्यक हो गया है, क्योंकि जल का गंभीर कुप्रर्वधन हुआ है और इससे लगभग संकट जैसी स्थिति उत्पन्न हो गई है। जल के बहुत परिप्रेक्ष्य हैं, जैसे (i) अधिकार परिप्रेक्ष्य (ii) सामाजिक न्याय/समता परिप्रेक्ष्य, (iii) महिलाओं का परिप्रेक्ष्य, (iv) सामुदायिक परिप्रेक्ष्य, (v) राज्य परिप्रेक्ष्य, (vi) जलभूविज्ञान संबंधी परिप्रेक्ष्य, (vii) इंजीनियरी परिप्रेक्ष्य (viii) नागरिक/जल प्रयोक्ता परिप्रेक्ष्य, (ix) आर्थिक परिप्रेक्ष्य, और

(x) ऐतिहासिक, सांस्कृतिक एवं धामिक परिप्रेक्ष्य। यदि इन सभी परिप्रेक्ष्यों को एक साथ मिलाया जाए और समग्र रूप में सामंजस्य किया जाए तो हमें एक महाराष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य की आवश्यकता है। अच्छी जल नीति के लिए कुछ जलेत्तर नीतियां कठिनाइयां पैदा करती हैं, जैसे : (i) विद्युत कीमतों की नीतियां भौमजल के अतिदोहन को प्रोत्साहित करती हैं, (ii) मूल्य सहायता और वसूली नीतियां जो गेहूं और धान की खेती को प्रोत्साहित करती हैं और फसल प्रतिरूप में परिवर्तन करने को हतोत्साहित करती हैं, (iii) व्यापार नीतियां जो जल बहुल उत्पादों का निर्यात करने के लिए उत्पादन को प्रोत्साहित करती हैं, (iv) उद्योगों से जल के प्रदूषण और संदूषण, इत्यादि। इन सभी नीति संबंधों को सामंजस्यपूर्ण होना आवश्यक है, ताकि भिन्न-भिन्न नीतियां साथ-साथ काम कर सकें, एक दूसरे के विरुद्ध नहीं।

भौमजल आदर्श विधेयक (भौमजल रक्षण, संरक्षण प्रबंधन और निवियमन विधेयक, 2011) आजीविका आवश्यकताओं (साधारणतया प्रतिव्यक्ति प्रतिदिन अनुमानित 70–150 लीटर) को सर्वोच्च प्राथमिकता प्रदान करता है और पशुओं, मछलियों, सिंचाई, विद्युत उत्पादन, औद्योगिक और मनोविनोद प्रयोगों के लिए जल की आवश्यकता तय करता है। जैसा कि तालिका 3.2 में दर्शाया गया है, कि प्रयुक्त संपूर्ण जल का तीन चौथाई भाग से अधिक सिंचाई में प्रयुक्त किया जाता है। धान और गन्ना जैसी फसलों में जल का प्रयोग घटाया जा सकता है उपयुक्त जल प्रशुल्क से उद्योग जल पुनः चक्रण और संरक्षण तरीके अपनाने के लिए प्रोत्साहित किए जा सकते हैं। इसी प्रकार नगर पालिकाएं बरबादी घटाने के लिए आवासी उपभोक्ताओं के लिए जल मूल्य निर्धारण का पुनः आकलन कर सकती हैं। हम जल के न्यायपूर्ण विभाजन के लिए उपयुक्त संस्थागत संरचना और दीर्घकालिक नीतियों का निर्धारण नहीं करेंगे तो जल के लिए टकराव/संघर्ष बारंबार होंगे और इनकी गंभीरता बढ़ती जाएगी।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

3.9 सारांश

देश के अधिकांश भागों में वर्षा जून से सितम्बर तक के चार बरसाती महीनों तक सीमित रहती है। परन्तु फसलों को उपज की पूरी अवधि में, विशेष कर कुछ एक अधिक संवेदी अवस्थाओं के दौरान नमी की अवश्यकता होती है। इसे केवल कृत्रिम या सिंचाई द्वारा पूरा किया जा सकता है। बढ़ती हुई जनसंख्या की भौमजल की आवश्यकता को पूरा करने के लिए खाद्यान्न उत्पादन में वृद्धि जरूरी है। यद्यपि भारत में इस समय लगभग 60 mha भूमि सिंचाई के अधीन आती है जो विश्व में उच्चतम है, परन्तु यह देश की कृषि योग्य भूमि सिंचाई लगभग 44 प्रतिशत का (2/5 से थोड़ा अधिक) है। स्थानीय प्रयासों से फसल प्रतिरूप और मृदा लक्षणों का उपयुक्त आकलन करने और जल संरक्षण की विधियां अपनाने की आवश्यकता है। क्षरण और आंदोलनकारियों के विरोधों के कारण अनेक सिंचाई परियोजनाएं बाधित हुई हैं। जल के अवैज्ञानिक प्रयोग के कारण दक्षता के स्तर घटे हैं।

इन सबके होते हुए, बढ़ती हुई आबादी की खाद्य और कच्चे माल की बढ़ी हुई आवश्यकता को पूरा करने के लिए सिंचाई का विचार करना आवश्यक है। इस उद्देश्य के लिए जल संसाधनों को पूरी तरह से काम में लाना और दक्षतापूर्वक प्रबंधन करना आवश्यक है। वित्तीय नीतियां भी इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए अभिमुख करना आवश्यक है।

3.10 शब्दावली

कमांड क्षेत्र (नहरी क्षेत्र) विकास कार्यक्रम : सिंचाई क्षमता के निर्माण और उपयोग के बीच अंतर समाप्त करने के उद्देश्यों का निर्वहन, जिसका

लक्ष्य भिन्न-भिन्न राज्यों में सिंचित भूमि से कृषि उत्पादन अधिक से अधिक बढ़ाना है ।

प्रवाही सिंचाई : जलाशयों या टैंक में जल सामान्यतः उच्चतर स्तर पर रहता है, जल चैनल इससे जोड़े जाते हैं ताकि पानी भूमि के सिंचाई करने के चैनलों में नीचे बहें। साधारणतया यह मैदानी क्षेत्रों में संभव है।

नदियों को आपस में जोड़ना : सिंचाई क्षमता बढ़ाने, और सूखा कम करने तथा पानी के क्षेत्रीय असंतुलन कम करने का सबसे अधिक प्रभावशाली तरीका। इसका उद्देश्य अतिरिक्त नदियों से जल कमी वाले क्षेत्रों में स्थानांतरित करना है।

लिफ्ट (उत्थित) सिंचाई : जहां खेत ऊँचे स्तर पर होते हैं और नहर या टैंक निचले स्तर पर होता है, खेत की सिंचाई करने के लिए पम्प द्वारा पानी ऊपर ले जाना आवश्यक होता है। आजकल बिजली या डीजल पम्प सेटों द्वारा इसे उठाकर सिंचाई के लिए भौमजल प्रयुक्त किया जाता है। जल पम्पों द्वारा कुओं, टैंकों या नदियों से भी उठाया जाता है।

माइक्रो सिंचाई : यह ड्रिप और छिड़काव सिंचाई तकनीक है। यह संसाधनों के प्रभावी प्रबंधन के साधन के रूप में उभरा है, इससे पानी और बिजली की बचत होती है। ड्रिप सिंचाई उद्यान फसलों कृषि के लिए सर्वथा उपयुक्त है। यह जल को समान रूप से वितरित करता है जबकि सिंचाई की अन्य प्रणालियों में ऐसा नहीं हो पाता।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

लघु सिंचाई : सभी भौमजल और पृष्ठीय जल परियोजनाएं, जिनका खेती योग्य नहरी क्षेत्र 2000 हैक्टेयर हो।

बहुप्रयोजनीय नदी घाटी परियोजना : बहुत से प्रयोजन जैसे बाढ़ नियंत्रण, सिंचाई, जल विद्युत उत्पादन, नौवहन, मृदा संरक्षण, वनीकरण, मत्स्यपालन, जल आपूर्ति आदि के लिए जलाशय बनाकर, और मजबूत बांध बनाकर तथा नदी तट पर तटबंध या बंध बनाकर जल की समस्या हल करने के प्रयास किए जाते हैं।

3.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1) Aiyer, Ramaswamy R (2011): National Water Policy: An Alternative Draft for Consideration, *Economic and Political Weekly Supplement*, June 25.

2) Banerjee, Rahul (2011): National Water Policy, *Economic and Political Weekly*, August 13.

3) Government of India (2008): Eleventh Five Year Plan 2007-12, Planning Commission, New Delhi.

4) Shah, Tushaar (2004): Water and Welfare: Critical Issues in India's Water Future, *Economic and Political Weekly,* March 20.

3.12 बोध प्रश्नों के उत्तर/संकेत

बोध प्रश्न 1

1) भाग 3.1 देखिए और उत्तर दीजिए।
2) भाग 3.2, उपभाग 3.2.1 और तालिका 3.1 देखिए और उत्तर दीजिए।
3) तालिका 3.1 देखिए और उत्तर दीजिए।
4) उपभाग 3.2.1 देखिए और उत्तर दीजिए।

बोध प्रश्न 2

1) भाग 3.3 और उपभाग 3.31 से 3.3.8 तक 34 उपभाग शीर्षक देखिए और उत्तर दीजिए।
2) उपभाग 3.3.1 देखिए और उत्तर दीजिए 3 उपभाग 33.4 देखिए और उत्तर दीजिए।
3) उपभाग 3.3.4 देखिए और उत्तर दीजिए।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 3

1) भाग 3.3 देखिए और उत्तर दीजिए।
2) उपभाग 3.3.1
3) उपभाग 3.4.2 (बड़ी सिंचाई परियोजनाएं) देखिए और उत्तर दीजिए।
4) उपभाग 3.4.2 (भौमजल के बारे में चिंताएं) देखिए और उत्तर दीजिए।
5) भाग 3.5 देखिए और उत्तर दीजिए।

इकाई 4 स्वतंत्रता पूर्व अवधि में भूमि और कृषि संबंध

संरचना

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 ब्रिटिश शासन पूर्व अवधि में भूमि का स्वामित्व

4.2.1 भू-राजस्व प्रथा

4.2.2 बिचौलिए और भूमि अधिकार

4.3 ग्राम समुदाय

4.4 ब्रिटिश शासन का आगमन और प्रभाव

4.4.1 भू-राजस्व व्यवस्था

4.4.2 पूर्वी भारत: 1793 का स्थायी बंदोबस्त

4.4.3 उत्तरी और मध्य भारत: जमींदारी/महालवारी प्रथा

4.4.4 पश्चिमी और दक्षिणी भारत: रैयतवारी प्रथा

4.5 कृषि का वाणिज्यीकरण

4.5.1 1930 के दशक की व्यापक मंदी का प्रभाव

4.5.2 ऋणग्रस्तता और भूमि अंतरण

4.6 कृषि संरचना और काश्तकारी

4.6.1 कृषि श्रमिक

4.6.2 कृषि संवृद्धि

4.7 सारांश

4.8 शब्दावली

4.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

4.10 बोध प्रश्नों के उत्तर/संकेत

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

4.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप:

- ब्रिटिश शासन से पहले विद्यमान भूमि स्वामित्व की रूपरेखा प्रस्तुत कर सकेंगे;
- भारत में ब्रिटिश शासन के दौरान अंत:प्रदेशीय अंतरों के अनुसार उन्हें श्रेणीबद्ध करते हुए भू-राजस्व में हुए परिवर्तनों की चर्चा कर सकेंगे;
- ''कृषि के वाणिज्यीकरण की अवधारणा'' और उन कारकों के स्पष्ट कर सकेंगे जिनका उन्नीसवीं शताब्दी में उसके अवक्षय में योगदान रहा है; और
- ब्रिटिश शासन की अवधि में कृषि वृद्धि पर उसके परिणामों सहित कृषि और पट्टेदारी संरचना के बीच विद्यमान अंत:संबंध का वर्णन कर सकेंगे।

4.1 प्रस्तावना

प्रौद्योगिकीय कारक, जैसे कि उर्वरक, बीजों की किस्में, नियंत्रित सिंचाई और वैज्ञानिक औजार कृषि विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। परन्तु ''संस्थागत कारक'' जैसे भू-स्वामित्व या काश्तकारी, दूरवासी जमींदारी प्रथा, भू-राजस्व का भार, किसानों की ऋणग्रस्तता आदि भी कृषि विकास प्रोत्साहित करने या बाधित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। वास्तव में, कृषि में प्रौद्योगिकी का अनुप्रयोग स्वत: ही उन संस्थाओं की किस्मों पर काफी निर्भर करता है, जो क्षेत्र विशेष में विद्यमान हैं। इसके अलावा, किसान कृषि का अधिक सफल रूप वहां उभरा है जहां 'खुदकाश्त' या स्वयं अपनी भूमि पर कृषि की प्रधानता थी। इसके अतिरिक्त चूंकि विद्यमान भूमि और कृषि ढांचा (सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक कारकों द्वारा प्रभावित) विकास की प्रक्रिया का परिणाम है, इसलिए इसके ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य ज्ञात करना आवश्यक है। इसी परिप्रेक्ष्य में इस इकाई को दूसरे खंड के प्रारंभ में सम्मिलित किया गया है ताकि स्वांतंत्र्योत्तर अवधि में तदानुसार किए गए विकास कार्यों पर अनुवर्ती इकाई की विषयवस्तु समझने में सहायता मिल सके।

4.2 ब्रिटिश शासन पूर्व अवधि में भूमि का स्वामित्व

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

एक महत्त्वपूर्ण विषय आर्थिक इतिहासकारों की चर्चा का विषय रहा है कि प्राचीन काल में भूमि का स्वामी कौन था, क्या यह किसान था, या कोई बिचौलिया था या राजा था? अधिकांश विद्वान आज इस मत पर सहमत हैं कि राजा भू-स्वामी नहीं था। मुगलकाल के बहुत से दस्तावेज भू-स्वामी के रूप में प्राइवेट व्यक्ति का (जिन्हें मालिक कहा जाता था) उल्लेख करते हैं। परन्तु मामले का मूल प्रश्न यह है कि क्या वास्तविक अर्थ में, (अर्थात् केवल मात्र नाम में नहीं) किसान का अधिकार उसके पूर्ण न्यायिक अर्थ में ''मालिकाना'' शब्द के प्रयोग का अभिप्राय किसान का अधिकार था। वास्तव में, जिस भूमि की जोताई किसान करता था, उस भूमि पर स्थायी और पैतृक दखलकारी के रूप में किसान के स्वामित्व को सामान्य मान्यता प्राप्त थी। उन मामलों में जहां भूमि खेती के योग्य नहीं थी (या उसे पूरी तरह से त्याग दिया गया था) तब वह भूमि खेती के लिए दूसरे किसान को दी जाती थी। परन्तु यदि किसी भी समय उस पर खेती करने के लिए मूल भू-स्वामी अपनी क्षमता पुन: प्राप्त कर लेता था तो भूमि उसे वापस की जाती थी। दूसरी ओर, वास्तविक स्वतंत्र हस्तांतरण का कोई प्रश्न नहीं था (अर्थात् किसान को भूमि बेचने का कोई अधिकार नहीं था)। यह आधुनिक स्वामित्व अधिकार की आवश्यक विशेषता है। जिस तत्परता से प्राधिकारी किसान के स्वामित्व के अधिकार को मान्यता देते हैं और वे भूमि छोड़ने से उसे रोकने में चिंता दिखाते हैं, उस समय के दौरान दोनों बातें स्वाभाविक थीं जब भूमि प्रचुर मात्रा में थी और किसान विरले थे। भूमि की बिक्री भी इतना बड़ा मुद्दा नहीं था, क्योंकि भूमि की दुर्लभता नहीं थी। वास्तव में, वह अधिकार जो सार रूप में स्वामित्व होता है, नियम के रूप में एक व्यक्ति में निहित नहीं थे। परन्तु भूमि से जुड़े हुए विभिन्न पक्षों में वितरित किए गए थे (जैसे काश्तकार (आसामी), भूस्वामी, फसल-बटाईदार आदि)।

4.2.1 भू-राजस्व प्रथा

मुगल शासन की अवधि के दौरान भू-राजस्व प्रथा मुख्यतया इसमें उगाई गई फसलों के परिमाण और उसके अनुमानित मूल्य पर आधाारित थी। प्रत्येक फसल के उत्पादन के मूल्य का आकलन चालू फसल की भूमि की प्रति इकाई उपज को उस फसल के अधीन भूमि के क्षेत्रफल से गुणा करके किया जाता था। तब भू-राजस्व की गणना इस प्रयोजन के लिए नियत अनुपात के आधार पर की जाती थी। चूंकि इस विधि में कुछ निर्णय अधिकारियों पर छोड़ दिए जाते थे, इसलिए व्यवस्था को संशोधित कर भिन्न-भिन्न फसलों के लिए मानक अधिसूचित की गई थी। मुगल प्रशासन के मुख्य उद्देश्य, किसानों की अतिरिक्त फसल बड़ा भाग छीन लेना था। ऐसे तरीके बनाए गए थे, जिनसे न केवल अधिकतम राजस्व सुनिश्चित होता था बल्कि राजा के प्रति किसानों की वफादारी भी सुनिश्चित होती थी।

4.2.2 बिचौलिये और भूमि अधिकार

सिद्धांत रूप में तो केवल राजा ही भू-राजस्व का अधिकारी होता था किंतु व्यवहारिक स्तर पर राजस्व संग्रह में एक छोटा सा शासक वर्ग जुटा होता था। ये बिचोलिए दो प्रकार के थे : जागीरदार और ज़मीनदार।

जागीरदार

ये राजा के वे राज्याधिकारी थे जिन्हें राजा ने भूमि ईनाम या उपहार में दे दी थी। इनके कुछ पद (मनसब) होते थे। प्रत्येक मनसबदार को एक स्तर विशेष का 'वेतन' मिलता था। वह वेतन वे राजा द्वारा प्रदत्त भू-क्षेत्र से राजस्व एकत्र कर प्राप्त करते थे। ये भू-क्षेत्र उस (स्थान) पर संभावित कृषि उत्पादन के अनुमान के अनुसार निर्धारित होता था। राजस्व के रूप में एकत्र कुल राशि का मनसबदारी वेतन पर आधिक्य राजकोष में जमा किया जाता था। यद्यपि मनसबदारी के पद पैत्रक नहीं थे किंतु बड़े मनसबदारों के परिणामों को ही उनका उत्तराधिकारी मान लिया जाता था। जागीर के इस अस्थाई स्वरूप के कारण बादशाह का जागीरदारों पर कड़ा नियंत्रण बना रहता था।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

ज़मींदार

'जमींदार' फारसी भाषा का शब्द है। इसका अर्थ है भू-धारक/जमींदार का मूल अधिकार तो किसानों पर भू-राजस्व के अतिरिक्त अधिकार लगाने का था। वे गृह कर, वनोत्पाद कर, जल कर आदि लगा सकते थे। ये जमींदारों के नाम लिखे गए भूविक्रय पत्रों में अंकित होते थे? जमींदार भी जागीरदारों की भांति मूल कृषकों से राजस्व की उगाही करते थे और उसमें से 10 प्रतिशत अपना मेहनताना पाते थे। ये मेहनताना उन्हें राजस्व राशि में से नगद या फिर राजस्व मुक्त भूमि के आबंटन के माध्यम से मिलता था। जमींदारी अधिकार एक संपदा अधिकार की ही भांति प्रचलित परम्पराओं और कानूनों के अनुसार उत्तराधिकारियों को अंतरणीय था।

अतः मुगलकाल में जागीरदार और ज़मींदार नामक दो बिचौलियों के समूह बहुत महत्त्वपूर्ण थे। इनका प्रत्यक्ष कृषि उत्पादन में कोई योगदान नहीं होता था। कृषि उत्पादक की देयताएं तो कानूनी रूप से नियत थीं, किंतु वास्तव में उससे क्या कुछ

वसूल किया जाता था – वह जमींदारों और जागीरदारों की ताकत और मानसिकता पर निर्भर रहता था। मुगल साम्राज्य के अंतिम काल में तो ये व्यवस्था बहुत ही दमनकारी बन गई थी।

4.3 ग्राम समुदाय

ब्रिटिश शासन पूर्व अवधि में ग्रामीण जीवन की उल्लेखनीय विशेषता विनिर्माण कार्य से कृषि कार्य का संयोजन था। उत्पादन मुख्यतया प्रत्यक्ष उपयोग के लिए था और राजस्व का भुगतान करने के बाद अधिशेष बाजार में बेचा जाता था। कस्बे से गांव का संबंध अधिकतर एकतरफा था, अर्थात् उसे बदले में मुश्किल से कोई वस्तु प्राप्त होती थी। (नमक और मिट्टी तेल को छोड़कर) और उनकी प्रायः सभी आवश्यकताएं गांव के अंदर से ही पूरी की जाती थीं। सामान्यतया गांव के किसान भी एक ही वंश का होने का दावा करते थे और उनका आपसी भाईचारा भी होता था। रक्त संबंध से जुड़ी इस भ्रातृत्व की भावना की पैठ गांव की सामाजिक व्यवस्था में बहुत गहरी होती है। यह भावना किसानों को एकता के उस सुदृढ़ तरीके से बांधे रखती है जिसकी केवल पड़ोसियों से आशा नहीं की जा सकती। गांव में प्राधिकारों का प्रयोग परम्परागतरूप से पंचायत नाम की पांच प्रौढ़ व्यक्तियों की परिषद द्वारा किया जाता था।

यद्यपि कुछ विद्वानों का आग्रह है कि भूमि पर किसानों का सांझा अधिकार होता था, किंतु अन्य विद्वानों ने राय व्यक्त की है कि अलग-अलग परिवारों की अपनी-अपनी अलग जोत होती थी और केवल वन तथा चराई भूमि पर सभी का सांझा अधिकार होता था। किसानों की समरूपता के स्वरूप पर भी मतों पर अंतर हैं, क्योंकि किसानों में आर्थिक अंतर मुगलकाल के दौरान उत्पन्न हुआ हो गया था। यह उल्लेख किया गया है कि मुगल साम्राज्य के अन्य भागों की तरह उत्तर भारत में भी कुछ बड़े किसान थे जो बेचने के लिए फसलें उगाते थे और कुछ छोटे किसान थे जो केवल अपनी निर्वाह के लिए खाद्यान्न पैदा करते थे। इसके अलावा, किसानों में इस अंतर के बाद भी ऊंची और नीची जातियों के आधार पर अधिक सुस्पष्ट विभाजन थे। बीज, पशु और धन में अपने संसाधनों के आधार पर किसान बड़े या छोटे भूखंडों में खेती कर सकते थे। अधिक बड़े भूमि जोतों को या तो गांव के मुखिया या गांव के प्रभुत्वशाली तत्त्वों के सदस्य के रूप में प्राप्त स्थिति या पदस्थिति से जोड़ा गया था।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 1

लगभग 50 शब्दों में उत्तर दीजिए।

1) क्या आप सोचते हैं कि ब्रिटिश शासन पूर्व अवधि के दौरान जो किसान वास्तव में खेत जोतते थे, उन्हें स्पष्ट रूप से न्यायिक दृष्टि से "स्वामित्व अधिकार" प्राप्त थे?

....

....

....

2) ब्रिटिश शासन पूर्व अवधि में फसलों की उपज के मूल्य का आकलन कैसे किया जाता था?

....

....

....

....

3) बिचौलिए के उन प्रकारों के नाम बताइए जो ब्रिटिश शासन पूर्व अवधि में भू-राजस्व संग्रह करते थे? उन दोनों के बीच क्या अंतर हैं?

....

....

....

....

4) वे कौन से मुख्य कारक थे जिन्होंने भारत में ब्रिटिश शासन पूर्व अवधि के दौरान ''ग्राम समुदाय'' को ''एक आत्मनिर्भर इकाई'' के रूप में एकीकृत रखा ?

....

....

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

4.4 ब्रिटिश शासन का आगमन और प्रभाव

जैसा कि हमने ऊपर देखा है, भारत पर ब्रिटेनवासियों के आक्रमण से पहले ग्रामीण समुदाय कृषि और विनिर्माण कार्यों के मिश्रण से आत्मनिर्भर थे। ब्रिटिश शासन के दौरान ग्राम उद्योग व्यापक रूप से नष्ट किये गए। इसके फलस्वरूप कारीगरों ने कृषि अपनायी और वह भी अधिकांशतः कृषि श्रमिक के रूप में। इसके कुछ तात्कालिक परिणाम भी हुए :

(i) भूमि बाजार का निर्माण (ii) किरायों में वृद्धि; (iii) ऋणग्रस्तता; (iv) बिचौलियों के स्तरों का निर्माण (v) बार-बार दुर्भिक्ष (vi) जनसंख्या के एक वर्ग की दुर्बलता, आदि। हम इस अनुभाग में भारत के कृषि विकास के आर्थिक महत्त्व के कुछ विशेष क्षेत्रों पर ब्रिटिश शासन के मुख्य प्रभाव पर विचार करेंगे।

4.4.1 भू-राजस्व व्यवस्था

ब्रिटिश शासन काल के दौरान भू-राजस्व व्यवस्था में कई संशोधन लागू किए गए। उदाहरण के लिए, ईस्ट इंडिया कंपनी में वर्ष 1765 में बंगाल, बिहार, उड़ीसा के कुछ भागों के वित्तीय अधिकार अपने हाथ में ले लिए। कंपनी की मुख्य रुचि (i) अपने व्यापार और वाणिज्य के वित्त पोषण के लिए और (ii) देश में अपने शासन को सुदृढ़ करने तथा विस्तार करने के लिए सेना को बनाए रखने के लिए अधिक

से अधिक राजस्व एकत्र करना थी। अधिक राजस्व प्राप्त करने के लिए उच्चतम बोली लगाने वाले को जमींदारी की नीलामी की जाती थी। इस नीति ने भू-संपत्ति का गठन ही बदल दिया, क्योंकि बहुत से पुराने जमींदार नई व्यवस्था में प्रतिस्पर्धा नहीं कर सके। नीलामी में सबसे ऊंची बोली लगाने वाले अनिवार्यतः वे लोग होते थे जिनका व्यापार और वाणिज्य में सहभागिता द्वारा नए प्रशासन से संबंध होता था। इस प्रकार किसानों को पूरी तरह से इस परिवर्तन से दूर रखा गया था और अक्षरशः बेईमान जमींदारों द्वारा भी लूटा गया। इसके परिणाम में बार-बार दुर्भिक्ष होते थे और जन हानि होती थी। ये व्यवस्था 1793 में स्थायी बंदोबस्त तक चलती रही। भूमि के बड़े-बड़े क्षेत्र बंजर हो गए।

4.4.2 पूर्वी भारतः 1793 का स्थायी बंदोबस्त

बंगाल और बिहार में 1793 के स्थायी बंदोबस्त में जमींदारों को "भूमि का स्वामी" घोषित किया और राज्य को उनकी देय राशि नियत की गई। यह युक्ति न केवल राजस्व की निश्ंचितता सुनिश्चित करने के लिए थी बल्कि कंपनी के व्यापार की समृद्धि के लिए भी सोची गई थी। वह युक्ति और ब्रिटेन में औद्योगिक क्रांति एक ही समय में हुए और इसके लिए भारत से निर्यात के लिए, विशेष कर कृषि से, विभिन्न प्रकार के माल का व्यापार खूब बढ़ रहा था, इसलिए इसे महत्त्वपूर्ण समझा गया। भूमि को निजी संपत्ति बनाने से भूमि के विशाल क्षेत्र में धनी निवासियों द्वारा कृषि में निवेश के लिए उपयुक्त स्थितियां बनने की आशा की गई थी। इससे संबद्ध उद्देश्य ब्रिटिश शासन को अधिक स्थायित्व प्रदान करने के लिए वफादार समर्थकों (अर्थात् जमींदारों) के वर्ग का निर्माण करना था। परन्तु आशाएं केवल आंशिक रूप में ही पूरी हुई। जहां तक वफादार समर्थकों के वर्ग के निर्माण का संबंध था, ब्रिटिश शासन को पर्याप्त मात्रा में सफलता मिली। परन्तु नए (अर्थात् ब्रिटिश संरक्षण का लाभ प्राप्त करने के लिए जमींदार (बने) और पुराने भी (अर्थात् जो पहले से ही ऐसा कार्य रहे थे) दोनों कृषि को पूँजीवादी बनने में असफल रहे। परन्तु वे सामंती मालिक बन गए। इस प्रकार पूँजी का निवेश कृषि विकास के लिए नहीं किया गया बल्कि भूमि खरीदने में किया गया। इसके अलावा, समय गुजरने के साथ-साथ राज्य और काश्तकारों के बीच बिचौलियों की एक बड़ी श्रृंखला अस्तित्व में आई। जमींदारों से राज्य को राजस्व (स्थायी बंदोबस्त) के रूप में नियत राशि का भुगतान करने की आशा की गई थी जो 1793 में जमींदारों द्वारा एकत्रित किए गए राजस्व का 90 प्रतिशत था। कीमतों में वृद्धि से जमींदारों की आय का मूल्य भी गिरता गया। राज्य ने भी राजस्व में संभावित वृद्धि को खो दिया क्योंकि वह तो मौद्रिक रूप में नियत था। चूंकि किराये विनियमित नहीं थे इसलिए इसकी सबसे बड़ी मार किसानों पर पड़ी और कृषि उत्पाद मूल्य में हुई प्रत्येक वृद्धि जमींदार हड़प जाते थे। इसलिए उड़ीसा और असम में बंगाल मॉडल नहीं अपनाया गया क्योंकि ब्रिटिश शासन ने अनुभव किया कि स्थायी बंदोबस्त द्वारा भू-राजस्व के नियत करने से उन्हीं पर सबसे अधिक प्रभाव होता था क्योंकि यही राज्य की आय का सबसे बड़ा साधन था। इसे ध्यान में रखते हुए उड़ीसा और असम के बंदोबस्तों में भूमि से राजस्व की मांग नियत नहीं रखी गई बल्कि समय-समय में बढ़ाई गई।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

4.4.3 उत्तरी और मध्य भारत : जमींदारी/महालवारी प्रथा

उत्तरी भारत में अपनायी गई राजस्व प्रथा जमींदारी और महालवारी प्रथाओं का मिश्रण है। यद्यपि जमींदारी प्रथा में राजस्व आकलन के लिए मूल इकाई ''प्राथमिक किसान'' था, ''महालवारी'' प्रथा में राजस्व आकलन की इकाई ''ग्राम'' था। प्रारंभ में बंगाल की किस्म के स्थायी बंदोबस्त का अनुसरण उत्तरी क्षेत्र में किया गया था। 1816 के बाद राजस्व की वृद्धि के विचार के फलस्वरूप नियत राजस्व प्रथा त्याग दी गई। परन्तु पंजाब और संयुक्त प्रांतों के कुछ भागों में महालवारी प्रथा पर प्रयोग किया गया। इसमें राजस्व की भुगतान करने की किसान और ग्राम स्वामित्व निकाय (अर्थात् ग्राम सभा) दोनों की संयुक्त जिम्मेदारी थी। भारत के मध्य भागों में ब्रिटिश शासन की प्रारंभिक दशाब्दियों में ''अत्यधिक आकलन'' की नीति अपनाई गई थी। इसके अधीन भूमि का आकलन इतना अधिक किया गया कि भू-राजस्व का भुगतान करना असंभव हो गया। इससे बहुत लोग दरिद्र बन गए। घोर विरोध और निंदा के बाद 1834 में बीस वर्ष के लिए अधिक लंबा बंदोबस्त किया गया जो 1860 के दशक तक जारी रहा। बाद में 1864 में नए बंदोबस्त के अधीन राजस्व भुगतानकर्ताओं को अपनी संपत्ति बेचने या बंधक रखने के अधिकार सहित भूमि के मालिक के रूप में मान्यता दी गई। काश्तकारी अधिकार भी खेतिहरों को प्रदान किए गए। इसके अलावा, सिद्धांत रूप में संपदा के किराये के डेढ़ गुणा तक सीमित कर भू-राजस्व प्रथा क्रियान्वित की गई। परन्तु व्यवहार में, आकलन/संग्रहण के समय नियमों का विरले ही पालन किया गया।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

4.4.4 पश्चिमी और दक्षिणी भारत: रैयतवारी प्रथा

पश्चिमी प्रांत में अपनाई गई भू-राजस्व प्रथा ''रैयतवारी प्रथा'' थी। इसमें बंदोबस्त सामान्यतया 30 वर्षों की नियत अवधि के लिए था। रैयतवारी बंदोबस्त में ''रैयती किसान'' को ''मालिक'' के रूप में स्वीकार किया जाता है और सकल उत्पाद के अनुमानित मूल्य के आधार पर भू-राजस्व स्थायी रूप से नियत किया जाता था। किसान को या तो उपहार या बिक्रीनामा द्वारा भूमि किराए या बंधक या अंतरण करने की अनुमति थी। इसके अलावा ''रैयत'' (अर्थात् किसान) को तब तक नहीं निकाला जा सकता था जब तक वह राजस्व का भुगतान करते रहता था। इसी प्रकार यहां तक कि मद्रास प्रेजिडेंसी में भी (आंध्र के तटीय क्षेत्रों को छोड़कर जहां जमींदारी प्रथा लागू की गई थी) रैयतवारी प्रारंभ की गई। समस्त अनजुती भूमि सरकार के नियंत्रण के अधीन मान लिया गया जिसे वह नए ढंग से आकलित दरों पर खेती के लिए दे सकती थी। यद्यपि प्रथा किसान के स्वामित्व के अनुकूल थी परन्तु इसमें बड़े भू स्वामी ही आ पाते थे, जैसा केरल के मालावार क्षेत्र के मामले में हुआ था।

बोध प्रश्न 2

लगभग 50 शब्दों में उत्तर दीजिए।

1) ग्राम उद्योगों विषयक ब्रिटिश शासकों की नीति के ''ग्राम समुदाय'' के सहचारी स्वरूप पर तात्कालिक परिणाम क्या रहे?

....

....

....

2) ब्रिटिश शासकों द्वारा कृषि वर्ग से भू-राजस्व उगाही के पीछे दो मूल उद्देश्य क्या थे?

....

....

....

3) उड़ीसा और असम में राजस्व वसूली के लिए ''स्थायी बंदोबस्त'' का बंगाल मॉडल क्यों नहीं अपनाया गया?

....

....

....

4) जमींदारी और महालवारी प्रथाओं में राजस्व आकलन की बुनियादी इकाइयां क्या थीं? इन दो प्रथाओं की तुलना में रेयतवारी प्रथा में ''रैयत किसान'' को दिए गए बुनियादी अधिकार क्या थे?

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

....

5) भूमि में ''निजी संपत्ति'' के निर्माण के पीछे ब्रिटिश शासन की दो आशाएं क्या थीं? किस सीमा तक इसे प्राप्त किया जा सका और क्यों?

....

....

....

4.5 कृषि का वाणिज्यीकरण

ब्रिटिश शासन के दौरान कृषि का वाणिज्यीकरण (देखिए शब्दावली) रेलवे के आने से संभव हुआ था। किसानों को उत्पाद दूर बाजारों में बेचने और निर्यात करने का अवसर मिल गया था। इस अवधि में गुणात्मक और परिमाणात्मक दोनों आयामों के बड़े परिवर्तन भी हुए। गुणात्मक परिवर्तनों (रेलवे के प्रवर्तन के अलावा) में शामिल थे: (i) संरोधों का उन्मूलन जैसे तौलों और मापों की विविधता के रूप में बाजार की त्रुटियां (ii) अप्रचलित/जोखिमी परिवहन प्रणालियों में सुधार (iii) व्यापार के तरीके के रूप में वस्तु विनिमय के व्यापक प्रयोग का न्यूनीकरण। इन उपायों से विश्व, क्षेत्रीय और स्थानीय बाजारों का अधिक निकट आना संभव हुआ। इस प्रकार भारत कृषि निर्यात में विशेषज्ञ बनने लगा। दूसरी ओर, परिमाणात्मक परिवर्तनों में शामिल थे (i) 1870 और 1914 के बीच लगभग 500 प्रतिशत तक निर्यात के मूल्य में

वृद्धि; (ii) भारत से कुल निर्यात का 70-80 प्रतिशत अविनिर्मित माल था, (iii) 1870-1920 की अवधि के दौरान अधिकांश प्रदेशों में फसली क्षेत्रफल में वृद्धि; (iv) विक्रेय फसलों में वृद्धि, जैसे गेहूं, कपास, तिलहन, गन्ना और तंबाकू आदि। इसके फलस्वरूप न केवल कृषि मूल्य बढ़े बल्कि किराया भी बढ़ा। इसलिए कृषि का व्यापारीकरण से न केवल भूमि अंतरण और भूमि मूल्य की मात्रा में वृद्धि हुई बल्कि इससे साख आधारित लेनदेन की संख्या भी बढ़ी।

एक बार फिर कृषि के वाणिज्यीकरण के लाभ केवल समाज के कुछ प्रभावशाली वर्गों तक पहुंचे। इस प्रक्रिया में इसने गरीब किसानों और धनी जमींदारों के बीच की खाई और भी अधिक चौड़ी कर दी। उदाहरण के लिए, 20वीं शताब्दी के बाद के वर्षों के दौरान कृषि के वाणिज्यिक विस्तार ने नई फसलों, नए परिवहन नेटवर्क और बाजार की बढ़ती गतिविधियों का मार्ग प्रशस्त किया। इन में विकास के लिए संसाधनों की सुलभता आवश्यक थी, जैसे साख, विद्युत, भंडारण/परिवहन सुविधाएं और बाजार। उस संरक्षण के कारण, जो उपनिवेशी सरकार ने किसानों और जमींदारों के प्रभावशाली वर्ग को दिया था, वह इन संसाधनों पर नियंत्रण रख सकते थे और वे अधिक से अधिक लाभ कमा सकते थे। काश्तकारी कानून, (जैसे 1885 का बंगाल काश्तकारी अधिनियम) ने बारह वर्ष तक किराये पर किसी की भूमि जोत चुके किसानों को उस भूमि पर स्थायी अधिकार दे दिया था। वे अब इसे गिरवी भी रख सकते थे। इससे ग्रामीण समाज के एक वर्ग को प्रभावशाली बना दिया था। इस प्रकार आर्थिक सफलता उन लोगों का विशेष अधिकार बन गया जो भरण, बाजार और बुनियादी सुविधाओं की पक्षपात पूर्ण सुलभता प्राप्त करने के लिए समाज में अपनी स्थिति का प्रयोग कर सकते थे।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

4.5.1 1930 के दशक की व्यापक मंदी का प्रभाव

कृषि में व्यापारीकरण के लाभ व्यापक मंदी की अवधि के दौरान घटने शुरू हुए। आयात मूल्यों की तुलना में निर्यात कीमतें अधिक तेजी से गिरीं। यह घटनाक्रम कृषि के विरुद्ध गया। इससे निजी स्वामित्व के स्वर्ण का निर्यात बढ़ा, ये अधिकांश आपद कालिक बिक्री थी, क्योंकि, अधिकांश सोना किराया और भू-राजस्व की मांग पूरा करने के लिए बेचा जा रहा था। यह व्यापारियों और देशी बैंकरों के दिवालिये द्वारा भी प्रभावित था जिनके व्यापार को तरलता संकट के कारण हानि हुई थी। इससे पूँजी की वास्तविक लागत में भी वृद्धि हुई, यहां तक कि धनी किसान भी पूँजी प्रधान तरीकों/पद्धतियों में कटौती करने के लिए विवश हुए। श्रम लागत भी बढ़ी जिससे बड़ी जोत के किसानों को भी भाड़े के श्रमिकों पर व्यय में कटौती करने के लिए बाध्य होना पड़ा। अन्यत्र भी ऐसी ही दशाओं के कारण कृषि से बाहर रोजगार के अवसरों की भी कमी हो गई। इस प्रकार मंदी ने धनी जमींदारों की शक्ति को भी अधिक सुदृढ़ किया। इस प्रकार संपत्तिशाली वर्ग परिणामों से लाभान्वित हुआ जबकि गरीब किसान अत्यंत संकटग्रस्त हुए।

4.5.2 ऋणग्रस्तता और भूमि अंतरण

ब्रिटिश शासन में ग्रामीण ऋणग्रस्तता भी बहुत ही व्यापक थी। उच्चतर निवेश की आवश्यकता के कारण व्यापारीकरण ने ऋण की आवश्यकता को बढ़ाया। अन्य जिन कारकों से ऋणग्रस्तता बढ़ी वे भिन्न-भिन्न श्रेणी के लोगों के लिए अलग-अलग थे। इन में शामिल थे (i) तैयार फसल से पहले खाद्यान्न खरीदना (विशेष कर खाद्यान्न से भिन्न फसलें उगाने वाले/किसानों द्वारा) (ii) किराये और राजस्व का भुगतान नकदी में, (iii) नकदी फसलों की विपणन की आवश्यकताएं पूरा करना (iv) नकदी फसलों जैसे गन्ना, कपास और तंबाकू आदि के लिए उच्चतर निवेश लागतों का वित्तपोषण। इन परिवर्तनों के साथ–साथ फसल विफलता थी जिसके फलस्वरूप किसानों और यहां तक कि कभी-कभी जमींदार भी ऋण चुकाने में अपने आपको असमर्थ पाते थे। इससे जोत भूमि की आपदा कालिक बिक्री की जाती थी। अनेक वर्षों तक इस प्रकार की बिक्री की संख्या बढ़ी थी। इस प्रकार ऋणग्रस्तता ने बहुत से किसानों को गरीब कृषि मजदूर बनने के लिए बाध्य कर दिया।

4.6 कृषि संरचना और काश्तकारी

ब्रिटिश शासन की अवधि के दौरान भूमि स्वामित्व और भूमिधारण ढांचे में कई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए। भिन्न-भिन्न प्रदेशों में कृषि ढांचे में पर्याप्त विविधता दिखाई दी। पूर्वी भारत में जमींदारों का स्वामित्व भूमि के बहुत बड़े भाग पर था। और बम्बई, मद्रास प्रेजीडेंसी के रैयतवारी क्षेत्र में किसानों का स्वामित्व काफी अधिक था। अन्यत्र दशाएं इन दो प्रकार की स्थितियों के बीच की थीं। ब्रिटिश राजस्व बंदोबस्तों का बल प्रायः जमींदारी प्रथा में बिचौलियों के दावों को मजबूत करने पर रहा था। इस प्रवृत्ति को वाणिज्यीकरण ने और सुदृढ़ किया। जैसे ही कृषि मूल्य बढ़े, जमींदारों और साहूकारों ने किसानों से उनके स्वामित्व की भूमि खरीद ली। जिन किसानों ने इस प्रकार अपनी भूमि गंवाई, उन्हें आवश्यक रूप से भूमि से निकाला नहीं गया। पुराने किसानों ने बटाई के आधार पर आसामी किसान के रूप में अपने बेचे हुए भूखंडों पर खेती की।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध के दौरान दक्षिण भारत में जनसंख्या की तुलना में खेती का क्षेत्रफल अधिक तेजी से बढ़ा। गोदावरी और कृष्णा नदियों पर विशाल सिंचाई कार्य पूरे किए गए। नकदी फसलों, जैसे कपास, मूंगफली और तिलहनों की खेती बढ़ी। वर्ष 1881–82 से 1915–16 के बीच कृषि पण्यवस्तुओं की कीमतें अन्य कीमतों की तुलना में अधिक तेजी से बढ़ीं और व्यापार की शर्तें कृषि के पक्ष में रहीं। भू-राजस्व का भार गिरा। किसान भूमि में निवेश करने में सक्षम हुए। कुछ क्षेत्रों में विशेषकर गोदावरी और कृष्णा डेल्टा, में प्रगति तेज थी। इससे भूमि की कीमतों में जबरदस्त बढ़ोतरी हुई। धनी किसानों ने अपने कार्यकलापों के क्षेत्र का विस्तार किया और चावल मिलों, माइका और अन्य उद्योगों में निवेश किया। उन्होंने अपने साहूकारी व्यापार का भी विस्तार किया और बैंकिंग का कार्य आरंभ किया।

पश्चिमी भारत में उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दियों के उत्तरार्ध प्रारंभ की अवधि में धनी किसानों की संख्या बढ़ी, इससे किसान वर्ग में स्तर भी बढ़े। यहां भी, नकदी

फसलों, जैसे गन्ना, तंबाकू, मूंगफली और कपास की खेती का विस्तार हुआ। किसानों के छोटे से वर्ग ने, जिनके पास बाजार में बिक्री के लिए अधिशेष होता था, बहुत मुनाफा कमाया और उसे वापस कृषि में निवेश किया। सिंचाई, ठेले खरीदने, और अपने इलाकों से बाहर अपने अनाज के लिए बेहतर बाजार ढूंढने में निवेश किया गया था। इन धनी किसानों ने, जो नए बाजार के अवसरों के समझने में सक्षम थे, प्राय: परम्परागत साहूकारों के बदले गांव में ऋण के स्रोत के रूप में भी कार्य किया। उन्होंने उन छोटे-छोटे किसानों की भूमि भी खरीदी जो बहुधा भारी कर्ज में डूबे हुए थे।

पूर्वी भारत में जमींदारों ने ऐसी ज्यादतियां कीं कि सरकार को संभावित विद्रोह रोकने के लिए हस्तक्षेप करना पड़ा। स्थायी बंदोबस्त के बाद बंगाल में दो मुख्य काश्तकारी अधिनियम बनाए गए: 1859 का किराया अधिनियम और 1885 का बंगाल काश्तकारी अधिनियम। काश्तकारी अधिनियम के अधीन स्थायी कर्षण अधिकार उन रैयतों को प्रदान किए गए जिनका बारह वर्षों तक लगातार किसी भी भूमि पर कब्जा रहा था। ऐसे कर्षण अधिकारी रैयत अपने जोतों पर स्वयं खेती नहीं करते थे और विशेषकर उनमें से अधिकांश कुछ बड़े रैयत थे जो आगे बटाई आधार पर अपनी भूमि पट्टे पर दे देते थे। यह मुख्य रूप से कर्षणाधिकारी काश्तकारों और बटाईदार काश्तकारों द्वारा दिए गए किरायों में भारी अंतर के कारण उत्पन्न हुआ। जो कर्षणाधिकारियों को भारी लाभ देता था। यह संभव था, क्योंकि गैर-कर्षणाधिकारी काश्तकारों द्वारा देय किराये की वृद्धि के विरुद्ध कोई कानूनी संरक्षण नहीं था। 1948 में स्थिति इतनी खराब थी कि जमींदारी उन्मूलन समिति की रिपोर्ट ने कहा कि उत्तर पश्चिमी प्रांतों के अधिकांश भागों में भूमि का बहुत बड़ा भाग (अर्थात् कुल के आधे से भी अधिक) बड़े जमींदारों के छोटे से ऐसे समूह के स्वामित्व में हैं जो कुल जनसंख्या के केवल 1.3 प्रतिशत हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

4.6.1 कृषि श्रमिक

इस विचार के विपरीत कि ब्रिटिश पूर्व भारत की परम्परागत ग्रामीण अर्थव्यवस्था में दूसरे के खेतों में पूरी तरह कृषि श्रमिक के रूप में काम करने वाले व्यक्तियों की संख्या बहुत अधिक नहीं थी परन्तु जनगणना के आंकड़े बताते हैं कि कृषि में ''मजदूरी श्रमिकों'' के अनुपात में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। इसके लिए दो कारकों की पहचान की गई है; ये थे: (i) वि-औद्योगिकीकरण और (ii) किसान वर्ग की बेदखली। इसके अलावा, भूमिहीन श्रमिक, अधिकांशत: निचली जातियों से थे। कृषि श्रमिकों की संख्या में वृद्धि के बावजूद कृषि मजदूरी स्थिर रही। इसके कारणों में में शामिल थे, (i) नकदी फसलों की भूमि के क्षेत्रफल में वृद्धि (ii) रेलवे निर्माण/विस्तार पर कार्य और (iii) नहर खुदवाई कार्य। इन सभी कारणों से उन दलित वर्गों की सामाजिक प्रस्थिति में सुधार हुआ जो अधिकांशत कृषि श्रमिक थे। उनके रोजगार में विवशता और बाध्यता का तत्त्व कमजोर हुआ और विभिन्न प्रकार के सामाजिक उत्पीड़न (जैसे ऊंची जातियों के संबंध में लागू परिधान संहिता और आचार संहिता) भी बहुत कमजोर हो गया । कृषि के अंदर और बाहर प्रवासन (जैसे प्लांटेशन, खान, शहरी सेवाएं, सार्वजनिक कार्य आदि) बढ़ गया। इस प्रकार कृषि श्रमिकों की स्थिति काफी सीमा तक सुधर गई।

4.6.2 कृषि संवृद्धि

अपनी आजीविका के लिए भूमि पर निर्भर रहने वाले व्यक्तियों के विभिन्न समूहों के बीच संबंधों का ऐसा नेटवर्क था जो भूमि में निवेश करने को प्रोत्साहन नहीं दे रहा था। कृषि उत्पादन की काफी मात्रा उन परजीवी अधिकार धारकों के लिए आरक्षित की जाती थी जो कृषि कार्य में सहयोग के बिना आय प्राप्त करते थे। निवेश के लिए वास्तविक किसान के पास कोई अधिशेष प्रोत्साहन नहीं रहता था। किसान भी जोखिम से बचा करते थे और अपनी खराब आर्थिक स्थिति और प्रोत्साहनों के अभाव के कारण परिवर्तन का विरोध किया करते थे। कानूनी, आर्थिक और सामाजिक संबंधों के इस जटिल नेटवर्क ने प्रभाव उत्पन्न करने का काम किया जिसे डेनियल थॉर्नर ने अंत:निहित अवसाद (बिल्ट–इन–डिप्रेशर) नाम दिया।

शुद्ध परिणाम यह था कि कृषि वृद्धि निम्न से अवरुद्ध प्राय: तक ही रही। वर्ष 1891 से 1947 तक की अवधि के दौरान कृषि उत्पाद केवल 0.37 प्रतिशत प्रति वर्ष बढ़ा जब कि जनसंख्या वृद्धि 0.67 प्रतिशत प्रतिवर्ष थी। विशेषकर खाद्यान्न उत्पादन की वृद्धि दर तो केवल 0.11 प्रतिशत थी। हम जानते ही हैं कि 1921 के बाद जनसंख्या वृद्धि तेजी से बढ़ी (ये वृद्धि दर 1 प्रतिशत से भी अधिक थी) परन्तु खाद्यान्न उत्पादन पर्याप्त तेजी से नहीं बढ़ सका। इसके फलस्वरूप प्रतिव्यक्ति उत्पादन स्पष्ट रूप से गिर गया। परन्तु वाणिज्यिक फसल उत्पादन तेजी से, लगभग दुगुना, बढ़ा। सामान्यतया रैयतवारी और महालवारी क्षेत्रों में उत्पादन वृद्धि अधिक ऊंची थी। वृहद् बंगाल ऐसा क्षेत्र था जहां भूमि पट्टेदारी संरचना सबसे अधिक प्रतिगामी थी। किराया आय पर निर्वाह करने वाले परजीवी बिचौलियों के कई स्तर थे। यद्यपि पंजाब में भी किराया काश्तकारी के अधीन क्षेत्र काफी अधिक था, पट्टेदार अधिकतर छोटे भू-स्वामी थे, जिन्होंने भूमिस्वामियों से भूमि पट्टे पर ली थी और अपनी खेती की देखभाल के लिए गांव में रहते थे। पंजाब में काश्तकारी मूलरूप से उन मालिकों द्वारा श्रमिक जुटाने का एक तरीका था जिनकी जोत उस मात्रा से अधिक थी जिसे वे अपने परिवार के श्रम से खेती कर सकते थे। पंजाब में कृषि वृद्धि का महत्त्वपूर्ण स्रोत सिंचाई कार्य का विस्तार और कृषि के अधीन कुल क्षेत्र था। यद्यपि समग्र रूप से भारत में ब्रिटिश शासन सिंचाई की उपेक्षा करता रहा था, फिर भी पंजाब में सिंचाई पर बहुत अधिक निवेश किया गया था। अधिक विशिष्ट रूप से 1901–02 से 1913–40 के दौरान पंजाब में सरकारी नहरों द्वारा सिंचित क्षेत्रफल लगभग 4.5 मिलियन एकड़ से बढ़कर 12.5 मिलियन एकड़ हुआ और इसी अवधि में कृषित क्षेत्र 23 मिलियन एकड़ से बढ़कर 31 मिलियन एकड़ हो गया था।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

उन क्षेत्रों में, जहां कृषि विकास अवरुद्ध था, इसके लिए जिम्मेवार दो कारकों की पहचान की गई है। ये हैं: (क) भूमि के अधिकारों की संरचना और (ख) संसाधन उपलब्धता। जमींदारी क्षेत्रों में वाणिज्यीकरण के लाभ किराये खाने वालों के पक्ष में अधिक थे जो सीधे खेती नहीं करते थे। रैयतवारी बंदोबस्त में किसानों के एक वर्ग को अधिक लाभ होता था। इस प्रकार श्रेष्ठतर अधिकारों और गैर-कृषि पृष्ठभूमि का प्रतिकूल संयोजन ही कम निवेश और भूमि उत्पादकता में निम्न वृद्धि के लिए उत्तरदायी था। जल, भूमि और व्यक्ति–प्राकृतिक और मानवनिर्मित दोनों कारकों के

संसाधनों से जुड़े वितरण बहुत असमान थे। चावल उगाने वाले प्रदेशों, जैसे बंगाल, बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश में, उच्च जनसंख्या घनत्व था, जबकि दक्षिणी चावल क्षेत्रों में जैसे कावेरी डेल्टा और गोदावरी कृष्णा डेल्टा ने वाणिज्यिक दृष्टि से अच्छा निष्पादन किया। दक्षिण के इन दोनों क्षेत्रों के दो विशिष्टताएं सांझी थी, (क) अच्छी सिंचाई, जिसने शुष्क ऋतु फसलों से चावल का संयोजन करना संभव बनाया, और (ख) अल्प जनसंख्या घनत्व मोटे अनाज (ज्वार, बाजरा आदि) पैदा करने वाले शुष्क प्रदेशों में पर्याप्त भूमि है। जब नहर सिंचाई ने भूमि को कृषि योग्य बनाया (जैसा कि पंजाब और पश्चिमी उ.प्र. में) तो शुष्क क्षेत्र प्रति किसान औसत भूमि के आधार पर तो अधिक अच्छे माने गए। इन क्षेत्रों को, जिन्हें अभी तक मोटे अनाजों के ही योग्य माना जाता था, नकद फसल में विविधता आ सकी, जैसे गेहूं और कपास। परन्तु प्रगति के मानवनिर्मित ऐसी दशाएं केवल सीमित स्तर पर ही उपलब्ध रही हैं।

बोध प्रश्न 3

लगभग 50 शब्दों में उत्तर दीजिए।

1) वे प्रमुख परिमाणात्मक परिवर्तन क्या हैं जिन्हें ब्रिटिश शासन अवधि के दौरान ''कृषि के वाणिज्यीकरण'' की दिशा में लागू किया गया?

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

2) वे चार मुख्य परिमाणात्मक परिवर्तन क्या थे जो ''भारतीय कृषि का वाणिज्यीकरण'' बढ़ाने की नीतियों के कारण देखे गये थे?

....

....

....

....

3) ''कृषि के वाणिज्यीकरण'' की प्रगति में ह्रास में किन कारकों का योगदान था? इन से गरीब किसान कैसे प्रभावित हुए?

....

....

....

....

4) ब्रिटिश काल के दौरान भारत के कौन से भाग में कृषि विकास में सब से कम समृद्धिशाली हुए? वे कौन से कारक थे जिनका इसमें योगदान था?

....

....

....

....

5) जनसांख्यिकी संरचना में 1900 के वर्षों के दौरान क्या मुख्य परिवर्तन देखे गए? क्या औसत मजदूरी स्तर पर इसका कोई प्रभाव हुआ? क्यों?

....

....

....

....

6) डेनियल थॉर्नर का क्या अभिप्राय था, जब उसने ब्रिटिश काल के अंतिम वर्षों के दौरान विद्यमान कृषि स्थिति को अंत:निहित अवसादक ''बिल्ट-इन डिप्रेशन'' कहा था 1900–1940 के वर्षों के दौरान भारतीय कृषि की वृद्धि पर वास्तविक प्रभाव क्या था?

....

....

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

4.7 सारांश

इकाई उस स्थिति के संक्षिप्त अवलोकन से प्रारंभ हुई जो मुगलकाल के दौरान भू-स्वामित्व और काश्तकारी संरचना में विद्यमान थी। बाद में उन मुद्दों और परिस्थितियों पर विचार किया गया जिन्होंने ब्रिटिश शासन की अवधि के दौरान भारतीय कृषि को मूर्तरूप प्रदान किया। विषयवस्तु इस तथ्य को सामने लाई कि कृषि सेक्टर का विकास साम्राज्यवादी सरकार के हितों के अनुकूल अधिक था और ये प्रक्रिया अपने पीछे भारतीय राजनीति में गहरा सामाजिक विभाजन छोड़ गई। ब्रिटिश शासन के इस स्वार्थी उद्देश्य का महत्त्वपूर्ण प्रमाण जानबूझ कर उन उद्योगों का विनाश करना था जो ब्रिटिश शासन पूर्व अवधि के दौरान कृषि के साथ-साथ विद्यमान थे, उस समय की परम्परागत ग्रामीण अर्थव्यवस्था को आत्मनिर्भर आर्थिक इकाई बनाते थे। परन्तु जोताई करने वाले किसानों को स्वामित्व का अधिकार देकर, गैर-कृषि सेक्टर, जैसे रेलवे, विपणन नेटवर्क, आदि का विस्तार वाणिज्यिक दृष्टि से कृषि सेक्टर का विकास, सिंचाई में निवेश कुछ ऐसे सकारात्मक उपाय हैं जो स्वतंत्रता पूर्व वर्षों में कृषि विकास प्रोत्साहित करने के लिए किए गए थे। इस पर भी कृषि क्षेत्र से उत्पन्न उल्लेखनीय लाभ के बावजूद ब्रिटिश शासन द्वारा मुख्य रूप से धनी जमींदारों को दिए गए संरक्षण के कारण गरीब किसानों को दरिद्रता की स्थिति भोगनी पड़ी। रैयतवारी प्रथा ने संस्थागत विकल्प के रूप में महाल प्रथा के साथ जमींदारी प्रथा की अपेक्षा अच्छा कार्य किया और आगे भी पर्याप्त अच्छा करने की आशा की

गई। प्रदेश या प्रांत के रूप में बंगाल का स्थिति अपेक्षाकृत कम प्रगतिशील रही है जिसे कुछ विद्वानों ने प्रतिगामी भी कहा है। इकाई में स्वातंत्र्योत्तर नीति निर्माताओं द्वारा देश में विशाल कृषि अर्थव्यवस्था के संबंध में विरासत का स्वरूप समझने के लिए आवश्यक पृष्ठभूमि दी गई है।

4.8 शब्दावली

महालवारी प्रथा : राजस्व आकलन/संग्रहण की प्रथा जिसमें आकलन की इकाई ''ग्राम'' था। इस प्रथा में राजस्व भुगतान का प्राथमिक किसान और गांव के मुखिया (अर्थात् ग्राम सभा) का संयुक्त उत्तरदायित्व था।

रैयतवारी प्रथा : यह ऐसी प्रथा है जिसमें ''रैयत'' अर्थात् किसान को भूमि का स्वामी माना जाता है। इस प्रथा में सकल उत्पाद के अनुमानित मूल्य के आधार पर भू-राजस्व स्थायी रूप से नियत किया जाता है। यद्यपि ये प्रथा किसान के स्वामित्व की पक्षधर है, इसने बड़े भू-स्वामियों को भी स्थान दिया है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

वाणिज्यीककरण : इस शब्द ने भिन्न-भिन्न समय पर भिन्न-भिन्न अर्थ अर्जित किए हैं पहले नकदी फसल जैसे कपास, गन्ना, जूट, तंबाकू आदि की उगाई को वाणिज्यीकरण का पर्याय समझा जाता था (जो केवल बाजार के लिए उगाए जाते हैं अर्थात् अपनी खपत के अलावा)। समय के चलते खाद्यान्न भी किसानों की नकदी आवश्यकता के कारण बाजार के लिए पैदा किया जाता है। यह संक्रमण हरित क्रांति से तेज हुआ है जिसने विक्रेय अधिशेष में वृद्धि की। खाद्यान्नों के लिए अनुकूल मूल्य नीति ने भी इस संक्रमण में योगदान किया है।

4.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Dharma Kumar and Meghand Desai (eds.) (1982): The Cambridge Economic History of India, Cambridge University Press, Chapter 2.

Irfan Habib (2006): India Economy: 1858-1914, Tulika Books, New Delhi, Chapter 3.

Tirthankar Roy (2006): The Economic History of India 1857-1947, Oxford University Press, New Delhi, Chapter 4.

Tomlinson, B. R. (1993): The Economy of Modern India 1860-1970, Cambridge University Press, New Delhi, Chapter 2.

4.10 बोध प्रश्नों के उत्तर/संकेत

बोध प्रश्न 1

1) भाग 4.2 पहला अनुच्छेद देखिए और उत्तर दीजिए।

2) उपभाग 4.2.1 देखिए (भूमि की प्रति यूनिट इकाई × उस फसल का क्षेत्रफल)।

3) उपभाग 4.3 देखिए और उत्तर दीजिए।

4) उपभाग 4.4 देखिए (उसी वंश, मातृत्व, भाईचारे की भावना रक्त का संबंध)।

बोध प्रश्न 2

1) भाग 4.4, पहला अनुच्छेद (i) से (iv) तक देखिए और उत्तर दीजिए।

2) उपभाग 4.4.1 देखिए और उत्तर दीजिए।

3) उपभाग 4.4.2 देखिए और उत्तर दीजिए (क्योंकि कीमतें बढ़ने से नियत बंदोबस्त भूमि से कम राजस्व मिलता है।

4) उपभाग 4.4.3 देखिए (प्राथमिक किसान और ग्राम)।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

5) उपभाग 4.4.2 देखिए और उत्तर दीजिए (धनी मूल निवासियों द्वारा कृषि में निवेश के लिए सही दशाएं बनाना और निष्ठावान समर्थकों का वर्ग बनाना।

6) उपभाग 4.4.4 देखिए और उत्तर दीजिए (किराये पर देना/बंधन रखना/उपहार द्वारा अंतरण/बिक्री नाम)।

बोध प्रश्न 3

1) भाग 4.5, पहला अनुच्छेद देखिए और उत्तर दीजिए।

2) भाग 4.5, पहला अनुच्छेद देखिए और उत्तर दीजिए।

3) उपभाग 4.5.1 और 4.5.2 देखिए और उत्तर दीजिए।

4) उपभाग 4.5.2 देखिए

5) भाग 4.5, अंतिम अनुच्छेद देखिए और उत्तर दीजिए।

6) उपभाग 4.6.2 देखिए और उत्तर दीजिए।

इकाई 5 स्वतंत्रता के बाद की अवधि में भूमि और कृषि संबंध

संरचना

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 स्वतंत्रता के समय कृषि ढांचा

5.3 योजना काल में किए गए प्रयास

5.4 भूमि सुधार और कृषि विकास

5.4.1 भूमि सुधारों की अवधारणा, स्वरूप और महत्त्व

5.4.2 भूमि सुधारों की सफलता के लिए आवश्यक शर्तें

5.4.3 काश्तकारी सुधार और भू-धारण सीमाएं

5.4.4 अधिक छोटी जोतों की चकबंदी

5.4.5 गरीबी और उत्पादकता पर भूमि सुधार के प्रभाव

5.5 वर्तमान बहस और भावी संभावनाएं

5.6 सारांश

5.7 शब्दावली

5.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

5.9 बोध प्रश्नों के उत्तर/संकेत

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

5.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप:

- भारत को स्वतंत्रता के समाय विरासत में मिली कृषि ढांचे की रूपरेखा प्रस्तुत कर सकेंगे;
- विशेष रूप से भूमि और भूसंबंध सुधारने और सामान्य रूप में कृषि विकास पर हमारी पंचवर्षीय योजनाओं में किए गए विभिन्न पहलों का उल्लेख कर सकेंगे;
- भूमि सुधारों की अवधारणा स्पष्ट कर सकेंगे;
- भूमि सुधार नीति की सफलता के लिए आवश्यक शर्तों की पहचान कर सकेंगे;
- 1951-1991 के दौरान ''काश्तकारी सुधारों'' के निष्पादन का विश्लेषण कर सकेंगे;

- उन प्रवृत्तियों की समीक्षा कर सकेंगे जिन्होंने 1990 के दशक के बाद भूमि सुधार उपायों के क्रियान्वयन के परिणाम सुझाए;
- वे कारण बता सकेंगे कि भारत में भू-धारण सीमा नीति सफल क्यों नहीं हुई;
- गरीबी और उत्पादकता पर भूमि सुधार के प्रभाव का आकलन कर सकेंगे; और
- नई दिशाओं का सुझाव दे सकेंगे जिनमें नीति परिप्रेक्ष्य को अभिमुख किया जाना आवश्यक है।

5.1 प्रस्तावना

इकाई 4 में हमने देखा है कि ब्रिटिश सरकार ने अपने साम्राज्यवादी हितों की पूर्ति के लिए भारतीय अर्थव्यवस्था के कृषि आधार का शोषण किया। इसलिए पहली भारतीय सरकार को, जिसे स्वतंत्रता के तत्काल बाद बनाया गया था, अर्थव्यवस्था का कृषि आधार सुदृढ़ करने पर विशेष ध्यान पड़ा। मुख्य कार्य भारतीय कृषि के उन संस्थागत तंत्रों की पुनर्संरचना करने के उपाय करने थे जो व्यवस्था में रूढ़ हो गयी सामंतवादी प्रवृत्तियों के कारण कमजोर हो गए थे। इस दिशा में उसके पहले कदमों में एक में 1949 में सरकार ने ''भूमि और काश्तकारी सुधार'' प्रारंभ करने के लिए संवैधानिक प्रावधान किए। चूंकि इन सुधारों को प्रादेशिक संवेदनशीलता को ध्यान में रखकर किया जाना था; इसलिए केंद्र सरकार ने इन सुधारों के अंगीकरण और क्रियान्वयन का कार्य संबंधित राज्य सरकारों पर छोड़ दिया। उत्तरवर्ती वर्षों में विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में निम्नतम स्तरों पर भूमि सुधार नीतियों के क्रियान्वयन के लिए राज्य सरकारों को सुसंगत दिशानिर्देश और वित्तीय सहायता प्रदान की गई। इसका परिणाम यह हुआ कि क्षेत्रीय सामाजिक राजनीतिक दबावों द्वारा और राज्य सरकारों द्वारा की गई पहलों की उपलब्धि भिन्न-भिन्न स्तर की हुई। 1990 के दशक के प्रारंभ तक (जब अर्थव्यवस्था का उदारीकरण करने के लिए नीति में मुख्य परिवर्तन की घोषणा की गई) उपलब्धियों का क्या स्तर रहा? इस नई नीति के पथ पर लगभग दो दशाब्दियों तक चलने के बाद देश में कृषि संबंधी आधार की पुनर्संरचना ने कैसी प्रगति की? और, इस संधिकाल में भी भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए कृषि सेक्टर के सतत् महत्त्व को ध्यान में रखते हुए (अभी भी कुल जनसंख्या का लगभग 52 प्रतिशत अपनी जीविका के लिए इस पर निर्भर रहता है) अर्थव्यवस्था का कृषि आधार सुदृढ़ करने के लिए नीति किस दिशा की ओर केंद्रित होनी चाहिए? ये ऐसे मुद्दे हैं जिन पर हम इस इकाई में चर्चा करेंगे।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

5.2 स्वतंत्रता के समय कृषि ढांचा

स्वतंत्रता के समय भारत के सामने बड़ी चुनौती स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान दिए गए वचन के अनुसार अस्तव्यस्त कृषि संबंधों को सही रास्ते पर लाना था। ब्रिटिश शासन से विरासत में जो कृषि ढांचा मिला उसमें भूमि के बहुत बड़े क्षेत्र में जमींदारों का स्वामित्व था जबकि कुल कृषित क्षेत्र का छोटा सा भाग किसान के पास था। स्वतंत्रता के समय भूमि वितरण ऐसा जटिल था कि केवल 7 प्रतिशत भूस्वामियों के पास

कुल भूमि का 53 प्रतिशत था तो 28 प्रतिशत छोटे और सीमांत किसान (2.5 एकड़ या 1 हेक्टेयर से कम भूमि वाले किसान) कुल भूमि के केवल 6 प्रतिशत के स्वामी थे। भूमिधारण (अर्थात् अवधि और शर्तें जिनके अधीन पटट्ेदार को बटाई फसल के आधार पर खेती करने के लिए भूमि पट्टे पर दी गई) और प्रशासनिक रीतियां देश भर में पर्याप्त भिन्नतापूर्ण हैं। परन्तु मोटे तौर पर, जैसा कि पिछली इकाई में उल्लेख किया गया है, जो व्यवस्था विद्यमान है, उसे दो शीर्षकों में वर्गीकृत किया जा सकता है, जैसे (i) जमींदारी और (ii) रैयतवारी प्रथाएं। यद्यपि जमींदारी प्रथा का विभेद बहुत से बिचौलियों (अर्थात् राज्य और वास्तविक भूमि जोतने वाले किसानों के बीच) द्वारा किया जाता है, रैयतवारी प्रथा में कम से कम उसके ढांचे में किसान का स्वामित्व स्पष्ट था। फिर भी, व्यवस्था ने न केवल जोतों को अलाभकर आकार तक घटाया बल्कि इसने उच्चतर लाभ के लिए संसाधनों के किसी प्रकार के निवेश का प्रोत्साहन भी समाप्त किया।

इस पृष्ठभूमि के विपरीत सामाजिक समानता प्राप्त करना और आर्थिक वृद्धि सुनिश्चित करना, ये दो उद्देश्य नए भारत सरकार की प्राथमिकता थी। स्वतंत्रता के समय कृषि ढांचे की निम्नलिखित विशेषताएं थीं (i) परजीवी किराया लेने वाले बिचौलिए; (ii) राज्यों में विद्यमान भिन्न-भिन्न भू-राजस्व/स्वामित्व व्यवस्थाएं; (iii) भूमि के बहुत बड़े भाग पर कम जमींदारों का अधिकार एवं शोषणकारी बटाई आधार पर भूमि पट्टे पर देना; और (iv) वास्तविक पट्टेदार किसानों की बहुत बड़ी संख्या; जो शोषणकारी उत्पादन संबंधों के साथ असुरक्षित पट्टेदारी शर्तों के अधीन कार्य कर रहे थे। इसलिए नीति निर्माताओं को निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण मुद्दों का सामना करना पड़ा (i) नए पट्टेदारी अनुबंध लागू कर बिचौलियों का उन्मूलन, जिससे किसान अधिक अच्छे उत्पादन तरीके/पद्धतियां अपनाने के लिए प्रेरित हो सके; और (ii) भूमि रिकार्डों का पुन: लेखन, (जो अत्यधिक खराब स्थिति में थे और जिनके कारण बहुत भारी संख्या में मुकदमेबाजी होती थी)।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बिगड़ी हुई स्थिति को ठीक करने के लिए भारत के संविधान के अनुच्छेद 39 के अधीन प्रावधान किया गया है कि देश के भौतिक संसाधनों (मुख्यतया भूमि) के स्वामित्व और नियंत्रण का सामान्यहित संवर्धन के लिए पुन: वितरण किया जाए। इस लक्ष्य को लेकर पंचवर्षीय योजनाओं की श्रृंखला के माध्यम से नीति दिशानिर्देश निर्धारित करने के लिए ''राष्ट्रीय योजना आयोग'' स्थापित किया गया। नई ''भूमि नीति'' प्रारंभ करना, उसकी सभी योजनाओं में समावेश किया जाने वाला महत्त्वपूर्ण लक्ष्य था। इसलिए तैयार की गई और क्रियान्वित की गई योजनाओं का मोटे तौर पर उद्देश्य था: (i) आय और संपति में असमानता कम करना (ii) पट्टेदारों को सुरक्षा प्रदान कर शोषण का उन्मूलन करना और इसके द्वारा (iii) विकास की पहल में सहभागिता करने के लिए समाज के सभी वर्गों को समान अवसर सुलभ कराना।

5.3 योजना काल में किए गए प्रयास

भारत की ''भूमि नीति'' स्वतंत्रता के बाद जिन चार पृथक-पृथक प्रावस्थाओं से गुजरी है, न उनकी पहचान करना संभव है। ये प्रावस्थायें हैं: (i) पहली प्रावस्था: वर्ष 1951–74 के दौरान मुख्यतया ''भूमि सुधार'' पर ध्यान केंद्रित किया गया,

(ii) दूसरी प्रावस्था 1974-84 की अवधि के दौरान, ध्यान बदलकर कृष्य भूमि बढ़ाने पर बल दिया गया (इसमें अकृष्य भूमि को कृषि के अंतर्गत लाया गया) (iii) तीसरी प्रावस्था: (1985-97) इसमें ''जल और मृदा संरक्षण'' की ओर ध्यान दिया गया, और (iv) चौथी और वर्तमान प्रावस्था : (अर्थात् 1997 से आगे): भूमि कानूनों की आवश्यकता के बारे में विचार विमर्श पर ध्यान केंद्रित रहा। अंतिम प्रावस्था विधायी उपायों द्वारा क्रियान्वयन के चार से अधिक दशाब्दियों के दौरान वांछित भूमि संसाधनों के अपर्याप्त पुनर्वितरण की समीक्षा पर बल दिया गया है। प्रगति के अभाव की तुलना छोटे और सीमांत किसानों की दशा में सुधार लाने में ''जनांकीय और आर्थिक शक्तियों'' की प्रभाविकता से की गई है। अगले अनुच्छेदों में हम उनका समाधान करने के लिए अपनाए गए संकेंद्रित विशिष्ट मुद्दों और नीति विवरण द्वारा पंचवर्षीय योजनाओं में किए गए पहल कार्यों की (संक्षेप में) समीक्षा करेंगे।

पहली प्रावस्था (पहली योजना से चौथी योजना तक) 1951-1974

पहली योजना (1951-56) में मुख्य मुद्दा कृषि के अधीन क्षेत्रफल बढ़ाना था। इसके लिए, विशाल अकृष्य भूमि, (बड़े आकार के जोतों में घिरी हुई भूमि) को कृषि के अंतर्गत लाना था। गांव के आम आदमियों को सामुदायिक विकास (CD) नेटवर्क के अधीन लाना था। इन्हें प्राप्त करने के लिए भूमि सुधार में इन बातों पर बल दिया गया था : (i) बिचौलियों का उन्मूलन (ii) पट्टेदार किसानों के भूमि अधिकार बहाल करना, और (iii) भूमि उपयोग दक्षता बढ़ाना। दूसरी योजना (1956-61) में सिंचाई बढ़ाने पर अधिक बल देकर वर्षा प्रधान सिंचाई पर निर्भरता कम करना था और निम्न भूमि उत्पादकता को बढ़ाने पर भी ध्यान केंद्रित करना था। तीसरी योजना (1961-66) में ''खाद्य सुरक्षा'' पर फोकस था। इसके लिए कृषि योग्य बंजर भूमि को कृषि के अधीन लाने और पिछड़े क्षेत्रों को मुख्य धारा में लाने पर बल दिया गया। खाद्य सुरक्षा पर लगातार आग्रह के कारण ही चौथी योजना (1969-74) में भी खाद्यान्न फसलों के लिए भूमि के अधिक प्रयोग के लिए प्रोत्साहन तय किये गए। इसलिए दूसरी से चौथी योजना तक नीति का बल इस पर था: (i) सामुदायिक विकास के माध्यम से प्रशिक्षण और विस्तार सेवाओं का विस्तार, (ii) लघु और बड़ी सिंचाई परियोजनाओं द्वारा सिंचाई सुविधाओं का विकास; (iii) ''क्षेत्र विकास'' और ''मृदा संरक्षण'' से भूमि नीति दृष्टिकोण को जोड़ना; और (iv) ''भूमि की उच्चतम सीमा'' निर्धारण अधिनियमों का क्रियान्वयन।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

दूसरी प्रावस्था (पांचवीं और छठी योजना) 1974-1985

दूसरी प्रावस्था में पांचवीं योजना अवधि (1974-79) के दौरान फोकस 'निम्नकोटि भूमि प्रबंधन' के मुद्दे के समाधान पर था। इसके अधीन नीति का बल सूखा-प्रवण और मरुस्थल क्षेत्र कार्यक्रमों के क्रियान्वयन के इर्दगिर्द केंद्रित था। छठी योजना (1980-85) के दौरान अल्प प्रयुक्त भूमि संसाधनों के विकास पर फोकस जारी रखने के अलावा, उन क्षेत्रों के लिए ''हरित क्रांति'' की सुलभता का विस्तार करने पर भी ध्यान था। नीति का आग्रह ''भूमि और जल प्रबंधन कार्यक्रमों'' के क्रियान्वयन पर था।

तीसरी प्रावस्था (सातवीं और आठवीं योजना) 1985-1997

सातवीं योजना अवधि (1985-90) के दौरान ''मृदा संरक्षण प्रबंधन और भूमि निम्नीकरण'' का सामना करने पर फोकस था। नीति का आग्रह बंजर भूमि विकास के अलावा भूमि प्रबंधन के दीर्घकालिक उद्देश्य पर था। आठवीं योजना (1992-97) में मुख्य मुद्दा ''शुष्क भूमि और वर्षा आश्रित क्षेत्रों'' के विकास पर ध्यान केंद्रित करना था। ग्राम स्तर पर ''भूमि प्रबंधन में लोगों की सहभागिता'' पर विशेष प्रयास किए गए। इसलिए नीति का जोर कृषि जलवायु क्षेत्रीय योजना के साथ जल विभाजक विकास कार्यक्रमों के क्रियान्वयन पर था।

चौथी प्रावस्था (नौंवी योजना से आगे)

नौंवी योजना अवधि (1997-2002) में अभी तक प्रारंभ किए गए भूमि सुधारों की उपयोगिता पर पुनः विचार किया गया। कृषि वृद्धि मंदगति की दशा में पहुंच गयी थी और वास्तविकता यह है कि हरित क्रांति कुछ ही राज्य से बाहर फैलने में असफल रही, यह आलोचना की गई थी कि भूमि की उच्च सीमा निर्धारण और काश्तकारी कानूनों ने अपने अभिप्रेरित प्रयोजन पूरे नहीं किये, ये प्रति उत्पादक सिद्ध हुए हैं और इन्होंने केवल भूमि बाजार को समाप्त किया है। फिर भी अप्रयुक्त भूमि को कृषि के अधीन लाने के प्रयास जारी रहे। ग्रामीण भूमि का प्रबंधन करने के लिए ''पंचायत राज संस्थाओं'' के सशक्तीकरण के साथ विकेंद्रीकृत भूमि प्रबंधन व्यवस्था पर बल दिया गया।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

उपर्युक्त संक्षिप्त समीक्षा संकेत देती है कि स्वतंत्रता के 50 वर्षों के बाद भी मूल मुद्दा भूमि संसाधनों के न्यायसंगत वितरण के इर्दगिर्द ही घूम रहा है। फिर भी, भूमि नीति ने भूमि सुधारों की नई प्रावस्था की आवश्यकता पर नई बहस के लिए अपने रुख में परिवर्तन किया है। समस्त पंचवर्षीय योजनाओं का केंद्रीय मुद्दा ''भूमि नीति'' था जिसका फोकस उसके ''पुनर्वितरण'' और ''इष्टतम उपयोग'' दोनों पर था। ऐसा नहीं है कि पांच दशकों के प्रयास पूरी तरह से असफल रहे। परन्तु उसकी सफलता संभावनाओं और वास्तविक परिणाम के बीच भारी अंतर के साथ क्षेत्र विशिष्ट क्षेत्रों तक ही सीमित रही है। इसे समझने के लिए, हमें अब भूमि सुधारों के अधीन किए गए निश्चित प्रयासों का आकलन करना चाहिए।

बोध प्रश्न 1

लगभग 50 शब्दों में उत्तर दीजिए।

1) ठोस कृषि ढांचा स्थापित करने के लिए भारत की पहली सरकार के दो उद्देश्यों का उल्लेख कीजिए। दो महत्त्वपूर्ण मुद्दे बताइए, जिनसे सरकार को इस संबंध निपटना था।

....

....

....

2) भारत ने कृषि ढ़ांचे में वांछित परिवर्तन करने के लिए नवगठित ''योजना आयोग'' के तीन लक्ष्य/उद्देश्य क्या थे?

....

....

....

....

3) भारत की ''भूमि नीति'' की मोटे तौर पर निर्धारित चार प्रावस्थाओं की पहचान कीजिए। क्या बाद में मुख्य धारा से कुछ बदलाव आया है? क्यों?

....

....

....

....

4) पहली चार पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान नीति के चार प्रमुख आग्रहों का उल्लेख कीजिए।

....

....

DIKSHANT IAS

....

Call us @7428092240

....

5.4 भूमि सुधार और कृषि विकास

पंचवर्षीय योजनाओं के उद्देश्यों की सीमाओं के अंतर्गत और कार्यक्रमों के अनुसार उन्हें प्राप्त करने के लिए निश्चित सुस्पष्ट नीति बल, आग्रह, भूमि पुनर्वितरण और प्रबंधन पर रहा। इसी की संक्षिप्त चर्चा पिछले भाग में की गई है। इसे करने में हमने ''भूमि नीति'' और ''भूमि सुधार'' शब्दों का प्रयोग पर्याय स्वरूप में किया है। इसका कारण यह है कि ये परस्पर इतने घुले मिले हैं कि भारत की भूमि नीति योजना और क्रियान्वयन के संदर्भ में दोनों को प्राय: पर्यायवाची रूप में समझा गया है। फिर भी, हम अब उनके अर्थ और परिभाषा का विस्तार करते हुए अधिक विशेष रूप से विचार करेंगे। बाद में हम उसके अन्य आयामों विचार करेंगे: (जैसे स्वरूप और महत्त्व)। खेत/जोत का आकार अवधारणा, के पक्ष और विपक्ष में दिए गए तर्कों की समीक्षा भी हम करेंगे। साथ ही भूमि जोतों पर उच्चतम सीमा कानून, आदि भारत में की गई प्रगति का मूल्यांकन भी किया जाएगा।

5.4.1 भूमि सुधारों की अवधारणा, स्वरूप और महत्त्व

वैचारिक दृष्टि से ''भूमि सुधार'' शब्द का संबंध भूमि से मनुष्य के संबंध को शासित करने वाले संस्थागत ढांचे में परिवर्तन से है। संस्थागत ढांचे का संबंध भूमि स्वामित्व कानूनों, विनियमों या रीति रिवाजों से है। नोट करें कि ''रीति रिवाज'' शब्द का प्रयोग करने से परिवर्तनों को प्रभावित करने वाले अनौपचारिक तरीकों पर

भी उस सीमा तक विचार किया गया, है जहां तक वे वांछित दिशा में परिवर्तन ला सकते थे। अधिक सरल शब्दों में, भूमि सुधार का संबंध बुनियादी तौर पर धनियों से गरीबों को कृषि प्रयोजनों के लिए भूमि का पुनर्वितरण से है। भारत में कृषि विकास के संबंध में देश में अधिक तर्कसंगत कृषि ढांचा लाने के लिए इसे सरकार प्रेरित नीति के रूप में समर्थन प्राप्त हुआ है।

भूमि सुधारों के लिए आर्थिक तर्काधार का विस्तार दो कारणों से किया गया है: (i) उन भूमिहीन गरीबों के लिए उत्पादन के माध्यम के रूप में, जिनके लिए भूमि का एक छोटे टुकड़े पर अपने स्वामित्व का अभिप्राय है, अपने और अपने परिवार के जीवन निर्वाह का आवश्यक खाद्यान्न उत्पादन कर आवश्यक बुनियादी आर्थिक संसाधन प्रदान करना; और (ii) (जिस भूमि पर ''मानवीय प्रयासों'' का निवेश किया गया है, उससे) बिक्री/लाभ द्वारा आय अर्जन के लिए अधिशेष उत्पादन को प्रोत्साहन करना ताकि उस पर परिश्रम करने वाला व्यक्ति लाभ प्राप्त कर सके। दूसरे स्तर पर यह स्वीकार करना आवश्यक है कि अत्यधिक गहन राजनीतिक प्रक्रिया अंतर्निहित है जिसके लिए सभी प्रमुख राजनीतिक दलों का सक्रिय सहयोग बहुत आवश्यक है। इस तथ्य को ध्यान रखना होगा कि भूमि अधिकारों के पुनर्वितरण क्षेत्र में समुदायों में और उनके बीच संबंध बदल सकते हैं जो सामाजिक-राजनीतिक समीकरणों के माध्यम से निर्वाचन परिणामों पर असर डाल सकते हैं। तथ्य से यह भी स्पष्ट होता है कि स्वतंत्रता के तत्काल बाद संवैधानिक प्रावधानों के क्रियान्वयन को संबंधित राज्य सरकारों पर छोड़ देना क्यों विवेकपूर्ण समझा था। प्रांतीय सरकारें जाति तथा सामाजिक संवेदनशीलताओं का सामना अधिक अच्छी तरह से कर सकती थीं। इसलिए भूमि सुधार का आर्थिक महत्त्व उसके दो महत्त्वपूर्ण आयामों में निहित किया जा सकता है, जैसे- (i) **समानता:** जिससे भूमि का प्रयोग बुनियादी संसाधन के रूप में गरीब, अकुशल ग्रामीण श्रमिकों द्वारा गरीबी का सामना करने के लिए किया जाता है; और (ii) **दक्षता** जिससे अधिक उत्पादन के लिए अभिप्रेरणा या प्रोत्साहन जैसे अमूर्त कारकों से गरीब किसान द्वारा जोती गई भूमि पर स्वामित्व अधिकार अंतरण आदि का ध्यान रखा जाता है। अब हम जोत आकार-उत्पादिता के विषय में दो अवधारणाओं पर अधिक विस्तार से चर्चा करेंगे।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

5.4.2 भूमि सुधारों की सफलता के लिए आवश्यक शर्तें

जोत का आकार परिकल्पना और ''पटट्दार-दक्षता परिकल्पना'' नाम की दो अवधारणाएं कुछ अनुभवजन्य प्रेक्षणों पर आधारित हैं। पहली अवधारणा यह इस प्रेक्षण पर आधारित है कि ''छोटे किसान अधिक पैदावार देते हैं, अर्थात्, उत्पादन और जोत के आकार में विपरीत संबंध है। इस प्रेक्षण में यह तथ्य अस्पष्ट है कि अधिक छोटे खेतों पर केवल परिवार का श्रम काम करता है या यदि बाहरी श्रम भी प्रयोग होता है, तो उसमें प्रभावशाली पर्यवेक्षण आवश्यक होगा, अधिक बड़े खेतों में बाहर से भाड़े पर मजदूर लेना आवश्यकता होगी। दूसरी परिकल्पना ''पटट्दार दक्षता परिकल्पना'' कहलाती है, वह दो अनुभवजन्य प्रेक्षणों पर आधारित है कि: (i) अधिक बड़े खेतों के मालिक जमींदार साधारणतया स्वयं खेती नहीं करते हैं बल्कि बटाई फसल व्यवस्था पर आसामी किसानों को अपनी भूमि पट्टे पर देते हैं; और (ii) बटाई फसल व्यवस्था, अपने स्वरूप में शोषणकारी होती है, और, आसामी को सही

परिश्रम करने की प्रेरणा को समाप्त करने वाली होती है। काश्तकार मालिक के पास (अर्थात् काश्तकार को दिए गए छोटे फार्म का स्वामित्व अधिकार जिस पर वह स्वयं खेती कर सकता है) बटाईदार की अपेक्षा अधिक मेहनत करने के लिए प्रोत्साहन होता है।

नोट कीजिए कि 'पटट्ेदार दक्षता परिकल्पना' में अधिक उत्पादन करने के लिए या 'खेत का आकार परिकल्पना' से संबद्ध उच्चतर उत्पादन उपज दोनों ही प्रोत्साहनों से जुड़े हुए हैं। इनमें उत्पादन अधिक से अधिक करने का ही मुख्य मुद्दा है। भूमि सुधार के क्रियान्वयन के लिए आवश्यक है कि राज्य नियामक के रूप में कार्य करें। ये दो परिकल्पनाएं (शैलीबद्ध तथ्यों के नाम से भी जानी जाती हैं) प्रश्न उठाती है "क्या ऐसी नीतियां बनाई जा सकती हैं कि बाजार की शक्तियां अधिकतम उपज पैदा करने के लिए (या विकल्पत: उत्पादकता हानि न्यूनतम करने के लिए) अपेक्षित प्रेरणा उत्पन्न कर सकती हैं? दूसरे शब्दों में यद्यपि "किराया निष्कर्षण" (अर्थात् बटाई फसल व्यवस्था का शोषणकारी स्वरूप) और "प्रोत्साहन समझौता" (अर्थात् यदि आसामी को उसकी भूमि के लिए स्वामित्य अधिकार द्वारा अधिशेष उत्पादन करने के लिए प्रोत्साहन का प्रस्ताव दिया जाता है) व्याख्याएं उपयुक्त दोनों परिकल्पनाओं के लिए तर्क देती हैं, फिर भी क्या "छोटी जोतों" में 'काश्तकारी अधिकारों' की प्रभाविकता के लिए आगे अन्य कोई व्याख्या उपलब्ध है? इस प्रश्न का उत्तर उन मूल कल्पनाओं में स्थित है जो शैलीबद्ध तथ्यों को नियंत्रित करती हैं। उदाहरण के लिए, भूमि की गुणवत्ता समरूप नहीं है और सभी किसानों की योग्यताएं/कुशलताएं भी समरूप नहीं हैं। इसका तात्पर्य यह है कि समरूपता परिकल्पना की दशा में दो परिकल्पनाएं अधिक लाभ या उत्पाद सुनिश्चित कर सकती हैं। परन्तु चूंकि ऐसी कल्पनाएं विरले ही सही सिद्ध होती हैं, इसलिए उच्चतर उत्पादन प्राप्ति की प्राय: अनदेखी हो जाती है। इस प्रकार कारकों की समरूपता की दशाओं में 'भूमि सुधार' के मामले प्रोत्साहित किए जा सकते हैं परन्तु उस सीमा तक ही कि कारकों की समरूपता आवश्यक रूप से विद्यमान है। यदि विषमरूपता विद्यमान होगी तो भूमि सुधार उपाय कम प्रभावकारी होंगे। इसलिए नीतिगत चुनौती समुचित संस्थागत तंत्र से उपयुक्त प्रोत्साहन स्थापित करना है ताकि बाजार में उच्चतर उत्पादकता के लिए आवश्यक परिस्थितियां उत्पन्न की जा सकें।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

उपर्युक्त संदर्भ में पेरुवियन अर्थशास्त्री, हेरनाडों डी सोतो द्वारा दिए गए तर्क को नोट करना प्रासंगिक है। वर्ष 2000 में प्रकाशित अपने प्रकाशन "दि मिस्ट्री ऑफ कैपिटल" में सोतो ने यह मत प्रस्तुत किया कि राज्य द्वारा गरीब किसान को "संपत्ति अधिकार सुनिश्चित करने से संस्थागत ऋण पाने की किसान की क्षमता बढ़ जाती है। इससे गरीब किसानों की अपना कल्याण स्वयं करने की क्षमता सुधरती है। साथ ही वे गरीबी उन्मूलन और आर्थिक वृद्धि संवर्धन की प्रक्रियाओं में भी अपना योगदान कर सकते हैं। दूसरे शब्दों में, उपयुक्त संस्थाओं की स्थापना समानता और दक्षता के दोनों मुद्दों को सुनिश्चित कर सकती है। परन्तु चूंकि काश्तकारी/भूमि सुधार राजनीतिक समर्थन के बिना सफल नहीं हो सकते हैं, इसलिए साथ-साथ "राजनीतिक सुधारों" के सहारे "संस्थागत सुधारों" पर कार्य करना आवश्यक है। तब दोनों साथ-साथ "भूमि सुधारों" की सफलता के लिए आवश्यक दशाएं सुनिश्चित करेंगे।

अच्छा राजनीतिक और संस्थागत ढांचा स्थापित करने के लिए राजनीतिक और संस्थागत सुधारों की दो शर्तों की पहचान की गई है, क्योंकि भूमि सुधार की सफलता के लिए इन शर्तों की अनिवार्यत: किसी भी देश/संदर्भ पर लागू होती हैं। भारत के सदंर्भ में इन दो व्यापक कारकों से संबद्ध, उन विशिष्ट कारकों की पहचान की जा सकती है जिनका भूमि सुधार उपायों के घटिया निष्पादन में योगदान रहा है। जैसाकि आप देखेंगे, इन कारकों को उपर्युक्त दो व्यापक कारकों में समाहित किया जा सकता है, परन्तु उनका सुस्पष्ट उल्लेख उस स्थिति का साफ चित्र देता है जो भारत में प्राप्त हुआ है। **पहला** ''नीचे से दबाव'' का अभाव है। इसका संबंध असंगठित से है और ये गरीब किसानों की निष्क्रियता/अस्पष्ट आवाज है जो भूमि सुधारों के प्रभावशाली क्रियान्वयन के लिए पूर्व शर्त भी है। यह मुख्यतया गरीबों की लड़खड़ाती सामाजिक और आर्थिक दशा के कारण हो सकता है, जिसे केवल लंबी अवधि तक संगठन प्रयासों से सुधारा जा सकता है। **दूसरा** ''प्रशासनिक उदासीनता'' है। ऐसे उपयुक्त प्रशासनिक संगठन बनाने के लिए आवश्यक प्रयासों की सामान्यत: अनदेखी हुई है जो ऐसे प्रणालीबद्ध सुव्यवस्थित सेवाकालीन प्रशिक्षण से संबद्ध हो जो भूमि सुधारों के सफल क्रियान्वयन के लिए आवश्यक है। प्रशासनिक व्यवस्था में महत्त्वपूर्ण पदों पर भूमि सुधार में विश्वास रखने वाले योग्य और समर्पित व्यक्तियों को नियुक्त करने के लिए सतर्क प्रयासों का नितांत अभाव रहा है। बहुत कम मामलों में, जहां कुछ अधिकारियों द्वारा कुछ कार्रवाई की गई थी, उन्हें जल्दी में स्थानांतरित कर दिया गया। ये प्रशासनिक निष्क्रियता/विफलता का प्रमाण है। **तीसरा** कारक ''सही और अद्यतन भूमि रिकार्ड का अभाव है''। यह सूचना प्रणाली में कमियों से जुड़ा हुआ है जो कमजोर और अनियमित हैं। **चौथा** वृहद् समवर्ती मूल्यांकन पर कम ध्यान दिया गया है जिसके अभाव में अवरोधों की पहचान करना और समय पर उपचारी उपाय करना संभव नहीं हुआ है। यह स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है कि ये सभी कारक, राजनीतिक और संस्थागत कमजोरियों के ही अंग हैं जिन्हें हटाने के लिए इन दो मुख्य क्षेत्रों में सुधार ही भूमि सुधारों का प्रभावशाली क्रियान्वयन सुनिश्चित कर पाएंगे।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 2

50 शब्दों में अपना उत्तर दीजिए।

1) मूल रूप से ''भूमि सुधार'' शब्द क्या संकेत देता है?

....

....

....

....

2) वे दो कारण बताइए जिन पर ''भूमि सुधार'' उपायों के लिए आर्थिक तर्क उपयुक्त ठहरते हैं?

....

....

....

....

3) वे दो तर्क क्या हैं जिन पर भूमि सुधार उपायों की दक्षता के लिए दो परिकल्पनाएं दी गई हैं? इन तर्कों के मूल में बुनियादी कल्पना क्या है जिनके अधीन दो परिकल्पनाओं के उपयुक्त ठहरने की आशा की जा सकती है?

....

....

....

....

4) आप के विचार से जहां कारकों की विषमता अपरिहार्य वास्तविकता हो 'समानता' और 'दक्षता' की समस्याओं का उत्तर क्या होगा?

....

....

....

....

5) चार विशिष्ट कारक बताइए जिन्होंने भारत में भूमि सुधारों के सफल क्रियान्वयन में बाधा डाली है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

....

....

5.4.3 काश्तकारी सुधार और भू-धारण सीमाएं

भारत में भूमि सुधार कानून में चार मुख्य घटक हैं: (i) बिचौलियों का उन्मूलन, (ii) ठेका शर्तों का सुधार करने के उद्देश्य से काश्तकारी विनियमन (फसल बटाई सहित) (iii) गरीबों को अतिरिक्त भूमि पुनर्वितरण की दृष्टि से भू-धारण की सीमा का निर्धारण। और (iv) कई छोटे-छोटे अलाभकर जोतों की चकबंदी। इनमें से बिचौलियों का उन्मूलन, जो 1960 तक पूरा किया गया था, भारत में भूमि सुधार प्रक्रिया का अधिक सफल घटक माना गया है। अन्य के संबंध में हुई प्रगति भिन्न-भिन्न है। राजकृष्ण (1961) ने भूमि सुधार उपायों को चार श्रेणियों में वर्गीकृत किया है, अर्थात् (i) विमुक्तिकारी, (ii) वितरणात्मक (iii) संगठनात्मक और (iv) विकासात्मक। यद्यपि बिचौलिये उन्मूलन विमुक्ति श्रेणी के अधीन काश्तकारी सुधार और सीमा निर्धारण विमुक्ति और वितरणात्मक उपायों के अधीन आता है, उन्हें अधिक स्तर पर उपलब्ध करने के लिए प्रौद्योगिकी प्रगति का प्रयोग और ''विस्तार सेवाओं'' का विस्तार क्रमश: संगठनात्मक और विकासात्मक श्रेणियों के अधीन आता है।

काश्तकारी सुधार के मुख्य घटक पांच थे (i) भू-धारण की सुरक्षा (ii) काश्तकारी

की समाप्ति (पुराने से विमुक्ति और नए के लिए स्वतंत्रता) (iii) जमींदार द्वारा व्यक्तिगत खेती के लिए पुनर्ग्रहण की अनुमति (iv) किराये का विनियमन और (v) स्वामित्व अधिकारों की पुष्टि। विभिन्न राज्य कानून 1960 और 1972 के बीच बनाए गए। परन्तु भिन्न-भिन्न राज्यों में कृषि ढांचे का असमान और जटिल स्वरूप होने के कारण कोई एकसमान दिशानिर्देश नहीं बनाए जा सके। वास्तव में, भू-धारण सुधारों की नीति पर कोई सर्वसम्मति न तो जमींदारी प्रथा का पूर्ण स्वामित्व हरण के पक्ष में बनी और न ही पूर्णतः काश्तकारों के हित में। फिर भी राष्ट्रीय दिशानिर्देशों (1972 के बाद) में राज्यों द्वारा अंगीकृत करने के लिए निम्न उपाय सम्मिलित किए गए थे:

- वास्तविक जोताई करने वाले किसान को काश्तकारी की सुरक्षा प्रदान की जानी चाहिए;
- बटाई फसल के लिए सकल उत्पाद का 20 से 25 प्रतिशत की सीमा में किराया नियत किया जाना चाहिए,
- भू-स्वामियों के ''दूरवासी जमींदारी प्रथा'' को हतोत्साहित करते हुए व्यक्तिगत प्रयोग के लिए भूमि पर खेती करने की अनुमति होनी चाहिए;
- पारस्परिक सहमति से काश्तकारी अधिकार छोड़ने की अनुमति दी जाए,
- कुछ विशिष्ट क्षेत्रों के मामले में, जमींदार काश्तकार संबंध समाप्त किए जाएं और काश्तकार किसान को सीधे राज्य के अधीन लाया जाए,
- अशक्त अपंग व्यक्तियों, रक्षा कर्मियों आदि को अपनी भूमि पट्टे पर देने की छूट दी जाए,
- जहां कहीं जमींदारों को काश्तकार हटाने और स्वयं खेती करने की अनुमति दी जाती है, वहां ''व्यक्तिगत खेती'' स्पष्ट रूप से परिभाषित की जाए, और
- मौखिक काश्तकारी समाप्त की जाए तथा काश्तकारी रिकार्ड यथा विधि रखे जाएं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

काश्तकारी पर पूर्ण या लगभग पूर्ण प्रतिबंध पर बहस

''काश्तकारी पर पूर्ण या लगभग पूर्ण (आंशिक) प्रतिबंध का मुद्दा (जैसा कि कुछ राज्यों में प्रयास किया गया था) भारत में सभी मुद्दों में से सबसे अधिक विवादास्पद रहा है। मुख्य मुद्दा उन शर्तों के अधीन जमींदारों को अपनी भूमि पट्टे पर देने से रोकना था जो काश्तकारों के लिए प्रतिकूल या शोषणकारी था। इस दृष्टि से यह तर्क दिया गया है कि भले ही, काश्तकारी की तकनीक रूप से अनुमति दी जाती है, परन्तु काश्तकारों को दीर्घकालिक और संरक्षित अधिकार देने के प्रावधान करने का वैसा ही प्रभाव होगा जैसा कि काश्तकारी पर प्रतिबंध का हुआ है। इसे ध्यान में रखते हुए यह उल्लेख किया गया है कि कुछ परिस्थितियों के अधीन काश्तकारी समाप्त करने की अनुमति होनी चाहिए: जैसे (i) काश्तकार कानून के अधीन निर्धारित समय के अंदर किराये का भुगतान करने में असफल रहा है, (ii) यह सिद्ध हो

जाए कि काश्तकार भूमि का उपयोग कृषि से भिन्न अन्य प्रयोजनों के लिए कर रहा है; (iii) भूमि को खेती के अनुपयुक्त बना दिया है, (iv) काश्तकार स्वयं खेती नहीं कर रहा है, और (v) पट्टे की अवधि की शर्त या तो समाप्त हो गई है या जमींदार स्वयं खेती करना चाहता है। इस तर्क के गुणदोषों की मान्यता में कुछ राज्यों ने विनिर्दिष्ट परिस्थितियों के अधीन काश्तकारी समाप्त करने के प्रावधान किए हैं। राष्ट्रीय कृषि आयोग ने इस बात पर जोर दिया है कि भारत की प्रति व्यक्ति कृषि भूमि के अनुपात को देखते हुए काश्तकारी पूरी तरह से समाप्त नहीं की जा सकती है या नहीं होनी चाहिए। कुछ अध्ययन भी हुए हैं जिनसे प्रकट होता है कि काश्तकारी पर पूर्ण प्रतिबंध गरीबों को बुरी तरह से प्रभावित करेगा। अनुभवजन्य आंकड़े दर्शाते हैं कि काश्तकारी के अधीन कुल क्षेत्रफल में 1962 और 1971 के बीच कोई खास अंतर नहीं आया है (यह लगभग 10.6 प्रतिशत) परन्तु 1981 में तेजी से गिरकर 7.2 प्रतिशत पर आ गया (तालिका 5.1)। यद्यपि 1981-91 की अवधि के दौरान ''काश्तकारी के अधीन क्षेत्रफल'' में वृद्धि हुई है। (1981 में 7.2 प्रतिशत से बढ़कर 1991 में 8.3 प्रतिशत), ''जोतों की संख्या'' में प्रवृत्तियों को देखते हुए 1971-91 की अवधि में काश्तकारी जोतों की संख्या में स्पष्ट गिरावट है।

तालिका 5.1: भारत में भूमि पट्टे में परिवर्तन (प्रतिशत)

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

किसानों की श्रेणी	1961-62		1970-71		1980-81		1990-91	
	संख्या	क्षेत्रफल	संख्या	क्षेत्रफल	संख्या	क्षेत्रफल	संख्या	क्षेत्रफल
छोटे	25.1	14.0	27.8	14.6	17.9	8.5	14.9	8.5
सीमांत	24.1	16.6	27.0	18.9	14.4	9.7	9.3	8.7
मध्यम	20.5	9.6	20.9	8.7	14.5	6.6	13.1	6.9
बड़े	19.5	8.3	15.9	5.9	11.5	5.3	16.7	19.4
सभी साइज	23.5	10.7	25.7	10.6	15.2	7.2	11.0	8.3

स्रोत: NSSO रिपोर्ट सं॰ 407, 48वां दौर

नोट: प्रतिशत कुल भूमि के हैं। संख्या का संबंध ''जोतों की संख्या'' से है।

भू-धारण सीमा

भू-धारण सीमा पर कानून दो चरणों (1955-72 और 1973 से आज तक) में क्रियान्वित किये गये हैं। भू-सीमा संबंधी नीति तीन आर्थिक अनिवार्यताओं द्वारा नियंत्रित थी- जैसे प्रतिलोमी आकार-उत्पादकता संबंध (स्पष्ट था- अर्थात् जोत का आकार जितना बड़ा होगा, उत्पादकता उतनी ही कम होगी); (ii) ऐसे भी साक्ष्य मिले हैं कि विशाल भूमिधारक कुछ भूमि को पड़ती छोड़ देते हैं जिससे भूमि उपयोग अलाभकर होता है; (iii) और गरीबों की बड़ी संख्या अपनी उत्तरजीवितता के लिए केवल भूमि पर निर्भर होती है, अत: उपलब्ध अतिरिक्त भूमि न्यायसंगत ढंग से वितरित होनी चाहिए जिससे सामाजिक न्याय और समानता को तकाजे पूरे हो सकें। इसे

ध्यान में रखते हुए, पहली योजना ने ''आर्थिक रूप से व्यावहारिक स्वयं कृषित जोत'' का आकार लगभग दो एकड़ नियत किया था। जैसा कि इकाई 2 में उल्लेख किया गया है, भारत में ''छोटा और सीमांत किसान उन किसानों को कहा जाता है जिनके पास क्रमश: 1 से 2 हेक्टेयर भूमि और एक हेक्टार/से कम भूमि होती है।'' चूंकि 1 हेक्टार 2.5 एकड़ के बराबर होता है इसलिए, पहली पंचवर्षीय योजना द्वारा दी गई आर्थिक रूप से व्यावहारिक जोत की परिभाषा का अभिप्राय है कि किसान को कम से कम एक सीमांत किसान अवश्य होना चाहिए। ''भूमि के आकार के अनुसार प्रकार्यात्मक जोतों का वितरण'' पर आंकड़े दिखाते हैं कि भारत में सीमांत किसानों संख्या 1980-81 में 56.4 प्रतिशत से बढ़कर 1995-96 में 61.6 प्रतिशत और 2000-01 में 63.00 हुई। (तालिका 5.2) छोटे किसानों का प्रतिशत भी बढ़ रहा है, परन्तु सीमांत किसानों की तुलना में ये वृद्धि कम रही है। मध्यम, बड़े और बहुत बड़े वर्गों की जोतों का अनुपात ह्रासमान हैं। ''सीमांत किसानों की प्रवृत्ति संभवत: 1980-1990 के दशक के बाद की अवधि में ''स्वामित्व अधिकारों'' के क्रियान्वयन के प्रभाव के सूचक हैं।

तालिका 5.2: प्रक्रियात्मक जोतों का आकार वितरण (प्रतिशत)

किसानों/जोतों की श्रेणी	1980-81	1995-96	2000-01
सीमांत (1 हेक्टेयर से कम)	56.4	61.6	63.0
छोटा (1 से 2 हेक्टेयर)	18.1	18.7	18.9
मध्यम (2 से 4 हेक्टेयर)	8.0	7.0	6.6
बड़ा (4 से 10 हेक्टेयर)	0.1	6.1	5.4
बहुत बड़ा (10 हेक्टेयर से अधिक)	2.4	1.2	1.0

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

स्रोत: कृषि मंत्रालय 1994-95 और कृषि संबंधी आंकड़े 2007

भूमि सुधार के इस भाग के क्रियान्वयन को (i) पूर्वव्यापी अंतरण (ii) छूटों की बहुत बड़ी संख्या (iii) भूमि सीमा नियतन का आधार आदि जैसे शब्दों में बचाव का रास्ता या अस्पष्टता के कारण धक्का लगा है। इस प्रकार अतिरिक्त भूमि अधिग्रहीत करना निष्प्रभावी था इसलिए पुनर्वितरण भी निरर्थक रहा। जिन मुख्य कारकों के कारण क्रियान्वयन की घटिया स्थिति हुई है, ''मुद्दे का ग्राम स्तर पर राजनीतिकरण'' है। बहुत से आलोचकों का मत है कि सीमाबंदी के संपूर्ण कार्य ने केवल भूमि बाजार को बिगाड़ने का काम किया है। इसलिए वे तर्क देते हैं कि सीमाबंदी और काश्तकारी कानून को एकदम उन्मूलन या धीरे-धीरे समाप्त करते हुए बाजार की शक्तियों को पूरी गतिविधियां जारी रखने की अनुमति देना आवश्यक है। अतिरिक्त कृषि भूमि के पुनर्वितरण में सीमित सफलता के बावजूद, सीमाबंदी कानून कुछ ही लोगों के हाथ में भूमि का संकेंद्रण रोकने में सफल हुए हैं।

5.4.4 अधिक छोटी जोतों की चकबंदी

भूमि सुधारों के सभी घटकों में छोटी भूमि जोतों की चकबंदी पर सबसे कम ध्यान

दिया गया है। 1970 के दशक के प्रारंभ में NSS रिपोर्ट ने प्रेक्षण किया कि ''बहुत से भू-स्वामियों ने'' गांव भर में अलग-अलग स्थानों में बिखरे हुए भूमि के कई टुकड़ों को अपने अधिकार में रखा। इसे ध्यान में रखते हुए छोटी जोतों की चकबंदी पर कानून 15 राज्यों द्वारा अंगीकार किया गया था, परन्तु इन कानूनों का क्रियान्वयन ''राजनीतिक इच्छा के अभाव और प्रशासनिक कठिनाइयों के कारण असफल रहा।'' जिन तीन राज्यों में चकबंदी कानून को पर्याप्त रूप में बेहतर क्रियान्वयन हुआ, वे हैं: पंजाब, हरियाणा और उत्तर प्रदेश। यह उल्लेख किया गया है कि स्वाभाविक रूप से जनसंख्या और आर्थिक दबावों के कारण भूमि के टुकड़े होते गए और सीमांत जोतों की संख्या में वृद्धि होती गई। इस कारण से यह बताया गया है कि एक हेक्टयर से भी कम क्षेत्रफल की जोतों और विशेषकर 0.5 हेक्टार से कम की जोतों की संख्या इन वर्षों में बढ़ती रही है। यद्यपि यह प्रक्रिया गंभीर चिंता उत्पन्न कर रही है, (महाराष्ट्र और कर्नाटक में) कुछ छुटपुट ऐसे उदाहरण है जहां हाल ही में छोटे और सीमांत किसानों ने एक साथ मिल कर सामूहिक रूप में स्ट्रॉबेरी, टमाटर, गुलाब, प्याज आदि की खेती आरंभ कर और ठेकेदार से उत्पाद की पहले से ही तय कीमत पर ''ठेके के आधार'' पर खेती की। इसलिए यह दृष्टिकोण ऐसी निवेश प्रधान फसलें पैदा करने के लिए व्यावहारिक द्वार सिद्ध हुआ है। यह प्रयोग सीमाबंदी का संस्थागत विकल्प प्रदान करता है।

5.4.5 गरीबी और उत्पादकता पर भूमि सुधार के प्रभाव

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

भूमि सुधार उपायों के क्रियान्वयन की सफलता का निर्धारक राजनीतिक कारकों को अधिक मानते हुए स्वतंत्र अनुसंधानकर्ताओं द्वारा किए गए कई अध्ययनों ने प्रकट किया है कि पश्चिम बंगाल और केरल की वामपंथी सरकारों द्वारा गरीबी और उत्पादकता पर भूमि सुधार उपायों के अधिक सुदृढ़ अनुकूल प्रभाव देखे गए हैं। इन अध्ययनों के साक्ष्य यह भी प्रकट करते हैं कि वामपंथी शासित राज्यों में क्रियान्वयन की सुदृढ़ राजनीतिक इच्छा शक्ति ने भूमि सुधारों पर स्पष्ट छाप छोड़ी है। कई अन्य अध्ययन भी हुए हैं जिन्होंने उल्लेख किया है कि 1991 के बाद के वर्षों में ''कृषि आधारभूत संरचनाओं में कम सार्वजनिक निवेश के कारण कृषि उत्पादकता/विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है''। ये प्रभाव भूमि सुधार नीतियों के सफल क्रियान्वयन के लिए नये सार्वजनिक निवेश और (राजनीतिक संस्थाओं सहित) संस्थाओं के सुदृढ़ीकरण की आवश्यकता पर बल देते हैं।

बोध प्रश्न 3

लगभग 50 शब्दों में उत्तर लिखिए।

1) भारत में भूमि सुधार कानून के चार चरण बताइए।

....

....

....

....

2) काश्तकारी सुधार के पांच मुख्य घटक क्या हैं?

....

....

....

....

3) वे पांच परिस्थितियां बताइए जिनके अधीन "काश्तकारी की समाप्ति" की अनुमति देने की मांग की जा सकती है?

....

....

....

....

4) वे तीन कारक बताइए जिनका सीमाबंदी के क्रियान्वयन के घटिया निष्पादन में योगदान रहा है।

....

....

DIKSHANT IAS

....

....

Call us @7428092240

5) भारत में स्वतंत्र अनुसंधानकर्ताओं के अनुभवजन्य साक्ष्य द्वारा भूमि सुधार प्रयासों के क्रियान्वयन को सकारात्मक रूप से प्रभावित करने वाले दो मुख्य निर्धारक क्या हैं?

....

....

....

....

5.5 वर्तमान बहस और भावी संभावनाएं

भूमि सुधार क्रियान्वयन की कई दशाब्दियों के बाद भी समुचित भूमि रिकार्ड नहीं होना एक बड़ी समस्या बनी हुई है। भूमि रिकार्ड के कंप्यूटरीकरण के लिए किए गए प्रयास आंशिक रूप में उपयोगी हुए हैं। भूमि बाजार के उदारीकरण के लिए आम सर्वसम्मति है। इस विचार के कारण "भूमि की उच्चतम सीमाएं" बढ़ाने पर भी बहस चल रही है आशा है कि बड़े फार्म निवेश आकर्षित करेंगे। इसे वर्तमान स्थिति में महत्त्वपूर्ण समझा गया है, जहां विश्व बाजार में प्रभावशाली सहभागिता समय की आवश्यकता हो गई है। इसके लिए "ठेका कृषि" व्यवस्था से कर्नाटक और महाराष्ट्र में संचालित कुछ प्रयोगों के अनुसार उत्पादकों के औपचारिक/अनौपचारिक

समूह बनाने के लिए छोटी सीमांत जोतों का व्यवसायिक एकीकरण आवश्यक बताया गया है ताकि उत्पादन का विपणन, जोखिम सुरक्षा आदि सुनिश्चित किया जा सके।

एक-एक-एक संविदाओं में काश्तकारों के पक्ष में जमींदारों का अपना हक खो जाने का भय और भूमि पट्टे पर गंभीर दबावों के कारण, गरीब पट्टेदारों की ''भूमिधारण असुरक्षा'' के बीच एक निश्चित विरोधाभास है। इसलिए बारहवीं योजना में सरकार के विचार के लिए सुविधावंचित किसानों पर कार्यदल द्वारा सार्वजनिक भूमि बैंक (LD) के विकल्प का सुझाव दिया गया है। इसके अधीन अपनी भूमि को पट्टे पर देने के इच्छुक भू-स्वामी से PLB भूमि पार्सल की 'जमा' (डिपोजिट) ले सकेगा, इसमें नियत अवधि के बाद व्यक्ति को अपनी जमा भूमि वापस लेने की पूर्ण स्वतंत्रता होगी। PLB को भूमि की जमाएं पूर्णत: स्वैच्छिक होंगी, जो किसान अपनी भूमि जमा नहीं करना चाहता है, वह सीधे अपनी भूमि पट्टे पर देने के लिए स्वतंत्र होगा। जमाकर्ताओं को दिए जाने वाले प्रोत्साहन के रूप में छोटे से भुगतान करते हुए (पंचायत क्षेत्र में विद्यमान औसत भूमि किराए के प्रतिशत के आधार पर प्राप्त होने वाले भुगतान की दर) PLB अपने कमांड के अधीन पदनामित श्रेणी के किसानों, जैसे सीमांत किसान, महिला, दलित, जनजाति आदि को भूमि पट्टे पर देगा। जमाओं को आकर्षित करने के लिए सुझाए गए अन्य प्रोत्साहनों में शामिल हैं: (i) न्यूनतम लाभ, यहां तक कि पड़ती भूमि के लिए भी (ii) उस भूमि के लिए अतिरिक्त किराया जो पट्टे पर दी जाती है। (iii) MGNAREGA या अन्य उपायों आदि के अधीन शुरू किए जाने वाले मृदा संरक्षण कार्यों द्वारा जमा की गई भूमि का विकास। भूमि में पट्टे पर दी गई भूमि PLB लाभ प्रदान कर सकता है, जैसे (i) निर्धारित अवधि के लिए गारंटीशुदा पट्टा, (ii) भूमि की गुणवत्ता से किराये को जोड़ना (ii) पट्टे पर विचार विमर्श में सामान्यतया छोटे किसानों के सामने आने वाली अनिश्चितता और कम सौदा लागत कम करना; आदि। इस प्रकार PLB भूमि आपूर्ति और मांग का मिलान करने में सहायता होगा। आपूर्ति की ओर से यह भूस्वामियों की चिंताओं का समाधान करेगा और अल्प प्रयुक्त या पड़ती भूमि को कृषि के अंतर्गत लाएगा। मांग की ओर से यह छोटे/सीमांत किसानों को ऐसी भूमि सुलभ करेगा जिसके लिए वे स्वयं खुले बाजार में प्रतिस्पर्धा नहीं कर सकते हैं। प्रस्ताव, यदि क्रियान्वित किया गया, तो उस खाई को पाटने में उपयोगी होगा जो इस समय भूमि सुधारों और कृषि विकास के क्षेत्र में गतिरोध तोड़ने के रास्ते में विद्यमान है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

5.6 सारांश

इकाई के प्रारंभ में स्वतंत्रता के समय विरासत में प्राप्त कृषि सेक्टर की स्थिति की संक्षेप में समीक्षा की गई है और इस दृष्टि से स्वतंत्रता के तुरन्त बाद अर्थव्यवस्था की कृषि संबंधी नींव के नया रूप देने में नए भारत सरकार के सामने खड़ी बड़ी चुनौतियों पर प्रकाश डाला गया है। सरकार द्वारा अपने योजना कार्यों के माध्यम से प्रारंभ किए गए विभिन्न पहल कार्यों की संक्षेप में समीक्षा की गई है। काश्तकारी और सीमाबंदी कानूनों द्वारा उसके क्रियान्वयन के पांच दशकों के दौरान कृषि संबंधों की पुनर्संरचना के लिए किए गए विशिष्ट पहल कार्यों और बाद में नीतिपरक आग्रह के पुन:स्थापन की क्या आवश्यकता है, इस वर्तमान चिंतन का आकलन किया गया

है। यथापेक्षित पहचान किए गए वर्तमान नीति कार्यवाही के लिए मुख्य क्षेत्रों में शामिल है: कृषि पुनर्संरचना पर किसी भी उल्लेखनीय सफलता के लिए राजनीतिक और संस्थागत पहलुओं से संबंधित गंभीर क्रियान्वयन मुद्दे अंतर्निहित होते हैं, पारस्परिक संपूरक तरीके में ''राजनीतिक और संस्थागत सुधारों'' दोनों के लिए उपाय प्रारंभ करना आवश्यक है।

5.7 शब्दावली

भूमि सुधार : इस शब्द का संबंध भू-स्वामित्व पर कानूनों, विनियमों और प्रथाओं का परिवर्तन करने से है। यह भूमि के कब्जे और प्रयोग को नियंत्रित करने वाले विद्यमान संस्थागत व्यवस्थाओं को संशोधित करता है या प्रतिस्थापित करता है। यह गंभीर राजनीतिक प्रक्रिया है जिसके कारण इसकी सफलता के लिए ''राजनीतिक सुधारों'' और ''संस्थागत सुधारों'' दोनों की साथ-साथ अपेक्षा होती है।

काश्तकारी सुधार : यह भूमि सुधार का घटक है जिसमें काश्तकारी संबंध का पहलू विनियमित किया जाता है। ''काश्तकारी दक्षता'' परिकल्पना नामक ''शैलीकृत'' तथ्य के कारण इसका समर्थन किया जाता है, जो कहता है कि सुरक्षित काश्तकारी की शर्तों के अधीन किसान की दक्षता और भूमि की उत्पादकता दोनों सुधरेंगे।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

जोत आकार परिकल्पना : परिकल्पना कहती है कि जोते के आकार का उत्पादकता से प्रतिलोम है। अर्थात् जैसे-जैसे जोत का आकार बढ़ता है, उससे उत्पाद घटेगा। ये परिकल्पना भारत में खेती के बारे में दो महत्त्वपूर्ण निष्कर्षों पर आधारित है; प्रति फसल उपज की इकाई जोत के आकार में वृद्धि के साथ घटती है और जब भूमि सहित सभी निवेश कारकों को ध्यान रखा जाता है, जोत उत्पादन से सकल लाभ भिन्न आकार श्रेणियों में स्थिर रहता है। इसलिए परिणाम यह होता है कि उपज, रोजगार और समग्र उत्पादन की दृष्टि से छोटे खेत अधिक दक्ष उत्पादन इकाइयां हैं। परन्तु यह आवश्यक है कि किसी स्तर विशेष से जोत के आकार को इतना नहीं घटाया जाए कि प्रचालक के लिए अपने तथा अपने परिवार

के लिए पूरे समय का रोजगार पाना तथा न्यूनतम उपयोग की आवश्यकताएं पूरा करना कठिन हो जाए। (NCA, 1976, पृष्ठ 67)

संस्थागत सुधार : इसका संबंध उन नियमों और विनियमों के वृहद् समूह से है जो सामाजिक-आर्थिक क्रियाकलाप नियंत्रित करते हैं। सुसंरचित और सुस्थापित संस्थागत व्यवस्थाओं के अधीन आर्थिक क्रियाकलाप के संचयी कार्यसंचालन से इष्टतम परिणाम या निष्कर्ष निकलने की आशा की जाती है।

5.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Besley, T. & Burgess, R. (2000): Land Reform, Poverty Reduction and Growth: Evidence from India, Quarterly Journal of Economics, 15 (2), May: 389-430.

Maitreesh Ghatak, Land Reform in India, in The Oxford Companion to Economics in India, ed. by Kaushik Basu, OUP. (http:/k/kecon.lse.ac.uk/kstaff/kmghatak/klandref.pdf)

Maitreesh Ghatak and Sanchari Roy (2007): Land Reform and Agricultural Productivity in India: A Review of the Evidence, Oxford Review of Economic Policy, Volume 23, Number 2, pp. 251-269.

National Commission on Agriculture (NCA) (1976): Part XV, Agrarian Reforms, Government of India, New Delhi.

Raj Krishna (1961): Land Reform and Development in South Asia, in W. Frochlich (ed.) Land Tenure, Industrialisation and Social Stability: Experiences and Prospects in Asia, Wisconsin, USA, The Marquette University Press.

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

5.9 बोध प्रश्नों के उत्तर/संकेत

1) भाग 5.2 पहला अनुच्छेद देखिए और उत्तर दीजिए।

2) भाग 5.2 तीसरा अनुच्छेद देखिए और उत्तर दीजिए।

3) भाग 5.3 पहला अनुच्छेद देखिए और उत्तर दीजिए।

4) भाग 5.3 पहला अनुच्छेद देखिए और उत्तर दीजिए।

बोध प्रश्न 2

1) उपभाग 5.4.1 पहला अनुच्छेद देखिए और उत्तर दीजिए।

2) उपभाग 5.4.1 दूसरा अनुच्छेद देखिए और उत्तर दीजिए।

3) उपभाग 5.4.2 पहला और दूसरा अनुच्छेद देखिए और उत्तर दीजिए।

4) उपभाग 5.4.2 पहला अनुच्छेद देखिए और उत्तर दीजिए।

5) उपभाग 5.4.2 अंतिम अनुच्छेद देखिए और उत्तर दीजिए।

बोध प्रश्न 3

1) उपभाग 5.4.3 पहला अनुच्छेद देखिए और उत्तर दीजिए।

2) उपभाग 5.4.3 दूसरा अनुच्छेद देखिए और उत्तर दीजिए।

3) उपभाग 5.4.3 तीसरा अनुच्छेद देखिए और उत्तर दीजिए।

4) उपभाग 5.4.3 पांचवां अनुच्छेद देखिए और उत्तर दीजिए।

5) उपभाग 5.4.5 अनुच्छेद देखिए और उत्तर दीजिए।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इकाई 6 पंचायती राज और स्थानीय स्वशासन

संरचना

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 संकल्पनात्मक रूपरेखा

6.3 पंचायती राज संस्थाओं (PRI) का विकास

6.4 संविधान संशोधन अधिनियम, 1992 (CCA, 1992)

6.5 कृषि विकास में PRI की भूमिका

6.5.1 फसल विकास

6.5.2 ऋण और सहयोग

6.5.3 फसल बीमा

6.6 2001 के बाद के वर्षों में PRI की प्रगति की समीक्षा

6.7 PRI और भूमि अधिग्रहण

6.8 सारांश

6.9 शब्दावली

6.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

6.11 बोध प्रश्नों के उत्तर/संकेत

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

6.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप:

- सामान्य रूप से विकास संबंधी मुद्दों से और विशेष रूप से कृषि विकास से ''संस्थागत अर्थशास्त्र'' की संकल्पनाओं को संबद्ध कर सकेंगे;
- भारत में पंचायतीराज संस्थाओं (PRIs) के विकास का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य प्रस्तुत कर सकेंगे;
- 73वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1992 के मुख्य प्रावधानों की रूपरेखा प्रस्तुत कर सकेंगे;
- 2001 में PRI पर कार्यदल की रिपोर्ट में की गई ''संस्थागत महत्त्व'' की मुख्य सिफारिशें गिना सकेंगे;
- 2001 के बाद के वर्षों में PRI के कार्यकरण की समीक्षा कर सकेंगे; और
- प्रस्तावित भूमि अधिग्रहण अधिनियम में उसकी मुख्य विशेषताओं की चर्चा करते हुए ''भूमि अधिग्रहण'' की समस्या स्पष्ट कर सकेंगे।

6.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में हमने देखा कि भूमि सुधार उपायों के सफल क्रियान्वयन के लिए ''राजनीतिक'' और ''सामाजिक'' क्षेत्रों में साथ साथ सुधार प्रारंभ करना आवश्यक है। हमने यह भी नोट किया कि भारतीय अर्थव्यवस्था के कृषि ढांचे में छोटे और सीमांत किसानों की बहुतायत है। बाजार व्यवहार के प्रति गरीब किसानों की इतनी बड़ी संख्या की अलाभकृत संवेदनशीलता के कारण 1991 से चल रही सरकार की बाजार उन्मुखी नीतियों ने कृषि सेक्टर को इस प्रकार प्रभावित किया है कि नीति योजनाकारों और अनुसंधानकर्ताओं की चिन्ताएं समान रूप से जागृत हुई हैं। इसी अनुभूति के कारण सरकार ने इसके स्वरूप को अधिक ''समावेशी'' बनाने के लिए अपनी विकास संबंधी रणनीति की पुनःरचना की है। परन्तु बाजार बनाम राज्य पर बहस में सरकार की भूमिका ऐसी परिस्थितियों की रचना तक सीमित हो जाती है जो बाजार को दक्षतापूर्वक कार्य करने में सक्षम बना सके। इस पृष्ठभूमि पर इस इकाई में हम संविधान संशोधन अधिनियम 1992 (CAA, 1992) के माध्यम से भारत सरकार द्वारा किए गए महत्त्वपूर्ण उपायों के बारे में अध्ययन करेंगे। इसका उद्देश्य स्थानीय स्वशासन द्वारा लोकतंत्री विकास के लिए पंचायतीराज संस्थाओं (PRI) का सृजन कर निम्नतम स्तर की इकाई (अर्थात् ग्राम) का सशक्तीकरण करना था; ये अधिनियम भारत में शासन व्यवस्था के लोकतंत्रीकरण में बहुत बड़ा कदम है। हम (1992 में CAA प्रभावी होने के लगभग एक दशक बाद PRI के कार्यकरण की समीक्षा करने के लिए 2001 में गठित) कार्यदल की विशिष्ट क्रियाविधि प्रारंभ करने की आवश्यकता विषयक प्रमुख सिफारिशों के बारे में भी अध्ययन करेंगे ताकि PRI कृषि सेक्टर को अधिक समुत्थानशील बनाने में योगदान कर सकें। अंत में, हम यह बताते हुए ''भूमि अधिग्रहण'' पर चल रही बहस के संक्षिप्त उल्लेख भी से पूर्व कि इस संबंध में PRI कैसे प्रभावशाली भूमिका निभा सकते हैं। फिर भी हम इन तीन मुख्य पहलुओं के अध्ययन से पूर्व संकल्पनात्मक ढांचे पर संक्षिप्त विचार करेंगे जिसे आर्थिक/संस्थागत विकास के मुद्दों से संबद्ध ''संस्थागत अर्थशास्त्र'' द्वारा प्रदान किया गया है, इसके बाद भारत में PRI के विकास का विहंगावलोकन करेंगे।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

6.2 संकल्पनात्मक रूपरेखा

संस्था: संस्थाओं का संबंध समाज में लोगों का उनके दिन प्रति दिन के कार्यकलाप में अवसरवादी व्यवहार कम करने के लिए स्थापित क्रिया विधि से है। मोटे तौर पर संस्थाएं दो प्रकार की हैं: आंतरिक संस्थाएं और बाह्य संस्थाएं। आंतरिक संस्थाएं समय के चलते प्राप्त अनुभवों से विकसित होती हैं। ऐसे अनुभवों को, जिन्होंने विगत में जटिल मुद्दों के समाधान के रूप में कार्य किया है, कालान्तर में रीतिरिवाज, नैतिक मानदंडों, व्यापार आदि के मामलों में परम्परा के रूप में कार्य करने के लिए समाविष्ट किया जाता है। इसलिए वे समुदाय में सामाजिक और व्यापार लेन-देन का संचालन करने के लिए ''स्वीकृत मानदंड'' के रूप में कार्य करती हैं। आंतरिक संस्थाओं के उल्लंघनों को सामान्यतया अनौपचारिक रूप में निपटाया जाता है, जैसे सामाजिक बहिष्कार। दूसरी ओर, बाह्य संस्थाएं, राजनीतिक और प्रशासनिक मशीनरी (जैसे विधायन द्वारा बनाए गए कानून के माध्यम से लगाए/लागू किए गए औपचारिक

प्रतिबंध हैं। इस प्रकार सामान्यतया संस्थाएं मानवीय क्रियाओं की नियामक हैं जो लेन–देन (सौदों) को पूर्वानुमेय बनाकर अवसरवादी और सनकी व्यक्तिगत व्यवहार को नियंत्रित करती है। इस प्रकार, प्रभावकारी संस्थागत मानदंड (या तो सामाजिक या कानूनी) के अभाव में, गरीब पट्टेदार के विरुद्ध जमींदार का शोषणकारी व्यवहार, इसका उदाहरण है।

पंचायती राज: शब्द ''पंचायत'' का शाब्दिक अर्थ है, ''पांच बुद्धिमान सम्मानित बुजुर्गों की परिषद'' जिनकी राय और विचार विवादों को सुलझाने या कार्य संचालन के लिए समुदाय में स्वीकृत किए जाते हैं और बंधनकारी होते हैं।

पंचायती राज की परम्परागत भावना में, (जैसा कि महात्मा गांधी ने वकालत की थी, और ''ग्राम स्वराज'' की भावना के अर्थ में किया था), सरकार के विकेंद्रीकृत स्वरूप का उल्लेख किया गया है जिसमें प्रत्येक गांव न केवल अपने स्वयं के कार्यों के लिए उत्तरदायी था बल्कि संस्थागत व्यवस्था के रूप में भी कार्य करता है ताकि गांव स्वायत (अर्थात् आत्म निर्भर) प्रशासनिक इकाइयों के रूप में कार्य कर सकें। शब्द के आधुनिक अर्थ में पंचायतीराज का संबंध उस शासन व्यवस्था से है जिसमें ग्राम स्तर पर ''ग्राम पंचायतें'' तीन स्तरों (अर्थात् ग्राम, खंड और जिला) की व्यवस्था में प्रशासन की बुनियादी इकाई होती है।

संचालन लागत: सुसंगत प्रश्न है: संस्थाएं क्यों होनी चाहिए या यदि कोई संस्था नहीं है तो क्या होता है? व्यक्ति का आधारभूत उद्देश्य लाभ प्राप्त करना है और राज्य को अपनी समृद्धि (अर्थात् राष्ट्रीय आय) बढ़ानी है। सामाजिक या कानूनी संस्थाओं के अभाव में पक्षों या आर्थिक एजेंटों के बीच विवाद लंबे समय तक चल सकते हैं और इससे व्यापार को क्षति हो सकती है। इसलिए संस्थागत व्यवस्था का उद्देश्य कानून का शासन स्थापित करना है, जिससे पहले ही विवादों को नियंत्रित किया जाता है और जब वे उत्पन्न होते हैं तो उनका निपटान ऐसे तरीके से किया जाए जिससे व्यक्तिगत/अर्थव्यवस्था की क्षतियां न्यूनतम होती हों। इस दृष्टि से संस्थाएं ऐसे नियमों के समूह हैं जिनके प्रवर्तन से अर्थव्यवस्था में ''संचालन लागत'' कम करने में सहायता मिलती है, जिनका उद्देश्य राष्ट्र की संपत्ति या व्यक्ति का लाभ अधिक से अधिक करने के लिए व्यक्तियों का व्यवहार नियंत्रित करना है। इसी दृष्टि से प्रसिद्ध अर्थशास्त्री, रोनाल्ड कोस ने माना कि ''संचालन लागत'' के अभाव में किसी भी संपत्ति (अर्थात् संपत्ति स्वामित्व के अधिकार जिसमें संपत्ति किसी भी प्रकार की हो, जैसे भौतिक, बौद्धिक, सामाजिक आदि) का आबंटन समानरूप से सफल होगा।'' कोस प्रमेय जैसी आदर्श स्थिति वास्तविकता में विद्यमान नहीं हो सकती है, इसलिए संस्थाओं का उद्देश्य ऐसी व्यवस्था सुनिश्चित करना है जिसमें आबंटन इष्टतम हो, अर्थात् समाधान स्वरूप में हित अधिकतमीकरण लागत न्यूनतमीकरण हो।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

सूचना विषमता: व्यापार या संविदा/विवाद के समझौतों में सम्मिलित पक्षों का लेन-देन व्यय या संविदा के उन पक्षों के पास उपलब्ध सूचना प्रत्यक्षत: भिन्न होंगी। परन्तु यह अपनी विशेषता में मूलत: असमान होती है, अर्थात् संचालन या विवाद में लगे हुए सभी पक्षों के लिए यह पूर्णत: एक जैसी नहीं होती है। संस्थागत क्रियाविधि का उद्देश्य इस सूचना विषमता को कम करना है। उदाहरण के लिए,

अशिक्षित किसान उस जमींदार से अपने ठेके की वास्तविक शर्तें नहीं जान सकता है जो गरीब पट्टेदार श्रमिक को हानि पहुंचाने के लिए उसमें हेराफेरी कर सकता है। दूसरी ओर, शिक्षित किसान सतर्क हो सकता है और अपने हितों की रक्षा स्वयं कर सकता है। इस प्रकार की स्थिति में राज्य का उद्देश्य संस्थाओं और अभियानों के माध्यम से शैक्षिक और सूचनात्मक सेवाओं का विस्तार करना है, और इससे कम सुविधाप्राप्त समुदाय का सशक्तीकरण करना है।

संपत्ति अधिकार: हम इकाई 5 से पहले ही जानते हैं कि संपत्ति का स्पष्ट हक भूमिधारक को संस्थागत ऋण लेने का अधिकार देता है। परन्तु ऐसे स्पष्ट संपत्ति अधिकारों का पक्ष प्राय: उन राजनीतिक दलों द्वारा नहीं लिया जाता है। वे जो उन प्रोत्साहनों को बढ़ाने का प्रयत्न करते हैं जिनसे वर्ग विभाजन से प्राप्त होने वाली स्थिति को भुनाने में अपना लाभ देखते हैं। इसलिए राजनीतिक सुधार वह सेतु है जो स्वतंत्रता और व्यवसाय/आय के व्यक्ति के अधिकारों के सम्मान पर आधारित अधिक स्वच्छ राजनैतिक लक्ष्यों/उद्देश्यों के लिए मार्ग प्रशस्त करता है। साथ साथ किए गए संस्थागत सुधार और राजनीतिक सुधार समाज/अर्थव्यवस्था में ''सूचना विषमता'' और ''संचालन लागत'' न्यूनतम करने में सहायक होते हैं। इन दोनों न्यूनीकरणों का संयुक्त प्रभाव राज्य में उस प्रवृत्ति का निर्माण करता है जो संपत्ति अधिकारों का अधिक स्पष्ट ढांचा स्थापित कर सके। दूसरे शब्दों में, विद्यमान संपति अधिकार की व्यवस्था वर्तमान राजनीतिक ढांचे/व्यवस्था की गुणवत्ता का सूचक है। राजनीतिक व्यवस्था की परिपक्वता अर्थव्यवस्था में सुदृढ़ संपत्ति अधिकारों के विकास के लिए आवश्यक और पर्याप्त दोनों दोनों प्रकार की शर्त है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

स्थानीय शासन: मोटे तौर पर स्थानीय स्वशासन की परिभाषा कुशल शासन व्यवस्था प्रदान करने के लिए सामूहिक कार्रवाइयों के अनुसरण में औपचारिक संस्थाओं की और अनौपचारिक मानदंडों, तंत्रों, सामुदायिक संगठनों आदि की प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष भूमिकाएं सम्मिलित करने की दृष्टि से की गई है। इसमें गतिशील रहन सहन, कार्यरत और पर्यावरण की दृष्टि से संरक्षित स्वशासी समुदायों के विविध उद्देश्य शामिल हैं। संक्षेप में, यह लोगों का जीवन स्तर समृद्धशाली बनाने के बारे में है।

संस्थागत विकास और आर्थिक विकास: औपचारिक दबाव, जैसे व्यवहार के मानदंड, परम्पराओं, आचार संहिता आदि प्रौद्योगिकीय और जनसांख्यिकीय परिवर्तनों के स्थिर स्तरों द्वारा नियंत्रित स्थितियों के लिए अच्छा कार्य कर सकते हैं। परन्तु आधुनिक समय में प्रौद्योगिकीय और जनांकीय/दोनों प्रभाव गतिशील हैं। इस दृष्टिकोण से आंतरिक संस्थाएं (अर्थात् मानदंड और रीतिरिवाज) आवश्यक हैं, परन्तु, आर्थिक विकास के लिए पर्याप्त नहीं हैं। संस्थागत विकास का मुख्य मुद्दा ऐसे आर्थिक वातावरण के लिए पर्याप्त नहीं है जो उत्पादकता को प्रेरित कर सके। इसके लिए राजनीतिक और आर्थिक दोनों संस्थाओं का पर्याप्त विकास अपेक्षित है। इस परिप्रेक्ष्य से देखें तो आर्थिक विकास को संस्थागत विकास के बराबर मानना चाहिए।

बोध प्रश्न 1

लगभग 50 शब्दों में उत्तर दीजिए।

1) ''पंचायती राज'' सरकार की व्यवस्था, जैसी कि महात्मा गांधी ने, परिकल्पना की थी, और उसके आधुनिक अर्थ के बीच अंतर बताइए।

....

....

....

....

2) रोनाल्ड कोस ने ''संस्थाओं'' पर अपनी प्रमेय कैसे अभिगृहीत की? वास्तविकता में, इस संबंध में ''मध्य मार्ग'' कैसे निकला?

....

....

....

....

3) ''सूचना विषमता'' कृषि पर कैसे प्रभाव डालती है? संक्षेप में उदाहरण सहित बताइए।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

....

....

4) ''संपत्ति अधिकारों के अधिक स्पष्ट ढांचे की स्थापना'' ने ''सूचना विषमता'' और ''संचालन लागत'' के न्यूनीकरण के संयुक्त प्रभाव को कैसे प्रभावित किया?

....

....

....

....

5) क्या आप इस कथन से सहमत हैं कि ''संस्थागत विकास का अभिप्राय आर्थिक विकास है''?

....

....

....

....

6.3 पंचायती राज संस्थाओं (PRI) का विकास

ग्राम पंचायत नाम की संस्था भारत में बहुत लंबे समय से विद्यमान है। अठारहवीं शताब्दी तक पंचायतों ने स्थानीय प्रशासन की प्रभावशाली इकाई के रूप में ग्राम समुदाय को प्रभावित करने के अधिकांश कार्य किए। ब्रिटिश शासन के दौरान विभिन्न प्रांतों ने ग्राम पंचायत अधिनियम पारित किए। बल्कि इन अधिनियमों के अधीन बनाई गई पंचायतें लोकतांत्रिक ढंग से चुने गए निकाय नहीं थे, बल्कि सरकार द्वारा सदस्यों के नामांकन द्वारा बनाए गए थे। यहां तक कि नई भारत सरकार, जिसने 1950 में अपना संविधान अंगीकृत किया, (और संघ (केंद्र) और राज्य स्तरों पर सरकारें गठित करने के लिए लोकतांत्रिक ढंग से निर्वाचित सदस्यों के लिए विस्तृत प्रावधान किए) ने भी इसे सुस्पष्ट संवैधानिक अनिवार्यता बनाए बिना ही छोड़ दिया था। परन्तु उसने निम्नतम स्तर लोकतांत्रिक संस्थाओं का महत्त्व स्वीकार किया, और यह निर्धारित किया (राज्य नीति के मार्गदर्शी सिद्धांतों के अनुच्छेद 40 में) कि ''राज्य ग्राम पंचायतों को अपेक्षित शक्तियां और प्राधिकार देते हुए उन्हें गठित करने के लिए कदम उठाएंगे ताकि वे स्थानीय स्वशासन की इकाइयों के रूप में कार्य कर सकें।'' इस प्रकार PRI संविधान के अधीन राज्य विषय बने।

वर्ष 1952 में प्रारंभ किये गए सामुदायिक विकास कार्यक्रमों (COPs) में PRI को लोगों की सहभागिता जुटाने का राजनीतिक कार्य सौंपा गया था। पांच वर्ष बाद 1957 में CDP में सार्वजनिक सहभागिता के स्तर का आकलन करने और ऐसे उपायों की सिफारिश करने के लिए एक समिति (बलवंत राय मेहता समिति) का गठन किया गया था, जिनसे लोगों की सहभागिता बढ़ाई जा सके। समिति ने सांविधिक रूप से निर्वाचित स्थानीय निकायों के गठन, और उन्हें आवश्यक संसाधन/शक्ति/प्राधिकार सौंपने की सिफारिश की ताकि विकेंद्रीकृत प्रशासनिक व्यवस्था स्थानीय निकायों के अधीन कार्य कर सके। उसने यह भी सिफारिश की कि लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण की मूल इकाई ''खंड'' होना चाहिए। समिति ने प्रत्येक खंड के लिए पंचायत समिति नाम के कार्यपालक निकाय सहित गांव (गांवों के समूह) के लिए प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित पंचायतों का भी सुझाव दिया। यह भारत में 'पंचायती राज व्यवस्था' की उत्पत्ति है। यद्यपि लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण का उद्देश्य स्वीकार करते हुए पंडित जवाहर लाल नेहरू ने भी इस प्रयास का 'नए भारत के संदर्भ में सबसे अधिक क्रांतिकारी और ऐतिहासिक कदम' के रूप में वर्णन किया था।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इसके बाद, प्रायः सभी राज्य सरकारों ने (त्रिपुरा और अरुणाचल प्रदेश को छोड़कर) अनेक कदम उठाए परिणामस्वरूप राज्यों में खंड केंद्रित विकास में प्रगति भिन्न-भिन्न प्रकार से हुई। अगली बड़ी समीक्षा 1978 में अशोक मेहता समिति द्वारा की गई जिसने पंचायतीराज की अभिकल्पना को ही संस्था का रूप देने की सिफारिश की। पंचायती निकायों द्वारा ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के प्रभावशाली क्रियान्वयन के लिए जरूरी समझे गए विकास संबंधी दबाव और तकनीकी विशेषता प्राप्ति की समीक्षा के बाद निश्चित सुझाव और सिफारिशें करने के लिए भिन्न-भिन्न कार्य दल बनाए गए थे। एक ऐसा ही दल एम. एल. दान्तेवाला (1977) की अध्यक्षता में था, और बाद में सी.एच. हनुमन्था राव (1982) की अध्यक्षता में गठित दल ने भी

पंचायत निकायों की पुनर्संरचना पर दूरगामी सिफारिशें की। दोनों दल यह सिफारिश करने में एकमत थे कि आधारभूत विकेंद्रीकृत योजना कार्य जिला स्तर पर होने चाहिए। उन्होंने ये दो मुख्य सिफारिशें की हैं:

- विकेंद्रीकृत योजना आगे बढ़ाने के लिए संस्थागत क्रियाविधि अधिक व्यापक आधार की होनी चाहिए। ऐसी संस्थाओं (पंचायतीराज संस्थाओं/PRI के माध्यम से) को जिला योजना प्रक्रिया में प्रमुख भूमिका निभानी चाहिए;
- उपर्युक्त के लिए, स्थानीय प्रतिनिधियों की सक्रिय भागेदारी होनी चाहिए। PRI को स्थानीय निर्णय करने में पर्याप्त स्वायतत्ता दी जानी चाहिए।

1980 की दशाब्दी के मध्य में भारत में स्थानीय स्वशासन ढांचों को पुनः अधिक सक्रिय किया गया। कृषि और ग्राम विकास कार्यक्रमों में उन्हें संबद्ध किया गया। इससे नए प्रभावशाली आंदोलन का अविर्भाव हुआ। इसके दो कारण हैं। पहला, उसमें सरकार का ये दृढ़ विश्वास था कि (i) केंद्रीय स्थान से शासन करने/योजना बनाने के लिए भारत बहुत विशाल देश है; और (ii) इसलिए बहुत से कार्यों का उत्तरदायित्व स्थानीय स्तर पर होना चाहिए जिससे आगे चलकर अधिक जवाबदेही होगी। यद्यपि सरकार को भय था कि आबंटित संसाधनों का दुरुपयोग भी हो सकता है (अर्थात् प्रशासनिक प्राधिकारों के विस्तार के कारण गलत खर्च हो सकता है जिस पर बाद के हुए अध्ययन ने अनुमान लगाया था कि विकास पर खर्च किए गए प्रत्येक रुपए में से केवल 17 पैसे वास्तविक अंतिम लाभभोगी के पास जाते हैं, अर्थात् विकास प्रकतयों के क्रियान्वयन में सम्मिलित प्राधिकारियों के विस्तार के कारण छीजन का प्रभाव इतना अधिक है)। यह माना गया था कि आगे चलकर लोकतांत्रिक नीतियां ऐसे दुरुपयोग का ध्यान रखेंगी। इसे रोकने के लिए अधिक गरीब समूहों, जैसे अनुसूचित जातियों/अनुसूचित जनजातियों और महिलाओं के लिए संस्थागत उपायों के रूप में राजनीतिक और आर्थिक अधिकार की वकालत की गई। दूसरा मुख्य कारण था कि भारत की प्रारंभिक कृषि योजना व्यवस्थाएं स्वरूप में रैखिक थीं (अर्थात् वे नहर/ट्यूब वेल (नलकूप) और HYVs पर अधिक बल देते थे) जिसके फलस्वरूप अनुकूल क्षेत्र/अनुकूल फसल रणनीति अपनाई जाती थी। चूंकि इस नीति पर कई बड़े प्रश्न उठाए गए, इसलिए अब कृषि जलवायु योजना पर बल दिया गया। एक बार फिर स्थानीय सहभागिता और स्वयंसेवी संगठनों की आवश्यकता को प्रमुखता मिली। ''संसाधन आबंटन'' और ''निर्णयन'' से संबद्ध मुद्दों से ''रोजगार और ग्राम विकास के लिए विशेष कार्यक्रमों'' के एकीकरण पर भी प्रमुखता से ध्यान दिया गया। कई अन्य आकलन और समीक्षा/अध्ययनों के निष्कर्षों से इन समस्याओं ने सरकार को अपनी सातवीं योजना के प्रलेख में इस प्रकार रिकार्ड करना पड़ा: ''यह देखा गया है कि जहां कहीं PRI को सक्रिय रूप से शामिल किया गया है, ग्राम विकास कार्यक्रमों का क्रियान्वयन बेहतर हुआ है और लाभभोगियों का चुनाव और प्रकल्पों की अभिकल्पना अधिक संतोषजनक रही है। इसलिए विकास कार्यक्रमों को अधिक अर्थपूर्ण बनाने के लिए जनप्रतिनिधियों को संबद्ध करना आवश्यक है और विभिन्न रोजगार और गरीबी निवारण कार्यक्रमों की अभिकल्पना निरूपण/क्रियान्वयन के लिए PRI को शामिल करने के अलावा कोई अन्य बेहतर साधन नहीं है।''

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इसलिए यह पहल कार्यों और प्रयासों के उपर्युक्त अनुक्रम का परिणाम है कि मूल पंचायती राज विधेयक (1989) का उद्देश्य न केवल शक्ति का विकेंद्रीकरण करना था बल्कि SC, ST और महिलाओं जैसे अधिक गरीब वर्गों को राजनैतिक अधिकार देना भी था जो भूमिहीन श्रमिकों और कारीगर समुदाय का बहुत बड़ा भाग है। इसके अलावा, ऐसे अधिक गरीब वर्गों के लिए आरक्षित सीटों की कुल संख्या में से तीस प्रतिशत सीटें SC/ST समुदाय की महिला सदस्यों के लिए आरक्षित की जाती हैं। राज्यों के विधान मंडलों को भी सलाह दी गई है कि वे भी पंचायतों को ऐसी शक्तियां और प्राधिकार दें जो उन्हें स्वशासन की संस्थाओं के रूप में कार्य करने की क्षमता के लिए अपेक्षित हों। परन्तु प्रक्रिया विलंबित की गई और राज्यों को दी गई बहुत विवेकाधिकार शक्ति के कारण बहुत से मूल प्रावधान कमजोर रह गए। इस पर भी बहुत मुख्य विशेषताएं जैसे (i) अनिवार्य चुनाव; (ii) सामाजिक रूप से सुविधावंचित वर्गों के लिए आरक्षण (iii) संसाधनों और शक्तियों का हस्तांतरण; और (iv) इन में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण राष्ट्रव्यापी रोजगार योजनाओं के लिए ग्राम स्तर पर संसाधनों का आबंटन, जैसे जवाहर रोजगार योजना (JRY) राज्य सरकारों द्वारा अधिनियमित विधायनों में रहा। अधिक जवाबदेही और सहभागिता सुनिश्चित करने के लिए प्रत्येक ग्राम की वार्षिक कार्ययोजना पर इस बात का ध्यान रखते हुए ग्राम पंचायत में चर्चा करना आवश्यक था कि ऐसे कार्यों को प्राथमिकता दी जाती है जो समुदाय के कमजोर वर्गों के लिए लाभप्रद हो। इस प्रकार इन सभी प्रयासों के फलस्वरूप पंचायतों को JRY आदि जैसे कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में सक्रियता से सम्मिलित किया गया, उनका वास्तविक निष्पादन उतना अधिक प्रभावशील नहीं रहा जितनी आशा की गई थी। दूसरे शब्दों में, विकास कार्यों की योजना और क्रियान्वयन प्रक्रिया में, सरकारी नौकरशाही द्वारा निभाई गई प्रमुख भूमिका, अभी भी एक वास्तविकता थी जो मुख्यत: विकास कार्य की योजना और क्रियान्वयन अवस्थाओं में PRI के एकीकरण की कमी के कारण थी। ऐसी अंतर्निहित दुर्बलताएं समाप्त करने के लिए 1991 में सरकार ने पंचायत प्रणाली के संपूर्ण मुद्दे को केंद्र में लाने के लिए अपेक्षित राजनीतिक समर्थन जुटाने की व्यवस्था की और 1991 में संविधान (72वां संशोधन) विधेयक प्रस्तुत किया। बाद में विधेयक 1992 में 73वां संविधान संशोधन अधिनियम के रूप में अधिसूचित किया गया था।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

6.4 संविधान संशोधन अधिनियम, 1992 (CAA, 1992)

अधिनियम ने 'पंचायत' की परिभाषा भारत के संविधान के अनुच्छेद 243 ख के अधीन संस्थापित स्वशासन की 'संस्था' के रूप में की है। अधिनियम ग्राम, खंड (यदि राज्य की जनसंख्या 20 लाख से अधिक है) और जिला स्तरों पर पंचायतों के गठन का प्रावधान करता है (इन्हें विशेष रूप से क्रमश: ग्राम सभा, खंड पंचायत, और जिला परिषद नाम दिए गए हैं।) CAA, 1992 का मुख्य आग्रह निम्नलिखित के संबंध में है :

(i) ''ग्राम सभाओं को संविधानिक दर्जा प्रदान करना; (ii) पंचायतों का तीन स्तरीय प्रशासनिक ढांचा बनाना जिनमें 'ग्राम' को प्रशासन की मूल इकाई का दर्जा दिया गया है- अन्य दो खंड और जिले हैं; (iii) पंचायतों को प्रशासनिक और वित्तीय

दोनों शक्तियों का हस्तांतरण; (iv) पांच वर्षों में एक बार पंचायतों की वित्तीय स्थिति की समीक्षा राज्य सरकारों को राज्य वित्त आयोग से करवाने की शक्ति; (v) पांच वर्षों में एक बार ''पंचायत चुनाव'' करने की जिम्मेदारी राज्य निर्वाचन आयोग को देना। (vi) सामाजिक दृष्टि से अल्प सुविधाप्राप्त वर्गों, जैसे SC/ST को उनकी जनसंख्या के अनुपात में निर्वाचित पंचायतों में सीटों के आरक्षण का प्रावधान करना; और (vii) आरक्षित और अनारक्षित दोनों, श्रेणियों के लिए कुल सीटों में कम से कम 33 प्रतिशत का अतिरिक्त आरक्षण महिलाओं के लिए करने का प्रावधान करना। अधिनियम पंचायत के सदस्य की अयोग्यता का भी प्रावधान करता है यदि वह किसी अन्य कानून द्वारा ऐसा अयोग्य है। अधिनियम पांच वर्षों में एक बार पंचायत के क्षेत्र में राज्य क्षेत्रीय निर्वाचित क्षेत्रों से ''प्रत्यक्ष निर्वाचन'' द्वारा सदस्य निर्वाचित होना आवश्यक बनाता है। ''पंचायतों'' और उसके सदस्यों की शक्तियां, प्राधिकार और उत्तरदायित्व ऐसे तरीके से राज्यों द्वारा निर्धारित की जाती हैं कि वह ''स्वशासन की संस्थाओं'' के रूप में उन्हें कार्य करने के लिए सक्षम बनाते हैं। उनके कार्यों के क्षेत्र में सामाजिक न्याय सुनिश्चित करने पर फोकस के साथ समग्र आर्थिक विकास के लिए योजनाएं और प्रकल्प तैयार करना तथा उनका क्रियान्वयन करना शामिल है। ये अधिनियम (अनुच्छेद 243जी के अधीन) 29 विषय विनिर्दिष्ट करता है जिनमें से पहले सात कृषि (और संबद्ध) विकास से संबंधित हैं। ये हैं: कृषि विस्तार सहित कृषि; (ii) भूमि सुधार, भूमि सुधार का क्रियान्वयन; भूमि चकबंदी और मृदा संरक्षण, (iii) लघु सिंचाई, जल प्रर्वधन और जल विभाजक विकास, (iv) पशु पालन, डेरी उद्योग और कुक्कुट पालन; (v) मत्स्यपालन, (vi) सामाजिक वानिकी और फार्म वानिकी, और (vii) लघु वन उत्पाद। अन्य 22 विषय ''उद्योग'' और ''सेवा क्षेत्रों'' से संबंधित है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

PRI के संसाधन: अधिनियम राज्य की ''संचित निधि'' से पंचायतों को सहायता अनुदान देने के अलावा; पंचायतों को निर्धारित प्रक्रिया और सीमा के अनुसार उपकर लगाने, एकत्र करने और समुचित कर, शुल्क, चुंगी और फीस लगाने और वसूलने का अधिकार भी देता है।

बोध प्रश्न 2

लगभग 50 शब्दों में उत्तर दीजिए।

1) भारत के संविधान में 1957 में PRI द्वारा विकेंद्रीकृत शासन को क्या प्रस्थिति प्रदान की गई है?

....

....

....

....

2) आप भारत में ''पंचायती राज संस्था की उत्पति'' के रूप में क्या निर्धारित करेंगे?

....

....

....

....

3) किस योजना में पहली बार PRI प्रशासित क्षेत्रों में बेहतर आर्थिक निष्पादन स्वीकार किया गया था? इस मान्यता के लिए मुख्य महत्त्व का तात्कालिक परिणाम क्या था?

....

....

....

....

4) मूल पंचायत विधेयक की चार मुख्य विशेषताएं क्या हैं जो बाद के प्रारूप में भी रखीं गई हैं जिसमें 1980 की दशाब्दी के अंत में यह भिन्न-भिन्न राज्य सरकारों द्वारा पारित किया गया था?

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

5) क्या CCA 1992 जनसंख्या के सुविधावंचित वर्गों के लिए पंचायतों में सीटों का कोई आरक्षण प्रदान करता है? ''कृषि और संबद्ध विकास'' के सुसंगत उन विशिष्ट क्षेत्रों का उल्लेख कीजिए जिन्हें CCA, 1992 में शामिल किया गया है?

....

....

....

....

6.5 कृषि विकास में PRI की भूमिका

जैसा कि ऊपर कहा गया है और इसे पुन: दोहराते हैं, CCA,1992 ने 29 विषयों को विनिर्दिष्ट किया है जिनमें से निम्नलिखित सात कृषि (और संबद्ध) विकास से संबंधित हैं: (i) कृषि विस्तार सहित कृषि, (ii) भूमि सुधार और भूमि सुधारों का क्रियान्वयन; भूमि चकबंदी, और मृदा संरक्षण (iii) लघु सिंचाई, जल प्रबंधन और जल विभाजक विकास, (iv) पशु पालन, डेरी उद्योग और कुक्कुट पालन (v) मत्स्य पालन, (vi) सामाजिक वानिकी और फार्म वानिकी और (vii) लघु वन उत्पाद। CCA 1992 के क्रियान्वयन की लगभग एक दशाब्दी यह पाया गया था कि राज्यों में PRI सशक्तीकरण की प्रक्रिया न केवल विविध स्वरूपों में अपनाई गई है बल्कि

कार्यक्रमों की योजना और क्रियान्वयन में PRI को जोड़ने की प्रक्रिया अभी स्थापित की जानी थी। एकीकरण की इस प्रक्रिया को आसान बनाने के लिए, योजना आयोग ने 2001 में दो विशिष्ट उद्देश्यों से कार्यदल (TF) गठित किया। ये थे: (i) केंद्रीय मंत्रालयों और विभागों की स्कीमों में PRI की सहभागिता के लिए प्रचालनात्मक दिशानिर्देशों का निरूपण करना और (ii) गैर-सरकारी संगठनों से PRI के अंतर्संबंध के लिए मानदंड का सुझाव देना। पूर्वोक्त को महत्त्वपूर्ण समझा गया, क्योंकि NGO की सहभागिता को कार्यक्रमों के सद्भावपूर्ण क्रियान्वयन के लिए निरंतर महत्त्वपूर्ण स्वीकार किया जा रहा था। इस अनुभाग में हम कृषि विकास के निम्नलिखित तीन मुख्य क्षेत्रों के लिए अनुप्रयोज्य योजनाओं की चर्चा संक्षेप में करेंगे जिनकी सिफारिश PRI द्वारा की निश्चित भूमिका के लिए की गई है। ये हैं : (i) फसल विकास, (ii) ऋण और सहयोग; और (iii) फसल बीमा। इस अनुभाग में शामिल की गई सिफारिशें निम्नलिखित से संबंधित हैं: (i) कृषि कार्यों से संबंधित विशिष्ट कार्यकलाप; और कार्यों का समन्वय करने में PRI द्वारा निभाई गई भूमिका का विनिर्देशन।

6.5.1 फसल विकास

कृषि विस्तार और अनुसंधान संगठनों के अधिकारियों की क्रियान्वयन मशीनरी को PRI के प्रत्यक्ष पर्यवेक्षण और नियंत्रण के अधीन अपने कार्यक्रमों की योजना बनानी और क्रियान्वयन करनी चाहिए। इस संबंध में कार्यकलापों की पांच अवस्थाओं की पहचान की गई है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

- कार्यकलापों की **पहली** अवस्था में निश्चित क्षेत्र में विस्तारित की जाने वाली फसल के संबंध में प्रौद्योगिकियों का निर्धारण अंतर्निहित है। PRI समुचित स्तर पर सम्मिलित संगठनों के अनुसंधान और तकनीकी प्रमुखों को किसानों के विचारों का ज्ञान प्रदान करेंगे।

- **दूसरी** अवस्था में उन क्षेत्रों की पहचान अंतर्निहित है जहां प्रदर्शन कार्यक्रम संचालित किए जाने हैं। PRI उन स्थानों का निर्धारण करने में निर्णायक भूमिका निभाएंगे जहां उनके प्रयोजन के क्षेत्र में प्रयोग की जाने वाली नई प्रौद्योगिकी का प्रयोग होना है। 'खंड पंचायत' विभिन्न पंचायतों में स्थलों के चयन पर निर्णय करेगा जबकि लाभभोगियों का निर्धारण ग्राम पंचायतों का विशेषाधिकार होगा।

- घटनाओं की **तीसरी** अवस्था में निवेशों की व्यवस्था अंतर्निहित है। इसे जिला/खंड स्तर पर PRI के निकटतम परामर्श से किया जाएगा ताकि प्रभावकारी आपूर्ति और वितरण के अनुसार पारदर्शिता और उत्तरदायित्व सुनिश्चित किया जा सके।

- **चौथी** अवस्था में तकनीकी कर्मियों द्वारा वास्तविक प्रदर्शन अंतर्निहित है। इस अवस्था में स्थानीय स्तर पर PRI व्यापक रूप में प्रदर्शन का प्रचार करेंगे ताकि समीपवर्ती क्षेत्रों के किसानों की भागेदारी सुनिश्चित की जा सके। खंड/जिला स्तरों पर PRI निकायों की सहभागिता से अन्य कार्यक्रमों से सहसंबंधन विकसित हो सकता है ताकि तकनीकी कर्मिकों से किसानों की अधिक सहभागिता और

प्रभावशील आदान-प्रदान प्राप्त हो सके। PRI तकनीकी कार्मिकों को प्रदर्शन का पुनर्निवेशन भी प्रदान कर सकते हैं जो प्रदर्शन कार्यों की अनुवर्ती अवस्था में दोषनिवारण में सहायक होगा।

- कार्यकलापों के अनुक्रम की **अंतिम** अवस्था में निवेशों का वास्तविक वितरण सम्मिलित किया जा सकता है जो प्रमाणीकृत बीजों, मिनीकिटों, फार्म औजारों, मशीनरी, छिड़काव सेट, माइक्रोसेट आदि के रूप में हो सकते हैं। वितरण को इस प्रावस्था में PRI की सहभागिता पारदर्शिता/जवाबदेही/समता का विचार सुनिश्चित करने के लिए, और प्राप्त निवेशों के अनुसार लाभभोगियों की संतुष्टि सुनिश्चित करने के लिए भी महत्त्वपूर्ण है। यह वास्तविक क्रियान्वयन की अनुवर्ती अवस्थाओं में कार्यकलाप की निगरानी करने के लिए भी सहायक होगा।

6.5.2 ऋण और सहयोग

इस उप क्षेत्र के अधीन प्रमुख कार्यकलापों में शामिल हैं: (i) प्राथमिक सहकारी समितियों के माध्यम से किसानों को ऋण का वितरण; (ii) कार्यशील पूँजी के रूप में परियोजनाओं के विकास के लिए सहकारी संस्थाओं की सहायता; और (iii) आधारभूत संरचना विकास सहायता। ग्राम प्रचायतों की सहभागिता निम्नलिखित में होनी चाहिए: (i) निर्धारित मानदंडों के अनुसार लाभभोगियों का चयन, (iii) प्राथमिक ऋण समितियों द्वारा ऋण योजना तैयार करना, और (iii) यह सुनिश्चित करना कि ऋण लाभभोगियों को ठीक समय में मिलता है। उन्हें निम्नलिखित में भी शामिल किया जाना चाहिए: (i) प्राथमिक ऋण समितियों की सदस्यता का विस्तार करना; (ii) ऋण लेने वालों को अपना ऋण समय पर चुकाने के लिए प्रेरित करना और (iii) अत्यंत वास्तविक मामलों में जहां ऋणी ऋणदाता संस्थाओं को अपनी कठिनाइयां स्पष्ट करते हुए अपने ऋण चुकाने में असमर्थ हैं, परन्तु उसे दुराग्रही चूककर्ताओं के विरुद्ध कार्यवाही भी प्रारंभ करनी चाहिए। खंड स्तर पंचायतों की भूमिका: ऋण की राशि वितरण का निरीक्षण करना, अन्य निवेश प्रदान करने वाले कार्यक्रमों से सहसंबंध विकसित करना, ऋण लेने वालों को अपने ऋण चुकाने में तैयार करना और जहां प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण ऋण चुकौती में विलंबित हुआ है, वहां ऋण चुकौती योजना पुन: बनाने में सहायता करनी होगी। इसके अतिरिक्त खंड स्तर की पंचायतों की यह भूमिका भी होगी: (i) ऐसी संस्थाओं की पहचान करना, जिन्हें परियोजना पूरी करने के लिए ऋण की आवश्यकता है, (ii) परियोजना प्रस्ताव/रिपोर्ट तैयार करने में उनकी सहायता करना, और (iii) जिला परिषदों की सहायता से ऋण संस्थाओं से समय पर ऋण की राशि का वितरण सुनिश्चित करना। उन्हें यह सुनिश्चित करने के लिए ऐसी संस्थाओं के कार्यकलापों की निगरानी भी करनी चाहिए कि प्राप्त सहायता का उपयोग उचित रूप से हुआ है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

6.5.3 फसल बीमा

इसके अधीन किए गए कामों में शामिल हो सकते हैं: (i) लाभभोगियों की पहचान, (ii) दावों की तैयारी, (iii) दावों के शीघ्र निपटान में सहायता करना; और (iv) सुनिश्चित करना कि लाभभोगी क्षतिपूर्ति राशि का भुगतान समय पर प्राप्त करते हैं।

लाभभोगियों की पहचान करने और ब्यौरों की यथाविधि संवीक्षा करने के बाद दावों की तैयारी में सहायता करने में ग्राम पंचायतों को शामिल किया जाना चाहिए। खंड स्तर और जिला स्तर की पंचायतें भी दावों के शीघ्र निपटान करने में भूमिका निभा सकती हैं। तब ग्राम स्तर की पंचायत सुनिश्चित कर सकेगी कि किसी परेशानी के बिना सही लाभभोगी दावे का भुगतान प्राप्त करते हैं। इसके अलावा, वे उन किसानों की भी सहायता कर सकते हैं जिनकी फसलें नष्ट हो गई है या अगली खेती के लिए तैयारी करने में क्षति हुई है। ये सभी ऐसे कार्यकलाप हैं जिनमें किसानों का विश्वास प्राप्त करने के उद्देश्य से पंचायतों द्वारा पहले से ही सक्रिय भूमिका निभाए जाने की काफी गुंजाइश होती है, ताकि वे बीमा प्रस्तावों/दावों के मामले में उनकी मध्यस्थता ले सकें। कुछ समयावधि के बाद प्रक्रिया/पद्धति को सरल और कारगर किया जा सकता है ताकि कोई भी किसान या किसानों का समूह हानि/जोखिमों के लिए अपने आप को सुरक्षित किए बिना फसल आरंभ न कर सके।

उपर्युक्त विवरण से ज्ञात होता है कि वर्ष 2001 तक, अर्थात् CAA, 1992 के अधिनियमन के लगभग एक दशक के बाद भी PRI के लिए ऐसी निश्चित भूमिका का अभी निर्धारण किया जाना था। कार्यदल की रिपोर्ट ने चार अन्य क्षेत्रों, अर्थात् भूमि और जल संसाधन विकास, निवेशों का उत्पादन, सिंचाई और प्राकृतिक संकटों के लिए सहायता के लिए PRI की ऐसी ही भूमिका का प्रस्ताव प्रस्तुत किया है। अगले भाग में, हम संक्षेप में समीक्षा करेंगे, कि निम्नतम स्तर तक कार्यकरण की अपनी प्रत्याशित भूमिका में PRI की अपेक्षित प्रक्रिया 2001 के बाद के वर्षों में कहां तक ग्रहण की गई है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

6.6 2001 के बाद के वर्षों में PRI की प्रगति की समीक्षा

PRI की प्रगति का आकलन करने की एक विधि अनुभवसिद्ध सूचकों के आधार पर ''स्थानीय स्वशासन (LSG) का आकार और महत्त्व'' देखना है, जैसे (i) समग्र सार्वजनिक क्षेत्र के व्यय की तुलना में LSG का व्यय, और (ii) देश के कुल GDP में LSG के व्यय का सापेक्ष भाग। भारत द्वारा इस संबंध में की गई प्रगति और भी समझी जा सकती है, यदि जब हम अन्य देशों की तुलना में उसका तुलनात्मक चित्र बनाते हैं जिन्होंने वैसी ही विकेंद्रीकृत शासन संरचना पहले से ही स्थापित की हुई है। स्थानीय सरकारों के 2000 के बाद के प्रारंभिक वर्षों के संयुक्त भाग का तुलनात्मक संक्षिप्त विवरण (जिसमें PRI और शहरी स्थानीय निकायों (ULB) का शेयर शामिल है, देखिए शब्दावली) प्रकट करता है कि भारत का भाग OECD देशों, और ब्राजील की तुलना में काफी कम था। (तालिका 6.1) GDP के अनुपात के रूप में स्थानीय सरकारों का कुल व्यय भारत का ये अंश और भी कम था। यह ब्राजील के 6.5 प्रतिशत और OECD देशों के 13.8 प्रतिशत की तुलना में केवल 1.7 प्रतिशत था। यद्यपि यह ऐसा चित्र है जो 2002 के बाद के वर्षों में देश के अंदर अंतर्राष्ट्रीय तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य में प्राप्त होता है, फिर भी ये वर्ष 2002-03 में 356 रु. की सभी राज्यों की औसत से बढ़कर वर्ष 2007-08 में 779 हो गया। ये PRI के प्रति व्यक्ति व्यय (PCE) में सुधार का संकेत है। इस संबंध में अंतः राज्य स्थिति में अंतर भी नीचे आ रहा है।

तालिका 6.1: स्थानीय सरकारों का आकार और महत्त्व

देश	कुल सार्वजनिक क्षेत्र व्यय की तुलना में स्थानीय सरकार के व्यय का प्रतिशत	GDP की तुलना में स्थानीय सरकार के व्यय का प्रतिशत
OECD	20-35	13.8
ब्राजील	15	6.5
भारत	5.1	1.7

स्रोत: ओम्मेन, 2010, टिप्पणियां (i) (OECD): आर्गनॉइजेशन फॉर इकनामिक कोऑपरेशन एंड डेवेलेपमेंट (ii) आंकड़े वर्ष 2002-03 से संबंधित है।

उदाहरण के लिए, 2002-03 में न्यूनतम: अधिकतम अनुपात 75.7 था (बिहार का PCE सबसे कम 18 रु. था और उच्चतम महाराष्ट्र में 1,364 रु. था) यह न्यूनतम-अधिकतम अनुपात 2007-08 में 61.8 पर नीचे खिसक गया, एक बार फिर बिहार का PCE 68 रु. न्यूनतम पर था और कर्नाटक का 2,967 रु. था। प्रसंगत: तुलनात्मक विवरण से प्रगट होता है कि CCA, 1992 का बिहार पर कम से कम प्रभाव रहा है। कुछ अन्य राज्यों, जैसे राजस्थान, पंजाब और उत्तर प्रदेश की स्थिति भी बेहतर नहीं रही। इस संदर्भ में, यह नोट करना महत्त्वपूर्ण है कि तेरहवें केंद्र वित्त आयोग ने टिप्पणी की है कि "यद्यपि यह केंद्र और राज्य सरकार/वित्त आयोगों के लिए है कि वे धन, कार्यकर्ताओं और तकनीकी सहायता से विकेंद्रीकृत योजना और शासन की प्रक्रिया में सहायता करें, पिछले 15 वर्षों के दौरान देखा गया है, कि समानांतर एजेंसियों की कई गुणा वृद्धि हुई है जो स्थानीय सरकारों को सौंपे गए प्रकार्यात्मक क्षेत्र का अतिक्रमण करते हैं और भारत के संघीय ढांचे में अपनी भूमिका को भी विकृत करते हैं। इसलिए उपलब्ध प्रेक्षण और सूचक सुझाते हैं कि भारत को PRI (और ULB) की संवैधानिक रूप से गारंटी प्राप्त भूमिका को प्रभावी ढंग से सुदृढ़ करने के लिए अभी लंबा रास्ता तय करना है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

6.7 PRI और भूमि अधिग्रहण

जैसा कि हमने इकाई 1 में पढ़ा है, अर्थव्यवस्था के श्रमिक बल के वितरण में संरचनात्मक परिवर्तन हुए हैं। एक कृषि प्रधान व्यवस्था में निम्न उत्पादक कृषि से अधिक उत्पादनकारी गैर-कृषि कार्यों के लिए के लिए मार्ग धीरे-धीरे प्रशस्त होता है। ऐसी स्थिति में श्रमिक बल के अलावा गैर-कृषि सेक्टर के विस्तार के लिए अपेक्षित भूमि भी कृषि सेक्टर से आती है। जैसा कि हम अब जानते हैं, बहुत बड़ी मात्रा में भूमि और छोटे-छोटे भू-खंड कई उन छोटे/सीमांत किसानों के पास हैं जो या तो जीवन निर्वाह के लिए अपनी भूमि पर निर्भर रहते हैं या अन्य मामलों में वे केवल दूरवासी जमींदारों के स्वामित्व में है। ऐसी परिस्थिति में भूमि अधिग्रहण के मुद्दे का महत्त्वपूर्ण सामाजिक आयाम, विशेषकर छोटे भूमिधारक किसानों के लिए होता है। इसे ध्यान में रखते हुए सरकार ने सम्मतियों और विचार विनिमय के लिए "भूमि अधिग्रहण और पुनर्वास तथा पुनर्स्थापन (R and R)" विधेयक (2011) का

मसौदा बहस के लिए सार्वजनिक क्षेत्र में रखा है। इस इकाई में इस विधेयक की मुख्य विशेषताएं शामिल करने के लिए सुसंगत मुख्य बिंदु यह है कि प्रस्तावित विधेयक इसे अनिवार्य बनाता है कि ''ग्राम सभा'' से परामर्श किया जाए और प्रस्तावित भूमि अधिगृहीत/अंतरित किए जाने से पहले R & R पैकेज निष्पादित किया जाए। इसे ध्यान में रखते हुए हम यहां इस विधेयक की मुख्य विशेषताओं का संक्षेप में उल्लेख करेंगे जो निम्न प्रकार हैं:

1) ऐसे भूमि अधिग्रहण के लिए आर एवं आर पैकेज आवश्यक रूप से निष्पादित किया जाना चाहिए, जो 100 एकड़ से अधिक हो।

2) कानून बहुफसली सिंचित भूमि की खरीद निषिद्ध करता है।

3) सामान्यतया भूमि अधिग्रहण में राज्य सरकार की कोई भूमिका नहीं होती है फिर भी, सरकार ऐसा तभी करेगी यदि हस्तक्षेप आम जनता के लिए हित में हो।

4) अंधाधुंध अधिग्रहण से सुरक्षा करने के लिए विधेयक में राज्यों द्वारा एक समिति गठित करना आवश्यक है। समिति ''सामाजिक प्रभाव आकलन'' की दृष्टि से ''सार्वजनिक प्रयोजन'' के पक्ष की जांच करेगी।

5) यदि अधिगृहीत भूमि का प्रयोग उसके अधिग्रहण के पांच वर्ष के अंदर उस प्रयोजन के लिए नहीं किया जाता है जिसके लिए इसे प्रारंभ में स्वीकृत किया गया था, उसे भूमि मूल स्वामियों को वापस कर दिया जाएगा।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

6) ''ग्राम सभा'' से परामर्श की प्रक्रिया अन्य कानूनों, जैसे अनुसूचित क्षेत्रों के लिए पंचायत विस्तार (PRBA) अधिनियम 1996, अनुसूचित कबीले और अन्य परम्परागत वनवासी (वन अधिकारों की मान्यता), अधिनियम 2006 आदि से अनुरूपता स्थापित करने की दृष्टि से भी किया जाता है।

7) विधेयक जब भी अधिनियम बनाया जाता है, उस की श्रेष्ठता 8 अन्य कानूनों पर होगी, ये सभी भूमि अधिग्रहण से संबंधित हैं। इसलिए इनके प्रावधान अन्य विद्यमान कानूनों में उपबंधित सुरक्षणों के अलावा होंगे और उनके अल्पीकरण के लिए नहीं होंगे।

8) भूमि स्वामी और भूमि खोने वाले दोनों की क्षतिपूर्ति की जाएगी। प्रत्येक प्रभावित परिवार को एक नौकरी या 2 लाख रुपये की नकद क्षतिपूर्ति दी जाएगी। जिन्होंने भूमि अधिग्रहण प्रक्रिया में अपना मकान खोया है, उन्हें विनिर्दिष्ट विस्तार/क्षेत्रफल का तैयार मकान दिया जाएगा।

विधेयक इस तर्क के साथ चर्चाधीन है, कि मूल प्रावधान जो प्रभावित लोगों का पक्ष ले रहे थे, उन्हें कमजोर किया किया जा रहा है। ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना उल्लेख करती है कि पुनर्स्थापन और पुनर्वास (R and R) की वर्तमान व्यवस्थाएं आदिवासियों के हितों के लिए हानिकारक और प्रतिकूल हैं। इसका कारण यह है कि ''जनजाति भूमि का समूह'' नए आर्थिक वितरण के अधीन तेजी से घट रहा है। इस प्रकार ''भूमि अधिग्रहण'' का मुद्दा प्रमुख विवाद का विषय हो गया है

जिसके लिए सामाजिक सक्रियतावादी दृढ़ता से लड़ रहे हैं। कृषि विकास के दृष्टिकोण से, भूमि उपयोग स्वरूप पर इसका गंभीर प्रभाव होगा।

बोध प्रश्न 3

लगभग 50 शब्दों में उत्तर लिखिए।

1) किस दृष्टि से ''ग्राम पंचायतों'' की सहभागिता को ''फसल बीमा'' के मामले में उपयोगी माना गया है?

....

....

....

....

2) कौन से दो अनुभवसिद्ध सूचक हमें अंतर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य से PRI की उसकी नियत भूमिका से सन्निहित की सीमा के बारे में बताते हैं? कौन सा अनुभवसिद्ध संकेत सुझाता है कि 2001 के बाद के वर्षों में भारत में PRI के कार्यकरण में सुधार है?

....

....

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

3) किस स्थिति में ''भूमि अधिग्रहण'' पर प्रस्तावित विधायन राज्य सरकार के हस्तक्षेप के प्रावधान की व्यवस्था करता है? ''भूमि अधिग्रहण'' की प्रक्रिया भारत में कृषि विकास को किस तरीके से प्रभावित कर सकती है?

....

....

....

....

6.8 सारांश

इकाई सामान्य रूप में आर्थिक विकास के लक्ष्यों को आगे बढ़ने के लिए संस्थागत विकास के महत्त्व को रेखांकित करती है। इसमें, ग्रामीण विकास नीति की PRI केंद्रित विकास के विचार को महत्त्व दिया गया है। नीति का आग्रह, विशेष रूप से समावेशी प्रगति के विकास पर रहा है। ये चिंताएं सरकार द्वारा हाल ही के वर्षों में दिखाई हैं। राजनीतिक और संस्थागत प्रगति के बावजूद अनुसूचित जनजाति समुदाय में पहले की भांति सीमांत वर्गों की बढ़ती हुई दूर जाने की प्रवृत्ति भी रही है। सामाजिक रूप से और आर्थिक रूप से सुविधावंचित ऐसे समुदायों का आर्थिक प्रक्रिया की मुख्य धारा में एकीकरण करना हाल ही के समय में महत्त्वपूर्ण नीति फोकस

रहा है।, ''भूमि अधिग्रहण'' अधिनियमों में इसके लिए उपयुक्त क्षतिपूर्ति और R&R खंडों को भी लागू किया गया है। इन विकास कार्यों का भारत में भूमि उपयोग प्रतिरूप और कृषि विकास पर प्रभाव होगा। परन्तु 1992 में PRI को दी गई संवैधानिक दर्जे के बावजूद अधिनियम पारित होने के दस से अधिक वर्षों के बाद भी ऐसे कार्यों में उसकी उचित भूमिका ग्रहण का बहुत कम संकेत मिलता है, जिनकी अधिनियम की रचना में संकल्पना की गई थीं। परन्तु 2001-10 की दशाब्दी के मध्य के दौरान PRI का बढ़ा हुआ प्रति व्यक्ति व्यय (PCE) कुछ अनुभव सिद्ध साक्ष्य दे रहा है। अधिक महत्त्वपूर्ण यह है कि सबसे उत्तम निष्पादन करने वाले और सबसे कम निष्पादन करने वाले राज्यों के बीच PCE के अंतर में गिरावट शुरू हुई है। यह नोट करना भी महत्त्वपूर्ण है कि ग्राम सभाओं को ग्रामीण क्षेत्रों में MGNAREGA में विभिन्न कार्यों में परिसंपत्तियों का निर्माण करने के बारे में निर्णय करने में प्रमुख स्थान दिया गया है। (अधिक विस्तार के लिए इकाई 25 देखिए) परिणामस्वरूप गांवों में गरीबों और सीमांतों के लिए रोजगार के अवसर पैदा करने में PRI की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। इन सभी को ध्यान में रखते हुए सामान्य रूप में ग्रामीण भारत के, विशेष रूप में उसके कृषि क्षेत्र के, विकास के अच्छे अवसर हैं।

6.9 शब्दावली

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

पंचायती राज : इसका संबंध शासन व्यवस्था से है जिसमें ग्रामस्तर पर 'ग्राम पंचायतें' व्यवस्था में तीन स्तरों, अर्थात् ग्राम, खंड और जिला के प्रशासन की मूल इकाई होती है।

संपत्ति अधिकार : इसका संबंध समाज/अर्थव्यवस्था में संस्थागत प्रगति के स्तर से है। यह कहा गया है कि वर्तमान संपत्ति अधिकार की व्यवस्था प्राय: मौजूदा राजनीतिक ढांचे/ व्यवस्था की कोटि का सूचक है। राजनीतिक व्यवस्था की परिपक्वता ''अर्थव्यवस्था में सुदृढ़ संपत्ति अधिकारों के विकास के लिए आवश्यक और पर्याप्त दोनों शर्तें हैं।''

CAA 1992 : यह लोकतांत्रिक तरीके में लोगों की प्रत्यक्ष सहभागिता द्वारा स्थानीय विकास के मुद्दों का मार्ग प्रशस्त करने के लिए PRI को संवैधानिक प्रस्थिति प्रदान करने में प्रमुख विधायी ऐतिहासिक कदम का द्योतक है।

भूमि अधिग्रहण : यह इस समय देश में गैर-कृषि सेक्टर के आधार का विस्तार करने के लिए अपेक्षित भूमि के संदर्भ में बड़ा मुद्दा है। प्रक्रिया से कृषि प्रयोजन

के लिए उपलब्ध भूमि के अंश की तुलना में भूमि उपयोग के प्रतिरूप पर गंभीर प्रभाव होने की आशंका है।

शहरी स्थानीय निकाय (ULB): यह ठीक PRI की भांति नगर शासन के लिए समांतर विकेंद्रीकृत प्रशासनिक व्यवस्था है। इससे गांवों की भांति वैसी ही व्यवस्था करने की आशा की जाती है। जैसे 73वें संशोधन ने PRI के लिए संवैधानिक दर्जा दिया है, 72वें CCA ने शहरी क्षेत्रों के विकेंद्रीकृत प्रशासन के लिए वैसा ही दर्जा प्रदान किया।

6.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Alagh, Yoginder, K., 'Panchayati Raj and Planning in India: Participatory Institutions and Rural Roads', Asian Institute of Transport Development, New Delhi.

Planning Commission (2001): Report of the Task Force on Panchayati Raj Institutions (PRIs), New Delhi.

Oommen, M. A. (2010): Have the State Finance Commissions Fulfilled Their Constitutional Mandates (EPW, July 24, 2010) and The 13th Finance Commission and the Third Tier (EPW, November 27, 2010).

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

6.11 बोध प्रश्नों के उत्तर/संकेत

बोध प्रश्न 1

1) भाग 6.2 देखिए और उत्तर दीजिए।

2) भाग 6.2 देखिए और उत्तर दीजिए।

3) भाग 6.2 देखिए और उत्तर दीजिए।

4) भाग 6.2 देखिए और उत्तर दीजिए।

5) भाग 6.2 देखिए और उत्तर दीजिए।

बोध प्रश्न 2

1) भाग 6.3 देखिए और उत्तर दीजिए।

2) भाग 6.3 देखिए और उत्तर दीजिए।

3) भाग 6.3 देखिए और उत्तर दीजिए।

4) भाग 6.4 देखिए और उत्तर दीजिए।

5) भाग 6.4 देखिए और उत्तर दीजिए।

बोध प्रश्न 3

1) उपभाग 6.5.3 देखिए और उत्तर दीजिए।

2) भाग 6.6 देखिए और उत्तर दीजिए।

3) भाग 6.7 देखिए और उत्तर दीजिए।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इकाई 7 भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि की भूमिका और महत्त्व

संरचना

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 कृषि की भूमिका : सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य

7.3 कृषि और गैर-कृषि सेक्टरों के बीच परस्पर संबद्धता

7.4 भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि का महत्त्व

7.4.1 सकल घरेलू उत्पाद (GDP) में योगदान

7.4.2 रोज़गार में योगदान

7.4.3 निर्यात में योगदान

7.4.4 गरीबी न्यूनीकरण में भूमिका

7.4.5 खाद्य और पौषणिक सुरक्षा में भूमिका

7.4.6 समावेशी संवृद्धि प्राप्त करने में योगदान

7.4.7 आर्थिक स्थिरता और सुरक्षा-जाल में भूमिका

7.4.8 ऊर्जा सुरक्षा में भूमिका

7.4.9 पारितंत्र सेवाओं में योगदान

7.5 भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि की बदलती हुई भूमिका

7.6 रोजगार/GDP अंतरण और रोजगार नम्यता

7.7 सारांश

7.8 शब्दावली

7.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

7.10 बोध प्रश्नों के उत्तर/संकेत

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

7.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप :

- कृषि की बदलती हुई (अर्थात् परंपरागत और आधुनिक या धारणीय और वाणिज्यिक) भूमिका के बीच अंतर कर सकेंगे, और इस दृष्टि से समसामयिक काल के लिए उसका नवीकृत महत्त्व बता सकेंगे;
- आर्थिक विकास में कृषि की भूमिका पर सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य का वर्णन कर सकेंगे;
- कृषि और गैर-कृषि सेक्टरों के बीच अंतर संबद्धता समझा सकेंगे;
- भारतीय अर्थव्यवस्था को उसके बहुपक्षीय परिप्रेक्ष्य में कृषि के महत्त्व की चर्चा कर सकेंगे;

- वर्तमान आर्थिक वितरण में भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि की बदलती हुई भूमिका बता सकेंगे; और
- कृषि और गैर-कृषि सेक्टरों के बीच रोज़गार अंतरण/नम्यता में प्रवृत्तियों के महत्त्व पर प्रकाश डाल सकेंगे।

7.1 प्रस्तावना

भारतीय कृषि में नव-उदार नीति शासन प्रणाली के दो दशकों के दौरान महत्त्वपूर्ण परिवर्तन आए हैं। ग्रामीण आजीविका के अनुसार कृषि अभी भी देश की कुल श्रमशक्ति से आधे से भी अधिक को प्रत्यक्ष रोज़गार प्रदान कर रही है। परंतु कुल GDP में योगदान के आधार पर यह एक अवशिष्ट सेक्टर होकर रह गया है। ये 1951 में 52.2 प्रतिशत के उच्च स्तर की तुलना में इस समय 15 प्रतिशत से भी कम हो गया है। स्पष्टतः संवृद्धि पथ गैर-कृषि सेक्टर की ओर बहुत सीमा तक चला गया है, फिर भी, कृषि से श्रमशक्ति की अन्यत्र क्षेत्रों की ओर गतिशीलता काफी नहीं है। इसके प्रमुख कारण हैं : (i) आजीविका विविधता विकल्पों की अपर्याप्त उपलब्धता; और (ii) कृषि श्रमिक बल के बहुत बड़े भाग में शिक्षा और कुशलता के अपेक्षित स्तर का अभाव। इस परिदृश्य में अर्थव्यवस्था में कृषि की भूमिका को केवल औद्योगिक विकास के लिए कारक संसाधनों की निष्कृति की प्रक्रिया के रूप में नहीं सोचा जा सकता, जैसा कि 1950 के और 1960 के दशकों के द्विविध वृद्धि प्रतिमानों द्वारा कल्पना की गई थी। बल्कि, इसे बृहतर सामाजिक आर्थिक महत्त्व के अनुसार देखा जाना चाहिए : जैसे (i) ग्रामीण आजीविका का संरक्षण, (ii) ग्रामीण गरीबी का न्यूनीकरण, (iii) समावेशी वृद्धि के लिए नीतियाँ तैयार करने की आवश्यकता पर नीति निर्माताओं को सचेत करना; (iv) आर्थिक स्थिरता बनाए रखना; (v) खाद्य और पौषणिक सुरक्षाएँ प्रदान करना; (vi) पारिस्थितिकी और पर्यावरणीय संतुलन बनाए रखना आदि। इन पहलुओं को ध्यान में रखते हुए इस इकाई में वर्तमान संदर्भ में भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए ''कृषि की भूमिका और महत्त्व'' पर ध्यान केंद्रित किया गया है। इस प्रक्रिया में आप अर्थव्यवस्था और उन अंतर्भूत संबद्धताओं में संरचनात्मक परिवर्तनों के बारे में भी अध्ययन करेंगे, जो फार्म और गैर-फार्म सेक्टरों के बीच कालांतर में विकसित हुई हैं। इस क्षेत्र में हाल ही के परिवर्तनों के संदर्भ में कृषि की सामाजिक भूमिका पर विशेष रूप से ध्यान केंद्रित किया जाएगा।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

7.2 कृषि की भूमिका : सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य

आर्थिक विकास के संदर्भ में कृषि का महत्त्व काफी समय पहले से स्वीकार किया गया है। भू-अर्थशास्त्रियों ने केवल अर्थव्यवस्था के सेक्टर के रूप में कृषि की प्रशंसा की जिससे श्रम और नियोजित पूँजी की आवश्यकताओं से अधिक अधिशेष उत्पादित होता था। क्लासिकल और नवक्लासिकल दोनों धाराओं के अर्थशास्त्रियों ने कृषि की भूमिका प्रमुख मानी है। महत्त्वपूर्ण सैद्धांतिक और अनुभवजन्य साहित्य की रचना की प्रक्रिया में योगदान करने वाले विकास अर्थशास्त्रियों का काफी अधिक ध्यान इसने आकर्षित किया है। इसमें अधिकांश साहित्य अर्थव्यवस्था के परंपरागत कृषि से आधुनिक औद्योगिक स्वरूप में संरचनात्मक रूपांतरण की प्रक्रिया पर केंद्रित है। द्वैधाभासी अर्थव्यवस्था मॉडल मुख्यतया सिंगर, नर्कसे, लेविस, रेनिस और फॉई (जिनमें से कुछ का अध्ययन हमने पहले की इकाई में किया है परंतु यहाँ हम उन्हें पुनः दोहराएंगे,

क्योंकि कुछ अन्य सिद्धांतवादियों के योगदान के अतिरिक्त वैकल्पिक परिप्रेक्ष्य से उनके बारे में अध्ययन करेंगे) आर्थिक विकास में कृषि की भूमिका का विश्लेषण करने के लिए अच्छा सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य प्रस्तुत करते हैं। ये मॉडल और उन पर आधारित अनुवर्ती अध्ययन यह तर्क प्रस्तुत करते हैं कि कृषि अपेक्षाकृत श्रम प्रधान कार्य है जो दुर्लभ पूँजी संसाधनों का पूरा लाभ उठाती है। यह खाद्यान्न, कृषि आधारित और अन्य उद्योगों के लिए कच्चा माल, श्रम, बचत प्रदान कर और गैर-कृषि सामान के लिए माँग उत्पन्न कर आर्थिक विकास में योगदान करती है। इसलिए ये योगदान पर्याप्त रूप में स्पष्ट करते हैं कि अपने ऑफ फार्म (off farm) और ऑन फार्म (on farm) दोनों के विकास में योगदान के कारण समग्र आर्थिक विकास के लिए कृषि विकास महत्त्वपूर्ण है। संभावित अधिशेष श्रम के (नर्कस और रेनिस तथा फाई द्वारा दिए गए) अनुमान अत्यधिक घनी आबादी वाले देशों में 25-40 प्रतिशत है। इस पहलू पर थर्लवाल द्वारा विशेष रूप से प्रकाश डाला गया था, जब उसने कहा कि पश्चिमी यूरोप और विशेष रूप से इंग्लैंड में औद्योगिकीकरण का वित्त पोषण काफी सीमा तक कृषि में उत्पादित अधिशेष ने किया था।

लेविस मॉडल कृषि (परंपरागत सेक्टर) में अधिशेष श्रम को विकासशील देशों में आधुनिक औद्योगिक क्षेत्र के विकास के लिए बड़ी संभावना के रूप में मानता है। इन देशों में कृषि श्रम की सीमांत उत्पादकता (MP) या तो बहुत कम थी, या नगण्य थी। अतः श्रमिक बल की काफी मात्रा निकालने पर भी कृषि उत्पादन कम नहीं होगा, बल्कि उपयोगी तरीके से आधुनिक सेक्टर में नियोजित किया जा सकेगा। उसका दावा था कि कृषि नियत प्रौद्योगिकी की दशाओं के अधीन भूमि और श्रम का उपयोग करती है और इसलिए श्रमिकों को दी गई मज़दूरी उसके सीमांत उत्पादकता से नीचे होती है। दूसरी ओर, उद्योगों में भूमि उस सीमा तक प्रयुक्त की जाती है जहाँ श्रम की सीमांत उत्पादकता मज़दूरी दर के बराबर है। परिणामस्वरूप कृषि से अधिशेष श्रमिक उद्योगों में जाते हैं। एक बार जब कृषि से अधिशेष श्रम हटाया जाता है और कृषि श्रमिक की सीमांत उत्पादकता औद्योगिक सेक्टर में सीमांत उत्पादकता के बराबर स्तर तक पहुंचती है, तो परंपरागत सेक्टर अपना ''अधिशेष श्रम'' स्वरूप खो देता है और यथासमय में वाणिज्यिक स्वरूप ग्रहण कर लेता है। इस प्रकार लुई मॉडल आर्थिक विकास की परिकल्पना को परंपरागत ''न्यून लाभ कृषि सेक्टर'' से ''उच्चतम आधुनिक औद्योगिक सेक्टर' में अधिशेष श्रम की अपेक्षित स्थानांतरण प्रक्रिया के रूप में मानता है। साधारणतया यह द्वैधाभासी मॉडल कृषि को विकास की प्रारंभिक अवस्थाओं में पिछड़ा और कम उत्पादनकारी जीवन निर्वाह सेक्टर के रूप में देखता है जिसमें से श्रम और अन्य संसाधन गतिशील/उत्पादनकारी औद्योगिक सेक्टर का विकास बढ़ाने के लिए लिये जा सकते हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

उद्योगों के लिए अधिशेष श्रम छोड़ने में कृषि की भूमिका के अलावा, क्लासिकी अर्थशास्त्रियों ने आर्थिक संवृद्धि बढ़ाने में खाद्य आपूर्तियों की भूमिका पर भी विचार किया है। उन्होंने तर्क प्रस्तुत किया कि यदि खाद्य उत्पादन स्थिर रहता है तो उद्योगों में कामगार खाद्यान्न की कमी का सामना कर सकते हैं। इसका परिणाम खाद्य कीमतें बढ़ेगी और परिणामस्वरूप उद्योगों में मज़दूरी में बढ़ोत्तरी होगी। बढ़ती हुई मज़दूरी दरें औद्योगिक संवृद्धि रोकती है (विशेषकर विकास की प्रारंभिक अवस्था के दौरान जब प्रौद्योगिकीय सामान्य तथा श्रमिक प्रधान होती है)। संक्षेप में, इसलिए द्वैधाभासी प्रतिमानों ने विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में औद्योगिकीकरण की गति निर्धारण में कृषि की भूमिका मुख्य रूप में स्वीकार की।

योजनाओं के माध्यम से कृषि विकास

जॉनसन और मेल्लोर (1961) ने राय व्यक्त की कि कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था में विकास की प्रारंभिक अवस्थाओं में कृषि सृजित करती है : (i) निर्यात अर्जन द्वारा पूँजी, (ii) गैर-कृषि सेक्टरों के उत्पादित सामान की खपत के लिए घरेलू माँग; और (iii) बढ़ती हुई आबादी और आय की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को बनाए रखने के लिए आवश्यक अपने ही उत्पादन के लिए अतिरिक्त माँग। इसलिए उन्होंने अर्थव्यवस्था के लिए कृषि के पाँच योगदानों पर विचार किया। जैसे (i) घरेलू खपत के लिए खाद्य प्रदान करना, (ii) उद्योगों के लिए श्रमिक छोड़ना, (iii) घरेलू औद्योगिक उत्पादन के लिए बाजार का विस्तार करना, (iv) घरेलू बचत की दर बढ़ाना, और (v) कृषि निर्यात से विदेशी मुद्रा आय पैदा करना। कुजनेट्स ने आर्थिक विकास के लिए कृषि के तीन योगदानों की पहचान कर वैकल्पिक शब्दों में वैसा ही कहा, जैसे उत्पाद, बाजार और कारक योगदान। उसके अपने शब्दों में ''यदि कृषि बढ़ती है, यह उत्पादन योगदान करती है, यदि यह अन्य से व्यापार करती है, यह बाजार योगदान करती है, यदि यह अन्य सेक्टरों को संसाधन हस्तांतरण करती है, तो यह कारक योगदान करती है।''

श्यूल्ज ने अपनी पुस्तक 'ट्रांसफार्मिंग ट्रेडिशनल एग्रिकल्चर' में तर्क दिए हैं कि कृषि नई प्रौद्योगिकी अपनाकर न केवल उत्पादकता बढ़ाने में सक्षम है बल्कि गुणक प्रभावों से अन्य सेक्टरों में भी संवृद्धि बढ़ाने की संभावना रखती है। उसने व्यापक रूप से स्वीकृत तर्क का विरोध किया कि विकासशील देशों में किसान परंपरा या संस्कृति द्वारा नियंत्रित होते हैं और आर्थिक प्रोत्साहनों की अनुक्रिया नहीं करते। उसकी प्रसिद्ध ''दक्ष परंतु गरीब'' परिकल्पना का आशय था कि विकासशील देशों की कृषि में निम्न आय स्तर उत्पादन के उपलब्ध कारकों को निम्न उत्पादकता का परिणाम है और उनके अदक्ष आबंटन के कारण नहीं है। इसलिए कृषि का आधुनिकीकरण इस दुर्बलता को समाप्त करेगा। भारत में हरित क्रांति इसका जीवंत उदाहरण है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इस प्रकार, पिछले साहित्य में फोकस मुख्य रूप से कृषि की परंपरागत भूमिका पर आग्रह था। परंतु कृषि के ''बहुमुखी स्वरूप'' की स्वीकृति बढ़ रही है। पारिस्थितिकी और पर्यावरण, जल संसाधन, जैव विविधता, ग्रामीण गरीबी, खाद्य/ईंधन/ आजीविका/सुरक्षा आदि से संबंधित वर्तमान मुद्दों ने बहुत से विकासशील देशों और अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं के समग्र विकास एजेंडा में कृषि को एक बार फिर रखा है। विश्व विकास रिपोर्ट (WDR), 2008 ने विकाशील देशों में ग्रामीण गरीबी उन्मूलन और संवृद्धि के प्रभावशाली इंजन के रूप में कृषि के महत्त्व को स्वीकारा है। रिपोर्ट कहती है ''कृषि सेक्टर में मंदतर वृद्धि, तेज़ी से बढ़ता गैर-कृषि सेक्टर और श्रम कुशलताओं द्वारा दृढ़ता से विभक्त श्रम बाजार ने ग्रामीण-शहरी-आय अंतर को अधिक चौड़ा किया है, इससे कृषि और ग्राम विकास में निवेश करने के लिए राजनीतिक दबाव और अधिक हुआ है।'' रिपोर्ट चार नीतिगत उद्देश्यों पर फोकस करती है : (i) उच्च मूल्य उत्पादकों के लिए छोटी खेती का विविधीकरण; (ii) प्रौद्योगिकी प्रगति से पिछड़े क्षेत्रों के लिए खाद्य माल में हरित क्रांति का विस्तार; (iii) कृषि और ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विविधीकरण में सहायता करने के लिए आधारभूत संरचना का विकास; और (iv) ग्रामीण गैर-कृषिक अर्थव्यवस्था का संवर्धन।

बोध प्रश्न 1

नीचे दिए गए स्थान में अपना उत्तर लगभग 50 शब्दों में दीजिए।

1) सामाजिक-आर्थिक हित को ध्यान में रखते हुए (वर्तमान समय में भी) कृषि के सतत् महत्त्व के लिए क्या कारण प्रस्तुत किए गए हैं?

....

....

....

....

2) कुजनेट्स द्वारा सुझाए गए अर्थव्यवस्था के लिए कृषि के तीन योगदान बताइए।

....

....

....

....

3) कृषि की तुलना में गैर-कृषि सेक्टर की संवृद्धि की तीव्र गति का अनुसरण करते हुए बढ़ता हुआ ग्रामीण-शहरी अंतर कम करने के लिए नुस्खे के रूप में WDR 2008 द्वारा क्या चार नीतिगत उद्देश्य निर्धारित किए गए हैं?

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

....

....

7.3 कृषि और गैर-कृषि सेक्टरों के बीच परस्पर संबद्धता

कृषि गैर-फार्म क्षेत्र से संबद्धता स्थापित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। भारत में परंपरागत कृषि समग्र ग्राम अर्थव्यवस्था का आधार थी। ग्रामीण कारीगरों, लोहारों, बढ़इयों, बुनकरों, धोबियों, दर्जियों, कुम्हारों, सफाई वालों, नाइयों, आदि की अजीविका प्रत्यक्ष रूप से कृषि पर निर्भर थी (इसे जजमानी प्रथा कहा जाता था)। परंतु जैसे-जैसे कृषि का विकास होता गया वह अधिक बाजारोन्मुखी बनती गई। धीरे-धीरे परंपरागत प्रथा का स्थान 'निवेश-निर्गम बाजार प्रथा'' नाम की नई प्रथा ने ले लिया। कृषि ने प्रौद्योगिकी, बीज, उर्वरक और मशीनों सहित बाहरी निवेश पर अधिक निर्भर रहना प्रारंभ किया और इस प्रकार वह कृषि प्रसंस्करण उद्योगों (एग्रो प्रोसेसिंग इंडस्ट्रीज) के लिए बिक्री योग्य अधिशेष उत्पन्न करने लगी तथा बढ़ती हुई शहरी आवश्यकताओं की पूर्ति करती है। ग्रामीण क्षेत्रों में (जैसे सड़क, संचार, बिजली, बैंक, स्कूल, बाजार, सहकारी संस्थाएँ) आधारभूत सुविधा के विकास से और परिणामस्वरूप ग्रामीण शहरी संबद्धता की स्थापना, निवेश, निर्गम और औद्योगिक उपभोक्ता सामान में व्यापार और वाणिज्य बहुत आसान हुआ। फार्म-गैर-फार्म और शहरी-ग्रामीण संबद्धता की इस प्रक्रिया में कृषि चालक के रूप में और ग्रामीण आधारभूत संरचना समर्थक के रूप में कार्य करती है। इस प्रकार हरित क्रांति का अनुसरण करते हुए कृषि संवृद्धि की संबद्धता ने भारत

में कृषि उद्योगों के निर्माण का मार्ग प्रशस्त किया। इसलिए फार्म-गैर-फार्म संबद्धता को भी उत्पादन और उपभोग संबद्धता के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है। उत्पादन संबद्धता को आगे अग्र अनुबंधन (कृषि संसाधन कार्य) और पश्चानुबंधन संबद्धता (कृषि को निवेश आपूर्ति) के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है। कृषि की अग्रोन्मुखी उत्पादन संबद्धता कृषि प्रसंस्करण उद्योगों को कच्चे माल की आपूर्ति करता है (जैसे गन्ना, तिलहन, कपास और जूट रेशे, चाय और रबड़, खाद्यान्न, बागवानी और पशुधन)। अभी हाल ही में, कृषि वानिकी भी महत्त्वपूर्ण कृषि कार्यों में से एक हो गई है, जिस पर कागज और प्लाईवुड उद्योग निर्भर है। कृषि वृद्धि पश्चानुबंधन के माध्यम से कृषि आदान आपूर्तिकर्ता उद्योगों को भी प्रोत्साहन देता है। जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, कृषि में बाह्य आदानों के भाग (खरीदे गए निवेशों) में वृद्धि कृषि विकास में वृद्धि के साथ बढ़ती है। निर्वाह कृषि अधिकांशतः आंतरिक आदानों पर निर्भर रहती है, जैसे अपने ही फार्म में उगाए गए बीज, फार्म उत्पन्न खाद, परिवार का श्रम और पशुबल, जबकि आधुनिक कृषि बाह्य आदानों पर अधिक निर्भर करती है, जैसे प्रमाणित बीज, रासायनिक उर्वरक, कीटनाशक, फार्म मशीन, बैंक ऋण, बीमा आदि। बाह्य आदान की आपूर्ति आदान व्यापारियों के माध्यम से उद्योगों द्वारा की जाती है। आदान व्यापारी भी कभी-कभी किसानों को विस्तार सेवाएँ प्रदान करते हैं। उद्योगों से कृषि का पश्चानुबंधन अर्थव्यवस्था में अधिक आय और रोज़गार पैदा करने में सहायता करता है। इस प्रकार, कृषि की वृद्धि गैर-फार्म सेक्टरों से अग्रानुबंधन और पश्चानुबंधन स्थापित करके आर्थिक विकास को महत्त्वपूर्ण योगदान देती है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

कृषि का शेष अर्थव्यवस्था से खपत अनुबंधन भी है। यह गैर-फार्म सेक्टर में बढ़ती हुई श्रमिक बल के उपयोग आवश्यकताएँ भी पूरी करने के लिए खाद्यान्न, फल और सब्जियाँ, डेयरी उत्पाद और अन्य कृषि उत्पादों की आपूर्ति करता है। कृषि उत्पादकता में वृद्धि गैर-फार्म कार्यों में लगे हुए व्यक्तियों को सस्ते खाद्य की आपूर्ति करते हुए वहां वास्तविक मजदूरी को कम रखना संभव बनाती है। वह इस प्रकार गैर-फार्म सेक्टरों में लाभ और निवेश बढ़ाता है।

उपभोग सहबंधन (या अंतिम भाग प्रमुख) फार्म परिवारों द्वारा गैर-फार्म माल और सेवाओं के लिए बढ़ती हुई माँग से भी उत्पन्न होता है। कृषि आय में वृद्धि से टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुओं (जैसे टी.वी., फ्रिज, वाशिंग मशीन, मोटर साइकिल, कार, मोबाइल फोन) सहित विनिर्मित उत्पादों की माँग बढ़ती है। फार्म परिवारों द्वारा विभिन्न सेवाओं का उपभोग भी कृषि विकास के साथ-साथ बढ़ता है। इसके अलावा मांग पक्ष पर उद्योग से कृषि अनुबंधन भी फार्म आय बढ़ाने में उत्प्रेरक कारक के रूप में कार्य करता है। स्थानीय बाजारों में विभिन्न विनिर्मित माल की उपलब्धता, इन सामग्रियों को खरीदने के लिए फार्म और गैर-फार्म आय बढ़ाने में ग्रामीण लोगों को अभिप्रेरक के रूप में कार्य करती है। दूसरे शब्दों में, ग्रामीण आय में वृद्धि और बेहतर परिवहन और संचार सुविधायें ग्रामीण क्षेत्रों में विनिर्मित माल के बाजार को बढ़ावा देती है।

7.4 भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि का महत्त्व

पूर्ववर्ती भागों में हमने आर्थिक विकास में कृषि की भूमिका और गैर-कृषि (कृषीतर) सेक्टरों से कृषि वृद्धि संबद्धता के सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्यों का अध्ययन किया है। इस भाग में हम भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि के महत्त्व के बारे में पढ़ेंगे। कृषि की भूमिका को प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है। आर्थिक विकास

में कृषि की प्रत्यक्ष भूमिका का आकलन सकल घरेलू उत्पाद (GDP), रोजगार, निर्यात, कृषि-खाद्य उद्योगों को कच्चे माल की आपूर्ति और पूँजी निर्माण के लिए बचतों में उसके योगदान के आधार पर किया जा सकता है। अप्रत्यक्ष भूमिका का आकलन गरीबी-न्यूनीकरण, खाद्य और पौषाणिक सुरक्षा, आर्थिक-स्थिरता, पारिस्थितिक और पर्यावरणीय मुद्दों का संतुलन, ग्रामीण गैर-फार्म आय और रोज़गार वृद्धि आदि के आधार पर किया जा सकता है। जैसा कि पहले चर्चा की गई है, द्विविध आर्थिक ढाँचे में कृषि को औद्योगिक विकास के लिए कारक संसाधन देने के स्रोत के रूप में देखा गया था, कृषि को निम्न उत्पादनकारी परंपरागत सेक्टर के रूप में जाना गया था। इसलिए इसे आर्थिक विकास में बराबर के भागीदार के रूप में नहीं समझा गया था। परंतु 1960 के और 1970 के दशकों के दौरान प्रौद्योगिकी में नए आविष्कारों और कृषि के लिए नीतिगत सहायता के कारण अग्रानुबंधन और पश्चानुबंधन तरीकों से उसकी गतिशील भूमिका भारतीय अर्थव्यवस्था में प्रमुख रही है। इस प्रकार, यद्यपि, अर्थव्यवस्था के समग्र विकास में वृद्धि से GDP में कृषि का योगदान धीरे-धीरे घटा है, अर्थव्यवस्था में इसका विस्तरित योगदान पर्याप्त है। अधिक व्यापक स्तर पर कृषि अर्थव्यवस्था में मूल कृषि उत्पादन प्रणाली (फसल उत्पादन, पशुधन, कृषि वानिकी आदि) और कृषि खाद्य प्रणाली (अर्थात् कृषि उत्पादों का संसाधन, विपणन, वितरण) सम्मिलित हैं। यदि दोनों प्रणालियों के योगदान को साथ मिलाकर विचार करें तो कृषि की भूमिका उससे बहुत उच्चतर सिद्ध होती है जो देश के राष्ट्रीय आय लेखा आँकड़ों में सकल कृषि घरेलू उत्पाद (GDP) के भाग के रूप में अनुमानित की गई है।

7.4.1 सकल घरेलू उत्पाद (GDP) में योगदान

DIKSHANT IAS

ऐतिहासिक साक्ष्य और अनुभवजन्य अध्ययन दिखाते हैं कि विकास की प्रारंभिक अवस्था में कृषि ने GDP में योगदान काफी किया है। जैसे-जैसे अर्थव्यवस्था बढ़ती है, और अधिक औद्योगिक हो जाती है, GDP में फार्म सेक्टर का अंश धीरे-धीरे सिकुड़ने लगता है और गैर-फार्म सेक्टरों का शेयर बढ़ने लगता है, परंतु समग्र GDP में कृषि के घटते हुए शेयर का अभिप्राय यह नहीं है कि कृषि प्रगति नहीं कर रही है। यद्यपि, इस अवधि के दौरान कृषि उत्पाद भी बढ़ता है, परंतु गैर-फार्म सेक्टरों का उत्पाद अधिक तेज़ी से बढ़ता है। परिणामस्वरूप संवृद्धि पथ फार्म से गैर-फार्म सेक्टरों की ओर अंतरित हो जाता है। कृषि का अंश आर्थिक विकास में वृद्धि से क्यों घटता है? इसे समझने के लिए हमें माँग और आपूर्ति दोनों पक्षों को देखना चाहिए जो कृषि उत्पाद वृद्धि का निर्धारण करते हैं। एंजल के नियम के अनुसार, मांग की उच्च आय नम्यता के कारण खाद्यान्न की प्रतिव्यक्ति माँग घटती है और गैर-कृषि सेक्टर के माल/सेवाओं के लिए माँग बढ़ती है। परंतु व्यापार उदारीकरण और उच्च आय लोच बागवानी और डेयरी उत्पादों के लिए कृषि विविधीकरण का कृषि जिन्सों की माँग पर एंजल के नियम के प्रतिकूल प्रभाव को धीमा कर सकता है। इसलिए बागवानी और पशुधन सेक्टर की नीतिगत सहायता कृषि में विविधता लाने में सहायक है, इससे फार्म आय में वृद्धि हो सकती है। आपूर्ति पक्ष से कृषि प्राकृतिक, प्रौद्योगिकी, मानव और अन्य कारकों के कारण ह्रासमान प्रति लाभ के नियम के अधीन होता है। भारत में अधिकांश वस्तुओं के मामले में कृषि उत्पादिताएँ या तो हाल के वर्षों में घटी हैं या अवरुद्ध रही हैं। मृदा, उर्वरता का ह्रास, अनुसंधान और विस्तार में कम निवेश, भौम जल संसाधनों की क्षीणता, कृषि का अति रासायनीकरण, निम्न मानव पूँजी आधार, उभरते हुए क्षेत्रों जैसे बागवानी और डेयरी सेक्टरों को कम नीतिगत सहायता और मुख्यतया

Call us @7428092240

कृषि भूमि के गैर-कृषि कार्यों के लिए प्रवर्तन के कारण निवल कृणित, क्षेत्रफल (NSA) में ह्रास भारत में कम कृषि वृद्धि के मुख्य कारण हैं।

7.4.2 रोज़गार में योगदान

कृषि न केवल अधिकांश ग्रामीण श्रमिकों को प्रत्यक्ष रोज़गार देती है बल्कि ग्राम गैर-फार्म सेक्टर में भी अप्रत्यक्ष रोज़गार उत्पन्न करती है। यह रोजगार के इन अवसरों को फसल और पशुधन उत्पादन और कृषि प्रसंस्करण प्रोसेसिंग के माध्यम से पैदा होता है। कृषि प्रसंस्करण में शामिल है : (i) कृषि व्यापार कार्य; (ii) कृषि शिक्षा, अनुसंधान और विस्तार, (iii) कृषि सूचना और संचार, (iv) पशु देखभाल और उपचार, (v) पादप संरक्षण आदि। 1951 में कुल श्रमिक बल का 69.5 प्रतिशत कृषि में था। यह प्रतिशत 1991 में भी 69.5 प्रतिशत था परंतु 2004-05 तक यह प्रतिशत घटकर 50 प्रतिशत हो गया। इस प्रवृति का क्या अभिप्राय है? इसका आशय है कि कृषि के समग्र रोज़गार अंश में गिरावट 1951-91 के चार दशकों की अवधि में केवल 2.6 प्रतिशत थी। परंतु यह 1991-2005 के उदारीकरण के बाद के वर्षों में सीधे 16.9 प्रतिशत गिरा। सैद्धांतिक अभिधारणा के अनुसार बाजार सुधारों ने रोज़गार के अधिक अवसरों की उत्पत्ति की है। इससे श्रमिक बल कम उत्पादनकारी कृषि सेक्टर से उच्च उत्पादक गैर-कृषि क्षेत्र जा सका है। यह कुछ दशाब्दियों की अवधि में ''संरचनात्मक परिवर्तन'' प्राप्त हो पाया है जिसने अर्थव्यवस्था में कृषि सेक्टर पर अत्यधिक निर्भरता में काफी कमी की है। किंतु संवृद्धि प्रक्रिया के समावेशी नहीं होने की दशा की यहाँ किसी न किसी सीमा तक विषाद आधारित पलायन भी हो सकता है या गरीब समर्थक नहीं थी। राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण संगठन (NSSO) के 2003 के सर्वेक्षण बताते है कि देश में 50 प्रतिशत से अधिक परिवार ऋणग्रस्त हैं उन्होंने खेती के लिए पूँजी/चालू व्यय वहन के लिए ऋण लिया है। आप इस विषय पर इस पाठ्यक्रम की इकाई 26 में अधिक विस्तार से पढ़ेंगे। ये दोनों मुद्दे ऐसे हैं जिन्हें सुलझाने के लिए नीति निर्माताओं का ध्यान आकर्षित होना चाहिए। ये मुद्दे हैं : पहला, कृषि श्रमिकशक्ति का गैर-कृषि सेक्टर में अंतरण और दूसरा, कृषि में कार्य दशाओं में सुधार।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 2

नीचे दिए गए स्थान में अपना उत्तर लगभग 50 शब्दों में लिखिए।

1) वे बाहरी आदान क्या हैं, जिन पर परिपक्व होती हुई कृषि निर्भर करती है?

....

....

....

....

2) उद्योग-कृषि संबद्धता किस प्रकार कृषिक या ग्रामीण मांग को प्रोत्साहित करती है?

....

....

....

……………………………………………………………………………………………

3) विकास में वृद्धि से GDP में कृषि के शेयर में गिरावट क्यों होती है? इसके मांग/आपूर्ति दोनों पक्षों से उत्तर दीजिए।

……………………………………………………………………………………………

……………………………………………………………………………………………

……………………………………………………………………………………………

……………………………………………………………………………………………

4) पिछले कुछ दशकों के दौरान किस अवधि में भारत में कुल रोज़गार में कृषि श्रमिक बल के अनुपात में अधिक गिरावट हुई है? इस तीव्र ह्रास का क्या कारण है?

……………………………………………………………………………………………

……………………………………………………………………………………………

……………………………………………………………………………………………

……………………………………………………………………………………………

7.4.3 निर्यात में योगदान

कृषि सेक्टर भारत की निर्यात आय का प्रमुख योगदानकर्ता रहा है। बहुत समय तक कृषि आधारित उत्पाद, जैसे चाय, कॉफी, कपास और जूट, टेक्सटाइल, गर्म मसाले, तम्बाकू, काजू, चीनी आदि का अंश देश की कुल निर्यात आय के 50 प्रतिशत से अधिक रहा है। परंतु यह अंश आर्थिक वृद्धि और अर्थव्यवस्था के विविधीकरण के साथ-साथ घटा है। कृषि निर्यात का शेयर 1991-92 में 17.8 प्रतिशत से गिरकर 2008-09 में 10.3 प्रतिशत हो गया। कृषि आयात का शेयर भी 1998-99 में 8.2 प्रतिशत से गिरकर 2008-09 में 2.7 प्रतिशत पर आ गया। परंतु कुल व्यापार में कृषि व्यापार की मात्रा के गिरते शेयर का अभिप्राय यह नहीं है कि व्यापार की मात्रा भी घटी है। वास्तव में, कृषि आयात की वार्षिक वृद्धि दर 20 प्रतिशत दर्ज हुई थी। जबकि कृषि निर्यात उपयुक्त अवधि के दौरान 10 प्रतिशत वृद्धि दर्ज की गई। इससे प्रकट होता है कि सुधार के बाद की अवधि के दौरान कृषि निर्यात की अपेक्षा कृषि आयात अधिक तेज़ी से बढ़ा है। इससे समुचित नीति पहलुओं द्वारा निर्यात सुदृढ़ करने के उपाय करने की आवश्यकता सिद्ध होती है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

7.4.4 गरीबी न्यूनीकरण में भूमिका

जैसा कि हम अब अच्छी तरह जानते हैं कि गरीबों की बहुत बड़ी संख्या प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कृषि पर निर्भर रहती है। कृषि सेक्टर में संवृद्धि बुनियादी ग्रामीण गैर-कृषि (कृषीतर) मज़दूरी उत्पादों और सेवाओं के लिए माँग बढ़ाती है। इनमें से अधिकांश माल स्थानीय लोगों द्वारा बनाया जाता है तथा उपयोग किया जाता है। कृषि में उच्च वृद्धि से ग्रामीण गैर-फार्म सेक्टर में रोज़गार पैदा करने तथा आय बढ़ाने की बड़ी संभावना होती है। विश्व विकास रिपोर्ट (WDR-2008) ने तर्क दिया है कि कृषि वृद्धि गरीबी और असमानता घटाने में कृषीतर सेक्टरों में वृद्धि की तुलना में, चार गुणा प्रभावकारी है। ''सस्टेनिंगग्रोथ एंड शेयरिंग प्रोस्पेरिटी ''(ESCAP-2008) नाम

की एक अन्य यू.एन. रिपोर्ट भी कहती है कि एशिया प्रशान्त क्षेत्र में लगातार गरीबी दशाब्दियों से कृषि की उपेक्षा का परिणाम है। सर्वेक्षण कहता है कि क्षेत्र के गरीबों (अर्थात् लगभग 218 मिलियन) में हर तीसरे व्यक्ति को गरीबी से ऊपर उठाया जा सकता है यदि औसत कृषि श्रम उत्पादकता बढ़ाई जा सके। इसलिए कृषि आय में वृद्धि को गरीबी न्यूनीकरण में अधिक प्रभावकारी माना गया है। आप नोट कर सकते हैं कि भारत में गरीबी में गिरावट की दर 1990 के निम्न कृषि वृद्धि अवधि के दौरान की अपेक्षा 1980 की दशाब्दी की अपेक्षाकृत उच्चतर कृषि वृद्धि अवधि के दौरान के दशक अधिक थी। उदाहरण के लिए, भारत में ग्रामीण गरीबी 1993-94 और 2004-05 के बीच 9 प्रतिशत बिंदु तक गिरी, जबकि 1977-78 और 1987-88 के बीच यह 14 प्रतिशत बिंदु तक गिरी थी।

गरीबी, भूख और कुपोषण के मुख्य कारणों में से एक खाद्य सामग्री की अपर्याप्त सुलभता जो ग्रामीण भारत में व्यापक रूप में फैले हुए कुपोषण और भूख का मुख्य कारण है। इनसे ग्रस्त कामगार अपने और अपने परिवार के लिए पर्याप्त कमाने के लिए शारीरिक रूप में बहुत अक्षम होता है। कृषि उत्पादन और उत्पादकता में वृद्धि, गरीबी न्यूनीकरण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। यह कार्य कृषि मज़दूरी बढ़ाकर और गरीब परिवारों को वहन करने योग्य मूल्य पर खाद्य और अन्य कृषि वस्तुओं को सुलभ बनाकर किया जा सकता है। परंतु गरीबी कम करने में कृषि संवृद्धि अधिक प्रभावी हो सकती है (यदि मानव विकास घटकों, जैसे स्वास्थ्य और शिक्षा में पर्याप्त निवेश किया जाए)। बुनियादी शिक्षा का प्रावधान और कुशलता विकसित तथा उन्नयन करने के लिए औपचारिक और अनौपचारिक प्रशिक्षण फार्म कामगारों के लिए महत्त्वपूर्ण है क्योंकि पर्याप्त ज्ञान और कुशलताओं से वे नई प्रौद्योगिकी, बाजार के अवसरों और जोखिमों की अनुक्रिया करने के लिए अधिक सक्षम हो सकते हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

7.4.5 खाद्य और पौषणिक सुरक्षा में भूमिका

कृषि उत्पादन और उत्पादकता में सुधार (देखिए शब्दावली) दो तरीकों से खाद्य सुरक्षा की समस्या आसान करने में सहायता करता है : (i) उपभोक्ताओं को खाद्य उत्पाद उपलब्ध कर, और (ii) फार्म और गैर-फार्म कार्यों में ग्रामीण श्रमिक बल के लिए अतिरिक्त रोज़गार के अवसर पैदा कर। राष्ट्रीय सुरक्षा की तुलना में खाद्य सुरक्षा कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। भारत खाद्य सुरक्षा बनाए रखने के लिए खाद्यान्न के आयात पर निर्भर नहीं रह सकता। यदि भारत खाद्यान्न के थोक आयातक/ खरीददार के रूप में विश्व बाजार में प्रवेश करता है तो खाद्य मदों की अंतर्राष्ट्रीय कीमतें अधिक सीमा तक बढ़ सकती हैं। इस प्रकार न केवल भारत की खाद्य सुरक्षा जोखिम में पड़ सकती है बल्कि अन्य गरीब देशों को भी जोखिम में डाल सकती है। इसलिए संदेश यही है कि देश में लोगों की खाद्य और पौषणिक सुरक्षा का मुद्दा घरेलू कृषि में उत्पादन/उत्पादकता बढ़ाए बिना प्रभावी ढंग से हल नहीं हो सकता।

7.4.6 समावेशी संवृद्धि प्राप्त करने में योगदान

समावेशी संवृद्धि प्राप्त करने के लिए कृषि विकास सबसे अधिक उत्कृष्ट है। श्रम प्रधान होने के कारण कृषि संवृद्धि निम्न प्रवेश बाधाओं (low entry barrier) से अतिरिक्त रोज़गार पैदा करता है। बढ़ी हुई कृषि उत्पादकता ग्रामीण और शहरी, दोनों क्षेत्रों में गरीबों के लिए खाद्य कीमतें भी घटाती है जो अपनी अधिकांश आय खाद्य पर व्यय

करते हैं। तीव्र और समावेशी संवृद्धि प्राप्त करने के लिए सरकार ने 11वीं योजना में कृषि में 4 प्रतिशत वृद्धि का लक्ष्य निर्धारित किया। 12वीं योजना का दृष्टिकोण प्रलेख भी संवृद्धि प्रक्रिया समावेशी बनाने के लिए कृषि में 4 प्रतिशत वृद्धि प्राप्त करने की संकल्पना करता है। इसके अलावा, कृषि और कृषीतर सेक्टरों के बीच संबद्धता का अभिप्राय है कि कृषि संवृद्धि में बढ़ोत्तरी बहुगुणक प्रभाव से अधिशेष उत्पन्न करती है। फार्म सेक्टर में उत्पन्न की गई अतिरिक्त आय भी गैर-फार्म सेक्टरों द्वारा अधिकांशतः स्थानीय रूप से उत्पादित वस्तुएं और सेवाएँ खरीदने पर व्यय की जाती है। गैर-फार्म सेक्टर में आय और रोज़गार की वृद्धि ग्रामीण अर्थव्यवस्था की विविधता को प्रोत्साहित करती है। इस प्रक्रिया में फार्म और गैर-फार्म, दोनों सेक्टरों में वास्तविक मज़दूरी बढ़ती है। जिससे ग्रामीण परिवारों के लिए शिक्षा और स्वास्थ्य में अधिक निवेश करना संभव होता है। बेहतर शिक्षा और कौशल से कामगारों की भावी पीढ़ी उभरती हुई ग्रामीण गैर-फार्म कार्यों में विविधता ला सकती है। इसके अलावा, बेहतर शिक्षा और कौशल श्रमिक बल को गांव से शहरों में प्रवासन के लिए ''आकर्षण कारक'' के रूप में कार्य करता है जिसके कारण कृषि में श्रमिकों की कमी उत्पन्न होती है। परिणामतः किसान समुदाय श्रमिक बचत प्रौद्योगिकी का प्रयोग करने के लिए अभिप्रेरित होता है। इस प्रकार कृषि में निरंतर और टिकाऊ वृद्धि कालांतर में भारत जैसी कृषि आधारित अर्थव्यवस्था में आर्थिक संवृद्धि प्रक्रिया में समावेशिता लाती है जहाँ श्रमिक बल का बहुत बड़ा भाग अपनी आजीविका कृषि से प्राप्त करता है। जैसा कि पहले कहा गया है, कालांतर में इसका परिणाम श्रमिक बल का 'संरचनात्मक परिवर्तन' हो सकता है जिसमें कृषि पर अत्यधिक निर्भरता अधिक वांछित स्तर तक नीचे आ जाएगी।

DIKSHANT IAS

7.4.7 आर्थिक स्थिरता और सुरक्षा-जाल में भूमिका

Call us @7428092240

कृषि आर्थिक मंदी की अवधि के दौरान कामगारों को सुरक्षा नेट प्रदान कर आर्थिक स्थिरता बनाए रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। उदाहरण के लिए, हाल ही के विश्वव्यापी आर्थिक और वित्तीय संकट के दौरान बहुत से कामगारों को अपनी नौकरियों से हाथ धोना पड़ा। यह देखा गया है कि बहुत से ग्रामीण प्रवासी कामगार जो ऐसे समय में बेरोजगार होते हैं अस्थायी रूप से अपने गांवों में वापस चले जाते हैं। ऐसे कामगारों को कृषि कुछ सुरक्षा प्रदान करती है, क्योंकि वे अपने परिवारों से भोजन और आश्रय के रूप में सहायता प्राप्त करते हैं। इस प्रकार कृषि संकट के समय अर्थव्यवस्था को स्थिर करने में सहायता करती है। भारतीय अर्थव्यवस्था के हाल के विश्वव्यापी संकट से बचे रहने के कारणों में हमारा कृषि सेक्टर संकट से प्रायः अप्रभावित रहा है।

7.4.8 ऊर्जा सुरक्षा में भूमिका

कृषि को काफी पिछले समय से ऊर्जा का प्रमुख वैकल्पिक स्रोत माना जा रहा है। कृषि जैव पदार्थों को बायो गैस और बायो ईंधन पैदा करने के लिए प्रयुक्त किया जा रहा है। कई देशों ने भूसे और गन्ने से एथनॉल उत्पादन करना प्रारंभ कर दिया है। इतना ही नहीं 2003 और 2007 के बीच मकई उत्पादन में विश्व में हुई वृद्धि का दो-तिहाई भाग बायो ईंधन के उत्पादन में काम आया है।

संयुक्त राज्य अमरीका में मकई उत्पादन का लगभग 20 प्रतिशत एथानॉल पैदा करने के लिए प्रयोग किया जा रहा है। विश्व बाजार में तेल की ऊँची कीमतों ने बहुत देशों को जैव ईंधन का विकास करने की नीतियाँ बनाने के लिए प्रोत्साहित किया

है। यह अनुमान लगाया गया है कि मकई का जैव ईंधन में परिवर्तन 50 डालर प्रति बैरल की तेल कीमतों पर लाभप्रद हो सकता है। ब्राजील विश्व में सबसे बड़ा गन्ना उत्पाद होने के कारण एथानॉल ईंधन का सबसे बड़ा प्रयोक्ता भी है। भारत में भी सरकार ने जेट्रोफा से जैव ईंधन और सीरे से एथानॉल उत्पादन करने के उपाय आरंभ किए हैं। विश्व भर में बहुत देशों में एथानॉल को ईंधन के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। यह अनुमान लगाया गया है कि यदि परिवहन सेक्टर पेट्रोल में 10 प्रतिशत एथनॉल का सम्मिश्रण करता है तो भारत में प्रतिवर्ष लगभग 800 मिलियन लीटर बचाने की क्षमता है भारत के चीनी उद्योग की गन्ना खोई (छिलका/मूसी) से 5000 मेगावाट तक विद्युत उत्पन्न करने की क्षमता है।

7.4.9 पारितंत्र सेवाओं में योगदान

कृषि विभिन्न प्रकार की सामग्री-इतर पारितंत्र सेवाएं भी प्रदान करती है, जैसे सामाजिक और कृषि वानिकी, जैव विविधता द्वारा मनोविनोद, पर्यावरण संरक्षण, प्रदूषण अवशोषण आदि। कहने का तात्पर्य है कि उत्पादन प्रक्रिया के भाग के रूप में कृषि सकारात्मक और नकारात्मक दोनों बाह्यताएँ उत्पन्न कर सकती है। एक ओर, यह आदान सघनता और रासायनीकरण के माध्यम से मृदा और जलस्रोतों को प्रदूषित करता है। दूसरी ओर, यह सकारात्मक बाह्यता भी उत्पन्न कर सकता है जैसे वन्य जीव, आर्द्र भूमि सेवाएँ, जैव पदार्थ आदि। जैव लैबल अधिक सुस्थापित पारितंत्र लैबलों में एक है। जैव खेती, जीव कीट नियंत्रण और मृदा तथा जल संसाधनों संरक्षण सहित सामग्री इतर पारितंत्र सेवाएं प्रदान करती है। परंतु किसान इस समय पारितंत्र सेवाओं के लिए किसी प्रकार का पारिश्रमिक प्राप्त नहीं करते हैं। इसके लिए भी राष्ट्रीय लेखाकरण पद्धतियों में परिवर्तन कर उपयुक्त प्रोत्साहन/पुरस्कार निश्चित करना आवश्यक है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

7.5 भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि की बदलती हुई भूमिका

नव-उदारवादी नीति की शासन व्यवस्था के पिछले दो दशकों के दौरान, भारतीय अर्थव्यवस्था में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं जिसके फलस्वरूप संवृद्धि पथ कृषि से गैर-कृषि सेक्टर की ओर अंतरित हुआ है। अब अर्थव्यवस्था को कृषि संवृद्धि में उतार-चढ़ाव से पृथक कर लिया गया है क्योंकि आज कृषि का GDP में योगदान 15 प्रतिशत से भी कम है। परंतु गैर-फार्म सेक्टर में आय बढ़ने, बढ़ते हुए शहरीकरण, काम धंधों के क्षेत्र में महिलाओं की सहभागिता, आदि से कृषि उत्पादों की मांग का संयोजन महत्त्वपूर्ण तरीके से बदला है। हरित क्रांति अवधि के दौरान काफी सीमा तक कृषि विकास आपूर्ति चालित था और नीतिगत बल मुख्य रूप से खाद्य सुरक्षा प्राप्त करने पर था। आज कृषि विकास माँग चालित कारकों पर अधिक निर्भर है, (यद्यपि आपूर्ति पक्ष के कारक भी अभी प्रासंगिक है)।

भारतीय अर्थव्यवस्था के वैश्विक एकीकरण और प्रयोज्य आय में (विशेषकर मध्यम और उच्च वर्ग के परिवारों में) तीव्र वृद्धि से भारतीय उपभोक्ता कृषि उत्पादों में गुणवत्ता, विविधता, सुविधा और सुरक्षा की मांग कर रहे हैं। परिणामस्वरूप प्रसंस्करण, पैकेजिंग, ब्रांडिंग, विपणन, भंडारण एवं मूल्य वृद्धि की गतिविधियों में कृषि व्यापारिक कंपनियों की सहभागिता बढ़ गई है। इस प्रकार भूमंडलीकरण, एकीकृत उपयोग श्रृंखला, द्रुत प्रौद्योगिकी नवीनताओं, पर्यावरण आदि मुद्दों ने भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि की भूमिका बदल दी है। इससे आधुनिक कृषि व्यापार के आधार पर कृषि में विविधताएँ लाने के

लिए इसके कार्य क्षेत्र का विस्तार करना आवश्यक हो गया है। इससे न केवल रोजगार के अवसर बढ़ेंगे बल्कि, कृषि उत्पादों का इन विधियों से उपयोग भी बढ़ेगा : (i) कृषि उत्पाद का अपव्यय घटाकर; (ii) कृषि उत्पादों, विशेषकर नष्ट होने वाले उत्पादों, जैसे फल, सब्जियाँ और पशुधन उत्पाद की भंडारण अवधि सुधारकर। कई कृषि व्यापारिक कंपनियों ने पहले ही ये कार्य आरंभ भी कर दिये हैं: संविदा खेती, किसानों को प्रौद्योगिकी, आदान और विस्तार सेवाएँ प्रदान करना, पूर्व निर्धारित कीमतों पर उनका उत्पाद खरीदना, तथा इसके द्वारा किसानों के जोखिम न्यूनतम करना और बिचौलियों के बहुत से स्तरों को समाप्त करना। इस प्रकार, अन्य क्षेत्रों में {जैसे– (i) कृषि की आधारभूत संरचना का विस्तार करना, (ii) कृषि शिक्षा अनुसंधान और विकास, विस्तार, आदि (iii) बैंकिंग, बीमा, परिवहन और संचार, विपणन, भंडारण सुविधाएँ आदि, (iv) निवेश प्रदाता, फार्म आपूर्तिकर्ता संयोजक, प्रोसेसर, थोक विक्रेता, दलाल, आयातक, निर्यातक, खुदरा व्यापारी, वितरक आदि; और (v) वायदा बाजार, विज्ञापन और विक्रय संवर्धन।} सुविधाएँ सुधार कर कृषि की उभरती हुई संभावनाओं पर विचार करें तो भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि की नवीकृत भूमिका का बहुत विराट चित्र उभरता है। ये सभी कृषि व्यापार कार्य पूरी तरह से प्राथमिक कृषि उत्पादन पर निर्भर हैं। तेज़ी से बढ़ते हुए कृषि व्यापारिक कार्यों के लिए प्राथमिक कृषि के महत्त्वपूर्ण आर्थिक योगदान की अनदेखी नहीं की जा सकती।

बोध प्रश्न 3

1) बताइये निम्नलिलिखत कथन सही हैं या गलत–

DIKSHANT IAS

क) पूर्ववर्ती विकास अर्थशास्त्रियों ने कृषि को औद्योगिक विकास के कारण संसाधनों के स्रोत के रूप में देखा था।

Call us @7428092240

(सही / गलत)

ख) GDP में कृषि का योगदान अर्थव्यवस्था के समग्र विकास में वृद्धि के साथ-साथ धीरे-धीरे घट रहा है।

(सही / गलत)

ग) अधिक व्यापक दृष्टि में कृषि अर्थव्यवस्था में प्राथमिक कृषि उत्पादन और कृषि खाद्य व्यवस्था भी शामिल है।

(सही / गलत)

घ) 1990 के दशक की निम्न कृषि वृद्धि की अवधि की अपेक्षा 1980 की दशक की अपेक्षाकृत उच्चतर कृषि वृद्धि की अवधि के दौरान भारत में गरीबी न्यूनीकरण की दर उच्चतर रही।

(सही / गलत)

ङ) भारत खाद्य सुरक्षा बनाए रखने के लिए खाद्यान्न के आयात पर निर्भर नहीं रह सकता।

(सही / गलत)

च) हाल ही के वैश्विक संकट से भारतीय अर्थव्यवस्था के बचाव में कृषि का इस संकट से अप्रभावित रहना था।

(सही / गलत)

छ) विश्व बाजार में तेल की ऊँची कीमतों से जैव ईंधन के विकास की नीतियाँ बनाने के लिए बहुत देशों प्रोत्साहित हुए हैं।

(सही / गलत)

2) रिक्त स्थान भरिए :–

क) 1991-92 से भारत का कृषि निर्यात, कृषि आयात की अपेक्षा .... बढ़ा।

ख) कुल विदेशी व्यापार में कृषि व्यापार का प्रतिशत अंश कालांतर में .... है।

ग) उत्पादन प्रक्रिया में कृषि सकारात्मक और नकारात्मक दोनों प्रकार की .... उत्पन्न कर सकती है।

3) वे भिन्न-भिन्न क्षेत्र क्या हैं जिनमें ''उद्‌भावी कृषि'' की अधिकतम संभावना प्राप्त करने के लिए संकेंद्रित प्रयासों की आवश्यकता है?

....

DIKSHANT IAS

....

Call us @7428092240

....

....

7.6 रोजगार / GDP अंतरण और रोज़गार नम्यता

चित्र 7.1 कुल GDP (1999-2000 कीमतों पर 2003-04 तक और उसके बाद 2004-05 की कीमतों पर) में कृषि और संबद्ध सेक्टर के GDP अंश शेयर की प्रवृत्ति दर्शाता है। यह स्पष्ट है कि कृषि और संबद्ध कार्यों का योगदान पिछले 50 वर्षों के दौरान लगातार घटा है। यह 1960-61 में 50.6 प्रतिशत से 1970-71 में 44.3 प्रतिशत और आगे 1980-81 में 37.9 प्रतिशत हो गया था। GDP में कृषि का ये अंश 1990-91 में 31.4 प्रतिशत तक 2000-01 में 23.94 प्रतिशत और 2010-11 में केवल 14.2 प्रतिशत पाया गया। कृषि के इस अंश में आर्थिक सुधार की पिछली दो दशाब्दियों में अधिक तीव्र गिरावट आई है, क्योंकि इस अवधि के दौरान अन्य क्षेत्रों में कृषि की तुलना में अधिक तीव्र वृद्धि हुई है। यद्यपि GDP में कृषि का अंश घटा है, परंतु कृषि उत्पादन का मान (करोड़ रुपये में व्यक्त) 1960-61 में 0.3 मिलियन से 2003-04 में 2.2 मिलियन (1999-00 की कीमतों पर) और 2004-05 में 3.0 मिलियन से 2010-11 में 4.9 मिलियन (2004-05 की कीमत) हो गया है। यह स्पष्ट रूप से दिखाता है कि कृषि क्षेत्र में वास्तविक आय सारी अवधि के दौरान बढ़ी है, यद्यपि आय वृद्धि कृषीतर सेक्टरों की अपेक्षा कम रही है।

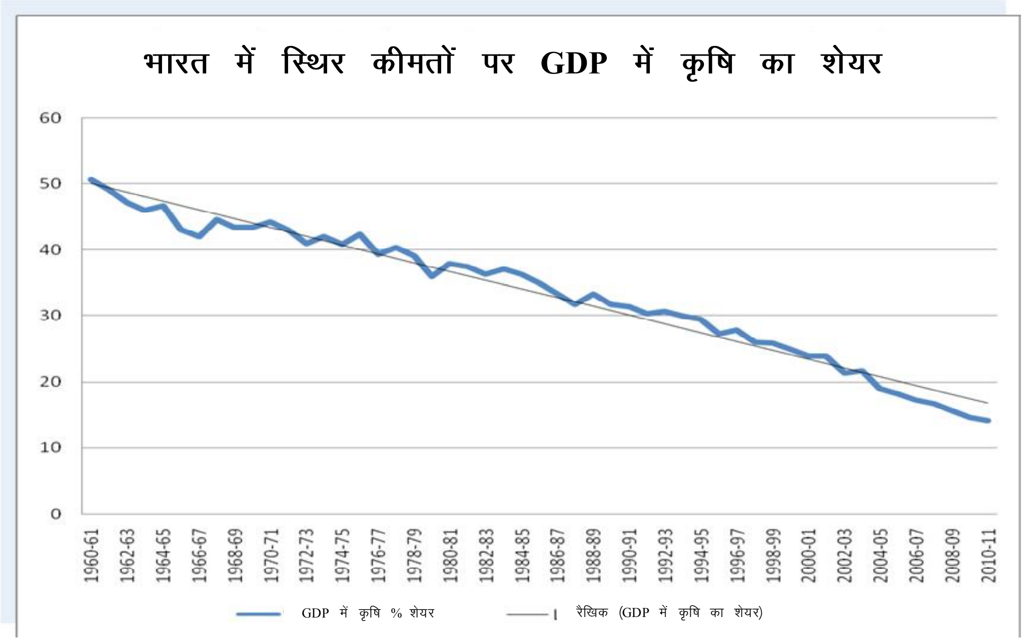

चित्र 7.1 : कृषि GDP में प्रवृत्ति (1961-2011)

राष्ट्रीय कृषीतर असंगित सेक्टर उपक्रम आयोग ने अनुमान लगाया है कि कृषि में ''प्रति कामगार GDP' (''श्रम उत्पादिता'' है) औद्योगिक सेक्टर GDP की लगभग एक-चौथाई और सेवा सेक्टर GDP की उत्पादिता का छटा भाग थी। वास्तव में कृषीतर सेक्टर से कृषि में श्रम उत्पादकता अनुपात 1983 से लगातार घट रहा है। इसका आशय है कि कृषि श्रम शक्ति की दशा इस अवधि के दौरान बिगड़ी है। इसके अलावा, कृषीतर कार्यों में अधिक मूल्य में रोज़गार तक किसानों/कृषि श्रमिकों की सीमित पहुँच के कारण भी वे अपनी आजीविका के लिए कृषि पर ही निर्भर रहे हैं।

कृषि बनाम गैर-कृषि में रोजगार नम्यता

1993-94 से 2004-05 की अवधि की कृषि और कृषीतर सेक्टरों में रोज़गार वृद्धि तालिका 7.1 में प्रस्तुत की गई है। 1993-94 और 1999-00 के बीच कृषि रोज़गार में 0.03 प्रतिशत की नगण्य वृद्धि देखी गई (अर्थात् वार्षिक औसत प्रतिशत वृद्धि) जबकि इसी अवधि के दौरान कृषि GDP 2.9 प्रतिशत प्रतिवर्ष बढ़ी थी। परिणामस्वरूप रोज़गार नम्यता 0.01 पर थी। (रोजगार वृद्धि का तद्नुरूपी GDP वृद्धि से अनुपात के रूप में परिभाषित, जो सेक्टर में उत्पन्न की गई या जोड़ी गई आय की प्रत्येक इकाई के लिए उत्पन्न किया गया रोजगार बताता है।) परंतु कृषीतर कार्यों में रोज़गार वृद्धि 2.5 प्रतिशत से अधिक थी और फलस्वरूप रोज़गार नम्यता भी 0.31 प्रतिशत के उच्च स्तर पर थी। गैर-कृषि सेक्टर (5.03) में वास्तविक मज़दूरी की वृद्धि दर कृषि सेक्टर (2.74) की तुलना में लगभग दुगुनी थी। अगले पाँच वर्षों में कृषि सेक्टर की स्थिति में कुछ सुधार रहा। कृषीतर क्षेत्र में रोजगार नम्यता कृषि में 0.49 की तुलना में 0.65 था। परंतु कृषि क्षेत्र में रोजगार नम्यता में सुधार 1994-95 में 0.01 से 2000-2005 में 0.49 महत्त्वपूर्ण है। विशेष रूप से कृषि में भी वास्तविक मज़दूरी कृषीतर की अपेक्षा अधिक तेज़ी से बढ़ी, अर्थात् पश्चोक्त की 0.13 की तुलना में यह पूर्वोक्त में 1.46 थी। ये तथ्य भारत में कृषि विकास की दृष्टि से स्पष्टतः उत्साहजनक हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

तालिका 7.1 : कृषि और कृषीतर सेक्टर में रोज़गार वृद्धि दर में प्रवृत्तियाँ

	कृषि			कृषीतर		
	1993-94 से 1999-00	1999-00 से 2004-04	1993-94 से 2004-05	1993-94 से 1999-00	1999-00 से 2004-04	1993-94 से 2004-05
रोज़गार	0.03	0.85	0.40.	2.53	4.66	3.49
GDP	2.88	1.76	2.37	8.11	7.22	7.71
रोज़गार नम्यता	0.05	0.49	0.17	0.31	0.65	0.45
वास्तविक मज़दूरी	2.74	1.46	2.15	5.03	0.13	2.77

स्रोत : असंगठित क्षेत्र में उपक्रमों का राष्ट्रीय आयोग (NCEUS), भारत सरकार, 2009

बोध प्रश्न 4

1) रिक्त स्थान भरिये।

क) कुल GDP में कृषि का अंश 1960-61 में 50.6 प्रतिशत से घटकर 2010-11 .... हुआ।

ख) कृषि क्षेत्र में वास्तविक आय 1961-2001 की अवधि के दौरान बढ़ी है, किंतु आय वृद्धि कृषीतर सेक्टरों की अपेक्षा .... रही है।

ग) NCEUS अनुमानों के अनुसार कृषि में प्रति कामगार GDP 2004-05 में . ... लगभग एक-चौथाई थी।

घ) 1993-94 और 2004-05 के बीच रोज़गार नम्यता .... की अपेक्षा .... में उच्चतर थी।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

7.7 सारांश

आर्थिक विकास में कृषि की भूमिका विकास अर्थशास्त्र के मुख्य सरोकारों में एक रहा है। इस विषय पर पिछले अधिकांश अध्ययन मूलतः परंपरागत कृषि सेक्टर से आधुनिक औद्योगिक सेक्टर में कारक संसाधनों के अंतरण द्वारा अर्थव्यवस्थाओं के संरचनात्मक रूपांतरण की प्रक्रिया पर संकेंद्रित रहे हैं। कृषि की भूमिका मुख्यतया खाद्य सामग्री मुहैया करने, काम पैदा करने, निर्यात आय अर्जन करने, निवेश के लिए बचत करने, कृषि प्रसंस्करण उद्योगों के लिए प्राथमिक माल का उत्पादन करने तक सीमित थी। परंतु कृषि की समकालीन भूमिका इस प्रत्यक्ष बाजार समामेलित योगदान से भी आगे निकल जाती है। अब कृषि वे अप्रत्यक्ष गैर-सामग्री योगदान प्रदान करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है जो सार्वजनिक पदार्थ, सामाजिक सेवा लाभ और पर्यावरण सेवाएं हैं। पारिस्थितिकी और पर्यावरण, जल संसाधन, जैव विविधता, ग्रामीण गरीबी, खाद्य ईंधन और आजीविका सुरक्षा आदि ने कृषि को एक बार फिर विकासशील देश की सरकारों और अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं के समग्र विकास एजेंडा में रख दिया है।

7.8 शब्दावली

GDP : सकल घरेलू उत्पाद–राष्ट्र की भौगोलिक सीमा के अंतर्गत (संसाधनों के स्वामित्व को ध्यान में रखे बिना) किसी एक वर्ष की अवधि में उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं का अंतिम उत्पादन।

संबद्धता : उत्पाद के प्रवाह क्रम में विभिन्न क्षेत्रकों के बीच परस्पर निर्भरता।

श्रम का सीमांत उत्पाद : अन्य कारकों को स्थिर रखते हुए श्रम के प्रयोग में एक इकाई परिवर्तन के कारण कुल उत्पाद में निवल परिवर्तन।

गैर-कृषि सेक्टर : इसमें कृषि और संबद्ध कार्यों के अलावा सभी आर्थिक कार्य शामिल हैं।

CSO : केंद्रीय सांख्यिकीय संगठन – राष्ट्रीय लेखा आंकड़े जैसे, GDP, सकल घरेलू उत्पाद बचत आदि के आंकड़े संकलित और प्रकाशित करता है।

संरचनात्मक परिवर्तन : सेक्टर अनुसार कामगारों के वितरण आदि में जो विकास की अवधि में आये बड़े परिवर्तन। इस समय नीति निर्धारकों के समक्ष कृषि में भी अन्य क्षेत्रकों की भांति श्रम की उच्च उत्पादिता प्राप्त करते हुए इस क्षेत्र में व्यस्त जनसंख्या (वर्तमान स्तर 50 प्रतिशत है) के अनुपात में यथेष्ठ कमी लाना है। यह ''समावेशी संवृद्धि'' के सरोकारों को लेकर चिंता का भी समाधान होगा।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

श्रम उत्पादकता : इसे रुपयों में व्यक्त किया जाता है और सेक्टर की आय को सेक्टर में नियुक्त कामगारों की कुल संख्या द्वारा भाग देकर ज्ञात किया जाता है। यह सेक्टर में प्रति व्यक्ति औसत आय निरुपित करता है।

7.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Valdes A and Foster W (2010): Reflections on the Role of Agriculture in Pro-Poor Growth, World Development Vol. 38, No. 10, pp. 1362–1374, 2010.

Johnston, B. F., & Mellor, J. (1961): The role of agriculture in economic development. American Economic Review, 51(4), 566–593.

Lewis, A. (1955): *The Theory of Economic Growth*, R.D. Irwin. Homewood, Illinois.

Luc Christiaensen, Lionel Demery, Jesper Kuhl (2011): The (Evolving) Role of Agriculture in Poverty Reduction—An Empirical Perspective, Journal of Development Economics, Vol. 96, (2011), 239-254.

Schultz, T. W. (1964): *Transforming Traditional Agriculture*. Yale: Yale University Press.

Singh S.P. (2010): Agriculture under Neoliberal Policy Regime, in *Alternative Economic Survey, India: Two decades of Neoliberalism*, Dannis Books.

World Bank (2008): *World Development Report: Agriculture for Development*, The World Bank, Washington D.C.

7.10 बोध प्रश्नों के उत्तर/संकेत

बोध प्रश्न 1

1) भाग 7.1 देखिए और उत्तर दीजिए।

2) भाग 7.2 देखिए और उत्तर दीजिए।

3) भाग 7.2 देखिए और उत्तर दीजिए।

बोध प्रश्न 2

1) भाग 7.3 का पहला और दूसरा पैरा देखिए और उत्तर दीजिए।

2) भाग 7.3 का अंतिम पैरा देखिए और उत्तर दीजिए।

DIKSHANT IAS

3) उपभाग 7.4.1 देखिए और उत्तर दीजिए।

Call us @7428092240

4) उपभाग 7.4.2 देखिए और उत्तर दीजिए।

बोध प्रश्न 3

1) क) सही

   ख) सही

   ग) भाग 7.4 देखिए और उत्तर दीजिए।

   घ) सही

   ङ) सही

   च) सही

   छ) सही

2) (क) मंद, (ख) घटा (ग) बाह्यताएँ

3) भाग 7.5 के दूसरे पैरा का अंतिम भाग देखिए और उत्तर दीजिए।

बोध प्रश्न 4

1) भाग 7.6 देखिए और उत्तर दीजिए।

2) भाग 7.6 देखिए और उत्तर दीजिए।

3) भाग 7.1 देखिए और उत्तर दीजिए।

4) भाग 7.1 देखिए और उत्तर दीजिए।

इकाई 8 भारतीय कृषि की विविध प्रवृत्तियाँ

संरचना

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 इष्टतम उपयोग का सिद्धांत

8.3 विविधीकरण की प्रक्रिया

8.4 भारत में कृषि का विविधीकरण

8.4.1 कृषि संवृद्धि/विविधीकरण के निर्धारक

8.4.2 भारतीय कृषि में विविधीकरण की प्रगति

8.4.3 विविधीकरण के लाभ

8.5 विविधीकरण के लिए दृष्टिकोण

8.5.1 स्थान विशेष कार्यक्रम

8.5.2 ठेके पर कृषि

8.6 फसलों का विविधीकरण : राष्ट्रीय संकल्प की संपूर्ति के लिए रणनीति

8.6.1 गरीबी उन्मूलन और खाद्य सुरक्षा

8.6.2 धारणीय कृषि विकास के लिए प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन

8.6.3 कृषि योजना के लिए क्षेत्र आधारित दृष्टिकोण

8.7 फसल विविधीकरण : संरोध और संभावनाएँ

8.7.1 भूमंडलीकरण और फसल विविधीकरण

8.7.2 उभरती हुई प्रौद्योगिकी और फसल विविधीकरण

8.7.3 फसल विविधीकरण के लिए अनुसंधान और विकास सहायता

8.7.4 फसल विविधीकरण के लिए संस्थागत और आधारभूत संरचना विकास

8.8 कृषि विविधीकरण संवर्धन के लिए रणनीति

8.9 सारांश

8.10 शब्दावली

8.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

8.12 बोध प्रश्नों के उत्तर/संकेत

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

8.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद, आप :

- कृषि के विविधीकरण की अवधारणा की रूपरेखा प्रस्तुत कर सकेंगे;
- कृषि सेक्टर में विविधीकरण की आवश्यकता बता सकेंगे;
- कृषि विविधीकरण के लिए दो मुख्य दृष्टिकोणों की चर्चा कर सकेंगे;

- स्पष्ट कर सकेंगे, कृषि सेक्टर का रूपांतरण करने में विविधीकरण कैसे सहायक हो सकता है जिससे यह वाणिज्यिक रूप से व्यावहारिक आधुनिक उपक्रम बन सके;
- कृषि के विविधीकरण की प्रक्रिया में संरोधों की पहचान कर सकेंगे; और
- विविधीकरण की प्रक्रिया सुदृढ़ करने के लिए अपेक्षित नीतिगत उपायों का सुझाव दे सकेंगे।

8.1 प्रस्तावना

कृषि और उसके अनुषांगिक सेक्टर GDP को लगभग 15 प्रतिशत योगदान करता है और इस समय लगभग 50 प्रतिशत आबादी अपनी आजीविका के लिए कृषि पर निर्भर हैं। परंतु कृषि उत्पाद मानसून पर निर्भर रहता है और 60 प्रतिशत क्षेत्रफल में कृषि वर्षा पर आश्रित है। इसके अलावा, छोटे और सीमांत किसान मुख्य रूप से कम कीमत और निर्वाही फसलों की खेती करते हैं। इस कारण, वे कई समस्याओं का सामना कर रहे हैं, जैसे कम उत्पादकता, कम आय, कम निवेश और पूँजी निर्माण, कम कीमतें, उच्च उत्पादन लागत, कम क्रय शक्ति, बुनियादी सुविधाओं की कमी आदि। इन कठिनाइयों को दूर करने के लिए उन्नत कृषि उत्पादकता और आय के उपायों के रूप में प्रायः कृषि विविधीकरण के सुझाव दिए जाते हैं। कृषि विविधीकरण की अवधारणा का संबंध मूल रूप से कम कीमत की फसलों की अपेक्षाकृत उच्च मूल्य की फसलों तथा फार्म उत्पादों में संसाधन लगाने से है। इस इकाई में, हम विविधीकरण के मुद्दों जैसे, निर्धारक तत्व, दृष्टिकोण, संरोधों, रणनीति आदि का अध्ययन करेंगे। परंतु प्रारंभ में हम निम्नलिखित पर चर्चा करेंगे : (i) संसाधनों का इष्टतम उपयोग; और (ii) कृषि में विविधीकरण का अभिप्राय आवश्यकता और महत्त्व।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

8.2 इष्टतम उपयोग का सिद्धांत

किसी भी निश्चित संसाधन का चाहे, वह प्राकृतिक हो या मानव निर्मित इष्टतम उपयोग सुनिश्चित करना बुनियादी सार्वजनिक आर्थिक सिद्धांतों में एक है। इष्टतम उपयोग के (सिद्धांत, विशेषकर प्राकृतिक संसाधनों के) दो महत्त्वपूर्ण पहलू हैं :

i) पहला पहलू है कि किसी संसाधन का उपयोग करते समय हमें उसकी नवीकरण क्षमता की निश्चितता के बारे में आश्वस्त होना चाहिए। इसका अभिप्राय है कि यदि उत्पादन के किसी भी कारक में नवीकरण विशेषता है, तब उसकी संरक्षण और पुनर्जनन संभावना को उच्चतम वरीयता दी जानी चाहिए। दूसरे शब्दों में, इसे अनिर्वाहित ढंग से प्रयुक्त नहीं किया जाना चाहिए, बल्कि उसका उपयोग उसकी नवीकरण संभावना के अनुपात में होना चाहिए। यह उस तरह होगा जैसे जो मुर्गी सोने का अंडा देती है, लंबे समय तक प्रतिदिन एक सोने के अंडे से संतुष्ट रहने के बजाय एक ही बार में सभी अंडे लेने के लिए उसे मारा नहीं जाए।

ii) इष्टतम उपयोग का दूसरा पहलू निश्चित संसाधन से इष्टतम लाभ प्राप्त करने से संबंधित है। उदाहरण के लिए, कृषि के मामले में भूमि ऐसा कारक है जो प्रकृति से पूरी नवीकरण क्षमता की संभावनाओं के साथ-साथ प्राकृतिक उपहार

है। परंतु यह प्राकृतिक संसाधन मानव जनसंख्या की मांग की तुलना में अपर्याप्त है। इस कारण से भूमि का उपयोग गहनता से किया जाता है। परंतु उसकी उवर्रता पुनः प्राप्त करने पर विचार किये बिना भूमि का गहन प्रयोग इष्टतम उपयोग के सिद्धांत के विरुद्ध होगा।

इष्टतम उपयोग और नवीकरण क्षमता की दो आवश्यकताओं के बीच का रास्ता ''कृषि का विविधीकरण'' है। जैसा कि ऊपर कहा गया है, कृषि विविधीकरण का अभिप्राय कम उत्पादकता की फसलों और फार्म कार्यों के स्थान पर अपेक्षाकृत उच्च मूल्य की फसलों और अन्य फार्म उत्पादों में संसाधन अंतरित करना है। भूमि और जल संसाधनों की वहनीयता भी कृषि विविधीकरण के लिए महत्त्वपूर्ण है। कृषि का विविधीकरण आय में वृद्धि से कृषि उत्पादों के लिए बदलती हुई मांग और कृषि बाजारों के बढ़ते हुए विश्वव्यापी एकीकरण की अनुक्रिया है। इस प्रकार, यह चुनौती और अवसर भी है।

8.3 विविधीकरण की प्रक्रिया

कृषि विविधीकरण एक व्यापक विस्तार की प्रक्रिया है। सामान्य दृष्टि से कृषि का विविधीकरण से अभिप्राय हो सकता है :

i) कृषि और संबद्ध कार्यों, जैसे पशुपालन, मत्स्य पालन आदि; और/या

ii) फसलों के स्वरूप में विविधीकरण

दूसरी श्रेणी को आगे निम्नलिखित में पुनः विभाजित किया जा सकता है :

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

क) खाद्य फसलों और खाद्येत्तर फसलों के बीच विविधीकरण;

ख) अनाज और अनाज से भिन्न खाद्य फसलों के बीच विविधीकरण;

ग) परंपरागत फसलों और बागवानी के बीच विविधीकरण; और

घ) निम्न उत्पादकता या निम्न मूल्य फसलों से उच्च मूल्य फसलों के बीच विविधीकरण।

विकल्पतः फसल विविधीकरण को दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है :

i) **समस्तरीय विविधीकरण**

साधारण रूप में समझी गई क्रियाविधि तो वर्तमान फसलक्रम योजना (अर्थात् अनेकधा फसल) में अधिक फसलों को जोड़ना है। यह एक प्रकार से कृषि व्यवस्था के आधार को बड़ा बनाता है। विविधीकरण की इस विधि का लघु भू-धारक उत्पादन व्यवस्थाओं के अधीन विशेष महत्त्व है और बढ़ी हुई फसल गहनता के कारण उत्पादन वृद्धि के लिए उपयोगी सिद्ध हुआ है।

ii) **ऊर्ध्वाधार विविधीकरण**

दूसरा प्रकार ऊर्ध्वाधार फसल विविधीकरण है जो फसल उत्पादन के ''औद्योगिकीकरण'' की सीमा और अवस्था में परिलक्षित होता है। कृषि वानिकी, शुष्क भूमि बागवानी, औषध और सौगन्धिक पादपों और अन्य आर्थिक झाड़ियाँ तथा पशुधन संबंधी कार्य इसके अधीन आते हैं। यह नोट करें कि फसल विविधीकरण भिन्न-भिन्न फसलों से आर्थिक लाभ को ध्यान में रखता है। दोनों प्रकार के विविधीकरण (अर्थात् अनेकधा फसल या

समस्तरीय विविधीकरण और कृषि व्यापार या ऊर्ध्वाधार विविधीकरण) फसल उपज सुधारने और स्थानीय, क्षेत्रीय और राष्ट्रीय स्तरों पर आय पैदा करने के लिए आवश्यक होता है।

बोध प्रश्न 1

नीचे दिए गए स्थान में अपना उत्तर लगभग 50 शब्दों में लिखिए।

1) क्या आप सहमत है कि ''कृषि का विविधीकरण'' 'इष्टतम उपयोग' के सिद्धांतों के दो आवश्यक तत्वों के बीच का 'मध्यम मार्ग' हैं?

....

....

....

....

2) फसल स्वरूप में विविधीकरण की चार उप-श्रेणियाँ क्या हैं?

....

....

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

3) कृषि व्यापारिक दृष्टि से 'फसल विविधीकरण' 'अनेकधा फसल' प्रणाली से किस प्रकार भिन्न है?

....

....

....

....

8.4 भारत में कृषि का विविधीकरण

कृषि क्षेत्र उच्च स्तरों के जोखिमों से भरा है जिसमें अनिश्चित घटनाएँ, जैसे सूखा/दुर्मिक्ष, बाढ़, चक्रवात, ओलावृष्टि, पाला, शीत/गर्म हवाएँ आदि शामिल हैं। पादपों और पशुओं से संबंधित रोगों के अलावा कीड़ों और विनाशी जीवों का भी कृषि उत्पादों पर प्रतिकूल प्रभाव होता है। ये भी क्षति या जोखिम खड़ी करते हैं। कृषि सेक्टर पर्यावरण प्रौद्योगिकी और आर्थिक कारकों द्वारा उत्पन्न अनिश्चितताओं से भी प्रभावित होता है जिसका कृषि उत्पादों की मांग और आपूर्ति की गव्यात्मकता पर गंभीर प्रभाव होता है। ऐसे उतार-चढ़ाव कृषि व्यापार की संभावना पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं। कृषि विविधीकरण का रक्षात्मक उपाय अपनाकर इन जोखिमों को कुछ सीमा तक कम किया जा सकता है।

8.4.1 कृषि संवृद्धि/ विविधीकण के निर्धारक

कृषि संवृद्धि प्रौद्योगिकी के स्तर, सरकार की नीतियों, फसलों के क्षेत्रफल और उत्पाद विवरण का फलन है। कृषि उत्पादन में समयानुसार परिवर्तन इन सभी घटकों/परिवर्तियों

में परिवर्तनों का संचयी प्रभाव है। कृषि संवृद्धि/उत्पाद प्रोत्साहित करने के लिए सुविचारित नीति निरुपण आवश्यक है। इसके लिए आदर्श रूप में उत्पादन पर प्रत्येक घटक के प्रभाव का स्पष्टीकरण अपेक्षित है। राष्ट्रीय लेखा प्रयोजनों के लिए कृषि के सकल उत्पाद (मूल्य निवेशों का मूल्य घटाकर) को कृषि से आय का माप माना जाता है। आंकड़ों के प्रयोजनों के लिए, फसल पैदावारों को परिवर्तियों, जैसे सरकारी नीतियों, सकल फसल श्रेत्रफल, उत्पादन विवरण में परिवर्तन (अर्थात् फसल प्रतिस्थानापन) के संचयी प्रभाव के लिए अनुमान के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। ये बहिर्जात (अर्थात् स्वतंत्र) कारक हैं जो कृषि विविधीकरण विषयक निर्णय को प्रभावित करते हैं। अलग-अलग किसान अपनी खेती की आदतों में परिवर्तन लाने के लिए निर्णय करने से पहले कतिपय कारकों को ध्यान में रखते हैं। इसलिए इन्हें अंतर्जात (अर्थात् आश्रित) कारकों में भी गिना जा सकता है।

किसान अपनी खेती की पद्धतियाँ कैसे बदलते हैं या उन्हें ऐसा करने के लिए क्या प्रेरित करता है? किसान तर्कसंगत आर्थिक एजेंट होने के कारण अपना फसल स्वरूप केवल तभी बदलेंगे, जब उन्हें ऐसे परिवर्तन से आर्थिक लाभ की आशा हो। इसलिए किसान के दृष्टिकोण से कृषि विविधीकरण को स्वीकार करने के लिए विभिन्न निर्धारक कारक होंगे : नई प्रणाली से लिए लाभ, उत्पाद के लिए बाजार की उपलब्धता, जोखिम सुरक्षा, प्रौद्योगिकी उपलब्धता, वैकल्पिक प्रोत्साहन, नई प्रणाली अपनाने के अन्य आवश्यक कारण।

8.4.2 भारतीय कृषि में विविधीकरण की प्रगति

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

भारत इस समय प्रतिवर्ष लगभग 275 मिलियन से अधिक खाद्यान्न पैदा कर रहा है। 1960 के दशक के दौरान पहली हरित क्रांति ने रिकार्ड कृषि उत्पाद प्राप्त करने में सहायता की। हरित क्रांति अनिवार्य रूप से आपूर्ति चालित थी। उत्पादन बढ़ाने और आवश्यक खाद्यान्नों की आपूर्ति बढ़ाने के लिए बड़े प्रोत्साहन दिए गए थे। हरित क्रांति द्वारा अपनाई गई तकनीकें थीं : (i) रासायनिक उवर्रकों का व्यापक प्रयोग; (ii) सिंचाई; (iii) भारी मशीनरी का प्रयोग; और (iv) कीटनाशक दवाओं का प्रयोग। हरित क्रांति ने नए बीजों, उर्वरकों और सिंचाई के पैकेज का प्रयोग करते हुए भारत में चावल का उत्पादन काफी बढ़ाया। कृषि में हरित क्रांति की पहली अवस्था के बाद 'श्वेत क्रांति' (अर्थात् दूध उत्पादन, वर्ष में लगभग 90 मिलियन टन दूध उत्पादन के साथ भारत विश्व में सबसे अधिक दुग्ध उत्पादकों में है), नीली क्रांति (मत्स्य पालन) और पीत क्रांति (खाद्य तेल, विशेषकर सरसों/तोरिया तेल) आई। इन उपलब्धियों के अलावा, भारत फलों और सब्जियों के उत्पादन में भी ऊँचे स्थान पर है। यद्यपि ये सभी भारतीय कृषि के विविधीकरण की दिशा में उठाए गए कुछ मुख्य कदम हैं परंतु ये भारत के लिए पर्याप्त नहीं हैं जिसकी जनसंख्या का 2025 तक 140-150 करोड़ हो जाने का पूर्वानुमान लगाया गया है। इसके अलावा आय स्तरों में वृद्धि से संबद्ध उपभोक्ताओं की मांग के स्वरूप में परिवर्तन भी है। जैसा कि हमने पहले ही इकाई 7 में देखा है कि खाद्य मदों का हमारा आयात निर्यात से अधिक हो गया है। इन सभी कारकों के कारण कृषि में आधुनिक तरीकों का प्रयोग करना एक अपरिहार्य आवश्यकता हो गई है, ताकि न केवल सभी फार्म उत्पादों में भारतीय कृषि को आत्म निर्भर बना सके बल्कि विश्व में प्रमुख खाद्य उत्पादक भी हो सके। संक्षेप में, दूसरी हरित क्रांति की आवश्यकता है। हाल ही के वर्षों में जेनेटिक इंजीनियरी तकनीकें प्रयोग कर कुछ कृषि उत्पादों में वृद्धि के प्रयास हुए हैं। उदाहरण के लिए, बहुत वाणिज्यिक फसलों

को शाकनाशी सहय्य बनाया गया है ताकि उनके उत्पादन को क्षति पहुँचाए बिना खरपतवार समाप्त किए जा सकें।

आशा है कि दूसरी, हरित क्रांति के पहली से बिल्कुल भिन्न रणनीति का अनुसरण करेगी। पहली हरित क्रांति का ध्यान मुख्यतया अधिक उपज देने वाली किस्मों और खाद्य कमी समाप्त करने के लिए फसल किस्मों का प्रचलन बढ़ाने पर था। दूसरी हरित क्रांति का सचलन उपभोक्ताओं की बदलती पसंद के अनुसार होने की संभावना है (जो उच्च मूल्य के फार्म उत्पादों के पक्ष में लगातार बढ़ रही है)। यह कार्य, सूचना प्रौद्योगिकी (IT) और जैव प्रौद्योगिकी (BT) क्षेत्रों में की गई प्रगतियों से ली गई नई जानकारियों के सम्मिश्रण को काम में लाने पर आधारित रहेगा। इसलिए यह न केवल परंपरागत खेती पर बल्कि वाणिज्यिक खेती जैसे बागवानी, पुष्पकृषि, रेशम उत्पादन, मत्यपालन, औषधीय/ऐरोमेटिक फसलों और कृषि संसाधनों में सहबंधन के पहलुओं पर भी संकेद्रित होगा। इन सभी में मुख्य घटकों में एक विशाल स्तरीय फसल विविधीकरण कार्य योजना प्रारंभ करनी होगी।

8.4.3 विविधीकरण के लाभ

विविधीकरण के बहुत लाभ हैं। ये निम्न प्रकार हो सकते हैं :

i) भिन्न प्रकार की फसलों के लिए मृदा की अलग-अलग प्रकार की उर्वरता की आवश्यकता होती है। फसलों का समायोजन या फेर बदल से मृदाओं के सभी गुणधर्मों के एक फसल संकेंद्रण की अपेक्षा अधिक उपयोग होने की आशा की जाती है। उदाहरण के लिए, अनाज को बहुत अधिक नाइट्रेट, गोभी अधिक सल्फेट, लौंग आधिक चूना और कंदवर्गीय फसलों को फास्फेट की भारी जरूरत होती है। यदि भिन्न-भिन्न फसलों की अनुक्रमिक उगाई होती है तो पहले की फसल द्वारा प्रयुक्त तत्वों को बहाल करना संभव हो जाएगा।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

ii) फसलों की हेर-फेर से खरपतवार का न्यूनीकरण आसान होता है क्योंकि इससे भिन्न-भिन्न समय में सफाई होती है इस प्रकार वर्ष दर वर्ष यह खरपतवारों के पोषण और फैलाव को कम करती है।

iii) विविधीकरण से उसी खेत में वर्ष में एक से अधिक फसल उगाना संभव होता है जबकि उसी फसल को दोबारा लगाना और बोना असंभव होता है। इससे पशुधन का पोषण भी आसान होता है (जो फसल/घास के अवशिष्टों को खाते हैं)। इसलिए यह किसानों को मांस, दूध, ऊन या ईंधन के रूप में आय का अतिरिक्त स्रोत प्रदान करता है।

iv) विविधीकरण से भिन्न-भिन्न फसल उगाने से पूरे वर्ष भर श्रमिकों की भी आवश्यकता होती है।

v) विविधीकरण किसानों और उनके परिवार के लिए अलग-अलग किस्म के खाद्यान्न का उपभोग भी संभव बनाता है।

vi) विविधीकरण से किसान अपना जोखिम कम कर सकते हैं। यदि कोई एक ही फसल/उत्पाद पर निर्भर करता है तो उस फसल के खराब होने या उसकी कीमत गिर जाने पर किसान बर्बाद हो सकता है, जबकि इसकी संभावना बहुत कम होती है कि एक वर्ष में सभी फसलें/उत्पाद साथ-साथ विफल हो जाएं।

vii) विविधीकरण से किसान की आय अधिक नियमित होती है क्योंकि फसलें और पशु उत्पादों का विक्रय पूरे वर्ष चलता रहेगा।

viii) विविधीकरण से कम कीमत की फसलों के स्थान पर से अधिक कीमत की फसलों का उत्पादन हो सकता है। इससे न केवल फार्म उत्पादों के लिए बदलती मांग की आपूर्ति की जा सकती है बल्कि किसानों की आय भी बढ़ती है।

बोध प्रश्न 2

1) रिक्त स्थान भरिये –

क) भारत इस समय प्रतिवर्ष .... मिलियन टन से अधिक खाद्यान्न का उत्पादन कर रहा है।

ख) पहली हरित क्रांति ने ...., ... और .... का पैकेज प्रयुक्त किया।

ग) भारतीय कृषि में विविधीकरण ने ...., ... तथा .... आदि वस्तुओं/क्षेत्रों को भी समाहित किया है।

2) वाणिज्यिक खेती के वैकल्पिक क्षेत्रों के उदाहरणों का उल्लेख कीजिए जिन पर दूसरी हरित क्रांति को अधिक फोकस देने की आशा की जाती है।

....

....

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

3) क्या आप सहमत है कि ''विविधीकरण'' भारतीय किसानों को अपना जोखिम कम में सहायता करता है''? अपने दावे की पुष्टि में तर्क दीजिए।

....

....

....

....

8.5 विविधीकरण के लिए दृष्टिकोण

उपर्युक्त से स्पष्ट है कि आधुनिक युग में आर्थिक संवृद्धि के लिए कृषि विविधीकरण आवश्यक है। विविधीकरण का दृष्टिकोण ऐसे आर्थिक तर्क पर आधारित होना चाहिए जो क्षति कम करने या लाभ अधिक बढ़ाने में उपयोगी हो। दो विचारों का यहाँ पर उदाहरण दिया जा सकता है : विनाशशील वस्तुओं के विलंबित परिवहन से किसानों को हानि हो सकती है। निश्चित कीमतें होती हैं तथा ''संविदा खेती'' के अधीन उगाए गए उत्पादों की वैकल्पिक कीमत/बाजार से विविधीकरण के दृष्टिकोण इस प्रकार, निम्नलिखित तर्कों पर आधारित होंगे।

8.5.1 स्थान विशेष कार्यक्रम

स्थान विशेष विविधीकृत खेती प्रणाली विनाशशील वस्तुओं की क्षति न्यूनतम करने के लिए अपनाई जा सकती है। शीत गृह और कृषि प्रसंस्करण क्षति को न्यूनतम करेंगी।

उच्च कीमत की फसलें और उच्च कीमत के उत्पाद, जैसे डेयरी, कुक्कट पालन आदि आवश्यक होंगे। पूर्वी भारत का बहुत बड़ा भाग जलाक्रांति प्रवण है। उसे साथ-साथ लाभप्रद जलीय कृषि जैसे मखाना, सिंघाड़ा, कचालू आदि तथा मत्स्य पालन के अधीन लाया जा सकता है।

8.5.2 ठेके पर कृषि

एक अन्य नयी विधि है, और यह अनेक राज्यों में लागू की गई है। यह विविधीकरण तेज़ कर सकती है। भारतीय किसानों को शीत गृहों और तुरंत विपणन सुविधाओं के अभाव के कारण उच्च कीमत की फसलें उपजाने में कठिनाई होती है। कृषि भूमि संबंधी भारतीय कानून निगम निकायों को बहुत बड़ी संख्या में छोटे किसानों का विस्थापन रोकने की लिए राष्ट्रीय नीति के कारण बड़ी मात्रा में भूमि खरीदने और कार्य करने की अनुमति नहीं देता। इस स्थिति में निगम क्रेता जो घरेलू/निर्यात बाजारों के लिए कार्य कर सकते हैं या कृषि प्रसंस्करण उपक्रम चलाते हैं, उच्च गुणवत्ता के उत्पाद का उत्पादन करने के लिए ''ठेके पर कृषि'' विधि को अपना सकते हैं। इस योजना के अधीन क्रेता उन फसलों के लिए उपयुक्त क्षेत्र चुनते हैं जिनके वे इच्छुक हैं, और ठेके में फसलों के उत्पादन के लिए किसानों को संगठित करते हैं। वे सही गुणवत्ता की रोपण सामग्री तथा तकनीकी विशेषज्ञता प्रदान करते हैं। इस प्रक्रिया से किसान अपने विपणन जोखिम समाप्त कर सकते हैं, जबकि निगम क्रेता को सही गुणवत्ता की आपूर्तियाँ सुनिश्चित होती हैं। ठेके पर खेती पर आधारित कृषि संसाधन का विकास कृषि विविधीकरण को प्रोत्साहित करता है। परंतु संविदा खेती के लिए आवश्यक है : (i) विविधीकरण के लिए प्रोत्साहन प्रदान करना, जिसके लिए आकर्षक नीति पहले निरुपित करना आवश्यक है, और (ii) सिंचाई, जल, ग्रामीण सड़कों और ग्रामीण विद्युतीकरण आदि में सार्वजनिक निवेश बढ़ाना। बदले में ये आधारभूत संरचना सुविधाएँ निजी निवेश को भी आकर्षित करेंगी।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

8.6 फसलों का विविधीकरण : राष्ट्रीय संकल्प की संपूर्ति के लिए रणनीति

फसल विविधीकरण कुछ राष्ट्रीय समस्याओं के समाधान करने में सहायक हो सकता है, जैसे : गरीबी उन्मूलन, और खाद्य सुरक्षा और वहनीय कृषि विकास। यह कृषि नियोजन के लिए क्षेत्रानुसार उपयुक्त नीतियों पर ध्यान केंद्रित कर संतुलित क्षेत्रीय विकास में भी सहायक हो सकता है। वस्तुतः पिछले 6 दशकों की उपलब्धियां इसी बात की पुष्टि कर रही हैं।

8.6.1 गरीबी उन्मूलन और खाद्य सुरक्षा

स्वातंत्र्योतर अवधि में लगभग 2.7 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से कृषि संवृद्धि 20वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में 0.3 प्रतिशत प्रतिवर्ष की नगण्य वृद्धि से बहुत अधिक थी। यह संवृद्धि न केवल खाद्यान्न उत्पादन के क्षेत्र में थी बल्कि वाणिज्यिक फसलों, जैसे कपास, तिलहन, गन्ना, फसल और सब्जियों के तथा पशुधन उत्पाद और मत्स्य पालन के क्षेत्र में भी थी। हमने स्वतंत्रता के बाद ये महत्त्वपूर्ण वृद्धियाँ प्राप्त कीं। इस उपलब्धि ने गरीबी कम करने में महत्त्वपूर्ण योगदान किया। उदाहरण के लिए, गरीबी का प्रभाव 1973-74 में 54.9 प्रतिशत से घटकर 2004-05 में 27.50 प्रतिशत (अर्थात् ठीक आधा या 50 प्रतिशत) रह गया। इसलिए वर्तमान सरकार की शासन व्यवस्था के राष्ट्रीय

विषय सूची ने अगले दस वर्षों में खाद्य उत्पादन दुगुना करने को शीर्ष प्राथमिकता दी। इसमें चावल, गेंहू, मोटा अनाज, दलहन, तिलहन, चीनी, फल और सब्जियाँ, गोश्त, दूध और मछली शामिल हैं। इस कार्य योजना ने निश्चित समस्याओं के साथ ब्यौरेवार रणनीति की संकल्पना की है ताकि विभिन्न खाद्य वस्तुओं की आपूर्ति में ऐसी पर्याप्त वृद्धि प्राप्त हो सके कि समस्त जनसंख्या के लिए ऐसी वस्तुओं की माँग न केवल पूरी हो सके बल्कि निर्यात के लिए अधिशेष भी उपलब्ध रह सके। मध्यम अवधि में अनुसरण की जाने वाली विकास रणनीति में देश की खाद्य सुरक्षा समस्या को सावधानी के साथ जोड़ा गया है। यदि राष्ट्रीय प्राथमिकताओं को ध्यान में रखे बिना पूरी तरह से बाजार चालित विविधीकरण होता है तो खाद्य सुरक्षा के लिए संकट पैदा होने की संभावना हो सकती है। उदाहरण के लिए, खाद्य फसलों से वाणिज्यिक फसलों जैसे जैव डीजल के लिए ''जैत्रोपा'' में अंतरण खाद्य सुरक्षा को अस्त-व्यस्त कर सकता है। इसलिए कृषि विविधीकरण में सावधानी बरती जानी चाहिए।

8.6.2 धारणीय कृषि विकास के लिए प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन

यह सुविदित तथ्य है कि निवल बोआई क्षेत्रफल 142 मिली हेक्टेयर का आगे विस्तार करने की गुंजाइश बहुत कम है और कि भूमि दुलर्भता ग्रामीण अर्थव्यवस्था का गंभीर लक्षण होने वाला है। जल बहुमूल्य प्राकृतिक परिसंपत्ति है और देश में जलसंसाधनों के बारे में कई समस्याएँ हैं। इसलिए भूमि और जलसंसाधनों का विवेकपूर्ण उपयोग कृषि संवृद्धि की स्थिरता के लिए मुख्य विषय होगा। हाल ही के, वर्षों में अनुपयुक्त प्रबंधन और प्रदूषण के कारण मृदा और जल संसाधनों की बिगड़ती हुई दशाओं के बारे में चिंता बढ़ रही है। भूमि का अपकर्ष जल प्लावन और भूजल स्तर में ह्रास के रूप में हुआ है। पादप पोषक, रसायन द्रवों और समग्र प्रदूषण समस्याओं से निपटने के लिए प्रभावकारी उपाय करने में एकीकृत दृष्टिकोण अपनाना अधिक आवश्यक है। कृषि में रासायनिक द्रव्यों का प्रयोग कम करने के लिए कई संभव प्रौद्योगिकियां और विकल्प हैं। ये विकल्प रासायनिक द्रव्यों के पूर्ण प्रतिस्थानी नहीं हैं परंतु इन्हें अपनाने से पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव काफी घट सकते हैं। उपयुक्त भूमि और जल प्रबंधन नीतियाँ पर्यावरणीय निम्नीकरण कम कर सकती है। समुदाय और ग्राम संस्थाओं को प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। इसी दृष्टि से भूमि और जल संसाधनो के पुनर्जनन के कार्यक्रम सुदृढ़ करने होंगे।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

8.6.3 कृषि योजना के लिए क्षेत्र आधारित दृष्टिकोण

कृषि योजना के नये दृष्टिकोण– कृषि जलवायु क्षेत्रीय योजना (ACRP) पर 1988 में कार्य आरंभ हुआ। यह एक सकल दृष्टिकोण था जो स्पष्ट रूप से स्थानीय संसाधनों की उपलब्धता और कृषि जलवायुवीय समरूप होने की कठिनाइयों की स्वीकृति है। ACRP संसाधन आधार और विकेंद्रीकृत योजना के बीच सेतु है जिसका उद्देश्य बुनियादी संसाधनों और स्थानीय आवश्यकताओं को उचित ध्यान में रखकर स्थिरता प्राप्त करने के लिए योजना को वैज्ञानिक सहायता प्रदान करना है। यह परियोजना देश को 15 क्षेत्रों/जोनों में विभक्त कर शुरू की गयी थी। बाद में इसे 73 उपक्षेत्रों में विभक्त किया गया। इस उपक्षेत्रीय विभाजन के लिए प्रयुक्त सिद्धांत कृषि अर्थव्यवस्था के लक्षणों जैसे मृदा, जलवायु, वर्षा आदि से संबद्ध हैं।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि कृषि विविधीकरण के माध्यम से गरीबी उन्मूलन, खाद्य सुरक्षा, धारणीय/संतुलित क्षेत्रीय प्रगति जैसे कुछ राष्ट्रीय मुद्दों पर विगत में भिन्न-

भिन्न क्या उपाय किए गए, और अभी क्या किया जा रहा है। अगले भाग में हम देखेंगे, फसल विविधीकरण के पथ में विशेष रूप से क्या संरोध आते हैं।

8.7 फसल विविधीकरण : संरोध और संभावनाएँ

फसल विविधीकरण से हाल ही के वर्षों में फल और सब्जियों सहित वाणिज्यिक फसलों के अधीन क्षेत्रफल में वृद्धि हुई है। इसने पिछली दशाब्दी में अधिक गति प्राप्त की, और सब्जियों और फलों के अधीन क्षेत्रफल अधिक बढ़ा और कुछ सीमा तक वाणिज्यिक फसलों जैसे गन्ना, कपास और तिलहन में भी क्षेत्रफल में वृद्धि हुई है। फसल विविधीकरण में मुख्य समस्याओं और संरोधों के प्रभावों के अनेक स्तर हैं। ये मुख्यतया निम्नलिखित हैं :

i) देश में फसल के क्षेत्रफल का 117 मिलियन हेक्टेयर से अधिक (63 प्रतिशत) पूरी तरह से वर्षा पर निर्भर है,

ii) संसाधनों, जैसे भूमि और जल का अल्प इष्टतम और अति उपयोग ने पर्यावरण और कृषि की धारणीयता पर नकारात्मक प्रभाव उत्पन्न किए हैं,

iii) उन्नत किस्मों के बीजों और पादपों की अपर्याप्त आपूर्ति,

iv) भू-जोतों के विखंडन के भी आधुनिकरण और कृषि यंत्रीकरण पर विपरीत प्रभाव रहे हैं,

v) घटिया बुनियादी आधारभूत संरचना, जैसे ग्रामीण सड़कें, बिजली, परिवहन, संचार आदि,

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

vi) अपर्याप्त कटाईपश्च प्रौद्योगिकियों और विनाशी बागवानी उत्पादों के लिए कटाईपश्च अपर्याप्त आधारभूत संरचना,

vii) दुर्बल कृषि आधारित उद्योग,

viii) दुर्बल अनुसंधान, विस्तार और किसान अनुवर्धन,

ix) किसानों में निरंतर और बहुत बड़ी संख्या में निरक्षरता, अपर्याप्त रूप में प्रशिक्षित संसाधन,

x) फसल पादपों को प्रभावित करने वाले रोगों और कीटों की बहुतायत,

xi) बागवानी फसलों के लिए घटिया जानकारी आधार,

xii) पिछले वर्षों के दौरान कृषि में कम निवेश।

8.7.1 भूमंडलीकरण और फसल विविधीकरण

WTO के आगमन से कृषि सेक्टर का परिदृश्य बदल गया है और आगे बहुत अधिक परिवर्तन होगा। व्यापार उदारीकरण और भिन्न-भिन्न देशों के बीच कृषि उत्पादों के लिए बाजार की सुलभता ने अधिक सुदृढ़ विविधीकृत कृषि का संवर्धन अनिवार्य कर दिया है। परंतु व्यापार और विविधीकरण की कुछ सीमाएँ हैं। जिन फसलों के लिए, (विशेषकर खाद्यान्न) हमारे पर्याप्त क्षेत्र और उत्पादन उत्पादकता बढ़ाकर आयात बाजार से सुरक्षित रखना होगा। इसमें हमें एक प्रकार का तुलनात्मक लाभ रहेगा और विशाल

मात्रा में आयात से बचकर किसानों के हितों को संरक्षित किया जा सके। जो फसलें परंपरागत रूप से निर्यात की जाती हैं, जैसे बासमती चावल और गर्म मसाले, तथा अन्य मसाले, उन्हें भी क्षेत्रफल विस्तार और गुणवत्ता सुधार के अनुसार सहायता देने की आवश्यकता है। दोनों उत्पादनों के लिए अधिक अवसरों और कटाईपश्च प्रसंस्करण सुविधाएँ स्थापित करना आवश्यक है। फलों और सब्जियों के उत्पादन में त्वरित वृद्धि भी देश की जनसंख्या के उन्नत पोषण के लिए अपेक्षित है। बढ़ी हुई क्रय शक्ति के साथ उन्नत रहन-सहन स्तर से अधिकाधिक लोग पौषणिक (nutritional) और गुणवत्ता के लिए प्रयास करेंगे, जिसके लिए अधिक फसल विविधीकरण आवश्यक है। पादपरोपण फसलें, कुक्कट पालन, डेयरी, चीनी, कपास और तिलहन, (जिनमें भारत ने अपना स्थान बनाया है) इसी वर्ग में सम्मिलित हैं। कुछ ऐसे भी हैं जिनमें उनकी उभरती हुई शक्ति स्पष्ट हो रही हैं, जैसे रेशम उद्योग, समुद्री और स्थलीय मत्स्य पालन। कोई भी देश फलों, सब्जियों और पुष्पों की इतनी व्यापक श्रेणी और प्रचुरता में नहीं उगाता है जितना भारत पैदा करता है और फिर भी बागवानी उत्पादों के निर्यात में कोई उल्लेखनीय सुधार नहीं है। प्रसंस्कृत समृद्ध किस्मों को तभी बाजार में लाकर इन वस्तुओं का प्रमुख निर्यातक भारत है, अपने लोगों की स्वास्थ्य आवश्यकताओं का ध्यान रख सकते हैं।

8.7.2 उभरती हुई प्रौद्योगिकी और फसल विविधीकरण

इक्कीसवीं शताब्दी की कृषि वर्धमान रूप से किसानों के उद्यम पर निर्भर होगी। इसके लिए भूमि और उसमें किए गए निवेश से लाभ इष्टतम करने के लिए प्रौद्योगिकियों को काम में लाना आवश्यक है। जैव प्रौद्योगिकी और जेनेटिक इंजीनियरी से उत्पादकता और गुणवत्ता पर मुख्य रूप से संकेंद्रण के साथ बहुत महत्त्वपूर्ण फसलों/पादपों को उल्लेखनीय बढ़ावा मिलने की आशा की जाती है। उभरती हुई प्रौद्योगिकियों के आगमन से और बढ़े हुए आर्थिक लाभ के परिणाम की संभावना से ऐसी फसलों का सक्षम विविधीकरण भावी संभव हो सकता है। बहुत सी अन्य संबंधित प्रौद्योगिकियाँ और उनका अंगीकरण भी फसल विविधीकरण में अधिक आयाम जोड़ेगा। निर्णय सहायता प्रणालियाँ, सरकारी नीतियाँ, भौगोलिक सूचना प्रणाली, बाजार सूचना, सूचना प्रौद्योगिकी का प्रयोग आदि भी मुख्य रूप से आर्थिक आधार पर फसलों के विविधीकरण का मार्ग प्रशस्त करेंगे।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

8.7.3 फसल विविधीकरण के लिए अनुसंधान और विकास सहायता

भावी कृषि प्रचुर ज्ञान और दक्षता आधारित होगी। भूमंडलीकरण और बाजारों के खुलने से कृषि में उद्यमिता विकास के लिए अवसर अधिक होंगे। इसके लिए अनुसंधान और प्रौद्योगिकी विकास में प्रतिमान अंतरण और सफल कृषि विविधीकरण के लिए प्रौद्योगिकीय अंतरण भी आवश्यक है। अनुसंधान व्यवस्था को न केवल उभरती हुई प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में सतर्क होना होगा बल्कि दक्षताओं और मानव संसाधन विकास के लगातार उन्नयन द्वारा वैज्ञानिकों का संवर्ग भी बनाना होगा। प्रौद्योगिकियों को लोकप्रिय बनाना आवश्यक है, इसके लिए विस्तार कर्मियों को प्रशिक्षण और निपुणता देना भी आवश्यक है ताकि वे किसानों को प्रौद्योगिकी हस्तांतरण कर सकें। ज्ञान आधारित कृषि के लिए अनुसंधानकर्ताओं, विस्तार कर्मियों और किसानों के बीच अधिक से अधिक पारस्परिकता आवश्यक होगी। नवाचारी प्रौद्योगिकियों के फल जल्दी से जल्दी किसानों तक पहुंचने चाहिए और यथासंभव न्यूनतम समय में उनका व्यापक विस्तार होना चाहिए।

8.7.4 फसल विविधीकरण के लिए संस्थागत और आधारभूत संरचना विकास

फसल विविधीकरण को धारणीय और क्रियाशील रखने के लिए देश भी वर्षा पर निर्भर दो-तिहाई कृषित क्षेत्रफल के लिए संस्थागत सहायता आवश्यक है। वर्षा प्रधान खेती के किसानों का जोखिम कम करने के लिए फसल विविधीकरण भारत जैसे देश के लिए महत्त्वपूर्ण है जहां दो-तिहाई किसानों को संसाधनों का अभाव है। राष्ट्रीय कृषि अनुसंधान प्रणाली अपने फसल और पण्य वस्तुओं पर आधारित संस्थाओं, राष्ट्रीय अनुसंधान प्रबंधन आधारित संस्थाओं और राज्य कृषि विश्वविद्यालय संयुक्त रूप से फसल विविधीकरण से संबंधित समस्याओं का समाधान कर रही है। सरकार ने प्रमुख फसलों और फसलों के समूहों, जैसे तिलहन, और दलहन में से प्रत्येक के लिए फसल निदेशालय की स्थापना द्वारा प्रतिसमर्थन तंत्र भी विकसित किया है, जिसमें इन फसलों और पण्य वस्तुओं में से प्रत्येक पर उसके फोकस के रूप में प्रौद्योगिकी हस्तांतरण भी शामिल है। ये निदेशालय अनुसंधान और विकास कार्यों तथा संवर्धनात्मक कार्यों सहित प्रौद्योगिकी हस्तांतरण के लिए समन्वयकारी एजेंसी के रूप में कार्य करते हैं।

बोध प्रश्न 3

नीचे दिए गए स्थान में अपना उत्तर लगभग 50 शब्दों में लिखिए।

1) कृषि विविधीकरण के लिए दिए गए दो मुख्य दृष्टिकोण क्या थे? इनमें से कौन किसानों की ''आर्थिक क्षतियाँ न्यूनतम'' कर सकता है?

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

....

....

2) वे कौन-से दो मुख्य क्षेत्र हैं जिनमें विविधीकरण के लिए ''ठेके पर खेती'' करने पर ध्यान दिया जाना आवश्यक है?

....

....

....

....

3) रिक्त स्थान भरिए –

क) कृषि वृद्धि स्वतंत्रता पूर्व अवधि में .... प्रतिशत प्रति वर्ष से बढ़कर स्वातंत्र्योत्तर अवधि में .... प्रतिशत प्रति वर्ष हुई।

ख) कृषि वृद्धि ने गरीबी 1973-94 में .... प्रतिशत से 2004-05 में . ... तक कम करने में योगदान किया।

ग) मध्यम अवधि में अनुसरण की जाने वाली विकास रणनीति को देश की . ... सरोकार से सावधानीपूर्वक जोड़ा गया है।

घ) उचित .... और .... प्रबंधन नीतियाँ पर्यावरण ह्रास घटाने में सहायता कर सकती हैं।

ङ) ''कृषि जलवायु क्षेत्रीय योजना'' (ACRP) दृष्टिकोण .... और .... के बीच सेतु है। इसके अलावा इसके लिए प्रमुख सिद्धांत कृषि अर्थव्यवस्था, जैसे .... आदि के स्वरूप से मूलभूत रूप से संबद्ध थे।

च) भारत में कुल फसल क्षेत्रफल का .... प्रतिशत पूर्णतः मानसून पर निर्भर करता है।

छ) इक्कीसवीं शताब्दी की उभरती हुई भारतीय कृषि .... और .... मुख्य रूप से फोकस के साथ ....और .... विचारों से कृषि विविधा के लिए उल्लेखनीय प्रोत्साहन मिलने की आशा की जाती है।

8.8 कृषि विविधीकरण संवर्धन के लिए रणनीति

आधुनिक युग में कृषि विविधता कृषि विकास के लिए महत्त्वपूर्ण रणनीति है। कृषि विविधता की प्रक्रिया हरित क्रांति की आपूर्ति चालित प्रक्रिया की तुलना अधिकांशतः माँग चालित है। भारत जैसे देश में विगत की धनी किसान चालित हरित क्रांति की तुलना में भविष्य में कृषि विविधता में छोटी जोतों की अधिक बड़ी भूमिका होगी। निजी क्षेत्र की विशेषकर विपणन और प्रसंस्करण में भी अधिक सहभागिता है। उच्च मूल्य की पण्य वस्तुओं की माँग पूरी करने के लिए कृषि विविधीकरण को प्रोत्साहन संस्थाओं और निवेश की आवश्यकता है। नीतिगत सहायता के लिए दिशा और कृषि विविधता पर बल के विषय में, यद्यपि हम चर्चा पिछले भाग में भी कर चुके हैं, फिर भी एक बार फिर भारत में कृषि विविधता की रणनीति के लिए उसे एक सुझाव के रूप में दोहराते हैं–

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

1) एकीकृत नीति जैसे अनुसंधान, उत्पादन, कटाईबाद, प्रबंधन, प्रसंस्करण और विपणन आदि एक ही छत्र के नीचे होना चाहिए।

2) कृषि सेक्टर में सार्वजनिक सेक्टर के निवेश का, जिसने पिछली दो दशाब्दियों में मुख्य ह्रास देखा है, पुनः नवीकरण किया जाए।

3) एकीकृत कृषि प्रणाली पर बल दिया जाए, जिसमें सस्योत्पादन, मत्स्य पालन, बागवानी, पशुपालन, कुक्कट पालन, सुअरपालन और बकरी पालन, आदि शामिल हैं।

4) स्थान विशिष्ट विविध कृषिक प्रणाली अपनाई जाए।

5) प्रौद्योगिकीय और विस्तार सेवाओं द्वारा जल संसाधनों के संरक्षण और दक्षतापूर्वक प्रबंधन के उपाय सहज बनाए जाएं।

6) फलों और सब्जियों, पुष्प उत्पादन, मत्स्यपालन, बागवानी और पशु पालन, झाड़ के क्षेत्र में खपत की बड़ी संभावना का उपलब्ध संसाधनों के इष्टतम उपयोग के लिए काम में लाया जाए।

7) कटाईपश्च प्रबंधन, भंडारण और विपणन सुविधाओं पर बल दिया जाए। ये महत्त्वपूर्ण क्षेत्र हैं जिनमें कमज़ोरियाँ समाप्त होनी चाहिएं।

8) संस्थागत उधार की उपलब्धता का विस्तार किया जाए।

9) कृषि में युवाओं को आकर्षित कर और जुटाए रखकर कृषि विविधता को उसकी संभावित ऊँचाइयों तक ले जा सकता है। इसके लिए नीति बनाई जाए तथा पूरी गंभीरता से क्रियान्वित की जाए।

10. निर्यात समुच्चय विविधतापूर्ण और अवसरों से भरपूर है। कृषि उत्पादों के ऐसे निर्यात पर बल दिया जाए जो बढ़ने वाली कृषि विविधता को यथाविधि प्रोत्साहित कर रही है।

8.9 सारांश

फसल विविधता का अभिप्राय केवल एक ही फसल उगाने के बदले कई फसलें उगाना है। फसल विविधता के लिए इस प्रकार की युक्ति निम्नलिखित में सहायक होती है: (क) उपलब्ध भूमि, श्रम, जल और अन्य संसाधनों का बेहतर प्रयोग; (ख) फसल विफलता, उपज हानि और बाजार असफलता से उत्पन्न होने वाले जोखिमों का न्यूनीकरण; (ग) किसानों को शीघ्र नियमित लाभ प्राप्त करने में सहायता। परंतु विविधता के ये लाभ लागत के बिना नहीं हैं, जैसे (i) फसल विविधीकरण के लिए प्रत्येक किसान से प्रबंधकीय निवेश के उच्चतर स्तर की आवश्यकता होती है, और (ii) विभिन्न पण्य कृषि वस्तुओं का न्यून अधिशेष कुशल संचालन और उत्पादन के विपणन में कठिनाइयाँ उत्पन्न करता है। भारतीय कृषि में इन अंतर्निहित दुर्बलताओं को कम करने के लिए प्रभावशाली नीति और सार्वजनिक निवेश आवश्यक है। वास्तव में फसल विविधता को खाद्य/पोषण सुरक्षा, आय वृद्धि, गरीबी उन्मूलन, रोजगार पैदा करने, भूमि और जल का विवेकपूर्ण प्रयोग, धारणीय कृषि विकास और पर्यावरण सुधार के बहुउद्देश्य प्राप्त करने के लिए प्रभावशाली रणनीति के रूप में स्वीकार किया गया है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

8.10 शब्दावली

कृषि की विविधता : इसका संबंध उत्पादनकारी संसाधनों का नए कार्यों में पुनः आबंटन से है।

ऊर्ध्वाधार विविधता : अनेक फसलों की खेती द्वारा विविधीकरण। इसमें उत्पादन उपक्रम आपूर्ति श्रृंखला के भिन्न-भिन्न स्तरों में चला जाता है।

क्षैतिज विविधता : इसका संबंध कृषि व्यापार के प्रकार की विविधता से है जिसमें व्यापार उपक्रम ऐसे नए उत्पाद विकसित या अर्जित करता है जो उसके मुख्य व्यापार से भिन्न है।

8.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Anil Kumar Thakur and K. B. Padmadeo (eds.) (2008): Growth and Diversification of Agriculture, Deep, New Delhi.

P.K. Joshi, Ashok Gulati and Ralph Commings Jr (eds) (2007): Agricultural Diversification and Smallholders in South Asia, Academic Foundation, New Delhi.

World Bank, Poverty and Hunger: Issues and Options for Food Security, Washington D.C. 1998.

8.12 बोध प्रश्नों के उत्तर/संकेत

बोध प्रश्न 1

1) देखिए भाग 8.2 और उत्तर दीजिए।

2) देखिए भाग 8.3 और उत्तर दीजिए।

3) देखिए भाग 8.3 (ii) और उत्तर दीजिए।

बोध प्रश्न 2

1) (क) से (ग) : देखिए उपभाग 8.4.2 और उत्तर दीजिए।

2) देखिए उपभाग 8.4.2 और उत्तर दीजिए।

3) देखिए उपभाग 8.4.3 और उत्तर दीजिए।

बोध प्रश्न 3

1) देखिए भाग 8.5 और उत्तर दीजिए।

2) देखिए भाग 8.5 और उत्तर दीजिए।

DIKSHANT IAS

3) क) से (ग) देखिए उपभाग 8.6.1 और उत्तर दीजिए।

Call us @7428092240

   घ) देखिए उपभाग 8.6.2 और उत्तर दीजिए।

   ङ) देखिए उपभाग 8.6.3 और उत्तर दीजिए।

   च) देखिए भाग 8.7 और उत्तर दीजिए।

   छ) देखिए उपभाग 8.7.2 और उत्तर दीजिए।

इकाई 9 भारत में वानिकी : कृषि सेक्टर से संबद्धता

संरचना

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 वनों के लाभ

9.3 भारत में वानिकी का विकास

9.3.1 स्वतंत्रता पूर्व अवधि

9.3.2 राष्ट्रीय वन नीति, 1952

9.3.3 राष्ट्रीय वन नीति, 1988

9.3.4 भारत में वानिकी का बदलता हुआ स्वरूप

9.4 वन कृषि अंतःसंबद्धता

9.4.1 भूमि उपयोग स्वरूप

9.4.2 मानव पारितंत्र

9.4.3 पारिस्थितिकी पारितंत्र

9.5 सामाजिक वानिकी के प्रकार

9.5.1 फार्म वानिकी

9.5.2 विस्तार वानिकी

9.5.3 कृषि वानिकी

9.5.4 मनोविनोद वानिकी

9.6 संयुक्त वन प्रबंधन

9.7 सारांश

9.8 शब्दावली

9.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

9.10 बोध प्रश्नों के उत्तर/संकेत

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

9.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप :

- भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए वानिकी के योजनाबद्ध विकास का महत्त्व समझा सकेंगे;
- तुलनात्मक अंतर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में वानिकी में भारत की स्थिति बता सकेंगे;
- उन नीतिगत पहलुओं का वर्णन कर सकेंगे, जिन्होंने भारत में वानिकी के विकास को मूर्त रूप दिया;

- कृषि सेक्टर और वानिकी के बीच अंतः संबद्धता की रूपरेखा प्रस्तुत कर सकेंगे;
- भारत में अनुसरण की गई सामाजिक वानिकी पद्धतियों की रूपरेखा बता सकेंगे; और
- संयुक्त वन प्रबंधन (JFM) की वैकल्पिक संस्थागत क्रियाविधि की चर्चा कर सकेंगे।

9.1 प्रस्तावना

इकाई 2 में हमने देखा कि 1950 से 2008 के दौरान भारत में वनभूमि का अनुपात 1950 में 14.2 प्रतिशत से बढ़कर 2008 में 22.8 प्रतिशत हुआ। हमने यह भी देखा कि वन क्षेत्र का संरक्षण और विस्तार एक स्वस्थ पारिस्थितिकी संतुलन बनाए रखने की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। इस इकाई में हम वानिकी विस्तार से संबंधित मुद्दों पर अधिक ध्यान केंद्रित करेंगे। वनों से विभिन्न आर्थिक और अन्य लाभों की रूपरेखा से प्रारंभ करते हुए हम उन कुछ नीतियों/योजनाओं के बारे में जानेंगे जिन्हें भारत में वनों के संवर्धन के लिए क्रियान्वित किया गया है। फिर हम ''सामाजिक वानिकी'' की योजना की चर्चा करेंगे जिसे दोनों वन आवरण क्षेत्रफल विस्तार करने और जनसाधारण में तथा कुल मिलाकर संस्थाओं में ''वानिकी संस्कृति के संवर्धन'' के रूप में क्रियान्वित किया गया है। अंत में, इस दिशा में लागू किए गए संस्थागत तंत्र के नए उपाय के रूप में हम संयुक्त वन प्रबंधन के लाभ और विशेषताओं के बारे में पढ़ेंगे। परंतु इन पहलुओं का अध्ययन करने से पहले हम कुल क्षेत्रफल में विश्व में अन्य देशों की तुलना में भारत की स्थिति पर एक नज़र डालेंगे। यह तुलनात्मक संक्षिप्त विवरण भारत में वानिकी का विस्तार करने का महत्त्व समझने के लिए अपेक्षित परिप्रेक्ष्य निर्धारित करेगा।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

संयुक्त राष्ट्र के विश्व वन संसाधन आकलन (FRA 2010) रिपोर्ट के अनुसार 2010 में भारत का कुल वन क्षेत्रफल 68 मिलियन हेक्टयर (mha) था। उसके कुल भौगोलिक क्षेत्रफल (328.73mha) के अनुपात के रूप में वन आवरण का प्रतिशत 20.7 प्रतिशत है। परंतु विश्व वन क्षेत्रफल के प्रतिशत के रूप में भारत का अंश 1.7 प्रतिशत के निम्न स्तर पर है। (तालिका 9.1) फिर भी भारत विश्व के उन 10 शीर्ष देशों में है जो कुल विश्व वन क्षेत्रफल के दो-तिहाई (66.6 प्रतिशत) को अपने भूक्षेत्र में समाये हुए हैं। शेष देशों को साथ लेने पर उनका विश्व वन आवरण का एक-तिहाई अंश है। यह अपने आप ही न्यायसंगत स्थिति या उसके विश्व जनसंख्या अंश से आनुपातिक स्थान प्रदान नहीं करता, क्योंकि अधिक छोटे देशों का उनकी कुल जनसंख्या और दूसरी ओर भौगोलिक क्षेत्रफल की सीमा के अनुपात में वन आवरण अधिक हो सकता है। दूसरे शब्दों में, चूंकि राष्ट्र की कुल जनसंख्या और उनकी आवश्यकताओं से वन संसाधनों का महत्त्वपूर्ण संबंध होता है, इसलिए प्रतिव्यक्ति वन क्षेत्रफल उसकी संवेदनशीलता समझने के लिए अधिक सुसंगत सूचक है।

तालिका 9.1: वानिकी में विश्व में भारत का स्थान

देश	वन क्षेत्रफल (mha)	विश्व शेयर (%)	जनसंख्या	वन प्रति व्यक्ति (ha)
रूस संघ	809	20.1	142.9	5.66
ब्राजील	520	12.9	190.7	2.73
कनाडा	310	7.7	34.6	8.96
यू.एस.	304	7.5	312.3	0.97
चीन	207	5.1	1339.7	0.15
कांगो	154	3.8	66.0	2.33
आस्ट्रेलिया	149	3.7	22.7	6.56
इंडोनेशिया	94	2.3	237.6	0.40
सूडान	70	1.7	30.9	2.27
भारत	68	1.7	1210.2	0.06
अन्य	1347	33.4	3376.0	0.40
विश्व	**4032**	**100.0**	**6969.6**	**0.58**

नोट : ग्लोबल फोरेस्ट रिसोर्स एसेसमेंट रिपोर्ट, 2010–एफ.ए.ओ. द्वारा प्रकाशित रिपोर्ट के अनुसार उन देशों के वन क्षेत्रफल के अनुसार शीर्ष दस देश (लिंक : http://www. Tao.org/foresty/fra/enc) जनसंख्या के आंकड़ों का स्रोत विक्कीपीडिया है और आंकड़े वर्ष 2010 के हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इस तथ्य के होते हुए भी कि विश्व में शीर्ष दस देशों में भारत का स्थान है, भारत की स्थिति निराशाजनक है। यद्यपि इस संबंध में विश्व अनुपात 0.58 हेक्टेयर है। (शीर्ष 10 को छोड़कर शेष देशों का तद्नुरूपी अनुपात भी 0.40 हेक्टेयर है)। भारत के लिए यह निम्नतम 0.06 हेक्टेयर पर है। स्पष्टतः विश्व जनसंख्या के 17.4 प्रतिशत के अंश से भारत का वन आवरण अंश इतना कम है कि अन्य देशों के तुल्य अनुपातों के समीप कहीं भी नहीं ठहरता है। देश में बहुत अधिक जनजाति जनसंख्या भी है जो वनों के किनारों में वास करती है और उसके संसाधनों पर ही अपना जीवन निर्वाह करती है। इन सभी कारकों को जानते हुए भारत सरकार ने अपने कुल भूमि क्षेत्रफल के 33 प्रतिशत तक कुल वन आवरण बढ़ाने का लक्ष्य निर्धारित किया था। यह लक्ष्य 1952 की देश की पहली राष्ट्रीय वन नीति द्वारा निर्धारित किया गया था। लगभग 2010 तक 21 प्रतिशत की उपलब्धि अभी तक उस लक्ष्यों की प्राप्ति में त्रुटि का द्योतक है। GDP में वानिकी का योगदान भी 1950-60 में लगभग 2 प्रतिशत से घटकर 2000-08 में 0.9 प्रतिशत रह गया। हाल ही के समय में वनों का महत्त्व न केवल उसके आर्थिक योगदान से देखा जा रहा है बल्कि पर्यावरणीय और पारिस्थतिकी पहलुओं से भी देखा जाता है। फिर भी, GDP में वानिकी का ह्रासमान अंश भारत में इस सेक्टर को दी गई सापेक्ष निम्न प्राथमिकता दिखाती है। यह इस कारण से भी है कि इन दिनों ''हरित क्रांति'' को महत्त्व दिया गया है। परंतु इस निराशाजनक परिदृश्य में एक आशा की किरण है। वन आवरण में वार्षिक निवल उपलब्धि के आधार पर GDP 2010 रिपोर्ट के अनुसार, भारत ने अपनी स्थिति में सुधार किया है, 1999-2000 के दौरान इसका पाँचवाँ स्थान था अब 2000-10 के दौरान तीसरा स्थान है। पहली अवधि में 0.22 प्रतिशत से वार्षिक निवल उपलब्धि की तुलना में दूसरी अवधि में 0.46 प्रतिशत हुई। यह हाल ही के वर्षों के दौरान देश की स्थिति दर्शाता है। कुछ ऐसे देश भी हैं जो अपना वन आवरण बढ़ाने में विफल प्रायः रहे हैं। परंतु अंतिम दशाब्दी में प्राप्त वनों की वृद्धि की अपेक्षाकृत उच्च दर बनाए रखना या 2012 तक 33 प्रतिशत वन आवरण प्राप्ति एक वास्तविकता का रूप नहीं ले सकती है।

9.2 वनों के लाभ

भाग 9.1 में हमने वनों के दो सामान्य लाभों का उल्लेख किया है। अर्थात् (i) पारिस्थितिकीय संतुलन बनाए रखने में उसकी उपयोगिता, और (ii) वनों में और उसके इर्द-गिर्द रहने वाले गरीब जनजाति के लोगों की आजीविका के लिए संसाधन प्रदान करना। उदाहरण के लिए, वे विभिन्न उद्योगों, जैसे रेलवे, रक्षा, निर्माण कार्य, हस्तकला और घरेलू प्रयोग के लिए कच्चा माल प्रदान करते हैं। इसके माध्यम से वे रोज़गार भी पैदा करते हैं और देश के निर्यात में योगदान करते हैं। वनों से विभिन्न लाभों को विकल्पतः निम्न प्रकार सामान्य समूहों में वर्गीकृत किया जा सकता है।

i) **स्वच्छ वायु का उत्पादन, ऊर्जा का उत्पादन और वर्षा को प्रेरण** : वन आक्सीजन पैदा करते हैं, पर्यावरण प्रदूषण रोकते हैं, वन्य जीवों और पक्षियों को आश्रय देते हैं और देश की सुन्दरता बढ़ाते हैं। प्रकाश संश्लेषण द्वारा वे सौर ऊर्जा को विभिन्न प्रकार की ऊर्जा जैसे भोजन और ईंधन में बदलते हैं। यह अनुमान लगाया गया है कि भारत जैसे अल्प विकसित देशों में हमारी कुल ऊर्जा आवश्यकताओं का लगभग 40 प्रतिशत वनों से मिलता है। वे वायु मंडल की नमी को बदलकर अपने प्रभाव से वर्षा लाने में सहायता करते हैं। इसलिए सभी को साथ मिलाएं तो लाभ वनों के पर्यावरणीय लाभ के अधीन सम्मिलित किए जा सकते हैं।

ii) **मृदा अपरदन निवारण और नमी धारण** : वन मृदा में और वायु मंडल में भी नमी धारण तथा मृदा अपरदन निवारण में उपयोगी है। वे क्षेत्र को बंजर भूमि बनने से रोकने में भी उपयोगी होते हैं और वर्षा ऋतु के दौरान बाढ़ रोकने में खासतौर पर उपयोगी होते हैं। इन लाभों को वनों के जलीय लाभ कहा जाता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

iii) **जनजाति के गरीबों की आय और आजीविका आवश्यकताओं का स्रोत प्रदान करना** : यह अनुमान लगाया गया है कि मनुष्यों के उपयोग के लिए अति आवश्यक ईंधन लकड़ी की आपूर्ति करने के अलावा पशुओं की चारा आवश्यकताओं का 30 प्रतिशत की आपूर्ति वन करते हैं। विशाल मात्रा में लघु वन उत्पादों (MFP) की आपूर्ति वनों से होती है और उनके इर्द-गिर्द रहने वाले बहुत से कबीलों के रोज़गार और आय के स्रोत भी वन हैं। इस प्रकार वन गरीबों की आय और आजीविका के स्रोत और पशुओं के खाद्य का मुख्य स्रोत है।

iv) **औषधीय पादप और आर्थिक महत्त्व की अन्य किस्में** : यह अनुमान लगाया गया है कि औषधीय सामग्रियों की आवश्यकता का लगभग 40 प्रतिशत जंगली पौधों, पशुओं, सूक्ष्म जीवों आदि से प्राप्त सक्रिय संघटक होते हैं। ये वनों में स्वतंत्र रूप से उगते हैं और रहते हैं। वनों से मनुष्य जाति के यह लाभ प्राप्त करने में वनों को विश्व का प्राकृतिक ''विशाल रासायनिक कारखाने'' के रूप में वर्णित किया गया है। वनों के परंपरागत उत्पादों में निर्माण सामग्री, फर्नीचर और ग्रामीण ऊर्जा की आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए काष्ठ और ईंधन लकड़ी भी शामिल है।

v) **मनोरंजनात्मक और राजस्व लाभ** : वनों को वन्य जीव अभयारण्य और नेशनल पार्क जैसे मनोरंजनात्मक स्थल स्थापित करके शहरी जनसमुदाय से प्रभावकारी

अंतर संबंध उत्पन्न करने के लिए प्रयुक्त किए जा सकते हैं। राजस्व उत्पन्न करने के अलावा वे लोगों में, विशेषकर बच्चों में, वन्यजीव संरक्षण के बारे में जागरूकता उत्पन्न करने में सहायता करते हैं। हम बाद में ''सामाजिक वानिकी'' के अधीन इस लाभ पर विस्तार से पढ़ेंगे।

उपर्युक्त लाभों के प्रकाश में वन विकास और विस्तार में निवेश निःसंदेह युक्ति संगत है। शहरी क्षेत्रों में मानव निर्मित कंक्रीट के जंगल की तुलना में प्राकृतिक वनों का वर्णन ज्ञान और शांति के भंडार के रूप में किया जाता है। सरकार के सक्रिय नीति उपायों से वन क्षेत्र कैसे व्यायिग्रस्त हुआ है? अब हम अगले अनुभाग में वनों के संवर्धन के नीतिगत आयामों की संक्षिप्त समीक्षा करेंगे।

बोध प्रश्न 1

1) आप भारत में कुल वन आवरण का वर्तमान प्रतिशत किस श्रेणी में रखेंगें : (क) 20-25 प्रतिशत, (ख) 25-30 प्रतिशत, (ग) 30-35 प्रतिशत।

....

....

....

....

2) विश्व वानिकी आवरण में भारत का अंश क्या है : (क) 1.1 प्रतिशत, (ख) 1.4 प्रतिशत, (ग) 1.7 प्रतिशत, (घ) 2 प्रतिशत।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

....

....

3) मानव जाति के लिए वनों के छह लाभ बताइए।

....

....

....

....

9.3 भारत में वानिकी का विकास

भारत में 19वीं शताब्दी से ही विधायी और अन्य उपायों द्वारा वनों का विकास हुआ है। इन्हें स्वतंत्रता से पहले की अवधि और स्वतंत्रता के बाद की अवधि के अधिनियमों तथा उपायों के अधीन वर्गीकृत किया जा सकता है। यद्यपि स्वतंत्रतापूर्व पहल कार्यों में तकनीकी प्रशासन और वनों के प्रबंधन के लिए आधार स्थापित हुआ गया था, स्वातंत्र्योत्तर पहल कार्यों में राष्ट्रीय उद्देश्य प्राप्त करने के लिए उन्हें पुनः सक्रिय किया गया।

9.3.1 स्वतंत्रता पूर्व अवधि

ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन काल के दौरान भारतीय वनों का व्यापक वाणिज्यिक दोहन किया गया। परंतु शीघ्र ही यह महसूस किया गया कि यदि वनों के संरक्षण और पुनर्जनन संवर्धन के उपाय आरंभ नहीं किए जाते हैं तो ये विनाश अस्थिरता के मोड़ पर ले जाएगा। **पहला**, भारतीय वन अधिनियम 1865 में पारित किया गया था। अधिनियम ने वनों को दो श्रेणियों अर्थात् परिरक्षित और रक्षित में वर्गीकृत किया। वर्ष 1866 में देश में वन संसाधनों की रक्षा करने के उद्देश्य से वन विभाग बनाया गया। 1878 में 1865 के अधिनियम को संशोधित कर वनों का तीन श्रेणियों में, अर्थात् (i) आरक्षित वन; (ii) रक्षित वन; और (iii) ग्राम वन में वर्गीकरण किया गया। उसी वर्ष पहला वन विद्यालय (फॉरेस्ट स्कूल) देहरादून में प्रारंभ किया गया। वन अधिकारियों की भर्ती के लिए 1891 में प्रांतीय वन सेवा प्रारंभ की गई। 1894 में सरकार ने करदाताओं को लाभ प्रदान करने का उद्देश्य पूरा करने और वनों के समीप और उसके अंदर रहने वाले लोगों के लाभ विनियमित करने के लिए राज्य की संपत्ति के रूप में वनों का प्रशासन किए जाने की घोषणा करते हुए अधिसूचना जारी की। 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध की अधिकांश अवधि के इन विकास कार्यों का यह समय भारत में वैज्ञानिक वानिकी का ऊषा काल सिद्ध हुआ। इन अवधि के दौरान वानिकी की व्यवस्था, उसके प्रबंधन के मूल में स्थायी उपज सिद्धांत के साथ वाणिज्यिक आधार पर की गई। वन कार्य योजना तैयार करने की पद्धति, मंडल (वन प्रशासन की इकाई) में समस्त वन शामिल करते हुए [10 से 15 वर्ष की मध्यम अवधि योजना], वन प्रबंधन और विकास के तकनीकी तथा आर्थिक पहलू स्पष्ट करते हुए वनों के प्रबंधन के लिए लागू की गई थी। इन संस्थागत तंत्रों की स्थापना ने तकनीकी आधार पर वन प्रबंधन सुव्यवस्थित करने के लिए मार्ग प्रशस्त किया। परंतु काष्ठ का निष्कर्षण वनों का मुख्य कार्य माना गया था। इन सभी प्रयोगों में रक्षा प्रयोग के लिए काष्ठ के निष्कर्षण को प्राथमिकता दी गयी।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

1921 में वन प्रांतीय विषय बनाए गए। काफी सीमा तक इससे वन प्रशासन का राष्ट्रीय स्वरूप का ह्रास हुआ। भारत वन अधिनियम, 1927 [जिसने चौथी श्रेणी अर्थात् गैर-सरकारी (निजी) वन वर्गीकृत किया, पहले केवल तीन वर्गीकरण थे] के पुनः अधिनियमन के बाद 1878 का पिछला अधिनियम ''पुरानी वननीति'' के नाम से उल्लेख किया जाने लगा। 1927 के नए अधिनियम के अधीन आरक्षित वनों में वृक्षों का अनधिकृत पातन, खदान, चराई और आखेटन जुर्माना और कारावास सहित दंडनीय बनाया गया था। कार्य योजना पर आधारित वैज्ञानिक वन प्रबंधन की पद्धति काटे जाने वाले वृक्षों के अंकन के लिए न्यूनतम घेर, प्रति हेक्टयर काटे जाने वाले वृक्षों की संख्या आदि पर निर्धारित दिशा-निर्देश जारी हुए। इस तरीके में वन का प्रबंधन द्वितीय विश्व युद्ध तक जारी रहा। दो विश्व युद्धों, विशेषकर द्वितीय, से वन प्रबंधन में पिछले दशकों में की गई प्रगति को बहुत हानि पहुंची। युद्ध अवधि के दौरान तारकोल उत्पादन बढ़ाया गया और वन आधारित उद्योग काफी संख्या में उत्पन्न हुए। सड़कें बनाने और रेल लाइनें बिछाने के लिए वन काटे गए। वनों से काष्ठ व्यापक रूप से काष्ठ के स्लीपर बनाने में प्रयोग किया गया। कार्य योजना के विनियम की उपेक्षा की गई और टिकाऊ उपज सिद्धांत का अनुपालन नहीं किया गया। काष्ठ का अतिदोहन और खराब पुनर्जनन के परिणामस्वरूप सरकारी और निजी क्षेत्रों के स्वामित्व/नियंत्रण के अधीन वन क्षेत्र की क्षति हुई। वानिकी प्रबंधन संवर्धन के लिए आगे विकास मुख्यतया स्वातंत्र्योत्तर वर्षों में ही दिखाई पड़ता है।

9.3.2 राष्ट्रीय वन नीति, 1952

पहली राष्ट्रीय वन नीति (NFP) स्वातंत्र्योत्तर अवधि में 1952 में बनाई गई थी। इसमें यह भी स्वीकार किया गया कि पुरानी वन नीति के बहुत से प्रावधान अच्छे थे और इसलिए उन्हें जारी रखा जाना चाहिए। पहली राष्ट्रीय वन नीति ने पुरानी वन नीति के अधिकांश तत्वों को रखा, परंतु कुछ परिवर्तनों का समावेश किया, जो मध्यवर्ती समयावधि में परिवर्धनों के कारण आवश्यक हो गए थे। उदाहरण के लिए, सबसे अधिक विशेष रूप से, नई नीति ने वनों की कटाई से कृषि योग्य भूमि के अन्धाधुंध विस्तार को हतोत्साहित किया। इस उद्देश्य के लिए उनके प्रकार्यात्मक मानदंड पर आधारित नए अधिनियम द्वारा किया गया पुनः वर्गीकरण उल्लेखनीय है। पुनःवर्गीकरण द्वारा निर्धारित वनों की किस्में हैं, जैसे (i) रक्षित वन, (ii) राष्ट्रीय वन, (iii) ग्राम वन, और (iv) वृक्ष भूमि। संतुलित और संपूरक भूमि प्रयोग पर आधारित प्रणाली विकसित करने पर बल देते हुए नीति ने निम्नलिखित जोर दिया :

i) ''स्थानांतरी कृषि'' पद्धति के हानिकारक तत्वों से जनजाति के लोगों को अवगत कराना। (यह ऐसा तरीका है जिसमें वन के क्षेत्र का पातन किया जाता है और जलाया जाता है ताकि साफ की गई भूमि पर फसलें उगाई जा सकें);

ii) सभी रैकों के वन कर्मियों को अपेक्षित प्रशिक्षण देना;

iii) वन कानूनों में पर्याप्त प्रावधानों की व्यवस्था कर वन प्रशासन की क्षमता बढ़ाना;

iv) वनों में पशु चराई नियंत्रित करना; और

DIKSHANT IAS

v) वानिकी और वन उत्पाद उपयोग में अनुसंधान प्रोत्साहित करना।

Call us @7428092240

इस प्रकार NFP-1952 ने उपलब्ध वन भूमि के इष्टतम प्रयोग पर बल दिया। जबकि उसने (मृदा अपरदन रोकने, बाढ़ नियंत्रण और देश की भौतिक और जलवायु संतुलन संवर्धन में उनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका को ध्यान में रखकर) रक्षित वनों के संवर्धन पर विशेष ध्यान दिया। नीति ने सरकारी, सार्वजनिक और निजी एजेंसियों के स्वामित्व की भूमि में वृक्ष आवरण के विस्तार पर भी बल दिया।

9.3.3 राष्ट्रीय वन नीति, 1988

पहली राष्ट्रीय वन नीति के अधिनियम और 1980 के दशक की मध्यवर्ती अवधि के दौरान दूरगामी परिवर्तन हुए जिनका भारत में पर्यावरण संबंधी स्थिरता और पारिस्थितिकी संतुलन पर प्रतिकूल प्रभाव रहा। इसके अतिरिक्त बड़े परिवर्तनों में एक जो इस दौरान हुआ, वह 1976 में भारत के संविधान का 42वां संशोधन अधिनियम था जिसने एक बार फिर वानिकी को ''समीवर्ती सूची'' में रख दिया। वनों के संरक्षण और विकास का राष्ट्रीय स्वरूप पुनर्स्थापित करने के अलावा, इस संशोधन (प्रविष्टि सं. 48A) में राज्य से वनों और वन्य जीवों का संरक्षण कर पर्यावरण की रक्षा करने तथा सुधारना अपेक्षित है। इसके अलावा, एक अन्य खंड (प्रविष्टि सं. 51क) द्वारा संशोधन सभी नागरिकों के लिए वन जीवों सहित प्राकृतिक पर्यावरण संरक्षित करना और सुधारना अनिवार्य बनाता है। इन परिवर्तनों को ध्यान में रखते हुए 1988 का NFP अपने उद्देश्यों में निम्नलिखित पर बल देता है :

i) विद्यमान वनों और वन भूमि का संरक्षण;

ii) पहाड़ी ढलानों/नदियों/झीलों/जलाशयों/समुद्र तटों और अर्धशुष्क, शुष्क और मरुस्थल स्थानों पर वन और वनस्पति आवरण में वृद्धि करना;

iii) अच्छी और उत्पादनकारी कृषि भूमि के वानिकी में परिवर्तन को हतोत्साहित करना;

iv) सड़कों, रेलवे लाइनों, नदियों/सरिताओं/नहरों और संस्थागत या निजी स्वामित्व के अधीन अन्य अनुप्रयुक्त भूमि के किनारे वनरोपण प्रोत्साहित करना; और

v) शहरी और औद्योगिक क्षेत्रों में हरित पट्टियाँ बढ़ाना।

9.3.4 भारत में वानिकी का बदलता हुआ स्वरूप

योजना युग के प्रारंभ में वानिकी का महत्त्व मुख्यतया वाणिज्यिक था। मुख्य उद्देश्य वन आधारित उद्योगों को कच्चे माल की आपूर्ति करना था। बाद के वर्षों में, खासतौर पर 1988 के बाद, सामाजिक और आर्थिक लाभ के अलावा पारिस्थितिक और पर्यावरण संबंधी लाभ की ओर ध्यान अंतरित हुआ है। यद्यपि राष्ट्रीय लक्ष्य कुल भूमि क्षेत्रफल का एक-तिहाई और पहाड़ी/पर्वतीय क्षेत्रों में क्षेत्रफल का दो-तिहाई भाग वन के अधीन लाना था। इस उद्देश्य के लिए सभी निम्नीकृत और अनाच्छादित भूमि पर वनीकरण और वृक्ष रोपण का राष्ट्रीय समयबद्ध कार्यक्रम राष्ट्रीय उद्देश्य के रूप में अंगीकार किया गया था। नीति के लिये यह भी अपेक्षित था कि निर्माण की सभी परियोजनाओं जैसे बांधों/जलाशयों, खनन, औद्योगिक विकास आदि को जिनमें वन भूमि का अंतरण अंतर्निहित हो, पुनः वनीकरण द्वारा आनाच्छादित भूमि के पुनर्जनन के लिए अपने निवेश बजट में व्यवस्था करनी चाहिए। वनों के द्विवार्षिक मानचित्रण की पद्धति (उपग्रह द्वारा चाक्षुष विश्लेषण तकनीक की दूरवर्ती संवीक्षण प्रौद्योगिकी का प्रयोग करके) भारतीय राष्ट्रीय वन सर्वेक्षण (1981 में स्थापित) द्वारा भी इस संबंध में की गई प्रगति के निगरानी के लिए लागू किया गया था। वन आवरण विस्तार की योजनाओं के संवर्धन के लिए दो अन्य संस्थाओं, **राष्ट्रीय बंजर भूमि विकास बोर्ड** (NWDB) और **राष्ट्रीय वनीकरण और पारि विकास बोर्ड** (NAEB) की स्थापना 1980 के दशक के बाद के प्रमुख विकास कार्य हैं। बहुत सी योजनाएँ जैसे (i) एकीकृत वनीकरण और पारि विकास परियोजना (IAEP); (ii) ईंधन लकड़ी और चारा परियोजना योजना; (iii) गैर-काष्ठ वन उत्पाद योजना; (iv) बीज विकास योजना; (v) राष्ट्रीय वनीकरण कार्यक्रम आदि देश में वन आवरण बढ़ाने के लिए क्रियान्वित की गई है। राष्ट्रीय वानिकी कार्य योजना (NFAP) नाम की कार्य योजना 1999 में प्रारंभ की गई जिसका उद्देश्य 2007 तक भूमि क्षेत्रफल का 25 प्रतिशत और 2012 तक 33 प्रतिशत वन आवरण के अधीन लाना है। परंतु जैसाकि पहले उल्लेख किया गया है, 2011 के अंत तक यह उपलब्धि लगभग 22 प्रतिशत ही रही है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न

1) भारत में स्वतंत्रता पूर्व अवधि के दौरान कितनी वननीतियाँ अधिनियमित हुई हैं – (क) एक; (ख) दो; (ग) तीन; (घ) चार।

2) राष्ट्रीय वन नीति, 1952 के कोई तीन उद्देश्य बताइए?

....

....

....

....

3) राष्ट्रीय वन नीति, 1988 के अधिनियम से पहले हुआ ऐतिहासिक महत्त्व का मुख्य परिवर्तन क्या था? इस संबंध में हमारे निर्देशक सिद्धांतों में कौन से दो मुख्य खंड सम्मिलित किए गए थे?

....

....

....

....

....

4) क्या आप कहेंगें कि स्वतंत्रता के बाद भिन्न-भिन्न नीति घोषणाओं द्वारा वन आवरण प्राप्त करने के लक्ष्य प्राप्त हुए हैं? लगभग 40 शब्दों में स्पष्ट कीजिए।

....

....

....

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

9.4 वन कृषि अंतःसंबद्धता

वन शब्द का प्रयोग परंपरागत दृष्टि से केवल भूमि के विशाल क्षेत्र पर व्यापक रूप से फैली हुई प्राकृतिक वनस्पति के लिए प्रयुक्त किया जाता है। यह 'बीहड़'' की दृष्टि से प्रयोग किया जाता है जिसका अभिप्राय बहुत से वन्य पशुओं के लिए उनके प्राकृतिक वास के रूप में आश्रय देने वाली वनस्पति वृद्धि की प्रचुरता है। परंतु घटते हुए वन क्षेत्रफल के संदर्भ में उसकी वृद्धि की विस्तार करने की आवश्यकता महसूस की गई। 'वृक्ष फसल' नाम की मानव निर्मित खेती शामिल करने के लिए प्राकृतिक विशेषता का विस्तार किया गया। दूसरी ओर, शब्द कृषि का संबंध भी केवल फसल की खेती से भी आगे खेती के व्यापक रूप से है। इस विस्तारित रूप में पशुप्रजनन, मत्स्य पालन, वानिकी, डेयरी-फार्मिंग आदि शामिल हैं। वन की क्षति बहु आयामी तरीकों से महसूस की जाती है : (i) जैव विविधता की क्षति; (ii) पारिस्थितिकी असंतुलन; और (iii) पर्यावरण ह्रास। इस क्षति को कम करने के लिए सवंर्धित वानिकी की पद्धति में गैर-वन भूमि, गांव की सांझी भूमि और निजी भूमि जैसे क्षेत्रों में कृषि कार्य करना शामिल है। इस प्रकार, वानिकी के तरीकों में कृषि संपूरक है : (i) पारिस्थितिकीय रूप से मृदा, मृदा पोषक तत्वों, मृदा में आर्द्र की मात्रा और सूक्ष्म जलवायु के विनियमन के तरीके; और (ii) अल्पबेरोज़गार ग्रामीण युवाओं तथा जनजाति मानव शक्ति का कुशल उपयोग द्वारा आर्थिक रूप में हम इस कृषि-वन अंतरापृष्ठ को तीन कोणों से सविस्तार प्रतिपादित कर सकते हैं, अर्थात् (क) भूमि उपयोग स्वरूप, (ख) मानव पारितंत्र, और (ग) पारिस्थितिकीय पारितंत्र।

9.4.1 भूमि उपयोग स्वरूप

भूमि कृषि और वानिकी दोनों के लिए प्राथमिक आवश्यकता है। क्लासिकी विधियाँ, जैसे स्थानांतरी खेती, वानिकी की भूमि का प्रयोग कृषि कार्यों के लिए करती हैं। परंतु ''सामाजिक वानिकी'' की आधुनिक पद्धति के अधीन वृक्ष, फसलें, गैर वन क्षेत्रों जैसे निजी भूमि और संस्थागत परिसरों में उगाई जाती हैं। इसलिए इस प्रक्रिया में वानिकी के लिए स्थान बनाने में कृषि का महत्त्व है। इस प्रकार, कृषि वानिकी संभावनाओं की श्रेणी प्रचलन में आई हैं जिसमें उभयनिष्ट उद्देश्य है : (i) पारिस्थितिकी का संरक्षण करना; (ii) भूमि उपयोग इष्टतम करना; (iii) बाहरी कारकों, जैसे हवा और बहते जल से क्षति होने से बचाना; और (iv) स्थान/भूमि का सौंदर्य महत्त्व सुधारना। इस प्रकार वृक्ष, फसलें और पशुधन का सहनिर्वहन संभव हुआ है। सहजीवी रूप में पारितंत्र के इष्टतम उपयोगिता और संरक्षण के लिए एक-दूसरे के संपूरक हो रहे हैं।

9.4.2 मानव पारितंत्र

कृषि श्रमिकों का बहुत बड़ा भाग छोटे और सीमांत किसानों का समुदाय है। वे अपनी आय और आजीविका आवश्यकताओं के लिए वन संसाधनों, जैसे काष्ठ, MFP और बहुत से गैर-काष्ठ वन उत्पादों (जैसे औषधीय पादप, शहद, मसाले, रेजिन, बीज, गिरीदार फल आदि) पर निर्भर रहते हुए वनों के अंदर या किनारों पर रहने वाले जनजाति समुदाय के भी है। कृषि न केवल वन आधारित जनजाति जनसंख्या के लिए ऋतुनिष्ठ कार्य है बल्कि अधिकांश अन्य के लिए भी है। पादप रोपण और वन विभागों द्वारा आरंभ किए अन्य विकास कार्यों के माध्यम से मंदी के समय वन उनकी सहायता करते हैं। वनों में और अन्यत्र वृक्षों के मुख्य गौण उत्पादन ईंधन लकड़ी, ग्रामीण क्षेत्रों में भोजन पकाने और गर्मी के लिए ईंधन का सबसे बड़ा स्रोत है। यह इन कारणों की दृष्टि से है कि वन सदैव मानव पारितंत्र के अभिन्न अंग रहे हैं। वनों की संभावना पर काम करने से गांवों से शहरों में प्रवासन रोकने का उपयोगी पक्ष भी है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

9.4.3 पारिस्थितिकी पारितंत्र

वन निम्नलिखित द्वारा जैव विविधिता बनाए रखते हैं : (i) ग्लोबल वार्मिंग (भूमंडलीय तापन) कम करना; (ii) आक्सीजन और कार्बन डाईऑक्साइड अनुपात संतुलित करना; (iii) वर्षण बढ़ाना और वर्षा उत्पन्न करना; और (iv) वायु ठंडी और स्वच्छ रखना। जल अपवाह को धीमा करने, वर्षा वितरित करने, मृदा अपरदन रोकने, वायु क्षति कम करने और जल आपूर्तियों का संरक्षण करने में वनों की भूमिका, लकड़ी या अन्य वस्तुओं उत्पाद की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण है। कृषि उत्पादन और वृद्धि पर इन सभी कारकों का संचयी प्रभाव वस्तुतः अमापनीय है। पारिस्थितिकीय प्राचलों पर वनों का सकारात्मक प्रभाव सदा अत्यन्त सुसंगत का रहा है। इसे पहले की अपेक्षा हाल ही में हुए अंधाधुध औद्योगिक और शहरी विस्तार जैसे कारकों द्वारा उत्पन्न पारितंत्र की क्षति के कारण अधिक अनुभव किया जा रहा है।

9.5 सामाजिक वानिकी के प्रकार

मानव जनसंख्या से दबाव बढ़ने के फलस्वरूप प्राकृतिक वन समाप्त हो रहे हैं। इसलिए राष्ट्रीय कृषि आयोग (1976) ने सामाजिक वानिकी की अवधारणा के लिए अंतरिम

सिफारिश की। अवधारणा में मुख्तया समस्त उपलब्ध भूमि पर, (विशेषकर परंपरागत वन क्षेत्रों के बाहर) वृक्ष और अन्य वनस्पति उगाने की संकल्पना की ताकि भूमि उपयोग संतुलित रखा जा सके। इसका उद्देश्य वनों से अधारणीय निकासी भी न्यूनतम करना है। कृषि वानिकी को सामाजिक वानिकी का अभिन्न अंग रखा गया था और इस प्रकार खाद्यान्न फसलों का उत्पादन भी रखा गया। योजना का उद्देश्य न केवल ग्रामीण गरीबी का उन्मूलन करना था बल्कि समग्र रूप में समाज की सामाजिक-आर्थिक दशाएँ सुधारना भी था। इस दृष्टिकोण के पीछे बुनियादी उद्देश्य वनों पर दबाव न्यूनतम करने के लिए अकृष्य भूमि पर ईंधन-खाद्य-चारा उत्पादन करना था। सामाजिक वानिकी के अन्य उद्देश्य निम्नलिखित थे :

- गोबर के स्थान पर ग्रामीण क्षेत्रों में ईंधन लकड़ी आपूर्ति मुहैया कराना क्योंकि गोबर का बेहतर उपयोग खाद के रूप में हो सकता है;
- शहरी निर्माण आवश्यकताओं के लिए काष्ठ के अलावा, ग्रामीण आवास और कृषि औजारों के लिए छोटी काष्ठ आपूर्ति करना;
- पशुओं को हरा चारा मुहैया करना; और
- वायु और वन्य पशुओं से कृषि क्षेत्रों की रक्षा करना। इसका प्रयोग सड़कों, स्कूल के मैदानों, सामुदायिक भवनों, ग्राम की सामान्य पूर्ति और गांव के प्रवेश मार्गों के साथ-साथ शहरी और ग्रामीण दोनों क्षेत्रों में किया जाना था। इस व्यवस्था के अंतर्गत कृषि के भिन्न-भिन्न रूपों को सम्मिलित किया जाना था, जैसे (i) फार्म वानिकी; (ii) विस्तार वानिकी; (iii) कृषि वानिकी; और (iv) मनोविनोद वानिकी।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

9.5.1 फार्म वानिकी

फार्म वानिकी का संबंध मुख्यतया नकदी फसल के रूप में अलग-अलग किसानों द्वारा अपनी खेत भूमि पर वृक्षों को उगाने से है। खेतों और ग्राम भूमि पर वानिकी से अन्य कार्यों को जोड़ने के माध्यम के रूप में इसकी संकल्पना की गई थी। इसके क्रियान्वयन के लिए आकर्षण सामान्यता उन धनी किसानों तक रहा जिनके पास लंबी-चौड़ी ज़मीन थी और अन्य अवधि की प्रजातियों से लाभ प्राप्त करने के बेहतर संसाधन थे। फिर भी, अपेक्षाकृत कम संसाधन युक्त गरीब किसानों के लिए अल्प निवेश से भी आकर्षक लाभ प्राप्त करने की गुंजाइश थी। इस व्यवस्था के अधीन यूक्लिपटस जैसी प्रजातियों को उगाने के लिए परिवर्ती ''परिधीय पादपरोपण'' अपना गया ताकि किसानों की तात्कालिक आवश्यकता को पूरा करने के लिए पूरक आय मुहैया हो सके। परिधीय पादपरोपण के लिए कम प्रबंधकीय दक्षता और स्थान की आवश्यकता कम होने की आशा की जाती है। इसलिए यह छोटे किसानों के लिए अधिक उपयुक्त है। इसके समानांतर विशाल भूमि का स्वामित्व होने के कारण धनी किसानों के लिए ''खंड पादपरोपण'' है। इस शब्द का अभिप्राय परिपक्वता की लंबी अवधि के वृक्षों का रोपण है।

9.5.2 विस्तार वानिकी

इस व्यवस्था में गांव की सामान्य पंचायत भूमि सहित उपयुक्त बंजर भूमि पर ध्यान देने और पत्तीदार चारा और फल उगाने जैसे मिश्रित वानिकी प्रथा की संकल्पना की गई है। निम्नीकृत वनभूमि का नवनीकरण, रेलवे लाइनों, नहर और नदी के किनारे

तेज़ी से बढ़ने वाले वृक्षों का रोपण, आदि भी विस्तार वानिकी का भाग है। ये कार्य प्रायः सरकारी विभागों, NGOs, ग्राम समुदाय आदि द्वारा सरकारी वित्तीय सहायता या बाहरी वित्त पोषण स्रोतों की सहायता से किए जाते हैं। लाइनों (जैसे रेलवे लाइन, सड़कों के किनारे, नदी के तट, आदि) या भूमि की पट्टियों में प्लांटेशन की गुंजाइश ध्यान में रखते हुए विस्तार वानिकी के परिवर्ती के रूप में भी शब्द ''पट्टी पादपरोपण'' प्रचलित है। पट्टी पादपरोपण का उद्देश्य था : (i) यात्रियों को छाया प्रदान करना; (ii) सड़कों, रेलवे लाइनों और नदी तटों की शोभा बढ़ाना; (iii) ईंधन लकड़ी और चारा की आपूर्ति बढ़ाना; और (v) पारिस्थिति की संतुलन और ग्रीनहाऊस प्रभाव नियंत्रित रखना।

9.5.3 कृषि वानिकी

फसल और वानिकी में अंतरापृष्ठ है। आजकल वानिकी और कृषि उसी भूमि पर की जा रही है। यह कृषि वनवर्धन के अधीन आने वाले बहुत या मिश्रित फसल स्वरूप की अवधारणा है। भारत जैसे शीतोष्ण देश के लिए मृदा अपरदन नियंत्रण करने, मृदा पोषण तत्व और कूड़ा-करकट आदि गिरने से उर्वरता समृद्ध करने में इसकी क्षमता ध्यान में रखते हुए इसका विशेष नाम है। इस व्यवस्था में मुख्य विचारों में एक मृदा और कृषि जलवायु दशाओं की स्थानीय किस्म के समरूप जातियों की पहचान करना है। इसलिए उन प्रजातियों को उचित महत्त्व दिया जाता है जो स्थानीय दशाओं के अनुकूल उत्पादकता दशाओं में पूरक होते हैं।

9.5.4 मनोविनोद वानिकी

DIKSHANT IAS

इसका संबंध शहरी क्षेत्रों में ऐसे घने अरण्य क्षेत्र सहित बड़े पार्कों से है जो मनोविनोद और साहसिक कार्य दोनों के लिए शहरी निवासियों को वन जैसी स्थिति दे सके। शहरों में हरित आवरण बढ़ाने के अलावा ट्रेकिंग क्षेत्र और अन्य मनोविनोद संबंधी सुविधाओं का विकास इस प्रकार की वानिकी का उद्देश्य है।

Call us @7428092240

बोध प्रश्न 3

नीचे दिए गए स्थान में अपना उत्तर लगभग 50 शब्दों में लिखिए।

1) उन तीन प्रमुख आयामों का उल्लेख कीजिए जिनमें वनों की क्षति मानव जाति के लिए क्षति प्रतीत होती है।

....

....

....

....

2) उन दो पहलुओं की रूपरेखा बताइए जिनमें वानिकी को कृषि का पूरक कहा जा सकता है?

....

....

....

....

3) उन पांच शीर्षकों का उल्लेख कीजिए जिनमें वनों को हमारी जैव विविधता के संरक्षक के रूप में माना जाता है।

....

....

....

....

5) ''पट्टी पादपरोपण'' के चार प्रमुख उद्देश्य क्या हैं?

....

....

....

....

9.6 संयुक्त वन प्रबंधन

1988 की राष्ट्रीय वन नीति ने निर्दिष्ट किया है कि वनों के प्रबंधन में लोगों की सहभागिता आवश्यक है। परंतु इसने वनों के दिन प्रति दिन के प्रबंधन में लोगों की किसी प्रत्यक्ष भूमिका का संकल्पना नहीं की है। स्थानीय समुदायों को संबद्ध करने की आवश्यकता पर जागरूकता बढ़ती जा रही है ताकि जैव विविधता का मूल्यांकन करने का उनके अपने तरीकों का सम्मान हो सके, संरक्षण उपायों में प्रयुक्त किया जा सके। इस चिंतन के आधार पर 1990 के दशक के दौरान प्रारंभ किये गये संयुक्त वन प्रबंधन (JFM) दृष्टिकोण ने स्वामियों के रूप में राज्य वन विभागों और ''सह प्रबंधकों'' के रूप में स्थानीय समुदायों के बीच धारणीय वन प्रबंधन के लिए भागीदारी विकसित की। इस प्रकार JFM को भारत में वन प्रबंधन के लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण की दिशा में एक कदम के रूप में देखा गया।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

1991 में भारत सरकार ने ''रक्षित क्षेत्र प्रबंधन का पारि विकास'' नाम की योजना प्रारंभ की। नीति का उद्देश्य रक्षित क्षेत्र के प्रबंधन और निर्णयों में स्थानीय सहभागिता के लिए अवसर बढ़ाकर जैव विविधता के संरक्षण से स्थानीय क्षेत्र आर्थिक विकास के उद्देश्यों को जोड़ना है। परियोजना के अन्य उद्देश्य थे : (i) प्रभावित लोगों के आजीविका तत्वों पर सरकार की नीति के नकारात्मक प्रभावों को कम करना; (ii) रक्षित क्षेत्रों के पारि विकास के लिए अधिक प्रभावी समर्थन विकसित कर परियोजना का प्रभावकारी प्रबंधन सुनिश्चित करना; और (iii) ऐसे तरीके से भावी जैव विविधता तैयार करना जो स्थानीय क्षेत्र के विकास संबंधी आवश्यकताओं के अनुरूप हो। पारि विकास कार्यों का नियंत्रण ग्राम पारि विकास समितियों (VEC) द्वारा किया जाना चाहिए। उद्देश्य वैकल्पिक फार्म-इतर आय उत्पन्न करने के अवसरों की सुलभता सुकर बनाकर स्थानीय लोगों की वनों पर निर्भरता कम करना है। दूसरे शब्दों में, योजना में सशक्तीकरण द्वारा प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन में लोगों की सहभागिता की संकल्पना की गई थी। परंतु यह अनुभव किया जा रहा है कि संरक्षण प्रयासों में स्थानीय लोगों को शामिल करना कठिन हुआ है क्योंकि लोगों की सहभागिता के लिए क्रियाविधियाँ विकसित करने के पिछले बहिष्करण दृष्टिकोण असफल हुए, इसका परिणाम हुआ कि स्थानीय समुदायों

में रुचि और विकास का अभाव है। कहीं न कहीं कानूनों के पारस्परिक विरोध भी उत्तरदायी थे। JFM ग्रामीणों को वन उत्पाद का अंश प्रदान करने का प्रयास करता है, तो वन्यजीव कानून राष्ट्रीय उद्यानों और पशु विहारों से मानव प्रयोग के लिए (कुछ सूचीबद्ध उत्पादों को छोड़कर) उत्पादों का निकर्षण निषिद्ध करते हैं।

कुछ असफलताओं के बावजूद भावी वन विकास प्रयासों में JFM दर्शन आगे बढ़ाने की आवश्यकता व्यापक रूप से स्वीकार की गई है। अब वन विकास के लिए नई परियोजनाओं के सरकार और बाहरी एजेंसियों द्वारा वित्तीय सहायता प्राप्त करने के लिए केंद्रीय व्यवस्था रखी गई है। लगभग सभी राज्यों ने JFM में स्थानीय समुदायों की सहभागिता से JFM में कार्य करना प्रारंभ कर दिया है, मध्य प्रदेश, बिहार, पश्चिम बंगाल और उड़ीसा राज्यों में अधिकतम कार्य हुआ है। 2005 तक भारतीय संघ के 27 राज्यों में 63,000 से अधिक वन संरक्षण समितियाँ थीं जो भारत में वन भूमि के 1,40,000 वर्ग कि.मी. से अधिक संयुक्त प्रबंधन कर रही थीं।

9.7 सारांश

इस इकाई में, राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के लिए वनों के महत्त्व पर चर्चा की गई है। भारत विश्व के उन शीर्ष दस देशों में आता है जिनका सांझा वन आवरण का अंश दो-तिहाई है। परंतु वन के प्रति व्यक्ति अंश के अनुसार, भारत इन दस देशों में सबसे नीचे है। यद्यपि भारत ने काफी पहले 1952 में वनों के अधीन अपने कुल भूमि क्षेत्रफल का एक-तिहाई (अर्थात् 33 प्रतिशत) करने का लक्ष्य रखा था परंतु 2010 तक भी भारत में वन आवरण का प्रतिशत लगभग 22 प्रतिशत है। वन कृषि सहबंधन बहुस्तरीय है और इसे हमारे सभी वन नीति प्रलेखों में अच्छी तरह से माना गया है। इसके प्रकाश में देश में वन आवरण की रक्षा करने और विस्तार करने के लिए सरकार द्वारा बहुत उपाय किए गए है। यद्यपि इन सभी नीतियों ने सीमित परिणाम दिए है। परंतु बहुत देर बाद व्यापक रूप से स्वीकृत दृष्टिकोण है कि केवल संयुक्त रूप से नियंत्रित व्यवस्थित दृष्टिकोण यही जिसमें जनजाति, गरीब और छोटे तथा सीमांत किसान जैसे वनों के मुख्य पणधारी खास तौर पर शामिल किए जाने हैं, ताकि वे सब मिलकर इस संबंध में नियत परिणाम प्राप्त करने के लिए कार्य कर सकें।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

9.8 शब्दावली

हरित लेखांकन : आय लेखांकन की परंपरागत पद्धति में उन वर्तमान उत्पादन में प्रयुक्त पर्यावरण संबंधी संसाधनों में परिवर्तनों की जो वन के अंतिम भाग है, उपेक्षा की, जाती है। हाल के वर्षों में वन संसाधनों के अचिन्हित लाभों को सम्मिलित कर GDP जैसे राष्ट्रीय आय सेवाओं के परंपरागत उपायों का संशोधन करने के प्रयास किए गए हैं। यह हरित लेखांकन कहा जाता है।

वनभूमि और वन आवरण : वन भूमि की परिभाषा वन के रूप में साविधिक रूप से अधिसूचित भूमि के रूप में की गई है। यह संभव है कि इस अधिसूचित भूमि के कुछ भाग पर वन आवरण हो। दूसरी ओर, प्रतिशत

		आवरण के आधार पर परिभाषित ''वृक्ष आवरण वितान सघनता'' की सीमा भी निर्धारित की गई है।
सघन वन, खुलावन और क्षुप क्षेत्र	:	आवरण की सीमा के आधार पर वनों को तीन प्रकारों में वर्गीकृत किया गया है जैसे सघन वन, खुला वन और क्षुप क्षेत्र। यद्यपि सघन वन वे कहलाते हैं जिनका विकास आवरण 40 प्रतिशत से अधिक हो, खुला वन जिनका 10 से 40 प्रतिशत की सीमा में हो। क्षुप क्षेत्र में विकास आवरण 10 प्रतिशत से कम होता है।
रक्षित वन और आरक्षित वन	:	रक्षित वन वे हैं जिनमें काष्ठ, ईंधन लकड़ी, लघु वन उत्पाद आदि के संग्रहण के लिए समुदाय के अधिकार या तो सीमित होते हैं या निलंबित होते हैं। दूसरी ओर आरक्षित वनों में स्थानीय समुदाय वन अधिकारों का उपयोग करते हैं यद्यपि यहाँ भी कुछ प्रतिबंध लागू हो सकते हैं।
कृषि वनवर्धन, वनपशुचारा	:	कृषि और वानिकी का संयोजन करने की प्रणाली।
प्रणाली और कृषि पशुचारा प्रणाली	:	कृषि संवर्धन के रूप में जानी जाती है। वानिकी और पशुधन का वनपशुचारा (agro-silvirpastoral) प्रणाली के रूप में जानी जाती है। तीनों अर्थात् कृषि, वानिकी और पशुधन के सहअस्तित्व को कृषि वन पशुचारा प्रणाली कहा जाता है।
सामाजिक वानिकी	:	सामाजिक वानिकी जिसमें अपह्रास भूमि की हरियाली, कृषि संसाधनों की वृद्धि, ग्रामीण सेक्टर में रोज़गार पैदा करने आदि के लिए कार्य योजना होती है। सभी का उद्देश्य बिगड़ी हुई पारिस्थितिकी संतुलन ठीक करना है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

9.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Jha, L. K. (1994): India's Forest Policies, Ashish Publishing House, New Delhi.

Agarwal, V. P., (1998): Forests in India, Oxford & IBH Publishing Co., New Delhi.

Sharma, B. L. and R. L. Vishnoi, (2000): Perspective on Social Forestry, Daya Publishers, New Delhi.

United Nations, (2010): Global Forest Resources Assessment 2010, http://www.fao.org/forestry/fra/fra2010/en/

Wikepedia, http://en.wikipedia.org/wiki/Joint_Forest_Management, Joint Forest Management.

9.10 बोध प्रश्नों के उत्तर/संकेत

बोध प्रश्न 1

1) (क)

2) (ग)

3) देखिए भाग 9.2 और उत्तर दीजिए

बोध प्रश्न 2

1) (ग)

2) देखिए उपभाग 9.3.2 और उत्तर दीजिए

3) देखिए उपभाग 9.3.3 और उत्तर दीजिए

4) देखिए उपभाग 9.3.4 और उत्तर दीजिए

बोध प्रश्न 3

1) देखिए भाग 9.4 और उत्तर दीजिए

2) देखिए भाग 9.4 और उत्तर दीजिए

3) देखिए उपभाग 9.4.3 और उत्तर दीजिए

4) देखिए उपभाग 9.5.2 और उत्तर दीजिए।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इकाई 10 ग्रामीण औद्योगिकीकरण कार्यक्रम

संरचना

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 संकल्पनात्मक विहंगावलोकन

10.3 भारत में ग्राम उद्योगों के संवर्धन के लिए नीतियाँ : एक विहंगावलोकन

10.4 सरकार की नीतियों का प्रभाव

10.5 ग्रामीण कृषीतर सेक्टर

10.5.1 संवृद्धि की तीन अवस्थाएँ

10.5.2 दो संबद्ध परिकल्पनाएँ

10.6 भावी नीति के लिए रणनीति

10.7 सारांश

10.8 शब्दावली

10.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

10.10 बोध प्रश्नों के उत्तर/संकेत

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

10.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद, आप :

- ग्राम औद्योगिकीकरण रणनीति में अंतर्निहित अवधारणाओं की परिभाषा कर सकेंगे;
- भारत में ग्राम उद्योगों के संवर्धन के लिए विभिन्न नीति पहलों की रूपरेखा प्रस्तुत कर सकेंगे;
- ग्राम औद्योगीकरण के लिए अपनाई गई नीतियों के प्रभाव का विश्लेषण कर सकेंगे;
- ग्रामीण कृषीतर सेक्टर (RNFS) की मुख्य विशेषताओं का वर्णन कर सकेंगे; और
- नीति पुनार्भिन्यास के लिए रणनीति समझा सकेंगे।

10.1 प्रस्तावना

इकाई 1 में, हमने अध्ययन किया है कि भारत जैसी कृषि अर्थव्यवस्थाओं में कृषि में अतिरिक्त (अधिशेष) श्रमिकों के लिए उद्योगों/सेवाओं जैसे गैर-कृषि सेक्टरों में रोज़गार प्राप्त करना कैसे सुकर बनाया जाना आवश्यक है। यह निम्नलिखित कारणों से अपेक्षित है : (i) कृषि में रोज़गार का मौसमी स्वरूप; (ii) ऐसे छोटे और सीमांत किसानों की बहुत बड़ी संख्या जो कृषि कार्य पर जीवन निर्वाह करते हैं, और प्रायः बेरोज़गार रहते हैं; (iii) कृषि श्रमिक परिवार की अल्प शैक्षिक और आर्थिक दशाएँ, और (iv) कृषि अकेले सभी ग्रामीण कामगारों को पूरा रोज़गार देने में पर्याप्त नहीं है। इस इकाई

में हम इस बारे में अध्ययन करेंगे कि ग्राम औद्योगिकीकरण कार्यक्रम को, सामान्य तौर में ग्रामीण श्रमिक बल के लिए, विशेष रूप से ग्रामीण गरीबों के लिए, आय अर्जन के रास्ते बढ़ाने के लिए भारत में नीति साधन के रूप में कैसे अपनाया गया है। इस दिशा में छह से अधिक दशाब्दियों में क्या परिणाम हुआ है? क्या इस दृष्टिकोण की संभावनाओं की सफल प्राप्ति के लिए कोई पूर्व शर्तें अपेक्षित हैं? ग्रामीण कृषीतर सेक्टर की प्रगति के बारे में क्या कोई निश्चित सैद्धांतिक धारणा प्रस्तुत की गई है? ये ऐसे प्रश्न हैं जिनका उत्तर हम इस इकाई में ढूंढ़ने का प्रयास करेंगे। हम इस संदर्भ में प्रयुक्त कुछ महत्त्व शब्दों से जुड़ी संकल्पनाओं के संक्षिप्त विहंगावलोकन से ही चर्चा का प्रारंभ करेंगे।

10.2 संकल्पनात्मक विहंगावलोकन

ग्राम औद्योगिकीकरण के विकास का परिणाम तीन प्रकार से रोज़गार अवसरों पर होगाः (i) अपेक्षाकृत बेहतर शिक्षितों के लिए नियमित रोज़गार; (ii) निरक्षरों के लिए दैनिक मज़दूरी किस्म का रोजगार; और (iii) उनके लिए स्वरोज़गार के अवसर, जो उद्यमवृत्ति की ओर बढ़ना चाहते हैं। यह निश्चित तथ्य है कि ग्रामीण श्रमिक बल की बहुत भारी संख्या गरीब और अशिक्षित है इसलिए ग्राम औद्योगिकीकरण की नीति का ध्यान दूसरे एवं तीसरे प्रकार के रोज़गार अवसर उत्पन्न की ओर होना चाहिए। हम इकाई के बाद के भागों में देखेंगे कि कुल रोज़गार के अनुपात के रूप में स्वरोज़गार का भाग बहुत अधिक है। उद्यमवृत्ति कार्य प्रारंभ करने के लिए आवश्यक पूर्व शर्त उसके लिए अपेक्षित विभिन्न संसाधन जुटाने की क्षमता है। अपेक्षित मुख्य संसाधन हैं : (i) श्रमिक या जनशक्ति, निवेश के लिए साख, कच्चा माल, मशीनरी के लिए ऋण, कच्चे माल को तैयार माल बनाने की प्रक्रिया की दक्षता, उत्पादित माल के लिए उपयुक्त बाजार का पता लगाने की क्षमता। इन प्रयुक्त संसाधनों की मात्रा के आधार पर स्थापित उपक्रम का स्वरूप ''उद्यम'' के प्रचालन के अनुसार भिन्न-भिन्न होगा। ये या तो व्यक्तिगत परिवार स्तर पर (अर्थात् ''पारिवारिक उद्योग'' के रूप में) संचालित किए जा सकते हैं या पृथक स्तर पर ''गैर-पारिवारिक उद्योग'' के रूप में चलाए जा सकते हैं। इस प्रकार के पारिवारिक उद्योग (HHI) का स्वामित्व या तो व्यक्तिगत स्वामित्व के आधार पर या भागीदारी के आधार पर हो सकता है। ग्राम औद्योगिक सेक्टर की बहुत सी अन्य निश्चित विशेषताओं ने समय गुजरने के साथ सुनिश्चित शब्दावलियों के विकास में योगदान किया है। हम नीचे कुछ महत्त्वपूर्ण शब्दों के अर्थ और अभिधान से परिचित होंगे।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

उद्योग

उद्योग शब्द का अभिप्राय आर्थिक 'माल' या 'सेवा' का उत्पादन है। शब्द के अर्थ के मूल में पारिवारिक खपत (अर्थात् स्वयं अपने उपभोग) की आवश्यकताओं के स्तर से काफी अधिक उत्पादन की मात्रा निहित है। दूसरे शब्दों में, ऐसे उद्यम के उत्पादन का कम से कम एक भाग बाजार के लिए होना चाहिए। प्रयुक्त मुख्य या अधिकांश सामग्री के आधार पर उद्योग को उसकी किस्म से पहचाना जाता है। उदाहरण के लिए, उद्योग खाद्य उत्पादों, वस्त्र उत्पादों, काष्ठ उत्पादों, कागज़ उत्पादों आदि का हो सकता है।

ऐसे उद्योग, जो अपने कच्चे माल के लिए कृषि सेक्टर पर आश्रित होते हैं, उन्हें कृषि आधारित उद्योग कहा जाता है। कृषीतर आधारित उद्योगों के उदाहरण हैं : धातु,

मशीनरी, मरम्मत सेवाएँ आदि। उद्योगों के वर्गीकरण की पद्धति को राष्ट्रीय उद्योग वर्गीकरण (NIC) कहा जाता है, जो व्यापक उद्योग समूह के अधीन आने वाले सभी उद्योगों को विनिर्दिष्ट करती है। नए उद्योगों और समूह को समायोजित करने के लिए समय-समय पर NIC संशोधित किया जाता है। व्यापक स्तर पर (I-अंक स्तर पर है) NIC अर्थव्यवस्था को नौ उद्योगों में वर्गीकृत करता है। ये हैं : (i) कृषि; (ii) खनन; (iii) विनिर्माण; (iv) विद्युत, जल, गैस आदि (ये मिलकर ''उपयोगिताएँ' कहलाती हैं); (v) निर्माण कार्य; (vi) व्यापार; (vii) परिवहन और संचार, भंडारण ओर माल गोदाम; (viii) वित्त और बैंकिंग; और (ix) लोक प्रशासन, कार्मिक और अन्य सेवाएँ।

ग्राम उद्योग

ग्राम औद्योगिकीकरण रणनीति/कार्यक्रम के मुख्य उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में रोज़गार के अवसर पैदा करना और ग्रामीण क्षेत्रों से शहरों में प्रवासन कम करना है। इसके लिए आवश्यक है कि उद्योग ग्रामीण क्षेत्रों के अन्दर या ऐसे स्थानों में स्थित हों जहां से प्रत्येक ग्रामवासी रोज़गार के लाभ प्राप्त कर सकें। इस प्रकार ''ग्राम उद्योग'' को उद्योगों या स्थापना के समावेशन के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो निम्नलिखित में से किसी भी तरीके में ग्रामीण लोगों को रोज़गार और आय अर्जन के मार्ग प्रदान करता है : (i) स्थानीय संसाधनों और कौशल पर आधारित (या निर्भर) उद्योग जो मुख्यतया स्थानीय मांग पूरा करते हों; (ii) स्थानीय रूप से उपलब्ध किसी प्रमुख आदान पर आधारित उद्योग जो अन्यत्र संसाधनों/बाजारों से संबद्ध है; और (iii) ग्रामीण स्थानों पर आधारित उद्योग परंतु न तो स्थानीय संसाधनों (श्रमिकों सहित) पर निर्भर है और न ही स्थानीय बाजार को अपना उत्पादन बेचते हैं। ग्राम उद्योग या तो सरकार या विशाल निजी सेक्टर संगठनों के स्वामित्व के हो सकते हैं या स्थानीय या बाहरी उद्यमियों द्वारा औपचारिक रूप से स्थापित किये जा सकते हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

उद्यम बनाम स्थापना

औद्योगिक उपक्रमों के माप का विभेद करने के लिए दो बुनियादी मापदंड प्रयुक्त किए जाते हैं; (i) नियुक्त व्यक्तियों की संख्या; और (ii) प्रयुक्त ''पूँजी'' की सीमा। भाड़े पर रखे गए श्रमिकों के बिना संचालित उद्यम (पूरी तरह से परिवार के सदस्यों के श्रम संचालित) को ''स्वश्रम चालित उद्यम'' नाम दिया गया है। यदि परिवार से बाहर का एक भी व्यक्ति भाड़े पर रखा जाता है तब यह उद्यम एक 'स्थापना' कहा जाता है। लगाई गई पूँजी की सीमा पर आधारित उद्यमों का वर्गीकरण के तीन प्रकार है जैसे (i) लघु/अतिलघु उद्यम जिसमें चालू निवेश की सीमा 25 लाख रुपए से कम रहती है (यह पहले केवल 1 लाख रुपए थी)। (ii) सहायक लघु उद्योग (SSI) इकाई, जिसमें 25 से 100 लाख का निवेश हों, तथा लघु उद्यम, जिसमें 100-500 लाख रुपए की सीमा में पूँजी निवेश किया गया हो। इसलिए यह स्पष्ट है कि गरीब ग्रामीण परिवारों द्वारा स्थापित या तो पारिवारिक उद्यम या गैर-पारिवारिक उद्यमों को अधिकांशतः अति लघु इकाइयों की श्रेणी में रखना सर्वथा उचित हो सकता है। अन्य दो वर्ग (अर्थात् सहायक और लघु उद्योग) साधारणतया ग्रामों की भौगोलिक सीमाओं के अंदर या उसके बाहरी इलाकों में उन उद्यमियों द्वारा स्थापित इकाइयाँ हो सकती हैं जिनमें अधिक पूँजी जुटाने की क्षमता होती है। ऐसी इकाइयाँ ग्रामीण श्रमिकों को मज़दूरी के अवसर प्रदान करती हैं। इस प्रकार के उद्यमों पर निवेश की उच्चतम सीमा बदलते हुए मूल्य स्तरों के अनुरूप बनाने के लिए समय-समय पर संशोधित की जाती हैं। उद्यमों में माल या सेवाओं (जैसे विनिर्माण उद्यमों या सेवा उद्यमों के रूप में) के उत्पादन के आधार पर भी विभेद किया जाता है।

आर्थिक सेक्टर

अर्थव्यवस्था को मोटे तौर पर तीन आर्थिक सेक्टरों में वर्गीकृत किया जाता है। जैसे प्राथमिक, माध्यमिक और तृतीयक। **प्राथमिक** सेक्टर का संबंध उन सभी कार्यकलापों (या उद्यमों) से है जिनमें उत्पाद भूमि और अन्य प्राकृतिक संसाधनों, जैसे जल, पशु आदि प्राप्त या उत्पन्न किए जाते हैं। इसलिए कृषि और संबद्ध कार्यकलाप, जैसे मत्स्यपालन, डेयरी, कुक्कट पालन, और खनन प्राथमिक सेक्टर कार्यों के उदाहरण हैं। **माध्यमिक** सेक्टर का संबंध उन उद्यमों से है जिनमें प्राथमिक सेक्टर से नए कच्चे माल का प्रयोग करके नए मूल्यवर्धित उत्पादों का विनिर्माण किया जाता है। माध्यमिक सेक्टर के उदाहरण हैं : सभी कृषि आधारित उद्योग, कृषीतर आधारित उद्योग, विद्युत, निर्माण कार्य आदि। माध्यमिक सेक्टर के बहुत बड़े भाग का संबंध साधारतया विनिर्माण कार्य से भी है। इसलिए ''विनिर्माण उपयोगिता और निर्माण'' मिलकर द्वितीयक सेक्टर बनाते हैं। अन्य सभी कार्य, जैसे व्यापार, होटल और रेस्टोरेंट, परिवहन, संचार, बैंकिंग और वित्तीय, कानून और व्यवस्था; न्यायपालिका; लोक प्रशासन तथा धार्मिक सेवाएँ तृतीयक या सेवा सेक्टर के अधीन आते हैं। स्वामित्व के आधार पर दो अन्य वर्गीकरण भी हैं : (i) सार्वजनिक/निजी; और (ii) संगठित/असंगठित। पूर्वोक्त का संबंध सरकारी या विशाल निजी सेक्टर उपक्रमों से है जबकि दूसरे का संबंध संगठन के स्वरूप से है जो पंजीकृत या अपंजीकृत स्वरूप की उसकी कानूनी प्रस्थिति पर निर्भर है। हम नीचे (रोज़गार के स्थिर/अस्थिर प्रकार विभेद के अनुसार वर्गीकरण पर) विस्तार से चर्चा करेंगे।

पारिवारिक सेक्टर

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

अर्थव्यवस्था के उत्पादक क्षेत्रों के वर्गीकरण का एक अन्य प्रकार भी है जिसमें अर्थव्यवस्था को पारिवारिक सेक्टर और गैर-पारिवारिक सेक्टर में विभाजित किया जाता है। कानून द्वारा सभी उद्यमों को 'पंजीकरण (या निगमन) के अधीन प्रचालन करना आवश्यक है जिससे राष्ट्रीय लेखाकरण की पद्धति अपनाना संभव हो जाता है। जिन उद्यमों में विनिर्दिष्ट उच्चतम सीमा से अधिक कामगार काम पर लगाए जाते हैं, इस प्रकार के पंजीकरण का उद्देश्य उनमें नियुक्त कामगारों के कार्य और सेवा शर्तों की सुरक्षा करना है। विभिन्न अधिनियम जैसे कारखाना अधिनियम, कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, दुकान और वाणिज्यिक स्थापना अधिनियम आदि ऐसे विधायनों के उदाहरण हैं जिनके अधीन उद्यमों का पंजीकरण अनिवार्य बनाया गया है। परंतु अधिक छोटे उद्यमों या स्थापनाओं को जिनमें भाड़े पर नियुक्त कामगारों की संख्या शून्य या बहुत कम होती है (उदाहरण के लिए, जैसे दस या कम यदि बिजली प्रयोग कर रहे हों, 20 या कम यदि कारखानों अधिनियम द्वारा बिजली का प्रयोग नहीं कर रहे हैं) इस प्रकार के अनिवार्य पंजीकरण से छूट प्राप्त है। इसलिए शब्द ''पारिवारिक सेक्टर'' का संबंध अपंजीकृत उद्यमों से है। पारिवारिक सेक्टर की परिभाषा सीमा से बाहर होने वाले उद्यम (अर्थात् सभी नियमित या पंजीकृत उद्यम) गैर-पारिवारिक सेक्टर के हैं। भारत के संदर्भ में पारिवारिक सेक्टर के सभी उद्यमों को अनौपचारिक या असंगठित सेक्टर उद्यम भी कहा जाता है। उनके विपरीत औपचारिक या संगठित क्षेत्र है, जिसमें कामगार रोजगार शर्तें सामाजिक सुरक्षा प्रावधानों द्वारा संरक्षित की जाती है, जैसे सुस्पष्ट मज़दूरी और सेवा शर्तें, सवेतन अवकाश, सेवानिवृत्ति लाभ आदि। भारत में औपचारिक या संगठित क्षेत्र के अधीन आने वाले कुल श्रमिक बल में कामगारों का अनुपात बहुत निम्न है (लगभग 7 प्रतिशत)। आर्थिक विकास दर में वृद्धि के साथ अनौपचारिक सेक्टर

में कामगारों का प्रतिशत समय के साथ-साथ नीचे आने की संभावना है। अनौपचारिक/असंगठित सेक्टर के अधीन आने वाले विशाल 93 प्रतिशत श्रमिक बल में से अधिकांश कृषि क्षेत्र में है। कृषि के अलावा, अनौपचारिक/असंगठित गैर-कृषि कार्यों का बहुत बड़ा भाग ग्रामीण क्षेत्रों में होता है। बहुत से ग्रामीण औद्योगिक कार्य स्वरूप में अनौपचारिक होते हैं। सभी औपचारिक और अनौपचारिक कृषीतर कार्यों को ग्रामीण कृषीतर सेक्टर कहा जाता है।

ग्रामीण गैर-फार्म सेक्टर बनाम गैर-कृषिक सेक्टर : शब्द ग्रामीण गैर-फार्म सेक्टर ग्रामीण क्षेत्रों में ऐसे सभी कार्यों या उद्यमों के लिए प्रयुक्त होता है जो फार्म सेक्टर अर्थात् कृषि और अनुषांगिक कार्यों की सीमा के बाहर है। इसलिए ग्रामीण क्षेत्रों में विनिर्माण, निर्माण, व्यापार, संचार, बैंकिंग और वित्त आदि (अर्थात् द्वितीय और तृतीयक सेवा' सेक्टर कार्यों के अधीन आने वाली सभी कार्यकलाप) के अधीन आने वाले सभी कार्यकलापों का उल्लेख ग्रामीण गैर-फार्म सेक्टर के कार्यों के रूप में किया जाता है। शब्द ''गैर-कृषिक'' शब्द ''कृषिक'' विपर्याय हैं। यद्यपि कृषिक कार्यों का उल्लेख ''खेती'' जैसे जोताई, बोआई, खाद डालने, कीटनाशी दवा डालने सिंचाई, कटाई की अवस्था से उस अवस्था तक के लिए किया जाता है तथा जो काम कटाई के बाद भंडारण, संसाधन, पैकेजिंग, विपणन आदि जैसे कार्य करने के लिए किए जाते हैं। वे सभी कार्य गैर-कृषिक कार्यों के अधीन आते हैं। ध्यान रहे कि गैर-कृषि सेक्टर केवल वृहत्तर गैर-फार्म सेक्टर का उपभाग है। यह नोट करना भी महत्त्वपूर्ण है कि यद्यपि फार्म सेक्टर उत्पादकता की वृद्धि और गैर-कृषिक सेक्टर का विकास एक स्तर पर पारस्परिक सहयोगशील सुचक्र बनाते हैं वे दूसरे स्तर पर गैर-फार्म, गैर-कृषिक सेक्टर एक साथ मिलकर संपूर्ण ग्रामीण कृषीतर सेक्टर की वृद्धि के लिए अति आवश्यक उत्प्रेरक प्रोत्साहन प्रदान करते हैं। इस प्रकार, विकास की संपूर्ण प्रक्रिया पर चक्रीय प्रभाव होता है जिसमें प्रत्येक सेक्टर की प्रगति दूसरे की प्रगति में योगदान करता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

उपर्युक्त से स्पष्ट है कि कृषि में लगे हुए कामगारों के लिए वैकल्पिक रोज़गार/आय के अवसर उपलब्ध कराने के लिए, हमें ग्रामीण गैर-फार्म सेक्टर के उद्यमों के विकास पर ध्यान देना आवश्यक है। इस सीमा तक कि बहुत बड़ी संख्या में कृषि श्रमिक छोटे और सीमांत किसान होते हैं। उद्योगों के लिए चाहे कितना भी छोटा क्यों न हो, उसके लिए कम से कम प्रारंभिक अवस्था में थोड़ी पूंजी निवेश की आवश्यकता होती है। इसके साथ-साथ ऐसे उद्योगों की स्थापना को प्रोत्साहित करने के प्रयासों के लिए ग्राम में और उसके समीप दोनों में अधिक पूँजी निवेश की आवश्यकता होती है जो अधिक कुशल व्यक्तियों के लिए रोज़गार के अवसर उत्पन्न कर सकता है। इस दिशा का लाभ उठाने के लिए ग्रामीण श्रमिकों के लिए अल्पकालिक कौशल विकास कार्यक्रम संचालित कर दक्षता विकास पर ध्यान देना आवश्यक है। प्रसंस्करण, पैकेजिंग, मार्केटिंग आदि के लिए ऋण और अन्य सुविधाओं की आवश्यकता पूरी करने पर भी साथ-साथ फोकस करना आवश्यक होगा जिसके बिना ग्रामीण गैर-फार्म सेक्टर की प्रगति गंभीर रूप से रुक सकती है।

संक्षेप में, ग्रामीण श्रमिक बल के लिए रोज़गार के अवसर बढ़ाने का अभिप्राय संकल्पनात्मक रूप से ग्रामीण और गैर-फार्म उद्यमों (अनौपचारिक सेक्टर किस्म के) की स्थापना प्रोत्साहित करने और गैर-कृषिक कार्यों के विकास के लिए अपेक्षित सहायक बुनियादी सुविधा स्थापित करने के लिए नीति निर्माण पर फोकस करना है। पिछली

छह से अधिक दशकों के दौरान सरकार द्वारा किए गए निश्चित प्रयास और ग्रामीण रोज़गार पर अनके प्रभाव ऐसे मुद्दे हैं जिन पर हम अब विचार करेंगे।

बोध प्रश्न 1

नीचे दिये रिक्त स्थान पर 50 शब्दों में अपना उत्तर दीजिए

1) शब्द ''उद्योग'' सामान्यतया कैसे परिभाषित किया गया है? वे कौन-से तीन तरीके हैं जिन में संसाधनों/मार्केट से उनके सहसंबधन द्वारा विशेष रूप में ''ग्रामीण उद्योग'' परिभाषित किया जा सकता है?

....

....

....

....

2) सेक्टर संबंधी विशेषताओं का भिन्न-भिन्न तरीकों से उल्लेख कीजिए जो भारत जैसी श्रम बहुल अर्थव्यवस्था के रोजगार परिदृश्य की विशेषता बताती है। NIC के अधीन वर्गीकृत नौ औद्योगिक श्रेणियाँ क्या हैं?

....

....

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

3) निवेश आकार पर किए गए उद्योगों के वर्गीकरण के तीन प्रकार क्या हैं? इन में से किस पर अधिक ध्यान देना चाहिए और क्यों?

....

....

....

....

4) क्या आप सहमत हैं कि 'गैर-कृषिक' सेक्टर 'गैर-फार्म' सेक्टर का उपभाग है? क्यों?

....

....

....

....

10.3 भारत में ग्राम उद्योगों के संवर्धन के लिए नीतियाँ : एक विहंगावलोकन

नीति स्तर पर बहुत पहले ही प्रथम औद्योगिक नीति संकल्प (IPR), 1948 में, सरकार ने ग्राम उद्योगों को विशेष स्थान दिया था। IPR 1948 उल्लेख करता है कि ''कुटीर

तथा लघु उद्योगों'' की स्थापना से अनिवार्य उपभोक्ता मात्र जैसे भोजन, वस्त्र और कृषि औजार आदि का बेहतर उत्पादन हो सकता है। इसके अनुसरण में पहली पंचवर्षीय योजना (1951-56) में कुटीर उद्योगों को ''परंपरागत शिल्प कौशल'' के पर्याय के रूप में स्वीकार करते हुए अधिक स्पष्ट विशिष्टता निर्धारित की गई। इस विशिष्टता के अधीन कुटीर उद्योगों की ऐसी संकल्पना की गई जिसमें मुख्य रूप से पारिवारिक श्रम द्वारा किए गए कार्यों में दस्ती कार्य प्रचालन अंतर्निहित हो। योजना ने भाड़े पर कुछ न कुछ श्रमिकों को काम पर लगाकर मशीनी उपकरणों का प्रयोग करते हुए माल और सेवाएँ उत्पादन करने वाली इकाइयों को लघु उद्योगों का नाम दिया था। इस विवरण के अधीन कुटीर उद्योगों की भूमिका का अभिप्राय मुख्यतया ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोज़गार और अल्प रोजगार की समस्या का सामना करना था।

दूसरा IPR और दूसरी तथा तीसरी पंचवर्षीय योजनाएँ

दूसरे औद्योगिक नीति संकल्प (IPR-1956) ने दो भागों को एक में मिला दिया और इसे ''कुटीर ग्राम और लघु उद्योग सेक्टर'' (अर्थात् संक्षेप में, CVSS सेक्टर) नाम दे दिया। IPR ने उत्पादन की मात्रा पर उच्चतम सीमा निर्धारित CVSS सेक्टर के लिए विभेदक कराधान तथा प्रत्यक्ष राज सहायता प्रदान कर इससे बड़े सेक्टर औद्योगिक से अलग स्वरूप दिया था। नीति ने बल दिया कि लघु उत्पादकों की प्रतिस्पर्धात्मक शक्ति में सुधार किया जाना चाहिए ताकि वे समय के चलते स्वावलंबी हों। दूसरी पंचवर्षीय योजना (1956-61) ने भी उल्लेख किया कि उपभोक्ता माल की बहुत विविध किस्में CVSS सेक्टर से आनी चाहिए। बहुत आलोचकों ने उल्लेख किया कि ''कुटीर और ग्राम'' और ''लघु सेक्टर'' की संवृद्धि की नीति फोकस का अभाव दिखाती है क्योंकि उद्योगों के दो समूहों के समक्ष कठिनाइयाँ बहुत भिन्न थीं। यद्यपि ''कुटीर उद्योग'' और स्वस्वामित्व उद्योग बहुत छोटी स्थापनाएँ हैं जो 5 से कम श्रमिकों को नियुक्त करती हैं और लघु उद्योग आकार और प्रचालन की मात्रा में काफी अधिक बड़े हैं। ग्रामीण सेक्टर में कुल श्रमिक बल का लगभग 85-90 प्रतिशत (बहुत बड़ा) भाग कुटीर उद्योगों में लगा हुआ है और इसलिए उनके हितों पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। किंतु योजना में नीतिगत बल, आमतौर पर निम्नलिखित पर रहा: (i) औद्योगिक विस्तार की प्रक्रिया बढ़ाना और ग्रामीण क्षेत्रों में फैलाना, और (ii) सेक्टर से आशा की गई थी कि यह धीरे-धीरे अपने परंपरागत स्वरूप में अपना उन्नयन करेगा और ''आधुनिक लघु औद्योगिक इकाई'' का रूप ग्रहण करेगा परंतु क्रियान्वयन प्रभाव वास्तव में बहुत सीमित रहा। कृषि सेक्टर और ग्रामीण औद्योगिकीकरण प्रयासों के बीच अधिक सुदृढ़ सहसंबंध धीरे-धीरे आगे बढ़ाने के प्रयास के रूप में चुनिन्दा सामुदायिक विकास खंडों में 26 प्रायोगिक परियोजनाओं का आरंभ किया गया। इन परियोजनाओं के अनुभव का विस्तार बाद में तृतीय पंचवर्षीय योजना में ''ग्रामीण औद्योगिक परियोजना'' (RIP) गठित करने के लिए किया गया। स्वीकृत विकास संबंधी उद्देश्य देश के सभी भागों में ''ग्राम और लघु उद्योगों (VSI) सेक्टर के विस्तार द्वारा संतुलित क्षेत्रीय विकास'' की उपलब्धि के रूप में पुनः प्रचारित किये गए। इससे यद्यपि ''VSI सेक्टर'' शब्दावली प्रचलित सरकारी अभिधारणा हो गयी, परंतु ''लघु उद्योग सेक्टर'' से कुटीर और ग्राम उद्योगों असंबद्ध करने की प्रत्याशा की गई (बाद में इसे स्वरूप अपेक्षाकृत उच्चतर पूँजी आवश्यकताओं से पृथक किया गया) परिणामस्वरूप अधिक तीव्र नीतिगत फोकस का अभाव जारी रहा।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

ग्रामीण उद्योग और पिछड़े क्षेत्र विकास योजना (चौथी और पांचवीं योजनाएँ)

चौथी पंचवर्षीय योजना (1969-74) में ग्रामीण औद्योगिकीकरण के प्रयासों को ''पिछड़ा क्षेत्र विकास कार्यक्रम'' (BADP) नाम की नई परियोजना से ग्रामीण औद्योगिकीकरण के प्रयास से जोड़ा गया। कार्यक्रम में अधिक व्यापक विकास के केंद्रों के रूप में कार्य करने के लिए छोटे कस्बों और ग्रामीण क्षेत्रों में संवृद्धि केंद्रों की स्थापना की संकल्पना की गई थी। वांचू और पांडे कार्य दल की सिफारिशों का अनुसरण करते हुए पिछड़े क्षेत्रों में औद्योगिक इकाइयाँ स्थापित करने के लिए निजी उद्यमियों को वित्तीय, राजकोषीय और अन्य सहायता सेवाएँ (जैसे कच्चे माल की आपूर्ति, माल खरीद, मूल्य वरीयता, गुणवत्ता नियंत्रण, विपणन सहायता, आदि) प्रदान करने के लिए कार्यक्रम प्रारंभ किए गए। इसके अतिरिक्त, योजना ने RIP कार्यक्रम का विस्तार 49 कस्बों/जिलों तक किया। पांचवी योजना (1974-79) ने 15,000 तक की जनसंख्या के सभी कस्बों को शामिल करने के लिए RIP कार्यक्रम का विस्तार किया और 15,000 से अधिक जनसंख्या के कस्बों में प्रचालन करने के लिए BADP का पुनः अभिविन्यास किया।

छठवीं और सातवीं योजनाएँ : ग्राम और कुटीर उद्योगों पर अधिक बल

यद्यपि VSI शब्द का प्रयोग एकीकृत तरीके में प्रयुक्त किया जाता रहा। परंतु छठीं और सातवीं योजना अवधियों (1980-85 और 1985-90) लघु उद्योग (SSI) इकाइयों से कुटीर तथा ग्राम उद्योग (CVIs) पृथक करने का भेद लागू किया। 1978 में आरंभ किए गए नये गठित जिला उद्योग केंद्रों (DICs) को प्रत्येक जिले में VSIs के संवर्धन के लिए समग्र उत्तरदायित्व के साथ शक्ति प्रदान करते हुए छठी योजना ने उल्लेख किया कि लघु उद्योग सेक्टर के अंतर्गत ''अतिलघु सेक्टर'' पर विशेष ध्यान दिया जाएगा। इस पर अधिक बल देने के लिए 'कुटीर और पारिवारिक उद्योगों'' के लिए विशेष विधेयन प्रस्तुत किया गया था ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि इनके कार्यकलापों को उचित मान्यता प्राप्त होती रही है। यह नोट करना महत्त्वपूर्ण है कि यद्यपि अति लघु इकाइयों पर नीतिगत बल में भिन्नता का उल्लेख किया गया था, परंतु बहुत से अन्यों द्वारा यह विचार भी प्रस्तुत किया कि CVI में ''परंपरागत दस्तकारी स्वरूप'' पर बल ने उस सीमा तक CVI इकाइयों का गतिशील पक्ष स्वीकार करने में असफल होने से उसकी गति मंद करने में योगदान किया और उसे स्थैतिक बना दिया। दूसरे विचार ने दो सुविचारित तर्कों को आकर्षित किया : जैसे (i) सभी तीन आर्थिक सेक्टर, चक्रीय निर्भरता, अर्थव्यवस्था की चहुंमुखी समग्र वृद्धि की प्रगति और योगदान द्वारा आपस में सहायता प्राप्त करते हैं; और (ii) CVI को उन्हें प्रौद्योगिक दृष्टि से उन्नत तथा श्रेष्ठ बनाने के लिए उपाय प्रारंभ कर गतिशील बनाना आवश्यक है। संभवतः यह इस बात की अनुभूति यह है कि सातवीं योजना (1985-90) ने ''प्रौद्योगिकी उन्नयन के माध्यम से उत्पादन गुणवत्ता बढ़ाकर लागत कटौती प्राप्त कर और उत्पादन मिश्रण की पुनर्संरचना कर'' संपूर्ण VSI सेक्टर की उत्पादकता सुधारने पर बल दिया। अति लघु सेक्टर की वित्तीय कठिनाइयों के समाधान के लिए ''लघु और कुटीर उद्योग सेक्टर'' के लिए विभिन्न संस्थाओं द्वारा दी गई ऋण सुविधाओं की संपूर्ण श्रेणी का समन्वय करने के लिए भारत के औद्योगिक विकास बैंक में विशेष घटक बनाया गया था। इसके अलावा, शहरी क्षेत्रों में कारीगरों के पलायन रोकने की दृष्टि से ''ग्राम उद्योगों और कारीगरों'' के लिए पृथक आयोग स्थापित करने के सुझाव का संकेत भी सातवीं योजना में दिया गया था।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

उदारीकरण पश्चात् WTO की बाध्यताएँ और निःशर्त नीतिगत सहायता का मंथन

1991 में प्रारंभ की गई नई औद्योगिक नीति ने औद्योगिक संवर्धन के दृष्टिकोण में भारी परिवर्तन किए। धीरे-धीरे संरक्षण और संवर्धन के स्थान पर बाजार अभिमुखता और प्रतिस्पर्धा की दिशा में उपाय प्रारंभ हुए। आठवीं पंचवर्षीय योजना (1992-97) 1991 में एक वर्ष पहले प्रारंभ किए गए आर्थिक उदारीकरण की पृष्ठभूमि से शुरू हुई। CVI सेक्टर के लिए गतिशीलता उत्पन्न करने के लिए SSI ढांचे में निर्यातोन्मुखी इकाइयों का नया वर्गीकरण लागू किया गया था। CVI और SSI इकाइयों के बीच आगे विभेद किया गया जिसमें अविछिन्न आधार पर CVI इकाइयों (जैसे अति लघु उद्यमों) को बहुत लाभ जैसे संस्थागत वित्त की अधिक आसान सुलभता, सरकारी खरीद में प्राथमिकता, आदि दिए गए परंतु यही SSI इकाइयों के लिए सीमित कर दिए गए (कि वे केवल एक बार प्राप्त कर सकते हैं)। इस बात पर भी ध्यान दिया गया कि SSI इकाइयों को भी सहायता प्राप्त और अधिक सस्ता संस्थागत ऋण पर्याप्त और समय पर उपलब्ध हो। दूसरी ओर, लघु और अति लघु उद्यमों को तत्काल भुगतान अधिनियम पर कानून यह सुनिश्चित करने के लिए बनाया गया कि लघु/अतिलघु उद्योगों के बिलों का भुगतान समय पर हो। कृषि और उद्योग के बीच अधिक सुदृढ़ सहसंबंध बढ़ाने के लिए SSI इकाइयों के लिए एकीकृत आधारभूत संरचना विकास की नई योजना लागू की गई थी। इस सभी पहल कार्यों के बावजूद बाजार आधारित संकेतों और मांग को उचित महत्त्व देने पर भी बल था। इसके अधीन (i) आदान/मूल्य/विपणन सहायता का धीरे-धीरे उन्मूलन; (ii) बजट सहायता पर कम निर्भरता; (iii) प्राइवेट पहल कार्यों पर बढ़ा हुआ विश्वास और जोखिम उठाने की क्षमता जैसी विशेषताएँ प्रारंभ की गईं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

नौवीं से ग्यारहवीं योजना अवधियाँ

नौवीं योजना (1997-2002) में अति लघु इकाइयों की प्रतिस्पर्धी शक्ति बढ़ाने की आवश्यकता महसूस करते हुए 1999-2000 में इन इकाइयों को ''बैकिंग सेक्टर'' द्वारा प्राथमिकता ऋण की परिभाषा के अधीन लाया गया। राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम (NSIC) के तत्वाधान में एक प्रतिशत की अतिरिक्त सहायता प्राप्त रियायती ब्याज दर पर ''अति लघु सेक्टर'' के लिए विशेष वित्तीय पैकेज लागू किया गया। 2006 में ''सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम अधिनियम (MSME अधिनियम–2006) इस किस्म के उद्यमों की संवर्धन और विकास प्रतिस्पर्धात्मकता बढ़ाने के उद्देश्य से पास किया गया। अधिनियम का उद्देश्य बैंक ऋण की सुलभता, पूँजी और प्रौद्योगिकी की सुलभता, कौशल विकास/उन्नयन, बाजार आदि की समस्याओं का समाधान करने के लिए संस्थागत ढाँचा प्रदान करना है। ग्राम और लघु उद्योग (VSI) विनिर्माण सेक्टर में पर्याप्त मात्रा में रोज़गार के लिए जिम्मेदारी निभा रहा है। 2006 में स्वसंचालित उद्यमों ने विनिर्माण सेक्टर में अकेले 76.8 प्रतिशत रोज़गार दिया परंतु यदि हम भाड़े पर रखे गए पांच से कम कामगारों को रोज़गार देने वाले सभी स्थापनाओं को जोड़े तब विनिर्माण कार्य में सभी श्रमिकों का प्रतिशत और अधिक (अर्थात् 86.9 प्रतिशत) होता है।

पिछले पांच दशकों के दौरान ग्राम और लघु उद्योगों के संवर्धन और विकास के लिए कई विशेषज्ञ संस्थाएं और कार्यक्रम प्रारंभ किए गए। इस संबंध में निम्नलिखित पहल कार्य प्रमुख हैं : (i) खादी और ग्रामोद्योग बोर्ड, राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम और लघु

उद्योग सेवा संस्थानों की (सभी 1956-61 में) स्थापना; (ii) एकीकृत ग्राम विकास कार्यक्रम (1987); (iii) एकीकृत आधारभूत संरचना विकास केंद्रों की स्थापना के लिए योजना (1989-91); (iv) 24 राज्यों के 71 पिछले खंडों में रोज़गार पैदा करने के लिए जिला विशेष रोज़गार कार्यक्रम (1992-93); (v) हाथ से निर्मित कागज उद्योग, चमड़ा उद्योग और मधुमक्खी पालन उद्योग के संवर्धन के लिए ग्रामोद्योगों पर राष्ट्रीय परियोजना; (vi) खादी और ग्रामोद्योग के विकास के लिए ग्रामीण रोज़गार कार्यक्रम (1994-2001); (vii) बाँस और बेंत उद्योग के लिए समूह विकास कार्यक्रम (1998-1999); (viii) प्रत्येक वर्ष 100 समूहों के लिए ग्राम औद्योगिकीकरण के लिए राष्ट्रीय कार्यक्रम (1999-2000); (ix) दो वर्षों में 7.6 लाख रोज़गार पैदा करने के उद्देश्य से कृषि ग्राम उद्योगों के संवर्धन के लिए प्रधानमंत्री रोज़गार योजना (2000-03); और (x) भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक (SIDBI) और राष्ट्रीय कृषिक एवं ग्रामीण विकास बैंक (NABARD) के स्थापना में केवल ऐसे कुछ हैं जो 1950 से 2000 तक के 50 वर्षों की अवधि के दौरान स्थापित या क्रियान्वित किए गए थे।

यद्यपि ये सभी प्रयास अभी भी जारी हैं, 1991 के बाद के वर्षों के नीति वातावरण में बाजार आधारित नीतिगत सहायता की जड़ें भी सुदृढ़ता से स्थापित हो गई हैं। 1995 में WTO की स्थापना ने तैयारी की भावना पर अधिक फोकस के साथ विकसित करने पर बल दिया ताकि ''अधिक मुक्त आयात'' और ''आक्रामक निर्यात'' की व्यवस्था में प्रतिस्पर्धा करने में आने वाली बाधाकारी चुनौतियों का सामना कर सकें।

यद्यपि उपर्युक्त विहंगावलोकन से ग्रामीण क्षेत्रों में रोज़गार पैदा करने के लिए ग्राम औद्योगिकीकरण प्रोत्साहन करने के लिए सरकार द्वारा दी गई अविच्छिन्न नीतिगत सहायता की जानकारी प्राप्त होती है, परंतु यह देखना रोचक होगा, क्या ऐसे अनुभवजन्य प्रमाण भी उपलब्ध हैं जिनसे कालांतर में इन नीतियों के प्रभाव की सीमा का आकलन कर सकें।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

10.4 सरकार की नीतियों का प्रभाव

1984-85 से 2005-06 की अवधि के रोजगार के आंकड़े और विनिर्माण इकाइयों की संख्या (तालिका 10.1) दर्शाती है कि 20 वर्षों की अवधि के दौरान पूर्णकालिक रोजगार और इकाइयों की संख्या में गिरावट आई है। हम विशेष रूप से स्व-संचालित उद्यमों पर फोकस कर रहे हैं क्योंकि यह अति लघु इकाइयों की वृद्धि है जिनसे ग्रामीण क्षेत्रों में अपेक्षाकृत अधिक सुविधा वंचितों को रोज़गार देने की आशा की जाती है। प्रति इकाई औसत रोज़गार 1985-2001 के दौरान बढ़ा है। परंतु यह फिर 2006 में अपने 1985 के स्तर पर नीचे आ गया। इसलिए प्रथम दृष्टि में यह सुझाव देने के लिए कोई निर्णायक अनुभवजन्य प्रमाण नहीं है कि 1985-2006 की अवधि ने VSI सेक्टर के लघुतम भाग में विनिर्माण कार्यों के कारण ग्रामीण क्षेत्रों में रोज़गार और इकाइयों की संख्या के अनुसार कोई उल्लेखनीय परिवर्तन देखा है। परंतु अंशकालिक रोज़गार के अनुसार 1985-2006 की संपूर्ण अवधि में अनुकूल वृद्धि हुई है। यह प्रमाण देता है कि अति लघु इकाइयों को कुछ सीमा तक ग्राम औद्योगिकीकरण द्वारा कारण रोज़गार स्तर को सुधारने में योगदान किया है।

तालिका 10.1 : स्व-संचलित ग्रामीण असंगठित विनिर्माण कार्यों में रोज़गार

वर्ष	रोज़गार का प्रकार (मिलियन में)			इकाइयों की संख्या (मिलियन में)	प्रति इकाई औसत रोज़गार (कुल रोज़गार का)
	पूर्णकालिक	अंशकालिक	योग		
1984-85	18.99	3.25	21.91	13.44	1.63
2000-01	14.87	4.28	19.15	11.06	1.73
2005-06	13.52	4.52	18.02	11.11	1.62

नोट : स्रोत (i) दास के (2009), (ii) आंकड़े own account उद्यमों और ग्रामीण क्षेत्रों से संबंधित हैं।

तालिका 10.2 : ग्रामीण क्षेत्रों में कुल बैंक ऋण में प्रतिशत अंश 1996-2007

वर्ष	1996	1997	1998	1999	2000	2001	2002	2003	2004	2005	2006	2007
कारीगर	2.0	2.2	2.0	2.1	1.7	1.3	1.7	1.5	1.5	1.2	1.0	1.1
SSI	6.6	6.0	5.1	5.6	4.8	4.1	3.2	2.6	3.0	2.6	2.6	2.5

स्रोत : दास के, 2000

ग्राम औद्योगिकीकरण प्रगति में प्रत्याशित प्रगति के अभाव के प्रमुख निर्धारक तत्वों में एक ''औद्योगिक ऋण'' की सुलभता में ह्रास है। (तालिका 10.2) ''कारीगरों'' और ''SSI इकाइयों'' के लिए बैंक ऋण के प्रतिशत शेयर में 1996-2007 अवधि के दौरान लगातार ह्रास देखा गया है। यह इस तथ्य के बावजूद हुआ है कि वर्ष 1999-2000 में ''अतिलघु सेक्टर'' को विशेष ''प्राथमिकता सेक्टर'' नीति के अधीन लाया गया था। यद्यपि अपेक्षाकृत अधिक बड़े SSI सेक्टर के लिए भी परिस्थिति समान रूप से कठिन थी (जिनकी क्षमता अतिलघु इकाइयों की क्षमता की तुलना में संस्थागत ऋण की आवश्यकताओं के लिए अधिक अनुकूल थी) यह अतिलघु इकाइयों द्वारा अपनी पूँजी आवश्यकताओं के लिए सामना की गई खास कठिनाइयों को व्यक्त करता है। उपर्युक्त साक्ष्य इस दृष्टिकोण का समर्थन करता है कि ग्राम औद्योगिकीकरण नीतियाँ वैसी नहीं बनाई गई जैसी शताब्दी के अंतिम चतुर्थांश में और 1990 की दशाब्दी की उदारीकरण बाद आशा की गई थी। इसलिए ग्राम औद्योगिकीकरण की प्रक्रिया के लिए संस्थागत ऋणों की उपलब्धता निःसंदेह सीमाकारी कारक रहा है, फिर भी हमें अब यह देखना चाहिए कि, इस मंद प्रगति में किन-किन अन्य कारकों का योगदान रहा है। हम इस पर अगले भाग में विचार करेंगे।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 2

अपने उत्तर नीचे रिक्त स्थान पर लिखिए।

1) ''लघु उद्योग'' किस तरह ''कुटीर उद्योग'' से भिन्न है?

....

....

....

2) नीतिगत ध्यान आकर्षित करने के लिए लघु उद्योगों से कुटीर उद्योगों की बराबरी उचित ठहराने के लिए विश्लेषणकर्ताओं द्वारा क्या वैकल्पिक विचार प्रस्तुत किया गया है? क्या आप इस विचार का समर्थन करते हैं?

....

....

....

....

3) किस योजना में पहली बार ''लघु उद्योगों'' से ''कुटीर और ग्रामोद्योग'' का स्पष्ट विभाजन किया गया था? वे कौन-से **तीन** क्षेत्र हैं जिनके संबंध में 1990 के दशक में प्रवर्तित सरकारी नीति से ''छोटी इकाइयों'' के प्रतिपादन में प्रमुख परिवर्तन हुआ?

....

....

....

....

4) स्थापित की गई पांच प्रमुख संस्थाओं का उल्लेख कीजिए और 1951-2000 के बीच भारत में ग्राम उद्योगों को प्रोत्साहित करने के लिए सरकार द्वारा क्रियान्वित कुछ प्रमुख कार्यक्रमों के नाम बताइए।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

....

....

5) उदारीकरण पश्चात् अवधि में छोटी औद्योगिक इकाइयों द्वारा के सामने आई एक मुख्य कठिनाई क्या रही है?

....

....

....

....

10.5 ग्रामीण कृषीतर सेक्टर

हमने भाग 10.2 में देखा है कि कृषीतर सेक्टर में प्रगति ग्रामीण औद्योगिकीकरण के सफल विकास की प्रक्रिया का स्वाभाविक परिणाम है। ग्रामीण कृषीतर सेक्टर की प्रगति पर साहित्य ने उसकी सफल संवृद्धि के लिए कई पूर्व शर्तों की पहचान की है। दो मुख्य कारक हैं : पर्याप्त बुनियादी भौतिक और आर्थिक आधारभूत संरचना, जैसे (i) अच्छा परिवहन, पर्याप्त बिजली, भंडारण और बैंकिंग सुविधाएँ आदि; और (ii) स्थानीय अर्थव्यवस्था से बाहर की वृहद् औद्योगिक अर्थव्यवस्था से ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि और कृषीतर सेक्टर के बीच सुविकसित सक्रियात्मक संबंध। खासतौर पर भारतीय अर्थव्यवस्था

और आमतौर पर दक्षिण एशियाई अर्थव्यवस्था की इन दोनों दिशाओं में प्रमुख कमजोरी ही दिखाई दी है। चीन की सफलता पर प्रचुर साहित्य है। वह न केवल उपर्युक्त दोनों दिशाओं सफल हुआ है बल्कि प्रौद्योगिकी उन्नयन और कौशल निर्माण पर भी वहां स्पष्ट फोकस रहा है। भारतीय दशाएं देश के कुछ समृद्धशाली राज्यों को छोड़कर ग्रामीण कृषीतर (RNF) सेक्टर को मुख्यतः प्रथम अवस्था में रखती है। इस संबंध में तीन अवस्थाओं की क्या विशेषताएँ हैं, उनका विवरण नीचे दिया गया है।

10.5.1 संवृद्धि की तीन अवस्थाएँ

रूपांतरण की **पहली अवस्था में RNF सेक्टर** निम्नलिखित की ओर अग्रसर होता है :

- ग्रामीण आबादी के बहुत बड़े भाग को सीधे रोजगार देकर कृषि से उत्पादन या व्यय का कृषि से सहसंबंधन होना;
- RNF कार्यों में ग्रामीण-शहरी पश्च अग्र सहसंबंधन पर कम निर्भरता से कस्बों/शहरों के अधिक समीप केंद्रित होने की प्रवृत्ति;
- RNF कार्य मुख्यतया गृह आधारित हो सकते हैं।
- बहुत कम मात्रा का उत्पादन जो व्यापार के लिए नहीं है (जैसे ऐसा माल जो मुख्यतया स्थानीय रूप से बेचा जाता है)। ऐसा माल ग्रामीण क्षेत्रों के बदले गांव के अंतरस्थ भाग में उत्पादित किया जाता है; और
- फार्म/गैर-फार्म सहसंबंधन के अनुसार कृषि में निम्नलिखित पर निर्भर होने की प्रवृत्ति होती है : (i) फार्म निवेश और सेवाओं की स्थानीय आपूर्तियाँ; और (ii) फार्म उत्पादों का स्थानीय प्रसंस्करण और वितरण। यह कार्य सामान्यतया छोटे से मध्यम आकार की कंपनियों द्वारा किया जाता है, जिनमें भारत के संदर्भ में 1 से 10 तक कामगार भाड़े पर काम पर लगाए जाते हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

रूपांतरण की **दूसरी अवस्था में RNF सेक्टर** की पहचान निम्नलिखित से होती है :

- जैसे कृषि से सहबंधन और अन्यों से जैसे खनन पर्यटन आदि से भी सहसंबंधन आदि स्थितियों के अधिक मिश्रण की ओर प्रवृत्ति;
- कृषि पर निर्भर रहने वाले ग्रामीण समुदाय का अंश RNF रूपांतरण की पहली अवस्था की तुलना में स्पष्ट रूप में घट सकता है;
- वस्त्रों के मामले में कम टिकाऊ शहरी व्यापार का उपठेका देकर RNF रोज़गार के आधार के रूप में ग्रामीण शहरी सहबंधन की मात्रा में वृद्धि;
- देहाती और ग्रामीण कस्बों के बीच श्रमिक शक्ति के अंतरण में तीव्र वृद्धि;
- छोटे और मध्यम की तथा विशाल स्थापनाओं की भी कृषि औद्योगिक इकाइयों की तेज़ी से वृद्धि; और
- ग्रामीण और अर्ध ग्रामीण स्थानों एक ही उत्पाद का उत्पादन करने वाली अपेक्षाकृत पूँजी प्रधान स्थापनाओं के साथ-साथ लघु श्रमिक प्रधान उत्पादन उद्यमों का सहअस्तित्व।

रूपांतरण की **तीसरी अवस्था में RNF** निम्नलिखित विशेषताओं द्वारा पहचाना जाता है:

- उन विशेषताओं की तीव्रीकरण जो पहली अवस्था से दूसरी अवस्था को अलग करती हैं;
- उप ठेका व्यवस्था और बढ़े हुए श्रम अंतरण से प्रेरित ग्राम-शहर सहसंबधन की अधिक मात्रा;
- कम टिकाऊ से मध्यम टिकाऊ वस्तुओं, जैसे वाहनों के कलपुर्जों से भी आगे उप ठेकों का विस्तार;
- कृषि से सहसंबंधन के बाद उत्पन्न होने वाला पर्याप्त RNF रोजगार; और
- वाणिज्यिक कृषि प्रथाओं/सिद्धांतों पर आधारित तीव्र कृषि औद्योगिकीकरण।

जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, दक्षिण एशिया और अफ्रीका को RNF रूपांतरण की पहली अवस्था में माना जाता है। रूपांतरण की दूसरी अवस्था में लेटिन अमेरिका और RNF रूपांतरण की तीसरी अवस्था में पूर्वी एशिया को कहा जाता है।

10.5.2 दो संबद्ध परिकल्पनाएँ

ग्राम औद्योगिकीकरण की प्रक्रिया के परिणामों की इष्टतम प्राप्ति के लिए अपेक्षित दशाओं पर दो परिकल्पनाओं की प्रस्तुति की गई है। यद्यपि एक प्रौद्योगिकी प्रेरित कृषि प्रगति पर बल देती है, परंतु दूसरी फार्म पर-फार्म से परे विकास के माध्यम से पूँजी आकर्षित करने के लिए श्रम बहुल क्षेत्रों के कारकों की पहचान करता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

जॉनस्टन–मेल्लोर अभिकल्पना

मेल्लोर (1978) ने गैर-फार्म सेक्टर की कृषि संचालित संवृद्धि पर आधारित अभिकल्पना प्रस्तुत की। उसने उल्लेख किया कि कृषि सेक्टर में प्रौद्योगिकी प्रेरित प्रगति का परिणाम ग्रामीण विविधीकरण हो सकता है। गैर-फार्म सेक्टर (उर्वरक, बीज, शाकनाशी, पम्प, स्प्रेअर, उपकरण और मरम्मत सेवा आदि) कृषि से उत्पादन में प्रयुक्त आदानों द्वारा उसकी संवृद्धि में योगदान कर सकता है। प्रतिस्वरूप पेराई/ (मिलि का) प्रसंस्करण कार्य प्रोत्साहित हो सकते हैं। दूसरी ओर, बढ़ती हुई फार्म आय से बुनियादी उपभोक्ता माल के लिए बढ़ा हुआ उपभोग सहबंधन बढ़ सकता है जो समय के चलते खाद्य इत्तर मदों में फैल सकता है। इस दृष्टिकोण के आगे सुधार में जानस्टॉन मेल्लोर ने बाद में ग्रामीण क्षेत्रों और छोटे कस्बों दोनों में गैर-कृषिक माल और सेवाओं की मांग में अधिक वृद्धि करने के साथ उच्च भूमि उत्पादकता को संबद्ध किया है। इस प्रकार, फार्म उत्पादकता और गैर-कृषिक कार्य पारस्परिक समर्थित विकास का सद्भावनापूर्ण चक्र बनता है। पंजाब और अन्य राज्यों में हरित क्रांति की प्रगति को भारत में देखा गया। इस किस्म की संवृद्धि का उदाहरण माना गया है। मेल्लोर की अभिकल्पना दो आवश्यक मान्यताओं के अधीन लागू होती है, जैसे (i) कृषि और कृषीतर के बीच निकटतम सहसंबंधन गांव के और/या ग्राम के निकटतर क्षेत्रों में आरंभ हुआ है; और (ii) उन क्षेत्रों में गैर-कृषिक क्षेत्र की तीव्र प्रगति के लिए उपयुक्त दशाओं की उपस्थिति होना।

फोस्टर-रोजेनस्विग अभिकल्पना

फोस्टर और रोजेनस्विग (2004) ने गैर-कृषिक क्रियाकलापों की व्यापारित और गैर-व्यापारित किस्मों में अंतर करने की वैकल्पिक अभिकल्पना की। जबकि गैर-व्यापारित तो स्थानीय अर्थव्यवस्था के विकास की एक प्रशाखा है, स्थानीय विकास के साथ व्यापारित भाग का जुड़ा होना आवश्यक नहीं है। ग्रामीण क्षेत्रों में व्यापारिक गतिविधि का विकास स्थानीय अर्थव्यवस्था में बाहर से आई पूँजी निवेश का परिणाम हो सकता है जो सस्ती मज़दूरी पर उपलब्ध अतिरिक्त श्रम चाहते हैं। इसलिए कम भूमि उत्पादकता के निम्न मज़दूरी क्षेत्र ऐसा निवेश आकर्षित कर सकते हैं जिससे आकर्षण प्रभाव किस्म का गैर-कृषिक विकास हो सकता है। गैर-कृषिक रोज़गार का अनुपात ऐसे क्षेत्रों में अधिक हो सकता है, जहां बाह्य पूँजी आकर्षित हुई है। यह मेल्लोर द्वारा सुझाए गए उच्चतर कृषिक प्रौद्योगिकी के फलस्वरूप आय वृद्धि के प्रभाव से कहीं भिन्न है। जॉनस्टन मेल्लोर अभिकल्पना और फोस्टर-रोजेनस्विग विकल्पों के बीच बुनियादी अंतर यह है कि पहले मामले में उच्चतर ग्रामीण मज़दूरी/आय के निहितार्थ होंगे, जबकि दूसरे मामले में मजदूरी आय प्रभाव का कोई खास पूर्वानुमान स्वतः नहीं हो सकता है, क्योंकि, ये श्रम बाजार विस्तार के अन्य कारकों पर निर्भर होगा।

भारत में हरित क्रांति का प्रभाव केवल कुछ ही राज्यों में महसूस किया गया। कई अन्य राज्यों को उसके प्रभाव से बाहर छोड़ा गया। इस दृष्टि से जॉनस्टान-मेल्लोर अभिकल्पना की मान्यता, जिनका उल्लेख पंजाब जैसे समृद्ध कृषि प्रौद्योगिकी आधारित क्षेत्रों में किया गया है, अन्य स्थानों में नहीं देखी गई है। यह भारत में ग्रामीण औद्योगिकीकरण प्रगति/लाभ के असमान विस्तार के कारणों का भी संकेत देता है। फिर भी ये अभिकल्पनाएँ उन भिन्न-भिन्न दशाओं की संभावना भी स्पष्ट करती है जिनमें गैर-कृषिक फार्म सेक्टर की संवृद्धि के लिए प्रोत्साहन प्राप्त हो सकते हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

10.6 भावी नीति के लिए रणनीति

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि ''अतिलघु (या माइक्रो), मध्य आकार की इकाइयों (जिन्हें उच्चतर पूँजी अनुप्रेरण से छोटी इकाइयों को आधुनिक शहरी उद्यमों के लगभग सदृश्य समझा जाता है) को प्रोत्साहित करने की नीतियों को निम्नलिखित पर फोकस करना चाहिए –

1) लघु उद्यमों या स्थापनाओं को प्रोत्साहित करने के विश्वभर में समूह दृष्टिकोण का अनुसरण किया गया है। भारत में यह प्रयोग क्षेत्रीय दृष्टिकोण पर फोकस के साथ किया गया था। यह कहा जाता है कि प्रादेशिक या स्थानिक कठिनाइयों के कारण यह असफल रहा। इस स्थिति को ''उत्पादन समूहों'' को ''नवीनतायुक्त समूहों'' में रूपांतरित करने के लिए अपेक्षित प्रौद्योगिकीय गत्यात्मकता से सुधारा जा सकता है। समूहों के निर्माण से ग्रामीण कारीगरों को अपने बहुत से आकार और मात्रा विशिष्ट अवरोध हटाने में सहायता मिलेगी।

2) व्यापार और उत्पादन में नवीनता को समर्थन देने के मुख्य पहलुओं में एक उद्यमों को बिजली की आपूर्ति सुनिश्चित करना है। यह एक ही अकेली बाधा भारत के संदर्भ में अत्यधिक गहन है। यह तर्क दिया गया है कि इस गंभीर बाधा के निवारण का भरोसा उद्यमों की उत्पादकता सुधारने में बहुत महत्त्वपूर्ण सिद्ध होगा।

3) क्षेत्रीय विकास के परिप्रेक्ष्य से 'समूह' की प्रौद्योगिकीय क्षमता मुख्यतः स्थानीय स्थायी सामर्थ्य जैसे सामाजिक, भौतिक और आर्थिक आधारभूत संरचना द्वारा निर्धारित की जाती है। बहुत से मामलों में, या तो नव प्रणवन की प्रणाली घटिया ढंग से तैयार की जाती है या बिल्कुल विद्यमान ही नहीं होती। सार्वजनिक प्रशिक्षण संस्थाएँ जैसे 17%, ग्रामीण औद्योगिक उपक्रमों को उपयुक्त प्रशिक्षण देने में अधिक सहायक नहीं है। संस्थाओं, नियमों और शासन व्यवस्था को पूरी तरह से पुनः अभिकल्पना आवश्यक है।

4) स्थापित किए जाने वाले ग्रामीण उद्योगों की आवश्यकताओं के प्रौद्योगिकीय पहलुओं के अनुकूल विशेषज्ञ संस्थाओं और विश्वविद्यालयों में अनुसंधान से अपेक्षित सहक्रिया स्थापित की जानी चाहिए। इस संदर्भ में "एक गांव एक उत्पाद" जैसा कि जापान और थाईलैंड में सफलतापूर्वक क्रियान्वित हुआ है, की प्रासंगिकता पर उत्पाद संवर्धन और विपणन आवश्यकताओं के लिए नेटवर्किंग में उपयुक्त सहायता के विस्तार पर विचार करना आवश्यक है।

5) ग्रामीण उद्योग उत्पादों की विविधता, कार्य के पैमानों, मार्केट विस्तार आदि का विशाल समूह है। शिल्पकारी सेक्टरों में सभी प्रकार की छोटी-छोटी इकाइयों की विशाल संख्या है जिनमें स्थानीय मांग पूर्ति की नम्यता और क्षमता है। ग्रामीण औद्योगिकीकरण के स्थायी विकास के लिए सबसे सुदृढ़ तर्क स्थानीय मांग संभावना का संवर्धन है। बहुत से शिल्पि और छोटे-छोटे उद्यम के सेवा प्रवाहों और प्रौद्योगिकी आपूर्तिकर्ताओं के बीच समुचित समन्वय के अभाव के कारण शुरू की गई बहुत योजनाओं के लाभ से वंचित रह गए हैं। लचीली और समावेशी दृष्टिकोण फार्म और नॉन-फार्म सेक्टरों के बीच प्रतीकात्मक समन्वय प्रोत्साहित कर टिकाऊ बनाने में सहायक हो सकता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

6) उत्पन्न की जा रही प्रौद्योगिकी और ग्रामीण उद्यमों को उसकी सुलभता के बीच बड़ी **असंबद्धता** विद्यमान है। ग्रामीण प्रौद्योगिकी संस्थानों (RTIs) द्वारा विकसित प्रौद्योगिकी को व्यापक आधार पर अपनाने के प्रयास सीमित रहे हैं तथा घटिया तरीके से नियोजित/निष्पादित हुए हैं। ग्रामीण औद्योगिकीकरण नीतियाँ न केवल उत्पादन क्षेत्र में नवाचारी प्रकृति प्रवर्तन के लिए रणनीतिक तरीके में क्रियान्वित होनी चाहिए, बल्कि, उत्पादकता सुधार के लिए व्यापक आधार का कौशल प्राप्ति में भी सहायक होनी चाहिए।

7) ग्रामीण औद्योगिकीकरण का विषय बहुत से सरकारी विभागों/मंत्रालयों जैसे उद्योग/मंत्रालय, कृषि और ग्रामीण उद्योग विभाग, ग्राम विकास मंत्रालय, खाद्य संसाधन उद्योग विभाग आदि द्वारा नियंत्रित किया जाता है। इन संस्थाओं में समुचित समन्वय के अभाव के फलस्वरूप देश में ग्रामीण औद्योगिकीकरण की प्रगति धीमी रही है। इसलिए देश में ग्रामीण औद्योगिकीकरण का संवर्धन करने वाले विभिन्न कार्यकलापों के बीच समुचित समन्वय स्थापित करने पर फोकस करना महत्त्वपूर्ण है।

बोध प्रश्न 3

नीचे दिए स्थान में लगभग 50 शब्दों में उत्तर दीजिए।

1) ग्रामीण गैर कृषिक सेक्टर (RNFS) की सफल वृद्धि के लिए पूरी की जाने वाली अपेक्षित पूर्व शर्तों के रूप में पहचान किए गए दो मुख्य कारक क्या हैं?

....

....

....

2) वर्तमान समय में भारतीय RNFS संवृद्धि की किस अवस्था में है?

....

....

....

3) वह आधारभूत सिद्धांत क्या था जिस पर जॉनस्टन मेल्लौर ने (RNFS) की संवृद्धि की अपनी अभिकल्पना आधारित की थी? फोस्टर-रोजेनस्विग द्वारा प्रस्तावित विकल्प क्या था? इन दोनों में से किसे भारतीय दशाओं में विद्यमान होना देखा गया है और क्यों?

....

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

10.7 सारांश

भारतीय कृषि में अल्परोज़गार की व्यापकता अच्छी तरह से स्वीकार की गई है और इस दशा के उन्मूलन के लिए ग्रामीण गैर-फार्म कार्यों को प्रोत्साहित करने के लिए कई उपाय प्रारंभ किए गए थे। निश्चित औद्योगिकीकरण नीतियों और कार्यक्रमों के माध्यम से ग्राम विकास आगे बढ़ाने के लिए सक्रिय सरकारी सहायता का महत्त्व 1940 के दशक के बाद से स्वीकार किया गया है परंतु ग्रामीण सेक्टर में विभिन्नताएँ इस प्रकार हैं कि वास्तविक क्रियान्वयन में बहुत ''छोटे'' या माइक्रो इकाइयों (विनिर्माण में कुल रोज़गार का लगभग 86 प्रतिशत रोज़गार देता है) को बहुत सी योजनाओं और कार्यक्रमों से प्रभावशाली ढंग से लाभ प्राप्त करने से वंचित किया जाता है। छोटी इकाइयों को अपने उत्पादों को बढ़ाने के लिए प्रतिस्पर्धा के दायित्व ने बहुत से ग्रामीण औद्योगिक इकाइयों को अपनी पहुंच या नियंत्रण के लिए बाहरी ताकतों को अधिक संवेदनशील बना दिया है। अब तक अनुप्रयुक्त प्रथाओं से आमूलचूल पुनःअभिविन्यास के लिए आवश्यक वैकल्पिक नीतिगत रणनीति समय की जरूरत है। सेवा प्रदाताओं और बहुत छोटी इकाइयों में सहयोग, उत्पादकता सुधार के लिए व्यापक आधार का कौशल, संवेदनशील सरकारी सहायता पर आधारित समावेशी दृष्टिकोण आदि विकसित करने, बहुत छोटी/मध्यम इकाइयों के लिए उपयुक्त प्रौद्योगिकी के विकास और हस्तांतरण पर बल के साथ समूह दृष्टिकोण का अनुसरण सभी ऐसी वैकल्पिक रणनीति के महत्त्वपूर्ण तत्व है।

10.8 शब्दावली

ग्रामीण कारीगर : इसमें दस्तकारी और हथकर्घा बुनकर शामिल हैं। इनसे अभिप्राय परंपरागत कौशल और पारिवारिक श्रम तथा कम पूँजी लगाकार कार्य संचालन से है। यह ''स्व-संचलित उद्यमों'' तथा उन छोटी स्थापनाओं के समान हैं जो कम संख्या में (5 से कम) भाड़े पर कामगारों को रोज़गार देते हैं, सरकारी शब्दावली में ये 'निदेशिका इतर' स्थापनाएँ कहलाती हैं।

ग्रामीण नॉन-फार्म सेक्टर : इसमें सभी कृषीतर कार्य शामिल हैं, जैसे पारिवारिक/ गैर पारिवारिक उद्यमों से कारखानों तक भिन्न-भिन्न आकार के उद्यमों द्वारा शुरू किए गए गांवों और ग्रामीण कस्बों में खनन और खादान, विनिर्माण, प्रसंस्करण, मरम्मत, निर्माण कार्य, व्यापार और वाणिज्य, परिवहन और अन्य सेवाएँ।

तेज़ी से बढ़ता हुआ उपभोक्ता माल : ये उन उत्पादों, जैसे, प्रसाधन साबुन, अचार, शहद आदि के लिए प्रयुक्त किया जाता है, जिनके लिए विशाल घरेलू मांग होती है और उनमें से अधिकांश का उत्पादन ग्रामीण क्षेत्रों में बहुत छोटे उद्यमों/इकाइयों में हो सकता है या हो रहा है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

ग्राम उद्योग : ग्रामीण क्षेत्रों में स्थित कोई भी उद्योग बिजली उपयोग कर या न करके माल या सेवाओं का उत्पादन कर रहा हो जिसमें प्रति कारीगर या श्रमिक निश्चित पूँजी निवेश (अर्थात् संयंत्र और मशीनरी भूमि, भवन आदि) विनिर्दिष्ट उच्चतम सीमा से अधिक न हो।

खादी और ग्राम उद्योग : उद्योगों का अभिप्राय ग्रामीण क्षेत्रों में स्थानीय संसाधन आधारित उत्पादों और परंपरागत शिल्प को प्रोत्साहन देना है। ग्रामीण क्षेत्र जनसंख्या को ध्यान में रखे बिना राज्य के राजस्व रिकार्डों के अनुसार ग्राम के रूप में वर्गीकृत कोई भी क्षेत्र है। यह उन क्षेत्रों को भी शामिल करता है जिन्हें कस्बों के रूप में वर्गीकृत किया गया है परंतु उसकी जनसंख्या 20,000 से अधिक नहीं है।

खाद्य पार्क : ये खाद्य प्रसंस्करण मंत्रलाय द्वारा पूँजी प्रधान सामान्य सुविधाएँ जैसे शीत भंडारण, गोदाम (वेयर हाऊस) गुणवत्ता नियंत्रण प्रयोगशालाएँ, निस्सारी उप-संयंत्र आदि में समीपवर्ती संसाधन इकाइयों को प्रदान करने के लिए देश के भिन्न-भिन्न भागों में स्थापित किए गए हैं।

10.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Chadha G. K., and Sahu, P. P. (2005): “Rural Industrialisation in India: A Critical Assessment of Policy Perspectives”, in *Rural Transformation in India: The Role of Non-Farm Sector* ed. By Rohini Nayyar and Alakh N. Sharma, Institute of Human Development, New Delhi, pp. 395-414.

Das, Keshab (2009): “Broad-basing Rural Industrialisation in India: Approaches and Challenges”, Working Paper (SIID-01/2009), Gujarat Institute of Development Research, Ahmedabad.

Mazumdar Dipak & Sarkar Sandip (2008): Globalization, Local Markets and Inequality in India, Routledge Studies in the Growth Economies of India, NY. Pp. 154-156.

10.10 बोध प्रश्नों के उत्तर/संकेत

बोध प्रश्न 1

1) देखिए भाग 10.2 और उत्तर दीजिए।
2) प्राथमिक/माध्यमिक/तृतीयक, संगठित/असंगठित–पारिवारिक, सार्वजनिक/ निजी, नॉन फार्म/ ऑफ फार्म, नौ औद्योगिक श्रेणियों के लिए; देखिए भाग 10.2, ''उद्योग'' पर पैरा और उत्तर दीजिए।
3) देखिए भाग 10.2 और उत्तर दीजिए।
4) देखिए भाग 10.2 और उत्तर दीजिए।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 2

1) देखिए भाग 10.3, I/II योजना अवधि पर पैरा और उत्तर दीजिए।
2) देखिए भाग 10.3, VI/III योजना अवधि पर पैरा और उत्तर दीजिए।
3) देखिए भाग 10.4 VI/VII योजना अवधि पर पैरा VIII योजना अवधि तथा उत्तर दीजिए।
4) देखिए भाग 10.3, IX/X/XI योजना अवधि और उत्तर दीजिए।
5) देखिए भाग 10.4 और उत्तर दीजिए।

बोध प्रश्न 3

1) देखिए भाग 10.3 और उत्तर दीजिए।
2) देखिए उपभाग 10.5.1 (अंतिम पैरा) और उत्तर दीजिए।
3) देखिए उपभाग 10.5.2 और उत्तर दीजिए।
4) देखिए उपभाग 10.5.2 (अंतिम पैरा) और उत्तर दीजिए।
5) देखिए भाग 10.6 और उत्तर दीजिए।

इकाई 11 हरित क्रांति

संरचना

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 हरित क्रांति की अवधारणा

11.2.1 ऐतिहासिक संदर्भ

11.2.2 हरित क्रांति की मुख्य विशेषताएँ

11.3 हरित क्रांति का प्रभाव

11.3.1 सकारात्मक प्रभाव

11.3.1.1 खाद्यान्नों के उत्पादन और उत्पादकता में वृद्धि

11.3.1.2 रोजगार सृजन

11.3.1.3 कृषि में सार्वजनिक/निजी निवेश का प्रवाह

11.3.1.4 भूमि की बचत

11.3.1.5 ग्रामीण कृषीतर अर्थव्यवस्था पर प्रभाव

11.3.2 नकारात्मक प्रभाव

11.3.2.1 मृदा उर्वरता में ह्रास

11.3.2.2 जैव विविधता की क्षति

11.3.2.3 भौमजल संसाधनों का अवक्षय

11.3.2.4 छोटे और सीमांत किसानों पर प्रभाव

11.3.2.5 कृषि में अतिपूँजीकरण

11.3.2.6 असमानताओं में बढ़ोतरी

11.3.2.7 पारिस्थितिकी और पर्यावरण पर प्रभाव

11.3.2.8 ऊर्जा समस्याएँ

11.4 हरित क्रांति के पश्चात् के प्रयास

11.5 हरित क्रांति से जीन क्रांति तक

11.6 सारांश

11.7 शब्दावली

11.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

11.9 बोध प्रश्नों के उत्तर/संकेत

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

11.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप :

- हरित क्रांति (GR) की अवधारणा समझा सकेंगे;
- प्रथम हरित क्रांति के ऐतिहासिक संदर्भ और मुख्य विशेषताओं की रूपरेखा प्रस्तुत कर सकेंगे;

- हरित क्रांति की विशेषताओं का, उसके सकारात्मक और नकारात्मक दोनों आयामों से वर्णन कर सकेंगे; और
- हरित क्रांति के बाद उन प्रयासों की आवश्यकता निर्दिष्ट कर सकेंगे जो उन क्षेत्रों का कृषि विकास प्राप्त करने के लिए प्रारंभ किये जाने आवश्यक हैं जिनमें हरित क्रांति नहीं फैली है।

11.1 प्रस्तावना

स्वतंत्रता के बाद कृषि विकास और खाद्य सुरक्षा भारत की मुख्य समस्याएँ रही हैं। परंतु उन पर बल विविधतापूर्ण रहा है। परिणाम यह हुआ कि कृषि सेक्टर के विकास ने सविरामी रूप से शिखर और गर्त देखे। पहली पंचवर्षीय योजना ने अपने मुख्य फोकस के रूप में कृषि के विकास को अपने मुख्य केंद्र पर रखा। इसके बावजूद दूसरी पंचवर्षीय योजना के दौरान भारत ने गंभीर खाद्य कमी का सामना किया है।

इस समस्या से निपटने के लिए 1958 में भारत में खाद्यान्न कमी के कारणों की जाँच करने और उपचारी उपाय सुझाने के लिए (संयुक्त राज्य के कृषि विभाग के डॉ. एस. एफ. जानसन की अध्यक्षता में) विशेषज्ञों का दल आमंत्रित किया। दल ने ('India"s Food Problem and Steps to meet it' (1959)'' नाम से अपनी रिपोर्ट में) सिफारिश की कि भारत को उन क्षेत्रों पर अधिक फोकस करना चाहिए जहाँ कृषि उत्पादकता बढ़ाने की संभावना अधिक है। इसके परिणामस्वरूप पहले से ही विकसित हुए क्षेत्रों को अधिक खाद्यान्न पैदा करने के सघन खेती के लिए चुना गया। बाद में 1960 के दशक में दो मुख्य कार्यक्रम, अर्थात् सघन कृषि क्षेत्र कार्यक्रम (IAAP 1961) और सघन कृषि जिला कार्यक्रम (IADP, 1964) प्रारंभ किए गए। इन दोनों कार्यक्रमों ने सिंचाई, उर्वरक, कृषि अनुसंधान और विकास, शिक्षा और विस्तार सेवाओं पर भारी निवेश किया, जिसने मिलकर परिणामतः भारतीय कृषि में उत्पादकता और उत्पादन में उच्च वृद्धि को संभव बनाया। आमतौर पर इसका हरित क्रांति (GR) के रूप में उल्लेख किया गया। यद्यपि इसकी सफलता व्यापक रूप से स्वीकार की गई परंतु वास्तविकता यह है कि इसे केवल पहले से ही कृषि की दृष्टि से विकसित भौगोलिक क्षेत्रों में फोकस किया गया था और उन्हीं क्षेत्रों में सघन निवेश द्वारा बढ़ाया गया था। इसकी सारी रचना उसके क्षेत्रीय विकास के पक्षधर दृष्टिकोण पर ही आधारित थी। दूसरे शब्दों में, उसके दृष्टिकोण और अभिकल्पना में सभी क्षेत्रों के संतुलित विकास पर आग्रह स्पष्ट नहीं था। इसलिए यद्यपि हरित क्रांति ने समग्र कृषि उत्पादन, उत्पादकता और आय पर्याप्त रूप से बढ़ाई, खाद्य कमी अर्थव्यवस्था को खाद्य पर्याप्तता में रूपांतरित किया परंतु इसने ग्रामीण अर्थव्यवस्था में कई नकारात्मक प्रभाव भी उत्पन्न किये। विशेष रूप से, निम्नलिखित के अनुसार उसके आर्थिक और पारितंत्र परिणामों से सफलता की कहानी के निराशाजनक पहलू प्रकट हुए : (i) भौमजल स्तर का अवक्षय; (ii) मृदा की गुणवत्ता में ह्रास; (iii) वर्धित निवेश लागत; (iv) वर्धित ऋण आवश्यकता, आदि। इस पृष्ठभूमि में हम भारतीय अर्थव्यवस्था पर हरित क्रांति के सकारात्मक और नकारात्मक प्रभावों पर विस्तार से इसी इकाई में अध्ययन करेंगे। हम अति आवश्यक द्वितीय हरित क्रांति के आयामों के बारे में भी अध्ययन करेंगे जो वर्तमान परिस्थितियों में अंतर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य और आयाम के कारण अति आवश्यक हो गया है। परंतु हम अपनी चर्चा पहली हरित क्रांति के ऐतिहासिक पहलुओं के संक्षिप्त विवरण से प्रारंभ करेंगे।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

11.2 हरित क्रांति की अवधारणा

शब्द ''हरित क्रांति'' का उल्लेख कृषि विशेषज्ञों के दल द्वारा 1950 के और 1960 के दशकों के दौरान विकसित नई कृषि प्रौद्योगिकी के लिए किया गया है। इस दल में मैक्सिको में अंतर्राष्ट्रीय मक्का और गेहूँ सुधार केंद्र और फिलिपीन्स में अंतर्राष्ट्रीय चावल अनुसंधान संस्थान (IRRI) के कृषि विशेषज्ञ थे। इन दो केंद्रों में विकसित प्रौद्योगिकी बाद में एशिया और लेटिन अमेरिका के अधिकांश विकासशील देशों द्वारा अपनाई गई ताकि इन देशों में खाद्यान्न आत्मनिर्भरता प्राप्त करने तथा कृषि उत्पादकता सुधार करने में योगदान हो सके। प्रौद्योगिकी में अधिक पैदावार वाली किस्म (HYV) के बीजों का प्रयोग और आधुनिक कृषि निवेशों, औजारों और प्रणालियों (जैसे रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशक दवाओं, सुनिश्चित और नियंत्रित सिंचाई, ट्रैक्टरों, थ्रेशरों, विद्युत और डीज़ल पम्पों आदि) का पैकेज अंतर्निहित है। यद्यपि प्रारंभ में नई कृषि रणनीति मुख्यतया गेहूँ और चावल की फसलों तक सीमित थी, बाद में, अन्य फसलों के लिए भी इसका विस्तार किया गया। ये प्रणालियाँ उन परंपरागत कृषि प्रणालियों के स्थान पर प्रारंभ की गई, जो अधिकांशतः किसानों के अपने स्वामित्व के आदानों और संसाधनों पर आधारित थे (जैसे देशी बीज, खेत में बनी खाद, हाथ से सिंचाई, रहट का प्रयोग)। देशी बीजों की समस्या यह थी कि वे उत्पादकता बढ़ाने के लिए प्रयुक्त रासायनिक उर्वरक की अधिक मात्रा बर्दाश्त नहीं कर पाते थे। जबकि रासायनिक उर्वरकों और सिंचाई के संयोजन में HYV बीजों ने अधिक वांछित उच्चतर उत्पादकता दी। ''हरित क्रांति'' शब्द की रचना डॉ. विलयिम माडे (USAID के तत्कालिक प्रशासक) द्वारा की गई थी। उन्होंने 1968 में एशिया और लेटिन अमेरिका के विकासशील देशों में नई कृषि प्रौद्योगिकी द्वारा प्राप्त सफलता का वर्णन करने के लिए इस शब्द का प्रयोग किया।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

11.2.1 ऐतिहासिक संदर्भ

''हरित क्रांति की प्रक्रिया डॉ. नार्मन बोरलॉग सहित रॉकफेलर फाउंडेशन के कृषि विशेषज्ञों की टीम द्वारा मेक्सिकों में 1950 के दशक के प्रारंभ में कृषि अनुसंधान कार्यक्रम के प्रवर्तन से आरंभ हुई। डॉ. नार्मन बोरलॉग, ने मेक्सिकन गेहूँ पर गहन अनुसंधान किया और वे 1950 के दशक के मध्य में अधिक पैदावार देने वाली बौने गेहूँ की किस्मों का आविष्कार करने में सफल हुए। गेहूँ के HYV बीजों के प्रयोग से मैक्सिको 1960 के दशक के प्रारंभ तक गेहूँ उत्पादन में आत्मनिर्भर हो गया, यहां तक कि उसने निर्यात करना भी आरंभ किया। बाद में 1962 में चावल की फसल के नए HYV बीज विकसित करने के लिए फिलिपीन्स में (पुनः रॉकफेलर और फोर्ड फाउंडेशन की सहायता से) अंतर्राष्ट्रीय चावल अनुसंधान संस्थान (IRRI) स्थापित किया गया था। IRRI द्वारा विकसित चावल की नई किस्मों ने फिलिपीन्स में मैक्सिको में गेहूँ के मामलों की अपेक्षा चावल की अधिक उत्पादकता बढ़ाई है। मैक्सिकन गेहूँ की भांति चावल बीज भी रासायनिक उर्वरक और सिंचाई के प्रयोग के प्रति अधिक अनुक्रियाशील थे। इन दोनों प्रयासों ने भारत सहित अधिकांश विकासशील देशों में हरित क्रांति प्राप्त करने में महत्त्वपूर्ण योगदान किया। डॉ. बोरलॉग को कृषि विकास में उसके योगदान और उस समय की विश्व खाद्य समस्या हल करने के लिए नोबेल शांति पुरस्कार दिया गया था।

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है भारत को 1950 और 1960 के दशकों में गंभीर खाद्य कमी का सामना करना पड़ा और खाद्यान्न का आयात करना पड़ा। भारत खाद्यान्न की कमी जल्दी से जल्दी पूरा करने के लिए बेचैन था। परिणामस्वरूप फोर्ड फाउंडेशन के कृषि विशेषज्ञों के दल की सिफारिशों पर भारत ने कृषि की दृष्टि से विकसित चुनिन्दा क्षेत्रों में अधिक खाद्यान्न, विशेषकर गेहूँ और चावल अधिक पैदा करने की नई कृषि रणनीति अपनाई। 1960 के दशक में फोर्ड फाउंडेशन ने भारत सरकार की स्वीकृति से कृषि उत्पादकता बढ़ाने के लिए बेहतर प्रौद्योगिकी आदानों से गहन कृषि क्षेत्र कार्यक्रम (IAAP) प्रारंभ किया। उन क्षेत्रों पर अधिक ध्यान केन्द्रित करने पर बल दिया गया था जहाँ कृषि विकास की संभावना अधिक थी ताकि खाद्यान्न उत्पादन में त्वरित वृद्धि प्राप्त की जा सके। इन चुनिन्दा क्षेत्रों में किसानों को आवश्यक निर्देश और सेवाएँ प्रदान की गईं। कार्यक्रम चुनिन्दा क्षेत्रों में खाद्यान्न उत्पादन बढ़ाने में पर्याप्त प्रभावकारी सिद्ध हुआ। IAAP के आशाप्रद परिणामों तथा अधिक खाद्यान्न के लिए बढ़ती हुई आवश्यकताओं को देखते हुए सरकार ने (1964-65 के दौरान) उन चुनिन्दा 114 जिलों में गहन कृषि जिला कार्यक्रम (IADP) प्रारंभ किया जहाँ कृषि विकास की संभावना बहुत अधिक थी। IAAP और IADP दोनों आर्थिक विकास के ''बड़े प्रयास'' सिद्धांत पर आधारित थे। ये दोनों कार्यक्रम भारत में हरित क्रांति प्राप्त करने की दिशा में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण कदम सिद्ध हुए। डॉ. नार्मन बोरलॉग और डा. एम.एस. स्वामीनाथन (कृषि वैज्ञानिक) तथा सी. सुब्रह्मण्यम, तत्कालीन कृषि मंत्री, भारत में नई कृषि प्रौद्योगिकी लाने में महत्त्वपूर्ण व्यक्ति रहे हैं। नई रणनीति का मुख्य उद्देश्य किसानों को आवश्यक आदान और सेवाओं की सुलभता प्रदान कर खाद्यान्न में आत्मनिर्भरता प्राप्त करना था। इसे निम्नलिखित क्षेत्रों में प्रचुर सार्वजनिक निवेश के अधीन पर्याप्त कृषि अनुसंधान, विस्तार और विपणन, आधारभूत संरचना स्थापित कर किया गया था: (i) पृष्ठीय और भौमजल सिंचाई; (ii) कृषि उपकरणों और उर्वरकों का विनिर्माण; (iii) कृषि मूल्य आयोग की स्थापना; (iv) निजी बैंकों का राष्ट्रीयकरण; और (v) किसानों को ऋण सुविधाएँ प्रदान करने के लिए सहकारी ऋण संस्थाओं की स्थापना। इसके अतिरिक्त, इस अवधि के दौरान नलकूप प्रौद्योगिकी का आविष्कार, कृषि उत्पादकता, विशेषकर पंजाब, हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश में वृद्धि करने में योगदान से और फसल स्वरूप में परिवर्तन करने में सहायक हुआ है। बहुत कम समय में गेहूँ क्रांति संपूर्ण उत्तर भारत में फैल गई है और गेहूँ के उत्पादन और उत्पादकता में भारी वृद्धि हुई। बाद में ऐसी ही क्रांति चावल की खेती में हुई। किंतु इसकी औचित्य, पारितंत्र और पर्यावरण संबंधित मुद्दों पर गंभीर आलोचना भी हुई है। इसके बावजूद हरित क्रांति प्रौद्योगिकी ने भारतीय अर्थव्यवस्था के रूपांतरण में असाधारण योगदान किया। खाद्य कमी की असम्मानजनक स्थिति जलयान से मुँह तक में ऐसा परिवर्तन हुआ कि देश न केवल आत्मनिर्भर, बल्कि खाद्य अधिशेष देश भी बन गया।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

11.2.2 हरित क्रांति की मुख्य विशेषताएँ

परंपरागत फार्म कार्यविधि के विपरीत, जो अधिकांशतः देशी बीजों और आंतरिक निवेश (अक्रीत निवेशों) पर निर्भर होती है, नई कृषि प्रौद्योगिकी मुख्यतया बाह्य आदानों (क्रीत आदानों) पर आधारित थी जिसे उसके अपनाने के लिए पर्याप्त वित्तीय संसाधनों की आवश्यकता होती है। GR प्रौद्योगिकी HYV बीजों–सिंचाई-उर्वरकों के पैकेज में आया। ये सभी एकसाथ सही अनुपात में आवश्यक होते हैं, क्योंकि, जल का अपर्याप्त और अत्यधिक प्रयोग दोनों ही इन बीजों के लिए हानिकारक थे। इसलिए सुनिश्चित और

नियंत्रित सिंचाई की उपलब्धता और रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग HYV बीजों की उत्पादकता बढ़ाने में दो महत्त्वपूर्ण कारक बन गए। अतः GR प्रौद्योगिकी उन क्षेत्रों के लिए उपयुक्त थी, जहाँ पर्याप्त सिंचाई सुविधाएँ और उपयुक्त सिंचाई के साथ थे। साथ ही जल निकासी व्यवस्था भी थी। यद्यपि एक ओर HYV बीजों को अपनी वृद्धि के लिए रासायनिक उर्वरकों की उच्च मात्रा की आवश्यकता होती है, इसके प्रतिस्वरूप उर्वरकों के प्रयोग से उत्पन्न खरपतवार के लिए खरपतवारनाशी के प्रयोग की भी आवश्यकता होती है।

HYV की मुख्य विशेषताओं में एक यह है कि उनकी परिपक्वता की अवधि बहुत कम थी जिससे किसानों को वर्ष में कई फसलें उगाने के अवसर मिले। इस प्रकार GR प्रौद्योगिकी फसल सघनता बढ़ाने में सहायक हुई। GR प्रौद्योगिकी के अधीन उत्पादकता के उच्चतर स्तर और फसल गहनता ने इसे भूमि बचत प्रौद्योगिकी बनाया। परंतु अगली फसल के लिए भूमि खाली करने के लिए किसानों को समय पर फसल कटाई और अगली फसल के लिए भूमि तैयार करने सहित विभिन्न फार्म क्रियाएँ करने की आवश्यकता होती है। इसके लिए आधुनिक फार्म मशीनों, जैसे ट्रैक्टरों, थ्रेशरों, सिंचाई पम्पों आदि का प्रयोग आवश्यक था। इस प्रकार GR प्रौद्योगिकी फार्म मशीनें, सिंचाई पम्पों आदि के विनिर्माण में अधिक निवेश आकर्षित करने तथा छोटे कस्बों तथा ग्रामीण क्षेत्रों में बैकिंग और विपणन ढाँचागत सुविधाएं स्थापित करने में भी सहायक हुई। चूंकि GR प्रौद्योगिकी में भारी आधारभूत संरचना अंतर्निहित है, इसलिए प्रौद्योगिकी उन बड़े किसानों के लिए अधिक उपयुक्त थी जो अपने विशाल आकार के फार्मों के कारण उनका अधिकतम उपयोग करने के लिए फार्म मशीनें और उपकरण खरीदने में खर्च कर सकते थे। यद्यपि HYV फसलें अपनाने के लिए भारी मशीनरी पर निवेश आवश्यक था परंतु किराये पर और अन्य आदानों की खरीद पर अधिक खर्च करना छोटे किसानों के लिए भी आवश्यक था। ऋण की सीमित सुलभता के कारण छोटे और सीमांत किसानों के पास निवेश करने की अधिक क्षमता नहीं थी।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इस प्रकार यद्यपि HYV उर्वरक-सिंचाई प्रौद्योगिकी को पैमाने के प्रति निरपेक्ष समझा गया था और प्रचलित सभी आकार की जोतों पर भूमि की उत्पादिता बढ़ी। फिर भी वास्तव में यह संसाधन निरपेक्ष नहीं थी। इसलिए छोटे और सीमांत आकार की जोतों पर सामूहिक खेती, जैसे कुछ संस्थागत उपायों के माध्यम से नई प्रौद्योगिकी का प्रयोग लागत प्रभावी बनाना आवश्यक है।

अतः संक्षेप में, HYV बीज रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों का प्रयोग, आधुनिक फार्म मशीनों का अनुप्रयोग, विस्तृत सिंचाई सुविधाएँ, अनेकधा सस्यन, उन्नत ऋण सुविधाएँ, समर्थन मूल्य नीति और उन्नत अनुसंधान और विकास तथा विस्तार तथा आधारभूत संरचना, भारत में हरित क्रांति आंदोलन की मुख्य विशेषताओं के रूप में उल्लेखनीय हैं।

बोध प्रश्न 1

नीचे रिक्त स्थान में अपना उत्तर लगभग 50 शब्दों में दीजिए।

1) क्या आप कहना चाहेंगे कि हरित क्रांति की अवधारणा केवल भारत में अनूठी थी? वे महत्त्वपूर्ण वैज्ञानिक कौन थे जिन्होंने भारत में इस संबंध में मुख्य भूमिका निभाई?

....

....

....

2) हरित क्रांति प्रौद्योगिकी की सफलता के लिए कौन-से मुख्य आदान आधारभूत दृष्टि से आवश्यक थे?

....

....

....

3) वे कौन-सी दो परियोजनाएँ हैं, जिनके अधीन GR रणनीति भारत में फैली? आप बुनियादी दृष्टिकोण से दो परियोजनाओं में क्या भिन्नता पाते हैं?

....

....

....

4) वे मुख्य संस्थाएँ कौन हैं जिन्होंने भारत में GR संस्कृति के विस्तार में योगदान किया है?

....

....

DIKSHANT IAS

....

5) क्या आप समझते हैं कि GR प्रौद्योगिकी छोटे और सीमांत किसान वर्ग के लिए भी लाभप्रद हो सकती है?

Call us @7428092240

....

....

....

11.3 हरित क्रांति का प्रभाव

भारत में GR प्रौद्योगिकी ने विशेष रूप से कृषि पर और सामान्य रूप से संपूर्ण अर्थव्यवस्था पर अद्भुत प्रभाव डाला है।

11.3.1 सकारात्मक प्रभाव

सकारात्मक प्रभाव के क्षेत्र में GR प्रौद्योगिकी फसलों के, विशेषकर गेहूँ और चावल के उत्पादन और उत्पादकता बढ़ाने तथा सस्य सघनता बढ़ाने, मोटे धान्य से श्रेष्ठ धान्य में सस्यक्रम बदलने और बाद में गन्ना और बागवानी फसलों सहित नकदी फसल बोने और खाद्य सुरक्षा की समस्या हल करने में सहायक हुआ।

11.3.1.1 खाद्यान्नों के उत्पादन और उत्पादकता में वृद्धि

हरित क्रांति (GR) के सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण प्रभावों में एक धान्य फसलों, विशेषकर गेहूँ और चावल के उत्पादन और उत्पादकता की वृद्धि थी। धान्य उत्पादन तीन कारकों द्वारा बढ़ाया गया था : (i) खेती के अधीन निवल क्षेत्र में वृद्धि; (ii) भूमि के उसी

टुकड़े पर वर्ष में दो या अधिक फसलों की उगाई; और (iii) HYV बीजों का प्रयोग। GR के परिणामस्वरूप खाद्यान्नों के उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि हुई। यह 1965-66 में 72.4 मिलियन टन से बढ़कर 1978-79 में 131.9 मिलियन टन हुआ। इससे भारत विश्व के सबसे बड़ा कृषि उत्पादकों में गिना गया। खाद्यान्नों की प्रति हेक्टेयर उपज 1965-66 में 6.3 क्विंटल प्रति हेक्टयर (Q/ha) थी जो बढ़कर 1978-79 में 10.2 Q/ha हो गयी। सिंचाई के अधीन कुल खाद्यान्न का प्रतिशत भी 1965-66 से 20.9 से बढ़कर 1978-79 में 28.8 हुआ। इन उत्पादकता वृद्धियों से भारत उस समय के दौरान खाद्यान्नों का निर्यातक बनने में सक्षम हुआ।

चित्र 11.1 भारत में 1950-51 से 2009-10 तक की गेहूँ फसल का क्षेत्र, उत्पादन और उपज में प्रवृत्तियां दिखाता है। ग्राफ से स्पष्ट है कि गेहूँ का उत्पादन हरित क्रांति की अवधि के दौरान और उसके बाद उल्लेखनीय ढंग से बढ़ा है। उत्पादन 1965-66 में 10.4 मिलियन टन (MT) से 1978-79 में 35.5 MT और आगे 2009-10 में 80.7 MT बढ़ा है। उत्पादन में आश्चर्यजनक वृद्धि मुख्यतया उसके प्रति हेक्टेयर उपज में भारी वृद्धि थी जो 1965-66 में 8.3 Q/Ha से 1978-79 में 15.7 Q/Ha और आगे 2009-10 में 28.3 Q/Ha हुई। हरित क्रांति के दौरान और उसके बाद की अवधियों के दौरान भी गेहूँ के अधीन क्षेत्रफल में भी उल्लेखनीय वृद्धि हुई। इसे भी चित्र 11.1 में देखा जा सकता है। परंतु हाल ही के वर्षों में गेहूँ की प्रति हेक्टेयर उपज उसके क्षेत्रफल की तुलना में अधिक तेज़ी से बढ़ी है, इसका आशय यह है कि गेहूँ में उत्पादकता वृद्धि ने उसके अधीन क्षेत्रफल में वृद्धि की अपेक्षा अधिक योगदान किया है। यद्यपि गेहूँ का उत्पादन, अवधि के दौरान पर्याप्त वृद्धि दर्शाता है और वर्षों के उतार-चढ़ाव भी दर्शाता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

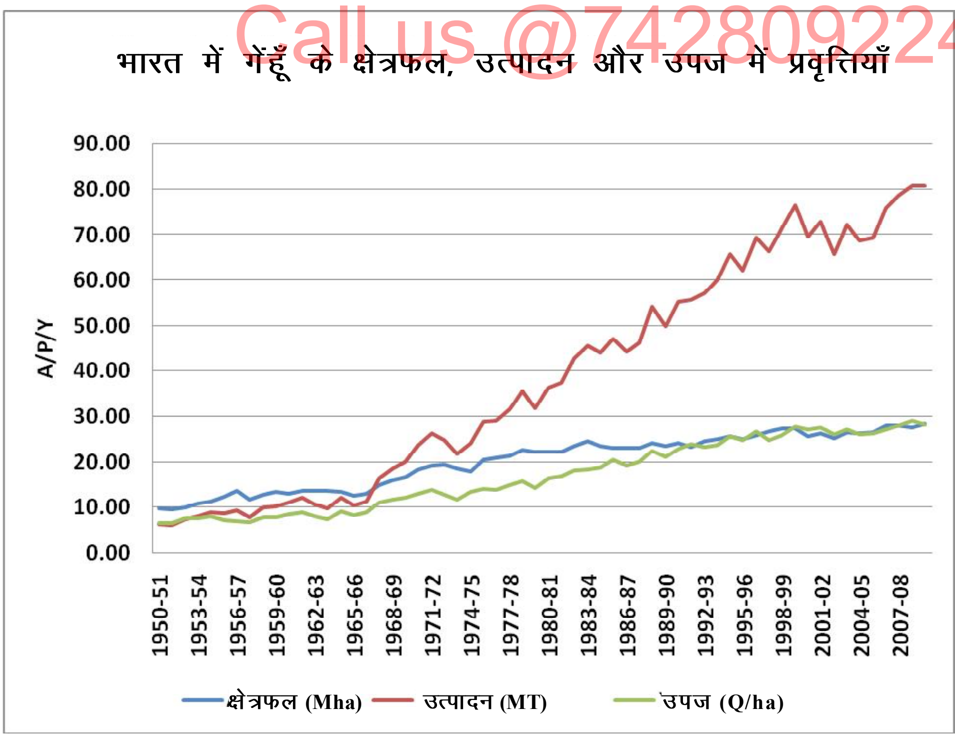

चित्र 11.1 : भारत में गेहूँ का क्षेत्रफल, उत्पादन और उपज– 1951-2010

चावल (धान) के क्षेत्रफल, उत्पादन और उपज में भी हरित क्रांति के दौरान और उसके बाद उल्लेखनीय वृद्धि हुई। उत्पादन 1965-66 में 30.6 MT से बढ़कर 1978-79 में 53.8 MT और आगे 2009-10 में 89.1 MT पहुंचा। चावल की प्रति हेक्टेयर उपज गेहूँ की उपज की तुलना में काफी धीमी बढ़ी। इसका आशय है कि GR प्रौद्योगिकी ने चावल फसल की अपेक्षा गेहूँ फसल में अधिक प्रवेश किया। इसके अलावा चावल के अधीन क्षेत्रफल में भी अपेक्षाकृत धीमी वृद्धि दिखाई, जब गेहूँ के अधीन क्षेत्रफल से तुलना की गई। फिर यह ध्यान रखना भी महत्त्वपूर्ण है कि रेखाचित्रों में प्रस्तुत गेहूँ और चावल फसलों के क्षेत्रफल उत्पादन और उपज पर आंकड़े अखिल भारतीय औसत हैं जिसमें सिंचित और असिंचित दोनों क्षेत्र शामिल हैं।

दो मुख्य धान्य फसलों (गेहूँ और चावल) की चार अवधियों के दौरान क्षेत्रफल, उत्पादन और उपज के अनुमान तालिका 11.1 में प्रस्तुत की गई है। ये अवधियाँ निम्न प्रकार हैं :

i) हरित क्रांति पूर्व अवधि (1950-51 से 1964-65)

ii) हरित क्रांति अवधि (1967-68 से 1978-79)

iii) हरित क्रांति उत्तर अवधि (1979-80 से 1990-91) और

iv) आर्थिक सुधार पश्च अवधि (1991-92 से 2009-10)।

गेहूँ के मामले में हरित क्रांति अवधि के दौरान उच्चतम वृद्धि (3.3 प्रतिशत), इसके बाद हरित क्रांति पूर्व अवधि (2.7 प्रतिशत) और हरित क्रांति पश्च और सुधार पश्च अवधियों में अल्पतम (0.6 से 0.7 प्रतिशत) रिकार्ड किए गए हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

तालिका 11.1 : भिन्न-भिन्न समय अवधियों के दौरान गेहूँ और चावल के क्षेत्रफल, उत्पादन और उपज में संयुक्त वार्षिक वृद्धि दरें (प्रतिशत)

अवधि	गेहूँ			चावल		
	क्षेत्रफल	उत्पादन	उपज	क्षेत्रफल	उत्पादन	उपज
1950-51 से 1964-65 हरित क्रांति पूर्व अवधि	2.7*	4.3*	1.5*	1.5*	4.4*	2.9*
1967-68 से 1978-79 हरित क्रांति अवधि	3.3*	5.9*	2.5*	0.8*	2.6*	1.7*
1979-80 से 1990-91 हरित क्रांति उत्तर अवधि	0.6*	4.2*	3.6*	0.6*	4.3*	3.7*
1991-92 से 2009-10 आर्थिक सुधार पश्च अवधि	0.7*	1.7*	0.9*	0.1*	1.2*	1.1*

नोट: (*) और (**) क्रमशः 1 प्रतिशत और 5 प्रतिशत स्तर पर महत्त्व दर्शाते हैं।

इसी प्रकार, हरित क्रांति अवधि में गेहूँ के उत्पादन में उच्चतम वृद्धि (5.9 प्रतिशत) रिकार्ड हुई। इसके बाद हरित क्रांति पूर्व अवधि में (4.3 प्रतिशत) थी। 1980-91 की हरित क्रांति पश्च अवधि में गेहूँ उत्पादन में वृद्धि (4.2 प्रतिशत) भी बहुत कम नहीं थी बल्कि आर्थिक सुधारों के बाद अवधि में यह 1.7 प्रतिशत पर अल्पतम थी। परंतु गेहूँ की प्रति हेक्टेयर उपज के अनुसार हरित क्रांति के वर्षों बाद की अवधि में उच्चतम उपज (3.6 प्रतिशत) थी। एक बार फिर, प्रति हेक्टेयर उपज 1992-2011 के सुधार

के बाद के वर्षों में अल्पतम थी। चावल के प्रति हेक्टेयर उपज में वैसी ही प्रवृत्ति देखी गई है। जिसमें 1980-91 के GR के बाद के वर्षों में उच्चतम वृद्धि (3.7 प्रतिशत) देखी गई थी। गेहूँ की भांति चावल के लिए भी 1992-2010 के सुधार के वर्षों में प्रति हेक्टेयर उपज में तीव्र गिरावट (1.1 प्रतिशत) देखी गई।

11.3.1.2 रोज़गार सृजन

कृषि में रोज़गार पैदा करने के संबंध में GR प्रौद्योगिकी का प्रभाव विवादास्पद रहा है। हरित क्रांति के आलोचक तर्क देते हैं कि हरित क्रांति क्षेत्रों में फार्म कार्यप्रणाली के बढ़े हुए यंत्रीकरण ने कृषि में रोज़गार घटाया है। उदाहरण के लिए, सी.एच.हनुमंथा राव ने टिप्पणी की कि ''बीज-उर्वरक-सिंचाई'' पैकेज के अनुसार GR प्रौद्योगिकी का कृषि में रोज़गार पैदा करने पर पर्याप्त सकारात्मक प्रभाव था, परंतु फार्म मशीनों, जैसे ट्रैक्टरों के बढ़ते हुए उपयोग से रोजगार पैदा होने में कमी आई। फिर भी, ट्रैक्टर और अन्य आधुनिक मशीनों के बढ़े हुए प्रयोग ने बढ़ते हुए सस्य सघनता, फार्म उत्पादकता और बदलते हुए सस्य क्रम ने रोज़गार के संपूर्ण स्तर बढ़ाए। इसके अलावा अग्रानुबंधन और पश्चानुबंधन के तरीकों द्वारा गैस-फार्म कार्य में अतिरिक्त रोज़गार पैदा करने में भी फार्म मशीनें और उपकरण सहायक रहे। दूसरे शब्दों में, प्रौद्योगिकी और बेहतर निवेश ने विनिर्माण और सेवा सेक्टरों के गैर-कृषि सेक्टरों में रोज़गार के महत्त्वपूर्ण अवसर उत्पन्न किए हैं। इसके अलावा, सिंचाई (जिसे GR तकनीकों के अंगीकरण के लिए पूर्व शर्त माना गया था) के विस्तार ने अधिक रोज़गार पैदा किये हैं, क्योंकि, असिंचित की तुलना में सिंचित फसलों में अधिक कृषि कार्य होते हैं। वास्तव में, हरित क्रांति क्षेत्र जैसे पंजाब, हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश ने बड़ी समस्याओं में एक कृषि श्रमिकों की कमी की समस्या का अनुभव किया, इसके परिणामस्वरूप पिछड़े और गरीब कृषि क्षेत्रों से कृषि रोज़गार के लिए श्रमिकों का प्रवासन GR क्षेत्रों में हुआ। इस प्रकार GR प्रौद्योगिकी ने अन्य क्षेत्रों के कृषि श्रमिकों के लिए भी रोज़गार के अप्रत्यक्ष अवसर उत्पन्न किए।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

11.3.1.3 कृषि में सार्वजनिक/निजी निवेश का प्रवाह

भारत में हरित क्रांति की सफलता के पीछे सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण कारक सुनिश्चित सिंचाई की उपलब्धता है। नलकूप प्रौद्योगिकी के आविष्कार ने विशेष रूप से सिंधु गंगा बेसिन में प्रति हेक्टेयर फसल उपज बढ़ाने में महत्त्वपूर्ण योगदान किया है। नई कृषि रणनीति के लिए कृषि अनुसंधान, विस्तार, बिजली, सड़कों, सिंचाई में निवेश सहित कृषि आधारभूत संरचना में सार्वजनिक निवेश आवश्यक है। भारत सरकार ने उन क्षेत्रों में कृषि में भारी सार्वजनिक निवेश किया, जहां नई रणनीति अपनाई गई थी। इस निवेश से कृषि में भी निजी निवेश की गति तेज़ करने पर अनुकूल प्रभाव हुआ। किसानों ने नलकूप, ट्रैक्टर और उसके उपकरणों बिजली और डीज़ल पम्प सेटों, भूमि समतलन, और विकास आदि में निवेश किया। भारत में मैकेनिकल और इलैक्ट्रिकल विद्युत का अंश 1971-72 में 39.4 प्रतिशत से बढ़कर 2005-06 में 86.6 प्रतिशत हो गया। कृषि में कुल बिजली खपत में मानव श्रम का अनुपात घटा है। यह 1971-72 में 15.1 प्रतिशत से घटकर 1991-92 में 8.6 प्रतिशत और आगे 2005-06 में 5.6 प्रतिशत हुआ। इन प्रवृत्तियों का आशय है कि कृषि में हरित क्रांति के बाद बढ़े हुए सार्वजनिक निवेश द्वारा प्रदत्त प्रोत्साहन के अनुसरण करते हुए निजी निवेश अत्यधिक बढ़ा।

11.3.1.4 भूमि की बचत

भूमि सीमित संसाधन है, इसके वैकल्पिक प्रयोग के लिए प्रतिस्पर्धा बढ़ती जा रही है। जनसंख्या, शहरीकरण और औद्योगिकीकरण की तीव्र वृद्धि के कारण कृषीतर प्रयोजनों के लिए भूमि की मांग निरंतर बढ़ती जा रही है। कृषीतर प्रयोजनों के लिए भूमि को खाली करने पर विवाद कम हो सकता है यदि भूमि की उत्पादकता और अन्य संसाधन बढ़ाने से कृषि प्रयोजनों के लिए भूमि की आवश्यकता पूरी की जा सके। इस संदर्भ में GR प्रौद्योगिकी को भूमि बचाऊ माना गया है क्योंकि, इसने विभिन्न कृषि फसलों की प्रति हेक्टेयर उपज सार्थक रूप से बढ़ाई है। कृषि में उत्पादकता वृद्धि ने अप्रत्यक्ष रूप से वन भूमि को भी बचाया है क्योंकि GR के कारण बढ़ी हुई कृषि उत्पादिता के अभाव में आवश्यकता पूरी करने के लिए अधिक वन भूमि को कृषि भूमि में बदला जा सकता था। इस दृष्टि से कभी-कभी यह तर्क भी दिया जाता है कि पर्यावरण पर हरित क्रांति के नकारात्मक प्रभाव होते हुए भी वन भूमि बचाकर इस पर सकारात्मक प्रभाव हुआ है।

11.3.1.5 ग्रामीण कृषीतर अर्थव्यवस्था पर प्रभाव

हरित क्रांति ने ग्रामीण कृषीतर अर्थव्यवस्था में उल्लेखनीय सकारात्मक प्रभाव उत्पन्न किया। इसके फलस्वरूप भूमि से प्रतिलाभ में पर्याप्त वृद्धि हुई है इससे किसानों की आय में पर्याप्त वृद्धि हुई। चूंकि ग्रामीण समुदाय का बहुत बड़ा भाग कृषि श्रमिकों और किसानों का होता है, इसलिए कृषि विकास के कारण उनकी आय में वृद्धि स्थानीय रूप से उत्पादित माल और सेवाओं की मांग बढ़ाता है। इस प्रकार कृषीतर सेवाओं में रोज़गार और आय में वृद्धि होती है। इसके अलावा, फार्म आदानों, फार्म औजारों और मशीनों की मरम्मत और अनुरक्षण, परिवहन और विपणन सेवाओं, कृषि संसाधनों की मांग के विस्तार से कृषीतर कार्यों में लगे ग्रामीण परिवारों में अतिरिक्त आय और रोज़गार सृजित होता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

11.3.2 नकारात्मक प्रभाव

भारत में हरित क्रांति ने कई नकारात्मक प्रभाव भी उत्पन्न किए हैं। चूंकि GR प्रौद्योगिकी अपनी अंतःनिर्मित असमान सुलभता और ''क्षेत्र के असंतुलित विकास'' की विशेषता के साथ ''सबल पर संबल'' की रणनीति पर आधारित है। इसलिए इसने क्षेत्रों और फार्मों की श्रेणियों के कृषि विकास में असमानता पैदा की है। किसी भी प्रकार के फेर-बदल के बिना और जल, उर्वरकों और कीटनाशक दवाओं का भारी प्रयोग कर उसी भूमि पर गेहूँ या चावल की दो या तीन भी फसलें उगाने की प्रवृत्ति भी देखी गई। इसने मृदा उर्वरता और जल की मात्रा/गुणवत्ता पर प्रतिकूल प्रभाव छोड़ा। हम GR के इस प्रतिकूल पहलुओं पर अधिक विस्तार से आगे चर्चा कर रहे हैं।

11.3.2.1 मृदा उर्वरता में ह्रास

GR प्रौद्योगिकी ने मृदा उर्वरता में गुण ह्रास उत्पन्न किया है। ''प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन'' (भारत सरकार, 2007) पर कार्यदल की रिपोर्ट के अनुसार 1980 के और 1990 के दशकों के दौरान मृदा कोटि निम्नीकरण के कारण अनुमानित हानि GDP के 11 से 26 प्रतिशत तक हुई। विश्वसनीय सलाह और मृदा परीक्षण सुविधाओं के अभाव के कारण अंधाधुंध और हानिकारक रासायनिकों का प्रयोग हुआ है। खेत उत्पन्न खाद और हरी खाद का प्रयोग विभिन्न कारणों से घटा है जैसे जुताई पशुओं में कमी,

फली फसलों से चावल, गेहूँ, गन्ना और अन्य वाणिज्यिक फसलों में सस्यक्रम परिवर्तन, आदि। यह भी तर्क दिया जाता है कि हरित क्रांति प्रौद्योगिकी फसल विविधता को प्रोत्साहित नहीं कर सकी। इसने तो फसल संकेन्द्रण को प्रोत्साहित किया है। हाल ही में ''मृदा, साहाय्य और जीवनधारिता'' पर **ग्रीनपीस इंडिया रिपोर्ट** (2011) ने टिप्पणी की है कि ''रासायनिक उर्वरकों का अंधाधुंध प्रयोग हमारी मृदा की हत्या कर रहा है और हमारी खाद्य सुरक्षा को संकट में डाल रहा है। इनसे हटने और अपनी मृदा को पारिस्थितिकीय तरीके से पारिपोषित करने का यही समय है।''

11.3.2.2 जैव विविधता की क्षति

ग्रामीण आजीविका को धारणीय बनाए रखने और खाद्य सुरक्षा प्राप्त करने के लिए जैव विविधता आवश्यक है। परंतु HYV बीजों के प्रयोग ने उन देशी प्रजातियों पर आधारित कृषि कार्यप्रणाली बदल डाली जो पीढ़ियों के दौरान निर्मित हुई थी। इसके कारण बहुत से महत्त्वपूर्ण जीन कोषों की जननिक संवेदनशीलता, बिगड़ते हुए जैव विविधता और कृषि जननिक संसाधनों को क्षति हुई।

11.3.2.3 भौमजल संसाधनों का अवक्षय

1990 के दशक में कूपजल प्रौद्योगिकी का विकास सिन्धु गंगा प्रदेशों में हरित क्रांति लाने वाले महत्त्वपूर्ण कारकों में से एक है। परंतु इन क्षेत्रों में नलकूपों की चिरघातांकी वृद्धि भी भौमजल संसाधनों के तीव्र ह्रास के मुख्य कारण रही है। यद्यपि निष्पक्षता, दक्षता और निजी निवेश के आधार पर भौमजल सिंचाई को वरीयता दी जाती है, परंतु, बहुत-सी सरकारी नीतियों (जैसे क्रांति निवेश पर कृषि सरकारी सहायता, धारणीय भौमजल प्रयोग पर प्रभावशाली विनियम का अभाव आदि) ने भी अवक्षय में योगदान किया है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

11.3.2.4 छोटे और सीमांत किसानों पर प्रभाव

यह तर्क दिया जाता है कि परंपरागत कृषि से एकधा सस्यन में अंतरण का छोटे किसानों पर नकारात्मक प्रभाव हुआ है। छोटे और सीमांत किसानों को मंहगा HYV बीज़, उर्वरक और कीटनाशक दवाइयां खरीदनी पड़ती हैं जिनके लिए उन्हें अपेक्षाकृत अधिक ब्याज दर पर ऋण लेना पड़ता है और परिणामस्वरूप वे ''ऋण के जाल'' में फंस जाते हैं। इसके अलावा धनी किसानों द्वारा भौमजल के अतिदोहन से छोटे और सीमांत किसानों को पानी की उपलब्धता कठिन हो जाती है।

11.3.2.5 कृषि में अति पूँजीकरण

परंपरागत कृषि प्रथा अधिकांशतः स्थानीय रूप से उपलब्ध कृषि आदानों और औजारों, जैसे फार्म में उगाए गए बीजों, काष्ठ या लोहे के हल, पशु जुताई, खेत पर उत्पन्न खाद, बैलगाड़ी और स्थानीय बढ़इयों और लौहारों द्वारा बनाए गए अन्य कृषि औजारों पर आधारित थी। इन निवेशों और औजारों को प्राप्त करने के लिए रुपयों की बहुत कम या कोई आवश्यकता नहीं होती थी क्योंकि उनमें से अधिकांश स्वयं अपने होते थे या ''जजमानी'' प्रथा के अधीन किसानों द्वारा दिए जाने वाले हितलाभों के बदले बढ़ई और लौहार काम देते थे। यद्यपि जजमानी प्रथा का ह्रास हो रहा है, कृषि में उभरती हुई कार्यप्रणाली बहुत से क्षेत्रों में अधिक पूँजीकरण की ओर बढ़ रही है। नई कृषि प्रौद्योगिकी के लिए आधुनिक फार्म मशीनें, ट्रैक्टरों, पम्पसेटों आदि में भारी निवेश की आवश्यकता थी जो अधिकांश मामलों में स्वकर्षित जोतों के विभाजन के

कारण अल्प प्रयुक्त रहते थे। उदाहरण के लिए, स्वकर्षित जोतों का विभाजन किसानों को अधिक ट्रैक्टर और औजार तथा सिंचाई पम्प खरीदने के लिए प्रोत्साहित करता है जिसके कारण कृषि में अति पूँजीकरण होता है। कृषि की दृष्टि से अधिक विकसित क्षेत्रों में जैसे पंजाब और पश्चिमी उत्तरप्रदेश में कृषि में अति पूंजीकरण है। चंद और कुमार (2004) कई स्वकर्षित जोतों में वृद्धि, कृषि में निजी पूँजी निर्माण के महत्त्वपूर्ण निर्धारक के रूप में पाते हैं। जोतों का विभाजन इनकी संख्या को बढ़ाता है। यह फार्म पारिसंपत्तियों और मशीनरी में निवेश की मांग बढ़ाता है। यह जानना प्रासंगिक हो सकता है कि भारत में स्वकर्षित जोतों की संख्या बढ़ी है। यह 1985-86 में 97.16 मिलियन थी जो बढ़कर 1995-96 में 115.68 मिलियन और आगे 2000-09 में 120.28 मिलियन हो गई। फार्म सेक्टर और संस्थागत ऋण और राजकीय सहायता की उपलब्धता, फार्म मशीनरी में निवेश बढ़ाने के लिए इन विभाजित जोतों को अभिप्रेरित करती है। कृषि में इस किस्म का निजी निवेश वांछनीय नहीं है क्योंकि खेती की इकाई लागत छोटे किसानों की प्रतिस्पर्धात्मकता घटाती है और उनमें ऋणग्रस्तता बढ़ाती है।

11.3.2.6 असमानताओं में बढ़ोतरी

GR प्रौद्योगिकी ने क्षेत्रों और फार्मों की श्रेणियों में असमानताएँ उत्पन्न की हैं। चूंकि यह ''सबल पर संबल'' दृष्टिकोण पर आधारित है इसलिए असमानता इसमें स्वाभाविक थी। नई प्रौद्योगिकी के लाभ कुछ ही फसलों, जैसे गेहूँ, चावल, गन्ना और कृषि की दृष्टि से विकसित कुछ क्षेत्रों तक सीमित थे, जहां सिंचाई की पर्याप्त सुविधाएँ थीं। अधिकांश फसलों और वर्षा प्रधान कृषि क्षेत्रों ने GR से पर्याप्त लाभ प्राप्त नहीं किए। यह देखा गया है कि अधिकांश देशों में, जहां नई प्रौद्योगिकी अपनाई गई थी, पहले से विकसित क्षेत्रों के किसानों ने अधिक लाभ प्राप्त किए, अधिकांशतः सबसे गरीब किसानों और अल्पतम विकसित क्षेत्रों ने नहीं। इस संबंध में परस्पर विरोधी प्रमाण है कि क्या इसके ''प्रसार प्रभाव'' भी है या इसने विभिन्न क्षेत्रों में आय अंतर तेज़ी से बढ़ाए हैं। प्रारंभ में हरित क्रांति मुख्य रूप से उत्तर भारत में गेहूँ की फसल तक सीमित रही गई। इसका परिणाम यह हुआ कि देश के समग्र आर्थिक विकास में इसका योगदान भी सीमित रहा। चूंकि बीज-उर्वरक प्रौद्योगिकी असिंचित और वर्षा प्रधान क्षेत्रों की कृषि के लिए उपयुक्त नहीं थी इसलिए क्षेत्रीय आय असमानताओं में काफी हद तक इसका योगदान रहा। शुष्क क्षेत्रों में GR का विस्तार अनुपयुक्त सिद्ध हुआ और प्रायः उन किसानों के लिए गंभीर, विपत्ति का कारण बना जिन्होंने भौमजल संसाधनों पर आधारित शुष्क क्षेत्र में GR अपनाया। GR प्रौद्योगिकी ने उन फार्मों में प्रभावकारी ढंग से कार्य किया जिनमें नियंत्रित उत्पादन वातावरण था, जैसे, अच्छी कोटि की मृदा बेहतर सिंचाई और बाज़ार सुविधाएँ। चूंकि, यह वातावरण कृषि की दृष्टि से पिछड़े क्षेत्रों में पर्याप्त रूप में उपलब्ध नहीं है, इसलिए उन क्षेत्रों के किसान नई प्रौद्योगिकी से अधिक लाभ प्राप्त नहीं कर सके, बल्कि, उनकी प्रतिस्पर्धात्मकता नष्ट हो गई और वे विकसित क्षेत्रों के अपने प्रतिपक्षियों के मुकाबले अपेक्षाकृत अलाभकर स्थिति में रहे। सी.एच. हनुमंथा ने निष्कर्ष निकाला कि भारतीय कृषि में प्रौद्योगिकी परिवर्तन ने भिन्न-भिन्न क्षेत्रों के बीच छोटे और बड़े किसानों के बीच, और भूस्वामियों तथा भूमिहीन श्रमिकों के बीच आर्थिक असमानताएँ बढ़ाईं। फिर भी, उन्होंने प्रेक्षण किया है कि खाद्यान्नों की उत्पादकता, उत्पादन और सुलभता की दृष्टि से GR प्रौद्योगिकी का लाभ साधारणतया समाज के सभी वर्गों में पहुंचा।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

11.3.2.7 पारिस्थितिकी और पर्यावरण पर प्रभाव

जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है GR प्रौद्योगिकी के सबसे अधिक प्रतिकूल प्रभावों में उसके पारिस्थितिकी और पर्यावरण प्रभाव प्रमुख हैं। कृषि में रासायनिक उर्वरक और कीटनाशक दवाओं का अत्यधिक प्रयोग भूमि की उर्वरता की कमी का मुख्य स्रोत है। इसने सामान्यतया जलीय जीवन और विशेष रूप से मत्स्य उत्पादन प्रभावित करते हुए नदी जल संसाधनों को भी प्रदूषित किया है। हाल ही के दशकों में, उत्पादकता रुद्धता भी उस मृदा और जल संसाधनों के निम्नीकरण के कारण हुई है जो विशेषकर चावल-गेहूँ और उत्तर भारत के राज्यों के गेहूँ-गन्ना उत्पादन से उत्पन्न हुआ है। इसलिए उर्वरकों, कीटनाशियों और खरपतवार नाशियों के अत्यधिक प्रयोग से न केवल प्राकृतिक संसाधनों का निम्नीकरण हुआ है बल्कि उत्पादकता भी अवरुद्ध हुई है।

11.3.2.8 ऊर्जा समस्याएँ

हरित क्रांति से संबंधित एक अन्य समस्या जीवाश्म ईंधन ऊर्जा स्रोतों पर उसकी अधिक निर्भरता है। यह तर्क दिया जाता है कि ऊर्जा आधारित कृषि आदानों की लागत में वृद्धि के परिणामस्वरूप कृषि उत्पादों की कीमतों में भी वृद्धि होती है, इससे GR कार्यप्रणाली आर्थिक और पारिस्थितिक दृष्टि से संदेहास्पद है। देखा गया है कि कृषि में मैकेनिकल और इलैक्ट्रिकल विद्युत खपत का अंश समय के चलते बहुत बढ़ा है। डीज़ल आयात की अधिक उच्च मांग ने भारत के विदेशी मुद्रा भंडार पर भी बहुत दबाव रखा है।

बोध प्रश्न 2

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

नीचे दिये गए स्थान में प्रश्न 2-5 तक का उत्तर लगभग 50 शब्दों में दीजिए।

1) रिक्त स्थान भरिए :

क) गेहूँ का उत्पादन 1965-66 में .... Q/ha से बढ़कर 1978-79 में .... Q/ha और 2009-10 में .... Q/ha हुआ है।

ख) चावल की प्रति हेक्टेयर उपज पर GR प्रौद्योगिकी का सापेक्ष प्रभाव गेहूँ की अपेक्षा .... था।

ग) तीन मुख्य कारकों, अर्थात् क्षेत्रफल, उत्पादन और उपज के अनुसार 1992-2010 के सुधार के बाद के वर्षों में गेहूँ और चावल दोनों की औसत वार्षिक प्रतिशत वृद्धि के अनुसार यह .... और .... की अन्य तीन अवधियों की तुलना में .... हुई है।

2) किस आधार पर आप कह सकते हैं कि GR प्रौद्योगिकी के कारण बढ़ा हुआ कृषि उत्पादन पर्यावरण मैत्रीपूर्ण माना जा सकता है?

....

....

....

....

3) हाल ही के वर्षों में क्या प्रमाण उपलब्ध हुआ है जिसने GR पूर्व वर्षों में अनुसरण की गई कृषि कार्यप्रणाली तरीकों के अंगीकरण के पक्ष में वातावरण बनाया है।

....

....

....

....

4) कृषि विकास के अनुकूल किन्ही दो नीतियों का वर्णन करें जिन्होंने भौमजल संसाधनों के अधारणीय प्रयोग में योगदान किया है।

....

....

....

....

5) किन कारणों से यह दावा किया जाता है कि GR लाभों के परिणामतः आर्थिक असमानताएँ रही हैं जबकि सामान्यतः अर्थव्यवस्था में कुल मिलाकर लाभ हुआ है।

....

DIKSHANT IAS

....

Call us @7428092240

....

....

11.4 हरित क्रांति के पश्चात् के प्रयास

जैसाकि ऊपर देखा गया है कि प्रथम हरित क्रांति अवधि (1968-79) के लाभ अधिकांशतः कुछ ही फसलों और कृषि की दृष्टि से विकसित क्षेत्र के बड़े किसानों तक सीमित रहे। भारत का बहुत बड़ा भाग, विशेषकर पूर्वी राज्यों के वर्षा निर्भर क्षेत्र, जैसे असम, बिहार और उड़ीसा हरित क्रांति प्रौद्योगिकी से अधिकांशतः अछूता रहा। इसे ध्यान में रखते हुए भारत सरकार ने उन क्षेत्रों और फसलों के कृषि विकास के लिए विशिष्ट प्रयास प्रारंभ किए जो पहली हरित क्रांति के लाभ प्राप्त नहीं कर सकते थे। ये प्रयास इन बातों के इर्द-गिर्द केन्द्रित थे : (i) पूर्वी राज्य के कृषि विकास पर बल; (ii) लोगों की आजीविका सुधारने और खाद्य सुरक्षा प्राप्त करने के लिए वर्षा प्रधान और असिंचित कृषि क्षेत्रों का विकास, तथा (iii) उच्च महत्त्व की बागवानी, पुष्प कृषि, पशुधन, डेयरी उत्पादों पर फोकस के साथ कृषि उत्पादों की संविदा कृषि और अन्य नवाचारी प्रयासों के माध्यम से अनुसंधान और विकास (RCD), कृषि उत्पादों के भंडारण, विपणन और प्रसंस्करण में कृषि व्यावसायिक कंपनियों की अधिक सहभागिता।

पूर्वी क्षेत्र में GR प्रौद्योगिकी के लाभ न पहुंचने का मुख्य कारण यही था कि छोटे खेतों और जोतों के छोटे आकार के स्वामी किसानों के पास पम्प सेट खरीद कर अपने नलकूल लगाने के लिए धन का नितांत अभाव था। गांवों के विद्युतीकरण में विलंब भी नलकूपों की धीमी प्रगति का एक कारक था। इन कारणों को ध्यान में रखते हुए पूर्वी क्षेत्र में भौमजल विकास सभी क्षेत्रों की अपेक्षा सबसे कम था। परंतु

बाद में अपनी उत्पादकता और विभिन्न फसलों की विविधता सुधारने के लिए पूर्वी राज्यों के किसानों को नीतिगत सहायता पर ध्यान दिया गया। इन प्रयासों से बिहार, उड़ीसा और असम में कृषि वृद्धि उल्लेखनीय रूप से बढ़ी। इसके अलावा वर्षा प्रधान और शुष्क भूमि कृषि क्षेत्रों पर (जिसमें कुल NSA निवल बोआई क्षेत्रफल का लगभग 60 प्रतिशत था, जिसमें कुल कृषि उत्पाद का लगभग 40 प्रतिशत होता था) ध्यान केन्द्रित किया गया। इसमें इन क्षेत्रों में उत्पादकता बढ़ाने के लिए मृदा और जल संरक्षण तथा जल संचयन से संबंधित कार्यों में निवेश के रूप में सरकार ने हस्तक्षेप किया। इन क्षेत्रों में कृषि विकास प्राप्त करने में नीतिगत फोकस कृषि उत्पादकता और आय बढ़ाकर लोगों की आजीविका बनाए रखने के लिए प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण, नवीकरण और प्रबंधन के लिए सकल दृष्टिकोण में से एक था। उसी प्रकार कृषि सेक्टर में कार्पोरेट निवेश आकर्षित करने के लिए पहले बहुत से मिशन विधा प्रयासों द्वारा किए गए, जैसे राष्ट्रीय बागवानी मिशन, राष्ट्रीय तिलहन मिशन, राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन, राष्ट्रीय बांस मिशन, राष्ट्रीय दलहल मिशन, आदि। निम्नलिखित के इर्द-गिर्द केन्द्रित संविदा, आदि अन्य प्रयास किये गए : (i) छोटे और सीमांत किसानों को अपने स्वकर्षित जोतों का आकार बढ़ाने के लिए भूमि खरीदने के वास्ते संस्थागत ऋण; (ii) भूमि पट्टा बाजार का उदारीकरण; (iii) APMC अधिनियम संशोधित कर बिचौलियों की भूमिका कम करते हुए कृषि उत्पादों का सीधा विपणन।

GR के बाद की अवधि में किए गए प्रयासों की उपर्युक्त रूपरेखा सुझाती है कि यद्यपि हरित क्रांति अवधि के दौरान कृषि वृद्धि अधिकांशतः आपूर्ति पक्ष कारकों द्वारा प्रेरित थी। हरित क्रांति पश्च अवधि में यह काफी हद तक मांग पक्ष कारकों द्वारा प्रेरित रही। परिणामस्वरूप हरित क्रांति पश्च अवधि के दौरान कृषि विकास उच्च मूल्य बागवानी, जैसे फल, सब्जियाँ, पुष्प, आदि विविधीकरण की दिशा में अधिक था। इसके अलावा, संबद्ध कार्यों जैसे डेयरी, कुक्कट पालन और मत्स्य पालन का विकास की दिशा की ओर रूझान रहा। यद्यपि यह सत्य है कि कृषि में अनुसंधान और विकास, विस्तार, सिंचाई, बिजली, प्रसंस्करण, विपणन और आपूर्ति श्रृंखला के लिए भारी निवेश आवश्यक है जिससे कृषि आय और रोज़गार बढ़ाने के लिए फार्म सेक्टर सशक्त किया जा सके। इसके लिए कार्पोरेट दृष्टिकोण वांछित है, परंतु यह भय भी है कि कृषि व्यापारिक कंपनियाँ विशेषकर बहुराष्ट्रीय कंपनियों की सहभागिता जननिक रूप से रूपांतरित बीज प्रौद्योगिकी के लाभ प्राप्त करने में इन कंपनियों के बीच गुटतंत्रीय शक्ति निर्मित हो सकती है, जो आगे चलकर बिचौलियों को हटाने और सार्वजनिक निवेश/संस्थाओं की भूमिका कम करने पर किसानों का शोषण कर सकती है। इस कारण से, कार्पोरेट दृष्टिकोण और सार्वजनिक निवेश केन्द्रित नीतियों के बीच संतुलन बनाए रखने की आवश्यकता पर वाद-विवाद बढ़ रहा है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

11.5 हरित क्रांति से जीन क्रांति तक

जैसाकि (गेहूँ और चावल की उत्पादकता में अनुमानित वृद्धि दर से) पहले देखा गया है कि GR प्रौद्योगिकी से संबद्ध उत्पादकता में बढ़ोतरी 1990 के दशक के दौरान कम होनी आरंभ हो गई थी। इस संदर्भ में, कृषि उत्पादकता बढ़ाने के लिए अपेक्षित संभावना प्रदान करने तथा खाद्य सुरक्षा की समस्या हल करने के लिए जैव प्रौद्योगिकी की संकल्पना की गई है। प्रौद्योगिकी ने 1980 के दशक के प्रारंभ में गति प्राप्त की जब विशाल निगमों ने पराजैविक फसलें विकसित करने के लिए अनुसंधान और विकास के लिए भारी राशि निवेश करना प्रारंभ किया। जननिक रूप से रूपांतरित (GM) बीजों

के प्रयोग की भूमिका उत्पादकता में आश्चर्यजनक वृद्धि करने के वचन की पूर्ति माना गया था तथा एक ओर किसानों को कृषि से अपनी आय बढ़ाने के सहायक अन्य संसाधन तो दूसरी ओर अधिक सस्ता और गुणवत्ता की खाद्य सामग्री मुहैया कर उपभोक्ताओं के लिए लाभ कर माना गया। जैव प्रौद्योगिकी केन्द्रित तरीकों के प्रयोग को भी पैमाना निर्पेक्ष समझा गया था क्योंकि यह बीजों पर फोकस करता है, रासायनिक, उर्वरकों और मंहगी फार्म मशीनरी पर नहीं। GM बीजों को अधिक उत्पादनकारी, अधिक कीटनाशी सह और सभी श्रेणियों के फार्मों और सभी कृषि क्षेत्रों के लिए उपयुक्त समझा गया है। परंतु भारतीय कृषि में जीन प्रौद्योगिकी का अंगीकरण अभी वाद-विवाद और चर्चा का विषय है क्योंकि पादपों, जंतुओं और मानव जीवन पर उसके सकारात्मक और नकारात्मक प्रभावों का पूरी तरह से परीक्षण अभी नहीं हुआ है। यद्यपि एक ओर GM बीज प्रौद्योगिकी के पर्यावरणीय, पारिस्थितिकीय और स्वास्थ्य संबंधी परिणामों को उसके आर्थिक लाभों की अपेक्षा अधिक महत्त्व दिया गया है तो दूसरी ओर, बहुत से ऐसे मुद्दे हैं जिन्होंने अनुसंधानकर्त्ताओं और सक्रियतावादियों का ध्यान आकर्षित किया है। उनमें प्रमुख हैं, नैतिक, सुरक्षा और स्वामित्व मुद्दे। उसे अपनाने का सबसे बड़े खतरों में एक यह है कि आधारभूत मानवीय आवश्यकता (जो भोजन है), पर कुछ बहुराष्ट्रीय जैव बीजों के प्रजनक कंपनियों का एकाधिकारी नियंत्रण हो जाएगा। इस प्रकार यद्यपि GM बीज प्रौद्योगिकी में भारतीय कृषि में क्रांति लाने की विपुल संभावना है परंतु GM बीज प्रौद्योगिकी मंहगी और अपने स्वरूप में स्वामित्व होने के कारण संदेह है कि प्रौद्योगिकी संसाधन संपन्न किसानों के लिए अधिक उपयुक्त हो सकती है और सीमांत और छोटे किसानों की बहुत बड़ी संख्या, विशेषकर पिछड़े कृषि क्षेत्रों में इसके लाभ प्राप्त करने से छूट जाते हैं। परंतु हमें स्मरण करना चाहिए कि GR आधारित प्रौद्योगिकी भी छोटे और सीमांत किसानों की तुलना में केवल धनी किसानों के अनुकूल है। इसलिए हरित क्रांति और जीन क्रांति के बीच आधारभूत अंतर ऐसा कहा जा सकता है हरित क्रांति मुख्यतः सार्वजनिक क्षेत्र प्रेरित थी तो 'जीन क्रांति' का आधार निजी क्षेत्र रहेगा। इस पृष्ठभूमि के प्रतिकूल वर्तमान चर्चा ऐसी ''द्वितीय हरित क्रांति आरंभ करने पर है जिसकी व्यापक विशेषताएँ राष्ट्रीय कृषि नीति दृष्टि प्रलेख में निर्दिष्ट की गई है। इकाई 22 में आप उनके बारे में अधिक विस्तार से अध्ययन करेंगे।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 3

नीचे दिए गए स्थान पर अपना उत्तर लगभग 50 शब्दों में लिखिए।

1) वे कौन-सी तीन दिशाएँ हैं जिनमें GR पश्च प्रयासों की नीतिगत पहलें केन्द्रित थीं?

....

....

....

....

2) उन दो कारणों का उल्लेख कीजिए जो बहुत से क्षेत्रों में GR के विस्तार की कमी के लिए पहचाने जाते हैं?

....

....

....

....

3) किस तरीके में जैव प्रौद्योगिकी (Bt/GM) तरीकों का प्रयोग GR प्रौद्योगिकी आधारित तरीकों की तुलना में अधिक उपयोगी समझा जाता है? इसके बावजूद ऐसा क्यों है कि उन्हें अभी भी भारत में नहीं अपनाया जा रहा है

....

....

....

....

4) GR और GM दृष्टिकोण के बीच आधारभूत अंतर क्या है?

....

....

....

....

DIKSHANT IAS

11.6 सारांश

Call us @7428092240

GR प्रौद्योगिकी और उससे प्राप्त लाभ भारतीय अर्थव्यवस्था को रूपांतरित करने में सहायक हुए। देश खाद्य अभाव की अवस्था से खाद्य अधिशेष की अवस्था में गया। परंतु GR के लाभ देश बहुत से क्षेत्रों में विशेषकर भारत के पूर्वी राज्यों में नहीं पहुंचे क्योंकि वहां छोटे और सीमांत किसानों की बहुत बड़ी संख्या के जोत छोटे-छोटे टुकड़ों में थे जिनकी GR प्रौद्योगिकी प्रयोग करने के लिए आवश्यक पूँजी निवेश करने की क्षमता नहीं थी। GR के बाद के वर्षों में संकेन्द्रित नीतिगत सहायता प्रदान करने के लिए सरकार द्वारा किए गए प्रयासों ने इस संबंध में स्थिति में सुधार किया। GR प्रौद्योगिकी पर्यावरण मैत्रीपूर्ण नहीं थी क्योंकि यह रासायनिक उर्वरकों और खरपतवार नाशियों पर बहुत अधिक निर्भर थी जिससे मृदा और जल संसाधन प्रदूषित हुए। इस प्रौद्योगिकी का एक विकल्प, अर्थात् GM प्रौद्योगिकी 1980 के दशक के दौरान उसके अप्रदूषणकारी प्रभावों के कारण लोकप्रिय हुई। परंतु इस प्रौद्योगिकी का विशाल स्तर पर क्रियान्वयन अपने जड़े नहीं जमा सका। फिर भी, इस प्रौद्योगिकी के आर्थिकेत्तर आयामों जो मूल रूप से अपने स्वामित्व स्वरूप के इर्द-गिर्द केन्द्रित रहते हैं को ध्यान में (अर्थात् उसकी धनी MNC/कार्पोरेट हाउस को उसकी सुलभता/लाभ का एकाधिकार बनाने की संभावना) रखना भी आवश्यक है। इसलिए अधिक व्यापक समावेशिता के इस दृष्टिकोण से GR और GM दोनों प्रौद्योगिकियां उन छोटे और सीमांत किसानों के लिए अनुपयुक्त है जो इन प्रौद्योगिकियों से लाभ प्राप्त करने के लिए अपेक्षित साधन नहीं जुटा सकते (अर्थात् पर्याप्त मात्रा में पूँजी नहीं जुटा सकते जो GM और GR दोनों प्रौद्योगिकियों के लिए आवश्यक है) इसलिए हाल में, ''दूसरी हरित क्रांति'' की आवश्यकता पर चर्चा आरंभ हुई है जो अधिक समावेशी स्वरूप से

खाद्य सुरक्षा/असुरक्षा की समस्या का समाधान करने के लिए उपयुक्त हो, अर्थात् प्रक्रिया के मुख्य घटकों के रूप में छोटे सीमांत किसानों और वर्षा प्रधान तथा शुष्क क्षेत्रों पर बल सहित कृषि उत्पादकता बढ़ाने पर आग्रह करती हो।

11.7 शब्दावली

हरित क्रांति (GR) : इसका संबंध नई कृषि प्रौद्योगिकी से है। 1950 के दशक के उत्तरार्द्ध और 1960 के दशक के प्रारंभ में गेहूँ और चावल फसलों के लिए क्रमशः मैक्सिको और फिलिपीन्स में विकसित की गई थी, इसने एशिया और लेटिन अमरीका के बहुत से खाद्य अभाव देशों को खाद्य अभिशेष अर्थव्यवस्था में रूपांतरित किया। परंतु प्रौद्योगिकी को उर्वरक और मशीनें खरीदने के लिए प्रचुर पूँजी की आवश्यकता होती है और इसकी प्रयोज्यता केवल उन क्षेत्रों के लिए उपयुक्त थी जो सिंचाई और कृषि उत्पादकता के अनुसार पहले से ही समृद्ध थे। GR प्रौद्योगिकी की इन विशेषताओं के कारण बहुत से छोटे और सीमांत किसानों तथा गरीब राज्य/क्षेत्र इस प्रक्रिया का भाग होने में असमर्थ रहे। परिणामस्वरूप देश के बहुत से भाग इसके लाभ प्राप्त नहीं कर सके।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

अधिक पैदावर वाली फसलों के बीज : ये विशेष बीज हैं जो GR प्रौद्योगिकी अनुप्रयोग क्षेत्रों में प्रयुक्त किये गए थे। ये देशी बीजों की भांति नहीं थे। वे उर्वरकों की उच्च मात्रा भी सह सकते थे, परंतु केवल इसी कारण से वे कम पर्यावरण मित्र थे, क्योंकि, उन्होंने मृदाओं की उर्वरता कम की। परंतु उनकी शीघ्र उपजों के कारण उसी खेत पर एक वर्ष के दौरान कई फसल उगा सकते थे। इससे कृषि उत्पाद की उत्पादकता और किसानों की आय/लाभ बढ़ सकती थी।

जननिक रूप से रूपांतरित (GM) बीज : यह एक विकल्प है जिसे 1980 के दशक में विकसित किया गया। यह HYV बीज की भांति नहीं है GM बीज रासायनिक खादों पर बहुत अधिक निर्भर नहीं थे। परंतु प्रौद्योगिकी का विशिष्ट स्वामित्व स्वरूप था। कुछ MNC/कार्पोरेट व्यापारिक घरानों के एकाधिकार। इसी कारण इनकी सुलभता सीमित थी।

11.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Bowonder B. (1979): 'Impact Analysis of the Green Revolution in India", *Technological Forecasting and Social Change,* Vol. 15, 297-313.

Ford Foundation (1959): *Report on India"s Food Crisis and Steps to Meet It.* New Delhi: Ministry of Food and Agriculture and Ministry of Community Development.

Freebairn D.K. (1995): '*Did the Green Revolution Concentrate Incomes? A Quantitative Study of Research Reports". World Development,* Vol. 23, No.2, pp. 265-279, 1995.

Griffin, Keith (1974): *The Political Economy of Agrarian Change: An Essay on the Green Revolution,* Harvard University Press, 1974.

Pingali P. and Terri Raney (2005): 'From the Green Revolution to the Gene Revolution: How will the Poor Fare? ESA Working Paper No. 05-09, www.fao.org/es/esa.

Rao, C.H.H. (1994): *Agricultural Growth, Rural Poverty and Environmental Degradation in India,* Oxford University Press, New Delhi.

Shiva, V. (1993): *'The Violence of the Green Revolution: Third World Agriculture, Ecology and Politics",* 2nd ed. London, UK : Zed Books Ltd. 1993.

Singh S.P. (2010): Agriculture under Neoliberal Policy Regime, in *Alternative Economic Survey: India : Two decades of Neoliberalism,* Dannis Books.

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

11.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) उपभाग 11.2.1 देखें।

2) भाग 11.2.1 देखें।

3) उपभाग 11.2.1 देखें।

4) उपभाग 11.2.2 देखें।

5) उपभाग 11.2.2 देखें।

बोध प्रश्न 2

1) क), ख), ग) और घ), तथा उपभाग 11.3.1.1 देखें।

2) उपभाग 11.3.1.4 देखें।

3) उपभाग 11.3.2.1 देखें।

4) उपभाग 11.3.2.3 देखें।

5) उपभाग 11.3.2.6 देखें।

बोध प्रश्न 3

1) भाग 11.4 देखें।

2) भाग 11.4 देखें।

3) भाग 11.5 देखें।

4) भाग 11.5 देखें।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इकाई 12 नई प्रौद्योगिकी और हितलाभों का वितरण

संरचना

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 संकल्पनात्मक विहंगावलोकन

12.3 प्रौद्योगिकीय प्रभावों का पथ

12.4 हितलाभों के वितरण की संरचनाएँ

12.4.1 क्षेत्रीय विभिन्नताएँ

12.4.2 रोज़गार पर प्रभाव

12.4.3 विभिन्न आर्थिक श्रेणियों के संदर्भ में

12.4.4 विभिन्न आकार के खेतों के संदर्भ में.

12.4.5 उत्पादकों और उपभोक्ताओं के बीच संबंध

12.5 जननिक रूप से परिवर्तित फसलें और हितलाभों का संभावी वितरण

12.6 सारांश

12.7 शब्दावली

12.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

12.9 बोध प्रश्नों के उत्तर/संकेत

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

12.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप :

- स्पष्ट कर सकेंगे कि कृषि में प्रौद्योगिकीय विकास क्यों महत्त्वपूर्ण है?
- उस मार्ग की पहचान कर सकेंगे जिससे नई कृषि प्रौद्योगिकियों द्वारा लाभ प्राप्त होता है;
- इस विवरण की रूपरेखा प्रस्तुत कर सकेंगे कि हरित क्रांति (GR) प्रौद्योगिकियों ने सामाजिक समूहों और क्षेत्रों को कैसे प्रभावित किया है;
- नई प्रौद्योगिकियों का संभावित प्रभाव निर्दिष्ट कर सकेंगे, जैसे जननिक रूप से परिवर्तित (GM) फसलें;
- GR और GM के बीच उनके मुख्य अंतरों में विभेद कर सकेंगे; और
- कृषि सेक्टर में नवीन प्रक्रिया द्वारा हितलाभों का बेहतर वितरण सुनिश्चित करने के लिए नीतिगत रणनीति सुझा सकेंगे।

12.1 प्रस्तावना

अन्य पण्य वस्तुओं के उत्पादन के मामले की भांति कृषि सेक्टर के लिए प्रौद्योगिकी के प्रयोग के माध्यम से उत्पादकता सुधार बहुत महत्त्वपूर्ण है। भले ही, प्रौद्योगिकी परिवर्तन का उद्देश्य उपज/उत्पाद बढ़ाना है, परंतु प्रभाव केवल उत्पाद तक सीमित नहीं है। वे निम्नलिखित के संबंध में भी प्रकट होते हैं : (i) रोज़गार वृद्धि या ह्रास; (ii) विभेद किए गए प्रभाव, जब नई प्रौद्योगिकी पूँजी प्रधान होती है, यह अन्य की अपेक्षा पूँजी के लिए अधिक आसान सुलभता के साथ उत्पादकों को लाभ पहुंचाती है; (iii) यदि नई प्रौद्योगिकी खास फसलों तक सीमित की जाती है, तो उन फसलों के उत्पादकों में अधिक लाभ कमाने की प्रवृत्ति होती है, अन्य लाभ प्राप्त करने से रह जाते हैं। इसलिए नई प्रौद्योगिकी परिवर्तन से लाभ क्षेत्रों और आर्थिक अभिकर्त्ताओं में समान रूप से वितरित होना आवश्यक नहीं है। दूसरे शब्दों में, प्रौद्योगिकीय परिवर्तन खासतौर पर अल्प समय के लिए लाभ कमाने वाला और हानि उठाने वाला बना सकता है। परंतु दीर्घकाल में किसी न किसी तरह का संतुलन पुनः स्थापित हो सकता है। लाभों का न्यायसंगत वितरण सुनिश्चित करने के मार्ग में कई बाधाएँ उत्पन्न होती रहती हैं। यह विशेष रूप से भारत जैसे निम्न आय के देशों में सत्य है, जहाँ लाभ के अधिक न्यायसंगत वितरण सुनिश्चित करने के लिए अपेक्षित संस्थागत विकास संभव नहीं हो सका है। इस संदर्भ में इस इकाई में ऐसे महत्त्वपूर्ण मुद्दों पर विचार किया गया है कि नई प्रौद्योगिकी का मिश्रण समाज के विभिन्न सामाजिक और आर्थिक वर्गों पर किस प्रकार भिन्न-भिन्न प्रभाव डालता है और इस दृष्टि से समानता का महत्त्व सुनिश्चित करने के लिए क्या उपाय किए जाने आवश्यक हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

12.2 संकल्पनात्मक विहंगावलोकन

प्रौद्योगिकी विकास समाज को किस प्रकार लाभ पहुंचाता है और यह कुछ वर्गों को क्यों नजरअंदाज कर जाता है तथा केवल कुछ को ही क्यों असमान तरीके से लाभ देता है? और किस नीतिगत चुनौती का सामना किया जाना आवश्यक है ताकि समता समस्याओं का समाधान यथाविधि किया जा सके है? संकल्पनात्मक दृष्टि से ये दो प्रश्न हैं जिनका उत्तर हम इस इकाई में देने का प्रयास करेंगे। जैसाकि हम भलीभांति जानते हैं कि प्रौद्योगिकीय प्रगति उत्पादकता बढ़ाने के लिए अपरिहार्य है। पिछली इकाई में आपने देखा है कि कृषि सेक्टर का उसकी आय, रोज़गार और उपभोग प्रभावों द्वारा शेष अर्थव्यवस्था से गहरा सहसंबंध है। इसके अलावा, खाद्य मूल्यस्फीति सृजन किए बिना खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करना नीति निर्माताओं के लिए सदा महत्त्वपूर्ण चुनौती रहा है। बढ़ती हुई जनसंख्या की खाद्य आवश्यकताओं को पूरा करने के अलावा सेक्टर को औद्योगिक सेक्टर का विस्तार करने के लिए नए कच्चे माल की नियमित आपूर्ति सुनिश्चित करना भी आवश्यक है। निम्न आय वाले देशों में गरीब परिवारों की बहुत बड़ी संख्या अपनी आजीविका के लिए इस सेक्टर पर निर्भर रहती है, अतः उत्पाद में सुधार, गरीबी कम करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। परिणामतः नये प्रौद्योगिकीय विकास में निवेश और उसका प्रभावकारी विस्तार औद्योगिक और निम्न आय दोनों अर्थव्यवस्थाओं में नीति निर्माण का महत्त्वपूर्ण पहलू है। 1960 के दशक तक भारत सहित कई निम्न आय के देशों में खाद्यान्न की बढ़ती हुई मांग के अनुसार उत्पादन गति नहीं रह पायी। जैसा कि पिछली इकाई में चर्चा की गई है, इस गंभीर खाद्य कमी का सामना करने की अनुक्रिया में ''हरित क्रांति'' नाम के व्यापक कार्य

क्रमित हस्तक्षेप के अधीन इन देशों में से कई में सरकारों ने रासायनिक उर्वरकों और सिंचाई के संपूरक आदानों के साथ अधिक पैदावार देने वाली किस्म के बीज नाम की नई प्रौद्योगिकी अपनाई। ऐसी प्रौद्योगिकीय प्रगति के फलतः पैदावार में सुधार होने पर भी उसके कल्याणकारी प्रभाव विवादास्पद रहे। यह व्यापक विवाद है कि गरीब संपूरक आदान का प्रयोग करने में अपनी असमर्थता के कारण मुख्यतः (साधारणतया एशिया में हरित क्रांति के दौरान) नई प्रौद्योगिकी के अंगीकरण में सफलतापूर्वक भाग लेने में असमर्थ थे यद्यपि धनी किसानों के लिए उच्चतर उत्पाद ने अधिक लाभ दिया, क्योंकि उनका विपण्य अधिशेष (इनकी खपत/आवश्यकताएं कम होने के कारण) बहुत अधिक था। छोटे और सीमांत किसान की स्थिति, जिन्होंने नकदी फसल अपना ली थी, भिन्न थी। उन्होंने न केवल अपना जीवन निर्वाह का आधार खाद्य खोया अपितु उत्पादों की कीमत गिरने पर उत्पादन भारी क्षति झेली। ऐसी हानियों को सहन करने की उनकी क्षमता अल्पतम थी। परंतु ये तर्क भी दिया जाता है कि समय के चलते GR प्रौद्योगिकी के प्रवर्तन द्वारा लाए गए लाभ गरीबों को भी प्राप्त हो गए क्योंकि फसलों की सामान्य उत्पादकता सुधरी। विस्तार के निम्न स्तर के कारण यह गरीब वर्गों के कल्याण स्तर को सुधारने के लिए महत्त्वपूर्ण था, नई प्रौद्योगिकियाँ गरीबों को सुलभता उस तरीके संभव बनाना। यद्यपि साख एवं बाजार का उचित प्रसार समाज के गरीब वर्गों तक नवीन प्रौद्योगिकी का लाभ पहुँचाने के लिए अनिवार्य था किंतु यह भी अभी तक संभव नहीं हो पाया है। बाद के वर्षों में जननिक परिवर्तित (GM) प्रौद्योगिकियाँ जो कृषि उत्पादन को अगले स्तर तक पहुँचाने में सहायक हो सकती थीं वहाँ भी समता और धारणीयता से जुड़े प्रश्न उस प्रौद्योगिकी को अपनाने में बाधक हो गये हैं। इसलिए ऐसी प्रतिस्पर्धा स्थिति में नीतिगत चुनौती लाभ के वितरण की समस्या को हल करने के इर्द-गिर्द केन्द्रित होती है। दूसरे शब्दों में, संकल्पनात्मक दृष्टि से हम मोटे तौर पर निम्नलिखित तरीकों की पहचान कर सकते हैं जिनके माध्यम से समुदाय के भिन्न-भिन्न वर्ग कृषि में प्रौद्योगिकीय प्रगति से लाभ प्राप्त कर सकते हैं :

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

क) कम कीमतों द्वारा उपभोक्ता;

ख) गैर फार्म और फार्म-इतर, दोनों रोज़गारों के अधिक अवसर प्राप्त करने के तरीकों द्वारा कृषि श्रमिक;

ग) धनी किसानों की अपेक्षा अधिक कम सही किंतु, स्वयं उपयोग और उत्पादन द्वारा जीवन निर्वाह किसान; और

घ) बहुत कम मौद्रिक मज़दूरी से व्यापार के अवसर पाकर कृषि व्यापार उद्यमिता और इसलिए निवेश के लिए उच्चतर अधिशेष ताकि पुर्नावृत्त लाभ/निवेश के संचयी लाभ उस अवस्था तक हो सके जब मज़दूरी का स्तर उत्पादकता में सुधारों से मेल खाता हो।

12.3 प्रौद्योगिकीय प्रभावों का पथ

एक अधिक व्यापक रूप में प्रौद्योगिकीय प्रभावों के पथ की रूपरेखा इस प्रकार प्रस्तुत की जा सकती है कृषि के क्षेत्र में प्रौद्योगिकी की विशेषताएँ इस प्रकार बताई जा सकती हैं :

क) **अंतर्निहित प्रौद्योगिकीय विशेषता** : इसमें रोग और मौसम सह-नस्लों के रूप में जेनेटिक प्रौद्योगिकी सम्मिलित करने वाली बीज/पादप किस्में शामिल हैं जो

रासायनिक उर्वरकों के प्रति अधिक अनुक्रियाशील, प्रचुर मात्रा में उत्पादित हो सकते हैं (जैव/प्राकृतिक खाद की तुलना में, जिनके उत्पादन संभावना की प्राकृतिक सीमा होती है) इसमें इंजीनियरी प्रौद्योगिकी के मैकेनिकल और इलैक्ट्रिकल उपकरण भी सम्मिलित हैं।

ख) **अनंतर्निहित प्रौद्योगिकीय विशेषताएँ** : यह ज्ञान के रूप है जिन्हें नियमों और प्रक्रियाओं में साहित्यबद्ध किया जा सकता है जो नई प्रौद्योगिकियों के प्रभावकारी उत्पादन और प्रयोग के लिए आवश्यक है। अंतर्निहित प्रौद्योगिकी प्रयोग का प्रयास करने वाले किसानों को इस संबंध में जानकारी प्राप्त करने की आवश्यकता होगी कि खेतों में उनका सबसे अच्छा प्रयोग कैसे हो सकता है। किसानों के लिए ये नियम और कार्यविधि समझना तथा इन्हें उचित ढंग से काम पर लगाना आवश्यक है जिनके लिए शिक्षा और प्रशिक्षण के रूप में ''विस्तार सेवा'' प्रौद्योगिकी प्रसार का महत्त्वपूर्ण घटक हैं। यह याद रखना भी महत्त्वपूर्ण है कि जब समुचित उपायों द्वारा सूचना की सुलभता/प्रवाह यथाविधि सुगम बनाई गई हो तब भी विभिन्न सहभागियों की उत्पादन क्षमताएँ सहभागियों में भिन्न रहती हैं। यह नई प्रौद्योगिकी से लाभ लेने के लिए व्यक्तियों/क्षेत्रों में अंतर्निहित भिन्नताओं पर निर्भर करता है। उन्हें बेहतर ढंग से आत्मसात करने में सहायता करने के लिए संस्थागत क्षमताएँ प्रौद्योगिकी ग्रहण करने की अनुकूल स्थितियाँ बनाने में शासन के दृष्टिकोण पर निर्भर करती है। ये प्रयास प्रौद्योगिकी विकास से सफलतापूर्वक इष्टतम लाभ प्राप्त करने की कुंजी हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

प्रौद्योगिकी के विभिन्न आयामों में इन अंतरों के लिए प्रौद्योगिकी के प्रभाव का आकलन करना आवश्यक है। इन्हें ''पथ'' कहा जा सकता है जिनसे विस्तार प्रभाव परिमाण निर्धारित हो सकता है तथा जिसका मूल्यांकन किया जा सकता है। इन्हें निम्न प्रकार बताया जा सकता है :

क) बढ़े हुए उत्पाद द्वारा (अर्थात् उत्पाद बढ़ाना)

ख) उत्पादित उत्पादों की उन्नत कोटि द्वारा (अर्थात् गुणवत्ता सुधारना)

ग) फसल चक्र अवधि में कटौती द्वारा और इसलिए फसल गहनता बढ़ाने की संभावना बनाना, और/या

घ) खेती की लागत में कमी द्वारा (अपेक्षित आदानों के परिमाण घटाकर या आदानों की कीमत कम करके या नए परंतु अधिक सस्ते आदानों के सेट लागू करके) (अर्थात् लागत/आदान कम करना)।

बोध प्रश्न 1

नीचे दिए गए स्थान में अपना उत्तर लगभग 50 शब्दों में लिखिए।

1) किन्हीं तीन तरीकों का उल्लेख कीजिए जिनमें कृषि में प्रौद्योगिकी विकास का प्रभाव अल्पकाल में लाभकारी और हानिकारी दोनों स्वरूप धारण कर सकते हैं।

....

....

....

....

2) उन दो कारकों का उल्लेख कीजिए जो मुख्य रूप से GR या HYV प्रौद्योगिकी के सकारात्मक प्रभाव क्षेत्र से छोटे और सीमांत किसानों को बाहर रखने के लिए उत्तरदायी हैं।

....

....

....

....

3) संकल्पनात्मक रूप से आप समुदाय के विभिन्न वर्गों के लिए कृषि में प्रौद्योगिकी विकास का लाभप्रद प्रभाव किस प्रकार निर्धारित करेंगे?

....

....

....

....

DIKSHANT IAS

4) उन घटकों का उल्लेख कीजिए जो अपने ''अंतर्निहित प्रौद्योगिकीय विशेषताओं'' के नाते कृषि उत्पाद बढ़ाते हैं।

Call us @7428092240

....

....

....

....

5) आप प्रौद्योगिकीय विकास से इष्टतम लाभ की सफलतापूर्वक प्राप्ति के लिए ''कुंजी'' के रूप में किसे मान्यता प्रदान करेंगे?

....

....

....

....

6) वे चार मुख्य 'पथ' क्या हैं जिनके आधार पर कृषि में प्रौद्योगिकीय विकास के विस्तार का परिमाण निर्धारण/मूल्यांकन किया जा सकता है?

....

12.4 हितलाभों के वितरण की संरचनाएँ

आदर्श स्थिति में, जहां हितलाभों के समान वितरण को प्रभावित करने वाले कारक नियंत्रित किए जाते हैं, के लिए अच्छा कार्य करने वाली ऐसी संस्थाओं की आवश्यकता हो सकती है, जो देश के आर्थिक विकास के साथ-साथ धीरे-धीरे विकसित होती है और उसी से संतुलित क्षेत्रीय विकास हो पाता है। परंतु जैसा कि पहले ही देखा गया है, अल्पकाल में किन्हीं को लाभ किन्हीं को हानि हो सकती है। यदि ऐसा होता है तो प्रौद्योगिकी विकास के कारण लाभ के वितरण में वैशम्य के आयाम क्या हैं? हम इसके पांच मुख्य आयामों का निर्धारण कर सकते हैं:

12.4.1 क्षेत्रीय विभिन्नताएँ

विभिन्न क्षेत्रों में असमानताएँ निम्नलिखित से उत्पन्न होती हैं : (क) प्रौद्योगिकीय परिवर्तन का स्वरूप, (ख) कारक निधियों में अंतर (जैसे मृदा दशाएं और प्राकृतिक वर्षा की मात्रा), और (ग) संस्थागत विभिन्नताएँ।

क) **प्रौद्योगिकीय परिवर्तन का स्वरूप** : विकासशील विश्व में प्रौद्योगिकीय विकास के स्वरूप का रूझान पूँजी प्रधानता की ओर है क्योंकि वे अधिकांशतः उन्नत पूँजीवादी देशों से प्रौद्योगिकी का आयात होता है। इसके फलस्वरूप प्रौद्योगिकीय परिवर्तन पहले से ही अधिक समृद्ध क्षेत्रों का रुख कर लेते हैं, जहाँ पूँजी प्रधान आदान प्रयोग करना सहज संभव लगता है। यदि उत्पाद के लिए पूँजी सुलभता महत्त्वपूर्ण है, तब ऋण के प्रवाह में भी असमानताएँ ऐसे क्षेत्रों में विषमता को अधिक गहन कर देती हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बहुत-सी नई प्रौद्योगिकियां जल प्रधान भी होती हैं, जिन्हें निश्चित सिंचाई की सुलभता आवश्यक होती है। इस दृष्टि से बेहतर सिंचाई संसाधन युक्त क्षेत्रों में वर्षा पर अधिक निर्भर क्षेत्रों की अपेक्षा अधिक लाभ प्राप्त करने की प्रवृत्ति होती है। इस कारक के कारण भी भारतीय कृषि के मामले में यह तर्क दिया जाता है कि हरित क्रांति ने विद्यमान क्षेत्रीय असमानताओं को बढ़ाया है क्योंकि उससे वर्षा प्रधान और संसाधन विपन्न क्षेत्र लाभान्वित नहीं हुए।

ख) **कारक निधि में अंतर** : फसल विशिष्ट प्रौद्योगिकियाँ, जैसे HYV बीज केवल उन्हीं को लाभ देती है जो उन फसलों को उगा रहे हैं। जिन क्षेत्रों में इन फसलों के उत्पादन के लिए अधिक उपयुक्त स्थायी दशाएं हैं, उन्हें लाभ पहुँचेगा, अन्य क्षेत्र प्रौद्योगिकी परिवर्तन का भाग नहीं बन पाएंगे। भारत में प्रारंभिक प्रावस्था में हरित क्रांति ने गेहूँ उत्पादन करने वाले क्षेत्रों को प्रोत्साहित किया क्योंकि HYV मुख्यतया गेहूँ में ही प्रयोग किया गया था। बाद की प्रावस्थाओं में चावल में HYV बीजों के प्रवर्तन से चावल उत्पादन करने वाले क्षेत्र भी लाभान्वित हुए। इस प्रकार हरित क्रांति ने शुष्क क्षेत्रों के प्रति पर्याप्त पूर्वाग्रह उत्पन्न कर दिए जो तथाकथित मोटा अनाज और मिलेट, जैसी रागी और ज्वार उगाने पर निर्भर

है। इसके अलावा तिलहन या दलहन में पादप किस्मों में कोई सुधार नहीं हुआ है, जो शुष्क क्षेत्र का मुख्य सहारा है। शुष्क भूमि क्षेत्रों में उगाई गई फसलों की किस्म में अधिक उपज देने वाली किस्में विकसित करने प्रौद्योगिकी अभी भी अधूरी है। परंतु अल्प समय में तो कई संस्थागत दबाव (जो सामाजिक-आर्थिक विकास के निश्चित ऐतिहासिक कारक के परिणाम हैं) इस प्रकार की न्यायसंगत वृद्धि की प्रक्रिया के लिए बाधाएँ खड़ी कर देते हैं।

ग) **संस्थागत विभिन्नताएँ** : संस्थागत विभिन्नताओं का संबंध वित्तीय, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि जैसे अन्य संस्थाओं सहित भू-स्वामित्व स्वरूप, श्रम और पट्टेदारी संबंधों में विविधताओं से है। इसलिए पट्टेदारी पद्धति और स्वामित्व का स्वरूप लाभों के क्षेत्रीय वितरण को आकार देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह तर्क दिया जाता है कि ताइवान में HYV चावल से हितलाभों का शीघ्र प्रसार के लिए एक कारण राज्य द्वारा प्रारंभ किए गए भूमि सुधारों के कारण अपेक्षाकृत अधिक समानतापूर्ण भूमि स्वामित्व स्वरूप था। इसके विपरीत, भारत में भूमि सुधार का प्रसार त्रुटिपूर्ण था जिससे हरित क्रांति द्वारा कृषि विकास के वितरणात्मक प्रभावों की प्राप्ति कम हुई। परंतु ऐतिहासिक दृष्टि से जिन क्षेत्रों में रायतवारी प्रथा विद्यमान थी, वहाँ उन क्षेत्रों की अपेक्षा उच्चतर वृद्धि और वितरणात्मक लाभ हुआ जिनमें स्वामित्व की ज़मीदारी प्रथा विद्यमान थी। प्राथमिक आंकड़ों पर आधारित माइक्रो अध्ययनों ने प्रमाणित किया है कि हरित क्रांति के प्रथम दशक में प्रति व्यक्ति ऋण प्रवाह, रायतदारी क्षेत्रों में उच्चतर था। इसलिए नीतिगत बल के लिए आवश्यक है कि नई प्रौद्योगिकी के प्रयोग को भूमि सुधार और संस्थागत विकास दोनों के साथ मिलाया जाना चाहिए। दूसरे शब्दों में, यद्यपि भूमि सुधार आवश्यक है फिर भी प्रौद्योगिकीय विकास से हितलाभों के न्यायसंगत वितरण के लिए आवश्यक है कि इस प्रकार के सुधार ऋण, तकनीकी और विपणन सहायता, शैक्षिक और स्वास्थ्य संस्थाओं आदि की व्यवस्था द्वारा समर्थित हों।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

12.4.2 रोज़गार पर प्रभाव

हम समग्र रोज़गार प्रभाव के एक नोट मापक के रूप में रोज़गार नम्यता का प्रयोग कर सकते हैं। रोज़गार नम्यता मापक उत्पाद में प्रत्येक एक प्रतिशत की वृद्धि के लिए रोज़गार में प्रतिशत वृद्धि बताता है। प्रौद्योगिकियां रोजगार में श्रम की खपत के विस्तार को प्रभावित करते हुए रोज़गार नम्यता को बदल सकती हैं। परंतु यद्यपि पूँजी प्रधान प्रौद्योगिकियाँ प्रत्यक्ष रोज़गार घटा सकती हैं, फिर भी अप्रत्यक्ष रोज़गार की मात्रा बढ़ सकती है। उदाहरण के लिए, मशीनरी के लिए मांग से मरम्मत सेवाओं में अतिरिक्त श्रम की मांग उत्पन्न हो सकती है। बढ़े हुए उत्पाद के लिए फसल कटाई और संसाधन जैसे सेक्टरों में अतिरिक्त श्रमिकों की आवश्यकता हो सकती है। इसके अलावा, बहुसस्यन के तरीके द्वारा सस्यन सघनता संभव हो सकती है, जिससे पूरे वर्ष के दौरान श्रमिकों के लिए अधिक मांग हो सकती है। दूसरे आयाम में रोज़गार पर मशीनीकरण का प्रभाव उस सीमा पर निर्भर करेगा जिस तक उसके श्रमिक प्रतिस्थापन प्रभाव की प्रतिपूर्ति भूमि आवर्धक प्रभाव द्वारा हो जाती है। इसका एक उदाहरण संयुक्त राज्य है, जहाँ 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में खेतों के अधीन भूमि का विशाल क्षेत्र लाया गया। उसमें मशीनीकरण से भारी कृषि वृद्धि हुई। यूरोप में निर्यात बाजार ने उसके उत्पाद के लिए मांग की उच्चतर नम्यता प्रदान की। परंतु भारत जैसे भूमि अभाव वाले देशों में कुछ सीमांत परिवर्तनों को छोड़कर ऐसा नहीं हो सकता। परंतु

गैर फार्म सेक्टर की वृद्धि से, इस प्रकार के संदर्भ में भी श्रमिकों को रोजगार मिल सकता है। आवश्यक है कि अंतिम मांग की नम्यता उत्पन्न करने के लिए उपयुक्त कारक विद्यमान हों। इसके अभाव में मशीनीकरण कृषि रोज़गार में कमी ला सकता है, भले ही, अतिरिक्त भूमि उपलब्ध हो।

हरित क्रांति के बाद की अवधि में पंजाब का अनुभव रोज़गार और नई प्रौद्योगिकियों के बीच संबंध की जटिलता प्रकट करता है। यहां हरित क्रांति के प्रारंभिक वर्षों में श्रमिकों के लिए मांग बहुत तेज़ी से बढ़ी थी, इसके फलस्वरूप वास्तविक मज़दूरी में भी वृद्धि हुई। इसने श्रमिकों के लिए मांग और परिणामतः बिहार जैसे अन्य राज्यों से श्रमिकों का प्रवासन बढ़ाया। साथ-साथ मज़दूरी वृद्धियों ने भी भूमि स्वामियों को अधिक मशीनरी के प्रयोग की ओर प्रेरित किया। इसका परिणाम यह हुआ कि अनुवर्ती अवधि में वास्तविक मज़दूरी में ह्रास हुआ। इसके अलावा नई प्रौद्योगिकी ने श्रम की कतिपय किस्मों, जैसे ट्रैक्टर चालकों, संयुक्त हार्वेस्टर प्रचालकों को नियुक्त कर श्रम बाजार में अकुशल श्रमिकों को बाहर धकेल सकती है। लिंग आधारित अंतर भी उभर सकते हैं।

नई प्रौद्योगिकियां रोज़गार संबंधों में परिवर्तन भी प्रभावित कर सकती हैं। यदि वर्ष के दौरान श्रमिकों के लिए वार्षिक मांग स्वरूप बदलता है तो यह स्थायी श्रमिक से किराए पर श्रमिकों में बदल सकता है; या कुछ मामलों में स्थायी श्रमिकों के प्रयोग की गहनता में वृद्धि हुई है। इस प्रकार के परिवर्तन के निहितार्थ मज़दूरी स्तरों और कामगारों के कल्याण में भी हुए हैं।

DIKSHANT IAS

12.4.3 विभिन्न आर्थिक श्रेणियों के संदर्भ में

Call us @7428092240

सामान्य रूप से आर्थिक श्रेणियाँ, जैसे ज़मींदार-पट्टेदार, नियोक्ता-श्रमिक आदि के बीच आय वितरण में भी परिवर्तन आते हैं। जब नई प्रौद्योगिकी आरंभ होती है, अवसर का फायदा उठाने के इच्छुक उद्यमियों की नयी श्रेणी भी उभरती है। इससे अपनी भूमि किराये पर देने वाले ज़मींदारों की आय में वृद्धि हो सकती है। इसी प्रकार, नई प्रौद्योगिकी के लिए उस पर काम करने के लिए अधिक कुशल कामगारों को भाड़े पर लेने या पुराने कामगारों को प्रशिक्षण देना आवश्यक हो सकता है। इन दोनों स्थितियों में, नियोक्ता के मज़दूरी बिल में परिवर्तन हो सकता है, क्योंकि अधिक कौशल अधिक मज़दूरी आकर्षित कर सकता है। तदनुसार पूँजीपति निवेशक (कृषि में धनी जमींदारों/किसानों) को प्राप्त होने वाली आय के अंश बदल जाएंगे। भूमि बढ़ाने वाले प्रौद्योगिकीय परिवर्तन जैसे हरित क्रांति प्रौद्योगिकी (अर्थात् प्रति इकाई क्षेत्रफल में फसल सघनता और बढ़ी हुई पैदावार) से भी धनी किसानों के पक्ष में आर्थिक श्रेणियों का आय अंश बदल सकता है। परंतु आय के वितरण में वास्तविक बदलाव अर्थव्यवस्था के विकास की अवस्था की तुलना में उत्पाद की मांग और संपूरक आदानों की आपूर्ति में वृद्धि पर निर्भर करेगा। उदाहरण के लिए, औद्योगिक देशों में समय के चलते भूमि किराये में ह्रास हुआ है। परंतु भारत में ऐसी प्रवृत्ति इंगित करने वाला पर्याप्त प्रमाण अभी नहीं है।

प्रौद्योगिकी परिवर्तन के कुशल और अकुशल श्रमिकों के अंश में बदलाव के अतिरिक्त अन्य प्रभाव भी हो सकते हैं। उदाहरण के लिए, कृषि में पैदावार बढ़ाने वाली प्रौद्योगिकी के लिए फसल कटाई (फसल कटाई में मशीनीकरण के अभाव में) के समय अधिक सघन श्रम के प्रयोग की आवश्यकता हो सकती है। इससे श्रम की सौदेबाजी की

शक्ति बढ़ सकती है और मज़दूरी दर और परिणामतः आय में श्रमिक के अंश में भी वृद्धि हो सकती है। इसके अलावा, जब मज़दूरी दर बढ़ती है, तो नियोक्ताओं द्वारा मज़दूरी बचत के उपाय भी हो सकते हैं। इससे श्रमिकों का मज़दूरी अंश घटाया जा सकता है। भारत जैसे देशों में (जहां सामान्यतया मज़दूरों की आपूर्ति मांग से बहुत अधिक है), अकुशल कामगारों के लिए मज़दूरी अंश में कमी की संभावना हो सकती है। जब मज़दूरी जीवन निर्वाह स्तर पर ही टिकी हो तो उन्नत उत्पादकता पूँजीपति किसानों को अधिक लाभ दे सकती है क्योंकि मज़दूरों के लिए मांग में वृद्धि से भी मज़दूरों के आय अंश में वृद्धि नहीं हो पाती।

12.4.4 विभिन्न आकार के खेतों के संदर्भ में

नई प्रौद्योगिकी से लाभों के वितरण का एक अन्य आयाम फार्मों (खेतों) की सामान्य आकार श्रेणी है। फार्म आकार और उत्पादकता के संबंध पर विवाद अभी बना हुआ है (आपने इस पाठ्यक्रम की इकाई 5 (उपभाग 5.4.2) में इसका संक्षेप में अध्ययन किया है)। भारत सहित कई निम्न आय के देशों में छोटे पैमाने पर कृषि की बहुलता इस आयाम को विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण बनाती है। कृषि प्रौद्योगिकी सहित अधिकांश प्रौद्योगिकी परिवर्तनों में निश्चित पूँजी के पक्ष में पूर्वाग्रह होता है। अतः जिन किसानों को आसानी से पूँजी सुलभ हो सकती है वे सहज ही लाभ प्राप्त कर जाते हैं। इस प्रकार पूँजी सुलभता के लिए फार्मों/किसानों के सामर्थ्य में अंतर लाभ/आय वितरण के स्वरूप को दृढ़ता से प्रभावित करता है। यदि छोटे किसानों के लिए संस्थागत ऋण की सुलभता कम है तो छोटे किसानों के लिए लाभ भी स्पष्ट रूप से अपेक्षाकृत कम होंगे। प्रौद्योगिकी विकास के कारण ग्रामीण असमानताओं को बल मिलेगा। जिन किसानों के पास छोटे-छोटे आकार के खंड हैं, उनकी सहायता करने के लिए ठोस राजकीय नीति के अभाव में बड़े किसानों को ऋण के योग्य समझा जाएगा और इसलिए उन्हें संस्थागत ऋण की सुलभता भी बेहतर हो सकती है। छोटे किसानों के लिए ऋण की लागत उतनी ही अधिक हो सकती है जितने बड़े किसानों के लिए होती है, भले ही, ऋण दी गई राशि कम हो। यह संस्थागत ऋण के संबंध में किसानों के प्रति प्रक्रिया में स्वाभाविक पूर्वाग्रह उत्पन्न करने वाले बैंकों के लिए लेन-देन लागत बढ़ाता है। कई कम आय के देशों के संदर्भ में यह देखा गया है कि छोटे किसानों को अनौपचारिक ऋण के उच्चतम पर निर्भर रहने के लिए विवश किया जाता है। दूसरी ओर, बड़े किसान, विकसित ऋण बाजार के अभाव में भी अपनी बचतों से पूँजी जुटाने में सक्षम हो सकते हैं, जबकि छोटे और सीमांत किसानों की ऐसा करने की क्षमता अत्यधिक सीमित होती है। इसलिए सुविकसित छोटे किसान केन्द्रित ऋण नीति भारत जैसे देशों में प्रौद्योगिकीय विकास के न्यायसंगत स्वरूप के लाभ देने के लिए अति आवश्यक है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

अनेक प्रौद्योगिकियों में बड़े पैमाने पर उत्पादन अधिक लाभप्रद होता है। ऐसी स्थिति में छोटे किसानों की अपेक्षा बड़े किसानों को अधिक लाभ की प्राप्ति होती है। ट्रैक्टर इसका बहुत अच्छा उदाहरण है। एक छोटी मशीन की अपेक्षा बड़ी मशीन को डिज़ाइन करना तकनीकी दृष्टि से अधिक दक्ष है। परंतु ऐसी मशीनें किराये पर देने से छोटे फार्मों को भी लाभ हो सकता है। हाँ, इसके लिए संस्थाओं का समुचित विकास करना आवश्यक है, जैसे आसान शर्तों पर किराये पर देने की सेवाएँ, जिन्हें पूरा करने की क्षमता छोटे किसानों में हो। हरित क्रांति के प्रारंभ से यह आशा की गई थी कि ऋण सुलभता और पैमाने की मितव्ययिताओं में अंतरों का समाधान यथासमय में समर्थन

सेवाओं की स्थापना द्वारा किया जाएगा जो उन क्षेत्रों में प्रभावकारी क्रियान्वयन के लिए अपेक्षित है जहां ऐसी सेवाएं पहले से ही विद्यमान नहीं हैं। दूसरे शब्दों में GR प्रौद्योगिकी के लाभ प्राप्त करने के लिए छोटे किसानों को भी समर्थ बनाकर ''प्रतिलोम संबंध अवधारणा'' का समर्थन करने की आशा की गई थी। यह प्रवृत्ति जो छोटे किसानों के लिए अपेक्षित सेवाओं की सुलभता सुधारकर कम की जा सकती है, वास्तव में, कुछ स्थानों में कुछ हद तक सफल भी हुई। परंतु यह सफलता उन विशाल क्षेत्रों के साथ प्रत्याशित स्तर तक नहीं रही, क्योंकि, वे उसकी लाभदायक पहुंच से बाहर रह गए थे। फिर भी, छोटे किसानों को उत्पादन में बड़े फार्मों की अपेक्षा कतिपय अधिक लाभ हैं, जैसे यदि नई प्रौद्योगिकियों में श्रमिकों के पर्यवेक्षण की अधिक आवश्यकता है तो बड़े किसानों की अपेक्षा छोटे किसान इसे बेहतर कर सकते हैं। परंतु भूमि जोतों के बड़े स्तर पर निरंतर विखंडन के कारण देश में छोटे किसानों की जोतों के आकार अनुकूल आकार की अपेक्षा कहीं अधिक छोटे रह गए हैं। इसलिए ऐसी स्थितियों का सामना करने के लिए नए तरीकों की आवश्यकता उत्पन्न हुई, जैसे सहकारी खेती। परंतु सहकारी खेती कई संस्थागत समस्याओं के कारण प्रायः असफल रही है। किसानों के समूहों या सामूहिक खेती छोटे किसानों के लिए प्रौद्योगिकी, ऋण और विपणन की आवश्यकता पूरी करने में अधिक उपयोगी हो सकती है।

12.4.5 उत्पादकों और उपभोक्ताओं के बीच संबंध

जब नई प्रौद्योगिकियां अपनाने के कारण फसल के उत्पादन की लागत घट जाती है (भूमि की प्रति इकाई उपज में सुधार के आधार पर) तो इसका आशय लागत फलन में अधोमुखी अंतरण है और इसलिए सामग्री के आपूर्ति फलन में ऊर्ध्ववर्ती अंतरण होता है। इसका परिणाम निम्नतर लागत पर अधिक विशाल मात्रा के उपभोग द्वारा आर्थिक हितों में वृद्धि होगी। परंतु उत्पादकों और उपभोक्ताओं के बीच आर्थिक हितलाभ का वितरण पण्य वस्तु की मांग और आपूर्ति की कीमत नम्यता पर निर्भर रहता है। मांग की पूर्ण नम्यता की दशाओं में, (अर्थात् आपूर्ति बढ़ने पर मांग में वृद्धि की स्थिति में), उत्पादक नई प्रौद्योगिकी अंगीकरण के सभी लाभ प्राप्त कर सकते हैं। जब मांग अनम्य हो तो बढ़ी हुई आपूर्ति का परिणाम कीमत में कमी होगी और उपभोक्ताओं को लाभ हो सकता है। चूंकि कई कृषि मालों के लिए मांग अनम्य है, इसलिए उपभोक्ता कम समय में उत्पादकों की अपेक्षा अधिक लाभ प्राप्त कर सकते हैं। इसके अलावा, कृषि के मामले में बहुत-सी पण्य वस्तुएं विनाशशील हैं, और इसलिए उत्पादक (विशेषकर छोटे उत्पादक) उपयुक्त भंडारण सुविधाओं के अभाव में फसल के तुरंत बाद उन्हें यथाशीघ्र बेच देते हैं। आपूर्ति में इस प्रकार की तेज़ी कीमतों को नीचे ला सकती है और छोटे किसानों को प्रभावित कर सकती है यद्यपि उपभोक्ताओं के लिए यह लाभप्रद हो सकती है। परंतु जब उत्पादन पर बड़े किसानों या बड़ी कंपनियों, (जैसे प्लांटेशन) का प्रभाव होता है, उन्हें भंडारण सुविधाओं की सुलभता होने की संभावना होती है और वे अपने उत्पाद को तब तक रख सकते हैं जब फसल कटाई ऋतु के बाद कीमत फिर बढ़ने लगती हैं। धनी की तुलना में गरीब अपनी आय का बड़ा भाग खाद्य पर व्यय करते हैं। इसलिए जब खाद्यान्न की कीमतें गिरती हैं तो धनी वर्ग की तुलना में उनकी वास्तविक आय (गरीबों की) अधिक अनुपात में बढ़ती है। यद्यपि गरीबों को उपभोक्ता के रूप में कीमत गिरावट से लाभ हो सकता है परंतु गरीब किसान को उत्पादक के रूप में दोनों प्रकार की हानि की संभावना का सामना करना पड़ता है (जब वे फसल के तत्काल बाद कम कीमत पर अपने उत्पाद बेचते

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

हैं और अपनी आवश्यकताओं का कुछ सामान कुछ समय बाद खरीदते हैं, जब कीमतें अपेक्षाकृत ऊँची होती हैं)।

बोध प्रश्न 2

नीचे दिए गए स्थान में अपने उत्तर 50 शब्दों में लिखिए।

1) प्रौद्योगिकी विकास से लाभों का अधिक न्यायसंगत वितरण सुनिश्चित करने के लिए सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण दो सेक्टर क्या हैं?

....

....

....

....

2) वह आवश्यक दशा क्या है जिससे प्रौद्योगिकीय परिवर्तन द्वारा रोज़गार संभावना पर प्रतिकूल प्रभाव कारगर ढंग से रोका जा सकता है।

....

....

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

3) किस प्रकार नई प्रौद्योगिकी का परिणाम श्रम बाजार का विखंडीकरण हो सकता है।

....

....

....

....

4) यह निर्दिष्ट करने के लिए दो उदाहरण दीजिए कि प्रौद्योगिकीय विकास कैसे कर्मचारियों और नियोक्ताओं के सापेक्ष मज़दूरी अंश के अनुसार श्रम बाजार को प्रभावित कर सकता है।

....

....

....

....

5) आप कैसे कह सकते हैं कि छोटे किसानों को संस्थागत ऋण देने के मामले में उनके विरुद्ध स्वाभाविक पूर्वाग्रह हो सकता है?

....

....

....

....

6) कुछ स्थिति में फार्म आकार परिकल्पना GR प्रौद्योगिकी विस्तार/प्रसार के संदर्भ में भारत ने अपने आपको अस्वीकार करवाया है, क्यों?

....

....

....

....

12.5 जननिक रूप से परिवर्तित फसलें और हितलाभों का संभावी वितरण

कृषि में प्रौद्योगिकीय परिवर्तन अभी बीजों को जननिक रूप से परिवर्तित करने पर केन्द्रित हो रहे हैं ताकि पादपों का अधिक उत्पादी विशेषताएँ अधिकतम और रोग तथा कीटों के लिए उसकी प्रवणता न्यूनतम की जा सके। इन्हें जननिक रूप से परिवर्तित (GM) फसलों के रूप में कहा गया है। यह प्रौद्योगिकी में ऐसा परिवर्तन है जिसे हमने पिछली इकाई में एक हरित से जीन क्रांति में अंतरण कहा है। यद्यपि लाभ वितरण पर इसके वास्तविक प्रभाव इस अवस्था में बहुत स्पष्ट नहीं हैं, उपर्युक्त चर्चा के आधार पर हम कुछ संभव प्रवृत्ति का अनुमान लगा सकते हैं। ये इस प्रकार हो सकते हैं:

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

पहली GM फसल का व्यापारीकरण 1995 में संयुक्त राज्य में हुआ था। 2004 तक, एक दशाब्दी से भी कम समय में सत्तरह देशों के आठ मिलियन से अधिक किसानों द्वारा 81 मिलियन हेक्टेयर भूमि में GM फसलें उगाई जा रही थीं। किसी भी नई फसल प्रौद्योगिकी का ऐसा द्रुत प्रसार अभूतपूर्व माना गया है। सबसे अधिक व्यापक रूप से प्रयुक्त GM प्रौद्योगिकी में सोयाबीन और कैनोला में अनुप्रयुक्त शाकनाशी सह (HT) और मकई तथा कपास में अनुप्रयुक्त बैसिलस थुरिनजिएन्सिस (Bt) से पृथक्कृत जीनों पर आधारित कीटरोधी शामिल हैं।

GM और HYV क्रांति के बीच तीन मुख्य संस्थागत, पर्यावरणीय और कृषि पारिस्थितिकीय अंतर हैं :

क) विकासशील देशों में HYV बीजों और अन्य संबद्ध आदानों की आपूर्ति पर सार्वजनिक सेक्टर का प्रभुत्व था। दूसरी ओर, GM फसल विकास का प्रोत्साहन किसानों या सरकारों में नहीं आया है बल्कि उन्नत पूँजीवादी अर्थव्यवस्थाओं में आधारित विशाल प्राइवेट निगमों से आया है। परिणामस्वरूप बौद्धिक संपत्ति अधिकार (IPR) महत्त्वपूर्ण हो गया और कोई भी प्रयोग जो IPR का उल्लंघन करता है, उसे गैर-कानूनी माना जाता है।

ख) GM प्रौद्योगिकी से संबद्ध पर्यावरणीय और अन्य जोखिम अभी भी अस्पष्ट हैं। यह संभव है कि किसानों के एक समूह द्वारा प्राप्त लाभ उपभोक्ताओं और उत्पादकों के दूसरे समूहों पर पर्यावरणीय प्रभाव द्वारा 'संतुलित हो' जाएं।

ग) HYV प्रौद्योगिकी के विपरीत, जिसके लिए अच्छी तरह कार्य करने के लिए निश्चित सिंचाई जैसी अनुकूल दशाएं आवश्यक हैं, GM प्रौद्योगिकी खराब कृषि पारिस्थितिकीय पर्यावरण में भी फसलों की उत्पादकता सुधारने के लिए प्रयुक्त हो सकती है।

यह कहा जाता है कि GM प्रौद्योगिकी उन गौण फसलों की उत्पादकता बढ़ाने के लिए अवसर प्रदान करती है जिन्हें HYV प्रौद्योगिकी ने भुला दिया था, (जैसे मिलेट (ज्वार, बाजारा, आदि), और रागी) और जो एशिया और अफ्रीका में बहुत से गरीब परिवारों की खाद्य सुरक्षा आवश्यकताओं को पूरा करने में सहायक होती है। परंतु आज तक केवल कुछ ही GM फसल प्रजातियां हैं वाणिज्यिक रूप से उपलब्ध की गई हैं: सोयाबीन, मकई, कपास और कनोला अब तक उपलब्ध की गई GM फसलों की कुल प्रजातियों के लगभग 99 प्रतिशत हैं और ये वे फसलें भी हैं जो प्रमुखतया संयुक्त राज्य में उगाई जाती हैं। ऐसे संकीर्ण फोकस के कारण स्पष्ट है। प्राइवेट पूँजी की निश्चित प्रधानता में लाभकारिता के विचार निम्न आय, देशों में गरीब किसानों की आजीविका सुधारने या गरीबों में खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण होता है। जैव प्रौद्योगिकी अनुसंधान अत्यधिक पूँजी प्रधान है और इसलिए बाजार का आकार GM प्रौद्योगिकी को प्रारंभ करने के लिए फसलें चुनने में महत्त्वपूर्ण मानदंड होता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

चूँकि बहुराष्ट्रीय कंपनियों के लिए छोटे और अनिश्चित बाजारों के लिए GM फसलें, विकसित करने के प्रोत्साहन कम है, इसलिए विकासशील देशों के लिए उपयुक्त प्रौद्योगिकियाँ तब तक विकसित होने की संभावना नहीं हो सकती, जब तक इस दिशा में सार्वजनिक सेक्टर के लक्षित कार्य पर्याप्त रूप में नहीं बढ़ाए जाते हैं। इसके अलावा, राष्ट्रीय स्तर पर आवश्यकताओं की उपयुक्तता पर विचार करना आवश्यक है, क्योंकि, GM फसल प्रौद्योगिकी प्रयोग किये जाने से पहले स्थानीय दशाओं के अनुकूल बनाई जानी आवश्यक है। बौद्धिक संपदा अधिकारों (IPR) के संरक्षण के कारण उसके आगे प्रसार की संभावित बाधाओं का भी निराकरण करना आवश्यक है। बहुत से सक्रियतावादी निकायों द्वारा व्यक्त पर्यावरण संबंधी सुरक्षा चिंताओं का समाधान करना आवश्यक है। यह कहा जाता है कि GM फसलों का उपभोग प्रतिक्रियाकारी तत्वों से जोखिम बढ़ा सकता हो। इसलिए इस प्रौद्योगिकी का अनुमोदन राष्ट्रीय जैव सुरक्षा और खाद्य सुरक्षा प्राधिकारियों द्वारा होना चाहिए।

यदि हम उन देशों की सूची पर विचार करें जहां GM फसल प्रौद्योगिकियां वाणिज्यिक रूप में उपलब्ध हैं, हमें ज्ञात होता है कि अफ्रीका और एशिया के गरीब देश गायब हैं। इस संबंध में व्यापक चिंताएँ हैं कि IPR के प्रसार से आधुनिक प्रौद्योगिकियों के लिए गरीब देशों की सुलभता सीमित हो सकती है। व्यवहार में, कुछ ही मध्यम आय और सुदृढ़ राष्ट्रीय कृषि अनुसंधान प्रणाली से संपन्न चीन, भारत या ब्राजील जैसे देशों ने अभी तक इस क्षेत्र में अनुसंधान प्रारंभ किया है। अभी तक तो विकासशील देशों में GM फसल नई रीति के लिए वर्तमान प्रतिमान ऐसा ही है जहां बहुराष्ट्रीय कंपनियां अपने उन उत्पादों का व्यापार करती हैं (प्रारंभ में प्रत्यक्ष रूप से या स्थानीय बीज उत्पादकों के सहयोग से) जो धनी देशों के लिए विकसित किए गए थे।

GM फसल प्रौद्योगिकी के आर्थिक प्रभावों पर किए गए कुछ अध्ययनों से प्रकट होता है कि सामान्यतया उन्हें अपनाने वाले किसान आय वृद्धि से लाभान्वित होते हैं (क्योंकि उन्हें कीटनाशक दवा कम प्रयोग करना पड़ती है) तथा प्रभावी रूप से अधिक उपज मिलती है। ये अध्ययन यह भी सुझाते हैं कि फार्म स्तर के लाभ उन्नत पूँजीवादी देशों की अपेक्षा निम्न आय देशों में अधिक होते हैं। परंतु जैसा कि स्थानीय पारिस्थितिकियों पर प्रभाव और उपभोक्ताओं के लिए स्वास्थ्य जोखिम का पहले उल्लेख किया गया है, इसमें वे जोखिम भी शामिल हैं जो उपयोगी कीटों को भी क्षति पहुंचाते हैं। जैव विविधता की क्षति भी मुख्य आशंकित जोखिम है। आर्थिक क्षेत्र में यह भय भी है कि बीज आपूर्ति और वितरण पर बड़े-बड़े निगमों का नियंत्रण विकासशील देशों के किसानों की प्रभुसत्ता को भी क्षति पहुंचाता है। यह भी चिंता है कि GM प्रौद्योगिकी ग्रामीण गरीबों की खाद्य सुरक्षा भी क्षीण कर सकता है, यदि यह छोटे और सीमांत किसानों में प्रोटीन समृद्ध फसलों, से कार्बोहाइड्रेट समृद्ध जैसे चावल या गेहूँ में सस्यक्रम में बदलाव प्रेरित करता है। साधारणतया GM फसलों, जैसे Bt कपास या Bt बैंगन पर चल रहे वाद-विवाद को GM प्रौद्योगिकी के भिन्न-भिन्न आयामों के उपर्युक्त आलोक में अधिक स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है।

बोध प्रश्न 3

1) GR प्रौद्योगिकी और GM फसल प्रौद्योगिकी के बीच तीन मुख्य अंतर बताइए।

....

DIKSHANT IAS

....

Call us @7428092240

....

....

2) GM फसल प्रौद्योगिकी के बारे में आशंकित चिंताओं के बावजूद आप विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में उनके अनुप्रयोग में क्या उपयोगी विशेषताएँ देखते हैं?

....

....

....

....

12.6 सारांश

नई प्रौद्योगिकी के कल्याणकारी सुधार करने के प्रभावों के बावजूद संतुलित क्षेत्रीय विकास के लिए उसके नकारात्मक प्रभाव भी है। उनमें आर्थिक आयकर्ताओं, जैसे बड़े किसानों के कुछ समूहों के अनुकूल होने की प्रवृत्ति है। लाभ के वितरण में कुछ पूर्वाग्रह संस्थागत कारकों (जैसे पट्टेदारी प्रणाली) और छोटे और सीमांत किसानों के लिए ऋण व्यवस्था के अभाव से उत्पन्न होता है। श्रम बाजार की कुछ प्रतिकूल विशेषताएँ, जैसे लिंग आधारित विभाजन भी वृद्धि प्रक्रिया में संरचनात्मक दुर्बलता उत्पन्न करने में सहायक होते हैं। GR प्रौद्योगिकी के बाद विकसित GM प्रौद्योगिकी में सकारात्मक विशेषताएँ जैसे कम कीट नियंत्रण लागत और अधिक प्रभावी उपज हैं, किंतु बड़ी निजी कंपनियों

द्वारा उसके नियंत्रित होने की आशंका रहती है जिनका मुख्य प्रयोजन लाभ कमाना होता है। ऐसी परिस्थिति में राष्ट्रीय समस्या, जैसे गरीबों परिवारों में खाद्य सुरक्षा या संसाधन दुर्लभ पर्यावरण में छोटे और सीमांत किसानों में आजीविका सुधार सुनिश्चित करने को अपेक्षित प्राथमिकता मिलने की संभावना नहीं है। अंततः संभावित पर्यावरणीय जोखिम भी ऐसी प्रौद्योगिकियों के कल्याणकारी लाभ में विकृति पैदा कर सकती है। ऐसे पूर्वाग्रह का समाधान करने की नीतिगत रणनीति को अभी आकार दिया जाना है। फिर भी, किसी भी प्रौद्योगिकीय लाभ के लिए न्यायसंगत केन्द्रित, परिसंपत्ति वितरण में सार्वजनिक हस्तक्षेप और भूधारण/भूमि सुधार दिशा में प्रगति होने के साथ-साथ ऋण, विपणन और तकनीकी सहायता अत्यधिक महत्त्व के हैं। कुछ आशंकाओं को कम करने के लिए नई फसल प्रौद्योगिकियों में प्रत्यक्ष सार्वजनिक निवेश के लिए दृढ़ आधार बनता है ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि अनुसंधान उस दिशा की ओर है जिनका आशय सामाजिक कल्याण के लिए अधिक है।

12.7 शब्दावली

अंतर्निहित और अनंतर्निहित प्रौद्योगिकीय विशेषताएँ या आवश्यकताएँ	: बीजों/पादपों में कीट हटाने और अधिक उपज देने के स्वाभाविक गुण अंतर्निहित प्रौद्योगिकीय विशेषताएँ है। प्रौद्योगिकी के प्रभावशील प्रकार के लिए आवश्यक विशिष्ट प्रशिक्षण और विस्तार सेवाओं अनंतर्निहित प्रौद्योगिकीय आवश्यकताएँ हैं।
GR और GM प्रौद्योगिकी	: GR प्रौद्योगिकी वह है जिसका खाद्य अभाव की समस्या का सामना करने के लिए 1960 के दशक में संपूर्ण एशियाई क्षेत्र में सार्वजनिक निवेश और सहायता से व्यापक रूप में क्रियान्वित किया गया था। दूसरी ओर GM प्रौद्योगिकी 1980 के दशक के बाद का विकास निजी कंपनियों की पहल से विकसित किया गया था और इसलिए अज्ञात सामाजिक और पारिस्थितिकीय बाधाएँ उत्पन्न होने की आशंका की गई है।
श्रम प्रतिस्थापी प्रभाव	: किसी भी प्रौद्योगिकीय विकास का अत्यधिक आशंकित प्रभावों में एक यह होता है इससे अकुशल के लिए रोज़गार कम किया जा सकता है। परंतु ये विचार भी प्रकट किए जाते हैं कि फार्म और नॉन फार्म दोनों सेक्टरों में वृद्धि के कारण निवल रोज़गार लाभ होगा।
फार्म आकार परिकल्पना	: इसका आशय छोटा फार्म अधिक उपज देता है। प्रतिलोम संबंध का अभिप्राय है कि फार्मों का साइज जितना बड़ा होता है उसकी उपज उतनी ही कम होती है। परंतु फार्म की न्यूनतम या इष्टतम भी उतना ही समान रूप से महत्त्वपूर्ण है। भारत के संदर्भ में भूमिजोतों के बड़े स्तर

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

पर विखंडन ने इष्टतम-न्यूनतम की अपेक्षा अधिक छोटे आकार के बहुत से खेत बना दिए हैं।

12.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Hans P, Binswanger and Joachim Von Braun (1991): Technological Change and Commercialization in Agricultre: The Effect on the Poor, *The World Bank Research Observer,* Vol. 6, No.1, pp. 57-80.

Hanumantha Rao, C.H. (1975): *Technoogical Change and Distribution of Gains in Indian Agriculture,* New Delhi : The Macmillan Company of India Limited.

Griffin, Keith (1974): *The Political Economy of Agrarian Change: An Essay on the Green Revolution,* Harvard: Harvard University Press.

Matin Qaim (2001): Transgenic Crops and Developing Countries, *Economic and Political Weekly,* Vol. 36, No. 32, pp. 3064-3070.

12.9 बोध प्रश्नों के उत्तर/संकेत

बोध प्रश्न 1

1) भाग 12.1 देखें।
2) भाग 12.2 देखें।
3) भाग 12.2 देखें।
4) भाग 12.3 देखें।
5) भाग 12.3 देखें।
6) भाग 12.3 देखें।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 2

1) उपभाग 12.4.1 देखें।
2) उपभाग 12.4.2 देखें।
3) उपभाग 12.4.2 देखें।
4) उपभाग 12.4.3 देखें।
5) उपभाग 12.4.4 देखें।
6) उपभाग 12.4.4 देखें।

बोध प्रश्न 3

1) भाग 12.5 देखें।
2) भाग 12.5 देखें।

इकाई 13 कृषि उत्पादकता में प्रवृत्तियाँ

संरचना

13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 संकल्पनात्मक विहंगावलोकन

13.2.1 उत्पादन बनाम उत्पादकता

13.2.2 आंशिक कारक उत्पादकता और कुल कारक उत्पादकता

13.2.3 विनिधानात्मक दक्षता और तकनीकी दक्षता

13.2.4 अपस्फायक और मूल्यापकर्षण

13.2.5 उत्पादन फलन

13.2.6 समोत्पाद वक्र

13.3 भारतीय कृषि में उत्पादकता

13.3.1 भूमि उत्पादकता

13.3.2 श्रम/पूँजी उत्पादकता

13.3.3 अंतर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में उत्पादकता प्रवृत्तियाँ

13.4 कम उत्पादकता की समस्या

13.4.1 कम उत्पादकता के कारण

13.4.2 कृषि उत्पादकता बढ़ाने के उपाय

13.4.2.1 संस्थागत सुधार

13.4.2.2 प्रौद्योगिकीय सुधार

13.4.2.3 उत्पादकता बढ़ाने के लिए प्रोत्साहन

13.5 सारांश

13.6 शब्दावली

13.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

13.8 बोध प्रश्नों के उत्तर/संकेत

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

13.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप :

- उत्पादन और उत्पादकता शब्दों के बीच अंतर कर सकेंगे;
- ''उत्पादकता'' की संकल्पना की परिभाषा, उसके संबद्ध तत्वों, जैसे आंशिक कारक उत्पादकता, कुल कारक उत्पादकता, दक्षता, आदि, के साथ कर सकेंगे;
- खाद्यान्नों के कुल उत्पादन में और भारत तथा अन्य देशों के बीच प्रमुख फसलों में उत्पादकता की तुलनात्मक परिदृश्य प्रस्तुत कर सकेंगे;
- भारतीय कृषि की भूमि/श्रमिक उत्पादकता में प्रवृत्तियों की चर्चा कर सकेंगे;

- भारतीय कृषि में अल्प उत्पादकता के कारणों की पहचान कर सकेंगे; और
- भारतीय कृषि की उत्पादकता बढ़ाने के लिए अपेक्षित उपायों की रूपरेखा प्रस्तुत कर सकेंगे।

13.1 प्रस्तावना

हम पहले ही इकाई 11 में देख चुके हैं कि आंतरिक उतार-चढ़ाव के होते हुए भी भारत ने समग्र कृषि उत्पादन के आधार पर अपने खाद्यान्न के कुल उत्पादन में सुसंगत ढंग से सुधार प्राप्त किया है। स्मरण करें, 1965-66 में भारत का कुल खाद्यान्न उत्पादन 72 मिलियन टन (Mt), 1978-79 में 132 Mt और 2008-09 में 234 Mt था (2011-12 में 250 Mt से अधिक का अनुमान लगाया गया है)। इस बढ़ती हुई प्रवृत्ति के बावजूद यह भी वास्तविकता है जब हम कई देशों से तुलना करते हैं तो भारतीय कृषि की उत्पादकता काफी कम पाते हैं। हमने इकाई 11 में भी पढ़ा है कि हरित क्रांति (GR) प्रौद्योगिकी के अधीन कुछ महत्त्वपूर्ण आदानों (अर्थात् उर्वरक और कीटनाशकों) के बढ़े हुए प्रयोग ने मृदा की उर्वरता घटाने में योगदान किया जो आगे चलकर GR क्रांति के बाद के वर्षों में कृषि उत्पादकता में अवरुद्धता/ह्रास का कारण बना। यह उपर्युक्त कुल उत्पादन से संबंधित आंकड़ों से भी स्पष्ट होता है, खाद्यान्न के उत्पादन में औसत वार्षिक वृद्धि दर तेज़ी से गिरी है। यह 1966-67 (अर्थात् 60÷13) की 13 वर्ष की अवधि में 4.6 Mt से 1979-2010 की अवधि में 2.8 Mt (86÷31) हुई। इसका अर्थ है कि यद्यपि कुल उत्पादन में वृद्धि प्राप्त करना आवश्यक है, परंतु उत्पादकता स्तर बनाए रखना या बढ़ाना, जो दक्षतापूर्वक कारक निवेश के प्रयोग से अधिक संबंधित है, समान रूप से महत्त्वपूर्ण है। दूसरे शब्दों में, यद्यपि सेक्टर की वृद्धि के लिए उत्पादन बढ़ाना आवश्यक है, परंतु यह उत्पादकता/दक्षता विचार की दृष्टि से अपने आप में पर्याप्त नहीं है। इस दृष्टि से उत्पादकता संकल्पना को दक्षता के बराबर माना जाता है। हमें यह भी ज्ञात है कि भूमि और जल संसाधनों की दुर्लभता के कारण हमारा कृषि उत्पादन बढ़ाने का केवल एक ही तरीका है कि उत्पादकता वृद्धि पर फोकस करें, अर्थात् उत्पाद का स्तर बढ़ाने के लिए आदानों का इष्टतम प्रयोग करें। इस प्रकार बढ़ा हुआ कुल उत्पादन प्राप्त करने और उत्पादकता/दक्षता पर उचित ध्यान देते हुए इसे प्राप्त करने के बीच निकट संबंध है (सकारात्मक या नकारात्मक समप्रत्ययन जो परिणामस्वरूप होता है)। इस इकाई में हम उत्पादकता के विभिन्न पहलुओं पर ध्यान केन्द्रित करेंगे, जैसे इसकी परिभाषा/अर्थ, घटक, मूल्यांकन के मुद्दे और वे परिवर्ती जिन पर आकलन के लिए आंकड़े अपेक्षित हैं, प्रवृत्तियां, निम्न उत्पादकता के कारण, उत्पादकता बढ़ाने के लिए आवश्यक उपाय आदि। हम अनुवर्ती भाग 13.3 में वर्णित कृषि उत्पादकता में प्रवृत्तियाँ समझने के लिए शब्दावली की संक्षिप्त संकल्पनात्मक रूपरेखा से प्रारंभ करेंगे।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

13.2 संकल्पनात्मक विहंगावलोकन

उपर्युक्त प्रस्तावना हमें बताती है कि हमें सबसे पहले उत्पादन और उत्पादकता शब्दों के बीच अंतर स्पष्ट होना चाहिए। अन्य संबंधित संकल्पनाएँ भी हैं, जैसे उत्पादन, मूल्यवर्धित उत्पादन के कारक, उत्पादन फलन आदि जब हम उत्पादन मूल्यांकन या प्रवृत्ति के मुद्दे पर विचार करते हैं तो इनमें से प्रत्येक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसलिए आइए, हम इन शब्दों के अर्थ और परिभाषा से परिचित हों।

13.2.1 उत्पादन बनाम उत्पादकता

अनुभवजन्य शब्दों में उत्पादन का संबंध स्थिति का परिणाम में व्यक्त मूल्यांकन से है, जैसे हमारी कृषि उत्पादन का कुल मूल्य। इसे या तो भौतिक माप की इकाइयों (जैसे मिलियन टन) में या उसके मौद्रिक मूल्य के आधार पर मिलियन रुपये या डालर में व्यक्त किया जाता है। इस प्रकार व्यक्त उत्पादन का मूल्य वह है जिसे हम सामान्यतया ''उत्पाद'' के रूप में उल्लेख करते हैं। उत्पाद के मूल्य की आदानों के निवल मूल्य पर अधिकता को ही मूल्य वृद्धि कहा जाता है।

दूसरी ओर, शब्द उत्पादकता का संबंध ''आदान'' से ''उत्पाद'' के अनुपात से है। इस प्रकार, प्रति हेक्टेयर कृषि उत्पादन उत्पादकता का माप है जिसमें ''उत्पाद'' कुल उत्पादन के रूप में लिया जाता है और भूमि को आदान के रूप में लिया जाता है। आदान प्रयोग में बदलाव कर उत्पाद के मूल्य में परिवर्तन प्राप्त किया जा सकता है। इस मामले में भूमि, अर्थात् आदान को स्थिर रखते हुए उत्पाद में वृद्धि उर्वरकों या खादों का प्रयोग कर या विविधीकरण या सस्य फार्म द्वारा भूमि प्रयोग के पैटर्न में परिवर्तन कर भूमि की दक्षता सुधार कर भी प्राप्त की जा सकती है। आदान स्थिर रखकर या प्रयुक्त आदान में कमी कर प्राप्त उत्पाद में वृद्धि का अभिप्राय हो सकता है कि उत्पादकता में वृद्धि है। इसे साधारण उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। माना कि उत्पादन इकाई संख्या 1 दस व्यक्तियों को लगाकर 100 रुपये मूल्य का उत्पाद उत्पन्न करता है। इकाई 1 की प्रति व्यक्ति उत्पादकता 10 रुपये है। माना कि दूसरा उत्पादन उपक्रम इकाई संख्या 2 केवल आठ व्यक्तियों को काम पर लगाता है परंतु वैसा ही उत्पाद पैदा करता है, जो 100 रुपये मूल्य है। इकाई 2 की प्रति व्यक्ति उत्पादकता 12.5 रुपये है। स्पष्ट है, इकाई 1 की अपेक्षा इकाई 2 अधिक उत्पादनकारी है। विकल्पतः यदि तरीके/कारक प्रयोग अनुपात में परिवर्तन द्वारा इकाई 1 में वही 10 व्यक्ति 125 रुपये के बराबर उत्पाद का उत्पादन कर सकें तो औसत प्रतिव्यक्ति उत्पादकता रु. 12.5 होगी, जो इकाई 2 की उत्पादकता जितनी ही बनती है। इसलिए अनिवार्यतः संकल्पना के रूप में उत्पादकता का संबंध अनुपात (उत्पाद-आदान का अनुपात) से है और यह सेक्टर या अर्थव्यवस्था में कार्य कर रही भिन्न-भिन्न इकाइयों द्वारा उत्पादन में प्रयुक्त कारकों के दक्ष प्रयोग के अनुसार भिन्न-भिन्न हो सकती है। हम यहाँ स्मरण कर सकते हैं कि प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के अनुसार श्रम और पूँजी ही उत्पादन के दो मुख्य कारक हैं। परंतु उनमें भी यह मान्यता है कि बहुत से अन्य कारक हैं जिनमें संचयी रूप में उत्पादकता पर अधिक बड़ा प्रभाव डालने की संभावना है जो उत्पादन के इन दोनों जाने-माने कारकों को भी प्रभावित कर सकते हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

13.2.2 आंशिक कारक उत्पादकता और कुल कारक उत्पादकता

चूंकि श्रम और पूँजी उत्पादन के दो प्रमुख कारक हैं, इसलिए ''श्रम उत्पादकता'' और ''पूँजी उत्पादकता'' के बीच अंतर साधारणतया साहित्य में किया जाता है। परंतु यद्यपि श्रम और पूँजी उत्पादन के दो सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण कारक हैं, यह भी सत्य है कि अन्य कारकों के समूह, जैसे औद्योगिक वातावरण, संगठनात्मक संस्कृति, शिक्षा और प्रशिक्षण, अनुसंधान और विकास, विस्तार सेवाएँ, आधारभूत संरचना, राजनीतिक स्थिरता आदि भी संचयी रूप से श्रम और पूँजी के उत्पादन में योगदान को निर्धारित करते हैं। इसे ध्यान में रखते हुए 'श्रम उत्पादकता'' (LP) और ''पूँजी उत्पादकता'' (CP)

का उल्लेख उत्पादकता के आंशिक कारक के रूप में किया जाता है और चूंकि सभी अन्य कारकों को निरुपित करने के लिए तीसरे घटक के रूप में अवशिष्ट कारकों को सम्मिलित कर जब ध्यान में रखा जाता है, तो वे अपनी समग्रता का महत्त्व दिखाते हैं। अवशिष्ट कारक का ''कुल कारक उत्पादकता'' के रूप में उल्लेख किया जाता है। सामान्यतया अनुभवजन्य प्रयोग में LP रोज़गार के लिए मूल्यवृद्धि रूप में मापा जाता है जो हमें ''प्रति व्यक्ति या प्रति कर्मचारी उत्पाद (या प्रति व्यक्ति आय की भांति आय) का सूचक प्रदान करता है समय के चलते, इसलिए LP में सुधार उस सेक्टर में कामगारों द्वारा किए गए उत्पादन के लिए योगदान के औसत स्तर में वृद्धि का निर्देशक है। ध्यान दें कि ऊपर 13.2.1 में उल्लिखित निर्देशात्मक अभ्यास में अभिकलित उत्पादकता सूचक LP है। इसी भांति CP ''पूँजी के लिए मूल्यवृद्धि'' के रूप में मापा जाता है, जिसमें हर (demonator) उत्पादन में प्रयुक्त कुल पूँजी है। इस प्रकार CP हमें उत्पादन में प्रयुक्त कुल पूँजी का प्रति इकाई मूल्यवृद्धि का माप प्रदान करता है। TFP का माप, ''संवृद्धि लेखाकरण दृष्टिकोण'' और ''अर्थमिति दृष्टिकोण'' नाम की दो विधियों द्वारा किया जाता है। हम इस इकाई में इस चर्चा के अतिरिक्त अधिक विवरण नहीं रखेंगे क्योंकि यह भारतीय कृषि में हमारे तात्कालिक फोकस बनाम उत्पादकता प्रवृत्ति की सीमा से बाहर है।

13.2.3 विनिधानात्मक दक्षता और तकनीकी दक्षता

दो परिणामों, अर्थात् उत्पाद और आदान के रूप में व्यक्त उत्पादकता सूचक में 'अंश' उत्पादन का कुल मूल्य है और हर उन आदानों का कुल मूल्य है जो इसके बनाने में काम आए हैं। हमारी मुख्य चिंता उन कारकों की पहचान करना है जो संसाधनों के प्रयोग को निष्प्रभावी बना देते हैं। फिर उन्हें न्यूनतम करने पर ध्यान देकर संसाधनों (अर्थात् आदानों का अधिक दक्षतापूर्वक प्रयोग सुनिश्चित कर उत्पाद की इष्टतम उपलब्धि प्राप्त हो पाएगी। इस परिप्रेक्ष्य से देखने पर उत्पादकता माप (या सूचक) दक्षता का संकेतक है। यदि दक्षता (अर्थात् उच्चतर उत्पादकता) संसाधनों के बेहतर आबंटन से प्राप्त की जाती है, तो यह विनिधान दक्षता कहलाती है। दूसरी ओर, यदि उत्पादकता वृद्धि उत्पादन की विधि में परिवर्तन (जैसे नई प्रौद्योगिकी का अंगीकरण या उत्पादन की विधियों का बेहतर व्यवस्था) का परिणाम है तब वृद्धि को ''तकनीकी दक्षता'' कहा जाता है। उत्पादन के संकेतकों के माप के अलावा, उत्पादकता विश्लेषण में अध्ययनों का संबंध उन कारकों की पहचान से भी है जो दक्षता के उपर्युक्त दो प्रकारों के अनुसार दक्ष उत्पादन में योगदान करते हैं। कुल सकल उत्पाद से मूल्यवृद्धि का अनुपात हमें उत्पादित सकल उत्पाद का प्रति इकाई वर्धित मूल्य बताता है। यह दक्षता का एक अन्य प्रत्यक्ष माप है। दक्षता का यह माप भारत में CSO (केन्द्रीय सांख्यिकी संगठन) द्वारा उद्योगों के वार्षिक सर्वेक्षण की रिपोर्ट में प्रकाशित किया जाता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

13.2.4 अपस्फायक और मूल्यापकर्षण

उत्पादन, मूल्यवृद्धि, मजदूरी जैसे वर्तमान या प्रचलित कीमतों में निर्दिष्ट मानों की समय-समय पर तुलना करने के लिए उन्हें तुलनीयता प्रदान करने के लिए उपयुक्त अपस्फायकों का प्रयोग आवश्यक होता है। ये अपस्फायक प्रचलित/चालू कीमतों के मानों को स्थिर कीमत मानों में परिवर्तित कर देते हैं। इस प्रकार एक मानकीकृत स्थिर आधार प्राप्त हो जाता है। मूल्य द्वारा निर्दिष्ट चरों का अपस्फायन आवश्यक है क्योंकि

समय के साथ-साथ नकदी मूल्य बदलते रहते हैं। उदाहरण के लिए, 1970 में 100 रुपये और 2011 में 100 रुपये एक जैसे नहीं है, क्योंकि समय के चलते (अधिकांशतः स्फीति) कीमतों में परिवर्तन के कारण मुद्रा का मूल्य घटता है। उत्पाद मूल्य के अपस्फायन के लिए अनुभवजन्य कार्य में हम थोक मूल्य सूचकांक (WPC) का प्रयोग करते हैं। कामगारों को भुगतान के लिए उपभोक्ता मूल्य सूचकांक (CDI) का अपस्फायक के रूप में प्रयोग किया जाता है। उत्पादकता अध्ययन में अपस्फायन द्वारा मूल्यांकित मानों को वास्तविक धरातल पर लाकर उनकी तुलना करना अधिक सार्थक होता है।

13.2.5 उत्पादन फलन

उत्पादन फलन एक समीकरण है जो आदानों के सभी संयोजनों के लिए कंपनी का उत्पाद विनिर्दिष्ट करता है। दूसरे शब्दों में, प्रयोगाधीन सामान्य प्रौद्योगिकी स्तर पर उत्पादन फलन हमें प्रयुक्त आदानों के विविध संयोजनों के लिए उत्पादन के संभावित स्तरों का गणितीय रूप देता है। स्मरण करें कि जब भिन्न-भिन्न कंपनियां प्रौद्योगिकी का निश्चित स्तर का प्रयोग करते हुए कार्य कर रही हैं। प्रत्येक कंपनी अपने संभावित प्रतिलाभों अर्थात् उच्चतर उत्पाद पर नज़र रखकर कारकों का प्रयोग करती है। एक कंपनी से दूसरी कंपनी की कुछ विभिन्नता होगी, क्योंकि, सभी कंपनियां एक जैसे माप ठीक-ठीक रूप में कारक आदान प्रयोग नहीं कर सकतीं। विकल्प के रूप में उत्पादन फलन की परिभाषा, उपलब्ध प्रौद्योगिकी की संभावना के अंतर्गत वस्तु की एक निश्चित मात्रा उत्पादन करने के लिए अपेक्षित न्यूनतम आदान के विनिर्देश के रूप में की जा सकती है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

उत्पादन फलन को $Q = f(X_1, X_2, \ldots X_n)$ के रूप में व्यक्त किया जा सकता है, यदि Q = उत्पाद की मात्रा और X_1, X_2, X_n कारक आदान की मात्रा है, (जैसे पूँजी, श्रम, भूमि, कच्चा माल आदि)। उत्पादन फलन का सबसे अधिक प्रयुक्त रूप कोब डग्लस उत्पादन फलन है, जिसे $Q = aX_1^b X_2^c$ में व्यक्त किया गया है। इस फार्म का लाभ यह है कि दोनों पक्षों के लघुगणक समीकरण के चरघातांक स्वरूप को या रैखिक रूप में परिवर्तित कर देता है, जैसे $Q = a + b X_1 + c X_2 + d X_3 + \ldots$ जो अंतर्निहित गुणांकों का आकलन करने के लिए एक सरल स्वरूप है। उपलब्ध आंकड़ों के स्वरूप पर निर्भर करते हुए अल्पतम वर्ग सिद्धांत कहा जाता है, का प्रयोग कर, a, b, c आदि पैरामीटरों का आकलन किया जाता है। आप आकलन की इस विधि के बारे में सांख्यिकी पर अपने पाठ्यक्रम BDP की इकाई EEC 13 में अध्ययन करेंगे। हम सरसरी तौर पर उल्लेख कर सकते हैं कि यदि हमारे पास वार्षिक समय श्रृंखलाओं में सभी चरों पर आंकड़े हैं और अपने आदानों को केवल दो कारकों, अर्थात् श्रम और पूँजी तक सीमित रखते हुए और समय परिवर्ती चर के निर्देशक के रूप में t (1, 2, 3, वर्षों के अनुक्रम में लेकर सभी अन्य कारकों का निरुपण करें तो गुणांक d ''कुल कारक उत्पादकता'' का माप प्रदान करेगा। X_1 और X_2 के गुणांक, अर्थात् b और c क्रमशः परिवर्ती श्रम और पूँजी के प्राचल निरुपित करते हैं। इसके अलावा श्रम और पूँजी आंशिक कारक उत्पादकताओं का अनुमान प्रदान करते हैं, मुख्य आर्थिक महत्त्व भी वहन करते हैं। यदि दोनों गुणांकों का योग एक इकाई हो (अर्थात् $b + c = 1$) तो यह माना जा सकता है कि पैमाने का स्थिर प्रतिफल है, अर्थात्, आदानों को दुगुना करने से उत्पाद भी दुगुना-तिगुना करने पर उत्पाद तिगुना होना आदि। यदि इस मान्यता को ढील दी जाती है, अर्थात् हम इकाई से अधिक या कम मूल्य मानते हैं तो पैमाने के प्रतिफल भी स्थिर नहीं रहेंगे। यदि गुणांकों का योग 1 से

अधिक है तब इसका अर्थ है कि पैमाने का वृद्धिमान प्रतिफल होगा (अर्थात् आदानों को दुगुने करने से उत्पाद दुगुना से अधिक होगा)। यदि यह 1 से कम है तो इसका अर्थ है कि पैमाने का प्रतिफल ह्रासमान है। यह नोट करें कि 'b' श्रम के संबंध में उत्पाद की आंशिक नम्यता है, अर्थात् पूँजी आदान को स्थिर रखते हुए यह उत्पाद में प्रतिशत परिवर्तन मापता है। इसी भांति 'c' श्रम आदान स्थिर रखते हुए पूँजी आदान के संबंध में उत्पाद की आंशिक लोच है।

13.2.6 समोत्पाद वक्र

सैद्धांतिक रूप से यह समझा जाता है कि निर्धारित प्रौद्योगिकी के लिए एक विशिष्ट उत्पादन फलन विद्यमान है। उत्पादक का वांछित स्तर प्राप्त करने के लिए, आदान X_i (i=1,2…..) विभिन्न संयोजनों में प्रयुक्त किए जा सकते हैं। निश्चित प्रौद्योगिकी के लिए उत्पादन फलन वह वक्ररेखा है जो उत्पादन के एक स्तर विशेष के लिए आदानों के भिन्न-भिन्न संयोजनों को दर्शाता है। इसी विचार को एक काल्पनिक उदाहरण द्वारा अधिक स्पष्ट कर सकते हैं। तालिका 13.1 पर ध्यान दें। तालिका में दो आदानों, श्रम और पूँजी पर विचार किया गया है। उदाहरण के लिए, 200 के उत्पाद स्तर पर विचार करें जिसके लिए आदानों के तीन संयोजन विद्यमान हैं, अर्थात् (4,1), (3,2) और (1,4) ग्राफ पर इन तीनों बिंदुओं का आलेखन कर (देखिए चित्र 13.1) हमें समोत्पाद वक्र–1 (Q_1) प्राप्त होता है। इसी प्रकार, Q_2, Q_3 और Q_4 290, 345 और 450 के उत्पाद के उपज स्तरों के लिए आदान संयोजन से खींचे गए समोत्पाद वक्र हैं। दूसरे शब्दों में, उच्चतर समोत्पाद वक्र उत्पादन के उच्चतर स्तर निरुपित करते हैं जिससे वस्तु की कतिपय इकाइयाँ उत्पाद करने के लिए इष्टतम कारक संयोजन चुने जा सकते हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

तालिका 13.1: उत्पाद का स्तर दर्शाने वाला उत्पादन फलन जिसे दो निवेशों श्रम (L) और पूँजी (A) का प्रयोग कर प्राप्त किया जा सकता है

प्रयुक्त पूँजी की इकाइयाँ	नियोजित श्रम की इकाइयां						
	1	2	3	4	5	6	7
1	40	90	150	200	240	270	290
2	90	140	200	250	290	315	335
3	150	195	260	310	345	370	335
4	200	250	310	350	385	370	390
5	240	290	345	385	420	450	475
6	270	320	375	415	450	475	495
7	290	330	390	435	470	495	510

आंकड़ा स्रोत : कृषि सेक्टर के लिए श्रम या रोज़गार पर आंकड़े (विसमूहन के विभिन्न स्तरों पर अन्य सेक्टरों के लिए भी) दसवार्षिक जनगणना में, रोज़गार और बेरोज़गारी पर पंचवर्षीय NSSO सर्वेक्षण रिपोर्टों में भी उपलब्ध है। इसके अलावा सभी सेक्टरों के लिए मूल्यवृद्धि और पूँजी निर्माण पर आंकड़े CSO द्वारा प्रकाशित राष्ट्रीय लेखा सांख्यिकीय (NAS) में उपलब्ध हैं। इन स्रोतों से आंकड़ा प्रयोग करते हुए मध्यवर्ती वर्षों के आंकड़ों की अंतरगणना, कीमत अंतर आदि जैसे आंकड़े आवश्यकता को समुचित ढंग से समायोजित कर हम सेक्टरों द्वारा उत्पादकता के रूझान का अनुमान लगा

सकते हैं। यद्यपि ये सरकारी एजेंसियों द्वारा एकत्र आंकड़ों के अनुपूरक स्रोत है, अनुपूरक आंकड़ों का दूसरा स्रोत CMIE (भारतीय अर्थव्यवस्था मॉनीटरिंग केन्द्र) है। यह एक प्राइवेट स्रोत हैं जो काफी अधिक लोकप्रिय हो गया है। इनके अलावा, प्रकाशित अनुमान भी है, जैसे प्रति हेक्टेयर उपज, क्षेत्रफल के अनुसार विश्व श्रेणी, बहुत से देशों के उत्पादन और उपज पर आंकड़े जो उत्पादकता प्रवृत्तियों का अंतर्राष्ट्रीय तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य प्राप्त करने में हमारी सहायता करते हैं। हम अगले भाग में कृषि सेक्टर में उत्पादकता प्रवृत्तियों का इनमें से कुछ स्रोतों से प्राप्त जानकारी के आधार पर अध्ययन करेंगे।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

चित्र 13.2 : समोत्पाद वक्र : फर्म का उत्पादकता फलन

बोध प्रश्न 1

नीचे दिए गए स्थान में प्रश्न 2 से 4 का उत्तर लगभग 50 शब्दों में दीजिए।

1) रिक्त स्थान भरें –

क) वर्ष 1966-67 के दौरान खाद्यान्न के उत्पादन में औसत वार्षिक वृद्धि .... mt थी। 1979-2010 की अगली तीन दशाब्दियों के दौरान यह वार्षिक वृद्धि तेज़ी से घटकर .... mt हो गई।

ख) कृषि वृद्धि के लिए खाद्यान्न के कुल उत्पादन में वृद्धि .... है इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण .... में वृद्धि प्राप्त करना है।

ग) परिवर्ती चर जिसे हम कुल उत्पाद से कुल आदान घटाकर प्राप्त करते हैं .... कहलाता है।

घ) इकाई-1, एक सौ व्यक्तियों की काम पर लगाकर 1,00,000 रुपये मूल्य की वस्तुएँ उत्पादन करती है। एक अन्य यूनिट, अर्थात् इकाई-2 पच्चीस व्यक्तियों को काम पर लगाकर उसी प्रौद्योगिकी का प्रयोग कर 1,40,000 रुपये की वस्तुओं का उत्पादन करती है। इन दो इकाइयों में कौन यूनिट दूसरे की

अपेक्षा अधिक उत्पादनकारी है? इन दो इकाइयों की श्रम उत्पादकता के मान क्या है? किस प्रकार की दक्षता, विनिधान या तकनीकी ने आपके अनुसार इन इकाइयों की अधिक उच्चतर उत्पादकता में योगदान किया है।

....

....

....

....

ङ) पूँजी उत्पादकता का मूल्यांकन .... का .... से अनुपात के रूप में किया जाता है। सार रूप में यह हमें .... का .... देता है।

2) दक्षता से उत्पादकता अनुपात/सूचक को समीकृत किया जाता है। अन्य प्रत्यक्ष सूचक क्या है जिसे दक्षता के माप के रूप में जाना जाता है?

....

....

....

....

3) आकड़ों के आधार पर उत्पादकता के मापन में मूल्य आधारित चरों का अवस्फायन क्यों आवश्यक है? किन कीमत सूचकों का उत्पाद और मज़दूरी के अवस्फायन करने के लिए प्रयुक्त किया जाता है?

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

....

....

4) पद्धति में प्रयोग करने के लिए कॉल-डाग्लस उत्पादन फलन क्यों उपयोगी है? उसके गुणांकों का आकलन करने के लिए क्या विधि प्रयुक्त की जाती है? नियत प्रतिलाभ की अभिकल्पना पर शिथिलता कैसे प्राप्त की जाती है?

....

....

....

....

13.3 भारतीय कृषि में उत्पादकता

दो मुख्य वार्षिक प्रकाशन हैं जो उत्पादकता सूचकों के अभिकलन करने के लिए उपयोगी आंकड़े उपलब्ध कराते हैं। जैसाकि पहले ही उल्लेख किया गया है, पहला, राष्ट्रीय लेखा सांख्यिकी है जो उद्गम के उद्योग द्वारा कारक लागत पर GDP और उद्योग

द्वारा सकल पूँजी निर्माण पर आंकड़े प्रकाशित करता है। दूसरा स्रोत आर्थिक सर्वेक्षण (ES) है जो भिन्न-भिन्न स्रोतों से प्रकाशित आंकड़ों की परितुलना करता है। ES निम्नलिखित पर भी आंकड़े प्रकाशित करता है : (i) स्थिर कीमतों और चालू कीमतों पर आंकड़ों के अलावा थोक कीमत सूचकांक (WPI) और उपभोक्ता कीमत सूचकांक (CPI), (ii) ''सभी जिन्सों के लिए सम्मिलित मुख्य फसलों के अधीन क्षेत्रफल (या आधार वर्ष के लिए 100 लेते हुए सूचीबद्ध) और (iii) खाद्यान्नों की प्रति हेक्टेयर उपज। क्षेत्रफल/उत्पादन/उपज और प्रति हेक्टेयर उपज के अनुसार मुख्य कृषि फसलों में विभिन्न देशों की विश्व क्रमिकता भारतीय कृषि सांख्यिकी (केन्द्रीय कृषि मंत्रालय द्वारा वार्षिक प्रकाशन) और CMIE द्वारा प्रकाशित किए जाते हैं। इस भाग में इन स्रोतों के आकड़ों का प्रयोग करते हुए हम उत्पादकता सूचकों, जैसे भूमि, उत्पादकता, श्रम उत्पादकता आदि के संबंध में भारतीय कृषि में उत्पादकता प्रवृत्तियों की रूपरेखा तैयार करेंगे।

13.3.1 भूमि उत्पादकता

भूमि उत्पादकता (किलोग्राम प्रति हेक्टेयर में मापी गई) दिखाती है कि ठीक 1961 से 2009 की अवधि में निरंतर वृद्धि हुई है (तालिका 13.2)। वर्ष 2010 में गिरावट अद्यतन वर्ष के अनंतिम आंकड़ों के कारण है जिसे संशोधित किए जाने की संभावना है। प्रेक्षित वृद्धि (सुनिश्चित संख्या में) दशाब्दी वृद्धि दर द्वारा सत्यापित की जानी आवश्यक है जो वार्षिक सूचक की वृद्धि का औसत निकालने पर कालांतर में बदल सकते हैं। दशाब्दी अंतरालों में परिकलित वृद्धि दरें निम्नलिखित दर्शाती है :

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

तालिका 13.2 : खाद्यान्नों की प्रति हेक्टेयर उपज (किग्रा/हेक्टेयर) 1961-2010

वर्ष	1960-61	1970-71	1980-81	1990-91	2000-01	2004-05	2005-06	2006-07	2007-08	2008-09	2009-10
उपज	710	872	1023	1380	1626	1652	1715	1756	1860	1909	1798

स्रोत : आर्थिक सर्वेक्षण 2010-11 (तालिका A–19)

नोट : (i) CAGR (चक्रवृद्धि वार्षिक वृद्धि दर) : 1971-81 : 1.6 प्रतिशत, 1981-91: 3.0 प्रतिशत, 1991-2001 : 1.7 प्रतिशत, 2001-09 : 2.0 प्रतिशत सुधारोत्तर वर्ष वृद्धि (1991-2009) : 1.7 प्रतिशत

- 3 प्रतिशत की उच्चतम वृद्धि 1981-91 (अर्थात् हरित क्रांति (GR) के बाद की दशाब्दी) में थी।
- भूमि उत्पादकता की वृद्धि दर में तीव्र गिरावट होकर 1991-2001 की अनुवर्ती दशाब्दी में यह 1.7 प्रतिशत प्रतिवर्ष रह गई। परंतु इसमें 2001-09 की अनुवर्ती अवधि के दौरान मामूली सुधार (2 प्रतिशत प्रतिवर्ष) हुआ।
- सुधारोत्तर वर्षों (अर्थात् 1991-2009) की 19 वर्ष की अवधि में औसत वृद्धि दर 1.7 प्रतिशत रही है। यह GR के बाद के वर्षों (1981-91) के दौरान के 3 प्रतिशत वृद्धि की अपेक्षा काफी कम है।

भूमि उत्पादकता अंशतः भूमि की उर्वरता और काफी हद तक प्रयुक्त प्रौद्योगिकी और आदानों पर निर्भर करती है। जैसाकि हमने पहले देखा है GR प्रौद्योगिकी ने प्रति

हेक्टेयर उत्पादकता सुधारी परंतु इसने रासायनिक उर्वरकों के अत्यधिक प्रयोग के कारण बहुत क्षेत्रों में मृदा की उर्वरकता भी प्रभावित की है। चूंकि कृष्य (कृषि योग्य) भूमि की उपलब्धता स्थिर है, इसलिए खाद्यान्नों के उत्पादन में वृद्धि केवल उत्पादकता में वृद्धि पर निर्भर रहती है। पिछली दशाब्दी (2001-09) में भूमि उत्पादकता में वृद्धि दर लगभग 2 प्रतिशत थी जो जनसंख्या की वृद्धि दर के समीप है। यह निर्दिष्ट करता है कि निकट भविष्य में भारत में खाद्यान्न उत्पादकता को कोई संकट नहीं है। परंतु कृषीतर प्रयोग के लिए भूमि पर दबाव बढ़ रहा है और जब तक बढ़ती हुई आबादी की खाद्यान्न आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए भूमि उत्पादकता नहीं बढ़ने पर एक समस्या पैदा हो सकती है।

13.3.2 श्रम/पूँजी उत्पादकता

श्रम उत्पादकता में प्रवृत्तियां (तालिका 13.3) भी दिखाती है कि इस सबंध में चरम सीमा 1991 के इर्द-गिर्द केन्द्रित (GR के बाद के वर्षों में) थी (0.95 टन प्रतिकृषि कामगार)। सुधारोत्तर वर्षों में LP (2001 के दौरान 0.83 टन) में तेज गिरावट आई है। परंतु 2009 के बाद के वर्षों में सुधार हुआ है, और यह उसके 1991 के स्तर के बराबर है। यह नोट करना महत्त्वपूर्ण है कि (उन्नत बीजों, उर्वरकों, सिंचाई, प्रयुक्त यांत्रिक कृषि, सार्वजनिक निवेश के कारण आधारभूत संरचना सुधार आदि द्वारा) पूँजी प्रवेश का प्रभाव LP की प्रवृत्तियों में प्रतिबिंबित होता है। पूँजी उत्पादकता (CP) की प्रवृत्ति (कृषि और सहायक कार्यों के लिए कारक लागत तथा कृषि में सकल पूँजी निर्माण 2004-2005 की स्थिर कीमतों पर NAS-2010 का आंकड़े प्रयोग करते हुए) दर्शाती है कि CP 2004-05 में 8.5 से 2007 में 7.2, 2008-09 में 5.8 और 2009-10 में 5.7 प्रतिशत लगातार गिरी है। इसलिए LP और CP में प्रवृत्तियाँ सुझाती हैं कि कृषि उत्पादकता सुधारने के लिए कृषि और संबद्ध कार्यों में तथा आधारभूत संरचना में अधिक पूँजी लगाना आवश्यक है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

तालिका 13.3 : कृषि में श्रम उत्पादकता : 1961-2011

वर्ष	कुल खाद्य उत्पादन (मिलियन टनों में mt)	कृषि श्रमिकों की संख्या (मिलियन में)	श्रम उत्पादकता (टनों में)
1961	82.0	131.15	0.62
1981	129.59	147.98	0.87
1991	176.39	195.32	0.95
2001	196.81	235.06	0.83
2011	241.56	258.57(*)	0.93

स्रोत : (i) भारत के महापंजीयक, 2001 (कृषि श्रमिकों की संख्या के लिए)

(ii) कुल खाद्य उत्पादन के लिए, कृषि मंत्रालय, भारत सरकार।

नोट : (i) 2011 के आंकड़ों का अनुमान 2001-2011 की अवधि के दौरान ग्रामीण आबादी में 12. 18 प्रतिशत वृद्धि पर आधारित आंकड़ों में 2001 के श्रमिकों का दस प्रतिशत जोड़ कर किया गया है।

(ii) 2011 के आंकड़े प्रस्तावित अनुमानित हैं?

13.3.3 अंतर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में उत्पादकता प्रवृत्तियाँ

विश्व स्तर पर कुल भौगोलिक क्षेत्रफल से खेती के अधीन कुल भूमि का अनुपात लगभग 32 प्रतिशत है। इससे तुलना करने पर कृषि के अधीन भारत की कुल भूमि का अनुपात 46.11 प्रतिशत से अधिक है। इस संबंध में भारत की स्थिति संयुक्त राज्य अमेरिका (40 प्रतिशत) और ब्राजील (10 प्रतिशत) जैसे देशों की अपेक्षा अधिक अच्छी है। परंतु यदि भारत द्वारा HYV बीजों से संभावित क्षमता और वास्तविक प्राप्ति की अन्य देशों से तुलना करें तो बहुत अच्छा चित्र नहीं उभरता। शीर्ष क्रमिकता वाले देशों में होने वाले उत्पादन के अनुसार प्रमुख कृषि फसलों के लिए भारत की स्थिति भी अपेक्षाकृत खराब रही है। (तालिका 13.5)। यद्यपि भारत में सभी फसलों की निम्न उत्पादकता चिंता का कारण है, यह इस तथ्य को भी स्वीकार करता है कि उत्पादकता बढ़ाने की गुंजाइश है, इससे देश की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए बेहतर उत्पादकता स्तर सुनिश्चित होगी। फिर भी अंतर्राष्ट्रीय संदर्श भारतीय कृषि की उत्पादकता स्तर को बढ़ाने के लिए ध्यान देने की आवश्यकता पर बल देते हैं।

तालिका 13.4 : भारत एवं अन्य देशों में उत्पादकता

(किग्रा/हेक्टेयर)

	भारत		विश्व के सबसे बड़े उत्पादक		विश्व के सबसे अधिक उत्पादकता	
फसल	HYV उपज की संभावना	वास्तविक उपज	देश	उपज	देश	उपज
चावल	4000-5810	3,002	चीन	5,807	आस्ट्रेलिया	8,813
गेहूँ	6000-6810	2,743	चीन	3,295	आयरलैंड	7,556
ज्वार	3000-4200	1,196	संयुक्त राज्य अमरीका	3,704	इटली	5,949
मक्का	6000-8000	1,841	संयुक्त राज्य अमरीका	4,505	नीदरलैंड	25,000

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

स्रोत : CMIE इंडियन हार्वेस्ट, 2011।

तालिका 13.5 : प्रमुख कृषि फसलों में भारत का विश्व में स्थान

फसल	क्षेत्रफल	उत्पादन	उपज
चावल (धान)	1	2	52
गेहूँ	1	2	38
मोटा अनाज	3	4	125
दलहन	1	1	138
तिलहन	2	5	147
कपास	1	4	77
जूट	1	1	13
चाय	2	1	13
गन्ना	2	2	31

स्रोत : भारत सरकार, कृषि मंत्रालय, भारतीय कृषि सांख्यिकी, 2007।

13.4 कम उत्पादकता की समस्या

हमने ऊपर देखा है कि भारतीय कृषि की उत्पादकता विश्व स्तर की तुलना में कम है। विशेषकर तालिका 13.4 और 13.5 दर्शाती है कि यद्यपि भारत चावल और गेहूँ की खेती के अधीन क्षेत्रफल के अनुसार सर्वोच्च क्रम पर है, परंतु उपज स्तर चीन और आस्ट्रेलिया की तुलना में बहुत कम है। इसी प्रकार मोटे अनाज और फसलों के मामलों में उपजों में असमानता विद्यमान है। यहां तक कि देश में सबसे अधिक उत्पादक राज्य भी मुख्य फसलों की उपजों के आधार पर विश्व मानक से नीचे है।

13.4.1 कम उत्पादकता के कारण

कम उत्पादकता के कारणों को चार मुख्य शीर्षों में वर्गीकृत किया जा सकता है: (i) जनांकिकीय कारक, (ii) संस्थानिक कारक, (iii) प्रौद्योगिकीय कारक, और (iv) नीतिगत पूर्वाग्रह/दुर्बलता।

i) **जनांकिकीय कारक**

- भारत की कुल जनसंख्या 2001 में 1.03 अरब से बढ़कर 2011 में 1.21 अरब हो गई। परिणामतः परंपरागत और आधुनिक दोनों किस्मों के खाद्यान्नों की मांग भी अधिक बढ़ गई है। परंतु भूमि की उपलब्धता सीमित है और मृदा की उर्वरता में ह्रास हो रहा है। यह अप्रतिरोध्य जनांकिकीय स्थिति है जिसने, भूमि की उत्पादकता को 1961-2010 की अवधि में भूमि उत्पादकता में वृद्धि की प्रवृत्ति के बावजूद निम्न रहने को बाध्य किया है। अवरुद्ध हो रही श्रम उत्पादकता प्रवृत्तियां भी, विशेषकर पिछली दो दशाब्दियों में, उत्पन्न हुई हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

- यद्यपि औद्योगिक सेक्टर से कृषि क्षेत्र से अतिरिक्त श्रमिकों को लेने की आशा की गई है परंतु उद्योगों में अपर्याप्त रोज़गार वृद्धि के कारण आजीविका के लिए कृषि पर बहुत अधिक दबाव जारी रहा। यह इस तथ्य के बावजूद है कि कृषि में लगे हुए श्रमिकों की संख्या समय के चलते घट रही है। जोतों का विखंडन भी हो रहा है, जिससे भारत में जोतों का औसत आकार बहुत छोटा (दो एकड़ से भी कम) हो रहा है। ये आर्थिक दृष्टि से उत्पादन की आधुनिक विधियाँ अपनाने के लिए व्यवहार्य नहीं हैं। साथ ही छोटे किसानों की बहुत बड़ी संख्या की खराब आर्थिक स्थिति भी इससे जुड़ गई, जिसके परिणामस्वरूप बेहतर कृषि पद्धतियों के क्रियान्वयन में अवरोध जारी रहा। फलस्वरूप कृषि में भूमि की प्रति इकाई उत्पादकता कम है।

ii) **संस्थानिक कारक**

- स्वतंत्रता के समय भारत को अर्धसामंती कृषि ढांचा विरासत में मिला। जिसमें भूमि का स्वामित्व और नियंत्रण कुछ ज़मींदारों और बिचौलियों के नियंत्रण में केंद्रित था। भूमि सुधार करने पर पिछली छह दशाब्दियों में प्रयास भी किए गए और कुछ पहलुओं में हमें आंशिक सफलता भी प्राप्त हुई परंतु वास्तविक किसान का अधिक उत्पादन करने के लिए बाधाकारी दशाओं में कार्य करना जारी रहा।

- दूरवासी ज़मींदार की समस्या, अपेक्षाकृत बेहतर सिंचित क्षेत्रों में बढ़ती हुई

पट्टेदारी, भू-धारण की सुरक्षा का अभाव, पर्याप्त और समय पर कृषि ऋण की अनुपलब्धता, अच्छी ग्रामीण परिवहन व्यवस्था, विपणन/भंडारण सुविधा आदि के अनुसार अपर्याप्त आधारभूत संरचना आदि भी बाधक कारक बने रहे हैं। किसानों को संस्थागत ऋण की अपर्याप्तता है और उच्च लागत के अनौपचारिक ऋण पर निर्भरता बनी हुई है। ये सभी कारक मिलकर भारतीय कृषि में उच्चतर उत्पादकता प्राप्त करने में बाधक रहे हैं।

- खरीदे गए आदानों पर निर्भरता बढ़ने, नई प्रौद्योगिकी से संबद्ध जोखिमों के बढ़ने और कीमत अस्थिरता से भी फार्म सेक्टर को कठिन समस्याओं का सामना करना पड़ता है। अभी हाल ही में, कुछ दृष्टान्त हुए हैं, जब किसानों ने ''बम्पर फसल और आपद विपणन'' का सामना किया है क्योंकि उसके कारण उन्हें अपर्याप्त भंडारण सुविधा के कारण कम कीमतों पर बेचना पड़ा था। इसलिए ऐसे कारक उत्पादकता बढ़ाने के लिए बाधक के रूप में कार्य करते हैं।

- विकसित देशों की भांति उद्यमिता के संवर्धन के लिए संस्थागत विकास अभी भारत में अपनी जड़े नहीं जमा पाया है। इस दिशा में, प्रगति केवल आकस्मिक उदाहरण बनकर रह गयी है। इसके प्रयास सामान्यता सभी स्थानों में होने के बदले कुछ ही पाकेट में हुए हैं। इसके विपरीत, चीन जैसे देशों ने अपने कृषि कार्य में प्रतिस्पर्धा सफलतापूर्वक लागू की है जिससे जोते छोटे आकार के होने के बावजूद दक्षता का उच्चतर स्तर प्राप्त हो सका है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

- निवेश की सामान्य रूप से कमी विशेषतः हाल ही के वर्षों में सार्वजनिक निवेश के गिरे हुए स्तर ने भारतीय कृषि में उत्पादकता का उच्चतर स्तर प्राप्त करने में बाधा उत्पन्न करना जारी रखा है। कृषि, अनुसंधान और विकास में सार्वजनिक निवेश उभरती हुई चुनौतियों के अनुरूप नहीं रहा है। इसके विपरीत उन्नत बीजों में प्राइवेट व्यापार के प्रभाव ने न केवल लागत बढ़ाई है बल्कि जोखिम भी बढ़ाए हैं, जिससे छोटे-छोटे किसान उत्पादकता सुधारने के लिए उपाय आरंभ करने से भी रुक रहे हैं।

प्रौद्योगिकीय कारक

- अधिकांश भारतीय किसान अपनी गरीबी की दशा के कारण और वैज्ञानिकों तथा विस्तार कर्मियों द्वारा पहुंच की कमी के कारण नई प्रौद्योगिकी से अछूते रहे हैं। विशेषकर सुधारों के प्रवर्तन और सार्वजनिक निवेश पर वित्तीय दबाव से विस्तार सुविधाओं में गिरावट आई है। इसके परिणामस्वरूप, वे परंपरागत कम उपज देने वाली विधियों से ही कार्य करते हैं। दूसरे शब्दों में, आधुनिक आदानों और विधियों की अपर्याप्त उपलब्धता कम उत्पादकता का कारक रहा है।

- सिंचाई सुविधाओं का विस्तार करने में किए गए समस्त प्रयासों और निवेशों के बाद भी कुल कृषि सेक्टर के 50 प्रतिशत से भी कम में सिंचाई सुविधाएँ सुलभ हैं। निश्चित सिंचाई सुविधा की कम सुलभता के कारण अनिश्चित मानसून पर निर्भरता कृषि में कम उत्पादकता का स्थायी कारण रहा है।

- कटाई के बाद की अपर्याप्त और घटिया प्रौद्योगिकी (जिसके कारण अनुमानतः 30 प्रतिशत कृषि उत्पादों की हानि होती है) उत्पादित कृषि उत्पाद की संभावित कीमत प्राप्त करने की प्रमुख बाधा है।

- बहुत दशाब्दियों में प्रौद्योगिकीय क्षेत्र में कोई प्रमुख पहल नहीं हुई है। इसे ''प्रौद्योगिक थकान'' कहा जाता है। यह भी देश में कृषि उत्पादकता की अवरुद्धता का एक बड़ा कारण रहा है।

नीतिगत पूर्वग्रह/दुर्बलता

- उद्योग पक्षपाती नीति पर अत्यधिक निर्भरता की पूर्वाग्रही नीति से भारतीय कृषि ग्रस्त रही है। उद्योग के संवर्धन में राज्य की सहभागिता कृषि की तुलना में बहुत अधिक थी। उद्योग को प्रारंभिक अवस्था में प्रदान किए गए अधिक संरक्षण ने निजी निवेश को कृषि की अपेक्षा उद्योग की ओर अधिक प्रोत्साहित किया।

- आधारभूत संरचना विकास भी कृषि की अपेक्षा उद्योग के पक्ष में उसी प्रकार अधिक पूर्वाग्रह ग्रस्त रहा (इस तथ्य के बावजूद कि कृषि सेक्टर के भी बहुत मामलों में नीतिगत समर्थन मिला)। यहां तक कि 2007 के हाल ही के (अंतर्राष्ट्रीय खाद्य नीति अनुसंधान संस्थान द्वारा) किए गए अध्ययन ने प्रमाणित किया है कि भारत में कृषि की सहायता सामंजस्यहीन रही है और अधिकांशतः विश्व कीमतों के उच्चावचन के प्रतिकूल रही है। तात्पर्य यह है कि कृषि सहायता तब बढ़ाई गई जब विश्व कीमतें अपेक्षाकृत कम थीं और तब घटाई गई जब विश्व कीमतें ऊंची थीं।

13.4.2 कृषि उत्पादकता बढ़ाने के उपाय

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

स्वाभाविक रूप से यह परिणाम निकलता है कि कृषि उत्पादकता बढ़ाने के उपायों का उल्लेख भी निम्न प्रकार से हो सकता है : (i) संस्थागत, (ii) प्रौद्योगिकीय और (iii) आवश्यक प्रोत्साहन संरचना। संक्षेप में, इन्हें इस प्रकार प्रतिपादित किया जा सकता है :

13.4.2.1 संस्थागत सुधार

- भूमि सुधारों, पर्याप्त कृषि वित्तीयन की व्यवस्था, प्रौद्योगिकी रूप में उपयुक्त विधियों के लिए कृषि आदानों के अधिक व्यापक और न्याय संगत वितरण के माध्यम से बेहतर कृषि संबंधों की स्थापना कृषि उत्पादकता बढ़ाने के लिए अनिवार्यतः आवश्यक है। यह उल्लेख करना महत्त्वपूर्ण है कि यद्यपि बहुत-सी संस्थागत व्यवस्थाएँ पहले ही विद्यमान हैं, किंतु उनका क्रियान्वयन इतना प्रभावोत्पादक नहीं रहा है। इस पक्ष पर ध्यान दिया जाना आवश्यक है।

- संस्थागत सुधार के एक अन्य प्रमुख पहलू का संबंध वितरण प्रणाली की दक्षता सुधारने से है। इसमें समग्र ग्राम विकास उपाय और लोकतांत्रिक संस्थाओं, जैसे पंचायती राज का शक्तीकरण सम्मिलित है। इसके लिए आवश्यक संसाधनों के हस्तांतरण सहित आर्थिक और सामाजिक विकास के कार्यों का समुचित अंतरण अपेक्षित है।

13.4.2.2 प्रौद्योगिकीय सुधार

प्रौद्योगिकीय सुधारों को दो शीर्षकों में वर्गीकृत किया जा सकता है: (i) जैविक और (ii) अन्य। जैविक नवप्रवर्तन का संबंध उन कारकों पर फोकस करना है जो अधिक भूमि उत्पादकता तय कर सकते हैं। इसका अभिप्राय भूमि बचत तरीके और कार्यप्रणाली

(जैसे बेहतर बीजों और उर्वरकों) का स्वरूप है जो पर्यावरण की दृष्टि से धारणीय है। अन्य नवप्रवर्तनों में निम्न प्रकार के कई घटक हैं:

- यह केवल तकनीकी जानकारी नहीं है जो गरीब किसानों की सहायता करती है। उन्हें सहयोगशील उत्पादों जैसे आदान आपूर्तियाँ, विस्तार सेवाएँ, ऋण सुविधा, कटाई के बाद सहायता (जैसे भंडारण/विपणन) आदि की आवश्यकता होती है। कृषि सेवा केंद्र, परामर्शदाताओं को पारिश्रमिक पर रखते हैं और छिड़काव करने वाली मशीनों (Spayer) ट्रैक्टर और गहाई मशीन (थ्रेसर) आदि की आपूर्ति करते हैं। पूरे देश भर में व्यापक रूप से इनका विस्तार होना चाहिए। संपूरक उपायों के रूप में सहकारी समितियों को इसी प्रकार राष्ट्रव्यापी आधार पर प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। ये ताइवान, जैसे देशों में दक्षतापूर्वक कार्य कर रही हैं। इन सेवाओं के अभाव में, प्रयोगशालाओं में विकसित फसल उत्पादन की आधुनिक तकनीकें अपनाने की भारतीय किसानों की क्षमता को नहीं बढ़ाया जा सकता है और इसके अभाव में, भारतीय कृषि की उत्पादकता बढ़ाना संशयपूर्ण बना रहेगा।

- अनुसंधान के प्रतिलाभ उच्च माने जाते हैं। इस दृष्टि से अनुसंधान प्रयासों को उन विधियों और कार्यप्रणालियों पर केन्द्रित किया जाना चाहिए, जिन्हें छोटे फार्मों और शुष्क क्षेत्रों में प्रयुक्त किया जा सके। परंतु चूंकि निम्नतर सीमा है जिसके परे प्रौद्योगिकी और पूँजी प्रधान कार्यप्रणालियों की प्रयोज्यता आर्थिक रूप में व्यावहार्य नहीं रह पाती है, इसलिए छोटे-छोटे भूखंडधारी गरीब किसानों की सहायता करने के लिए उनके संसाधनों को इकट्ठा कर तथा साथ मिलकर कार्य करने के लिए आवश्यक संस्थागत क्रियाविधि स्थापित करना आवश्यक है। अनुसंधान का विषय फार्म प्रबंधन सहित खाद्यान्न पादप प्रजनन और अन्य फसलों के लिए होना चाहिए। भूमि प्रबंधन, कृषि पद्धतियाँ कृषि वानिकी के सभी पहलुओं पर प्रयुक्त जानी चाहिए। निजी अनुसंधान को प्रोत्साहित करने के लिए समुचित नीति परिवर्तन करना भी आवश्यक है क्योंकि इन दिनों हम केवल सार्वजनिक निवेश पर पूरी तरह से निर्भर हैं, जो न केवल अव्यावहारिक है, बल्कि, वे उत्पादकता बढ़ाने में सहायता नहीं कर पाते हैं। चूंकि भारत में सामाजिक आर्थिक विकास के वर्तमान स्तर पर कृषि सेक्टर में गरीब और सीमांत किसानों की संख्या बहुत अधिक है, इसके लिए वांछित किस्म के संस्थागत विकास को सरकार द्वारा प्रोत्साहित करना आवश्यक है। राज्य को समाज की दक्षता और न्यायसंगत समस्याओं के नियामक के रूप में बड़ी भूमिका स्वीकार करनी चाहिए।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

विकास में उत्पादन और उत्पादकता सुधारने में उन IT (अर्थात् सूचना प्रौद्योगिकी) में विधियों के बेहतर प्रयोग पर अधिक बल दिया जाना चाहिए जिनमें पारिस्थितिकीय दृष्टि से युक्तियुक्त प्रणालियां अंतर्निहित हों, जैसे एकीकृत गहन कृषि पद्धतियां, ई-चौपाल का विस्तार, कृषि कार्यप्रणालियों के महत्त्व की दूरवीक्षण आंकड़ों (सुरक्षा संवेदी मानचित्र, आंकड़ों के मामले छोड़कर) की सुलभता/प्रयोग में बाधाएँ हटाना, आदि। इस समय ई-चौपालों की परियोजनाएँ केवल कुछ ही राज्यों में कार्य कर रही हैं, सभी राज्यों में इसका विस्तार किया जाए।

13.4.2.3 उत्पादकता बढ़ाने के लिए प्रोत्साहन

छोटे फार्मों की उत्पादकता सुधारना : इस संबंध की मुख्य चुनौती है कि भारत में 80 प्रतिशत भूमि जोत आकार में 2 हेक्टेयर से कम है। जब तक कारक उत्पादकता

नहीं बढ़ायी जाती है, तब तक छोटे फार्म पर आधारित कृषि अलाभकारी ही रहेगी। परंतु फार्म जितने छोटे होंगे, अधिक नकदी प्रतिलाभ प्राप्त करने के लिए पण्य अधिशेष की आवश्यकता उतनी ही अधिक होगी। इसलिए एकल विकास रणनीति के रूप में छोटे फार्म उत्पादकता सुधार उत्पाद/उत्पादकता बढ़ाने और भूख तथा गरीबी उन्मूलन दोनों के लिए सबसे अधिक योगदान कर सकता है। देश भर में छोटे किसानों को आधुनिक आदानों जैसे, उर्वरकों, कीटनाशकों और उचित मूल्य पर उन्नत बीजों की उपलब्धता इस संबंध में अति आवश्यक है। कीमतों और गैर कीमती पहलुओं पर अन्य उपाय अत्यधिक आवश्यक हैं। ये उपाय निम्नलिखित हैं:

- प्रभावशाली फसल बीमा योजनाओं से कृषि के प्रतिलाभ (विशेषकर वर्षा निर्भर क्षेत्रों में) स्थिर करना।

- उत्पादन के पैमाने को सुधारना (संसाधनों को मिलाते हुए आधुनिक आदानों और विधियों का प्रयोग कर उत्पादकता बढ़ाने में जिसे प्रमुख दबाव के रूप में कार्य करने वाला जाना जाता है)। कुछ कृषि कार्यों की समस्या हल करने के लिए इकाई 5 में पहले उल्लिखित सार्वजनिक भूमि बैंक की आवधारणा का क्रियान्वयन गंभीरता से किया जाए।

- किसानों को बेहतर आदानों और प्रौद्योगिक सुलभता प्रदान कर ''संविदा खेती'' द्वारा उद्योग कृषि संबद्धता प्रोत्साहित की जाए। साथ ही अच्छी गुणवत्ता के कच्चे माल की निरंतर आपूर्ति प्राप्त करने में निगमित सेक्टर की भी सहायता ली जा सकती है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

- उर्वरक उद्योग को तर्कसंगत बनाने तथा पुनःसंरचना करके कृषि के सुधार को औद्योगिक सुधारों के अनुरूप बनाना। किसानों से यह आशा करना अवास्तविक है कि वे उच्चतर संरक्षण और उर्वरक उद्योगों की उस अदक्षता के परिणामों का दंड भुगतें (जो अपने विस्तार का संवर्धन करने के लिए अपनाई गई पिछली संरक्षात्मक नीतियों के कारण पहले से आरंभ हो चुकी है)।

- सार्वजनिक प्रापण और मूल्य समर्थन नीतियों का पुनःविन्यास तथा उनके उद्देश्यों के बेहतर रूप से पुनः प्रारंभ करने की व्यवस्था करना। इन वितरण केन्द्रों को भेजा गया प्रचुर खाद्य भंडार भ्रष्टाचार और अदक्षता से नष्ट किया गया है, इससे मांग और आपूर्ति के काल्पनिक बेमेल को संपूर्ण प्रणाली को भुगतना पड़ता है।

- सुधारों के स्वरूपों के माध्यम से बिजली और सिंचाई साहाय्य समाप्त करना जो निम्न लागत वसूली और खराब वित्तीय निष्पादन के निहित कारणों को दूर कर सकते हैं।

- प्रख्यात कृषि अर्थशास्त्री शूहल्ज ने छह दशकों से भी अधिक में प्रेक्षण किया है कि विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में गरीब किसान समझदार होते हैं इन्हें अपनी समझदारी का लाभ उठाने के लिए केवल उचित ढंग से सहायता करने की आवश्यकता है। इस तर्क का विस्तार करते हुए यह कहा जाता है कि किसानों को उनके कल्याण संबंधी विकास कार्यों के विभिन्न स्तरों पर शामिल किया जाना चाहिए। विशेषकर निर्णय करने वाले निकायों, जैसे निवेश आपूर्तिकर्त्ता एजेंसियों और उत्पाद विपणन बोर्डों में उनके उचित प्रतिनिधित्व को प्रोत्साहित किया जाना

चाहिए ताकि वे सेक्टर की समग्र लाभकारिता बढ़ाने और बेहतर संसाधन दक्षता के लिए उत्प्रेरक के रूप में कार्य कर सकें।

- यह भी तर्क दिया जाता है कि यदि किसानों को अपने अल्प संसाधनों को अपनी भूमि पर निवेश करने तथा समन्वित तरीके में कार्य करने के लिए अभिप्रेरित किया जाता है तो सहायता के रूप में किसी भी अतिरिक्त सरकारी निवेश के बिना सेक्टर का उत्पाद दुगुना किया जा सकता है। इसके लिए ऐसी नीतियों और उपायों में लोगों की सहभागिता का संवर्धन आवश्यक है जिनके द्वारा हमारे पूर्व एशियाई पड़ोसी अपनी वर्तमान ऊँचाइयों पर पहुंचे हैं। यदि उत्पादकता स्तर बढ़ाकर खाद्य सुरक्षा प्राप्त करने के अधिकार प्राप्त किए जाने हैं तो भारत को अगली 2 से 3 दशाब्दियों के दौरान इस क्षेत्र पर गंभीर रूप से कार्य करना आवश्यक है।

- बढ़ी हुई कृषि उत्पादकता के लिए इस समय की तुलना में विस्तारित और आधुनिकीकृत कृषि सेक्टर में बहुत अधिक श्रमिकों की आवश्यकता होगी। दूसरे शब्दों में, कृषि में घटते हुए श्रमबल के शेयर से बढ़ा हुआ कृषि स्तर न केवल किसानों का आय स्तर सुधारेगा बल्कि कृषीतर सेक्टर में अतिरिक्त रोज़गार भी उत्पन्न करेगा। इसके लिए इस सेक्टर को केवल सही दृष्टिकोण से (जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है) आधुनिकीकृत होना आवश्यक है। इसमें वास्तविक चुनौती निहित है जिसे किए जाने की तुलना में कहना आसान है।

बोध प्रश्न 3

DIKSHANT IAS

नीचे दिए गए स्थान में लगभग 50 शब्दों में प्रश्न 2 से 6 के उत्तर दीजिए।

Call us @7428092240

1) रिक्त स्थान भरिए –

क) कृषि में अभी तक प्राप्त उच्चतम वृद्धि दर .... प्रतिशत है और यह अवधि में .... रही है।

ख) कृषि में सुधारोत्तर वृद्धि 1991-2001 के दौरान .... प्रतिशत और 2001-2009 के दौरान .... प्रतिशत है।

ग) भारत में अभी तक प्राप्त कृषि में उच्चतम श्रम उत्पादकता .... टन है। यह 2001 में .... टन तक घट गयी परंतु पुनः 2011 में .... तक बढ़ गयी।

घ) वर्ष 2008-09 के दौरान कृषि में पूँजी उत्पादकता में निरंतर .... की प्रवृत्ति रही है।

2) किस प्रकार से भारत में वर्तमान जनांकिकीय स्थिति भूमि उत्पादकता निम्न रखने में बाधक रही है?

....

....

....

....

3) उद्योग की तुलना में कृषि वृद्धि को दुष्प्रभावित करने वाले नीति पूर्वाग्रह को प्रमाणित करने वाले किन्हीं दो कारकों का उल्लेख कीजिए।

....

....

....

....

4) भारतीय कृषि उत्पादकता सुधारने के लिए जैव नवप्रवर्तन का ध्यान किस ओर केन्द्रित करना चाहिए?

....

....

....

....

5) क्या आप सहमत है कि कृषि उत्पादकता बढ़ाने के लिए ''अनुसंधान'' पर बल महत्त्वपूर्ण है? जिनसे इस प्रकार के प्रयासों की दिशा के विषय में आप क्या सुझाव देंगे?

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

....

....

6) कीमत और कीमत इतर उपायों के क्षेत्रों में से एक उदाहरण दीजिए जिसे आप अधिक उत्पादकता पथ पर भारतीय कृषि के मार्ग निर्धारित करने के लिए अत्यंत आवश्यक समझते है।

....

....

....

....

13.5 सारांश

भले ही, लगभग छह दशकों की लंबी अवधि में भारत में कुल कृषि उत्पादन नियमित रूप से बढ़ा है, सापेक्ष शब्दों में, कृषि उत्पादकता अवरुद्ध/ह्रासमान रही है। इसके अलावा, अन्य विकसित देशों की तुलना में भारतीय कृषि के उत्पादकता स्तर बहुत

निम्न हैं। हमारी जनसंख्या निरंतर बढ़ रही है, और खाद्य आवश्यकताओं/किस्मों की अधिक भारी मांग पैदा कर रही है। ''खाद्य सुरक्षा'' के लिए हमारी बढ़ती हुई चिंता का समाधान केवल कृषि उत्पादकता के स्तर बढ़ाने पर ध्यान केन्द्रित कर हो सकता है। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए जिन उपायों को किए जाने की आवश्यकता है, वे संस्थागत, प्रौद्योगिकीय, कीमत और कीमत इतर क्षेत्र के अंतर्गत आते हैं। इस इकाई में संबंधित संकल्पनात्मक सैद्धांतिक और अनुभवजन्य आयामों को ध्यान में रखकर इन पहलुओं का विवेचन किया गया है।

13.6 शब्दावली

उत्पादकता : इसका संबंध आदान से उत्पादन के अनुपात से है। यह एक सापेक्ष चित्र प्रस्तुत करता है, जिसमें सुस्पष्ट शब्दों में समय के चलते उत्पाद बढ़ रहा हो सकता है, परंतु उत्पादकता के आधार पर यह ऐसा नहीं हो सकता है। विशेषकर भूमि उत्पादकता, श्रम उत्पादकता और पूँजी उत्पादकता का संबंध उस उत्पाद की प्रति इकाई से है जिसमें भूमि, श्रम और पूँजी क्रमशः माने गए कारक आदान हैं।

कुल कारक उत्पादकता : यद्यपि श्रम और पूँजी उत्पादन के दो मुख्य कारक हैं, ये अनेक अन्य कारकों के साथ मिलकर (जो इतनी आसानी से अभिज्ञेय नहीं है। उत्पादकता का स्तर या उत्पादकता प्रतिलाभ निर्धारण कराते हैं। ये शिक्षा और प्रशिक्षण, औद्योगिक वातावरण, राजनीतिक स्थिरता आदि हैं। यह अनुभव रहा है कि TFP से समग्र उत्पाद का योगदान दो मुख्य कारक निवेशों जैसे श्रम और पूँजी की अपेक्षा बहुत अधिक है। परंतु TFP के मूल्यांकन के लिए कीमत आधारित चरों जैसे उत्पाद, मूल्यवृद्धि आदि का अपस्फायन करने में प्रयुक्त आंकड़ों की बहुत (जैसे मूल्य सूचकांक की) आवश्यकता होती है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

वृद्धि दर : यह अवधि के दौरान (जैसे दशाब्दी में) प्रति वर्ष औसत वृद्धि के एकल सूचक के लिए प्रयुक्त किया जाता है। चक्रवृद्धि वार्षिक वृद्धि दर या CAGR फार्मूला : $P_n = P_o (1 + r/100)^n$ प्रयोग कर प्राप्त किया जाता है यहा P_o आधार/प्रारंभिक वर्ष में मान है, P_n n^{th} वर्ष में मान है, 'n' उन वर्षों की संख्या है जिनके दौरान वृद्धि दर निर्धारित करने का प्रयास किया गया है और 'r' परिकलित की जाने वाली वृद्धि दर है। माइक्रोसॉफ्ट एक्सेल में फार्मूला : = दर $(n_{,,} - P_{o5} - P_n) \times 100$ से

'r' का मूल्य प्राप्त कर सकते हैं। ध्यान रखें कि 'n' के बाद दो कॉमा (,,) है और ''minus'' चिन्ह P_0 से पहले है। प्रतिशत वृद्धि दर प्राप्त करने के लिए 100 से गुणा किया गया है। तालिका 13.2 में दिए गए आंकड़ों का प्रयोग कर आप साधारण औसत/वार्षिक वृद्धि दर की गणना कर सकते हैं और देख सकते है कि इसका मूल्य (मान) CAGR से थोड़ा ही अधिक होगा।

समोत्पाद वक्र : किसी प्रौद्योगिकी विशेष के अनुरूप उत्पादन फलन वक्र है। दो आदान स्थिति में इसे रेखाचित्र के रूप में समझा जा सकता है, जिसमें एक आदान (माना कि श्रम) की मात्रा लेकर अंकित किया जाता है। एक आदान X-अक्ष पर मापा जाता है और दूसरा आदान (अर्थात् पूँजी) Y-अक्ष पर मापा जाता है। इस प्रकार, यदि दो आदानों के भिन्न-भिन्न संयोजनों का प्रयोग करते हुए उत्पाद का एक निश्चित स्तर प्राप्त होने की बहुत सी संभावनाएँ होती हैं, हम दो आदान मूल्यों के भिन्न-भिन्न युग्मों के एकसमान उत्पादन करने वाले बिंदुओं को जोड़कर वक्र रेखा खींच सकते हैं। यह अंदर की ओर उभार दिखाने वाली वक्र रेखा समोत्पाद वक्र कहलाती है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

13.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Mark W. Rosegrant and Robert E. Evenson, Total Factor Productivity and Sources of Long-Term Growth in Indian Agriculture, EPTD Discussion paper No. 7, International Foold Policy Research Institute (IFPRI), 1995.

Renuka Mahadevan, Productivity Growth in Indian Agriculture: The Role of Globalization and Economic Reforms, Asia-Pacific Development Journal, Vol. 10, No. 2, 2003.

Sundaram, K.P.M., Gaurav Datt and Ashwani Mahajan, Indian Economy, Part 3: Agricuture in the National Economy, S. Chand Group, New Delhi, 2011.

WTO and Indian Agriculture: Implications for Policy and R&D, Policy Paper, 38, National Academy of Agricultural Sciences, New Delhi, 2006.

13.8 बोध प्रश्नों के उत्तर/संकेत

बोध प्रश्न 1

1) क) और ख) के लिए देखिए भाग 13.1 और उत्तर दीजिए।

ग, घ और ङ के लिए, भाग 13.2 देखिये और उत्तर दीजिए।

2) देखिए उपभाग 13.2.3 और उत्तर दीजिए।

3) देखिए उपभाग 13.2.4 और उत्तर दीजिए।

4) देखिए उपभाग 13.2.5 और उत्तर दीजिए।

बोध प्रश्न 2

1) क और ख के लिए देखिए उपभाग 13.3.1 और उत्तर दीजिए।

   ग और घ के लिए देखिए उपभाग 13.2.2 और उत्तर दीजिए।

2) देखिए उपभाग 13.4.1 और उत्तर दीजिए।

3) देखिए उपभाग 13.4.1 और उत्तर दीजिए।

4) देखिए उपभाग 13.4.2.2 और उत्तर दीजिए।

5) देखिए उपभाग 13.4.2.2 और उत्तर दीजिए।

6) देखिए उपभाग 13.4.2.3 और उत्तर दीजिए।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इकाई 14 नई और आविर्भावी कृषि कार्यप्रणालियाँ

संरचना

14.0 उद्देश्य

14.1 प्रस्तावना

14.2 उत्पादन संबंधी कार्यप्रणालियाँ

14.2.1 मृदा उर्वरता/स्वास्थ्य

14.2.2 उर्वरक

14.2.3 सहक्रियाशील प्रभावों की उपलब्धि

14.2.4 अशांकित फसल (सस्यन) कार्यप्रणालियाँ

14.2.5 अनुक्रमिक अनेकधा सस्यन

14.3 धारणीयता संबंधी कार्यप्रणालियाँ

14.3.1 भूमि निम्नीकरण और मृदा अपरदन

14.3.2 पोषक पदार्थों का समाकलित प्रयोग

14.3.3 सिंचाई अनुसूचीयन

14.4 जल प्रयोग दक्षता प्रणालियाँ

14.4.1 जल का संयुक्त बहुविध प्रयोग

14.4.2 वैकल्पिक सिंचाई विधियाँ

14.5 संरक्षण कृषि कार्यप्रणालियाँ

14.6 वितरणात्मक प्रणालियाँ

14.7 नई प्रचलित कृषि कार्यप्रणालियाँ

14.7.1 कीटनाशक रहित प्रबंधन

14.7.2 चावल सघनता कृषि प्रणाली (SRI)

14.7.3 जैव खेती

14.7.4 संरक्षणात्मक कृषि प्रणालियों का अंगीकरण

14.8 सारांश

14.9 शब्दावली

14.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

14.11 बोध प्रश्नों के उत्तर/संकेत

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

14.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप :

- सकल परिप्रेक्ष्य से ''कृषि कार्यप्रणालियाँ'' शब्द को समझा सकेंगे;
- उत्पादन संबंधी कार्यप्रणालियों की चर्चा उसके व्यापक घटकों में कर सकेंगे;

- स्पष्ट कर सकेंगे, कि धारणीयता के सरोकार अपनाई गई कृषि कार्यप्रणालियों में कैसे समाविष्ट किए गए हैं;
- वर्णन कर सकेंगे कि जल प्रयोग दक्षता कार्यप्रणालियों ने अनुसरित कृषि कार्यप्रणालियों में मुख्य स्थान कैसे ग्रहण किया;
- स्पष्ट कर सकेंगे, संरक्षण और फसल कटाई बाद की प्रबंधन प्रणालियों ने भारत में कृषि विकास की प्रगति में कैसे योगदान किया; और
- भारत में अपनाई गई कुछ नई कृषि कार्यप्रणालियों में सुधार कर सकेंगे।

14.1 प्रस्तावना

पिछली इकाइयों से स्पष्ट है कि कृषि ढाँचा संस्थागत व्यवस्थाओं, प्रौद्योगिकीय पद्धतियों और कृषि उत्पादन तथा उत्पादकता के अनुसार भारी परिवर्तनों से गुजरा है। स्वतंत्रता के समय खाद्यान्नों की गंभीर कमी से प्रारंभ होते हुए कृषि उत्पादन ने 1980 के दशक तक खाद्यान्न उत्पादन में आत्मनिर्भरता प्राप्त की है। हमने यह भी देखा है कि हरित क्रांति ने (जिसने खाद्य समस्या समाप्त करने में सहायता की), अपने आगमन से कई प्रतिकूल प्रभाव भी उत्पन्न किए, जैसे, रासायनिक उर्वरकों के अत्यधिक प्रयोग के कारण मृदा उर्वरता का अपरदन, शुष्क क्षेत्रों की उपेक्षा करने के कारण बढ़ती हुई क्षेत्रीय असमानताएँ और समरूप सहायता प्रणालियों के बिना अत्यधिक जोखिमों के कारण छोटे सीमांत किसानों में बढ़ती हुई विपत्तियाँ। इन कारणों के संयोजन ने GR के लाभ को विगत की घटना बना दिया और भारतीय कृषि और छोटे सीमांत किसानों को संकट की स्थिति में छोड़ दिया।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इस समय भारत के सम्मुख ऐसी कृषि उत्पादकता के पुनरुद्धारक और धारणीयता की चुनौती है जिसमें सभी क्षेत्रों में तथा किसानों के सभी वर्गों में उसके हितलाभों का न्यायसंगत वितरण हो। इस संदर्भ में नई कृषि कार्यप्रणालियां अपनाने की दिशा में कई पहल कार्य किए गए हैं। इन कार्यप्रणालियों को भारतीय कृषि के समक्ष उपस्थित मुख्य चुनौतियों के समाधान से जोड़ा गया है, जैसे (i) महत्त्वपूर्ण आदानों के फलोत्पादक उपयोग से फसलों के उत्पादन और उत्पादिता बढ़ाना; (ii) वैज्ञानिक संरक्षण प्रणालियों को व्यवहार में लाकर उत्पादन प्रणालियों की धारणीयता सुनिश्चित करना; और (iii) उपभोक्ता की बदलती हुई वरीयताओं के संदर्भ में बाजार से उत्पादन को जोड़ना। पृष्ठभूमि से इस इकाई में भारत में अपनाई गई विभिन्न कृषि कार्यप्रणालियों की चर्चा पर ध्यान केन्द्रित किया गया है। कार्यप्रणाली की चर्चा निम्नलिखित चार मुख्य वर्गों में की गयी है : (i) उत्पादन संबंधी कार्यप्रणालियाँ; (ii) धारणीयता संबंधी प्रणालियाँ; (ii) जल प्रयोग दक्षता प्रणालियाँ; और (iv) संरक्षण तथा फसल कटाई के बाद प्रबंधन प्रणालियाँ।

14.2 उत्पादन संबंधी कार्यप्रणालियां

उत्पादन संबंधी कार्यप्रणालियों पर चर्चा कृषि संसाधन प्रयोग के कुछ प्रमुख घटकों से संदर्भ में हो सकती है। इन्हें मृदा, उर्वरक, अतिरिक्त पोषक पदार्थों और सस्यन क्रिया में परिवर्तनों में वर्गीकृत किया जा सकता है।

14.2.1 मृदा उवर्रता / स्वास्थ्य

मृदा कई कारकों द्वारा निर्मित और परिपोषित प्राकृतिक संसाधन है। इसके परिपोषक तत्व हैं (i) जलवायु (तापमान और वर्षा); (ii) क्षेत्र की स्थलाकृति; (iii) सप्राण जीव जैसे वनस्पति; (iv) मूल सामग्री का स्वरूप (जैसे शैलों और खनिजों के प्रकार); और (v) समय (काल)। इस प्रकार, यह भौतिक प्रक्रिया और रासायनिक प्रक्रिया दोनों है। इस प्रक्रिया के दौरान बहुत जैव और खनिज पदार्थ जुड़ जाते हैं, नष्ट हो जाते हैं और रूपांतरित हो जाते हैं। मृदाओं का महत्त्व इस तथ्य में निहित है कि यह फसलों की वृद्धि के लिए आधारभूत माध्यम प्रदान करता है। वास्तव में, मृदा का प्रकार और स्वरूप ही निर्धारित करता है कि इसमें किन फसलों की खेती की जा सकती है। फसल उत्पादन करने के लिए मृदा की संभावना अधिकांशतः उसके जल भंडारण करने की क्षमता और इसकी अन्य विशेषताओं (जैसे अम्लता, गहराई और घनत्व) मिलकर निर्धारण करती है। इन्ही से यह तय होता है कि फसलों की जड़ें कैसे अच्छी विकसित हो सकती हैं। मृदा की इन विशेषताओं में परिवर्तन प्रत्यक्ष रूप से पादप के स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं। इसके अलावा समय के चलते फसलों की लगातार खेती से मृदा की अपेक्षित पोषक पदार्थ प्रदान करने की क्षमता कम हो जाती है। जैसे पौधे बढ़ते हैं, उनकी जीवित कोशिकाएँ अपने पर्यावरण से रासायनिक पदार्थ लेती हैं और पर्यावरण, विशेषकर मृदा की गुणवत्ता कम करते हुए ऊर्जा के स्रोत के रूप में उनका प्रयोग करते हैं। इसलिए उन कार्यप्रणालियों का प्रयोग करना आवश्यक हो जाता है जो अच्छे पादपों को जीवित रखने के लिए मृदा में प्रमुख पोषक पदार्थों का पुनरुद्धार करने या पुनःपूर्ति में सहायता कर सकती हैं। इसके साथ-साथ खेती करने के दौरान अपनाई गई अनुचित प्रणालियों सहित बहुत से प्राकृतिक कारक और मानवीय कारकों के कारण मृदा का निम्नीकरण उसे खेती के लिए अक्षम बना देता है। इस प्रकार ऐसी कार्यप्रणालियों के माध्यम से मृदा का प्रबंधन, जो मृदा उर्वरता और स्वास्थ्य पुनरुद्धार करने में सहायता करती हैं, कृषि उत्पादकता बनाए रखने के लिए अत्यधिक अपेक्षित है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

14.2.2 उर्वरक

उर्वरक कोई भी प्राकृतिक या संश्लिष्ट पदार्थ है, जिसे मृदा में फैलाने या काम में लाने पर, वह पादप वृद्धि में सहायता करने के लिए उसकी क्षमता बढ़ाता हो। ऐसे पदार्थ हो सकते हैं : (i) जैव पदार्थ या (ii) रासायनिक (अजैव) उर्वरक। उर्वरकों का प्रयोग मृदा की उर्वरता का पुनरुद्धार करने के लिए और उच्चतर कृषि उपज के लिए अपेक्षित उद्दीपक के रूप में भी महत्त्वपूर्ण और आवश्यक प्रणाली है।

जैव सामग्री : रासायनिक उर्वरकों के विकास से पहले विभिन्न रूपों में जैव स्रोत ही मृदा उर्वरता बढ़ाने और उसके भौतिक गुणधर्म जैसे पादप वृद्धि के लिए महत्त्वपूर्ण जल धारण क्षमता सुधारने के लिए प्रयुक्त किए जाते थे। जैव उर्वरक पादपों या पशुओं का प्राकृतिक पदार्थ जिसमें पशुधन खाद, हरी खाद, फसल अपशिष्ट, घरेलू अपशिष्ट और कंपोस्ट शामिल हैं। ऐसा पदार्थ या तो सीधे तौर पर या पशु या मानव खाद्य के रूप में चक्रित किए जाने के बाद प्रयुक्त किए जाते हैं। आज जैव पदार्थ के साथ रासायनिक उर्वरक के संयोजन जैव पदार्थ उपलब्ता के संपूरक के रूप में प्रयुक्त किए जाते हैं। जैव खाद के भिन्न-भिन्न प्रकार जिन्हें उर्वरक के रूप में प्रयुक्त किया जाता है, उनमें शामिल हैं : (i) ढेर सारी जैव खाद; (ii) सकेन्द्रित जैव खाद; और (iii) जैव उर्वरक।

ढेर सारी जैव खाद : इसमें पशुआहाता खाद (FYM), बड़ी मात्रा में मिलाया जाता है जो मृदा की भौतिक दशा सुधारने में सहायता करता है। यह निम्नलिखित द्वारा मृदा में सूक्ष्म जीवों के कार्य बढ़ाता है : (क) मृदा की जलधारण क्षमता सुधारना; (ख) वाष्पीकरण क्षतियाँ कम करना; (ग) मृदा तापमान नियंत्रित करना; और (घ) पादप वृद्धि के लिए अपेक्षित प्रायः सभी पोषक पदार्थ प्रदान करना। विशिष्ट आहाता खाद मुख्यतया पशुओं का गोबर होता है, साधारणतया गाँवों में उपलब्ध होता है, और प्रयोग करना आसान होता है। परंतु यह किसान परिवारों द्वारा ईंधन के रूप में भी प्रयुक्त किया जाता है और इसलिए FYM पूरी तरह से उर्वरक के रूप में प्रयोग के लिए उपलब्ध नहीं होता है। FYM द्वारा प्रदत्त पोषक पदार्थों की मात्रा इसकी कोटि पर निर्भर करता है जो पशुओं को दिए गए चारे द्वारा नियंत्रित होता है। इसका आशय है कि उसके पोषक तत्वों के आधार पर FYM की गुणवत्ता पशुओं को सकेन्द्रित चारा (जैसे बिनौलो की खली, अलसी की खली, सोया फीड, गेहूँ मूसी, फली, मूसा और दाना) खिलाकर सुधारी जा सकती है। जैव खाद की अन्य किस्में ग्रामीण और शहरी कंपोस्ट, जलमल पदार्थ और अवमल हैं। कंपोस्ट फार्म हाउसों, पशुशालाओं, कस्बों के कचड़े और मल अवशिष्ट के अपघटन से प्राप्त किया जाता है। दूसरे किस्म का कंपोस्ट मलजल भंडारण टैकों के तल पर तलछट (अवसाद) के रूप में गाढ़ा, नरम पदार्थ है, जिसमें पादप पोषक पदार्थों की बहुत मात्रा होती है। परंतु इन पदार्थों का उचित ढंग से उपचार होना चाहिए अन्यथा वे मृदा को क्षतिग्रस्त कर सकते हैं। किसानों द्वारा हाल ही में अपनाई गई एक अन्य प्रणाली कृषि वानस्पतिक खाद है। यह ऐसी प्रक्रिया है जिससे फार्म अवशिष्ट या वन का कूड़ा करकट गड्ढे में इकट्ठा किया जाता है और कैचुए का प्रयोग कर कंपोस्ट बनाने के लिए प्रयुक्त किया जाता है। तैयार करने की विधि अपेक्षाकृत सरल है और उत्पादित कंपोस्ट में महत्त्वपूर्ण तत्व, जैसे कार्बन, नाइट्रोजन और फास्फोरस होते हैं। हरित खाद का प्रयोग भारत में बहुत लंबे समय से किसानों द्वारा किया जाता है। इसमें मृदा की भौतिक दशा सुधारने के लिए और उसकी उर्वरता बढ़ाने के लिए भी हरे पादप टिशू की मृदा में हल चलाना शामिल है। साधारणतया हरी खाद बनाने के लिए बोयी जाने वाली विशिष्ट फसलें वे हैं जिसमें बहुत अधिक पत्ते होते हैं और अपने जीवन चक्र की प्रारंभिक अवस्था के दौरान बहुत तेज़ी से बढ़ते हैं। वे घटिया मृदा में भी अच्छी तरह से उगने में सक्षम हैं और उनमें गहरी जड़ प्रणाली भी है। हरी खाद से मृदा को अधिक उपजाऊ बनाना अन्य प्रकार के उर्वरकों की अपेक्षा बहुत कम खर्चीला है। कुछ हरी खाद पादप जैसे सेम, मटर या मूली खाद्य पदार्थ भी होते हैं। इसके अलावा उगने की प्रक्रिया के दौरान ये पादप शीर्ष मृदा अपरदन भी रोकते हैं और उनकी गहरी जड़ें कठोर पटल को तोड़ने में सहायता करती हैं। किसान मृदा की उर्वरता बढ़ाने के लिए अपने फसल आवर्तन में हरी खाद फसलों का समावेश करते हैं। गंगा के मैदानों के लिए इस प्रणाली की विशेष रूप से संस्तुति की गई है जहाँ उत्पादन की चावल-गेहूँ प्रणाली विद्यमान है और मृदा की उत्पादकता का ह्रास हो रहा है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

सांद्रित जैव खाद में खली शामिल होती है। खली ठोस अवशिष्ट है जो तेलधारी बीज दबाकर तेल निकालने के बाद बची रहती है। उन्हें पशु चारों में मिलाकर या उर्वरक के रूप में प्रयुक्त किया जाता है, यह इस पर निर्भर करता है कि वे खाद्य हैं या अखाद्य हैं। खाद्य खली बिनौलों, मूंगफली, अलसी, सोयाबीन, तेरिया बीज और नारियल से निकाली जाती है। अखाद्य खली वे खलियां हैं जो अखाद्य तिलहन फसलों जैसे एरंड, नीम, कुसुम, करंज और महुआ से प्राप्त की जाती हैं।

जैव-उर्वरक कतिपय मृदा जीवों का कृत्रिम रूप से प्रवर्धित जीवाणु समूह हैं जो मृदा उर्वरता और उत्पादकता सुधार सकते हैं। वे ऐसे उपक्रम हैं जिनमें सक्रिय घटकों के रूप में सूक्ष्म जीवों की दक्ष प्रजातियों की सजीव कोशिकाएँ होती हैं। इन सूक्ष्म जीवों का पादपों से प्रतीकात्मक संबंध होता है और पोषक पदार्थ लेने में उनकी सहायता करता है। जैव उर्वरक मृदा में कुछ सूक्ष्मजीवी प्रक्रियाएँ तेज़ करता है जो पादपों द्वारा आसानी से आत्मसात होने योग्य पोषक पदार्थों की उपलब्धता की सीमा बढ़ाता है।

रासायनिक/खनिज उर्वरक

परंपरागत रूप से किसानों ने मृदा उर्वरता की पुनःपूर्ति के लिए जैव उर्वरकों (मुख्यतया आहाता खाद) प्रयोग किया है। परंतु जैव पदार्थों द्वारा मृदा में जोड़े गए पोषक पदार्थों की मात्रा कम है और जैव खाद का अपघटन प्रायः धीमी प्रक्रिया है। इसलिए अजैव उर्वरक नाम के रासायनिक या संश्लिष्ट उर्वरकों का प्रयोग अधिक अच्छा विकल्प है। इसका अभिप्राय है कि उनकी उपज संभावना केवल तभी प्राप्त की जा सकती है यदि महत्त्वपूर्ण रूप से अपेक्षित आदानों के रूप में उर्वरकों की सही मात्रा और किस्म प्रयोग होती है (यह अल्पकालीन किस्मों के विकास द्वारा संभव हुआ)। वर्ष में दो या अधिक फसलों की खेती करने के लिए एकधा सस्यन से बहुसस्यन प्रणालियों में परिवर्तन से रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग व्यापक रूप से होने लगा है।

रासायनिक उर्वरकों में एक या अधिक पादप पोषण पदार्थ होते हैं जो आसानी से पानी में घुल जाते हैं और इस प्रकार पादपों को शीघ्रता से उपलब्ध हो जाते हैं। इन्हें वैज्ञानिक अनुसंधान द्वारा निर्धारित भिन्न-भिन्न फसलों के लिए नियत खुराकों (डोज) में प्रयोग करना आवश्यक है। खुराक के अलावा समय और अनुप्रयोग की विधि भी महत्त्वपूर्ण है। इस प्रणाली के अनुप्रयोग के परिणामस्वरूप "हरित क्रांति" विधियों के अधीन फसलों का उच्च उत्पादन हुआ है। रासायनिक उर्वरकों के माध्यम से आपूर्ति किए गए मुख्य पोषक पदार्थ हैं: नाइट्रोजन (उदाहरण के लिए, यूरिया नाइट्रोजनी उर्वरक है जो पादप वृद्धि के लिए अपेक्षित मुख्य रसायन है) फास्फोरस और पोटैशियम अर्थात् (NPK) ये पादप वृद्धि और उत्तरजीवितता के लिए अपेक्षित वृहद् पोषक पदार्थ हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

खनिज उर्वरक रासायनिक उर्वरकों का एक अन्य प्रकार है जिन्हें फसलों के लिए उगाने की ऋतु में कम से कम दो-बार प्रयोग करना आवश्यक है। यह या तो रोपाई अवस्था में मूलरूप से हो या वानस्पतिक वृद्धि अवस्था के दौरान फसल में बिखेर कर हो सकता। अधिकांश छोटे धारक सस्य प्रणालियों में प्रयुक्त जैव खाद की मात्रा निम्नलिखित कारणों से संस्तुत मानकों से काफी कम प्रयुक्त की जाती है। इसके कारण हैं : (i) छोटे किसानों की न्यून क्रय शक्ति; (ii) खराब या अनिश्चित वर्षा का भय से (अधिक व्यय के जोखिम से बचना); और (iii) बाजार की अनिश्चितता के कारण अपर्याप्त प्रतिलाभ। परंतु जब ये उपलब्ध हों तो उर्वरक का प्रयोग श्रमिक प्रधान न होने के कारण किसानों को अन्य कार्य करने के लिए समय मिल जाता है (इससे अन्यत्र आय अर्जित की जा सकती है।)

14.2.3 सहक्रियाशील प्रभावों की उपलब्धि

जैव और अजैव दोनों उर्वरकों का प्रयोग कृषि उत्पादन प्रोत्साहित करने के लिए महत्त्वपूर्ण है। समाकलित पोषक पदार्थों की आपूर्ति और प्रबंधन में, संतुलित तरीके में पादपों/फसलों द्वारा अपेक्षित सभी महत्त्वपूर्ण पोषक तत्वों की सफल और विवेकपूर्ण

आपूर्ति/प्रयोग अंतर्निहित है। इसमें मृदा की उत्पादकता बनाए रखने या सुधारने के लिए जैव और जैविक पोषक तत्वों में संयोजन से रासायनिक या खनिज उर्वरकों का प्रयोग शामिल है। रासायनिक उर्वरक ऐसे पोषक तत्वों के सांद्रित स्रोत हैं जिन्हें पादप तेज़ी से अवशोषण करते हैं। दूसरी ओर, जैव खाद अपेक्षाकृत कम पोषण तत्व देता है परंतु ऐसे तरीके में मृदा की भौतिक विशेषताओं को सुधारने में सहायता करता है जो पादप वृद्धि के लिए सहायक है। हरी खाद (जैसे फसल कटाई के बाद अवशिष्ट) मृदा का स्वास्थ्य और गुणवत्ता सुधारने के अलावा नाइट्रोजन की आपूर्ति बढ़ाती है। जैव खेती प्रणालियों के मिश्रित प्रयोग का सहक्रियाशील प्रभाव मृदा की रासायनिक भौतिक और जैविक विशेषताओं को सुधारने में सहायक है। इसके फलस्वरूप फसल उत्पादकता में वृद्धि होती है।

14.2.4 अशांकित फसल कार्यप्रणालियाँ

समय के गुज़रने के साथ-साथ किसानों ने अपने अनुभवों से सीखा है कि उसी भूमि पर बार-बार उसी फसल की खेती से फसल की उपज में ह्रास होता है। इस स्थिति का समाधान करने के लिए अपनाई गई वैकल्पिक प्रणाली है, ''सस्य आवर्तन''।

सस्य आवर्तन में एक अनुक्रम में भिन्न-भिन्न फसलों की खेती होती है जिसमें जैसे अन्य फसलों के अवशिष्ट जैव खाद के रूप में कार्य करते हैं। भारत में, तीन ऋतुएं होती हैं, जिनमें कुछ फसलें वर्ष भर उगाई जा सकती हैं। तीन ऋतुएँ हैं, बरसात या खरीफ ऋतु (जुलाई से अक्टूबर तक), शीत या रबी ऋतु (अक्टूबर से मार्च तक), और जायद (अप्रैल से जून तक) होता है। इन ऋतुओं के दौरान फसलें एक अकेली फसलों या मिश्रित फसलों (अर्थात् सस्यन) के रूप में उगाई जाती हैं। यदि किसी ऋतु में केवल एक फसल उगाई जाती है तो यह एकधा सस्यन कहलाती है और दो फसलें एक साथ उगाई जाती हैं तो दुहरी फसल कहलाती है। आवर्तन सस्यन एक निश्चित अनुक्रम में दो या अधिक फसलों की खेती है और जब भूमि के उसी खंड से वर्ष में दो से अधिक फसलें ली जाती हैं तो यह बहु-सस्यन कहलाती है। कौन-सी सस्यन प्रणाली किस क्षेत्र में पायी जाती है यह किसानों के अनुभव, व्यक्तिगत वरीयता और कार्य कुशलता, सरकारी नीतियां, संसाधन उपलब्धता, क्षेत्र में विद्यमान नाशीजीवों और रोगों की अनुक्रिया, पारिस्थितिक उपयुक्तता और व्यावहारिकता, जलवायु दशाएं, सामाजिक-आर्थिक कारक और बाजार मांग आदि का संचयी परिणाम है। विभिन्न फसल क्रमों की प्रबलता के आधार पर देश को कई कृषि क्षेत्रों में विभाजित किया गया है।

14.2.5 अनुक्रमिक अनेकधा सस्यन

अनुक्रमिक अनेकधा सस्यन की प्रणाली में सघन आदान प्रबंधन के साथ अल्पकालिक विविध फसलों की खेती अंतर्निहित है। यह मुख्यतया सिंचित क्षेत्रों में की जाती है और भूमि उपयोग कुशलता बढ़ाने में सहायता करती है। खास फसल आवर्तन प्रणाली अपनाने में मुख्य महत्त्व भूमि के प्रति इकाई आर्थिक प्रतिलाभ का होता है। परंतु खास प्रणाली की लाभकारिता-आदान लागत और उत्पाद कीमतों पर निर्भर करती है और इसलिए भारत जैसे देश में सरकार की नीतियों में परिवर्तनों के प्रति अतिसंवेदनशील है। उदाहरण के लिए, भारत में अपनाए जा रहे फसल आवर्तन निम्न प्रकार हैं : उड़ीसा में चावल-गेहूँ-लोबिया; महाराष्ट्र में चावल-फरास बीन-मूंगफली और मूंगफली-चना; उत्तर

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

प्रदेश के पश्चिमी भागों में चावल-आलू-हरे चने और उत्तर पश्चिमी-मध्य हिमालय में चावल-गोभी-आलू और कचालू-मूली-फरासबीन।

बोध प्रश्न 1

नीचे दिए गए स्थान में अपना उत्तर लगभग 50 शब्दों में दीजिए।

1) उन तीन मुख्य चुनौतियों का उल्लेख कीजिए, जिनके इर्द-गिर्द विभिन्न कृषि कार्यप्रणालियां घूम रही हैं?

....

....

....

....

2) उर्वरकों को किन दो समूहों में वर्गीकृत किया गया है, तथा किस समूह में पादप और पशु के प्राकृतिक पदार्थ को तरजीह दी जाती है?

....

....

DIKSHANT IAS

....

....

Call us @7428092240

3) वे मुख्य तीन कारक क्या हैं जो भारत में छोटे किसानों को पर्याप्त मात्रा में रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग करने से रोकते हैं।

....

....

....

....

4) भारत में आनुक्रमिक अनेकधा सस्यन व्यापक रूप से प्रयुक्त क्यों नहीं किया जाता है? किन क्षेत्रों में भूमि उपयोग दक्षता बढ़ाने के लिए इसे प्रयुक्त किया जा सकता है?

....

....

....

....

14.3 धारणीयता संबंधी कार्यप्रणालियाँ

धारणीय कृषि कार्यप्रणालियां इस सिद्धांत पर आधारित हैं कि हमें भावी पीढ़ियों की उनकी आवश्यकताएँ पूरी करने की क्षमता से कोई समझौता किए बिना वर्तमान की आवश्यकताओं को पूरा करना चाहिए। इसे उन कृषि कार्यप्रणालियों के अनुसरण करने के रूप में परिभाषित किया गया है जो लंबे समय में निम्नलिखित करेंगी : (i) पर्यावरण संबंधी गुणवत्ता और उस संसाधन आधार को बढ़ाना जिन पर कृषि निर्भर होती है; (ii) पर्यावरण संबंधी गुणवत्ता पर कोई समझौता किए बिना बुनियादी मानव खाद्य और रेशों की आवश्यकताओं की पूर्ति करना; (iii) अंतर्निहित आदान लागत और प्राप्त प्रतिलाभ के अनुसार आर्थिक व्यावहारिकता सुनिश्चित करना; (iv) किसानों और समग्ररूप में समाज का जीवन स्तर सुधारना। इसमें मानवीय और प्राकृतिक, दोनों संसाधनों के प्रबंधन का मुख्य महत्त्व है। मानव संसाधनों के प्रबंधन में सामाजिक उत्तरदायित्वों का महत्त्व शामिल है, जैसे कृषि श्रमिकों का कार्य और जीवन दशा सुधारना; (ii) ग्रामीण समुदायों की आवश्यकताएँ पूरी करना; और (iii) वर्तमान और भावी दोनों पीढ़ियों की सुरक्षा और उपभोक्ता स्वास्थ्य सुनिश्चित करना। दूसरी ओर, प्राकृतिक संसाधनों के प्रबंधन में दीर्घकालिक आवश्यकताओं के लिए महत्त्वपूर्ण संसाधन आधार बनाए रखना या बढ़ाना अंतर्निहित है। इस इकाई में, हम भूमि और जल जैसे प्राकृतिक संसाधनों के प्रबंधन में अनुसरण की गई कार्यप्रणालियों पर संक्षेप में चर्चा करेंगे।

14.3.1 भूमि निम्नीकरण और मृदा अपरदन

भूमि निम्नीकरण कई प्रक्रियाओं का मिश्रण है जिनका परिणाम कृषि भूमि की जैविक या आर्थिक उत्पादकता का ह्रास या क्षति है। भूमि का निम्नीकरण करने वाली प्रक्रियाओं में (वायु और/या जल द्वारा किया गया) मृदा अपरदन, मृदा की भौतिक रासायनिक और जैविक गुणधर्मों और प्राकृतिक वनस्पति की दीर्घकालिक क्षति शामिल है। मृदा का अपरदन निम्नकरणी का प्रमुख कारण है जिसका परिणाम शीर्ष मृदा की क्षति और उसमें नालियों तथा गलियों की रचना हो जाती है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

मृदा अपरदन पर्याप्त खाद्य उत्पादन करने की हमारी क्षमता के बने रहने के लिए गंभीर संकट बनता जा रहा है। मृदा को यथास्थान रखने के लिए कई प्रणालियां विकसित की गई हैं। इनमें जुताई, अपवाह, कम करने या समाप्त करने के लिए सिंचाई प्रबंधन और पादपों तथा पलवार (मल्च) से मृदा को ढका हुआ रखना शामिल है। मृदा की गुणवत्ता की वृद्धि पोषक तत्वों के समाकलित प्रयोग द्वारा प्राप्त की जा सकती है, जैसा कि हम आगे उल्लेख करने जा रहे हैं।

14.3.2 पोषक पदार्थों का समाकलित प्रयोग

रासायनिक उर्वरकों के धारणीय प्रयोग में ऐसे मृदा परीक्षणों पर आधारित उर्वरकों की सही किस्म का प्रयोग अंतर्निहित है जो विशिष्ट पोषक तत्व की कमी की मात्रा निर्धारण में सहायता करते हैं। प्रयोगशालाओं में मृदा का उसके फास्फोरस और समस्त और सूक्ष्म स्तरीय पोषक तत्वों कमी के लिए परीक्षण किया जा सकता है। इसके लिए कृषि विश्वविद्यालयों, अनुसंधान संस्थाओं पर स्थापित और खंड स्तर पर स्थापित परीक्षण प्रयोगशालाओं में सुविधाएँ विद्यमान हैं। इसके अलावा, मिनी मृदा परीक्षण किटों से बड़े पोषक तत्व स्तरों (जैसे NPR) का आकलन फार्म में भी किया जा सकता है।

मृदा परीक्षण और पादप आवश्यकताओं के आधार पर उर्वरकों की उपयुक्त मात्रा का प्रयोग करने के अलावा अनुकूल संयोजन में जैव और रासायनिक दोनों उर्वरकों का समाकलित प्रयोग वह प्रणाली है जिसे न केवल कृषि उत्पादन बढ़ाने के लिए प्रयुक्त किया जाता है बल्कि भूमि संसाधनों का धारणीय प्रयोग सुनिश्चित करने के लिए भी किया जाता है। समाकलित पोषक तत्व प्रबंधन में संतुलित तरीके में पादपों/फसलों द्वारा अपेक्षित सभी महत्त्वपूर्ण पोषक तत्वों की कार्यक्षम और विवेकपूर्ण आपूर्ति/प्रयोग अंतर्निहित है। इससे मृदा के रासायनिक और भौतिक गुणधर्मों के प्रत्यास्थापना और सुधार में सहायता मिलती है।

14.3.3 सिंचाई अनुसूचीयन

फसल विशिष्ट जल आवश्यकता ही नहीं पादप के वृद्धि चक्र की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में भी जल की आवश्यकताएँ अलग-अलग होती हैं। स्थानीय जलवायु और मृदा दशा को भी फसलों की जल उपलब्धता प्रभावित करती है। पादप वृद्धि की कतिपय विशेष अवस्थाओं में जल की अनुपलब्धता पुष्पन और दाना विकास को बाधित कर सकती है। इसी प्रकार, अत्यधिक जल की व्यवस्था भी प्रति उत्पादनकारी हो सकती है, क्योंकि, फसलें आवश्यकता से अधिक जल का उपयोग नहीं कर सकती हैं और संतृप्त मृदा में घटे हुए ऑक्सीजन स्तरों का दबाव हो सकता है। इन प्रभावों का सामना करने के लिए सिंचाई की समय सारणी तैयार करने की प्रणाली का अनुसरण किया जाता है। इससे उन घटनाओं को न्यूनतम करने में सहायता मिलती है जहां बहुत कम या बहुत अधिक जल फसलों के लिए प्रयुक्त किया जाता है। उत्पादकों द्वारा उपयुक्त सिंचाई समय सारणी में फसलों के लिए प्रयुक्त किए जाने वाले जल का समय और मात्रा की सिंचाई समय सारणी तैयार किया जाना अंतर्निहित है। यह ऐसे कारकों पर आधारित होता है जैसे फसल में जल मात्रा, जड़ क्षेत्र, अंतिम बार सिंचाई के बाद और फसल विकास अवस्था के दौरान फसल द्वारा ग्रहण की गई जल की मात्रा आदि।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

14.4 जल प्रयोग दक्षता प्रणालियाँ

कृषि जल का सबसे बड़ा उपभोक्ता है और पेयजल की उपलब्धता धीरे-धीरे घट रही है। कृषि, घरेलू और औद्योगिक सेक्टरों से बढ़ती हुई मांग के कारण हमारे जल संसाधनों पर भारी दबाव के कारण सिंचाई पर विचार करने के लिए विवश कर रहा है जो न केवल पादप जल आवश्यकता पूर्ति के लिए इष्टतम जल प्रबंधन की दृष्टि से विचार करेगा बल्कि उर्वरक जल प्रयोग दक्षता बढ़ाने के अधिक व्यापक मुद्दों पर भी विचार करेगा। इसमें बुनियादी रूप से पादप के लिए जल उपलब्धता सुधारने और सिंचाई के दौरान जल क्षति न्यूनतमीकरण अंतर्निहित है। धारणीयता के दृष्टिकोण से आविर्भावी प्रणालियों में सिंचाई की वैकल्पिक विधियों का प्रयोग जैसे टपकन और छिड़काव (ड्रिप और स्प्रिंक्लॅर) सिंचाई शामिल है। इन विधियों से वाष्पीकरण से जल की क्षति काफी में कम हो जाती है और पादप के लिए जल उपलब्धता बढ़ जाती है।

उपर्युक्त संदर्भ में, ''जल उपयोग दक्षता'' की उपज प्रति इकाई क्षेत्रफल और प्रयुक्त जल की प्रति इकाई के रूप में परिभाषित किया जाता है। भिन्न-भिन्न फसलों/किस्मों की जल आवश्यकता अलग-अलग होती है। उदाहरण के लिए, शुष्क हितलाभों की इकाई उत्पादन करने के लिए गेहूँ की अपेक्षा चावल को बहुत अधिक जल की आवश्यकता होती है, इसका आशय है कि Kg/ha-cm में मापी गई चावल की जल

प्रयोग दक्षता गेहूँ की तुलना में बहुत कम है। उसी फसल में भिन्न-भिन्न किस्मों की भी जल आवश्यकताएँ और उपयोग दक्षता भिन्न-भिन्न हैं। इस प्रकार उपयुक्त फसलों और किस्मों का चुनाव जो उगाई क्षेत्र में उपलब्ध जल के बेहतर अनुकूल हो, सरल प्रणाली है, जो जल प्रयोग दक्षता सुधारने में सहायता करती है। फसल किस्म का उपयुक्त विकल्प अपनाने की इस प्रणाली के अलावा जल प्रयोग दक्षता के उच्चतर स्तर के लिए विकसित कुछ नयी प्रणालियां हैं, जो इस प्रकार हैं –

14.4.1 जल का संयुक्त बहुविध प्रयोग

जल का संयुक्त प्रयोग एवं सिंचाई प्रबंधन ऐसी तकनीक है जो सिंचित कृषि की उत्पादकता और लाभकारिता बढ़ाने में सहायक होती है। इसमें बहुस्रोतों, जैसे नदियों, नहरों और भौमजल से कुल जल का समन्वित प्रयोग अंतर्निहित है। भिन्न-भिन्न का इष्टतम उपयोग फसल उत्पादन वर्ष की संपूर्ण अवधि के लिए जल की उपलब्धता सुनिश्चित करता है। जल का संयुक्त प्रयोग के लाभ निम्नलिखित के लिए है : (i) नहर या भौमजल की कमी घटाना; (ii) विद्यमान जल आपूर्तियों की विश्वसनीयता बढ़ाना; (iii) नहर सिंचाई के कारण उच्च भौमजल स्तर और लवणता की समस्या समाप्त करना; और (iv) अवमिश्रण द्वारा नमकीन भौमजल का प्रयोग सुकर बनाना।

जल का कई प्रकार उपयोग किया जा सकता है जो उसके अभिप्रेत प्रयोग से स्वतंत्र हो सकता है। उदाहरण के लिए, सामुदायिक या व्यक्तिगत किसान का तालाब जो पानी को सिंचाई कार्यों के लिए इकट्ठा करता है, मत्स्य प्रजनन के लिए भी प्रयोग किया जा सकता है जो उच्च मूल्य की पण्यवस्तु है। इससे जल की आर्थिक उत्पादकता में सुधार हो सकता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

14.4.2 वैकल्पिक सिंचाई विधियाँ

सिंचाई की तीन मुख्य विधियाँ हैं। ये हैं : (i) पृष्ठीय (या मुख्य) सिंचाई, (ii) छिड़काव सिंचाई, और (iii) टपकन (ड्रिप) सिंचाई।

पृष्ठीय सिंचाई : फसलों की सिंचाई करने की परंपरागत विधि है जिसे अभी भी व्यापक रूप में प्रयुक्त किया जाता है। इसमें मृदा पृष्ठ पर अधिकांशतः गुरुत्व प्रवाह द्वारा पानी को बहाकर फसलों में प्रयुक्त किया जाता है। परंतु यह सिंचाई का अक्षम तरीका है जहाँ पानी की बहुत बर्बादी होती है, जल प्लावन और लवणीकरण की समस्या के कारण आमतौर पर समग्र दक्षता कम रह जाती है। जब पूरा खेत पानी से लबालब हो जाता है तो यह बेसिन सिंचाई कहलाती है। इस विधि से जल की काफी क्षति के कारण संशोधित पृष्ठीय सिंचाई विधियों का विकास हुआ, जैसे (i) खूड सिंचाई विधि, और (ii) रोक बेसिन विधि। खूड सिंचाई विधि में भूमि के अनुद्धैर्य ढलान के साथ-साथ खूड तैयार किए जाते हैं और पानी छोटी नालियों या पट्टियों में छोड़ा जाता है। इन खूडों से होकर अनुदैर्ध्य ढलान और पार्श्व दोनों के साथ पानी का संचलन जल प्रयोग दक्षता बढ़ाता है। सिंचाई की रोक बेसिन विधि समतल भूखंडों के लिए उपयुक्त है। इसमें पानी छोटी मेड़ों से घिरे हुए भूखंड में भरा जाता है। भूखंडों की सिंचाई मुख्य और पार्श्व नलियों द्वारा की जाती है। मुख्य नाली खेत के ऊपरी सिरे की सीध में बनाई जाती है और पार्श्व नालियां किसी भी ओर बनाई जा सकती हैं। ये दोनों विधियां जल प्रवाह की गति पर नियंत्रण द्वारा सिंचाई की उच्चतर दक्षता प्राप्त करने के लिए हैं और इनसे जल क्षति कम से कम करने का प्रयास किया जा सकता है।

छिड़काव सिंचाई प्रणाली प्राकृतिक वर्षा के सदृश्य होती है। इसमें पानी पाइपों से पम्प द्वारा किया जाता है और तब स्प्रिंक्लेर के शीर्षों के घूर्णन द्वारा फसल पर छिड़काव किया जाता है। ये प्रणालियाँ पृष्ठीय सिंचाई की अपेक्षा अधिक दक्ष हैं, क्योंकि पानी समान रूप से मुहैया करते हैं, अपवाह रोकते हैं और बाहरी रिसाव क्षति न्यूनतम करते हैं। परंतु जल आपूर्ति दावानुकूलित करने के अलावा उन्हें स्थापित करना और प्रचालन करना महंगा होता है। परंपरागत छिड़काव प्रणालियों में पानी का छिड़काव हवा में वाष्पीकरण द्वारा पानी की बहुत अधिक मात्रा नष्ट करता है। निम्न ऊर्जा अशांकन अनुप्रयोग (LEPA) अधिक दक्ष विकल्प देता है। इस प्रणाली में पानी ड्राप ट्यूबों से फसल में वितरित किया जाता है जो स्प्रिंक्लेर की भुजा तक फैलता है जब अन्य उपयुक्त जल बचत कृषि तकनीक के साथ प्रयुक्त किया जाता है LEPA काफी अधिक (95 प्रतिशत तक) दक्षताएँ प्राप्त कर सकता है। इसके अलावा, चूंकि यह विधि निम्न दबाव पर कार्य करती है इसलिए यह ऊर्जा लागत में परंपरागत प्रणालियों की तुलना में 20 से 50 प्रतिशत बचत भी करता है।

ड्रिप सिंचाई विधि सबसे अधिक दक्ष सिंचाई विधि है। यह निम्न प्रवाह प्रौद्योगिकी प्रयोग करता है और पादपों की जड़ों में उचित दर पर ठीक-ठीक और सीधे पानी देता है। पानी रिसाव और अपवाह रोकता है। फसल को पानी धीरे-धीरे लगातार या बूंद-बूंद टपका कर दिया जाता है। टपकाने का खर्चा बहुत अधिक परंतु जल बचत के लाभ पादप वृद्धि और उपज बढ़ाते हैं, और श्रम और ऊर्जा की बचत उच्च संस्थापन लागत की प्रति पूर्ति करता है। यह प्रणाली उर्वरक अनुप्रयोग की दक्षता भी सुधारता है और मृदा अपरदन नहीं करती, (जैसा कि अन्य विधियों जैसे पृष्ठीय छिड़काव सिंचाई में होता है)। अनुसंधान से ज्ञात हुआ है कि गन्ना की फसल में ड्रिप सिंचाई से उपज में 35 प्रतिशत वृद्धि हुई है, पानी बचत में 50 प्रतिशत बचत और श्रम लागत में 35 प्रतिशत बचत हुई है। उपज में वृद्धि और जल तथा श्रम में इसी प्रकार की बचत ड्रिप सिंचाई से अन्य फसलों जैसे केला और नींबू में बताई गई है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

14.5 संरक्षण कृषि कार्यप्रणालियाँ

संरक्षण कृषि इस दृष्टि से परंपरागत कृषि से भिन्न है कि यह मृदा और कृषि पारितंत्र संसाधनों के दोहन से अधिकतम उपज पाने का लक्ष्य नहीं रखता है, बल्कि, यह कृषि आर्थिक और पर्यावरण का संतुलन प्राप्त कर उपज (और लाभ) इष्टतम करने का प्रयास करता है। संरक्षण कृषि धारणीय कृषि और ग्राम विकास में अपने योगदान के अलावा भावी खाद्य मांग पूरा करने के लिए सशक्त विकल्प भी प्रस्तुत करती है। यह निम्नलिखित में उपयोग की प्रणालियाँ अपनाकर प्राप्त की जाती है : (i) आदानों की दक्षता बढ़ाना, (ii) फार्म आय बढ़ाना; (iii) फसल उपज और प्राकृतिक संसाधन आधार की रक्षा करना तथा उसे सजीव रखना। इसलिए संरक्षण कृषि फसल उत्पादन, प्राकृतिक संसाधन आधार, जैव विविधता, जीविका आवश्यकताएँ आदि की समस्याओं का समाधान करती है। अपनाई गई कार्यप्रणालियां संरक्षण कृषि के तीन अंतर्बद्ध सिद्धांतों अर्थात् न्यूनतम मृदा बाधा, मृदा आवरण का परिरक्षण और फसल क्रम की विविधता से संबंधित है।

न्यूनीकृत जुताई या संरक्षण जुताई उस प्रणाली से संबद्ध है जिसमें फसल के अवशिष्टों (या ढूंठों) को भूमि पर रहने देकर मृदाबाधा कम से कम की जाती है ताकि ये ढूंठ मृदा में समाविष्ट हो सकें। ऐसी जुताई प्रणालियां जुताई की संख्या कम करते

हुए जुताई पूरी तरह से बंद करने तक जा सकती है। यह प्रणाली शून्य जुताई कहलाती है। न्यूनीकृत या शून्य जुताई के लाभ वायु और जल मृदा अपरदन की रोकथाम और उपजाऊ शीर्ष मृदा की रक्षा है। इससे केंचुओं की संख्या में वृद्धि भी होती है जो मृदा उर्वरता सुधारने में उपयोगी है।

पलवारना (मल्च बनाना) यह एक अन्य सस्यीय क्रिया है। यह वाष्पीकरण कम करके मृदा आर्द्रता धारण (मृदा में जल का अंतःस्यदन) सुकर बनाती है और मृदा संरचना सुधारने और मृदा अपरदन रोकने में उपयोगी है। इसमें पादपों के चारों ओर की भूमि को भूसा, घास, फसल अवशिष्टों के कंपोस्ट, प्लास्टिक शीटों से ढकना अंतर्निहित है ताकि वाष्पीकरण सीमित हो और जैव पदार्थ जुड़ सकें। किसानों द्वारा सजीव पलवारना भी अपनाई जाती है, जिसमें हितलाभों फसल जैसे मकई से पहले या साथ-साथ तेज़ी से उगने वाली फलियाँ स्थापित की जाती हैं और उपयुक्त समय पर मृदा में समाविष्ट की जाती हैं। गेहूँ और मकई में प्रति हेक्टेयर भिन्न-भिन्न मात्राओं में प्रयुक्त घास पलवार को नियंत्रित खेती में 8 से 58 प्रतिशत उपज बढ़ाने वाला पाया गया है।

समोच्च खेती पर्वतीय क्षेत्रों में अपनाई जाने वाली एक अन्य सस्यीय प्रणाली है जिसमें खेती पहाड़ियों के ऊपर और नीचे के बदले समोच्च रेखाओं के साथ-साथ की जाती है। इसमें हल जुताई, बीज बुआई, रोपाई और एकधा सस्यन कार्य समोच्च रेखाओं के साथ-साथ किए जाते हैं, परिणामतः मेढ़ और खूडों का निर्माण स्वतः हो जाता है। यह लघु रोधकों और वर्षा जल रोक कर ''जलाशय'' के रूप में भी कार्य करते हैं तथा जल का अपवाह, पोषक तत्वों की क्षति और मृदा अपरदन में कमी करते हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

मृदा में जैव पदार्थों का समावेश और सस्यावर्तन का प्रयोग संरक्षण कृषि के अनिवार्य घटक हैं। वे फसलों का उत्पादन बढ़ाने के लिए मृदा की क्षमता सुधारते हैं और वायु एवं जल द्वारा उपरदन रोकते है। परंतु मृदा अपरदन और भूमि निम्नीकरण रोकना मात्र ही संरक्षण प्रणालियों का उद्देश्य नहीं है। उनके उद्देश्यों में शामिल हैं : (i) कृषि कार्यप्रणालियों में फसल पशुधन का समाकलन; (ii) मृदा प्रणालियों के लिए जैव संहति बढ़ाना; (iii) जैव और अजैव पोषक पदार्थों का प्रयोग इष्टतम करना; (iv) खरपतवार, कीटों और रोगों को नियंत्रित करने के लिए पारितंत्र आधारित और समाकलित प्रबंधन विधियों का प्रयोग करना।

समाकलित कीट प्रबंधन (IPM) प्रणालियां इस समय किसानों द्वारा निम्नलिखित को लक्ष्य रखकर प्रयोग की जाती है : (i) कीटों की आबादी (उनके पूर्ण विनाश के बदले) को हानिकारक (आर्थिक प्रभाव सीमा) स्तर से नीचे रखना; (ii) जैवविविधता सहित पर्यावरण का परिरक्षण और संरक्षण; और (iii) वनस्पति संरक्षण को यहाँ तक कि छोटे किसानों के लिए भी व्यावहारिक सुरक्षित और लाभकारी बनाना। IPM का मुख्य घटक जैविक अभिकर्त्ताओं का प्रयोग है जो कीटों के स्वाभाविक शत्रु हैं और इसलिए खेत में अपनी आबादी सीमित रखते हैं।

14.6 वितरणात्मक प्रणालियाँ

वितरणात्मक प्रणालियाँ कटाई के बाद की प्रणालियां हैं। कृषि वस्तुएँ बाजार के लिए पैदा की जाती हैं जहाँ अन्य प्रयोक्ताओं द्वारा या संसाधनकर्त्ताओं द्वारा उन्हें खरीदा जाता है जो उन्हें संसाधित उत्पादों के रूप में बदल कर उनके मूल्य बढ़ाते हैं। कटाई

के बाद की प्रणालियां और कार्य रूप, समय, स्थान और स्वामित्व उपयोगिताएँ उत्पन्न करती हैं। इसका अभिप्राय उपभोक्ता को उत्पाद उस रूप में उपलब्ध करना है जिसमें वह उसे चाहता है, वह भी तब जबकि उसे इसकी आवश्यकता होती है और उस स्थान पर जहां वह उसे खरीद सकता है। इस विचार से उत्पाद, कटाई के बाद की प्रणालियां साधारण प्रणालियों, जैसे सफाई और श्रेणीकरण से अधिक जटिल प्रणालियों, जैसे पिराई, प्रोसेसिंग और डिब्बाबंदी तक उत्पाद पर निर्भर करती हैं। ये सभी पण्यवस्तुओं की भंडारण अवधि बढ़ाने के लिए योगदान कर सकते हैं। इस भाग में हम फार्म स्तर पर अपनाई गई कुछ सामान्य प्रणालियां बताएंगे जो उपभोक्ताओं के लिए गुणवत्ता की वांछित अवस्था में पण्यवस्तुओं का वितरण सुकर बनाती हैं।

सफाई, मानकीकरण और श्रेणीकरण : सफाई वह प्रक्रिया है जिससे भूसा, भूसी, मिट्टी, पत्थर आदि के रूप में अशुद्धताएँ हितलाभों से अलग की जाती हैं। फार्म स्तर पर यह हाथ से किया जाता है और इसमें हितलाभों को छानना, धोना और सुखाना शामिल है। सब्जियों के मामले में धुलाई आम बात है और फलों के मामले में थोड़ा कम होता है, इस प्रयोजन में कीचड़ और मिट्टी हटाना होता है। **मानकीकरण** इन विशेषताओं के आधार पर उत्पाद की गुणवत्ता का मानक निर्धारित करने की प्रक्रिया हैः वजन, आकार, रंग, आकृति, बनावट, नमी, रेशा आकार, बाह्य पदार्थ अंश, रासायनिक अंश, परिपक्वता, मिठास, स्वाद आदि। यह उपभोक्ता के लिए उत्पाद की गुणवत्ता एकसमान और विपणन की प्रक्रिया अधिक आसान बनाता है।

श्रेणीकरण (ग्रेडिंग) उत्पाद के गुणवत्ता मानकों के अनुसार उत्पाद को भिन्न-भिन्न ढेरों में छाँटना है। सफाई और श्रेणीकरण प्रणालियां उत्पादक के (फार्म) स्तर पर या विपणन श्रृंखला की अनुवर्ती अवस्थाओं में आरंभ हो सकती है। भारत में कई उत्पादों के लिए सरकार द्वारा निर्धारित मानकों के अनुसार श्रेणीकरण अनिवार्य है। कृषि उत्पादों के श्रेणीकरण की प्रणाली को केन्द्रीकृत श्रेणीकरण प्रणाली कहा जाता है। कहा जाता है कि इसमें विपणन और निरीक्षण निदेशालय की निर्दिष्ट प्रयोगशालाओं में गहन जाँच द्वारा शुद्धता और गुणवत्ता मानक लागू करना अंतर्निहित है जो कृषि उत्पादक शुद्धता और गुणवत्ता मानक पूरा करते हैं, उन्हें एगमार्क लेबल प्रदान किए जाते हैं। फल, सब्जी, धान्य (सीरियल), दलहन और अण्डे जैसी पण्यवस्तुओं के मामले में विकेन्द्रीकृत श्रेणीकरण प्रणाली अपनाई जाती है जिसके लिए विस्तृत परीक्षण व्यवस्था की आवश्यकता नहीं होती है और भौतिक दिखावट के आधार पर श्रेणीकरण हो सकता है। श्रेणीकरण का प्रयोजन पण्यवस्तुओं की भौतिक और शुद्धता विशेषताओं में अंतर के आधार पर कीमत विभेदन का लाभ लेना है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

भंडारण : कृषि पण्यवस्तुओं की आपूर्ति ऋतु के अनुसार अलग-अलग होती है परंतु उनकी मांग पूरे वर्षभर रहती है। इसलिए भंडारण एक ऐसा आवश्यक कार्य है जो उत्पाद की गुणवत्ता और मात्रा का अनुरक्षण सुनिश्चित करता है। भंडारण उत्पादकों द्वारा पण्यवस्तु का तब तक रखना भी आसान बनाता है जबतक बाजार में सही कीमत प्राप्त नहीं हो सकती है। परंपरागत संरचनाएं और भंडारण पात्र जिनमें ग्रामीण क्षेत्रों में अनाज स्टोर किया जाता है, स्थानीय रूप से उपलब्ध सामग्री से बनाए जाते हैं, वे आकार, साइज़ और क्षमता में भिन्न-भिन्न होते हैं। सामान्य बनावटों और इन पात्रों में शामिल है जूट से बनी हुई बोरियाँ, जली हुई क्ले से बनाए हुए मिट्टी के पात्र आदि होते हैं। ये आधे से तीन क्विंटल तक क्षमता के होते हैं, बांस का ढांचा, भूसे का ढांचा (जो धान की पुआल से बनाए गए वृत्ताकर ढाँचे होते हैं) और ईंट या पत्थर

से निर्मित ढाँचों/परंपरागत फार्म और परिवार स्तर की भंडारण प्रणालियों में नमक, राख, कपूर, चूना और पोंगामिया की पत्तियाँ होती हैं। इन्हें पण्यवस्तु से मिलाया जाता है और कीट संक्रमण रोकने के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार की संरचनाओं में रखा जाता है। भूमिगत और पृष्ठीय दोनों भंडारण प्रणालियां अभी भी बहुत स्थानों में प्रयोग में हैं, आजकल विनाशशील उत्पादों, जैसे फलों, सब्जियों, दूध, डेयरी और गोश्त उत्पादों के लिए प्रयुक्त शीत भंडारगृह रेफ्रिजरेटर जैसी संरचनाएँ हैं। शीतलन गुणवत्ता में खराबी रोकता है। शीत भंडारगृह उत्पादों को सही तापमान में स्टोर करने का विकल्प देता है।

पैकेजिंग : उत्पादों को ले जाने और बेचने से पहले उनकी पैकेजिंग, लपेटने और टोकरियों रखना महत्त्वपूर्ण कार्य है। वे उत्पाद को सुरक्षित करते हैं, ढेर का आकार कम करता है, संचालन और परिवहन करना आसान होता है, उत्पाद की स्वच्छता और सुनिश्चित करता है और मिलावट रोकता है। यह सब मिलकर उत्पाद के भंडारण अवधि बढ़ाते हैं। भिन्न-भिन्न प्रकार के उत्पादकों के लिए विपणन और वितरण की अलग-अलग स्तरों पर अलग-अलग किस्म की पैकेजिंग सामग्री प्रयुक्त की जाती है। इनमें शामिल हैं : टाट और कपड़े के थैले, लकड़ी के क्रेट, पुआल की टोकरियाँ, PVC और प्लास्टिक ट्रे, चालीदार फाइबर बोर्ड, टिन, ग्लास, अल्यूमिनियम फॉइल और कार्डबोर्ड के डिब्बे। पैकेजिंग सामग्री और कंटेनर का विकल्प उत्पाद के स्वरूप और विपणन स्तर पर निर्भर करता है। रक्षात्मक शक्ति के वांछित स्तर– आकर्षण, उपभोक्ता सुविधा, किफायत और खाद्य उत्पाद से रासायनिक प्रतिक्रिया का उन्मूलन आदि कारक पैकेजिंग की सामग्री के चुनाव में महत्त्वपूर्ण पहलू हैं। संसाधित उत्पादों के मामले में पैकिंग के बारे में उत्पाद के लेबल पर विनिर्माण और उत्पादिता समाप्ति की तारीख, मूल्य, निर्माण स्थान आदि के बारे में आवश्यक जानकारी देना अनिवार्य आवश्यकता है। इस प्रकार पैकेजिंग ऐसी होनी चाहिए कि वह लेबलिंग/अपेक्षिताएँ पूरी कर सके।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 2

नीचे दिए गए स्थान में अपने उत्तर लगभग 50 शब्दों में दीजिए।

1) वे चार घटक बताइए जिन पर धारणीय कृषि की प्रणालियाँ आधारित हैं?

....

....

....

....

2) ''पोषक तत्वों का समाकलित प्रयोग'' की प्रणाली में क्या अंतर्निहित है? यह किस तरीके से उपयोगी है?

....

....

....

....

3) ''सिंचाई समय सारणी'' क्या है, किस प्रकार यह फसल उत्पादन प्रणाली के रूप में उपयोगी है?

....

....

....

4) ''जल के संयोजी प्रयोग'' के चार लाभ बताइए।

....

....

....

5) भिन्न-भिन्न वैकल्पिक सिंचाई विधियों में ''जल प्रयोग दक्षता'' की दृष्टि से कौन सबसे अधिक उपयोगी है?

....

....

....

6) किस प्रकार के क्षेत्र/प्रदेश में ''समोच्च कृषि'' की जाती है? किस प्रकार यह विधि उत्पादन/पर्यावरण क्षतियाँ न्यूनीकरण में सहायक है?

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

....

14.7 नई प्रचलित कृषि कार्यप्रणालियाँ

नई कृषि प्रणालियों का प्रचार करने के लिए कई कार्यक्रम चलाए गए हैं। ये सरकार प्रायोजित प्रोत्साहनों और कृषक समुदाय द्वारा स्वैच्छिक पहलों और साथ ही निगम व्यापारिक हितों द्वारा प्रायोजित संवर्धनात्मक कार्यक्रमों के आधार पर महत्त्व धारण कर रहे हैं। इनमें से कुछ पहल कार्य की (जिनमें उपर्युक्त चर्चित चार प्रणालियों का परस्पर व्यापन अंतर्निहित है) संक्षिप्त रूपरेखा इस इकाई में प्रस्तुत की गई है।

14.7.1 कीटनाशक रहित प्रबंधन

कीटनाशकों के अत्यधिक प्रयोग के बारे में जागरूकता बढ़ रही है, जो खेती की लागत बढ़ाते हैं और पर्यावरण को तथा प्रयोग करने वाले किसानों के स्वास्थ्य को भी उतनी ही अधिक गंभीर क्षति करते हैं। आंध्र प्रदेश सरकार ने समुदाय नियंत्रित धारणीय कृषि (CMSA) नाम की योजना के भाग के रूप में कीटनाशक रोधी कार्यक्रम (NPM) आरंभ किया है। किसानों के 'खेत स्कूल' के अंग के रूप में 2004 में प्रारंभ किये गये CMSA के अधीन किसानों ने कीटो, कीटनाशकों/परभक्षियों की पहचान करना,

और उनका जीवन चक्र, संख्या तथा कीट कलैण्डर तैयार करना सीखा है। उन्होंने फसल प्रबंधन में प्राकृतिक संसाधनों और स्थानीय रूप से उपलब्ध सामग्री का सर्वोत्तम प्रयोग करना भी सीखा है। निम्नलिखित कुछ ऐसी प्रणालियाँ है जिन्हें किसानों ने इसके अधीन अपनाया :

- लार्वा/अंडों की अवस्था में मृदा में विद्यमान हानिकारक कीटों को नष्ट करने के लिए जल्दी जुताई;
- कीटनाशकों के न्यूनीकरण और बेहतर अंकुरण के लिए राख, गोमूत्र आदि से बीजों का उपचार।
- कीटों को कम करने के लिए सही मौसम और सही स्थानों पर फेरामोन ट्रेप, चिपचिपे प्लेट और अलाव;
- ग्रीन स्प्रे (हरा छिड़काव)।

स्वास्थ्य और पर्यावरण लाभों के अलावा CMSA के अधीन NPM का मुख्य आग्रह किसानों की लागत (उनकी उपज घटाए बिना) कम करना था। आंध्र प्रदेश में चार वर्षों (2004-2008) के अल्प समय में NPM 10 जिलों में 25,000 एकड़ से बढ़कर 18 जिलों में 6.75 लाख एकड़ में फैला है।

14.7.2 चावल सघनता कृषि प्रणाली (SRI)

SRI के नाम से ज्ञात, चावल सघनता प्रणाली भूमि और जल की तथा अन्य संसाधनों की भी वृद्धि उत्पादिता के लिए विकसित कृषि कार्यप्रणालियों का समूह है। SRI स्वस्थ, विशाल और गहरी जड़वाली प्रणालियां विकसित करने के सिद्धांत पर आधारित है जो सूखा, जलक्रांति और वायु क्षति का बेहतर प्रतिरोध कर सके। इसमें आदानों का बेहतर प्रबंधन, पौदों में परिवहन के नए तरीके उपयोग करने और जल तथा उर्वरक अनुप्रयोग प्रबंधन के तत्व शामिल हैं। SRI अधिकतर किसानों के अनुभव तथा स्थानीय संस्थागत नव प्रवर्तनों से विकसित किया गया है। SRI के कई स्पष्ट लाभ हैं : जैसे धान की उपज में वृद्धि, चावल की अधिक अच्छी गुणवत्ता, सिंचाई जल प्रयोग में कमी, और उत्पादन लागत में कमी। जलवायु परिवर्तन से वर्षा की बढ़ती हुई परिवर्तनशीलता और जल तथा भूमि के लिए बढ़ती हुई प्रतिस्पर्धा से SRI जल की प्रति बूंद उत्पादन बढ़ाने के लिए और कृषि जल मांग कम करने के लिए नए अवसर प्रदान करता है। इसके अलावा SRI में प्रयुक्त जैव आदान उत्पादन या परिवहन व्यय के बिना स्थानीय रूप से प्राप्त हो जाते हैं। वे आगे चलकर मृदा की उत्पादकता क्षमता सुधारते हैं। इन प्रणालियों के फलस्वरूप प्रचुर ऊर्जा बचत और ग्रीन हाउस गैसों की कमी होती है। SRI का एक अन्य प्रमुखता यह भी है कि ऐसी ही विधियां और प्रणालियों का विस्तार अन्य फसलों, जैसे मकई, दलहन और गेहूँ के लिए भी किया गया है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

14.7.3 जैव खेती

रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के संकट पर बढ़ती हुई चिंता न केवल मृदा स्वास्थ्य बल्कि मानव स्वास्थ्य से भी संबद्ध है। अतः ऐसे खाद्य और रेशों के लिए मांग बढ़ रही है जो उर्वरक या कीटनाशकों के रूप में रासायनिक पदार्थों के प्रयोग के बिना उगाए गए हों। इसका परिणाम यह हुआ कि ''जैव खेती'' के लिए कृषि में आंदोलन शुरू हुआ है और यह अब विश्वव्यापी परिदृश्य हो गया है। भारत में इसकी सफलता सरकार की पूर्वसक्रियता पर निर्भर करती है जिसे छोटे सीमांत किसानों

को न्यूनतम बाधा के साथ प्रमाणन के लिए संस्थागत क्रियाविधि विकसित करनी चाहिए। ऐसे प्रयास अभी कहीं नहीं दिखाई देते हैं। संपूर्ण प्रमाणन प्रक्रिया अंतर्राष्ट्रीय वाणिज्यिक समूहों के नियंत्रण में है जिसका अभिप्राय भारत जैसे देशों में किसानों के लिए अवहनीय लागत है।

14.7.4 संरक्षणात्मक कृषि कार्यप्रणालियों का अंगीकरण

जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, संरक्षण कृषि का उद्देश्य धारणीय और लाभकारी कृषि प्राप्त करना है। परिणामस्वरूप इसका उद्देश्य तीन सिद्धांतों, न्यूनतम मृदाबाधा, स्थायी मृदा आवरण और फसल आवर्तन के प्रवर्तन द्वारा किसानों की आजीविका सुधारना भी है। सभी साइज़ के फार्मों और कृषि पारिस्थितिक प्रणालियों के लिए CA से प्रचुर संभावनाएँ हैं परंतु छोटी जोत के किसानों, विशेषकर, जो गंभीर श्रमिक और जल की कमी का सामना कर रहे हैं, उन्हें सबसे अधिक तुरंत आवश्यकता है। यह पर्यावरण समस्याओं और धारणीयता से लाभकारी कृषि उत्पादन का मिलाने का तरीका है। विशेषज्ञों द्वारा इसे धारणीय भूमि प्रबंधन (SLM) के लिए महत्त्वपूर्ण साधन के रूप में जाना गया है।

यह इस वचन के कारण है विशेषकर विकासशील और आविर्भावी अर्थव्यवस्था में CA के संवर्धन में खाद्य एवं कृषि संगठन (FAO) सक्रिय रूप से सम्मिलित है। CA केवल उसी समय इष्टतम रूप से कार्य कर सकता है, जब विभिन्न तकनीकी क्षेत्रों पर समाकलित तरीके एकसाथ विचार किया जाता है। FAO की उपलब्ध विशेषज्ञता के समृद्ध मिश्रण की CA के बहुविज्ञानी स्वरूप को सदा आवश्यकता होगी क्योंकि यह विश्वभर में CA अवधारणा के प्रोत्साहन के लिए कार्य करता है। तालिका 14.1 विभिन्न महाद्वीपों मे CA प्रणालियों के अनुप्रयोग की प्रसार दर्शाता है। स्पष्टतः एशिया CA प्रणालियां ग्रहण करने में सबसे नीचे है जबकि दक्षिण अमेरिका और उत्तरी अमरीका इस रिपोर्ट में अग्रणी हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

तालिका 14.1 : संरक्षण कृषि का विश्वव्यापी अंगीकरण

महाद्वीप	क्षेत्रफल (000 हे.)	भूमंडलीय योग का प्रतिशत	कृषि योग्य फसली भूमि का प्रतिशत
दक्षिण अमरीका	55630	47.6	57.5
उत्तरी अमरीका	39981	34.1	15.5
आस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलैंड	17162	14.7	69
एशिया	2630	2.2	0.5
यूरोप	1150	1.0	0.4
अफ्रीका	368	0.3	6.1
भूमंडलीय योग	**116921**	**10.0**	**8.5**

स्रोत : रिज़नल डायलॉग... 2011 (ब्यौरों के लिए संदर्भ देखें।)

14.8 सारांश

हमारी विशाल जनसंख्या की बढ़ती हुई मांग को पूरा करने की आवश्यकता ने हरित क्रांति विधियों/प्रणालियों के अधीन अंगीकृत दृष्टिकोण अनिवार्य बना दिया। इसने खाद्य पर्याप्तता तथा निर्यात के लिए अधिशेष प्राप्त करने में देश की सहायता की। इस

उपलब्धि के साथ-साथ उत्पादकता और धारणीयता की समस्याओं के क्षेत्र में अनुभूत महत्त्वपूर्ण आवश्यकताओं के कारण उत्पादन प्रणालियों में सुधार और अपनाई गई विधियों को कृषि विकास की नीति में प्रमुख स्थान मिला। कालान्तर में भारतीय कृषि प्रणाली ने बहुत से स्वयं-सीखी और वैज्ञानिक रूप से अनुसंधान की गई प्रणालियाँ अपनाई। इन्होंने उत्पाद प्रणालियों के पर्यावरण मैत्रीपूर्ण विधियां प्राप्त करने में सहायता की। अन्य प्रयोजनों के साथ-साथ कि इन प्रणालियों ने निम्नलिखित प्राप्त करने में सहायता की है : वर्धित उत्पादन, उच्चतम आय, मृदा और जल संसाधन दक्षता, कटाई के बाद की क्षतियों में कमी आदि। इकाई में भारत में पिछले पांच दशाब्दियों की अवधि में विकसित और क्रियान्वित विभिन्न विधियाँ और प्रणालियाँ प्रस्तुत की गई हैं।

14.9 शब्दावली

जैव पदार्थ : पशु खाद, हरी खाद, फसल अवशिष्ट, घरेलू अवशिष्ट और कंपोस्ट सहित पादप या पशु प्रदत्त का प्राकृतिक सामग्री, जैव उर्वरक है। ऐसी सामग्री उर्वरक के रूप में या तो सीधे या पशु या मानव खाद्य के रूप में चक्रित होने के बाद प्रयुक्त की जाती है।

जैव उर्वरक : कुछ जीवों का कृत्रिम रूप से बहुसंवर्धन जो मृदा उर्वरता और फसल उत्पादकता सुधार सकते हैं। वे ऐसे उपक्रम है जिनमें सक्रिय घटकों के रूप में सूक्ष्म जीवों की दक्ष नस्लों की सजीव कोशिकाएँ होती हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

अनुक्रमिक बहु सस्यन : इसका संबंध सघन आदान प्रबंधन से अल्पकालिक फसल की किस्मों की खेती की प्रणाली से है।

पोषक तत्वों का समाकलित प्रयोग : यह ऐसी प्रणाली है जिसमें संतुलित तरीके में पादप/फसल द्वारा अपेक्षित सभी महत्त्वपूर्ण पोषक तत्वों की दक्षता और विवेकपूर्ण आपूर्ति/प्रयोग अंतर्निहित है। यह मृदा के रासायनिक और भौतिक गुणधर्मों को सुधारने और पुनः स्थापित करने में सहायता करता है।

सिंचाई समय सारणी : फसलों के लिए जल की कमी/अतिरिक्त मात्रा के कुप्रभावों को नियंत्रित करने के लिए प्रणाली के रूप में ''सिंचाई समय सारणी'' का अनुसरण किया जाता है। इसमें फसलों के लिए प्रयुक्त किए जाने वाली जल का समय और मात्रा का ठीक-ठीक तालमेल बिठाया जाता है। यह ऐसे कारकों पर आधारित है जैसे फल जड़ क्षेत्र में जल की मात्रा, पिछली सिंचाई के बाद और फसल वृद्धि अवस्था के दौरान फसल द्वारा ग्रहण जल की मात्रा आदि।

14.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Handbook of Agricultre (2011): Indian Council of Agricultural Research, New Delhi.

Ghosh, Nilabja (2004): Promoting Biofertilisers in Indian Agricultre, Economic and Political Weekly, December 25.

Regional Dialogue on Conservation Agricultre in South Asia : Proceedings and Recommendations, APAAR, CIMMYT and ICAR, New Delhi, 2011.

Sangwan, Satpal (2000): Level of Agricultural Technology in India (1757 – 1857), *Asian Agri-History,* 11(1) : 5-25.

V&A Programme (2009): The System of Rice Intensification: Vulnerability and Adaptation Experiences from Rajasthan and Andhra Pradash, SDCV&A Programme, India.

14.11 बोध प्रश्नों के उत्तर/संकेत

बोध प्रश्न 1

1) देखिए भाग 14.1 और उत्तर दीजिए।

2) देखिए उपभाग 14.2.2 और उत्तर दीजिए।

3) देखिए उपभाग 14.2.2 और उत्तर दीजिए।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

4) देखिए उपभाग 14.2.5 और उत्तर दीजिए।

बोध प्रश्न 2

1) देखिए भाग 14.3 और उत्तर दीजिए।

2) देखिए उपभाग 14.3.2 और उत्तर दीजिए।

3) देखिए उपभाग 14.3.3 और उत्तर दीजिए।

4) देखिए उपभाग 14.4.1 और उत्तर दीजिए।

5) देखिए उपभाग 14.4.2 और उत्तर दीजिए।

6) देखिए भाग 14.5 और उत्तर दीजिए।

इकाई 15 भारतीय कृषि में पूँजी निर्माण

संरचना

15.0 उद्देश्य

15.1 प्रस्तावना

15.2 संकल्पनात्मक रूपरेखा

15.2.1 पूँजी

15.2.2 पूँजी निर्माण

15.2.3 पूँजी और पूँजी निर्माण के प्रकार

15.2.4 पूँजी निर्माण के स्रोत

15.3 पूँजी निर्माण के लिए लेखाकरण की प्रणाली

15.3.1 कृषि में और कृषि के लिए पूँजी निर्माण

15.4 कृषि में पूँजी निर्माण की भूमिका

15.5 पूँजी निर्माण पर संस्थागत ऋण की सुलभता का प्रभाव

15.6 सकल पूँजी निर्माण में प्रवृत्तियाँ

15.6.1 सार्वजनिक क्षेत्र द्वारा पूँजी निर्माण में ह्रास के कारण

15.7 कृषि में निजी पूँजी निर्माण के निर्धारक तत्व

15.8 सारांश

15.9 शब्दावली

15.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

15.11 बोध प्रश्नों के उत्तर/संकेत

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

15.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप :

- पूँजी और पूँजी निर्माण की अवधारणाओं के बीच अंतर कर सकेंगे;
- पूँजी और पूँजी निर्माण के भिन्न-भिन्न प्रकारों की परिभाषा कर सकेंगे;
- कृषि में पूँजी निर्माण के स्रोत बता सकेंगे;
- कृषि में पूँजी निर्माण की भूमिका स्पष्ट कर सकेंगे;
- कृषि में निजी और सार्वजनिक पूँजी निर्माण में प्रवृत्तियों का विश्लेषण कर सकेंगे;
- कृषि में निजी और सार्वजनिक पूँजी निर्माण के बीच अनुपूरकता पर चर्चा कर सकेंगे;
- भारतीय कृषि में सार्वजनिक निवेश में ह्रास के कारणों की रूपरेखा प्रस्तुत कर सकेंगे; और
- कृषि में निजी पूँजी निर्माण के निर्धारकों का उल्लेख कर सकेंगे।

15.1 प्रस्तावना

किसी अर्थव्यवस्था या सेक्टर की संवृद्धि मुख्यतया तीन कारकों, अर्थात् जनांकिकीय संरचना में परिवर्तन (श्रम बल का विस्तार), पूँजी संचयन (भौतिक और मानवीय दोनों) और अभिनव प्रवर्तनों पर निर्भर करता है। इसलिए संवृद्धि/उत्पादन प्रक्रिया में पूँजी सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण कारकों में से एक है। वास्तविकता यह है कि हरित क्रांति के दौरान और हरित क्रांति के बाद की अवधि में कृषि में सार्वजनिक और निजी पूँजी निर्माण ने फार्म सेक्टर की प्रगति के लिए उल्लेखनीय योगदान किया। प्रारंभ में कृषि विकास मुख्यतः निम्न कार्यों में सार्वजनिक निवेश द्वारा संचलित होता था : (i) कृषि आधारभूत संरचना (जैसे विद्युत, सड़कें, सिंचाई और अनुसंधान तथा विकास (R&D); (ii) विस्तार सेवाएँ; और (iii) बाजार और भंडारण सुविधाएँ आदि का विकास। बाद में ऐसे निवेशों द्वारा आधारभूत संरचना में सुधारों के कारण भूमि विकास, भौमजल सिंचाई, फार्म मशीनीकरण, आदि में किसान स्वयं भी निजी निवेश करने के लिए प्रेरित हुए। अभी हाल ही में निजी कंपनियों ने भी कृषि R&D, विस्तार, विपणन, संविदा कृषि और कृषि संबंधी अन्य सेवाओं में प्रवेश किया है। इन निवेशों ने कृषि में सार्वजनिक निवेश को काफी अनुपूरित किया है।

उपर्युक्त रूपरेखा सुझाती है कि कृषि यद्यपि श्रम प्रधान कार्य है, परंतु इसे भी अपने विभिन्न कार्यों का दक्षतापूर्वक निष्पादन करने के लिए अचल पूँजी की और कार्यशील पूँजी की विशाल राशि की आवश्यकता होती है। विशेषकर, समय पर निवेश महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इसका ऋतुनिष्ट कारकों जैसे वर्षा और मौसम परिवर्तन से गहरा नाता है। चूंकि बड़े और धनी किसानों को सामान्यतया पूँजीगत निवेशों की बेहतर सुलभता होती है और वे पैमाने की मितव्ययताओं का लाभ प्राप्त कर सकते हैं परंतु ''छोटे और सीमांत'', विशेषकर अल्पविकसित कृषि प्रदेशों में रहने वाले गरीब किसान पूँजी की संकटपूर्ण दुलर्भता का सामना करते हैं। इसके अलावा, जैसा कि अधिकांश मामलों में उनमें अचल परिसंपत्तियों में निवेश करने का सामर्थ्य भी नहीं होता है। इसे ध्यान में रखते हुए उनके द्वारा किया गया कोई भी निवेश उनकी छोटी आकार के स्वकर्षित जोतों और अल्प निवेश क्षमता को देखते हुए आर्थिक दृष्टि से व्यावहारिक नहीं हो पाता। इस ज़मीनी वास्तविकता को देखते हुए लगभग 80 प्रतिशत छोटे किसानों के लिए पूँजी कैसे हो, यह एक ऐसा मुख्य मुद्दा है जिस पर नीतिगत ध्यान देना आवश्यक है। इस पृष्ठभूमि पर वर्तमान इकाई का उद्देश्य भारतीय कृषि में पूँजी निर्माण से संबंधित विभिन्न पहलुओं की चर्चा करना है। अवधारणाओं की रूपरेखा के अलावा, हम पूँजी निर्माण की भूमिका, निजी पूँजी निर्माण के निर्धारकों, पूँजी निर्माण में प्रवृत्तियों, कृषि के लिए संस्थागत ऋण के प्रभाव का अध्ययन करेंगे।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

15.2 संकल्पनात्मक रूपरेखा

शब्द ''पूँजी'' और ''पूँजी निर्माण'' के बीच अंतर है। साथ ही कुछ संबद्ध अवधारणाएँ भी हैं, जैसे अचल/कार्यशील पूँजी, सार्वजनिक/निजी पूँजी, निवेश, सकल/निवल पूँजी निर्माण, अचल पूँजी की खपत। पूँजी और पूँजी निर्माण पर आंकड़ों का निर्माण और उनके प्रयोग के लिए इन अवधारणाओं के बारे में स्पष्ट मत आवश्यक है।

15.2.1 पूँजी

शब्द पूँजी उन ''परिसंपत्तियों'' का संकेत देता है जो आगे माल और सेवा उत्पन्न करने के लिए उत्पादन प्रक्रिया में आदान के रूप में प्रयुक्त किए जाते हैं। इसलिए यह मुद्रा मात्र नहीं है बल्कि वह परिसंपत्ति है जिसके निर्माण के लिए मुद्रा और मानवीय प्रयास दोनों की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार पूँजी की दूसरी विशेषता यह है कि यह ''मानवीय प्रयासों'' द्वारा निर्मित की जाती है, प्राकृतिक रूप में नहीं होती। इसलिए भूमि यद्यपि कृषि में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण बुनियादी संसाधन है परंतु भूमि को पूँजी नहीं समझा जाता है। परंतु भूमि विकास पर किये गये किसी भी निवेश को पूँजी कहा जा सकता है क्योंकि यह ''मानव प्रयासों'' और कृषि उत्पादन प्रक्रिया में उपयोगी ''परिसंपत्ति'' के मानदंड पूरा करता है। इसके अतिरिक्त पूँजी गोचर या अगोचर हो सकती है। कृषि में गोचर पूँजी का संबंध उत्पादनकारी भौतिक परिसंपत्तियों, जैसे ट्रैक्टर सिंचाई पम्प सेटों, फार्म हाउस इमारतों, गोदामों, निवेश की वस्तु-तालिकाओं आदि से है। कृषि में अगोचर पूँजी का संबंध फार्म श्रमिकों के स्वास्थ्य, शिक्षा और प्रशिक्षण से है। वास्तव में, ऐसे पहलुओं पर व्यय से कृषि का ''मानव पूँजी'' का आधार बढ़ता है जो नई प्रौद्योगिकियाँ और फार्म प्रबंधन पद्धतियाँ अपनाकर उनकी उत्पादकता बढ़ाने में किसानों की सहायता करता है।

15.2.2 पूँजी निर्माण

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

दूसरी ओर, पूँजी निर्माण पूँजी के स्टॉक की निर्माण प्रक्रिया है। इसे अर्थव्यवस्था की चालू आय का कुछ भाग बचाकर और उसे मशीनों, औजारों, संयंत्रों और उपकरणों, परिवहन, भंडारण और संचार सुविधाओं आदि जैसे पूँजीगत माल बनाने में निवेश कर प्राप्त किया जाता है। पूँजी स्टॉक में वृद्धि किसी परिसंपत्ति विशेष में नई निवेश की गई राशि पर निर्भर करता है। यह नोट करना महत्त्वपूर्ण है कि उत्पादन में प्रयुक्त पूँजीगत परिसंपत्तियाँ समय के साथ उपभुक्त हो जाती हैं इससे उसके मूल्य में कमी आ जाती है। यह **''मूल्य ह्रास''** कहलाता है। इसलिए यदि पूँजी उपयुक्ति की दर (मूल्य ह्रास की दर) पूँजी में किए गए अतिरिक्त निवेश की दर की अपेक्षा कम है, तब उस पूँजी का स्टॉक समय के साथ बढ़ता रहेगा। इस प्रकार के निवेश पूँजीगत परिसंपत्तियों के अनुरक्षण के लिए (जो परिसंपत्तियों के कार्यक्षम जीवन और कार्य की गुणवत्ता बढ़ाता है) और/या नई परिसंपत्तियाँ खरीदने के लिए हो सकते हैं। इसलिए पूँजी निर्माण प्रत्यक्ष रूप से वित्त वर्ष के दौरान पूँजीगति परिसंपत्तियों में किये गये निवेश की राशि पर निर्भर करता है। इसलिए पूँजी और निवेश के बीच संकल्पनात्मक अंतर है। निवेश, समयावधि के दौरान (सामान्यतः वित्त वर्ष के दौरान) मापा गया प्रवाह है। दूसरी ओर, पूँजी का स्टॉक नियत समय में, सामान्यतया वित्त वर्ष के अंत में मापा गया स्टॉक है। ध्यान रहे कि पूँजी निर्माण निम्नलिखित द्वारा आर्थिक विकास की प्रक्रिया में सार्थक रूप से योगदान करता है : (i) भौतिक आधारभूत संरचना निर्माण में सहायता करना; (ii) आधुनिक उत्पादन तकनीकें और विधियाँ अपनाना सुकर बनाना; (iii) कामगारों की उत्पादक क्षमता में सुधार करना; (iv) प्राकृतिक संसाधनों का दक्ष प्रयोग करके क्षमता बढ़ाना; और (v) फार्म उत्पादन, उत्पादकता और आय को बढ़ाने वाले प्रौद्योगिकीय परिवर्तनों का अंगीकरण सुकर बनाना।

15.2.3 पूँजी और पूँजी निर्माण के प्रकार

कृषि में प्रयुक्त पूँजी को मोटे तौर पर दो श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है : (i) अचल पूँजी, और (ii) कार्यशील पूँजी। **अचल पूँजी** वह पूँजी है जो एक वर्ष से अधिक समय तक बनी रहती है। इसमें फार्म मशीनों में निवेश शामिल है, जैसे ट्रैक्टर, पम्पसेट, और परिसंपत्तियाँ, जैसे नलकूप, भूमि विकास, फार्म पर अन्य निर्माण आदि। **कार्यशील पूँजी** वह पूँजी है जो एक वर्ष से कम समय तक रहती है जैसे बीजों, उर्वरकों, कामगारों की मजदूरी आदि पर व्यय। इस प्रकार कृषि में पूँजी निर्माण का मान अचल में वृद्धि से विक्रय और भंडार में परिवर्तन का समंजन कर ज्ञात किया जाता है। भंडार में उत्पादन में मध्यवर्ती आदानों के लिए सामग्रियाँ और आपूर्तियाँ और बिक्री के लिए तैयार माल (जैसे पैकेजिंग) सम्मिलित होता है।

अचल पूँजी निर्माण चालू वर्ष में अचल संपत्तियों में अर्थात् कुल परिवर्तन में से मूल्य ह्रास घटाकर आकलित होता है। अनुरक्षित की जाने वाली पूँजी के स्टॉक के अनुरक्षण के लिए उपमुक्त पूँजी (अर्थात् मूल्य ह्रास) की राशि के बराबर अतिरिक्त निवेश उसी वर्ष में किया जाना चाहिए। अचल पूँजी निर्माण को आगे सकल अचल पूँजी निर्माण (GFCF) और निवल अचल पूँजी निर्माण (NFCF) में विभाजित किया जा सकता है। GFCF में चालू वर्ष अचल पूँजी के विद्यमान स्टॉक में सभी परिवर्धनों का जोड़ होता है, जबकि NFCF का संबंध चालू वर्ष के मूल्य ह्रास के निवल GFCF से है। मूल्य ह्रास (अर्थात् अचल पूँजी की खपत (CFC)) की गणना केवल सभी अचल परिसंपत्तियों (गोचर और अगोचर) के लिए की जाती है। हाँ, निम्नलिखित के लिए अचल पूँजी की खपत (CFC) की गणना नहीं की जाती : (i) बहुमूल्य वस्तुएं जो अर्जित की गई हैं (क्योंकि उनका मूल्य वास्तविक अर्थों में कालांतर में घटने की संभावना नहीं है); (ii) पशुधन; (iii) अनुत्पादित परिसंपत्तियाँ, जैसे भूमि, खनिज या अन्य निक्षेप; (iv) चालू निर्माण कार्य; और (v) युद्ध या अन्य बड़ी प्राकृतिक आपदाओं से नष्ट हुई अचल संपत्ति का मूल्य।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

स्वामित्व के आधार पर पूँजी को निजी और सार्वजनिक के रूप में वर्गीकृत किया जाता है। स्थानीय, राज्य और केंद्रीय सरकारों के स्वामित्व की पूँजी, जैसे नगरपालिका वाहित मल लाइनें, बांध, विद्युत परियोजनाएँ, सड़कें, नहरें, गोदाम, बाजार शेड आदि सार्वजनिक पूँजी हैं। व्यक्तियों/कंपनियों के स्वामित्व की कोई भी पूँजी, जैसे फार्म मशीनरी और उपकरण को निजी पूँजी कहा जाता है। कृषि सेक्टर के विकास के लिए सार्वजनिक और निजी दोनों प्रकार की पूँजी आवश्यक है।

15.2.4 पूँजी निर्माण के स्रोत

पूँजी निर्माण के दो स्रोत हैं : देशी और विदेशी। देशी स्रोतों में शामिल हैं (i) स्वैच्छिक और अस्वैच्छिक बचत, (ii) सार्वजनिक ऋण आदान, (iii) अप्रयुक्त संसाधनों को सक्रिय करना, और (iv) घाटे की वित्त व्यवस्था। ऐच्छिक बचत के दो मुख्य स्रोत हैं: घरेलू सेक्टर और कंपनी सेक्टर। दोनों मिलकर ''सार्वजनिक सेक्टर'' की तुलना में हमारी कुल बचत का लगभग 90 प्रतिशत योगदान करते हैं, सार्वजनिक सेक्टर का तीसरा स्थान है और यह कुल बचत का शेष 10

प्रतिशत का योगदान करता है। इन तीन संघटकों में से घरेलू सेक्टर की बचत का स्थान उच्चतम है (लगभग 60 प्रतिशत)। जैसाकि हम जानते हैं, देशी सेक्टर की बचत अर्थव्यवस्था में आय और संपत्ति के वितरण, प्रतिव्यक्ति आय, बचत करने की प्रवृत्ति, बैंकिंग आधारभूत संरचना की उपलब्धता, ब्याज की दर आदि पर निर्भर करती है। यह आर्थिकेत्तर कारकों, जैसे बच्चों की शिक्षा और शादी, स्वास्थ्य और वृद्धावस्था सुरक्षा आदि के लिए बचत पर भी निर्भर करता है। कंपनी सेक्टर का अभिप्राय गैर सरकारी निजी कंपनियाँ हैं। अनैच्छिक बचत सरकार द्वारा कराधान और अनिवार्य बचत (उदाहरणार्थ, भविष्य निधि) द्वारा जुटाई जाती है। सार्वजनिक या सरकारी ऋणों का संबंध बाँड (जैसे आधारभूत संरचना विकास बाँड) जारी कर बचत जुटाने से है। निष्क्रिय संसाधनों के सक्रियण का अभिप्राय अतिरिक्त कृषि श्रमिकों को उत्पादनकारी परिसंपत्ति निर्माण के कार्य (जैसे सड़कों, नलकूपों, नहरों, विद्यालय भवनों, आदि के निर्माण कार्य) में लगाना है। स्मरण करें कि लुईस का ''श्रम की असीमित आपूर्ति सिद्धांत'' इसी मत पर आधारित है। अंत में, सरकार घाटे की वित्त व्यवस्था से भी पूँजी बढ़ा सकती है (जिसे सार्वजनिक क्षेत्र में उत्पादनकारी परिसंपत्ति निर्माण के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है)।

पूँजी निर्माण के विदेशी स्रोत में शामिल हैं : (i) विदेशी प्रत्यक्ष निवेश (FDI); (ii) विदेशी सरकारों से ऋण (EGBs); (iii) विदेशी वाणिज्यिक ऋण (ECBs); और (iv) अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं, जैसे विश्व बैंक, आदि से विकास सहायता, NRI जमा राशि। FDI का आगमन विकासशील देशों में पूँजी निर्माण का एक महत्त्वपूर्ण स्रोत हो सकता है। यह अंतर्वाह न केवल पूँजी की दुर्लभता कम करने में सहायक होते हैं बल्कि प्रौद्योगिकी, प्रबंधन पद्धतियाँ और प्रशिक्षित मानव संसाधन भी लाते हैं। देशी कंपनियों के कार्य निष्पादन पर उनका सकारात्मक प्रभाव भी हो सकता है। यह विशेष रूप से सत्य है जहाँ देशी कंपनियाँ विदेशी कंपनियों से सहयोग करती हैं। EGB का संबंध आधारभूत संरचना विकास, जैसे जल तथा सफाई परियोजना सड़क, स्वास्थ्य और विद्युत परियोजनाओं आदि के लिए विदेशी संस्थाओं (जैसे विश्व बैंक) से केंद्रीय और राज्य सरकारों द्वारा वित्तीय संसाधन जुटाने से है। FCB विदेशों से निजी सेक्टर ऋणादान है जिसे निवेश प्रयोजनों के लिए प्रयुक्त किया जाता है। ये सभी अर्थव्यवस्था का पूँजी आकार बढ़ाने में सहायक होते हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 1

लगभग 50 शब्दों में उत्तर दीजिए।

1) पूँजी के गोचर और अगोचर रूपों की अवधारणा के बीच अंतर बताइए।

....

....

....

....

2) पूँजी और निवेश के बीच अंतर बताइए। किस तरीके में ''पूँजी निर्माण'' से निवेश संबद्ध किया जाता है?

....

....

....

....

3) पांच भिन्न-भिन्न तरीके बताइए जिसमें ''पूँजी निर्माण'' आर्थिक विकास में सहायता करते हैं।

....

....

....

....

4) अचल संपत्ति और कार्यशील पूँजी के बीच अंतर बताइए।

....

....

....

....

DIKSHANT IAS

5) ''मूल्य ह्रास'' केवल अचल परिसंपत्तियों पर क्यों परिकलित किया जाता है?

Call us @7428092240

....

....

....

....

6) कृषि में पूँजी निर्माण के दो मुख्य स्रोत क्या हैं? उनमें से कौन-सा एक देशी कंपनियों के कार्य-निष्पादन के सुधार में सहायक हो सकता है?

....

....

....

....

15.3 पूँजी निर्माण के लिए लेखाकरण की प्रणाली

भारत में केंद्रीय सांख्यिकीय संगठन (CSO) के वार्षिक प्रकाशन **राष्ट्रीय लेखा आँकड़े (NAS)** में कृषि सहित सभी औद्योगिक सेक्टरों के लिए भारतीय अर्थव्यवस्था में पूँजी निर्माण के आंकड़े प्रस्तुत किए जाते हैं। CSO राष्ट्रीय लेखा पर प्रायः संयुक्त राष्ट्र प्रणाली (UN-SNA) के दिशा-निर्देशों का अनुसरण करता

है, जो आवधिक रूप से SNA का संशोधन तथा सुधार करता रहता है। हाल ही में UN ने SNA–2008 की संस्तुति की है। CSO के चालू अनुमानों में (नया आधार वर्ष 2004-05 है) उपलब्ध आंकड़ों के अनुसार SNA–2008 की संस्तुतियों का समावेश किया गया है। ये संस्तुतियाँ सार्वजनिक सेक्टर में R&D व्यय पूँजीगत व्यय के रूप में मानने, अचल पूँजी और पूँजी स्टॉक आदि की खपत का आकलन करने में परिसंपत्तियों का ह्रासमान शेष विधि अपनाने से संबंधित है।

NAS में राष्ट्रीय लेखों का अनुमान लगाने के लिए अर्थव्यवस्था को नौ उप-सेक्टरों में विभाजित किया गया है, अर्थात् (i) कृषि, वानिकी और मत्स्य पालन; (ii) खनन और खदान; (iii) विनिर्माण; (iv) विद्युत, गैस और जल आपूर्ति; (v) निर्माण कार्य; (vi) व्यापार, होटल और रेस्टोरेंट; (vii) परिवहन, भंडारण और संचार; (viii) वित्त, बीमा, भूमि-भवन और व्यापारिक सेवाएँ; और (ix) सामुदायिक, सामाजिक और कार्मिक सेवाएँ।

इन उप-सेक्टरों की पूँजीगत परिसंपत्तियों का मूल्यांकन बाजार कीमतों (चालू और स्थिर दोनों) पर किया जाता है। खासतौर से, सकल अचल पूँजी निर्माण (GFCF) के अनुमान तीन संस्थागत सेक्टरों में से प्रत्येक अर्थात् सार्वजनिक सेक्टर, निजी कंपनी सेक्टर और पारिवारिक सेक्टर के लिए अलग-अलग तैयार किए जाते हैं। पारिवारिक सेक्टर में GFCF के अनुमान भिन्न-भिन्न NSSO सर्वेक्षणों के माध्यम से एकत्र किए गए आंकड़ों से लगाए जाते हैं। फिर इनका सकल उत्पाद मूल्य या वर्धित मूल्य में अनुमानित के आधार पर प्रेक्षण किया जाता है। सार्वजनिक सेक्टर GFCF के अनुमान वार्षिक बजट प्रलेखों पर आधारित होते हैं। निजी कंपनी सेक्टर GFCF पर आंकड़े RBI द्वारा मुहैया किए जाते हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

कृषि में सार्वजनिक सेक्टर GFCF मुख्यतया विभागीय वाणिज्यिक उपक्रमों द्वारा प्रारंभ किए गए प्रमुख सिंचाई परियोजनाओं के कारण है। लघु कार्यों, जैसे लघु सिंचाई, बागवानी, पशुपालन और सरकारी फार्मों के विकास का योगदान गैर-विभागीय वाणिज्यिक उपक्रमों का उत्तरदायित्व होता है। लेखाकरण प्रयोजनों के लिए कृषि मंत्रालय ग्राम विकास, आदि द्वारा सस्य पालन, मृदा और जल संरक्षण, वन्य जीव, संरक्षण और अन्य कृषि कार्यक्रमों (गोचर और अगोचर परिसंपत्तियों पर किया गया व्यय लोक प्रशासन (और कृषि नहीं) में पूँजी निर्माण के रूप में किया जाता है। पादपरोपण कार्यों के कारण निजी कंपनी सेक्टर में पूँजी निर्माण का अनुमान चाय, काफी और रबर बोर्डों से आंकड़े एकत्र कर लगाया जाता है।

पारिवारिक सेक्टर में पूँजी निर्माण कुएं/नलकूप खोदने, पुश्तों/संघों और फार्म हाउसों के निर्माण आदि जैसे निर्माण कार्यों से होता है। इनका अनुमान दस वर्षों में एक बार अखिल भारतीय ऋण और निवेश सर्वेक्षण (AIDIS) के परिणामों का प्रयोग कर लगाया जाता है। सर्वेक्षण पश्च वर्षों के लिए अनुमान विशेष रूप से इस प्रयोजन के लिए अभिकलित ग्रामीण निर्माण कार्य और कृषि उत्पादन के सूचकांकों का प्रयोग करते हुए आधार वर्ष के परिणामों के प्रेक्षण द्वारा किया जाता है। कृषि मशीनरी और परिवहन उपकरणों के अनुमान वार्षिक उद्योग सर्वेक्षणों के परिणामों का प्रयोग कर AIDIS परिणामों के बहिर्निवेशन से किया जाता है। पशुधन में वृद्धि का अनुमान पंचवर्षीय पशुधन गणना के परिणामों से

बहिर्निवेशन द्वारा किया जाता है। चूँकि अधिकांश वन सरकार के स्वामित्व में हैं, वानिकी के लिए पूँजी निर्माण के अनुमान बजट प्रलेखों से संकलित किए जाते हैं। मत्स्य पालन कार्यों के लिए GFCF का अनुमान भारतीय पशुधन गणना (ILC) के परिणामों का उपयोग करके यंत्रचालित और सामान्य मत्स्य ग्रहण नौकाओं के पूँजी स्टॉक में निवल परिवर्धन के रूप में किया जाता है। एक बार पुनः गणना वर्ष पूर्व और पश्च के लिए परिणामों का बहिर्निवेशन किया जाता है।

15.3.1 कृषि में और कृषि के लिए पूँजी निर्माण

हाल ही में, कृषि में और कृषि के लिए पूँजी निर्माण के बीच विभेद किया गया है। यह विशेष रूप में इस राय के कारण है कि कुछ उद्योगों/कार्यों में पूँजी निर्माण फार्म सेक्टर को भी लाभ पहुंचाते हैं और इसलिए इस किस्म के पूँजी निर्माण का कुछ भाग कृषि के लिए भी होना चाहिए। इसे ध्यान में रखते हुए सरकार ने प्रो. बी. बी. भट्टाचार्य की अध्यक्षता में समिति का गठन किया। समिति ने अपनी रिपोर्ट (2004) में सभी उन कार्यों को शामिल करते हुए कृषि पूँजी निर्माण के क्षेत्र का विस्तार किया जिसमें कृषि क्षेत्र को अप्रत्यक्ष रूप से उत्पादन/उत्पादकता बढ़ाने में सहायता की।

तालिका 15.1 : कृषि के लिए GFCF के सेक्टरवार अनुमान

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

सेक्टर	कृषि, आदि	कृषि मशीनरी	उर्वरक और कीटनाशक	बिजली, गैस और जल आपूर्ति	निर्माण कार्य	व्यापार	रेलवे	भंडारण	संचार	बैंकिग और बीमा
(GFCF) का अनुमान	1.00	1.0	0.9616	0.0855	0.088	0.245	0.066	0.693	0.091	0.0525

स्रोत : कृषि में पूँजी निर्माण समिति की रिपोर्ट, कृषि मंत्रालय भारत सरकार, नई दिल्ली, 2003।

कृषि पूँजी निर्माण को दो श्रेणियों, अर्थात् कृषि में पूँजी निर्माण और कृषि के लिए पूँजी निर्माण में वर्गीकृत करते हुए समिति ने बहुत से ऐसे उद्योगों के पूँजी निर्माण के अनुपात का आकलन किया, जिसे कृषि के लिए 'GFCF' के रूप में लिया जाना चाहिए। इस प्रयोजन के लिए समझे गए उद्योग हैं : (i) उर्वरक और कीटनाशक, (ii) विद्युत्/गैस/जल आपूर्ति, (iii) निर्माण कार्य, (iv) व्यापार, (v) रेलवे, (vi) भंडारण, (vii) संचार और बैंकिंग तथा बीमा। तालिका 15.1 में इस संबंध में कृषि से GFCF का अनुमानित अनुपात दर्शाता है। कृषि और कृषि मशीनरी सेक्टर के लिए यह अनुपात 1.0 (अर्थात् 100 प्रतिशत), उर्वरक और कीटनाशक के लिए यह 0.96 (अर्थात् 96 प्रतिशत) पर सबसे अधिक था। अन्य सेक्टरों के लिए उनके मूल्य के अवरोही क्रम में संस्तुत अनुपात हैं : भंडारण (69.3 प्रतिशत), व्यापार (24.5 प्रतिशत) संचार (9.1 प्रतिशत), निर्माण कार्य (8.8 प्रतिशत), विद्युत (8.6 प्रतिशत) और बैंकिंग तथा बीमा (5.3 प्रतिशत)। इस प्रकार अन्य सेक्टरों में पूँजी निर्माण से कृषि का GFCF के परिवर्धन की सुझाई गई विधि कृषि सेक्टर के लिए GFCF का अधिक यथार्थवादी अनुमान दे सकती है।

15.4 कृषि में पूँजी निर्माण की भूमिका

पूँजी और श्रम उत्पादन के दो महत्त्वपूर्ण कारक हैं। ये कुछ सीमा तक प्रतिस्थापी है और काफी हद तक एक-दूसरे के पूरक हैं। कृषि के विभिन्न कार्यों के समय रहते लागत प्रभावी ढंग से संपादन के लिए अचल एवं कार्यशील पूँजी की आवश्यकता रहती है। यह सस्य सघनता बढ़ाने, सस्य क्रम परिवर्तन करने और फसल कटाई पूर्व और पश्च क्षतियां कम करने के तरीके से कृषि उत्पादन और उत्पादकता बढ़ाने के लिए भी आवश्यक है। संक्षेप में, कृषि में पूँजी निर्माण, तकनीकी प्रगति लाकर उत्पादन वक्र को ऊर्ध्वमुखी बनाने के लिए सहायक है। यह कई लाभ प्रदान कर सकता है, जैसे (i) उपज में वृद्धि, (ii) फार्म क्रियाओं का समय पर समापन, (iii) अधिकतम संभव भूमि उपयोग, (iv) फसल क्रम में अंतरण और (v) कृषि का विविधीकरण। इस प्रकार पूँजी निर्माण कृषि बाजार का विस्तार करना आसान बनाता है और इन लाभों के परिणाम में बिक्री योग्य अधिशेष में वृद्धि होती है। इस प्रकार बाजार विस्तार न केवल फार्म आय बढ़ाता है बल्कि उपभोक्ताओं को कृषि उत्पादों की सुलभता भी आसान बनाता है। इसी प्रक्रिया में यह बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए खाद्य सुरक्षा और कृषि आधारित उद्योगों के कच्चे माल की सुरक्षा भी सुनिश्चित करता है। पूँजी निर्माण बेहतर भंडारण और परिवहन सुविधाओं के माध्यम से कृषि उत्पाद की गुणवत्ता सुधारने में भी सहायक होता है। इसके फलस्वरूप यह कृषि निर्यात की संभावनाओं को भी बढ़ाता है। भारत विश्व बाजार में फार्म उत्पादों के लिए प्रमुख भूमिका निभा सकता है। सेक्टर की वृद्धि के लिए योगदान करने में GFCF की भूमिका सामान्य रूप में पूँजी की किस्में सार्वजनिक तथा निजी पूँजियों के बीच विद्यमान प्रतिपूरकता के आधार पर अधिक स्पष्ट की जा सकती है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

अचल पूँजी और कार्यशील पूँजी : अचल पूँजी के अंतर्गत निम्नलिखित पर किया गया निवेश आता है: मशीनें, औजार, फार्म बिल्डिंग, ट्रैक्टर, भूमि समतलन, कल्टीवेटर, हार्वेस्टर, कुंआ/नलकूप, सिंचाई संरचनाएँ, वृक्ष बागान, पशुधन, भूमि विकास, मृदा और जल संरक्षण, फसल कटाई संरचना आदि। ये ऐसी निर्मित परिसंपत्तियाँ हैं जो फार्म उत्पादन, उत्पादकता और आय बढ़ाने में सहायक हो सकती हैं। इसी प्रकार कार्यशील पूँजी विभिन्न फार्म निवेशों को खरीदने में सहायक होती है, जैसे बीज, उर्वरक, कीटनाशक, सिंचाई, जल, कृषि श्रमिकों की मजदूरी, मशीनों और जुताई शक्ति का किराया। इन निवेशों और संसाधनों की आसान सुलभता विभिन्न कृषि कार्यों के समय पर निष्पादन के लिए आवश्यक है। दूसरे शब्दों में, अचल और कार्यशील पूँजी की सुलभता के बिना कृषि करना व्यावहारिक नहीं हो सकता है।

सार्वजनिक पूँजी और निजी पूँजी : कृषि में पूँजी निर्माण की भूमिका के आकलन में पूँजी निर्माण को सार्वजनिक और निजी के वर्गों में विभाजित करना उपयोगी होगा। सार्वजनिक क्षेत्र पूँजी निर्माण के अंतर्गत विभिन्न गोचर और अगोचर परिसंपत्तियों के निर्माण के लिए केंद्रीय, राज्य और स्थानीय सरकारों द्वारा किया निवेश आता है। यह निम्नलिखित तरीके द्वारा हो सकता है : (i) भूमि विकास, (ii) छोटी और बड़ी सिंचाई परियोजनाएँ, (iii) मृदा और जल संरक्षण और जल संचयन कार्य, (iv) वनीकरण, ग्रामीण सड़कों का निर्माण और ग्रामों का विद्युतीकरण; (v) कृषि अनुसंधान और विकास, किसानों का प्रशिक्षण और क्षमता

निर्माण आदि। आप देख सकते हैं कि ये सभी निवेश/परिसंपत्तियाँ ऐसे स्वरूप और स्तर/परिमाण की हैं जिन्हें केवल सार्वजनिक निवेश द्वारा ही निर्मित किया जा सकता है। इनका स्वरूप ''अवर्जनीय सार्वजनिक माल'' जैसा है जिनके लिए केवल एक तर्क दिया जा सकता है कि केवल राज्य से ही यह भूमिका निभाने की आशा की जा सकती है। दूसरी ओर, निजी पूँजी किसानों द्वारा सिंचाई के लिए, जैसे कुएँ, बेध कुएं (बोर वैल), विद्युत मोटर, डीज़ल इंजन, ट्रैक्टर और अन्य फार्म उपकरणों के लिए किया गया निवेश है। इसमें भूमि विकास, फार्म बिल्डिंग आदि पर व्यय भी शामिल है। कार्यशील पूँजी में आवश्यक आदानों की किसानों द्वारा की गई खरीद भी शामिल है। कृषि में निवेश निजी कंपनियों द्वारा भंडारण और बाजारों में निवेश के साथ-साथ फार्म मशीनों, औजारों और अन्य आदानों के विनिर्माण में किया गया निवेश शामिल है। इसलिए यह स्पष्ट है कि कृषि में सार्वजनिक और निजी दोनों निवेश कृषि कार्यों को बढ़ावा देने के लिए आवश्यक है।

सार्वजनिक और निजी पूँजी के बीच पूरकता : कृषि में सार्वजनिक और निजी निवेश पूरक और प्रतिस्थायी दोनों हैं। ऐसे कई दृष्टांत हैं, जहाँ कृषि में सार्वजनिक निवेश में वृद्धि के फलस्वरूप निजी निवेश भी बढ़ा हो। उदाहरण के लिए, यह देखा गया है कि सिंचाई, सड़कों और विद्युत परियोजनाओं में सरकार निवेश से कृषि में निजी निवेश प्रेरित हुआ है। दूसरे शब्दों में, यदि सरकार द्वारा बुनियादी आधारभूत संरचना निर्मित की जाती है, किसान, ट्रैक्टर और पम्प सेट खरीदने तथा नहर के कमांड क्षेत्रों में नलकूप लगाने के लिए अपनी निजी पूँजी निवेश करने के लिए प्रोत्साहित होंगे। इससे स्पष्ट होता है कि कृषि में अलग-अलग किसानों द्वारा अभिप्रेरित निवेश के तरीके में पूरक प्रभाव देखा गया है। दूसरी ओर, सार्वजनिक निवेश को कृषि में निजी निवेश के प्रतिस्थायी के रूप में भी माना जा सकता है। उदाहरण के लिए, यदि सरकार गहरा नलकूप, विशेषकर पृष्ठीय सिंचाई संपूरित करने और कृषि के लिए सिंचाई जल की आश्वस्त आपूर्ति सुनिश्चित करने के प्रयोजन से नहर कमांड क्षेत्र में लगाती है, तो किसानों को भौम जल सिंचाई में अपना निवेश करना आवश्यक नहीं होगा। साधारणतया किसान अचल और कार्यशील पूँजी में निवेश करते हैं (जहाँ वे पूर्णतः निजी अधिकार क्षेत्र में होते हैं) जबकि सार्वजनिक निवेश उस प्रकार की परिसंपत्तियों के निर्माण के लिए किया जाता है, जो अधिकांशतः सार्वजनिक अधिकार क्षेत्र में होते हैं। सार्वजनिक निवेश द्वारा निर्मित परिसंपत्तियाँ उपभोक्ता प्रभार चुका कर या उसके बिना भी किसान समुदाय द्वारा प्रयुक्त हो सकती हैं। इस प्रकार के उपयोग के उदाहरण नहर सिंचाई, मृदा और जल संरक्षण संरचनाओं, कृषि और विस्तार सेवाओं, ग्रामीण सड़कों, विद्युत आदि में देखे जा सकते हैं। कुछ अध्ययनों ने आकलित किया है कि सिंचाई और विद्युत में सार्वजनिक निवेश के लिए निजी निवेश की नम्यता लगभग 0.15 प्रतिशत है। इस प्रकार, सार्वजनिक निवेश में वृद्धि का निजी निवेश पर सकारात्मक प्रभाव होता है परंतु ऐसी स्थितियाँ भी हो सकती हैं जब सार्वजनिक निवेश में कमी की प्रतिपूर्ति करते हुए निजी निवेश में वृद्धि हो सकती है। परंतु ऐसी स्थितियाँ सामुदायिक हित में होने की संभावना नहीं हैं ये तो निजी स्वार्थ की पूर्ति के निर्मित ही हो सकती हैं। दूसरे शब्दों में, निजी निवेश पर बढ़ते हुए या घटते हुए सार्वजनिक निवेश के प्रभाव में विषमता एक वास्तविकता है। सार्वजनिक निवेश

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

नए बीजों, प्रौद्योगिकी, निवेशों, कृषि सेवाएँ और कृषि बाजारों के विकास के वृहत्तर प्रयोजन के लिए प्रयुक्त किए जाते हैं। यद्यपि किसानों को नई प्रौद्योगिकी और निवेश की सुलभता भी निजी कृषि व्यापारिक कंपनियों और आदान व्यापारियों द्वारा प्रदान की जाती है (जैसाकि संविदा खेती के मामले में होता है), परंतु व्यापार स्तर पर जिस अधिक बड़े प्रयोजन के सार्वजनिक निवेश उत्पन्न करता है उसका प्रतिस्थापन नहीं हो सकता।

15.5 पूँजी निर्माण पर संस्थागत ऋण की सुलभता का प्रभाव

ऋण सुविधाओं की सुलभता कृषि में निजी पूँजी निर्माण के प्रमुख निर्धारकों में एक है। किसानों की ऋण आवश्यकताएँ संस्थागत और गैर-संस्थागत स्रोतों से पूरी होती हैं। ऋण के गैर-संस्थागत स्रोतों के अंतर्गत साहूकारों, आदान व्यापारियों, रिश्तेदारों आदि से किसानों द्वारा लिखा गया ऋण आता है। संस्थागत ऋण के अंतर्गत वाणिज्यिक बैंकों, सहकारी बैंकों, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों (RRBs) और सहकारी ऋण समितियों से लिया गया ऋण शामिल है। अधिकांश किसानों को संस्थागत ऋणों की सुलभता प्राप्त नहीं है और इसलिए वे अधिकांशतः गैर संस्थागत स्रोतों पर निर्भर रहते हैं जो उससे 36-60 प्रतिशत प्रति वर्ष तक ऊँची ब्याज दर वसूलते हैं। परिणामस्वरूप अधिकांश किसान ऋण के जाल में फंस जाते हैं और उससे निकल पाना उनके लिए कठिन हो जाता है। अंत में, उनकी स्थिति से बाजार की अनिश्चित प्रवृतियां जुड़ जाती हैं। यही किसानों की आत्महत्याओं का मुख्य कारण बन जाता है। यद्यपि कृषि प्राथमिकता सेक्टर में है और कुल संस्थागत ऋण प्रवाह का 18 प्रतिशत इसके लिए नियत किया गया है। परंतु इस स्तर तक इस सेक्टर का ऋण नहीं पहुंचा है। किसानों की अनभिज्ञता, जटिल प्रक्रियाओं और बैंक अधिकारियों का व्यवहार बहुधा किसानों को संस्थागत ऋण लेने से रोकता है। सामान्यतया बैंक अपेक्षाकृत उच्चतर लेन-देन और परिचालन लागत के कारण किसानों को ऋण देने से बचते हैं। भुगतान में चूक के मामले में बैंक ऋण की वसूली की प्रक्रिया इतनी कठिन और जटिल है कि यह बैकों को किसानों को ऋण देने से बचने के रास्ते ढूँढने को ही प्रोत्साहित करती है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

ऋणों की समय अवधि के आधार पर कृषि ऋण को तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है, अर्थात् अल्पकालिक, मध्यकालिक और दीर्घकालिक। बहुत अल्पकालिक ऋण का उल्लेख "फसल ऋण" के लिए किया जाता है। ये सामान्यतया बीज, खाद, उर्वरक और कीटनाशक खरीदने के लिए या मजदूरी व्यय वहन करने के लिए दिया जाता है। इसे एक वर्ष के अंदर, विशेषकर फसल कटाई के बाद चुकाया जाता है। मध्यकालिक ऋण 1-5 वर्ष तक की अवधि के लिए दिया जाता है। यह भूमि विकास, पशु खरीदने, फार्म मशीनरी, अन्य उत्पादनकारी परिसंपत्तियों के निर्माण आदि कार्यों के लिए होता है। दीर्घकालिक ऋण अचल पूँजी निर्माण जैसे ट्रैक्टर खरीदने, नलकूप लगाने, भूमि के विकास आदि के लिए लिया जाता है। इस किस्म के ऋण 5-20 वर्ष तक की अवधियों के लिए होते हैं। NSS 2003 के 'स्थिति आकलन सर्वेक्षण' (SAS) के अनुसार अखिल भारतीय स्तर पर किसानों के बकाया ऋण का 58 प्रतिशत

संस्थागत स्रोत से था और शेष गैर-संस्थागत स्रोत से था। इसके अलावा कुल बकाया ऋण का 58.4 प्रतिशत उत्पादनकारी प्रयोजनों के लिए लिया गया था।

तालिका 15.2 दिखाती है कि अवधि 2001-11 के दौरान अल्पकालिक, मध्यकालिक और दीर्घकालिक ऋणों में प्रवृत्ति पंचवार्षिक अंतराल की है क्योंकि यह वर्ष-दर-वर्ष घटने-बढ़ने के कारण है। इसलिए कुछ समय के विलंब के साथ ही आंकड़ों पर विचार करना अधिक उपयुक्त होगा।

तालिका 15.2 : कृषि सेक्टर की संस्थागत ऋण के प्रवाह में प्रवृत्तियाँ

ऋण की श्रेणी	2000–01	2005–06	2010–11
अल्पकालिक ऋण (कुल का %)	63.1	58.4	71.4
मध्य/दीर्घकालिक ऋण (कुल का %)	36.9	41.6	28.6
कुल (%)	100.0	100.0	100.0
कुल (रुपए करोड़ में)	52827	180485 (3.4)	446779 (2.5)

स्रोत : भारतीय कृषि की स्थिति 2011-12 कृषि मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली (2012)।

नोट : कोष्ठकों के आंकड़ों में यह दर्शाया गया है कि पिछली अवधि की तुलना में कितने गुना वृद्धि हुई है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

अल्पकालिक और मध्य/दीर्घकालिक अवधि की दृष्टि दो समय बिंदुओं के बीच किसानों के अल्पकालिक संस्थागत ऋण में वृद्धि हुई है। यह दर्शाता है कि आदान और कुछ उत्पादक परिसंपत्तियाँ खरीदने के लिए ऋण पर आग्रह रहा है। मध्य/दीर्घकालिक के ऋण के भाग में तदनुरूपी गिरावट रही है। यह प्रवृति दर्शाती है कि या तो अधिक महंगी परिसंपत्तियों की खरीद में किसानों की रुचि घटी है या दीर्घकालिक ऋण देने के लिए बैंकों की अनिच्छा बढ़ी है। मात्रा की दृष्टि से प्रदान किये गये ऋण में गिरावट हुई है। यह 2001-06 की अवधि की तुलना में 3.4 गुणा वृद्धि से 2006-11 की अवधि में घटकर 2.5 गुणा वृद्धि हुई है। यह गिरावट 2001-06 की अवधि की तुलना में पूर्ववर्ती 5 वर्षों में अपेक्षाकृत अधिक कठिन और दबाव की परिचालक हो सकती है। यह भी स्पष्ट हो रहा है कि किसानों को किसान ऋण पत्र (KCCs) जारी करके अल्पकालिक ऋण देने की सरकार की नीति किसानों की अल्पकालिक ऋण की आवश्यकताएँ पूरी करने में प्रभावकारी सिद्ध हुई है। 2010-11 में दीर्घकालिक और मध्यकालिक ऋण कृषि के लिए दिए गए कुल ऋण प्रवाह का केवल 28.6 प्रतिशत रहे। अल्पकालिक ऋण के पक्ष में कृषि ऋण के संयोजन में अंतरण का कृषि में निजी सेक्टर की अचल पूँजी निर्माण पर प्रभाव हुआ है। अधिक गंभीरता से विचार करें तो एक बात और स्पष्ट हो रही है : KCC ऋण पर ब्याज की दर 7 प्रतिशत प्रति वर्ष है जो काफी कम है और समय पर ऋण वापसी पर ब्याज सहायता का भी प्रावधान है। अतः कुछ बड़े आकार के जोत वाले किसान सस्ती दर पर KCC ऋण लेकर उसे अनौपचारिक मुद्रा बाजार में अपेक्षाकृत काफी अधिक ऊंची दर पर जरूरतमंद लोगों को आगे उधार देने लगे हैं। ऐसी प्रवृत्ति को ऋण प्रयोजन की सख्त निगरानी द्वारा रोका जाना चाहिए ताकि पूँजी निर्माण की प्रक्रिया को कोई क्षति न हो।

बोध प्रश्न 2

लगभग 50 शब्दों में उत्तर दीजिए।

1) दो उदाहरण दीजिए, पूँजी निर्माण पर CSO के चालू अनुमानों पर UN-SNA-2008 की सिफारिश कैसे अपनाई गई है?

....

....

....

....

2) तीन संस्थानिक उप-सेक्टर कौन-से हैं जिनके लिए GFCF के अनुमान NAS में अलग से प्रस्तुत किए गए हैं। ये अनुमान किन स्रोतों पर आधारित हैं?

....

....

....

....

3) कृषि में GFCF और कृषि के लिए GFCF के बीच विभेद करना क्यों आवश्यक समझा गया था? कृषि और संबद्ध क्षेत्र के अलावा वे मुख्य सेक्टर क्या हैं जिनसे GFCF का अनुपात कृषि के GFCF के लिए उत्तरदायी होने की सिफारिश की गई थी।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

....

....

4) उन पाँच भिन्न-भिन्न तरीकों का उल्लेख कीजिए जिनसे पूँजी निर्माण कृषि उत्पादन वृद्धि में सहायक होता है?

....

....

....

....

5) उन कुछ तरीकों का उल्लेख कीजिए जिनमें कृषि में पूँजी निर्माण कृषि निर्यात की संभावनाएँ बढ़ा सकता है?

....

....

....

....

6) वे क्या कारक हैं जो गरीब किसानों को संस्थागत ऋण लेने से रोकते हैं? वे कारण भी बताइए जो कृषि के लिए ऋण की प्राथमिकता की सरकार की नीति के बावजूद बैंकों को किसानों को ऋण देने से हतोत्साहित करते हैं।

....

....

....

....

7) किस किस्म के संस्थागत ऋण ने पिछले एक दशाब्दी में बढ़ती हुई प्रवृत्ति दिखाई है? कृषि सेक्टर की पूँजी निर्माण के लिए इसके क्या प्रभाव हुए हैं?

....

....

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

15.6 सकल पूँजी निर्माण में प्रवृत्तियाँ

अर्थव्यवस्था के कुछ GCF के प्रतिशत के रूप में कृषि में सकल पूँजी निर्माण (GCFA) 1979-80 में 20.2 प्रतिशत था। यह अब बहुत तेज़ी से गिरकर 2009-10 में लगभग 7.7 प्रतिशत रह गया है। यह सार्वजनिक/निजी सेक्टर विभाजन के अनुसार कृषि में सार्वजनिक सेक्टर के GFCF के अंश में भारी कमी के कारण हुआ है। यह 1981-82 में 54 प्रतिशत से 1991-92 में 24.4 प्रतिशत और आगे 2001-02 में 14.3 प्रतिशत नीचे आ गया है। यह दर्शाता है कि 1980 की दशाब्दी के मध्य के बाद कृषि में पूँजी निर्माण अधिकांशतः निजी क्षेत्र द्वारा संचालित रहा है, यहाँ तक कि 1990 की दशाब्दी के अंत तक निजी निवेश सेक्टर में कुल निवेश का लगभग तीन चौथाई था। परंतु अभी हाल ही के वर्षों में सार्वजनिक सेक्टर GFCA का शेयर बढ़ा है, यह 2002-03 में 14.3 प्रतिशत था जो बढ़कर 2006-07 में 26.3 प्रतिशत हुआ (यद्यपि एक बार फिर 2009-10 में गिरकर 18.5 प्रतिशत हुआ)। भारतीय अर्थव्यवस्था में कुल सार्वजनिक और निजी क्षेत्र GCF में कृषि के घटते हुए शेयर से प्रकट होता है कि कृषीतर सेक्टर में पूँजी निर्माण कृषि सेक्टर की अपेक्षा अधिक तेज़ी से बढ़ा है। क्योंकि समय के चलते देश के समग्र GDP में कृषि का योगदान भी बहुत अधिक घटा है। फिर भी, यदि हम कृषि GDP में उसके प्रतिशत शेयर के अनुसार GCFA का अनुमान करते हैं, तो हम देखते हैं कि कृषि GDP के प्रतिशत के रूप में GCFA समय के दौरान बढ़ा है।

15.6.1 सार्वजनिक क्षेत्र द्वारा पूँजी निर्माण में ह्रास के कारण

सार्वजनिक निवेश का घटता हुआ शेयर गंभीर समस्या है क्योंकि यह न केवल कुल कारक उत्पादकता (TFP) वृद्धि बढ़ाने के लिए कृषि सेक्टर में निजी निवेश आकर्षित करने के लिए भी महत्त्वपूर्ण है। कुछ अनुमान दिखाते हैं कि सार्वजनिक निवेश में 10 प्रतिशत ह्रास से कृषि GDP में 2.4 प्रतिशत की कमी होती है। इसके बावजूद कृषि में सार्वजनिक निवेश की गिरावट के लिए कई कारण हैं। उनमें प्रमुख हैं (i) प्रत्यक्ष निवेश साहाय्य की ओर संसाधनों का पथांतरण; (ii) विद्यमान परियोजनाओं के अनुरक्षण की लागत में वृद्धि; (iii) परियोजना पूरी होने में विलंब; और (iv) अवरुद्ध R&D निवेश। इन सबसे अधिक, उदारीकरण पश्च, अवधि के दौरान समष्टि आर्थिक संकुचन की प्रक्रिया और परिणाम में सरकार की विकास भूमिका में कटौती फार्म सेक्टर में सार्वजनिक निवेश कम होने का मुख्य कारण है। चूंकि राजकोषीय घाटा कम करने के लिए योजनेत्तर व्यय कम करना सरकार के लिए कठिन था, इसलिए उसने 1990 के दशक के दौरान कृषि और सामाजिक, दोनों सेक्टरों में पूँजीगत व्यय कम करने का विकल्प चुना। यद्यपि, सरकार राजकोषीय घाटा नियंत्रण में लाने में सफल नहीं हो सकी, किंतु फार्म सेक्टर में उत्पादनकारी निवेश पर्याप्त रूप में कम हो ही गया। खाद्य, उर्वरक ऋण और अन्य आदानों पर बढ़ते हुए साहाय्य से कृषि में वास्तविक निवेश नहीं हुआ। इसके अलावा कृषि सब्सिडी से फसलक्रम में भी विकृति आई, संसाधन आबंटन में अदक्षता उत्पन्न हुई और कृषि धारणीयता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा।

DIKSHANT IAS

कृषि राज्य विषय है। अधिकांश राज्य राजकोषीय कुप्रबंधन और उनके द्वारा अपनाए गए लोक लुभावन उपायों के कारण गंभीर राजकोषीय सेक्टर में हैं। राज्य सरकारों की खराब राजकोषीय स्थिति का भी कृषि में वास्तविक निवेश पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। कृषि और संबद्ध कार्यों पर राज्यों का संचयी व्यय (कुल व्यय के प्रतिशत के रूप में) 1980-81 में 8 प्रतिशत की तुलना में 1990 के दशक के मध्य से 4-6 प्रतिशत के इर्द-गिर्द बना रहा। नौवीं योजना की मध्यावधि समीक्षा में इस तथ्य की ओर ध्यान दिलाया गया है कि पिछली दशाब्दी में कृषि में उत्पादनकारी अचल परिसंपत्तियों और आधारभूत संरचना में निवेश के स्थान पर आदान साहाय्यों द्वारा कृषि उत्पादन बढ़ाने के प्रयास किए गए हैं।

Call us @7428092240

कृषि साहाय्यों को लक्षित और कम करके तथा सिंचाई और अन्य आधारभूत संरचना संबंधी कार्यों में निवेश के रूप में कृषि सेक्टर के लिए निर्मित संसाधनों पुनः सक्रिय करके सार्वजनिक सेक्टर पूँजी निर्माण बढ़ाया जा सकता है। कृषि निवेश के लिए संसाधनों का आर्थिक रूप से वित्त पोषण सार्वजनिक सेक्टर के उपक्रमों को बेचकर किया जा सकता है। जिनका संचलन अदक्षता से ग्रस्त रहा है। इस प्रकार निम्न लागत पर सार्वजनिक निवेश को प्रोत्साहित करने में सहायता मिल सकती है। साहाय्य जनित विकृति समाप्त करने से पर्यावरण क्षति में कमी और सरकारी संसाधन जुटाने में वृद्धि भी हो सकती है।

कुछ अर्थशास्त्रियों का मत है कि सार्वजनिक क्षेत्र के पूँजी निर्माण में ह्रास की प्रतिपूर्ति निजी सेक्टर द्वारा पूँजी निर्माण में वृद्धि से हुई है। किंतु निजी क्षेत्र में पूँजी निर्माण का स्वरूप सार्वजनिक पूँजी निर्माण से भिन्न है। अतः ये प्रतिपूर्ण संपूर्ण रूप से नहीं हो सकती। निजी क्षेत्र निवेश अधिकांशतः फार्म मशीनीकरण,

भूमि समतलन, भौम जल सिंचाई (जैसे बेधकूल/नलकूप) आदि में किया जाता है, जबकि सार्वजनिक निवेश दीर्घकालिक परिसंपत्तियों, जैसे, बांधों, नहरों, सड़कों, विपणन परिसरों के निर्माण, ग्रामीण विद्युतीकरण, कृषि R&D आदि के निर्माण पर किया जाता है। इस प्रकार की पूँजी निजी क्षेत्र द्वारा नहीं बनाई जाती। वास्तव में, इन किस्मों की पूँजी का निर्माण कृषि में अधिक निजी पूँजी निर्माण को प्रेरित करने के लिए अपेक्षित है। उदाहरण के लिए, ग्रामीण विद्युतीकरण किसानों को विद्युत चालित नलकूप (ट्यूब वेल) लगाने को प्रेरित करता है। हम अब निजी पूँजी निर्माण के निर्धारक तत्वों पर अधिक गहनता से विचार करेंगे।

15.7 कृषि में निजी पूँजी निर्माण के निर्धारक तत्व

कृषि में निजी निवेश को प्रभावित करने वाले कई कारक हैं। उनमें महत्त्वपूर्ण हैं : (i) व्यापार की शर्तें और संस्थागत ऋण का प्रवाह; (ii) कृषि आधारभूत संरचना में सार्वजनिक निवेश; (iii) कृषि साहाय्य; (iv) प्रौद्योगिकी का प्रवाह; (v) स्वकर्षित जोतों के आकार में वृद्धि आदि। कृषि के लिए व्यापार की अनुकूल शर्तें कृषि में लाभकारिता बढ़ा सकती है और किसानों को GCF में अधिक व्यय करने के लिए प्रोत्साहित कर सकती है।

जैसाकि पहले चर्चा की गई है, सस्ती दरों पर किसानों को संस्थागत ऋण की सुलभता फार्म सेक्टर में अचल और कार्यशील दोनों पूँजी निर्माण के मुख्य निर्धारकों में एक है। सिंचाई, विद्युत, सड़क, बाजार, मृदा और जल संरक्षण, कृषि, R&D, विस्तार आदि में सार्वजनिक निवेश कृषि में निजी निवेश को प्रेरित करता है। इस दृष्टि से सार्वजनिक निवेश निजी निवेश का पूरक है। यद्यपि आमतौर पर साहाय्यों का निजी निवेश पर नकारात्मक प्रभाव हो सकता है, किंतु ट्रैक्टरों, पम्प सेटों, उर्वरक, विद्युत, डीज़ल आदि पर कृषि साहाय्य का कृषि में निजी पूँजी निर्माण पर सकारात्मक प्रभाव होता है। इसी प्रकार, यद्यपि बढ़ते हुए कृषि साहाय्य सार्वजनिक GCFA पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं और संसाधन आबंटन में अदक्षता बढ़ाते हैं, ये साहाय्य किसानों को अधिक पूँजी परिसंपत्तियां खरीदने के लिए प्रेरित करते हैं। इस प्रकार निजी GCFA बढ़ाती है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

प्रौद्योगिक प्रगति भी कृषि में निजी पूँजी निर्माण को सकारात्मक रूप से प्रभावित करती है। हरित क्रांति और उसके बाद से कृषि में अपनाई गई नई प्रौद्योगिकियां अधिक परंपरागत प्रौद्योगिकी की तुलना में पूँजी प्रधान रही हैं।

जोतों के विभाजन के कारण स्वकर्षित जोतों की बढ़ती हुई संख्या से GCFA बढ़ने की संभावना होती है क्योंकि जोतों के विभाजन से फार्म परिसंपत्ति और मशीनरी में निवेश के लिए मांग बढ़ती है। भारत में स्वकर्षित जोतों की संख्या 1985-86 में 97.2 मिलियन थी जो बढ़कर 2000-01 में 120.82 मिलियन हो गई। 23.66 मिलियन जोतों की वृद्धि हुई है।

फार्म सेक्टर को संस्थागत ऋण और साहाय्य की उपलब्धता इन विभाजित जोतों को फार्म मशीनरी में निवेश बढ़ाने के लिए प्रेरित करती है। कुछ अध्ययनों से सिद्ध किया है कि किसानों को संस्थागत ऋण और कृषि के लिए व्यापार की शर्तों का राष्ट्रीय स्तर पर निजी पूँजी निर्माण में सकारात्मक और उल्लेखनीय प्रभाव हुआ है, दो निष्कर्ष जो इन कारकों से निकाले जा सकते हैं, निम्न प्रकार हैं :

क) चूंकि मुख्य कृषि आधारभूत संरचनाओं में सार्वजनिक निवेश का निजी पूँजी निर्माण पर सकारात्मक प्रभाव होता है, सरकार को कृषि में निजी निवेश प्रोत्साहित करने के लिए सिंचाई, विद्युत, सड़क, बाजार, R&D आदि में सार्वजनिक निवेश बढ़ाना चाहिए।

ख) कृषि के लिए व्यापार को शर्तें आदानों को साहाय्य देकर सुधारा जा सकता है। यह सुझाता है कि कृषि साहाय्यों को पूर्णतः समाप्त नहीं किया जाना चाहिए, परंतु, इन्हें तर्कसंगत और प्रभावशील बनाया जाना चाहिए।

बोध प्रश्न 3

प्रश्न 2 से 5 के उत्तर लगभग 50 शब्दों में दीजिए।

1) रिक्त स्थान भरो –

क) कुल GCF के प्रतिशत के रूप में GCFA (कृषि में सकल पूँजी निर्माण) 1979-80 में .... प्रतिशत से घटकर 2009-10 में .... प्रतिशत हुआ।

ख) सार्वजनिक सेक्टर का GCFA का शेयर 1981-82 में .... प्रतिशत से .... 1991-92 में .... प्रतिशत और 2001-02 में .... प्रतिशत तेज़ी से घटा है।

ग) अभी हाल ही के वर्षों में सार्वजनिक सेक्टर का GCFA का शेयर 2002-03 में .... प्रतिशत से बढ़कर 2006-07 में .... प्रतिशत हुआ परंतु एक बार फिर 2009-10 में गिरकर .... प्रतिशत रह गया।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

2) कृषि में सार्वजनिक निवेश की गिरावट के पांच महत्त्वपूर्ण कारणों का उल्लेख कीजिए।

....

....

....

3) किस आधार पर यह तर्क प्रस्तुत किया जाता है कि निजी क्षेत्र का GCFA सार्वजनिक क्षेत्र के GCFA में गिरावट के लिए प्रतिपूर्तिकारी कारक नहीं हो सकता है?

....

....

....

....

4) उन पांच महत्त्वपूर्ण कारकों का उल्लेख कीजिए जो कृषि में निजी निवेश प्रभावित करते हैं।

....

....

....

....

5) उन भिन्न-भिन्न कारकों को ध्यान में रखते हुए जो निजी क्षेत्र का GCFA निर्धारित करते हैं, अपेक्षित नीति आग्रह के विषय में दो मुख्य निष्कर्ष क्या निकाले जा सकते हैं?

....

....

....

....

15.8 सारांश

कृषि यद्यपि श्रम प्रधान कार्य है, परंतु इसे विभिन्न प्रकार्यो का दक्षतापूर्वक निष्पादन करने के लिए अचल और कार्यशील दोनों पूँजियों की आवश्यकता भी होती है। पूँजी में वे परिसंपत्तियां शामिल हैं, जो उत्पादित की जाती है (जो गोचर और अगोचर भी हो सकती है), जिन्हें आगे माल और सेवाएँ उत्पन्न करने के लिए उत्पादन प्रक्रिया में साधन के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। पूँजी निर्माण चालू आय का एक भाग बचाकर पूँजी के स्टॉक का निर्माण और पूँजीगत माल/परिसंपत्तियाँ उत्पन्न करने में काम लाया जाता है। यही निवेश करने की प्रक्रिया है। उत्पादन प्रक्रिया के दौरान अचल संपत्ति में से कुछ अंश की खपत हो जाती है, यह मूल्य ह्रास कहलाता है। यदि अचल परिसंपत्ति की खपत की दर परिसंपत्ति में निवेश की दर की अपेक्षा कम है तब उस अचल परिसंपत्ति का स्टॉक में वृद्धि होगी।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

कृषि में पूँजी सार्वजनिक और निजी दोनों सेक्टरों द्वारा निर्मित की जाती है। सार्वजनिक सेक्टर पूँजी निर्माण में कृषि आधारभूत संरचना, जैसे लघु और बड़ी सिंचाई परियोजनाएँ, R&D और विस्तार सेवाएं, ग्रामीण सड़कें, ग्रामीण विद्युतीकरण आदि में निवेश होता है। निजी पूँजी निर्माण में किसानों द्वारा फार्म मशीनों, नलकूपों, खेत की नालियों, भूमि विकास और अन्य उत्पादनकारी परिसंपत्तियाँ आदि में निवेश होता है। सार्वजनिक और निजी पूँजी निर्माण दोनों भारतीय कृषि के प्रबल विकास के लिए आवश्यक है।

1960-61 वर्ष के बाद से GCFA में प्रवृत्तियाँ दर्शाती हैं कि अर्थव्यवस्था के कुल GCF के प्रतिशत के रूप में GCFA का अंश 1980 की दशाब्दी के बाद से गिरा है। सार्वजनिक सेक्टर GCFA में गिरावट में इतनी तीव्रता थी कि कुल GCFA के लिए सार्वजनिक सेक्टर GCFA का शेयर तेज़ी से गिरा है, यह 1981-92 में 54 प्रतिशत से गिरा और 2001-02 में 14.3 प्रतिशत रह गया। यद्यपि 2006-07 में बढ़कर यह 26.3 प्रतिशत हो गया। फिर भी यह अभी भी गंभीर समस्या है क्योंकि निजी सेक्टर में वृद्धि निम्नतर सार्वजनिक सेक्टर GCFA के हानिकारक प्रभाव की क्षतिपूर्ति नहीं कर सकता है। यह कृषि में सार्वजनिक

सेक्टर के गिरते हुए शेयर के कारणों की पहचान करने और कृषि में सार्वजनिक निवेश बढ़ाने के लिए ठीक करने के नीतिगत उपाय लेने पर महत्त्वपूर्ण बल देता है।

15.9 शब्दावली

पूँजी संचयन : इसका संबंध किसी अवधि के दौरान पूँजी स्टाक से है जब परिसंपत्ति में मूल्य ह्रास की दर उसमें किए गए निवेश की दर की अपेक्षा कम होती है।

गोचर पूँजी : इसका संबंध उत्पादनकारी भौतिक परिसंपत्तियों, जैसे ट्रैक्टर, फार्महाउस, नलकूप, डीज़ल इंजन आदि, से है।

अगोचर पूँजी : इसमें भौतिक पदार्थ से भिन्न परिसंपत्तियाँ आती हैं जो कृषि उत्पाद में योगदान करती हैं, जैसे कामगारों की शिक्षा, प्रशिक्षण और स्वास्थ्य आदि में निवेश।

अचल पूँजी : इसका संबंध उस पूँजी से है जो एक वर्ष से अधिक समय तक रहती है जैसे, फार्म बिल्डिंग, ट्रैक्टर, पम्प सेट आदि।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

कार्यशील पूँजी : इसका संबंध उस पूँजी से हैं जो एक वर्ष से कम समय तक रहती है जैसे बीजों, उर्वरक आदि की खरीद पर व्यय।

संस्थागत ऋण : इसका संबंध उन ऋण/कर्ज से है जो वित्तीय संस्थाओं जैसे वाणिज्यिक बैंकों, सहकारी बैंकों और क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों द्वारा मुहैया किया जाता है।

15.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Chand, Ramesh (2000), *Emerging Trends and Regional Variations in Agricultural Investments and their implications for Growth and Equity,* Policy Paper, National Centre for Agricultural Economics and Policy Research, New Delhi.

Govt. of India (2012), *State of Indian Agriculture 2011-2012,* Ministry of Agriculture and Cooperation, New Delhi.

Gulati, A and Bathla, S. (2002), *Capital Formation in Indian Agricuture : Trends, Composition and Implications for Growth,* Occasional Paper 24, NABARD, Mumbai.

15.11 बोध प्रश्नों के उत्तर/संकेत

बोध प्रश्न 1

1) देखिए उपभाग 15.2.1 और उत्तर दीजिए।
2) देखिए उपभाग 15.2.1 और उत्तर दीजिए।
3) देखिए उपभाग 15.2.2 और उत्तर दीजिए।
4) देखिए उपभाग 15.2.3 और उत्तर दीजिए।
5) देखिए उपभाग 15.2.3 और उत्तर दीजिए।
6) देखिए उपभाग 15.2.4 और उत्तर दीजिए।

बोध प्रश्न 2

1) देखिए भाग 15.3 और उत्तर दीजिए।
2) देखिए भाग 15.3 और उत्तर दीजिए।
3) देखिए उपभाग 15.3.1 और उत्तर दीजिए।
4) देखिए भाग 15.4 और उत्तर दीजिए।
5) देखिए भाग 15.4 और उत्तर दीजिए।
6) देखिए भाग 15.5 और उत्तर दीजिए।
7) देखिए भाग 15.5 और उत्तर दीजिए।

बोध प्रश्न 3

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

1) क) देखिए भाग 15.6 और उत्तर दीजिए।
   ख) देखिए भाग 15.6 और उत्तर दीजिए।
   ग) देखिए भाग 15.6 और उत्तर दीजिए।
2) देखिए उपभाग 15.6.1 और उत्तर दीजिए।
3) देखिए उपभाग 15.6.1 और उत्तर दीजिए।
4) देखिए भाग 15.7 और उत्तर दीजिए।
5) देखिए भाग 15.7 और उत्तर दीजिए।

इकाई 16 भारत में कृषि विपणन

संरचना

16.0 उद्देश्य

16.1 प्रस्तावना

16.2 संकल्पनात्मक रूपरेखा

16.2.1 बाजार और उसके कार्य

16.2.2 कृषि बाजारों की विशेषताएँ

16.2.3 छोटे किसानों की विपणन आवश्यकताएँ

16.2.4 विपणन लागत

16.2.5 नियमित बाजार

16.2.6 बिक्रीत बनाम बिक्री योग्य अधिशेष

16.3 भारत में कृषि विपणन व्यवस्था

16.3.1 भारत में कृषि मंडियों का वर्गीकरण

16.3.2 विपणन माध्यम

16.3.3 भारत में कृषि विपणन पद्धति की त्रुटियाँ

16.4 कृषि विपणन में राज्य की भूमिका

16.4.1 संस्थाएँ और विधायन (कानून)

16.4.2 आदर्श कृषि उत्पाद विपणन अधिनियम, 2003

16.4.3 गोदाम

16.4.4 आधारभूत संरचना, श्रेणीकरण (ग्रेडिंग) और मानकीकरण

16.4.5 बाजार अनुसंधान और सूचना नेटवर्क

16.5 बाजार समाकलन

16.6 सारांश

16.7 शब्दावली

16.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

16.9 बोध प्रश्नों के उत्तर/संकेत

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

16.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप :

- कृषि विपणन की मुख्य संकल्पनाओं की परिभाषा कर सकेंगे;
- भारत में कृषि बाजारों का वर्तमान वर्गीकरण स्पष्ट कर सकेंगे;
- भारत में वर्तमान कृषि विपणन पद्धति की त्रुटियां बता सकेंगे और इसके प्रकाश में उन कारकों की पहचान कर सकेंगे जिनके कारण विपणन व्यय उच्च बना हुआ है;

- कृषि विपणन में सरकार की भूमिका का वर्णन कर सकेंगे; और
- ''बाजार एकीकरण'', किसानों और उत्पादकों के लिए उसका महत्त्व बताते हुए, अवधारणा की रूपरेखा प्रस्तुत कर सकेंगे।

16.1 प्रस्तावना

संरचनाबद्ध विपणन पद्धति की रचना कृषि उत्पादन की आपूर्ति आय और मूल्य पहलुओं पर प्रभाव डालती है। सुस्थापित विपणन संरचनाएँ क्षतियां कम कर सकती हैं और किसानों को अच्छी कीमत आश्वासित कर सकती हैं। इसके प्रतिस्वरूप उन्हें उच्चतर उत्पादकता के लिए बेहतर पद्धतियां अपनाने की प्रेरणा मिलती है और यह आपात बिक्री की स्थितियाँ न्यूनतम होती हैं। इसके विपरीत सुस्थापित विपणन सुविधाओं के अभाव के परिणामस्वरूप कृषि आयात में वृद्धि होगी और खाद्य पदार्थों की कीमतें बढ़ेंगी। यही नहीं, बहुत से उद्योग अपने कच्चे माल की आवश्यकताओं के लिए कृषि उत्पाद पर अत्याधिक निर्भर रहते हैं, इसलिए नॉन-फार्म सेक्टर को अपनी प्रगति के लिए कुशल कृषि विपणन प्रणाली की बहुत आवश्यकता होती है। इसके लिए सार्वजनिक और निजी, दोनों, निवेश अपेक्षित हैं जिन्हें कानून द्वारा सुकर बनाया जाना चाहिए। विपणन श्रृंखला की लंबाई आदर्श होनी चाहिए ताकि विपणन लागत न्यूनतम हो। परंतु, भारतीय कृषि के संदर्भ में संस्थाओं और विधायनों की स्थापना करने के लिए बहुत-सी सरकारी पहलों के बावजूद विपणन लागत ऊँची रही है। इस पृष्ठभूमि के समक्ष इस इकाई में कुशल कृषि विपणन प्रणाली के विकास से संबंधित मुद्दों पर चर्चा की गई है। हम कुछ महत्त्वपूर्ण संकल्पनाओं की रूपरेखा से प्रारंभ करेंगे।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

16.2 संकल्पनात्मक रूपरेखा

हमें विदित है कि भारतीय कृषि सेक्टर में छोटे और सीमांत किसानों की प्रमुखता है। उत्पाद की कम मात्रा और इसके कारण अल्प बिक्री योग्य अधिशेष से छोटे किसानों को प्रतिलाभ तब तक कम रहेगा जब तक उनके विपणन व्यय न्यूनतम नहीं हो जाते। इसलिए कृषि में विपणन की महत्त्वपूर्ण भूमिका है क्योंकि अधिक उत्पादन करने और अधिक आय अर्जित करने के लिए किसानों की अभिप्रेरणा ऊंची रखना आवश्यक है। अतः बाजारों का स्वरूप, उसके विभिन्न कार्यों, छोटे किसानों की खास विशेषताएँ समझना महत्त्वपूर्ण है।

16.2.1 बाजार और उसके कार्य

शब्द ''बाजार'' के भिन्न-भिन्न अर्थ हैं। व्यष्टि स्तर पर इसका अर्थ केवल वह स्थान है जहां सामान बेचा और खरीदा जाता है। अधिक खास या विशिष्ट स्तर पर यह उन उत्पाद बाजारों, जैसे गेहूँ मंडी, कपास मंडी आदि या खुदरा या थोक मंडी के लिए हो सकता है। व्यष्टि स्तर पर यह देश या प्रदेश, जैसे भारतीय बाजार एशियाई बाजार आदि के लिए हो सकता है। इसका अर्थ संगठन भी हो सकता है जो पण्यवस्तुओं के विनिमय की सुविधाएँ भी प्रदान करता है (जैसे मुद्दती सौदा)। प्रकार्यात्मक रूप से इसके आधुनिक संदर्भ में यह व्यापक शब्द है। इसके अंतर्गत बहुत प्रकार्य आते हैं (इन प्रकार्यों की पहचान इस प्रकार हो सकती है, जैसे (i) अलग-अलग किसानों से अधिशेष का संग्रह;

(ii) निकटतम संयोजन केंद्रों तक परिवहन, (iii) श्रेणीकरण और मानकीकरण; (iv) एकत्रीकरण; (v) प्रसंस्करण; (vi) माल गोदाम; (vii) डिब्बा बंदी (पैकिंग); (viii) खपत केंद्रों तक परिवहन; (ix) क्रेता और विक्रेताओं को एकसाथ लाना; और (x) अंतिम उपभोक्ता तक की बिक्री। इन सभी कार्यों के लिए पूँजी का निवेश और कीमतों में उतार-चढ़ाव; हानियाँ, गुणवत्ता में खराबी आदि के कारण जोखिम लेने की क्षमता होना आवश्यक है। इसलिए विभिन्न स्तरों पर बाजार जोखिम उत्पन्न करने वाले उपर्युक्त कार्यों के लिए अपेक्षित वित्त तैयार रखने के वास्ते की गई व्यवस्था भी विपणन का अंग होता है।

16.2.2 कृषि बाजारों की विशेषताएँ

कृषि विपणन की कुछ विशेषताएँ होती हैं जैसे :

क) बहुत से निर्मित माल की तुलना में कई उत्पाद भारी भरकम होते हैं। इसके लिए भंडारण और परिवहन सुविधाओं की आवश्यकता होती है जो भारी और विशिष्ट किस्म के होते हैं और इसमें भारी लागत भी आती है;

ख) फार्म उत्पाद ऋतुनिष्ठ स्वरूप के होते हैं जबकि इनकी मांग उपभोक्ताओं द्वारा वर्ष भर रहती है, इसलिए मार्केट व्यवस्था के किसानों से उत्पाद के मौसमी बहिर्वाह से मांग का संतुलन होना चाहिए;

ग) छोटे किसानों का विक्रय अधिशेष (देखिये उपभाग 16.2.6) जिसकी कृषि सेक्टर में प्रधानता है, परिमाण में कम और विशाल क्षेत्र में फैला है। इसलिए उसका संग्रहण विशेष किस्म की कठिनाई खड़ी करता है;

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

घ) कृषि पण्यवस्तुएँ विनाशशील स्वरूप के होने के कारण भंडारण और परिवहन के दौरान उनके क्षतिग्रस्त और गुणवत्ता खराब होने की आशंका रहती है। इसलिए उनके लिए विशेष किस्म के भंडारण और परिवहन की आवश्यकता होती है;

ङ) कुछ किस्म की फसलें, जैसे फल और सब्जियों का उत्पादन स्थानिक होता है जबकि उनकी खपत दूर-दूर तक होती है। इसके अलावा, विनाशशील किस्म के होने के कारण उन्हे या तो शीघ्र ही प्रसंस्कृत करने की आवश्यकता होती है या अंतिम उपभोक्ता को शीघ्रता से भेजना/वितरित करना आवश्यक होता है;

च) भारत में अधिकांश किसान छोटे उत्पादक होते हैं, वे अकेले ही विभिन्न कार्य नहीं कर सकते हैं, इसलिए वे बिचौलियों के शिकार बन जाते हैं जो प्रायः उनका बहुत शोषण करते हैं।

16.2.3 छोटे किसानों की विपणन आवश्यकताएँ

भारत में **छोटा किसान** उसे माना गया है जिसके पास दो हेक्टेयर से कम कृषि योग्य भूमि है। यदि कृषि क्षेत्र एक हेक्टेयर से कम है तो किसान को **सीमांत किसान** कहा जाता है (देखिए इकाई-2, शब्दावली)। वे सामान्यतया आर्थिक संसाधनों से अभावग्रस्त रहते हैं और इसलिए जोखिम उठाने की उनकी क्षमता कम हो जाती है। इन कारणों से और अल्प मात्राओं के कारण उन्हें

अपने उत्पादन कम दामों पर बेचने पड़ जाते हैं। उन्हें बहुधा घोषित सरकारी कीमतों से वंचित रखा जाता है, क्योंकि उसे तत्काल बेचना उनकी जरूरत है। इसलिए उनके उत्पाद बहुधा फार्म में ही या गांव की सड़क के किनारे पर बेचे जाते हैं। सरकारी कीमतों का लाभ (जो अधिक होता है), वे बिचौलिये उठाते हैं, जो उत्पाद उठाते हैं। छोटे किसानों के लिए विशेष विपणन व्यवस्था की स्थापना व्यावहारिक नहीं है, सिवाय इसके कि जहाँ वे एक ही क्षेत्र में संकेंद्रित होते हैं या जहाँ ऐसी व्यवस्था छोटे किसानों के लिए उत्पादन लाभ देने वाली विशिष्ट फसल पर फोकस करती है (जैसे दूध)। इसे ध्यान में रखते हुए छोटे किसानों की विपणन आवश्यकताओं की स्थिति ठीक करने की रणनीति में शामिल हैं : (i) परिवहन व्यय कम करने के लिए सामूहिक कार्रवाई और सौदा करने की शक्ति में सुधार, (ii) छोटे किसानों के उत्पादन के अनुकूल फसलों के लिए संविदा प्रणालियों का प्रवर्तन, (iii) निजी उद्यमियों द्वारा सकारात्मक कार्रवाई का प्रोत्साहन (जैसे संविदा कृषि/खेती), आदि।

16.2.4 विपणन लागत

किसान द्वारा प्राप्त मूल्य और उपभोक्ता द्वारा दिए गए मूल्य के बीच अंतर ''विपणन लागत'' के नाम से जाना जाता है। इसमें भिन्न-भिन्न विपणन कार्यों के लिए भुगतान किए गए विभिन्न सेवा प्रभार शामिल है। उच्च विपणन लागत के प्रचलन के कारण हैं : (i) बिखरे फार्म, (ii) उत्पाद के व्यक्तिगत भूखंडों का छोटा आकार, (iii) गुणवत्ता में विविधता, (iv) घटिया परिवहन सुविधाएँ, (v) बाजार सूचना सेवाओं का अपर्याप्त विकास, (vi) भंडारण और प्रोसेसिंग के लिए सुविधाओं की कमी, आदि।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

16.2.5 नियमित बाजार

कृषि उत्पादों के विपणन की परंपरागत प्रथा में, जो अनियमित बाजार पद्धति है, बहुत अनधिकृत कटौतियों और अन्य कदाचारों के कारण छोटे किसानों द्वारा उच्च विपणन व्यय उठाया गया था। छोटे विक्रेताओं की कठिनाइयों को न्यूनतम करने की दृष्टि से सरकार ने कृषि उत्पाद की समुचित विक्रय व्यवस्था नियंत्रित करने और सुविधाएँ प्रदान करने के लिए नियमित बाजार (मंडियां) स्थापित की हैं। ऐसी मंडियाँ कृषि उत्पाद विपणन अधिनियम (APMA, 1954) के अधीन स्थापित की गई थीं। अधिनियम के अनुसार सरकार विनियम के अधीन खास क्षेत्र को लाने के लिए अपना अभिप्राय अधिसूचित कर सकता है। ऐसी मंडियों की विशेषताएँ हैं (i) उत्पाद की बिक्री आमतौर पर खुली नीलामी द्वारा या बंद निविदा विधि द्वारा की जाती है; (ii) उत्पाद का तौल लाइसेंसशुदा तौल व्यक्तियों द्वारा किया जाता है; (iii) उत्पाद साधारणतया सफाई करने और/या श्रेणीकण के बाद नीलामी के लिए रखा जाता है; (iv) मंडी सूचना समुचित ढंग से प्रसारित की जाती है; (v) मंडी प्रभार विनिर्दिष्ट होते हैं; (vi) क्रेता द्वारा विक्रेता को भुगतान निर्धारित समय के अंदर किया जाता है; और (vii) सभी कर्मचारियों को लाइसेंस के अधीन कार्य करना आवश्यक है। इन मंडियों के दिन-प्रति-दिन के कार्य का पर्यवेक्षण मंडी समिति के पदाधिकारियों द्वारा किया जाता है। (समिति में सभी वर्गों, अर्थात् किसानों, व्यापारियों, सहकारी विपणन समितियों/बैंको, क्षेत्र की पंचायत समिति/नगरपालिका बोर्ड के प्रतिनिधि और सरकारी अधिकारी होते

हैं)। बेचे गये उत्पाद की बिक्री पर्चियां किसानों को दी जाती हैं, जिसमें बेचे गए उत्पाद की मात्रा, बिक्री की दर और कटौतियों का विवरण होता है। उसकी एक प्रति जांच करने के लिए मंडी समिति को भी दी जाती है। मंडी समिति सुविधाएँ प्रदान करती है, जैसे (i) संपर्क मार्ग, (ii) काफी लंबा-चौड़ा मार्केट यार्ड और सबयार्ड; (iii) विश्राम गृह, पशुओं के लिए शेड तथा जल; (iv) प्रकाश, चौकीदार, पेयजल, पार्किंग स्थल आदि; और (v) अन्य आधारभूत सुविधाएँ जैसे बैंक, कैंटीन, डाकघर, आदि। ये सुविधाएँ मंडी समितियों की वित्तीय स्थिति के अनुसार एक राज्य से दूसरे में और एक मंडी से दूसरी मंडी में भिन्न-भिन्न होती हैं। सुविधाओं का स्तर किसानों को अपना उत्पाद स्थानीय रूप से बेचने की अपनी सुविधाओं की जांचकर नियमित मंडी में बिक्री के लिए अपना माल लाने में प्रोत्साहित करता है। उत्पाद की गुणवत्ता, प्रभारों की कटौती आदि पर उठने वाले विवाद का समाधान मंडी समिति की उपसमितियों द्वारा किया जाता है। विनियमन से पहले किसान विक्रेताओं के लिए कोई सुविधाएं नहीं थीं। इस प्रकार नियमित मंडियां उत्पादक विक्रेताओं में सामान्य जागरूकता पैदा करने तथा कई प्रकार के उन कदाचारों से उन्हें बचाने में सहायक हुईं जो पहले प्रचलन में थे।

16.2.6 बिक्रीत बनाम बिक्री योग्य अधिशेष

पण्यवस्तुओं की कुल मात्रा (जो अंततः किसानों द्वारा बेची जाती है), उसके स्वयं की उपभोग आवश्यकता, बीज के रूप में बोआई की भावी आवश्यकता, वस्तुरूप में मज़दूरी और परिवार तथा मित्रों को उपहार में दी गई मात्रा पर निर्भर करती है। इसे ध्यान में रखते हुए 'विक्रय अधिशेष' निम्न प्रकार निकाला जा सकता है :

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

विक्रय अधिशेष = (उत्पादन) – (अपने उपयोग के लिए)

किसानों की प्रतीक्षा/भंडारण सामर्थ्य या माल को रोक रखने की क्षमता के सापेक्ष बाजार में, पण्यवस्तु की चालू कीमत और उसमें संभावित वृद्धि तत्काल बेचने या बाद में बेचने के लिए किसान स्वयं निर्णय करता है। भारत के संदर्भ में, जैसाकि हमने ऊपर देखा है किसान क्या बेच सकते हैं और अंततोगत्वा वे क्या बेचेगें, इसे बहुत से कारक प्रभावित कर सकते हैं, जैसे, छोटे किसानों की दशा, ऋण चुकाने के लिए उनकी तात्कालिक नकदी आवश्यकता के कारण विपत्ति की स्थितियों में बेचने की अतिसंवेदनशीलता, सामाजिक अनिवार्यताएँ पूर्ति करना; आदि। इसे ध्यान में रखते हुए छोटे किसान बहुधा फसल कटाई के तत्काल बाद अपना उत्पाद बेचते हैं और बाद में अपनी आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए बाजार से खरीदते हैं। इस प्रकार, यदि हम 'समग्र उत्पादन के रूप में' (अर्थात् यह मानते हुए कि किसान अपनी आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए कुछ भी नहीं' रखता है जो सैद्धांतिक रूप में अधिकतम है जिसे वह बेच सकता है) विचार करते हैं तो बिक्रीत अधिशेष नियम आता है जैसे –

बिक्रीत अधिशेष = (विक्रय अधिशेष) – (खराबी के कारण क्षतियां)

= (उत्पादन) – (उपयोग + खराबी के कारण क्षतियां)

बिक्रीत अधिशेष के आकार का प्रभाव राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा पर भी होता है, क्योंकि, इससे गैर-फार्म जनसंख्या के लिए उपलब्ध उत्पादन की मात्रा ज्ञात होती है। बाजार में उत्पाद की कीमत और उत्पादक की तात्कालिक नकदी आवश्यकताएँ बिक्रीत अधिशेष को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारक हैं। एक ओर, उत्पादन के लिए पर्याप्त प्रोत्साहन प्रदान करने का मुद्दा और दूसरी ओर आवश्यक खाद्य मदों की खुदरा कीमतें आम आदमी की पहुंच के अंदर रखना, ये दो महत्त्वपूर्ण समस्याएँ हैं जिनका सामना बहुत से विकासशील देश कर रहे हैं।

बोध प्रश्न 1

लगभग 50 शब्दों में उत्तर दीजिए।

1) बाजारों के भिन्न-भिन्न अर्थ बताइए और उसके आधुनिक संदर्भ में कृषि बाजार के विभिन्न कार्य बताइए।

....

....

....

....

2) कृषि विपणन की खास विशेषताएँ क्या हैं जो अन्य बाजारों से उन्हें भिन्न करती हैं?

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

....

....

3) भारतीय कृषि में छोटे किसानों की बहुत बड़ी संख्या की विपणन आवश्यकताओं का सामना करने के लिए क्या रणनीतियां सुझाई गई हैं?

....

....

....

....

4) ''विपणन लागत'' से क्या अभिप्राय है? इसे उच्च रखने के लिए कौन उत्तरदायी है?

....

....

....

5) ''नियमित बाजारों'' के विशेष लक्षण क्या हैं?

....

....

....

....

6) ''नियमित बाजारों'' ने छोटे किसानों को अपने उत्पाद के लिए सही मूल्य प्राप्त करने में किस प्रकार सहायता की?

....

....

....

....

7) ''बिक्रीत अधिशेष'' से ''बिक्री योग्य अधिशेष'' भिन्न कैसे हैं? राष्ट्र के लिए 'बिक्रीत अधिशेष' का क्या महत्त्व है? और कौन-से प्रमुख कारक इसे प्रभावित करते हैं?

....

DIKSHANT IAS

....

Call us @7428092240

....

....

16.3 भारत में कृषि विपणन व्यवस्था

इस भाग में, हम भारत में कृषि मंडियों के वर्गीकरण और महत्त्वपूर्ण कृषि पण्यवस्तुओं की विपणन व्यवस्थाओं के बारे में अध्ययन करेंगे। हम देखेंगे कि कृषि मंडियों के क्षेत्र में त्रुटियां और अधिक व्यापक विपणन माध्यम श्रृंखलाएँ उच्चतर विपणन लागत के लिए उत्तरदायी हैं।

16.3.1 भारत में कृषि मंडियों का वर्गीकरण

भारत में प्रचलित कृषि उत्पादों के विपणन की तीन स्तरीय व्यवस्था है, ये हैं प्राथमिक ग्रामीण मंडी, द्वितीयक एकत्रण मंडी और थोक या सीमांत बाजार।

प्राथमिक मंडी : ये ग्रामीण मंडियां बाजारों की परंपरागत व्यवस्था, जैसे आवधिक बाजार या *हाट* हैं और ग्रामीण क्षेत्रों में आयोजित मेले हैं। ये संस्थाएँ बहुत से उपभोक्ता माल के अलावा अधिशेष फार्म उत्पाद के निपटान के लिए महत्त्वपूर्ण बाजार हैं। आज अधिकांश आवधिक बाजार सरकार के विनियम की सीमा के अंतर्गत हैं। इसमें प्रत्येक सहभागी से बहुत कम शुल्क लिया जाता है। यह व्यवस्था व्यापार सुगम बनाने के लिए कुछ बुनियादी आधारभूत सुविधाएँ

प्रदान करती है। उत्पादकों के पास बेचने के लिए सीमित मात्रा होने के कारण बहुधा वे द्वितीयक या थोक बाजारों में जाने के बदले अपने उत्पादों को ग्रामीण बाजार में बेचना फायदेमंद समझते हैं। ऐसे बाजार 5 से 10 किमी. की परिधि में कार्य करते हैं।

द्वितीयक बाजार : यद्यपि प्राथमिक बाजार स्थानीय मांग पूरी करते हैं, द्वितीयक बाजार दूरस्थ मांगे पूरी करते हैं। ये बाजार संग्रहण केंद्र और उन व्यापारियों द्वारा उत्पाद संग्रह करने के स्थान के रूप में कार्य करते हैं जो दूर के स्थानों से आते हैं। इन्हें मंडी कहा जाता है जो सामान्यतया रेलवे स्टेशनों के समीप जिला मुख्यालयों में स्थित होते हैं। ऐसे बाजारों में अच्छी संचार सुविधाएँ होती हैं और 10–30 किमी. की परिधि में फैले हुए अपने भीतरी क्षेत्रों से आपूर्तियां लेते हैं। ये दैनिक थोक बाजार हैं जहां से उत्पादों को ट्रकों में भरकर शहर के बाजारों में भेजा जाता है।

सीमांत बाजार : ये बाजारों का तृतीय स्तर है जहां माल की बिक्री खुदरा व्यापारियों को होती है। इन बाजारों में माल अंतिम निपटान सीमांत उपभोक्ताओं या प्रसंस्कारकों या विदेशी स्थानों को नौवहन के लिए एकत्र किया जाता है। इन बाजारों द्वारा रेखित क्षेत्र बहुत विशाल होता है। सीमांत बाजार दो प्रकार के हैं : प्राथमिक थोक बाजार और द्वितीयक थोक बाजार। प्राथमिक थोक बाजार क्षेत्र में अधिक विशाल होते हैं और अधिक खुदरा व्यापारियों को आकर्षित करते हैं क्योंकि वे अपनी आवश्यकताओं के अनुसार उत्पाद का सामंजस्य रख सकते हैं। वे दूरवर्ती छोटे कस्बों के बाजारों के लिए परिगमन केंद्र या दूरवर्ती बाजार का भी कार्य करते हैं। APMA द्वारा नियंत्रित होने के कारण प्राथमिक थोक बाजारों में साधारणतया अपेक्षित आधारभूत संरचना और सुगम व्यापार की व्यवस्था होती है। वे उत्पादन केंद्रों के समीप महत्त्वपूर्ण कस्बों में स्थित होते हैं। द्वितीयक थोक बाजार रिहायशी आबादी के समीप स्थानों पर स्थित होते हैं। इस प्रकार सीमांत बाजारों के दोनों प्रकारों में या तो उपभोक्ताओं को या प्रसंस्कारकों को अंतिम रूप में निपटाया जाता है या दूरवर्ती बाजारों और निर्यात के लिए भी भेजने के लिए एकत्र किया जाता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

16.3.2 विपणन माध्यम

उन अनुक्रमिक कार्यों को जो उत्पादन के बिंदु से खपत के बिंदु (अर्थात् अंत्योपयोग) तक उत्पादों का संचलन निर्धारित करते हैं, ''विपणन व्यवस्था'' कहा जाता है। इसका संबंध स्रोत स्थान से गंतव्य स्थान तक उसके संचलन में अनुसरण किये गए पूरे मार्ग से है। विपणन व्यवस्था का महत्त्वपूर्ण आयाम उसकी लंबाई है। विपणन व्यवस्था की लंबाई अनिवार्यतः मूल से गंतव्य स्थान बने पण्यवस्तुओं के प्रवाह में अंतर्निहित बिचौलियों या संस्थाओं की संख्या से संबंधित है। उत्पाद के लिए अंतिम उपभोक्ता द्वारा दिए गए कुल मूल्य में प्रत्येक सहभागी को एक अंश मिलता है। अतः विपणन व्यवस्था की दक्षता उसकी दृष्टतम या लघुतम लंबाई में निहित है। मुख्य उद्देश्य तो उत्पादकों और उपभोक्ताओं दोनों का अधिक से अधिक हित करना है, इसलिए विपणन व्यवस्था या माध्यम की दक्षता निम्नलिखित द्वारा निर्दिष्ट की जाती है : (i) उपभोक्ता द्वारा दी गई कीमतों में उत्पादकों का अंश, और (ii) उपभोक्ता और उत्पादक कीमतों के बीच अंतर। स्पष्टतः ये दोनों उपभोक्ताओं और उत्पादकों के लिए अधिकतम होने चाहिए।

साधारणतया विनाशशील पण्यवस्तुओं जैसे फलों और सब्जियों का माध्यम अविनाशशील पण्यवस्तुओं, जैसे खाद्यान्न की तुलना में अधिक छोटा होता है।

भारत जैसे देश में विपणन माध्यम विकसित देशों के विपणन माध्यमों से भिन्न है। यद्यपि विकसित देशों में उपभोक्ता संसाधित खाद्य मदें (जैसे ब्रेड के रूप में गेहूँ) अधिक पसंद करते हैं, विकासशील देशों में उपभोक्ताओं द्वारा अधिकांश खाद्यान्न कच्चे रूप में खरीदा जाता है। दूसरे शब्दों में, समाज के विकास का स्तर उस अंतिम रूप का निर्धारण करता है जिसमें उपभोक्ता उत्पाद चाहता है। दूसरे, देश के अंदर एक उत्पाद से दूसरे उत्पाद के लिए विपणन माध्यम भिन्न-भिन्न होते हैं। उदाहरण के लिए, फलों के लिए विपणन माध्यम, जिसके लिए बेहतर पैकेजिंग की आवश्यकता होती है, खाद्यान्नों से भिन्न है। तीसरा, छोटे फार्मों के विशाल ढेर, बड़े फार्मों के विशाल ढेरों की तुलना में विभिन्न मार्गों का अनुसरण करते हैं। उदाहरण के लिए, छोटे किसान साधारणतया अपने उत्पाद को ग्रामीण व्यापारियों को बेचते हैं, बड़े फार्म अपने उत्पाद को मुख्य बाजार में बेचते हैं जहाँ से यह थोक विक्रेता के पास जाता है। साधारणतया फसल कटाई के तुरन्त बाद बेचा गया उत्पाद बाद के महीनों में बेचे गए उत्पाद की अपेक्षा लंबे माध्यमों का अनुसरण करता है। परिवहन और संचार नेटवर्क के विस्तार से भारत में फार्म उत्पादों के विपणन माध्यम का भी विस्तार और उसकी गुणवत्ता के स्वरूप में काफी अधिक परिवर्तन हुआ है।

अधिक लंबा विपणन माध्यम उपभोक्ता द्वारा दी गई अंतिम कीमत में उत्पादक का अंश कम करता है। यह उत्पादन की नई पद्धतियां अपनाने के लिए उत्पादक का प्रोत्साहन समाप्त भी कर सकता है। नियमित बाजारों के विद्यमान कानूनों में प्रत्यक्ष विपणन के दबावों को समाप्त करने और संविदा खेती सुकर बनाने से उत्पादकों को बेहतर प्रतिलाभ प्राप्त करने में सहायता मिल सकती है। आप इस इकाई के भाग 16.4 में कानूनी क्षेत्र में स्थिति आसान बनाने के लिए सरकार द्वारा किए गए उपायों के बारे में अध्ययन करेंगे। आप इस खंड की इकाई 18 में संविदा खेती के बारे में अध्ययन करेंगे।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

16.3.3 भारत में कृषि विपणन पद्धति की त्रुटियाँ

विद्यमान वास्तविकताएँ भारतीय कृषि विपणन सेक्टर की बहुत सी त्रुटियों की ओर ध्यान आकर्षित करती हैं। इनका उल्लेख निम्न प्रकार किया जा सकता है :

क) अपर्याप्त/अनुपयुक्त गोदाम

गांवों में उपयुक्त गोदामों का लगभग पूरी तरह से अभाव है। इससे किसान अपने उत्पादों को गड्ढों या मिट्टी के बर्तन में स्टोर करने के लिए विवश होते हैं। भारत की ऐसी अवैज्ञानिक विधियों से अन्न की भारी बर्बादी होने के कारण क्षति होती है। अपनी क्षतियाँ न्यूनतम करने के लिए किसान अपने उत्पाद समीपतम स्थानीय बाजारों में बेचने के लिए विवश होते हैं। विशेषकर छोटे किसानों के पास भंडारण सुविधा न होने के कारण वे अपना उत्पाद कम और अव्ययकारी मूल्य पर बेच देते हैं। इससे प्रचुर आपूर्ति की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। जबकि बड़े उत्पादकों के पास अपेक्षित भंडारण सुविधाओं की व्यवस्था करने की क्षमता है। यद्यपि केंद्रीय और प्रांतीय गोदाम सुविधाओं की स्थापना

से कुछ सीमा तक स्थिति सुधरी है परंतु इस दिशा में अभी काफी कुछ करने की आवश्यकता है।

ख) श्रेणीकरण और मानकीकरण का अभाव

श्रेणीकरण से बेहतर प्रतिलाभ संभव है, किंतु इस प्रकार माल बेचने की प्रथा छोटे किसानों में प्रचलित नहीं है। भिन्न-भिन्न गुणवत्ता के माल को साथ मिलाकर उन्हें एक ढेर में बेचने की प्रथा आम है। इसके कारण प्राप्त कम प्रतिलाभ किसानों को बेहतर विधियां और गुणवत्तापूर्ण उत्पाद पैदा करने की विधियां अपनाने के लिए प्रोत्साहित नहीं कर पाता है।

ग) अपर्याप्त परिवहन सुविधाएँ

उत्पादों को मंडियों (जहां उत्पाद ढेर में बेचे जाते हैं) तक ले जाने के लिए पर्याप्त मोटर परिवहन सुविधाओं के साथ अच्छी सड़कों का होना अति आवश्यक है। भारत में, विशेषकर छोटे किसानों में, अपना सामान बैलगाड़ियों में ले जाने की प्रथा है। बहुत दूरवर्ती स्थानों तक वस्तुएँ ले जाने की व्यावहारिकता परिवहन के इस माध्यम से बहुत कठिन है। इस दृष्टि से भले ही कीमत कम हो, किंतु वे साधारणतया उन्हें समीपतम स्थान में बेचते हैं। यह विशेषकर विनाशशील पण्यवस्तुओं के मामले में ऐसा होता है। भले ही, अब स्थिति बदल रही है, किंतु अभी भी जहाँ छोटे किसानों को ऐसी कठिनाइयों का सामना अभी भी करना पड़ता रहा है ऐसे क्षेत्र बहुत विशाल हैं।

DIKSHANT IAS

घ) बिचौलियों की भारी संख्या की मौजूदगी

Call us @7428092240

जैसाकि हमने पहले देखा है, विपणन माध्यमों का विस्तार इतना संक्षिप्त नहीं है कि उत्पादकों को अधिकतम या इष्टतम प्रतिलाभ प्राप्त करने में सहायक हो सके। ग्रामीण व्यापारी, कच्चे/पक्के आढ़तियों, दलालों, थोक व्यापारियों, खुदरा व्यापारियों, साहूकारों आदि के नामों से कार्य करने वाले बिचौलियों या दलालों की संख्या के कारण स्थिति विशेष रूप से प्रतिकूल हो जाती है। इससे किसानों का प्रतिलाभ बहुत कम हो जाता है। इससे संबंधित अनुमान से ज्ञात होता है कि कुल कीमत में किसान केवल 53 प्रतिशत पाता है, 31 प्रतिशत बिचौलियों का शेयर तथा शेष विपणन व्यय सहित अन्य लागत होती है। सब्जियों और फलों के मामले में उत्पाद के प्रतिलाभ का तदनुरूपी प्रतिशत अधिक निकृष्ट (39 प्रतिशत) है जबकि बिचौलिये का शेयर इस पर भी अधिक (34 प्रतिशत) है।

ङ) अनियमित मंडियों में कदाचार

भारत में अभी भी अनियमित मंडियों की संख्या काफी अधिक है। अज्ञानता और अन्य कारणों से नियमित मंडियों में भी कई समस्याएँ, जैसे कम तौल, आढ़त या आढ़तियों को भुगतान किया जाने वाले प्रभार, आदि में धोखाधड़ी अभी भी विद्यमान है। इनमें से बहुत समस्याओं को नियमित विपणन सुविधाओं के बारे में समुचित सूचना से समाप्त किया जा सकता है। निःशुल्क उपलब्ध सुविधाओं और विनिर्दिष्ट या निर्धारित प्रभार पर उपलब्ध सुविधाओं की अधिसूचना छोटे किसानों के शोषण के न्यूनतमीकरण में सहायक हो सकती है। नियमित मंडियों में प्रचालनात्मक सुविधाओं की अधिक सख्ती से निगरानी भी समान रूप से

महत्त्वपूर्ण है। भारत में इस संबंध में निष्पक्ष विधियाँ और पद्धतियां स्थापित करने में अभी लंबा रास्ता तय करना है।

च) अपर्याप्त विपणन सूचना

बहुत बार किसानों को बाजारों में कीमतों के बारे में सही सूचना नहीं मिलती। किसानों की इस अनभिज्ञता का लाभ उठाते हुए बिचौलिए स्थिति का अनुचित लाभ लेते हैं। सरकार बाजारों में कीमतों के बारे में सूचना घोषित करने और प्रसारित करने के लिए रेडियो, समाचारपत्र आदि का प्रयोग कर रही है। इससे स्थिति बदल रही है। परंतु समयांतर की समस्याएँ हैं और इसके परिणामस्वरूप विक्रेताओं तक पहुंचने वाली सूचना कम विश्वसनीय होती है। इससे व्यापारी बहुधा समाचार माध्यमों से सरकार द्वारा निर्धारित भाव से कम मूल्य देते हैं।

छ) अपर्याप्त ऋण सुविधाएँ

गरीब किसानों के समक्ष आपात बिक्री की स्थितियां खड़ी होती हैं क्योंकि उनके पास भविष्य में बाजार में बेहतर कीमतों की प्रत्याशा में अपने उत्पाद स्टोर करने के लिए अपेक्षित ऋण या वित्तीय साधन नहीं होते हैं। सहकारी समितियां, जो इस संबंध में किसानों को सहायता देने के लिए होती हैं, बहुत प्रभावशाली नहीं हैं। उन छोटे किसानों की बहुत बड़ी संख्या, जो इन सुविधाओं से वंचित ही रहती है, आज भी स्थानीय साहूकारों जिनकी सहायता से वे अनेक कठिनाइयों का सामना करते हैं, के पास अपने उत्पाद बंधक रखने के लिए विवश हैं और इस संकट से निकलने का एक रास्ता भंडारण सुविधा का विस्तार करना और कृषि उत्पाद पर गिरवी ऋण सुविधाएं प्रदान करना है। परंतु भारत में यह प्रणाली अपेक्षित सीमा तक नहीं पहुंच सकी।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

संक्षेप में, भारत में कृषि विपणन प्रणाली की अवस्था में ऊपर प्रस्तुत बढ़ाने वाली त्रुटियों को इस प्रकार क्षमताओं को जाना जा सकता है : (i) बाजार प्रभारों की बहुलता; (ii) अनुचित व्यापार प्रभार (जैसे निरीक्षण के बाद भी सुखाई, आर्द्रता, कूड़ा-करकट आदि के लिए प्रभार; (iii) एकांतरण और श्रेणीकरण की कमी; (iv) बिक्री की ''कपड़े के नीचे'' (हात्था) विधि, जिसमें केवल सौदाकर्त्ता ही सौदा की जा रही कीमत जान पाता है; (v) अनुचित और गलत तौलने की प्रणाली; (vi) कोई भुगतान किए बिना खरीददार द्वारा बड़े परिमाण में नमूना लेना; (vii) बिक्री सौदे का विलंबित भुगतान; (viii) अत्यधिक बिचौलिये; (ix) अपर्याप्त भंडारण सुविधाएं; (x) दोषपूर्ण परिवहन; और (xi) मंडी सूचना का अभाव। पांच दशाब्दी से भी अधिक समय पहले APMA अधिनियम लागू होने के बावजूद, ऐसी कमियां अभी भी बनी हुई हैं। इसके लिए एक ओर इसके प्रभावी क्रियान्वयन की कमी का उल्लेख किया जाता है तो दूसरी ओर कृषि विपणन में सरकारी की नवीकृत भूमिका अपेक्षित है। हम सरकार द्वारा प्रारंभ किए गए कुछ अन्य उपायों और इकाई के अनुवर्ती भाग में कृषि विपणन प्रणाली में सुधारों की आवश्यकता का अध्ययन करेंगे।

बोध प्रश्न 2

लगभग 50 शब्दों में उत्तर दीजिए।

1) प्राथमिक बाजार क्या है? उसके क्या लाभ हैं?

....

....

....

2) कृषि में 'सीमांत बाजार' किस प्रकार 'द्वितीयक बाजार' से भिन्न है?

....

....

....

3) ''विपणन माध्य'' से क्या अभिप्राय है? ''विपणन माध्यम के आकार'' शब्द किसकी ओर इंगित करते हैं?

....

....

....

4) विकसित देशों विपणन माध्यम विकासशील देशों विपणन माध्यमों से किस प्रकार भिन्न है? इनका क्या महत्त्व है?

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

....

5) भारत में कृषि बाजारों में उच्चतर विपणन लागतों को उच्च रखने में योगदान करने वाले भिन्न-भिन्न कारक बताइए?

....

....

....

16.4 कृषि विपणन में राज्य की भूमिका

हमने उपभाग 16.2.5 में नियमित बाजार स्थापित करने में सरकार की पहलों के बारे में अध्ययन किया है। इसके अलावा सरकार द्वारा बहुत-सी अन्य पहलें भी की गई हैं जो संस्थागत महत्त्व की हैं। हम, इस भाग में सरकार के कुछ महत्त्वपूर्ण प्रयासों के बारे में अध्ययन करेंगे।

16.4.1 संस्थाएँ और विधायन (कानून)

सरकार द्वारा सोचा गया था कि सहकारी सेक्टर किसान उत्पादकों को उनके उत्पादों के विपणन में सहायता करने की दिशा में पर्याप्त महत्त्वपूर्ण भूमिका

निभाएगा। इसे तेज करने के लिए भारतीय सहकारी कृषि विपणन संघ (NAFED) 1958 में स्थापित किया गया। इसका मुख्य कार्य अपने राज्य संघों को निम्नलिखित समस्याओं पर विशेषज्ञ सलाह और तकनीकी मार्गदर्शन प्रदान करना है : (i) विपणन, (ii) प्रसंस्करण, (iii) अंतर्राज्य, (iv) निर्यात, (v) बाजार/कीमत प्रवृत्तियां, (vi) व्यापार तकनीकें आदि। संगठनात्मक पक्ष में राज्य स्तर पर राज्य सहकारी विपणन संघों द्वारा और कृषि बाजार (मंडी) स्तर पर प्राथमिक विपणन सहकारी समितियाँ नेफेड की सहायक थीं। यद्यपि यह द्वि-स्तरीय संरचना बहुत से राज्यों (जैसे असम, बिहार, केरल, कर्नाटक, मध्य प्रदेश, उड़ीसा, राजस्थान, पश्चिम बंगाल आदि) में विद्यमान है, अन्य राज्यों में यह मध्यवर्ती स्तर पर कार्य करने वाली जिला स्तर विपणन समितियों सहित त्रिस्तरीय संरचना है। नेफेड की निम्नतम स्तर पर कार्य करने वाली इकाई प्राथमिक विपणन समितियां (PMS) हैं। इसके कार्य का विवरण देखें तो नेफेड ने बहुत वर्षों से लाभ कमाते हुए एक व्यापारिक उपक्रम के रूप में कार्य किया है, फिर भी कृषि उत्पादों के लिए सहकारी विपणन संरचना में कई कमजोरियां पूर्ववत पायी गयी हैं। इनकी पहचान इस प्रकार की जा सकती है : (i) उसकी संरचना में अग्रानुबंधन और पश्चानुबंधन का अभाव; (ii) अधिकांश सहकारी समितियां विपणन कार्यों के बदले मुख्यतया आपूर्ति कार्यों में लगी रहीं (अर्थात् उन्नत औजारों, उर्वरक और अन्य कृषि निवेशों की आपूर्ति); (iii) केवल कुछ ही समितियां सीधे खरीद करती रहीं और एकत्र कर किसानों के उत्पादों को बेचती रहीं; (iv) बहुत कम समितियों ने फार्म उत्पाद की गिरवी पर ऋण सहायता दी; (v) वित्तीय दृष्टि से कमजोर होने के कारण बहुत प्राथमिक विपणन समितियां (PMs) अपने कार्यों के लिए पर्याप्त कार्यशील पूँजी जुटाने में असमर्थ रही; (vi) बहुत समितियों ने ऐसे कार्यों में अपने आपको व्यस्त रखा जिनमें जोखिम कम था किंतु कोई दीर्घकालिक संभावना भी नहीं थी।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

एकीकृत दृष्टिकोण की आवश्यता

सहकारी विपणन की दुर्बलताओं को दूर करने के लिए द्विरावृति न्यूनीकरण के लिए कार्यों का एकीकरण करने का सुझाव दिया जाता है। इस विषय में अनुसरण योग्य सिद्धांत ये हैं—(i) हानिकर प्रतिस्पर्धा और भिन्न-भिन्न स्तरों पर कार्य की द्विरावृत्ति का परिहार करना; (ii) उच्चतर स्तर की संरचनाओं द्वारा सदा निचली स्तर की इकाइयों के लाभ और विकास के लिए कार्य करना और स्वतंत्र रूप से या उनके प्रतिस्पर्धी के रूप में नहीं; और (iii) लक्ष्य किए जाने वाले भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में धीरे-धीरे विकेंद्रीकरण और कार्य का विशेषीकरण।

ट्राईफेड और अन्य प्रमुख संगठन

सरकार द्वारा (1986 में) भारतीय जनजाति सहकारी समिति विपणन विकास संघ (TRIFED) कृषि और संबद्ध कार्यों में लगे हुए जनजाति लोगों की विपणन और अन्य आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए स्थापित किया गया। जैसे नेफेड के लिए PMs प्राथमिक स्तर इकाइयां हैं, ट्राईफेड के लिए आधार स्तर पर कार्यकारी इकाइयां विशाल आकार की कृषि बहुउद्देश्यी सहकारी समितियां लैम्प्स (LAMPS) है। अधिक जनजातीय जनसंख्या के संकेंद्रण वाले दस राज्यों में इनका गठन किया गया है। ये उत्पादन (MFP) के विपणन में सहायता करती हैं। सरकार के कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण संगठन, जिन्हें कृषि उत्पादों की विपणन में सहायता

करने के लिए स्थापित किया गया है इस प्रकार हैं: (i) कृषि और सहकारिता मंत्रालय से संबद्ध विपणन और निरीक्षण निदेशालय (DMI) फरीदाबाद, (ii) चौ. चरणसिंह राष्ट्रीय कृषि विपणन संस्थान (NIAM) जयपुर, और (iii) लघु किसान कृषि व्यापार सहायता संघ (SFAC) नई दिल्ली। DMI के मुख्य कार्य हैं : (i) राज्य सरकारों और संघ राज्य क्षेत्रों को कृषि उत्पाद बाजारों के विनियमन, विकास और नियंत्रण पर सलाह देना, (ii) कृषि और संबद्ध उत्पाद के मानकीकरण और श्रेणीकरण का संवर्धन, (iii) बाजार अनुसंधान सर्वेक्षण संचालित करना, (iv) कृषि विपणन में कार्मिकों को प्रशिक्षण (v) बाजार विस्तार सेवाएँ प्रदान करना और कृषि बाजार सूचना नेटवर्क की स्थापना, (vi) गोदामों का निर्माण और (vii) कृषि विपणन आधारभूत संरचना का विकास। वर्ष 2000 में DAC ने बेहतर कीमतों के लिए सूचना एकत्र करने तथा प्रसारित करना सुकर बनाने के लिए 'कृषि विपणन अनुसंधान और सूचना नेटवर्क' (AGMARKNET) नाम की केंद्रीय सेक्टर योजना प्रारंभ की। 2002 में DAC द्वारा प्रारंभ की गई एक अन्य योजना है ''ग्रामीण भंडारण योजना''। इसका उद्देश्य फार्म उत्पाद स्टोर करने और उनकी आपात बिक्री रोकने के लिए किसानों की आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए ग्रामीण क्षेत्रों में वैज्ञानिक भंडारण क्षमता (संबद्ध सुविधाओं सहित) का निर्माण करना है। NIAM कृषि और बागवानी विभागों के कृषि, उद्योग, राज्य विपणन बोर्डों, कृषि उत्पाद विपणन समितियों आदि के वरिष्ठ और कनिष्ठ कार्यपालकों को प्रशिक्षण देने के लिए 1988 में स्थापित किया। यह किसानों को भी विपणन प्रबंधन पर प्रशिक्षण देता है। कृषि व्यापार परियोजनाओं में निजी निवेश प्रोत्साहित कर ग्रामीण क्षेत्रों में आय और रोज़गार पैदा करने के नए विचारों की सहायता करने के मिशन से DAC को एक पंजीकृत सोसाइटी के रूप में 1994 में स्थापित किया गया।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

अन्य नियामक उपाय : यद्यपि विभिन्न राज्यों के प्राथमिक बाजार APMA द्वारा विनियमित किए जाते हैं, परंतु ट्रेडिंग, स्टॉकिंग, गुणवत्ता अनुरक्षण, श्रेणीकरण, पैकिंग, प्रोसेसिंग, ब्लेडिंग आदि से संबंधित व्यापारियों और संसाधनकर्त्ताओं के कार्यकलापों को विनियमित करने के लिए अन्य कानूनी व्यवस्थाएँ भी हैं। ऐसे कुछ महत्त्वपूर्ण विधायी उपाय हैं : (i) कृषि उत्पाद (श्रेणीकरण और चिन्हांकन) अधिनियम 1937, 1986, (ii) खाद्य अपमिश्रण निवारण अधिनियम, 1954, 1964, 1976, 1986 और (iii) अनिवार्य पण्यवस्तु अधिनियम, 1955।

16.4.2 आदर्श कृषि उत्पाद विपणन अधिनियम, 2003

APMA अधिनियम और उसके क्रियान्वयन का मूल प्रयोजन बाजारों को अधिक दक्ष बनाना है। व्यापारियों में प्रतिस्पर्धा प्रोत्साहित कर कुशल बाजारों से किसानों को लाभकारी कीमतें सुनिश्चित करने की आशा की गई थी। उनसे छोटे और सीमांत उत्पादकों का शोषण न्यूनतम करने की भी आशा की गई थी। परंतु जैसे कार्य आगे बढ़ता गया, बाजार त्रुटिपूर्ण होते गए, इसके फलस्वरूप, समय के चलते किसान उत्पादक को पहुंचने वाले उपभोक्ता के व्यय के अनुपात में पर्याप्त गिरावट आई (एक अनुमान के अनुसार यह 1951-52 में 89 प्रतिशत से घटकर 2011 में 34 प्रतिशत हो गया)। दूसरे शब्दों में, बहुत से राज्यों में APMA बावजूद बाजारों ने प्रतिबंधात्मक और एकाधिकारवादी बाजारों की प्रख्याति अर्जित कर ली। वे कृषि उद्योगों को कच्चे माल की निर्बाध और सुगम प्रवाह और

सुव्यवस्थित खुदरा व्यापार के संवर्धन में कोई भी सहायता करने में असमर्थ थे। इसके अलावा, 1991 में आर्थिक सुधारों के क्रियान्वयन और बाद में प्रतिस्पर्धा और खुला बाजार नीतियों से ऐसी स्थिति उत्पन्न हुई जिसमें कृषि विपणन में बड़े सुधारों की आवश्यकता के बहुत दृढ़ता से अनुभव किया गया। इस संक्रमण को आसान बनाने के लिए भारत में कृषि बाजारों की कुशलता और प्रतिस्पर्धात्मकता बढ़ाने के उपायों का सुझाव देने के लिए 2001 में अंतः मंत्रालय कार्यदल गठित किया गया। इसके परिणाम में 2003 में आदर्श कृषि उत्पाद विपणन अधिनियम बना। अधिनियम ने तीन मुख्य पहलुओं में वर्तमान APMA में कई संशोधनों का सुझाव दिये जैसे : (i) किसानों द्वारा प्रत्यक्ष विपणन पर प्रतिबंध समाप्त करना, (ii) बाजार आधारभूत संरचना का विकास और उन्हें सरकारी एजेंसियों के लिए खोलना और (iii) संविदा खेती के लिए ढांचा स्थापित करना। आदर्श अधिनियम विशेष रूप से कृषि बाजारों में सार्वजनिक-निजी भागेदारी (PPP) के प्रोत्साहन का प्रावधान करता है। सितम्बर 2011 तक बहुत से राज्यों का अभी आदर्श अधिनियम पूरी तरह से क्रियान्वित नहीं हो पाया है। तालिका 16.1 में कुछ महत्त्वपूर्ण सुधारों और उन राज्यों को दिखाया है जहां ये क्रियान्वित हुए हैं।

तालिका 16.1 : क्षेत्र/राज्यों द्वारा मॉडल अधिनियम 2003 के अनुसार कुछ सुधारों का क्रियान्वयन

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

क्रम संख्या	सुधारों का क्षेत्र	राज्य जहां सुधार क्रियान्वित हुए हैं
1.	किसी भी व्यक्ति, स्थानीय प्राधिकरण या उत्पादक को बाजार स्थापित करने की अनुमति देना	छत्तीसगढ़, गोवा, असम, मिज़ोरम, नागालैंड, सिक्किम, त्रिपुरा, उत्तराखंड और झारखंड
2.	विशेष बाजार और विशेष वस्तु बाजार स्थापित करना	आंध्र प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र, कर्नाटक, नागालैंड, सिक्किम, तमिलनाडु, त्रिपुरा, झारखंड और उत्तराखंड
3.	बाजार विस्तार कार्यों में PPP	आंध्र प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, कर्नाटक, नागालैंड और सिक्किम
4.	ई-ट्रैडिंग प्रारंभ करना जिसके लिए बाजार समिति नियामत प्रणाली स्थापित कर सकती है। अन्य कार्य प्रारंभ करने के लिए आधारभूत संरचना का निर्माण	गुजरात, हिमाचल प्रदेश, कर्नाटक, नागालैंड, सिक्किम, मिजोरम, गोवा, महाराष्ट्र और उत्तराखंड
5.	मुख्य कार्याधिकारियों की नियुक्ति में खुले बाजार से भी व्यक्तियों का चयन संभव बनाना	नागालैंड, सिक्किम, मिजोरम, महाराष्ट्र
6.	बाजार समिति या निर्धारित अधिकारी के पास संविदा खेती प्रायोजक का पंजीकरण	आंध्र प्रदेश, अरुणाचल प्रदेश, असम, गोवा, हिमाचल प्रदेश, कर्नाटक, हरियाणा, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, मिज़ोरम, नागालैंड, उड़ीसा, राजस्थान, छत्तीसगढ़, सिक्किम, त्रिपुरा, झारखंड और उत्तराखंड

स्रोत : आईजीआईडीआर (2011)

16.4.3 गोदाम

भंडारण क्षमता बढ़ाने के लिए ''ग्रामीण गोदामों का निर्माण'' नाम की पूँजी निवेश सहायता योजना अप्रैल, 2001 से क्रियान्वित की जा रही है। इसका उद्देश्य किसानों की विभिन्न आवश्यकताओं, जैसे भंडारण, प्रसंस्करण आदि को पूरा करने के लिए ग्रामीण क्षेत्रों में संबद्ध सुविधाओं सहित वैज्ञानिक भंडारण क्षमता का निर्माण करना है। इस प्रकार योजना गिरवी ऋण और विपणन ऋण की सुविधाएँ उत्पन्न कर आपात बिक्री रोकती है। इसमें परियोजना की कुल लागत के 25 प्रतिशत तक सहायता प्रावधान किया गया है। उत्तर-पूर्वी राज्यों, पर्वतीय क्षेत्रों और SC/ST उद्यमियों के लिए साहाय्य और भी अधिक है उनके लिए ये परियोजना की पूँजीगत लागत का 33.3 प्रतिशत है। वर्ष 2004 इस योजना में आंशिक संशोधन किया गया था : (i) किसानों, कृषि स्नातकों, सहकारी समितियों और केंद्रीय/राज्य गोदाम निगमों के लिए 25 प्रतिशत साहाय्य का विस्तार, और (ii) सभी श्रेणियों के व्यक्तियों, कंपनियों और निगमों के लिए कम, अर्थात् 15 प्रतिशत साहाय्य का प्रावधान। इस योजना को सामान्यतः 50MT आकार के और पर्वतीय क्षेत्रों में 25MT के छोटे गोदामों के लिए सहायता देकर किसान मैत्रीपूर्ण बनाया गया है। यह योजना नाबार्ड और NCDC के माध्यम से क्रियान्वित की जा रही है।

16.4.4 आधारभूत संरचना, श्रेणीकरण (Grading) और मानकीकरण

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

कृषि मंत्रालय ''कृषि विपणन श्रेणीकरण और मानकीकरण का विकास/सुदृढ़ीकरण'' नाम की एक अन्य केंद्रीय योजना क्रियान्वित कर रहा है। इसके अधीन विपणन आधारभूत विकास परियोजना की पूँजीगत लागत के 25 प्रतिशत का निवेश साहाय्य प्रदान किया जाता (बशर्ते यह प्रत्येक परियोजना के लिए 50 लाख से अधिक न हो)। उत्तर-पूर्वी राज्यों, पर्वतीय क्षेत्रों में और SC/ST उद्यमियों के लिए प्रति परियोजना पूँजीगत लागत का 33.3 प्रतिशत पर उच्चतर सब्सिडी है (परंतु अधिक से अधिक 60 लाख रुपये हो)। राज्य सरकारों/राज्य एजेंसियों की आधारभूत संरचना परियोजनाओं के संबंध में इस योजना के अधीन साहाय्य पर कोई उच्चतम सीमा नहीं है। ये सुधार से जुड़ी हुई हैं और उन राज्यों/संघ राज्य क्षेत्रों में क्रियान्वित की जानी हैं, जहाँ सीधा स्वयं विपणन और संविदा कृषि मुहैया करने के लिए निजी और सहकारी क्षेत्र में प्रतिस्पर्धात्मक कृषि बाजार स्थापित करने के लिए कानून अनुमति देता है। आंध्र प्रदेश, पंजाब, केरल, तमिलनाडु, मणिपुर, सिक्किम, मध्यप्रदेश, हिमाचल प्रदेश, नागालैंड, राजस्थान, छत्तीसगढ़ राज्यों और अंडमान तथा निकोबार द्वीप समूह, दमण और दीव तथा दादर एवं नागर हवेली संघ राज्य क्षेत्रों ने इस योजना के अधीन सहायता प्राप्त करने के लिए अपने-अपने APMC अधिनियमों का संशोधन कर लिया है। अन्य राज्य इस संशोधन प्रक्रिया में जुटे हुए हैं।

16.4.5 बाजार अनुसंधान और सूचना नेटवर्क

बाजार सूचना किसानों के उत्पादन और विपणन निर्णयों के लिए आवश्यक आदान है। यह किसानों को अपनी उत्पादन अनुसूची (अर्थात् क्या पैदावार करनी है और कब/कहां/कैसे अपनी उपज बेचनी है) का निर्णय करने में सहायता करता है। यह उन्हें दीर्घकालिक निवेश में भी मार्गदर्शन करता है। बाजार कीमतें (IARI

के अध्ययन सहित) बाजार सूचना की सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण किस्मों में से एक है। कीमतों पर सूचना की समयोचित और सही उपलब्धता से उत्पादकों को प्रतिलाभ में बड़ी वृद्धि होती है। बाजार सूचना की प्रणाली अभाव में किसान मुख्यतया उत्पादन और विपणन के लिए अन्य किसानों पर निर्भर रहते हैं, कृषि व्यापारी बाजार सूचना के लिए उनके दूसरे सबसे प्रचलित स्रोत हैं। आदान-प्रदान की गई सूचना उर्वरकों की जानकारी, कीटनाशकों के प्रयोग तथा श्रेणीकरण और फसल कटाई के बाद की अन्य पद्धति के प्रयोग तक भी विस्तृत हो। कृषि विस्तार अधिकारी और जनसंचार माध्यम महत्त्वपूर्ण परंतु सीमित भूमिका निभाते हैं।

प्रणाली में सभी पणधारियों के लिए समायोचित और समुचित बाजार सूचना की सुलभता को महत्त्व दिया जाता है। इसलिए कीमत और बाजार संबंधी सूचना के शीघ्र संग्रहण और प्रसारण के लिए राष्ट्रव्यापी सूचना नेटवर्क विकसित तथा सुदृढ़ करने का प्रस्ताव किया जाता है। इसके अधीन इलैक्ट्रॉनिक संपर्क स्थापित कर "बाजार अनुसंधान और सूचना नेटवर्क" नाम की केंद्रीय स्कीम के अधीन देश में सभी महत्त्वपूर्ण कृषि मंडियों को प्रदान की जा रही है। इसके लिए उपर्युक्त AGMARKNET कार्यक्रम नियमित बाजारों में आमद और कीमतों पर आंकड़े एकत्र करता है और इंटरनेट पर उन्हें उपलब्ध कराता है। इस प्रणाली में वास्तविक समय में कीमत जानकारी की उपलब्धता सुधारने में योगदान की आशा की जाती है। अभी तक 2,408 मार्केट केंद्रों, 92 राज्य विपणन बोर्डो और DMI कार्यालयों को एक ही पोर्टल पर नेटवर्क युक्त किया गया है जिसमें 300 से अधिक पण्यवस्तुओं और लगभग 2000 किस्मों की दैनिक कीमतें उपलब्ध रहती हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 3

लगभग 50 शब्दों में उत्तर लिखिए।

1) भारत में सहकारी कृषि विपणन सेक्टर की क्या दुर्बलताएँ हैं?

....

....

....

....

2) सहकारी विपणन सेक्टर की दुर्बलताएँ दूर करने के लिए क्या दृष्टिकोण सुझाया गया है?

....

....

....

....

3) AGMARKNET क्या है? यह किसानों के लिए किस प्रकार लाभप्रद है?

....

....

....

....

4) कृषि विपणन सेक्टर के कार्यकरण में नियमन के उपायों के रूप में कार्य करने के लिए बनाए गए विभिन्न कानूनों का उल्लेख कीजिए।

....

....

....

....

5) भारत में घरेलू कृषि बाजार सुधार की आवश्यकता अनुभव करने के मुख्य कारण क्या हैं?

....

DIKSHANT IAS

....

Call us @7428092240

....

....

6) वे तीन मुख्य क्षेत्र क्या हैं जिनके संबंध में विद्यमान APMA के संशोधन का प्रस्ताव, 2003 के आदर्श-APMA में किया गया था?

....

....

....

....

16.5 बाजार समाकलन

बाजार समाकलन को दो संबद्ध बाजारों के बीच कीमत संचार की कोटि के रूप में परिभाषित किया गया है। अनुप्रयोग में इसे **एक कीमत का नियम (LoP)** के नाम से जाना जाता है। कृषि पण्यवस्तु बाजार में यह पण्यवस्तु कीमत परिवर्तनों पर सूचना के संचरण की सीमा और गति प्रतिबिंबित करता है। आदर्श रूप में, जब बाजार भली-भांति समाकलित होते हैं तो एकसमान गुणवत्ता की पण्यवस्तु की कीमत में अंतर अधिशेष बाजार से कमी वाले बाजार तक परिवहन लागत के बराबर होनी चाहिए। सुसमाकलित बाजार प्रणाली के

तीन आवश्यक तत्व हैं : (i) सूचना का शीघ्र प्रवाह, (ii) पण्यवस्तुओं के शीघ्र संचलन के साथ मांग और आपूर्ति स्थिति में समायोजन, और (iii) दक्ष अंतः बाजार कीमत समायोजन। इस प्रकार बाजारों के बीच कीमत में अल्पतम परिवर्तनशीलता सुसमाकलित बाजार प्रणाली का सार है। क्योंकि परिवर्तनशीलता की कुछ मात्रा अपरिहार्य है, हम कह सकते हैं कि स्थानिक रूप से पृथक बाजारों का समाकलन का संबंध उस सीमा तक है जिस तक दो बाजारों में कीमतों में साथ-साथ परिवर्तन होते हैं। समाकलन का विपरीत विखंडन है। उस बाजार को भौगोलिक दृष्टि से विखंडित कहा जा सकता है जिसमें क्रेयताओं और विक्रेयताओं की भौगोलिक स्थिति वास्तविक लेन-देन की शर्तों को प्रभावित करती है (अर्थात् कीमतों में अंतर एक स्थान से दूसरे स्थान तक माल के वहन की सीमांत लागत से अधिक होता है।)

बाजार आवकों और कीमतों में उतार-चढ़ाव को इस प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है : (i) अल्पकालिक उतार-चढ़ाव, और (ii) स्थानिक उतार-चढ़ाव। पूर्वोक्त चक्रीय ऋतु और अनियमित घटकों से संबद्ध परिवर्तनों का जटिल मिश्रण का परिणाम है। इन तीनों में भी ऋतुनिष्ठ घटक बारह महीनों में एक बार कृषि उत्पादों की कीमतों के उच्चावचन में देखा जाता है। उत्पादन और आवक में मौसम तत्व के कारण कीमतें भी मौसमी उतार-चढ़ाव दिखाती हैं। साधारणतया गोदाम में रखे जाने योग्य उत्पाद की कीमतें फसल कटाई के समय कम होती हैं और आगे चलकर अगली फसल कटाई से ठीक पहले अपने शीर्ष पर पहुंच जाती है। मौसमी उतार-चढ़ाव का अध्ययन करना महत्त्वपूर्ण है। यह अपने उत्पादों को बेचने के लिए उत्पादकों के तथा सही समय पर अपनी आवश्यकताएँ खरीदने के लिए उपभोक्ताओं को दिशा-निर्देशक के रूप में कार्य करता है। स्थानिक कीमत घट-बढ़ का संबंध भिन्न-भिन्न बाजारों में प्रेक्षित कीमतों के अंतर से है। वे उत्पादन और उपभोक्ता केंद्रों के स्थान में अंतर के कारण होते हैं। भिन्न-भिन्न बाजारों में कीमतें उतार-चढ़ाव के बीच अंतःसंबंध अधिकतर प्रतिस्पर्धा, बाजार सूचना के विसमीकरण और बाजार कर्मियों के रुख के स्वरूप और सीमा पर निर्भर करता है। किसी भी विपणन प्रणाली की दक्षता उस कोटि से निर्धारित की जाती है जिस तक भिन्न-भिन्न बाजारों में पण्यवस्तु की थोक कीमतें एक-दूसरे से संबद्ध होती हैं। इस प्रकार के अंतःसंबंधों का विश्लेषण विपणन प्रणाली की दक्षता समझने में सहायता करता है। वे बाजार के कार्यकरण की दक्षता सुधारने के लिए उपयुक्त नीति विकसित करने के लिए और अंततोगत्वा वांछित बाजार समाकलन प्राप्त करने के लिए उपयोगी हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

भारतीय कृषि के संदर्भ में 1994-2003 की अवधि में परिवहन सेक्टर में सुधार का विश्लेषण करते हुए 2006 में एक अध्ययन ने बताया है कि देश की आंतरिक अर्थव्यवस्था राज्यों और विपणन केंद्रों में और पण्यवस्तु बाजारों में भी गठी हुई है। इसमें कीमत अंतरों के कारणों की भी पहचान की गई है। उच्च परिवहन लागत, वितरण मार्जिन आदि के कारण हुए हैं। इन कीमत अंतरों के बावजूद पण्यवस्तु बाजार और राज्य बाजार, स्थानिक एक गहन समाकलन प्रकट करते हैं। पूर्ण बाजार समाकलन करने के लिए आवश्यक नीतिगत पहल इस प्रकार सुझाए गए हैं:

- चुंगी (अर्थात् स्थानीय निकायों के क्षेत्रों में प्रवेश पाकर) और खाद्य वस्तुओं पर अप्रत्यक्ष कर और उप-करों की समाप्ति;

- पण्यवस्तुओं की कीमतों में उतार-चढ़ाव न्यूनतम करने के लिए और राष्ट्रीय कृषि नीति में यथासंकल्पित जोखिम रोकने के लिए भी वायदा बाजारों की व्यापकता का विस्तार करना;
- उन वस्तुओं और सार्वजनिक वितरण प्रणाली पर साहाय्य (जो बाजार अर्थव्यवस्था में कीमतों को बिगाड़ते हैं), चरणबद्ध तरीके से समाप्त होने चाहिए और सस्ती दर की दुकानों को पूरे बाजार कीमतों पर अन्य पण्यवस्तुएँ भी बेचने की अनुमति दी जानी चाहिए ताकि उनकी आर्थिक व्यवहार्यता सुनिश्चित हो सके।
- खाद्यान्न वसूली, परिवहन, वितरण के लिए सार्वजनिक या संयुक्त उद्यम स्थापित करने के लिए (जहां कही वाणिज्यिक दृष्टि से व्यावहारिक हो), राज्यों को पूर्ण स्वतंत्रता;
- खाद्य वसूली कार्यों में निजी एजेंसियों की भूमिका बढ़ाना;
- माल ढुलाई के लिए बेहतर और अधिक सस्ते रेलवे नेटवर्क का विकास और किराया माल भाड़ा अनुपात सुधारने के लिए रेलवे किराये भाड़े में पुनः संतुलन कर माल संचलन के लिए ट्रैफिक नीति में विकृतियाँ समाप्त करना;
- प्रतिस्पर्धा, पैमाने की मितव्ययता और आपूर्ति श्रृंखला की दक्षता में सुधार (विशेष रूप से खाद्य और किराना सेक्टर में) द्वारा कीमतें कम करने के लिए खाद्य बाजार में FDI की अनुमति देना; और
- विद्युत सेक्टर में टैरिफ युक्तिकरण द्वारा वहनीय कीमतों पर वाणिज्यिक ईंधन का सार्वजनीन सुलभता प्रदान करने के लिए नीतिगत पहलें।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

16.6 सारांश

विपणन लागत इष्टतम रखने के लिए अच्छी तरह कार्य करने वाले कृषि बाजारों की स्थापना महत्त्वपूर्ण है। इसके लिए, सशक्त संस्थाओं और कानूनों का होना आवश्यक है। भारत में कृषि के विकास की प्रगति इस दिशा में सरकार द्वारा प्रारंभ किए गए विभिन्न उपायों से पहचानी जाती है। यद्यपि इसके कार्यक्षेत्र में APM अधिनियम और बहुत से नियमित बाजारों की स्थापना ने अनेक पहलुओं में स्थिति सुधारने में योगदान किया है, परंतु, भारत में प्राथमिक अनियमित बाजारों का प्रभुत्व अभी भी जारी है। मार्च, 2011 की स्थिति के अनुसार यद्यपि देश में प्राथमिक कृषि बाजारों की कुल संख्या 27,777 थी जबकि नियमित बाजार केवल 7,246 थे। इस प्रकार कृषि बाजारों के तीन-चौथाई अभी भी अनियमित हैं। APM की अपेक्षा है कि सभी कृषि उत्पाद नियमित बाजार के माध्यम से होने चाहिए। दूसरे शब्दों में, इसने उत्पादों की सीधी खरीद/बिक्री निषिद्ध की है। इसके अलावा, कालांतर में नियमित बाजारों ने भी प्रतिबंधात्मक और एकाधिकारिक बाजार की विशेषताएं ग्रहण कर ली हैं। ऐसी स्थितियाँ कृषि विपणन विकास में निजी निवेश रोकने में सहायक होती हैं। इस स्थिति को सुधारने के लिए 2000 के प्रारंभ में सरकार ने APM अधिनियम का संशोधन करने का कदम उठाया। इस अधिनियम में निजी बाजार बनाने का प्रावधान किया गया, सीधे खरीद केंद्र स्थापित करने और कृषि आधारभूत संरचना विकास के लिए

PPP प्रतिमान को बढ़ावा देने का प्रावधान किया गया है। कई राज्य सरकारों ने इस आदर्श अधिनियम के बहुत से उपबंधों का क्रियान्वयन किया है। इसके बावजूद प्रभावकारी बाजार समाकलन स्थापित करने की दिशा में अभी भी लंबा रास्ता तय करना है ताकि बाजारों के बीच कृषि पण्यवस्तुओं की कीमतों में अंतर कम रखे जा सके।

16.7 शब्दावली

विपणन माध्यम : इसका संबंध उन अनुक्रामिक कार्यों से है जो उत्पादन के बिंदु से उपभोक्ता के बिंदु तक पण्यवस्तुओं का संचलन निर्धारित करते हैं। विपणन व्यवस्था का विस्तार जो कई बिचौलिये व्यक्तियों या संस्थाओं से संबंधित है, इष्टतम होना चाहिए ताकि उत्पादक को पण्यवस्तुओं के लिए उपभोक्ता द्वारा दी गई अंतिम कीमत में अधिकतम अंश प्राप्त हो।

बिक्रीत अधिशेष : इसका संबंध ''बिक्री योग्य अधिशेष'' घटा ''क्षतियों'' से है। यह ''कुल उत्पादन'' घटा किसानों के स्वयं उपभोग के लिए मात्रा, जमा ''खराब होने के कारण क्षतियों'' के बराबर है।

DIKSHANT IAS

बाजार समाकलन : इसका संबंध अंतः बाजार मूल्य समायोजन की सीमा और गति से है।

Call us @7428092240

16.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Acharya, S.S. and A.N. Agarwal (2004), Agricultural Marketing in India, Fourth ed. Oxford and IBH, New Delhi,

IGIDR (2011), `Status of Agricultural Marketing Reforms", IGIDR ProceedingsèProject Series. PP-069-11b, (by Gokul Patnaik), http://www.igidr.ac.in/newspdf/srijit/PP-069-11b.pdf.

Report of the Working Group on Agricultural Marketing Infrastucture and Policy Required for Internal and External Trade, for the XI Five Year Plan 2007-12, Agricultural Division, Planning Commission, Government of India, 2007.

Virmani Arvind and Mittal Surabhi (2006). Domestic Market Integration, Working Paper No. 183, ICRIER, New Delhi.

World Bank (2008), Taking Agriculture to the Market, Report No. 35953-IN.

16.9 बोध प्रश्नों के उत्तर/संकेत

बोध प्रश्न 1

1) देखिए उपभाग 16.2.1 और उत्तर दीजिए।

2) देखिए उपभाग 16.2.2 और उत्तर दीजिए।

3) देखिए उपभाग 16.2.3 और उत्तर दीजिए।

4) देखिए उपभाग 16.2.4 और उत्तर दीजिए।

5) देखिए उपभाग 16.2.5 और उत्तर दीजिए।

6) देखिए उपभाग 16.2.5 और उत्तर दीजिए।

7) देखिए उपभाग 16.2.6 और उत्तर दीजिए।

बोध प्रश्न 2

1) देखिए उपभाग 16.3.1 और उत्तर दीजिए।

2) देखिए उपभाग 16.3.1 और उत्तर दीजिए।

3) देखिए उपभाग 16.3.2 और उत्तर दीजिए।

4) देखिए उपभाग 16.3.2 और उत्तर दीजिए।

5) देखिए उपभाग 16.3.3 और उत्तर दीजिए।

बोध प्रश्न 3

1) देखिए उपभाग 16.4.1 और उत्तर दीजिए।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

2) देखिए उपभाग 16.4.1 और उत्तर दीजिए।

3) देखिए उपभाग 16.4.1 और उत्तर दीजिए।

4) देखिए उपभाग 16.4.1 और उत्तर दीजिए।

5) देखिए उपभाग 16.4.2 और उत्तर दीजिए।

6) देखिए उपभाग 16.4.2 और उत्तर दीजिए।

इकाई 17 भारत में सहकारी आंदोलन और कृषि

संरचना

17.0 उद्देश्य

17.1 प्रस्तावना

17.2 सहकारी समितियों की विशेषताएँ

17.2.1 सहकारी समितियां और गैर-सहकारी समितियाँ : विभेद

17.2.2 कृषि सहकारी समितियां : प्रकार और कार्य

17.3 कृषि के विशेष संदर्भ के साथ भारत में सहकारी समितियों का आविर्भाव

17.3.1 स्वतंत्रतापूर्व प्रावस्था

17.3.2 स्वातंत्र्योत्तर प्रावस्था

17.4 भारत में कृषि सहकारी समितियों का कार्य-निष्पादन

17.4.1 सहकारी समितियों का कार्य-निष्पादन प्रभावित करने वाले कारक

17.5 सहकारी समितियों से संबंधित विधेयन

17.5.1 बहुराज्य सहकारी समितियां (MSCS) अधिनियम

17.5.2 MSCS अधिनियम, 2002 में प्रस्तावित संशोधन

17.6 सारांश

17.7 शब्दावली

17.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

17.9 बोध प्रश्नों के उत्तर/संकेत

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

17.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप :

- भारत में कृषि सहकारी समितियों के उद्भव का ऐतिहासिक विवरण दे सकेंगे;
- सहकारी संस्थाओं और अन्य संगठनों के बीच उनकी विशेषताओं, जैसे सिद्धांत, दर्शन, दृष्टिकोण आदि के आधार पर अंतर कर सकेंगे;
- सहकारी समिति के उन भिन्न-भिन्न प्रकारों को बता सकेंगे जो भारत में उसके कृषि सेक्टर की आवश्यकता पूरी करने के लिए स्थापित की गई हैं;
- प्राथमिक कृषि ऋण सहकारी समितियों (PACS) की भूमिका का आकलन कर कृषि सहकारी समितियों के कार्य निष्पादन का मूल्यांकन कर सकेंगे;
- PACS के कार्य निष्पादन को प्रभावित करने वाले कारकों की पहचान कर सकेंगे; और
- सहकारी समितियों से संबंधित कानूनों में अपेक्षित परिवर्तनों की रूपरेखा प्रस्तुत कर सकेंगे ताकि भारत में उनका नवीकरण किया जा सके।

17.1 प्रस्तावना

भारत में सहकारी समितियों की आवश्यकता जिसका उद्देश्य विशाल ग्रामीण समुदाय की दशा सुदृढ़ करना था, सरकार द्वारा 100 से अधिक वर्ष पहले स्वीकार की गई थी। पश्चिम में उनकी सफलता के अनुभव के आधार पर उन गरीब किसानों की दुर्दशा का उत्तर देने की उन्होंने संकल्पना की जो मुख्यतया ऋण सुविधाओं के अभाव के कारण अत्यधिक पीड़ित थे (यद्यपि कृषि से संबंधित अन्य सेवाओं, जैसे आदानों की आपूर्ति, भंडारण/परिवहन आदि में भी सुविधाओं का अभाव था)। उद्देश्य उन स्थानीय जमींदारों और व्यापारियों पर गरीब किसानों की निर्भरता कम करना था जो बहुत ऊँची दरों पर ब्याज लेकर, प्रायः भूमि बंधक और उत्पाद विक्रय से उनका शोषण कर रहे थे। परंतु सहकारी आंदोलन, जैसा भारत में विकसित हुआ, उन प्रणालियों के अनुसार विकसित नहीं हुआ, जिनसे अन्य देशों में प्रगति और सफलता मिलती थी। सरकार द्वारा (सहकारी समितियों के कार्यकरण के लिए पूँजी देने से और उसके प्रबंधन में भी) संरक्षण दिया गया। दशाब्दियों तक संख्या के आधार पर सहकारी आंदोलन बढ़ा, परंतु वे उन सिद्धांतों पर आधारित नहीं थे जो उनकी सफलता और सुस्थिर कार्य संचालन के लिए अपेक्षित थे। जो महत्त्वपूर्ण तत्व विद्यमान नहीं था, वह था अपने ही संसाधन आधार उत्पन्न करने के लिए क्षमता निर्माण के प्रयास। भारतीय सहकारी समितियों के विकास की खराब स्थिति महसूस करते हुए भारत सरकार ने समय-समय पर कई समितियां गठित कीं जिनसे पुनःसशक्तीकरण के लिए आवश्यक उपयुक्त उपाय सुझाव देने का अनुरोध किया गया था। सहकारी समितियों के कार्य निष्पादन के अनुभव से प्राप्त प्रत्येक उपाय के अनुसार समय-समय पर कई कानून बनाए गए। उसके कार्यकरण के पिछले 100 से अधिक वर्षों के दौरान उन उपायों के बावजूद, आंदोलन वास्तविक महत्त्व प्राप्त नहीं कर सका जो इसके विकास में सोचा गया था। इस पृष्ठभूमि के विपरीत सहकारी समितियों के विकास पर प्रारंभ से ही दृष्टि डालते हुए इस इकाई का उद्देश्य भारत में सहकारी आंदोलन की भिन्न-भिन्न विशेषताओं की रूपरेखा प्रस्तुत करना है। इस इकाई में, सहकारी समितियों के कार्य-निष्पादन का आकलन किया गया है। साथ ही, ग्रामीण स्तर के किसानों की ऋण आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए उत्तरदायी इकाई– प्राथमिक कृषि ऋण समितियां (PACS) पर विशेष रूप से फोकस किया गया है। इन तत्वों को ध्यान में रखकर इकाई में उनके अच्छे कार्य-निष्पादन के लिए महत्त्वपूर्ण निर्धारकों की पहचान की गई है। अंत में, सहकारी समितियों की स्थापना के लिए किए गए विधायी प्रयासों की महत्त्वपूर्ण विशेषताओं की समीक्षा करते हुए इकाई में भारत में कृषि सहकारी समितियों का कार्यकरण पद्धति सशक्त बनाने के लिए आवश्यक संशोधनों का विवरण दिया गया है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

17.2 सहकारी समितियों की विशेषताएँ

कुछ बुनियादी पहलुओं में अन्य संगठनों से सहकारी समितियां भिन्न हैं। उन्हें उनके सिद्धांतों, दर्शन और दृष्टिकोण के आधार पर वर्गीकृत किया जा सकता है। संसाधनों और लाभ के स्वामित्व की उनकी बढ़ती हुई क्रम परंपरा द्वारा वर्गीकृत धीरे-धीरे ऊपर की ओर अग्रसर होने वाले संगठनों के सामूहिक स्वामित्व को कहा जा सकता है : (i) व्यक्तिगत या पारिवारिक स्वाधिकृत उद्यम,

(ii) अनिगमित भागीदारी व्यवसाय-प्रतिष्ठान, (iii) प्राइवेट लिमिटेड फर्म के रूप में मिश्रित पूँजी कंपनियां/ज्वाइंट स्टॉक कंपनी पंजीकृत (अर्थात् निगमित), और (iv) सरकारी उपक्रम या निगम। इस क्रम परंपरा में सहकारी समितियों का वर्गीकरण पांचवे किस्म के उपक्रम के रूप में हो सकता है। हम देखेंगे कि उनके विशिष्ट स्वरूप की विरचना और कार्यकरण की दृष्टि से सभी अन्य संगठनों से वे अलग हैं। सहकारी समिति की विभेदकारी विशेषताएँ नीचे स्पष्ट की गई हैं।

17.2.1 सहकारी समितियां और गैर-सहकारी समितियां : विभेद

निजी संगठन या उपक्रम का निर्माण मूलतः लाभ कमाने के प्रयोजन से किया जाता है। सरकारी संगठन, सिवाय जब उन्हें कंपनी शैली पर चलाया जाता है, सामान्यतया समाजीय सेवाएं देने का कार्य करता है। उदाहरण के लिए, बुनियादी सेवाओं जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य, सफाई में सरकार की सहभागिता में लाभ का तत्व सर्वोपरि नहीं है और पूर्णतया अप्राप्य भी हो सकता है। फिर भी, बाजार/आर्थिक सुधारों के अधीन धीरे-धीरे सार्वजनिक सेवाओं में भी कार्यकरण की कंपनी शैली अपनाई जा रही है। जहाँ अधिशेष या लाभ आवश्यक होता है वहाँ भी संगठन की दक्षता को प्राथमिकता दी जाती है। दूसरी ओर, सहकारी संगठन को उसके प्रारंभ से ही (बहुत पहले 1844 में) अपने सदस्यों के पारस्परिक लाभ के लिए गठित संगठन के रूप में सोचा गया है। सहकारी समितियों से भिन्न के मामले में वस्तु या सेवा ''अन्य'' को बेची जाती है। परंतु सहकारी समितियों के मामले में व्यापारी ग्राहक की ऐसा द्विभागीकरण नहीं होता है। इसे ध्यान में रखते हुए लक्ष्य के रूप में लाभ, यद्यपि, सहकारी उपक्रम की व्यावहारिकता की सीमा में विद्यमान है, फिर भी यह स्पष्ट रूप से प्रतिबिंबित नहीं होता है, बल्कि उसे उसके सदस्यों को सेवाओं के लिए कम कीमतों के रूप में दिया जाता है। इसलिए उस सीमा तक अधिशेष या लाभ सहकारी समिति के जीवित रहने एवं वृद्धि के लिए महत्त्वपूर्ण है जितना कि इसे गैर-सहकारी कंपनी होने में होता। अंतर इन पहलुओं के संबंध में अधिक महत्त्वपूर्ण ढंग से हो सकता है : (i) लाभ अर्जन/वितरण का तरीका, और (ii) लाभ के अलावा अन्य उद्देश्यों पर बल।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

सहकारी समितियों के सिद्धांत

सहकारी सिद्धांत अंतर्राष्ट्रीय सहकारी संघ (ICA) द्वारा विकसित किए गए हैं। रॉशडेल सिद्धांतों पर आधारित (रॉशडेल सोसाइटी आफ इक्वीटेबल पायनियर, इंग्लैंड द्वारा 1844 में निर्धारित सिद्धांतों का मूल सेट उस के नाम पर रखा गया) वे ICA द्वारा 1934 के अपने सम्मेलन में पहली बार अंगीकृत किए गए थे। उन्हें बदलती हुई स्थिति के अनुसार रखने के लिए समय-समय पर संशोधित किया गया है। नवीनतम ICA, 1995 ने सहकारी समितियों के लिए दस सिद्धांत निर्धारित किए हैं। ये हैं : (i) स्वैच्छिक और खुली सदस्यता, (ii) भेदभाव रहित, (iii) अभिप्रेणा और पुरस्कार, (iv) लोकतांत्रिक सदस्य नियंत्रण, (v) सदस्य की आर्थिक सहभागिता, (vi) सदस्यों की सीमित क्षतिपूर्ति (उनके इक्विटी पूँजी और सहकारी समिति की प्रगति के लिए अधिशेष का समुचित प्रयोग, (vii) स्वायतत्ता और स्वतंत्रता, (viii) शिक्षा, प्रशिक्षण और सूचना, (ix) सहकारी समितियों के बीच सहयोग और, (x) समुदाय के लिए चिंता। इनके साथ सिद्धांतों का निहितार्थ है : (क) सदस्य भी सहकारी समितियों की सेवाओं के उपयोक्ता हैं; (ख) प्रत्येक

सदस्य को एकसमान मतदान का अधिकार है। (एक व्यक्ति एक मत के सिद्धांत के आधार पर); (ग) सदस्य पूँजी में सम्यक दृष्टि से योगदान करते हैं और वे प्रतिलाभ के रूप में सीमित प्रतिपूर्ति प्राप्त करते हैं (जिसमें से शेष सहकारी समिति की प्रगति के लिए आगे प्रयोग किया जाता है; (घ) वे स्वरूप में स्वायत्त होते हैं, अर्थात् वे स्वावलंबी संगठन हैं जो स्वतंत्रत रूप से सरकार सहित अन्य संगठनों से करार कर सकते हैं; (ङ) वे सदस्यों को शिक्षा और प्रशिक्षण प्रदान करते हैं और सहकारी समिति के लोगों के स्वरूप के बारे में आम जनता को सूचित करते हैं; (च) वे स्थानीय, प्रादेशिक, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय संरचनाओं के माध्यम से साथ काम करके अन्य सहकारी समितियों से स्वतंत्रतापूर्वक एक-दूसरे को प्रभावित कर सकते हैं; और (छ) वे उस समुदाय के बारे में चिंतित हैं जिसमें वे रहते हैं।

सहकारी समितियों का दर्शन

सहकारी समितियों का दर्शन उनके सिद्धांतों से प्राप्त किया गया है। इसमें सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक क्षेत्र सम्मिलित हैं। दूसरी ओर समाज के लिए चिंताओं का सिद्धांत ही उनके सामाजिक दर्शन का निर्माण करता है। उनका राजनीतिक दर्शन उसके खुली और स्वैच्छिक सदस्यता, लोकतांत्रिक सदस्य नियंत्रण और कार्य संचालन में स्वायतत्ता तथा स्वतंत्रता से प्राप्त की जाती है। सदस्य की अंश पूँजी की सीमित प्रतिपूर्ति के सिद्धांत और लाभ के शेष भाग का सहकारी समिति की प्रगति के लिए प्रयोग करना उनका आर्थिक दर्शन बनाता है। शिक्षा, प्रशिक्षण और सूचना का सिद्धांत सभी तीनों सिद्धांतों का प्रभावकारी अनुपालन और अनुप्रयोग संभव बनाता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

व्यापारिक उद्यम के रूप में कार्य करने के लिए दृष्टिकोण

जैसाकि ऊपर उल्लेख किया गया है, सहकारी समितियों में ग्राहक-व्यापारी का द्विभागीकरण नहीं है। उनके दृष्टिकोण में आगे अंतर निम्नलिखित आधार पर निर्दिष्ट किए जा सकते हैं : (i) सहायता, (ii) पूँजी जुटाना और पूँजी के लिए प्रतिलाभ, (iii) निर्णय करना और नियंत्रण, तथा (iv) सदस्यों और प्रबंधन के बीच संबंध। यद्यपि भागीदारी व्यापार प्रतिष्ठानों में सदस्यता बंद रहती है परंतु खुली और स्वैच्छिक सहायता सहकारी समितियों की विशेषता है यही विशेषता संयुक्त पूँजी कंपनियों में भी पाई जाती है। परंतु सदस्यों का एक-दूसरे से व्यक्तिगत परिचय की विशेषता सहकारी समितियां ही होती हैं इसका संयुक्त पूँजी कंपनियों में अभाव रहता है। इसके अलावा, सहकारी समितियों की सदस्यता वे चाहते हैं, जो स्वावलंबी होना चाहते हैं। समाज के कमजोर वर्गों में भी सहकार प्रबल होता है, क्योंकि वे जानते हैं कि वे व्यक्तिगत रूप से अपनी सहायता स्वयं नहीं कर सकते हैं। पूँजी जुटाने पर यद्यपि निजी व्यापार उधार ले सकता है या शेयर जारी कर सकता है परंतु सहकारी समितियां अपनी आत्मनिर्भरता पर अपने दृढ़संकल्प के नाते पूँजी में ऐसा नहीं करतीं। इसके अलावा, सहकारी समितियों में निर्णय करने की शक्ति उसकी आम सभा में निहित है जबकि भागीदारी कंपनियों में यह सीमित व्यक्तियों में है और संयुक्त पूँजी कंपनियों में यह व्यावसायिकों द्वारा चलाया जाता है जो उद्यम चलाने के जोखिमों और अनिश्चितता में भागीदारी नहीं करते। अंत में सदस्यों के बीच संबंध समुदाय और सहयोग के विकास की अवधारणा पर आधारित होते हैं। सहकारी समितियों

के सभी सदस्यों को एकसमान माना जाता है और वे सहकारी उद्यम के जोखिमों का संयुक्त रूप वहन करते हैं।

17.2.2 कृषि सहकारी समितियां : प्रकार और कार्य

कृषि सहकारी समिति कृषि (जैसे खेती, विपणन आदि) से संबंधित आम कार्य करने वाले व्यक्तियों के समूह का उद्यम है और जो अपनी आम समस्याओं जैसे ऋण, आदानों की आपूर्ति आदि के कारण एक साथ हुए हैं। भारत में ऋण सहकारी समितियां तीन-स्तरीय संरचना में अनुक्रम रूप से विकसित हुई हैं। ये आधार/ग्राम स्तर पर प्राथमिक कृषि ऋण समितियां (PAC), जिला स्तर पर जिला केंद्रीय सहकारी बैंक (DCCB) और राज्य स्तर पर राज्य सहकारी बैंक (SCB) हैं। इस प्रकार SCB शीर्षस्थ बैंक है जबकि प्रचालनात्मक स्तर पर PACS हैं, जिनसे अपने सदस्यों की आर्थिक सहकारी हितों के संवर्धन की आशा की जाती है। PACS के आम उद्देश्य इस प्रकार हैं : (i) सदस्यों में बचत को प्रोत्साहित करना, (ii) सदस्यों को ऋण देना, (iii) कृषि संबंधी और पारिवारिक आवश्यकताओं की आपूर्ति करना, और (iv) उनके कृषि उत्पादों के विपणन की व्यवस्था करना। ऋण सहायता तीन प्रकार की होती हैः अल्पकालिक ऋण, मध्यकालिक ऋण, दीर्घकालिक ऋण। अल्पकालिक ऋण बीजों, उर्वरकों और कीटनाशकों की खरीद के लिए और किसानों की मौसमी पारिवारिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए होते हैं। मध्यकालिक ऋण बैलगाड़ी, दुग्ध पशु, उन्नत औजारों, भूमि और कुंओं के सुधार के लिए होता है। दीर्घकालिक ऋण भूमि के स्थायी सुधार, कुंओं और कुंडों के निर्माण, पम्पसेट और अन्य जल उठाने के साधन लगाने, ट्रैक्टरों की खरीद आदि के लिए होता है। सहकारी समितियां गांव के लिए कृषि उत्पादन की योजना बनाने और क्रियान्वित करने तथा शिक्षाप्रद, सलाहकारी और कल्याणकारी कार्यों में भी सहायता करती हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

प्रदत्त सेवाओं/क्रियाकलापों के आधार पर कृषि सहकारी समितियां इस प्रकार भी वर्गीकृत की जा सकती हैंः (i) सहकारी कृषि सहकारी समिति, और (ii) सहकारी सेवा सहकारी समिति। पूर्ववर्ती को आगे तीन प्रकारों में विभाजित किया जा सकता है। जैसे (क) सहकारी काश्तकारी कृषि सहकारी समिति, (ख) सहकारी संयुक्त कृषि सहकारी समिति, (ग) सहकारी सामूहिक कृषि सहकारी समिति। सहकारी काश्तकारी कृषि सोसाइटी में सोसाइटी द्वारा भूमि का विशाल क्षेत्र ग्रहण किया जाता है और तब छोटे-छोटे भूखंडों में विभाजित कर उन काश्तकार किसानों को आबंटित किया जाता है जो सोसाइटी के सदस्य हैं। काश्तकार भूमि के उत्पाद के हकदार होते हैं परंतु उन्हें सोसाइटी को निर्धारित किराया देना पड़ता है। सोसाइटी ऋण, बीज, खाद और भारी कृषि औजारों की आपूर्ति का भार अपने ऊपर लेती है। सहकारी संयुक्त कृषि सोसाइटी में भूमिधारक संयुक्त खेती के लिए अपने छोटे-छोटे भूखंडों को मिला लेते हैं। भूखंडों का स्वामित्व मालिकों के पास रहता है परंतु खेती सोसाइटी द्वारा लिए गए कार्यक्रमबद्ध निर्णयों के अनुसार की जाती है। प्रत्येक सदस्य भूमि के स्वामित्व का ध्यान किए बिना अपने दैनिक श्रम के लिए मजदूरी प्राप्त करता है।

पैदा किए गए उत्पाद का निपटान सामूहिक रूप से किया जाता है। सहकारी सामूहिक कृषि सोसाइटी में भी भूमि पर खेती संयुक्त रूप से की जाती है परंतु भूमि का स्वामित्व सोसाइटी के पास चला जाता है। उत्पाद सामूहिक रूप

से पैदा किये जाते हैं और प्रत्येक द्वारा किए गए श्रम और अन्य संसाधनों के अनुपात में सदस्यों में वितरित किया जाता है। इसके अलावा प्रत्येक सदस्य किए गए कार्य की मजदूरी प्राप्त करता है और शुद्ध लाभ प्रत्येक सदस्य द्वारा अर्जित मजदूरी के अनुपात में विभाजित किया जाता है।

आधुनिक वैज्ञानिक कृषि विधियों के विकास से खेती करने वाले किसानों की बाहरी आपूर्ति पर निर्भरता बढ़ गई है। कृषि सेवा सहकारी समितियां यहां आवश्यक कृषि सेवाओं की आपूर्तियों का सतत् प्रवाह बनाए रखकर उपयोगी भूमिका निभाती है। इस प्रकार सेवा सहकारिता की अवधारणा कृषि सहकारी समितियों की पूर्ववर्ती संकल्पना से निम्नलिखित कार्यों के कारण भिन्न है : (i) कृषि आवश्यकताओं, जैसे उन्नत बीज, उर्वरक, औजार आदि की आपूर्ति की व्यवस्था करना, (ii) किराए पर कृषि मशीनरी की आपूर्ति करना तथा अनुरक्षण करना, (iii) आवश्यक पारिवारिक जरूरतों की व्यवस्था करना, और (iv) सदस्यों में ऋण और बचत प्रोत्साहित करना, ताकि वे आत्मनिर्भर हो सकें। सेवा सहकारी समितियां किसानों की विशिष्ट आवश्यकताओं जैसे सहकारी सिंचाई, चकबंदी, मृदा संरक्षण और भूमि सुधार, पशुधन प्रजनन, बीमा आदि पूरा करने के लिए गठित की गई है।

उपर्युक्त के अलावा सहकारी समिति विशिष्ट उत्पाद/सेवा के आधार पर भी गठित की गई है। इसके उदाहरण हैं : चीनी सहकारी समिति, फल और सब्जी सहकारी समिति, शीत भंडारण और मालगोदाम सहकारी समिति, चावल मिल सहकारी समिति, सहकारी कताई मिल्स, सहकारी जूट मिल्स, सहकारी तिलहन प्रोसेसिंग इकाइयां आदि। कुछ अन्य संबद्ध कृषि सहकारी समितियां भी हैं, जैसे डेयरी सहकारी समिति, मत्स्य पालन सहकारी समिति, कुक्कुट पालन सहकारी समिति, सहकारी पशु समिति आदि।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

17.3 कृषि के विशेष संदर्भ के साथ भारत में सहकारी समितियों का आविर्भाव

भारत में सहकारी समितियों का विकास संकल्पनात्मक रूप से स्थानीय व्यक्तियों/किसानों की स्वैच्छिक सदस्यता पर आधारित संगठन के रूप में हुआ है। वे सहसदस्यों के कल्याण की चिंता के साथ स्वायत्त स्वावलंबी संगठन के रूप में होती हैं। अधिक महत्त्वपूर्ण तो यह है कि सहकारी समितियों से ऐसे तरीके में काम करने की आशा की जाती है कि वे सदस्यों द्वारा लिए गए ऋणों की उगाही के लिए अपेक्षित 'समकक्षी दबाव सिद्धांत'' पर प्रयास करेंगी। इसके लिए आवश्यक है कि सहकारी समितियों की सदस्यता निश्चित संख्या से अधिक नहीं होनी चाहिए ताकि समकक्षी दबाव सिद्धांत प्रयोग अनिवंचित न हो। इसके अलावा प्रारंभ में केवल अपने सदस्यों को बहुत आवश्यक ऋण सुविधा प्रदान करने के लिए होता है, परंतु सहकारी समितियों से धीरे-धीरे मितव्यय (अर्थात् बचत) समितियों के रूप में विकसित होने की आशा की जाती है। अपने वित्तीय स्वावलंबन के आधार पर आत्मनिर्भर होने की संभावना विकसित करने की भी आशा की जाती है। इसके माध्यम से सहकारी समितियों से ऐसे समाज के विकास के लिए सदस्यों को आह्वान करने की आशा की जाती है जो पारस्परिक समर्थन और स्वावलंबन पर आधारित हो।

17.3.1 स्वतंत्रतापूर्व प्रावस्था

(i) 1904-1930

1904 में पहली भारतीय सहकारी ऋण सोसाइटी का मार्ग इस अनुभूति का परिणाम था कि भारतीय किसानों की ऋणग्रस्तता और गरीबी का मूल कारण सूदखोर साहूकारों (देखिए भाग 17.7 शब्दावली में) पर उनकी निर्भरता थी। इसके अनुसरण में बहुत-सी ग्रामीण ऋण समितियां बनाई गई थीं। परंतु अगले कुछ वर्षों के दौरान उनके कार्यकरण पर अनुभव ने सरकार को अधिनियम में कमियां महसूस हुईं। इसके फलस्वरूप इस अधिनियम को 1912 में अधिक व्यापक सहकारी समिति अधिनियम से बदला गया। इस संशोधित अधिनियम से ''ऋण'' शब्द की गैर मौजूदगी दिखाती है कि प्रयासों का उद्देश्य गैर ऋण समितियों को भी मान्यता देता था। इसके बावजूद बाद के वर्षों में ग्रामीण ऋण समिति की प्रधानता जारी रही। बहुत से प्रांतों जैसे मुम्बई, मद्रास, बिहार, उड़ीसा और बंगाल ने इस 1912 के अधिनियम के आधार पर अपने-अपने सहकारी कानून बनाए। बाद में, सहकारी समितियों पर मैक्लागन समिति की रिपोर्ट (1915) के आधार पर प्रांतीय सहकारी बैंकों (PCB) की स्थापना प्रायः सभी बड़े प्रांतों में की गई। इसके बाद 1918 का अति-ब्याज ऋण अधिनियम आया जिसमें साहूकारों द्वारा लिये गये ब्याज पर उच्चतम सीमा लगाने का प्रयास किया गया, इसमें प्रावधान किया गया कि ब्याज की राशि ऋण के मूलधन से अधिक न हो।

1930 की दशाब्दी तक सहकारी बैंकों की परिस्थिति ऐसी हो गई जिससे यह स्पष्ट हो गया कि भारत में उस प्रकार का नहीं हो रहा है जैसा कि यूरोप और अन्य देशों में हुआ है। 1929 में केंद्रीय बैंकिंग जांच समिति (CBEC) की रिपोर्ट में अनुमान लगाया गया कि सहकारी ऋण के कारण वंशागत ग्रामीण ऋणग्रस्तता का संचित भार 100 करोड़ रुपये का था। सरकार ने स्वीकार किया कि सहकारी समितियों की खराब शुरुआत ही मुख्य कारणों से थी, अर्थात् (i) ग्रामीण भारत में सुस्पष्ट सामाजिक-आर्थिक विभाजन, और (ii) बहुत से मामलों में धनी जमींदारों और साहूकारों द्वारा सहकारी समितियों का संचलन। यह अनुभव किया गया कि सहकारी समितियां ग्रामीण साहूकारों से लेन-देन का केवल अतिरिक्त तरीका बन गया था, विकल्प नहीं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इन निराशाजनक परिणामों के बावजूद भारत में कृषि पर रायल कमीशन ने 1928 में प्रस्तुत अपनी रिपोर्ट में सुझाव दिया कि सहकारी आंदोलन को न केवल ग्रामीण ऋण का विस्तार करने पर ध्यान केंद्रित करना जारी रखना चाहिए बल्कि सरकार को भी सहकारी सेक्टर को सहायता और संरक्षण देना चाहिए। इसलिए बाद में वाद-विवाद इस पर केंद्रित रहा कि ग्रामीण स्तर पर एक ही प्रयोजन की सहकारी समिति होनी चाहिए या बहु-प्रयोजनीय होनी चाहिए।

(ii) 1930-1950

भारत में स्वतंत्रतापूर्व सहकारी आंदोलन की दूसरी प्रावस्था वर्ष 1930-1950 हो सकती है। भयंकर मंदी की अवधि के दौरान कृषि मूल्यों में भारी गिरावट आई थी, उधार लेने वालों की भूमि की कुर्की के कानूनी मामले भारी संख्या में हुए। इसकी सरकारी प्रतिक्रिया ऋण समाशोधन अधिनियमों की बाढ़ थी जिन्हें वर्ष

1933 से 1936 के दौरान बहुत-सी प्रांतीय सरकारों द्वारा पारित किया गया था। इस प्रक्रिया की 1935 के कर्जदार संरक्षण अधिनियम द्वारा पूरा किया गया, जिसमें साहूकारों के लिए अनिवार्य लाइसेंसिंग और पंजीकरण का प्रावधान है ताकि लेन-देन और खातों का समुचित रिकार्ड रखा जाए। इस प्रावस्था के दौरान प्रमुख परिवर्धन 1934 में RBI अधिनियम का सांविधिक समावेशन था, इसमें सहकारी ऋण प्रणाली को पुनर्वित्तीयन सुविधाओं का विस्तार करने के लिए RBI में कृषि ऋण विभाग ACD की स्थापना का प्रावधान किया गया। इसके अधीन व्यवहार्य प्रांतीय सहकारी बैंकों, विपणन समितियों और प्राथमिक कृषि ऋण समितियों की स्थापना और सुदृढ़ीकरण पर बल दिया गया था। 1942 में फसलों के ऋतुनिष्ठ प्रचालन और विपणन के लिए प्रांतीय सहकारी बैंकों को ऋण सुविधाएं देना भी शुरू हुआ। 1945 में दो समितियाँ, अर्थात् कृषि वित्त उपसमिति और सहकारी योजना समिति (CPC) गठित की गई। इन दो समितियों की स्थापना विशेष रूप से ग्रामीण सहकारी आंदोलन में रुग्णता के संकेतों पर गंभीर रिपोर्टों के पृष्ठपट में थी। बहुत सी सहकारी समितियां चुकौती में भारी बकाया के कारण अवरुद्ध परिसंपत्तियों की समस्या से भारी दबाव में थीं। इस स्थिति से निपटने के लिए उप-समिति की सिफारिश थी कि समितियों के दावों का समायोजन करने के लिए अवरुद्ध परिसंपत्तियों का परिसमापन किया जाना चाहिए। CPC ने उनकी असफलता के मुख्य कारण के रूप में प्राथमिक सहकारी समितियों का छोटा आकार पाया। उनकी गिरती हुई स्थिति पुनः प्रवलन के उपाय के रूप में CPC ने सहकारी सेक्टर को राज्य के संरक्षण की वकालत की। यह सुझाव स्वीकार किया गया और अनुवर्ती वर्षों में क्रियान्वित भी किया गया। परंतु यह सुझाव सहकारी आंदोलन अर्थात् सहकारी समितियों का सदस्य केंद्रित विशेषता के अपरदन की शुरुआत सिद्ध हुई। दूसरे शब्दों में, CPC के दो सुझावों, अर्थात् राज्य संरक्षण और इसके साथ ही सहकारी समितियों की सदस्यता संख्या में वृद्धि बाद के वर्षों में सहकारी सिद्धांतों के अपरदन के कारक हुए, इसने उनके अदक्ष कार्यकरण में योगदान किया।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

17.3.2 स्वातंत्र्योत्तर प्रावस्था

(i) 1950-1970

तेज और समतापूर्ण आर्थिक विकास पर केंद्रीय नीति फोकस होने के कारण स्वतंत्रता के तत्काल बाद के वर्षों ने देखा कि सहकारी आंदोलन फिर से अधिक प्रमुख स्थान प्राप्त कर रहा है। अखिल भारतीय ग्रामीण ऋण सर्वेक्षण (AIRCS: 1951-1954) ने प्रकट किया कि (i) लगभग 50 वर्षों से सहकारी ऋण समितियां अस्तित्व में होते हुए भी ग्रामीण में ऋण की आवश्यकताओं के लिए औपचारिक ऋण संस्थाओं का अंश 9 प्रतिशत से कम था और उसके अंतर्गत सहकारी समितियों का अंश 5 प्रतिशत से कम था, और (ii) व्यापारियों और धनी जमींदारों द्वारा दिया गया कर्ज ग्रामीण ऋण का 75 प्रतिशत से अधिक था। इस स्थिति को सुधारने के लिए AIRCS ने सुझाव दिया था कि (i) सहकारी समितियों को एकीकृत ग्रामीण ऋण योजना में अगुआई करनी चाहिए जिसके अधीन कृषि के लिए ऋण देने के मामले में सहकारी समितियों के अलावा सभी वाणिज्यिक बैंकों की महत्त्वपूर्ण भूमिका की संकल्पना की गई है और (ii) वाणिज्यिक बैंकों की भूमिका प्रत्यक्ष फार्म उत्पाद प्रकार्यों के बदले कृषि विपणन और संसाधन कार्यों

के लिए ऋण देने में होनी चाहिए। इस प्रकार इसने दो संस्थाएं बनाकर ऋण प्रकार्यों की भूमिका को ऋणेत्तर स्वरूप की भूमिका से पृथक किया है (अर्थात् सहकारी और वाणिज्यिक बैंक) जो अपने-अपने क्षेत्र में उत्तरदायी होंगे। 1954 में RBI ने प्रत्येक बैंक रहित ग्रामीण और अर्ध ग्रामीण क्षेत्रों में कम से कम एक शाखा खोलने के लिए सभी वाणिज्यिक बैंकों को निर्देश जारी किए। यद्यपि इन उपायों से ग्रामीण ऋण बैंकों/सहकारी समितियों के अंश ने 20 प्रतिशत का आंकड़ा पार कर लिया था, परंतु ग्रामीण ऋण में वाणिज्य बैंकों का अंश 2.4 प्रतिशत के निम्न स्तर पर ही रहा। साधारणतः ग्रामीण संस्थागत ऋण प्रवाह के संबंध में इस सुधार के बावजूद यह अनुभव किया गया कि सहकारी समितियों पर ग्रामीण धनी वर्ग का ही वर्चस्व जारी रहा और वाणिज्यिक बैंक अपने प्रचालन में ग्रामीण पूर्वग्रह ग्रस्त बने रहे। इस प्रवृत्ति के पीछे निहित कारणों पर विचार करते हुए के. एन. राज ने 1965 में प्रेक्षण किया कि इसके महत्त्वपूर्ण कारण हैं: बैंकिंग उद्यम अपना लाभ अधिकतम करने के प्रयास में ऐसे क्षेत्रों और कार्यों के सेक्टर में जाने का साहस नहीं करेंगे जिनमें व्यापक सामाजिक और आर्थिक हितों की प्राथमिकता उच्च होती है।

उनका तर्क था कि ग्रामीण ऋण, जिसे सूदखोर साहूकारों से उन्हें मुक्त करने के लिए गरीबों तक पहुंचाना आवश्यक था, मात्र पण्यवस्तु नहीं था। उसे भारत जैसी पिछड़ी कृषि संबंधी अर्थव्यवस्था के लिए महत्त्वपूर्ण ''सार्वजनिक पदार्थ'' के रूप में देखा जाना चाहिए। पिछली सैद्धांतिक नींवों पर आधारित (जो उधार लेने और उधार देने की प्रथाओं के मूल में होता है), राज ने अधिक वर्गों को संस्थागत ऋण के दायरे में लाने अपने विचार संक्षेप में इस प्रकार प्रस्तुत किए, ''बैंकिंग कार्यों में लाभ कमाने का यही आधार उद्यम के लिए सीमाएँ निर्धारित करता है। यह दिखा सकता है कि बहुत छोटे उधार लेने वालों से सौदा करने का सूचना और लेन-देन लागत बहुत अधिक होती है जो हतोत्साहित होने का प्रमुख कारण है। इस दृष्टि से 1969 में भारत के 14 सबसे बड़े अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों के राष्ट्रीयकरण को सामान्य रूप से ग्रामीण विकास के लिए संस्थागत ऋण और खासतौर पर कृषि ऋण की आवश्यकताओं के नए युग में प्रवेश करने के लिए बड़ी नीतिगत पहल के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए।''

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

(ii) 1970-1990

1970-1990 की दशाब्दियों ने सहकारी संस्थाओं के संचालन में राज्य की प्रत्यक्ष सहभागिता सुदृढ़ की। राजकीय नीति इस दृष्टि से प्रारंभ की जाने लगी कि सरकार को सहकारी समितियों के माध्यम से ग्रामीण क्षेत्रों में सस्ते संस्थागत ऋण की आपूर्ति सुनिश्चित करनी चाहिए। बावा समिति (1971) ने जनजाति क्षेत्रों में विशाल बहुप्रयोजनीय सहकारी समितियां स्थापित करने की सिफारिश की। राष्ट्रीय कृषि आयोग (1976) ने राष्ट्रीयकृत बैंकों के सक्रिय सहयोग से किसान सेवा सहकारी समितियां स्थापित करने की सिफारिश की। इसके अलावा सिवरामन समिति (1981) के आधार पर एक नयी मुख्य संस्थागत संरचना अर्थात् राष्ट्रीय कृषि और ग्राम विकास बैंक (नाबार्ड) 1982 में बनाया गया। नाबार्ड ने (RBI के तीन स्कन्धों अर्थात् कृषि ऋण विभाग (ACD), ग्रामीण योजना और ऋण

प्रकोष्ठ (RPCC) और कृषि पुनर्वित्तीयन और विकास निगम (ARDC) का स्थान लिया।

ग्रामीण क्षेत्रों का संस्थागत ऋण वितरण के मुख्य माध्यम के रूप में सहकारी समितियों को दी गई प्रमुखता में सरकार ने सीधे विशाल धनराशि डाली है। ऊपरी निःश्रेणी (टियर) के सहकारी बैंकों को सार्वजनिक जमा राशियां स्वीकार करने तथा अन्य वित्तीय संस्थाओं से उधार लेने के लिए प्रोत्साहित किया गया। परंतु धीरे-धीरे इस प्रणाली का अतिदेय (पुराने बकाए) का भार बढ़ने लगा। यहां तक कि बैंकों की राष्ट्रीयकरण पश्च की प्रावस्था के दौरान ग्रामीण सेक्टर में वाणिज्यिक बैठकों की गहरी पैठ थी, सरकार की वित्तीय सहभागिता भी बढ़ी हुई थी, परंतु सहकारी संस्थाओं के कामकाज में नौकरशाही का पर्याप्त हस्तक्षेप था। ऋण क्षमता के मानदंडों पर समझौता करना प्रायः बेबसी थी। सहकारी समितियों का प्रयोग राजनीतिज्ञों द्वारा गरीबी के लिए बहुत से साहाय्य आधारित कार्यक्रमों को प्रारंभ करने के लिए किया जाता था। सहकारी समितियों के निर्णयों को प्रभावित करने के लिए सहकारी समितियों के बोर्डों में सदस्यता में राजनीतिक वर्ग के सदस्यों को स्थान देकर, राजनीतिक संरक्षण देने आदि के लिए वाहक के रूप में प्रयुक्त की जाती थी। धीरे-धीरे दी गई ऋण की गुणवत्ता का क्षय होता गया और ऋण वसूली में भी समस्याएं उत्पन्न हुईं। किसानों को ऋण से छूट की 1989 की योजना ने सहकारी पद्धति में पहले से ही कमजोर ऋण अनुशासन को बहुत अधिक बिगाड़ दिया और सहकारी समितियों की वित्तीय दशा और भी क्षीण कर दी। इस प्रवृत्ति पर कृषि ऋण समीक्षा समिति (खुसरो समिति, 1989) ने सहकारी समितियों के लिए मितव्ययता और बचत का सुझाव दिया। स्थानीय स्तर पर बेहतर व्यापार योजना की आवश्यकता पर बल देते हुए समिति ने सहकारी समितियों को आत्मनिर्भर बनने की सिफारिश की।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

(iii) 1990 के दशक के बाद

1990 के दशक के बाद सहकारी समितियों के पुनःपोषण के तरीके तलाशने के अधिक सम्मिलित प्रयास किए गए। सहकारी सेक्टर के सुधार के उपाय सुझाने के लिए कई समितियां गठित की गईं। चौधरी ब्रह्म प्रकाश समिति (1991) ने सहकारी समिति के लोकतांत्रिक स्वरूप को बहाल करने और सहकारी समितियों पर विद्यमान कानूनों में त्रुटियों का संशोधन करने के लिए मॉडल कानून तैयार करने का सुझाव दिया। इसके फलस्वरूप, आंध्र प्रदेश पहला राज्य था जिसने 1995 में परस्पर सहायता सहकारी समिति (MACS) अधिनियम बनाया। इसके बाद आठ अन्य राज्यों ने इसी मार्ग का अनुसरण किया। सभी मामलों में नया कानून सहकारी समितियों के लिए राज्य की सहभागिता या उसकी सहायता के बिना लोकतांत्रिक, आत्मनिर्भर और सदस्य केंद्रित बनने का प्रावधान करता है। यद्यपि नए कानूनों से स्वायत्त वित्तीय सहकारी समितियों की नई पीढ़ी के आविर्भाव का मार्ग प्रशस्त करता है परंतु इन परिवर्धनों ने भी सहकारी समितियों के कार्यकरण के तरीके पर कोई प्रभाव नहीं डाला। इसलिए कई विशेषज्ञ/सलाहकार समितियों और कार्यदलों का गठन हुआ। RBI द्वारा (प्रो. ए. वैद्यनाथन की अध्यक्षता में 2004 में) ''सहकारी समितियों का पुनरुद्धार'' पर कार्य दल का गठन भारत में सहकारी समितियों के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण घटना थी। यह न केवल भारत में सहकारी अनुभव के 100 वर्षों के पूरा होने के

कारण महत्त्वपूर्ण था बल्कि कई अन्य समितियों द्वारा इसकी अधिकांश सिफारिश पर पुनः बल दिया गया और बाद के वर्षों में उन्हें सरकार ने क्रियान्वित किया। इस कार्य दल की सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण सिफारिशों में दो हैं : (i) सहकारी संस्थाओं को लोकतांत्रिक, सदस्य संचालित, स्वायत्त और आत्मनिर्भर बनाने के लिए कानूनी ढांचे और संस्थागत संरचना में सुधार, और (ii) केंद्र और राज्य दोनों सरकारों द्वारा परस्पर सहभागिता द्वारा सहकारी समितियों को वित्तीय सहायता प्रदान करने का विचार, जिसका उद्देश्य संचित क्षतियों को समाप्त करना और उनका पूँजी आधार सुदृढ़ करना है। अभी हाल ही में गठित समितियों में से रिपोर्ट एस.जी. पाटिल की अध्यक्षता में सहकारी समितियों पर उच्च शक्ति प्राप्त समिति (2009) है की रिपोर्ट उपलब्ध है। इसका कहना है कि बारबार सरकारों और योजना आयोग द्वारा लगातार बल देने के बावजूद सहकारी समितियों को उनका सही महत्त्व नहीं दिया गया है। समिति ने संविधान से और बहुराज्य सहकारी अधिनियम, 2002 में विशिष्ट कुछ संशोधन विनिर्दिष्ट किए। आप उनके बारे में इस इकाई के भाग 17.5 में पढ़ेंगे।

बोध प्रश्न 1

लगभग 50 शब्दों में उत्तर दीजिए।

1) किस तरीके में 1918 के अतिब्याज उधार अधिनियम ने ऋणग्रस्त किसानों की सहायता करने का प्रयास किया?

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

....

....

2) वे दो कारण क्या हैं जिनसे भारत में सहकारी समितियां 20वीं शताब्दी के प्रारंभ में अपने निर्माण के प्रारंभिक वर्षों में सफल नहीं हो सकी?

....

....

....

....

3) किस अधिनियम ने अनौपचारिक ग्रामीण ऋण लेन-देन का रिकार्ड रखने का प्रयास किया? इसने किस तरीके से इसे प्राप्त करने का प्रयास किया?

....

....

....

....

4) सहकारी योजना समिति के महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष क्या थे जिनमें भारत में सहकारी समितियों की असफलता के कारण भी बताए गए थे?

....

....

....

....

5) सहकारी समितियों के कार्य-निष्पादन पर AIRCS (1951-54) सर्वेक्षण के दो निष्कर्ष क्या थे?

....

....

....

....

6) प्रसिद्ध अर्थशास्त्री स्व. प्रो. के.एन. राज ने सामाजिक सेक्टर बैंकिंग के मामले में वाणिज्यिक बैंकों के घटिया कार्य-निष्पादन में विभेद कैसे किया?

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

....

....

7) 1960 के दशक के अंत में कृषि के लिए प्राथमिकता सेक्टर बैंकिंग पर सरकार द्वारा लिए गए मुख्य नीतिगत निर्णय क्या थे? वे संस्थागत पुनर्संरचना परिवर्तन क्या थे जिनका अनुसरण सरकार के इस मुख्य नीतिगत निर्णय के बाद अनुवर्ती दशाब्दी में किया गया?

....

....

....

....

8) क्या आप उस एक योजना की पहचान कर सकते हैं जिसने 1980 के दशक के अंतर में सहकारी समितियों का ऋण अनुशासन की समस्या को अधिक गंभीर बनाने में योगदान किया? किस समिति ने दो उपायों का सुझाव दिया जो ऐसे संदर्भ में स्वावलंबी होने के लिए सहकारी समितियों के लिए अपेक्षित थे?

....

....

....

....

9) बहुत-सी राज्य सरकारों द्वारा 1990 की दशाब्दी के बाद बनाए गए नए कानूनों ने किस तरीके से भारत में सहकारी समितियों के उद्देश्य में सहायता की?

....

....

....

....

10) किन कारणों से आप 2004 में गठित ''सहकारी संस्थानों का पुनरुद्धार'' पर कार्यदल को भारतीय सहकारी समितियों के इतिहास में महत्त्वपूर्ण विकास समझते हैं? इस कार्यदल की दो महत्त्वपूर्ण सिफारिशें क्या थीं?

....

....

DIKSHANT IAS

....

Call us @7428092240

....

17.4 भारत में कृषि सहकारी समितियों का कार्य-निष्पादन

सहकारी समितियों के कार्य-निष्पादन का मूल्यांकन निम्नलिखित चरों पर अनुभवजन्य आंकड़ों के आधार पर किया जा सकता है : सहकारी समितियों की संख्या, सहकारी समितियों में सदस्यों की संख्या, प्रति समिति औसत सदस्य, कुल जमाराशि, कुल ऋण, ऋण शेष, ऋण लेने वाले सदस्यों की संख्या, दिए गए ऋण से ऋण शेयर का अनुपात, आदि। यद्यपि समष्टि स्तर के आंकड़े (अर्थात् अखिल भारतीय सर्वेक्षण परिणामों पर आधारित आंकड़े) औसत स्तर पर सहकारी समितियों का कार्य-निष्पादन ज्ञात करने में सहायक होते हैं, परंतु वे सहकारी समितियों के विशिष्ट उदाहरणों को छुपाते हैं जिन्होंने बेहतर कार्य किया है। उनके बारे में जानने के लिए हमें व्यष्टि स्तर के मामलों के अध्ययनों तक जाना आवश्यक होगा। इस भाग में हम समग्र रूप में PACS (अर्थात् प्राथमिक कृषि सहकारी समितियों) के कार्य-निष्पादन पर विचार करेंगे। PACS पर फोकस करने का कारण यह है कि वे आवेदकों/किसानों के ऋण वितरण करने के लिए उत्तरदायी निम्नतम स्तर की इकाइयां हैं। इनके आंकड़े तालिका 17.1 में प्रस्तुत हैं। इनमें स्पष्ट होता है :

1) दिए गए ऋण के आधार पर 1951-2010 की अवधि के दौरान दीर्घकालिक औसत वार्षिक वृद्धि 14.4 प्रतिशत के उच्च स्तर पर रही है,

2) परंतु शेष ऋण भी उसी दर पर बढ़ा है, अर्थात् 14 प्रतिशत (1951-2012 के दौरान) की औसत वार्षिक। इसने शेष ऋण से दिए गए ऋण का अनुपात समनुरूप 1 से ऊपर रखा है। यह ऋणों की वसूली में सहकारी समितियों के घटिया निष्पादन का सूचक है। कुल में इस परिदृश्य के बावजूद अलग-अलग सेक्टरों में सफलता की कहानियां भी हैं जिन्हें समष्टि आंकड़ों के विश्लेषण द्वारा प्रकट नहीं किया जा सकता।

तालिका 17.1 : PACS की वृद्धि : 1951 से 2010 तक

वर्ष	1951	1961	1971	1981	1991	2001	2006	2010
संख्या (लाखों में)	1.1	2.1	1.6	0.9	0.8	1.0	1.1	1.0
सदस्य (लाखों में)	44.1	170.4	309.6	576.5	801.2	999.2	1252.0	1264.2
औसत सदस्य प्रति PACS	42.0	80.4	192.3	613.3	966.4	1011.3	1176.8	1264.2
जमाराशि (करोड़ में)	4.5	14.5	69.4	291.3	1349.0	13481.1	12561.2	35286.1
ऋण (A) (करोड़ में)	22.9	202.7	577.9	1769.4	4678.9	25698.3	42919.6	74937.5
शेष ऋण (B) (करोड़ में)	29.1	218.0	787.5	2450.6	6877.2	34522.3	51779.0	76479.8
अनुपात B का A से	1.3	1.1	1.4	1.4	1.5	1.3	1.2	1.0

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

स्रोत : NAFSCOB, PACS का कार्य-निष्पादन, 2009-10

ऋणेत्तर सहकारी सफलता के साक्ष्य

स्वतंत्रता के बाद पहले कुछ दशाब्दियों के दौरान, सहकारी सेक्टर ने प्राथमिक सेक्टर उत्पादन में महत्त्वपूर्ण योगदान करने में महंती भूमिका निभाई है। इसकी भूमिका बीजों की नई किस्मों, उर्वरकों और नकदी ऋण वितरण करने के नेटवर्क बनाकर तथा सहभागिता का वातावरण और गरीब लोगों में आशा उत्पन्न कर हरित क्रांति की सहायता करना था। गुजरात में अमूल से प्रारंभ करते हुए इसने डेयरी सेक्टर में असाधारण प्रगति की। इस समय वहां 170 से अधिक जिला सहकारी दुग्ध उत्पादक संघ हैं। डेयरी सेक्टर में सहकारी समितियों ने विशालतम दुग्ध उत्पादन करने वाले राष्ट्र के रूप में भारत का रूपांतरण किया है, देशभर में लाखों दुग्ध उत्पादकों की पारिवारिक आय में पर्याप्त वृद्धि की है, परंतु बाद में इस सेक्टर ने थकावट के चिन्ह दिखाने शुरू कर दिए। डेयरी सेक्टर में उत्पादन आगे नहीं बढ़ा है और पूंजी निर्माण की दर अपर्याप्त है।

17.4.1 सहकारी समितियों के कार्य-निष्पादन को प्रभावित करने वाले कारक

भारत में सहकारी समितियों के घटिया कार्य-निष्पादन के लिए उत्तरदायी कारक की पहचान इस प्रकार की जा सकती है:

सदस्यता आकार : प्रारंभ में, मैकलेगमन समिति (1914) ने सहकारी समितियों के छोटे आकार पर बल दिया था। परंतु सहकारी समितियों को सभी बुराइयों के लिए रामबाण के रूप में देखने से वर्षानुवर्ष सहकारी समितियों की सहायता का आकार बढ़ा। यह इस मान्यता के कारण हुआ कि सहकारिता की अर्थक्षमता सुनिश्चित करने का सबसे सरल उपाय अधिक सहायता प्रदान कर उसका आकार बढ़ाने को मान लिया गया। समष्टि स्तर के आंकड़ों का अनुभाविक सत्यापन प्रकट करता है कि जैसे PACS की सदस्यता का आकार बढ़ता है, ऋण वसूली उतनी ही कठिन हो जाती है। इस प्रकार, समकक्षी दबाव, जिससे वसूली पूँजी का पुनःचक्रण सुनिश्चित करने की आशा की गई है, विशाल सदस्यता आकार पाकर समाप्त हो गया। परिणामतः ऋण बकाया ने सहकारी समितियों के कार्य-निष्पादन को बुरी तरह से प्रभावित किया।

सरकार की सहभागिता और नियंत्रण : PACS की अंश पूँजी में सरकार द्वारा बढ़ा हुआ अंशदान भी उनके निष्पादन के लिए हानिकारक सिद्ध हुआ। सिद्धांततः सहकारी समितियों से आत्मनिर्भर स्वरूप ग्रहण करने की आशा की जाती है, अर्थात् उनसे न तो राज्य से और न ही बाजार से धन लेने की आशा की जाती है। सरकार केंद्रित सहकारी संरचना ने (जो सरकार द्वारा डाली गई पूँजी से बनाई जाती है), भारत में सहकारी समितियों के सदस्य केंद्रित प्रचालन के सिद्धांत के उल्लंघन में योगदान किया है।

सहकारी नेतृत्व का नौकरशाहीकरण/राजनीतिकरण : औपनिवेशी शासकों ने सहकारी समितियों के रजिस्ट्रार के पद का प्रावधान किया था। यह तर्क दिया जाता है कि ऐसी पदस्थिति लोगों के आंदोलन के रूप में उन्हें विकसित न होने देने के लिए सहकारी समितियों पर नियंत्रण का प्रयोग करने के लिए बनाया गया था। स्वतंत्र भारत की सरकार ने न केवल यह पदस्थिति बनाए रखी बल्कि सहकारी समितियों के प्रशासन और प्रबंधन के लिए नौकरशाही शक्ति ढांचे की जटिल संरचना भी जोड़ी। इसके अलावा, सहकारिता आंदोलन के तर्क/सिद्धांतों के विरुद्ध जाते हुए सहकारी समितियों के बोर्डों में महत्त्वाकांक्षी राजनीतिक व्यक्तियों की नियुक्ति की प्रवृत्ति द्वारा सहकारिता नेतृत्व का राजनीतिकरण भी किया।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बहुदिशिक सुधार एजेंडा का अभाव : अर्थव्यवस्था के खुलेपन के फलस्वरूप बहुत से सेवा क्षेत्रों से सरकार की वापसी की प्रक्रिया में सहकारी उद्यमों के महत्त्व पर प्रकाश डाला गया। दूसरे शब्दों में, बढ़े हुए वैश्वीकरण के दबावों के संदर्भ में सहकारिता स्वावलंबन को अधिक बढ़ावा मिलना चाहिए था। परंतु यह नहीं हुआ है। इसके 100 वर्षों के इतिहास के बाद भी यह आंदोलन अपनी आधारभूत त्रुटियों के कारण उपयुक्त महत्त्व नहीं पा सका। इसलिए कानूनी, संस्थानिक और नीति परिवर्तनों के सभी पहलुओं को शामिल करते हुए बहुदिशिक सुधार एजेंडा अपनाकर सहकारिता सेक्टर का व्यापक रूप से पुनरुद्धार करना और सुदृढ़ करना आवश्यक है।

बोध प्रश्न 2

लगभग 50 शब्दों में उत्तर दीजिए।

1) संगठनों के संसाधनों और नियंत्रण के उनके स्वामित्व के आधार पर पांच भिन्न-भिन्न प्रकार क्या हैं?

....

....

....

....

2) द्विभागीकृत संबंध का अभाव किस प्रकार सहकारी समितियों के संगठनों के सभी अन्य प्रकारों से पृथक करता है? इस मुख्य अंतर के अलावा, व्यापारिक उद्यमों के रूप में कार्य करने के लिए सहकारी समितियों के दृष्टिकोण के अनुसार अन्य चार अंतर क्या हैं?

....

....

....

DIKSHANT IAS

....

Call us @7428092240

3) ICA 1995 द्वारा अंगीकृत सहकारी समितियों के भिन्न-भिन्न सिद्धांत बताइए?

....

....

....

....

4) कृषि को PACS द्वारा दिए गए ऋण के तीन प्रकार क्या हैं? ये किन कार्यों के निर्मित दिए जाते हैं?

....

....

....

....

5) कृषि सहकारी खेती समितियों के तीन भिन्न-भिन्न प्रकारों का उल्लेख कीजिए। इन तीन समितियों में से किसमे भूमि का स्वामित्व सदस्यों के स्वामित्व से समितियों को अंतरित हो जाता है।

....

....

....

....

6) 'कृषि सेवा समितियों' के चार कार्य बताइए। किसानों की विशिष्ट आवश्यकताओं का प्रकार बताइए जिसे सेवा सहकारिता समितियां पूरा करती हैं।

....

....

....

....

7) PACS द्वारा 1951-2010 के अवधि के दौरान ''दिए गए ऋण'' के संबंध में वृद्धि दर क्या रही है? इसी अवधि के दौरान ''ऋण बकाया'' से इसकी तुलना किस प्रकार है?

....

....

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

8) भारत में सहकारी समितियों ने हरित क्रांति में कैसे योगदान किया है? किस खास क्षेत्र में सहकारी समितियों की सफलता विशेष रूप से प्रशंसनीय रही है?

....

....

....

....

9) किस खास सेक्टर को आप भारत में PACS के प्रतिकूल निष्पादन का संभव कारण कह सकते हैं? यह सहकारी समितियों के किस विशेष सिद्धांत उल्लंघन के कारण है?

....

....

....

....

10) भारत में किन चार कारकों ने PACS के कार्य-निष्पादन को प्रतिकूल रूप से प्रभावित किया है? इनमें से किस एक पर सहकारी समितियों के पुनरुद्धार के लिए विशेष रूप से फोकस किए जाने की आवश्यकता है ताकि सहकारी समितियों की संकल्पित भूमिका प्रभावी ढंग से प्राप्त हो सके?

....

....

....

....

17.5 सहकारी समितियों से संबंधित विधेयन

भारतीय सहकारी सेक्टर ने 2012 में अपने अस्तित्व के 108 वर्ष पूरे कर लिए हैं (1904 में इस पर प्रथम अधिनियम बनाया गया था)। इन सभी वर्षों में विधायी वातावरण और संरचना भारतीय सहकारी सेक्टर के विकास के सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण आयामों में से एक रहा है। इनमें से स्वतंत्रतापूर्व अवधि का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण तो 1942 के **बहुएकक सहकारी समितियां** (1942 का MUCS) विधेयक को माना जा सकता है। इस अधिनियम ने एक से अधिक राज्यों में प्रचालन करने वाली सहकारी समितियों के समावेशन और समापन को संभव बनाया था। स्वातंत्र्योत्तर अवधि में AIRCS (1951-54) की सिफारिशों का अनुसरण करते हुए बहुत राज्यों ने सहकारी समितियों पर अपने कानून बनाए/संशोधित किए। समय के चलते एक से अधिक राज्यों में क्षेत्राधिकार रखने वाली सहकारी समितियों को भिन्न-भिन्न कानूनों का सामना करने में समस्याएँ आने लगीं। इससे बहु-राज्य सहकारी समितियां (MSCS) अधिनियम बनाने की आवश्यकता पैदा हुई।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

17.5.1 बहुराज्य सहकारी समितियां (MSCS) अधिनियम

बहुराज्य सहकारी समितियां (MSCS) अधिनियम 1984 में बनाया गया था। यद्यपि 1942 के MSCS अधिनियम में सुधार की आवश्यकता उसके क्रियान्वयन के कुछ ही वर्षों बाद अनुभव हो गई थी (कि राज्य द्वारा अनावश्यक हस्तक्षेप, स्वायतत्ता की कमी और व्यापक राजनीतिकरण जैसे कारकों ने सहकारी, समितियों के कार्यकरण को गंभीर रूप से क्षति पहुंचाई है)। अनुवर्ती वर्षों में कई समितियों की सिफारिशों के आधार पर विद्यमान सरकार शासित सहकारी कानून को नया व्यक्ति केंद्रित कानून बदलने की आवश्यकता महसूस की गई थी। आंध्र प्रदेश जैसे राज्यों ने पारस्परिक सहायता सहकारी समिति (MACS) अधिनियम बनाया और सरकारी हस्तक्षेप के बिना सहकारी समितियों की धारा ही खोल दी। 2002 में राष्ट्रीय सहकारी नीति की घोषणा और नई संविधि (अर्थात् बहुराज्य सहकारी समितियां (MSCS) अधिनियम 2002) द्वारा 1945 के MSCS अधिनियम का प्रतिस्थापन इस संबंध में सरकार द्वारा दो अन्य प्रमुख पहलें थी। बाद में, सहकारी ऋण संस्थाओं के पुनरुद्धार पर कार्यदल (2004) की सिफारिशों के अनुसार सरकार ने मई, 2006 में 106वाँ संविधान संशोधन विधेयक प्रस्तुत किया। स्पष्ट रूप में, संशोधन के प्रावधानों का अभिप्राय सहकारी समितियों के स्वायत्त और लोकतांत्रिक कार्यकरण पर बल देना और साथ ही "सदस्यों और पण्यधारियों

के लिए उत्तरदायित्व तथा प्रबंधन सुनिश्चित करना'' था। परंतु संशोधन के प्रस्तावित उपबंधों की कठोर आलोचना हुई। कुछ ने तर्क दिया कि संशोधन सहकारी समितियों को सरकार पर अधिक आश्रित बनाकर सरकारी मशीनरी का भाग बना देगा। इस प्रकार, उनके अस्तित्व का प्रयोजन ही पराजित हो जाता है। बाद में, राष्ट्रीय सलाहकार समिति और कृषि पर स्थायी संसदीय समिति (PSCoA) सहित बहुत-सी समितियों और आयोगों ने इस विचार से सहमति व्यक्त की। PSCoA ने विशेष रूप से अनुमोदन किया कि विधेयक को व्यापक मॉडल कानून के रूप में परिवर्तित किया जाए। वैसे इस विषय पर बहस अभी भी जारी है। सहकारी समितियों का कार्यकरण सुदृढ़ करने के लिए 2002 के MSCS अधिनियम के कुछ मुख्य संशोधन उभर कर आए हैं।

17.5.2 MSCS अधिनियम, 2002 में प्रस्तावित संशोधन

सहकारी समितियों पर उच्च अधिकार प्राप्त समिति ने 2009 में अपनी रिपोर्ट और दूसरी ARC, 2008 की नवीं रिपोर्ट में MSCS अधिनियम, 2002 में संशोधन करने के लिए बहुत से सुझाव दिए गए हैं। कुछ प्रस्तावित महत्त्वपूर्ण आशोधन निम्न प्रकार हैं :

1) सहकारी समिति की अंतर्राष्ट्रीय रूप से स्वीकृत परिभाषा, जिसमें उसका स्वैच्छिक, स्वायत्त और लोकतांत्रिक स्वरूप प्रतिबिंबित होता है, अधिनियम में समाविष्ट की जाए।

2) यह सुनिश्चित करने के लिए कि सहकारी समितियां प्रयोक्ता स्वामित्व और उपभोक्ता नियंत्रित हैं, ''सक्रिय सदस्य'' की अवधारणा अधिनियम समाविष्ट की जाए। सक्रिय सदस्य की परिभाषा आगे यह व्यवस्था करने के लिए शामिल की जाए कि केवल सक्रिय सदस्य को ही मतदान/चुनाव लड़ने का अधिकार होगा।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

3) सहकारी नेताओं के लिये, उनके निर्वाचित होने के छह महीने के भीतर सहकारी और व्यवसाय प्रबंधन पर प्रशिक्षण (जैसे कि अन्य देशों में) अनिवार्य बनाया जाना चाहिए। इस तरह का प्रशिक्षण; जो लिंग संवेदनशील होना चाहिए के लिए मैनुअल बनाया जाना चाहिए।

4) ''न्यासी उत्तरदायित्व'' के लिए सुस्पष्ट परंतु प्रर्वतनीय प्रावधान, जैसा कि कंपनी अधिनियम में उपबंधित है, लागू किया जाना चाहिए। सहकारी बोर्डों के निदेशकों के लिए, हितों का टकराव रोकने के लिए कतिपय सूचना देना अनिवार्य होना चाहिए।

5) सहकारी समितियों के लिए समय-समय पर अपेक्षाकृत क्षेत्रों में विशेषज्ञों की सहायता लेना आवश्यक है और इसके लिए उन्हें संविदा आधार पर उपयुक्त विशेषज्ञों की सेवाएँ किराए पर लेने की स्वतंत्रता होनी चाहिए। MSCS अधिनियम 2002 में सहकारी समितियों के बोर्डों में विशेष क्षेत्र के प्रायोजन का प्रावधान बनाया जाना आवश्यक है।

6) सहकारी समितियों की वित्तीय शक्ति सुधारने के लिए अदत्त मतदानहीन शेयर और IPO जारी कर पूँजी बढ़ाना शामिल किया जाना चाहिए। यह प्रावधान इस विचार से किया गया है कि सहकारी समितियों के कार्यकरण में कंपनी के तरीके अपनाए जा सकें।

7) अन्य देशों में अन्यत्र, जहां कहीं सहकारी समितियां सफल हुई हैं उन्होंने कंपनी की तरह कार्य किया है (परंतु सहकारी समितियों के सिद्धांतों के अंतर्गत)। सहकारी समितियां उत्पादक स्वामित्व व्यापारिक कंपनी के रूप में भी पंजीकृत की जाती है। भारतीय सहकारी समितियों को इस दिशा में अग्रसर करने के लिए MSCS अधिनियम के अधीन सहकारी समितियों को भारतीय कंपनी अधिनियम, 1956 के विद्यमान उपबंधों के अधीन उत्पादक कंपनियों के रूप में अपने आपको नियमित करने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। इस सीमा तक कंपनी अधिनियम 1956 में उपयुक्त प्रावधान करने आवश्यक हैं।

17.6 सारांश

भारत में सहकारी समितियों का इतिहास एक शताब्दी से अधिक पुराना है। कृषि विकास में सहकारी समितियों ने हरित क्रांति अवधि में महत्त्वपूर्ण योगदान किया है। परंतु कुछ विशिष्ट क्षेत्रों, जैसे डेयरी सेक्टर, में उनकी सफलता के बावजूद सहकारी समितियां अपने बहुत से प्रारंभिक स्वीकृत सिद्धांतों को सामान्यतः खो चुकी हैं: उन्हें स्वायत्त, स्वैच्छिक, आत्मनिर्भर और लोकतांत्रिक व्यापारिक उद्यमों के रूप में कार्य करना चाहिए जो अपने सदस्यों की आर्थिक आवश्यकताओं और आकांक्षाओं को पूरा कर सकें। वे कारक जिन्हें सहकारी समितियों के कार्य-निष्पादन को प्रतिकूल ढंग से प्रभावित करने वाला माना गया है, उनमें विशाल सदस्यता आकार, सरकारी सहभागिता और नियंत्रण प्रमुख हैं। सहकारी समितियों के पुनर्वलन के लिए उनके लोकतांत्रिक और स्वायत्त मूल्यों को बहाल कर 2000 की दशाब्दी के प्रारंभ में मॉडल कानून का सुझाव दिया गया था। इसके अलावा MSCA अधिनियम 2002 में कई परिवर्तन भी सुझाए गए थे ताकि सहकारी समितियां कंपनियों की तरह कार्य करके अपनी पूँजी आधार सुदृढ़ करने के लिए IPO जारी कर बाजार से पूँजी जुटा पाएं। स्वायतत्ता के संवर्धन के लिए भी सुझाव दिये गए हैं। एक अन्य सुझाव दिया गया है कि उन्हें भारतीय कंपनी अधिनियम के अधीन उत्पादक कंपनियों के रूप में निगमित (अर्थात् पंजीकृत) होना चाहिए। संक्षेप में भारत में सहकारी सेक्टर सुदृढ़ और पुनर्जीवित करने की आवश्यकता का सार रूप में, कानूनी, संस्थानिक और नीतिगत परिवर्तनों के सभी पहलुओं को शामिल करते हुए बहुआयामी सुधार हो सकता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

17.7 शब्दावली

अतिब्याज : ब्याज की असंगत ढंग (उच्च दरों) पर कर्ज देने की प्रथा।

रॉशडेल पायनियर्स : इंग्लैंड में स्वावलंबन और पारस्परिक सहयोग पर आधारित प्रथम उपभोक्ता समिति, रॉबर्ट ओवन द्वारा किया गया था।

न्यासी उत्तरदायित्व : न्यासी शब्द अधिकांशतः उत्तरदायित्व के साथ प्रयुक्त होता है। इस प्रकार सहकारी बोर्डों में न्यासी उत्तरदायित्व प्रदत्त सदस्य से सामान्य नागरिक की अपेक्षा अधिक दृढ़ता से

व्यवहार करने की आशा की जाती है। उसे ऐसी स्थिति में नहीं होना चाहिए कि उसके 'न्यासी कर्त्तव्य' का उसके व्यक्तिगत हितों से टकराव हो। इस प्रावधान से युक्त सहकारी समिति के बोर्ड के सदस्य आचरण का ऐसा मानक अपनाने की आशा की जाती है जिसमें सहकारिता के हितों को सर्वोपरि रखा जाता है।

PACS : PACS या प्राथमिक कृषि सहकारी समितियां ग्राम स्तर पर किसानों को ऋण वितरित करने की आधार स्तर की इकाइयां है। उनकी संख्या के अनुसार, 1951-2010 की अवधि में इसमें अधिक वृद्धि नहीं हुई है परंतु उनका सदस्यता आकार औसत लगभग 10 गुणा बढ़ा है।

17.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Golait, Ramesh (2007), "Current Issues in Agricultural Credit in India : An Assessment", RBI Occassional Papers, Vol. 28, No. 1.

Government of India (2008), Ninth Report of the Second Administrative Reforms Commission on "Social Capital – A Shared Destiny", Chapter 6 on Cooperatives, GoI.

Governmnent of India (2009), Report of the High Powered Committee on Cooperatives, Ministry of Agricuture, GoI. (Chairman: S.G. Patil).

Misra, Biswa Swarup (2006), 'Performance of Primary Cooperatives in India : An Empirical Analysis', Xavier Institute of Management, Bhubneswar [http://mpra.ub.uni-muenchen.d//21890/].

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

17.9 बोध प्रश्नों के उत्तर/संकेत

बोध प्रश्न 1

1) प्रश्न 1 से 10 के लिए भाग 17.2 देखिए और उत्तर दीजिए।

बोध प्रश्न 2

1) देखिए भाग 17.3 और उत्तर दीजिए।
2) देखिए उपभाग 17.3.1 और उत्तर दीजिए।
3) देखिए उपभाग 17.3.1 और उत्तर दीजिए।
4) देखिए उपभाग 17.3.2 और उत्तर दीजिए।
5) देखिए उपभाग 17.3.2 और उत्तर दीजिए।

6) देखिए उपभाग 17.3.2 और उत्तर दीजिए।

7) देखिए भाग 17.4 और उत्तर दीजिए।

8) देखिए भाग 17.4 और उत्तर दीजिए।

9) देखिए उपभाग 17.4.1 और उत्तर दीजिए।

10) देखिए उपभाग 17.4.1 और उत्तर दीजिए।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इकाई 18 संस्थागत वित्त, संविदा कृषि और खाद्य आपूर्ति श्रृंखला

संरचना

18.0 उद्देश्य

18.1 प्रस्तावना

18.2 संस्थागत वित्त (IF)

18.2.1 कृषि वित्त से संबद्ध जोखिम

18.2.2 कृषि ऋण देने वाली संस्थानों का निष्पादन

18.2.3 अन्य पहलें और समस्याएँ

18.2.4 महत्त्वपूर्ण मुद्दे और राज्य की भूमिका

18.3 संविदा कृषि (CF)

18.3.1 संविदा कृषि : अवधारणा और प्रकार

18.3.2 संविदा कृषि की सीमाएँ : इसकी सफलता के लिए आवश्यक दशाएँ

18.4 खाद्य आपूर्ति श्रृंखला

18.4.1 शीत श्रृंखला

18.4.2 मूल्य/आपूर्ति श्रृंखला

18.5 सारांश

18.6 शब्दावली

18.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

18.8 बोध प्रश्नों के उत्तर/संकेत

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

18.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप :

- कृषि के लिए संस्थागत वित्त के भिन्न-भिन्न स्रोत बता सकेंगे;
- कृषि ऋण देने से संबद्ध विशिष्ट जोखिमों को स्पष्ट कर सकेंगे;
- पिछले चार दशकों में कृषि को ऋण देने के प्रयोजन से विशेष रूप से स्थापित प्रमुख संस्थाओं के कार्यों के निष्पादन का विश्लेषण कर सकेंगे;
- भारत में कृषि ऋण/विकास पर अन्य संस्थागत पहलुओं और महत्त्व के मुद्दों की रूपरेखा प्रस्तुत कर सकेंगे;
- ''संविदा कृषि'' की अवधारणा और प्रकार पर चर्चा कर सकेंगे;
- भारत में ''संविदा कृषि'' के कार्य-निष्पादन का मूल्यांकन कर सकेंगे और इससे उसकी सफलता के लिए आवश्यक दशाओं की पहचान कर सकेंगे; और

- ''खाद्य श्रृंखला की अवधारणा'' की ''शीतागार श्रृंखला'', ''मूल्य श्रृंखला'', और ''आपूर्ति श्रृंखला'' जैसी आवश्यकताओं से जोड़ते हुए परिभाषा कर सकेंगे।

18.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में हमने अध्ययन किया है कि सहकारी समितियों का संवर्धन कृषि सेक्टर की ऋण आवश्यकताओं को पूरा करने में सहायता के लिए किया गया था ताकि सूदखोर साहूकारों द्वारा शोषण से गरीब किसानों को मुक्त किया जा सके। हमने यह भी देखा है कि यद्यपि सहकारी समितियों की भूमिका का विस्तार बाद में बहुत से अन्य क्षेत्रों में भी किया गया है परंतु उनकी मुख्य भूमिका किसानों की ऋण आवश्यकताएँ पूरी करना ही रहा। हमने यह भी देखा है कि 1969 में वाणिज्यिक बैंकों के राष्ट्रीयकरण के मुख्य उद्देश्यों में से एक अब तक उपेक्षित सेक्टरों, जैसे कृषि के लिए अधिक बैंक ऋण देना था। इस इकाई में, पहले हम उन मुख्य बातों पर विचार करेंगे जो कृषि सेक्टर को ऋण सेवाएं देने के अधिक जोखिम भरा बना देती हैं। फिर हम 1980-2010 की तीन दशाब्दियों के दौरान कृषि को संस्थागत वित्त प्रदान करने की दिशा में किए गए प्रयासों का विश्लेषण करेंगे। हम कुछ अन्य संस्थागत पहलों, जैसे लघु वित्तीयन संस्थाओं (MFI) के बारे में और भारत में संस्थागत वित्त से संबंधित समस्या के मुद्दों पर भी अध्ययन करेंगे। इसके बाद हम कृषि में एक अलग संस्थागत विकास अर्थात ''संविदा कृषि'' पर विचार करेंगे। 1990 के दशक में विकसित यह परिदृश्य अन्य पहलुओं, जैसे उत्पादों के विपणन और नियत प्रतिलाभ पर किसानों की सहायता करने के अलावा कृषि ऋण को आसान करने के उपाय का भाग था। हम खासतौर पर ''संविदा कृषि'' के प्रकारों/प्रक्रिया के निष्पादन पर उसके इस सफल रूप से कार्य करने के लिए आवश्यक दशाओं की पहचान करते हुए ध्यान केंद्रित करेंगे। पर्यावरण और समानता के समुचित सम्मान के साथ सुव्यवस्थित खाद्य श्रृंखला बनाए रखने का महत्त्व, हाल ही की दशाब्दियों में नीति निर्माण और अनुसंधान का केंद्र रहा है। इस संदर्भ में हम ''खाद्य श्रृंखला'' अवधारणा का, उसके भंडारण, परिवहन, सूचना प्रसारण, मूल्य वर्धन, मूल्य नियंत्रण आदि संस्थागत पहलुओं पर संबद्ध तत्वों के साथ अध्ययन करेंगे।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

18.2 संस्थागत वित्त (IF)

कृषि के संदर्भ में संस्थागत वित्त (देखिए शब्दावली) का संबंध कृषि की ऋण आवश्यकता पूरी करने के लिए सार्वजनिक एजेंसियों, जैसे, सहकारी समितियों या बैंकों, क्षेत्रीय और ग्रामीण बैंकों (RRB) और अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों द्वारा दिए गए ऋण से है। विनियमित ब्याज दरें लेने के अलावा विनियमित संस्थाएँ होने के कारण ''सामाजिक बैंकिंग'' के वृहत्तर राष्ट्रीय उद्देश्य के अधीन प्रायः वे प्राथमिकता सेक्टरों जैसे कृषि से ब्याज की रियायती दरें प्राप्त करते हैं। शब्द ''सामाजिक बैंकिंग'' उन अनौपचारिक उद्यमों और किसान वर्गों (अर्थात् गरीब और सीमांत किसानों का बहुत बड़ा भाग) की ऋण आवश्यकताएँ पूरी कर ''खाद्य सुरक्षा'' सहित छोटे उद्यमों और कृषि संवर्धन की सामाजिक अनिवार्यताओं के लिए बहुत महत्त्व रखता है जिनकी मुख्यधारा बैंकिंग प्रणाली द्वारा उपेक्षित रही है। वित्तीय संस्थाओं को उन विशेष किस्म के जोखिमों का सामना करना पड़ता

है जो मुख्यतया कृषि सेक्टर के विशेष स्वरूप और लक्षणों के कारण उत्पन्न होती है।

18.2.1 कृषि वित्त से संबद्ध जोखिम

कृषि ऋण में खास किस्म के जोखिम हैं। ये निम्नलिखित उत्पन्न होते हैं :

i) राजनीतिक दृष्टि से इसका संवेदनशील स्वरूप, जिसके कारण बहुधा ग्रामीण वित्त बाजार (ऋण माफी) में सरकार का हस्तक्षेप होता है।

ii) अपूर्वानुमेय कारकों पर आश्रित मौसमी कार्य जिनके कारण किसानों का उत्पादन की स्थिति पर कोई नियंत्रण नहीं होता है, परिणामतः उपज में अनिश्चितता उत्पन्न होती है।

iii) बहुत ही विषमताग्रस्त किसान परिवारों के बारे में कम जानकारी उपलब्ध होने के कारण ऋणदाताओं और ऋण प्राप्तकर्त्ता दोनों का उच्च लेन-देन व्यय। यह ऋणदाता द्वारा दिए गए ऋण का पर्यवेक्षण खर्चीला/जोखिमी बनाता है। ऋण लेने वालों के लिए अधिक अवसर लागत भी है, जिसमें लेन-देन व्यय शामिल है, जैसे परिवहन ऋण, फीस और रिश्वत आदि, जो गरीब किसान पर खासतौर पर भारी बोझ सिद्ध होता है।

iv) किसानों की बहुत बड़ी संख्या बहुत मामलों में कम भौतिक परिसंपत्ति के स्वामित्व कारण अपेक्षित ऋण की जमानत प्रस्तुत नहीं कर पाते हैं। परिसंपत्तियों का कानूनी स्वामित्व दिखाने में कठिनाई का सामना करते हैं वहाँ भी वे उन जहाँ उनके पास कुछ परिसंपत्ति होती है;

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

v) गरीब किसानों की एकीकृत उत्पादन/उपभोग आवश्यकताएँ उन्हें उत्पादन हेतु लिए ऋण का उपभोग और सामाजिक आवश्यकताओं में व्यय करने को विवश कर देती है।

उपर्युक्त कारकों/ कारणों से कृषि ऋण से संबद्ध जोखिम का अन्य वाणिज्यिक ऋण को जोखिम से भेद स्पष्ट हो सकते हैं।

18.2.2 कृषि ऋण देने वाली संस्थानों का निष्पादन

संस्थागत वित्त के निष्पादन का निर्धारण करने की प्रत्यक्ष विधि तीन प्रमुख संस्थाओं, अर्थात् सहकारी समितियों, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों (RRB) और अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों (SCB) द्वारा कृषि को दिए गए ऋण के वितरण का अध्ययन करना है। यह हमें समय के चलते दिए गए ऋण के सापेक्ष अंश में परिवर्तन के बारे में भी बता सकता है। इन संस्थाओं के कार्य निष्पादन में वृद्धि देखना भी महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यह उनके कुल कार्य निष्पादन के आकलन के लिए भी आवश्यक है। तालिका 18.1 में तीन दशकों की अवधि में कृषि को तीन प्रमुख प्रकार की संस्थाओं द्वारा दिए गए ऋण में प्रवृत्ति दर्शाती है। प्रवृत्ति से निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं :

- सहकारी समिति का सापेक्ष अंश घटा है। यह 1980-81 में लगभग 57 प्रतिशत से घटकर 2008-09 में 18 प्रतिशत हुआ है। वाणिज्यिक बैंकों के

अंश में तदनुरूपी वृद्धि हुई है। यह इस अवधि के दौरान 40 प्रतिशत से बढ़कर 72 प्रतिशत हुई है।

- RRB जो 1971-72 में प्रारंभ किए गए थे, वे अधिक स्थिर स्थिति में है। कृषि को कुल संस्थागत ऋण में RRB का शेयर 1980-81 में लगभग 2.4 प्रतिशत से बढ़कर 2008-09 में 10.5 प्रतिशत हुआ है।
- 1981 और 2009 के बीच वृद्धि दर के अनुसार SCB ने 16.5 प्रतिशत की चक्रवृद्धि वार्षिक वृद्धि दर (CAGR) दर्ज की है। RRB ने तदनुरूपी अवधि के दौरान 20.2 प्रतिशत की वृद्धि से बेहतर निष्पादन किया है। सहकारी बैकों का निष्पादन इस अवधि के दौरान 9.7 प्रतिशत के CAGR से कम रहा है।
- उप अवधियों के दौरान निष्पादन में विभिन्नता की मात्रा हो सकती है। इसे मानते हुए 1981-2009 की अधिक लंबी अवधि के दौरान तीन प्रकार के संस्थाओं में से प्रत्येक का कुल निष्पादन पर विचार करते हुए अंतर संस्थागत विभिन्नताएँ RRB और वाणिज्यिक बैंकों की कृषि को ऋण का बढ़ता हुआ महत्त्व दर्शाता है।

तालिका 18.1 : कृषि को संस्थागत ऋण का स्रोतवार वितरण

(प्रतिशत)

वर्ष	सहकारी बैंक	क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक (RRB)	अनुसूचित वाणिज्यिक बैंक (SCB)	जोड़
1980-81	57.2	2.4	40.4	100(7538)
1990-91	35.9	6.0	58.1	100(29316)
2000-01	50.3	7.9	41.8	100(91654)
2008-09	17.9	10.5	71.6	100 (357531)
वृद्धि दर 1981-2000(%)	9.7	20.2	16.5	14.2

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

नोट : अंतिम कॉलम में कोष्ठकों के अंदर आँकड़े करोड़ रुपयों में दिया गया ऋण है।

स्रोत : RBI/NABARD

तालिका 18.2 : संस्थागत/असंस्थागत स्रोतों से किसान परिवारों द्वारा कर्ज लेने का सापेक्ष अंश (%)

ऋण का स्रोत	1951–52	1961–62	1971–72	1982	1992	2003
असंस्थागत	92.7	81.3	68.3	36.8	30.6	38.9
संस्थागत	7.3	18.7	31.7	63.2	66.3	61.1
कुल	**100**	**100**	**100**	**100**	**100**	**100**

स्रोत : RBI 1951-52 और 1961-62 और बाद के वर्षों के लिए NSSO, अखिल भारतीय ऋण और निवेश सर्वेक्षण।

- सभी तीन प्रकार की संस्थाओं से 1981-2009 की अवधि के दौरान CAGR के अनुसार कुल निष्पादन 14.2 प्रतिशत है जो कृषि को ऋण के परिमात्रात्मक निष्पादन के अनुसार प्रशंसनीय है (यद्यपि यह सरकार द्वारा निर्धारित लक्ष्य 18 प्रतिशत से कम है)।

इस संदर्भ में यह देखना कि क्या गैर संस्थागत स्रोतों से लिये गए कृषि ऋण के भार में गिरावट हुई है महत्त्वपूर्ण है। इस संबंध में तालिका 18.2 में प्रस्तुत आंकड़े दर्शाते हैं कि कृषि को संस्थागत वित्त की सीमा में निरंतर वृद्धि हुई है। 1951-52 में 7.3 प्रतिशत के निम्न अंश से उठकर 2003 में यह 61.1 प्रतिशत हो गया है (यद्यपि यह 1992 में पहुंचे शीर्ष 66.3 प्रतिशत से कम था)। इस ह्रास का मुख्य कारण 1991 के बाद के वर्षों के दौरान लागू किए गए वित्तीय सेक्टर सुधारों द्वारा संस्थागत ऋण की गति में रुकावट थी। RBI द्वारा वृहत्तर सामाजिक एवं पुनर्वितरणात्मक उद्देश्यों से ऋण प्रणाली की समीक्षा करने के लिए नियुक्त समिति (नरसिम्हन समिति) ने कृषि और लघु उद्योग को प्राथमिकता सेक्टर वरीयता समाप्त करने की सिफारिश की। यद्यपि सरकार ने पूरी तरह से उसकी सिफारिशें नहीं स्वीकार कीं परंतु लगभग एक दशक के अंत तक ग्रामीण बैंकों की शाखाओं के विस्तार को धक्का लगा। इसके फलस्वरूप कृषि को ऋण देने के कार्यों को भी धक्का लगा और अनौपचारिक ऋण पर किसानों की निर्भरता बढ़ी। परंतु बाद के वर्षों में गंभीर कृषि संकट ने सरकार को 1990 के दशक के दौरान लगाए गए प्रतिबंधों में ढील देने के लिए बाध्य किया और 2003-04 में कृषि को बैंक ऋण दुगुना करने की नीति लागू की गई। इससे कृषि ऋण के वितरण में सुधार हुआ जैसा कि समग्र संस्थागत वित्त की वृद्धि निष्पादन से देखा गया है। (1981-2009 के दौरान 14.2 प्रतिशत)।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

18.2.3 अन्य पहलें और समस्याएँ

बैंकों के राष्ट्रीयकरण के बाद के वर्षों में महत्त्वपूर्ण नीतिगत पहलों में एक ''प्राथमिकता सेक्टर'' के लिए 40 प्रतिशत बैंक ऋण निर्धारित करने से संबंधित है। प्राथमिकता सेक्टर में कुछ उच्चतम सीमा के साथ कृषि, लघु उद्योग, माइक्रो क्रेडिट, शिक्षा ऋण और आवास ऋण शामिल है। प्राथमिक सेक्टर के लिए निर्धारित 40 प्रतिशत में कृषि का अंश 18 प्रतिशत है। प्राथमिकता सेक्टर ऋण के अधीन कृषि सेक्टर को ऋण में भिन्न-भिन्न कृषि कार्यों के लिए स्वीकृत ऋण भी शामिल हैं और छोटे तथा सीमांत किसानों के मामले में इसमें भूमि खरीदने के लिए ऋण शामिल हैं। 1990 के दशक के मध्य से कृषि को 18 प्रतिशत प्राथमिकता सेक्टर ऋण का लक्ष्य पूरा करने में धक्का लगा है। उदाहरण के लिए, 1996-97 में बैंक ऋण में कृषि का अंश घटकर 12.4 प्रतिशत हुआ और आगे 2002-03 में घटकर 11.0 प्रतिशत हुआ (सिंह, 2012) यद्यपि यह आने वाले वर्षों में बढ़ा है परंतु, 18 प्रतिशत निर्धारित लक्ष्य तक कभी भी नहीं पहुंचा।

कृषि वर्ग की ऋण आवश्यकता की सुलभता आसान बनाने में संस्थागत स्वरूप की कुछ अन्य पहलें भी की गई हैं। उदाहरण के लिए, ग्रामीण आधारभूत संरचना विकास निधि 1995 में स्थापित की गई। इस निधि के विशिष्ट उद्देश्यों में एक उन वाणिज्यिक बैंकों (अर्थात् SCB) को जो 18 प्रतिशत ऋण मार्क पूरा करने में असफल रहे थे, उस राशि का शेष भाग RIDF के पास जमा कराना था।

इस निधि का मुख्य उद्देश्य चल रही ग्रामीण आधारभूत संरचना परियोजनाओं को पूरा करने के लिए संसाधन पैदा करना था। एक अन्य पहल 1999 में किसान ऋण पत्र (KCC) का प्रचलन था। इस पहल के पीछे मुख्य उद्देश्य ऋण प्रणाली में निहित कठोरता दूर करना था और ऋण बाजार को परेशानी मुक्त और लागत प्रभावी तरीके में कार्य कर अधिक कर्जदार मैत्रीपूर्ण बनाना था। परंतु ऋण की सीमाएँ जोत के आकार, फसलक्रम और वित्त की मात्रा के आधार नियत की गईं। जो कारक वित्त की मात्रा निर्धारित करते थे, उनमें फसल उत्पादन के बहुत कार्यों जैसे कृषि मशीनरी का रखरखाव, विद्युत प्रभार आदि सहित पूर्व वर्ष की संपूर्ण ऋण आवश्यकताएँ शामिल होती थीं। KCC स्कीम सभी प्रमुख कृषि वित्त संस्थाओं जैसे SCB, सहकारी समितियों और RRB द्वारा क्रियान्वित हुई है। संस्थागत स्वरूप की एक अन्य पहल सभी तीन प्रमुख संस्थागत समूहों को पुनः शामिल करते हुए स्वावलंबन समूह – बैंक श्रृंखलन (SBL) कार्यक्रम का उद्देश्य युक्तिसंगत ढंग से कम समय में कम लागत पर ऋण प्राप्त कर SHG के सदस्यों को बचत संबद्ध ऋण सहायता प्रदान करना है। यह कार्यक्रम विशालतम ''माइक्रो वित्त'' पहल के रूप में विकसित हुआ है। SBL कार्यक्रम बैंकों को छोटे ऋण देने में अपनी संचालन लागत और जोखिम कम करने में समर्थ बनाता है। इस पहल ने गरीबों को सुलभता और ऋण प्रवाह में बहुत अधिक सुधार किया है। मुख्यतया महिलाओं का समूह होने के कारण इस कार्यक्रम ने गरीबों और साधनहीन व्यक्तियों का वित्तीय समावेशन प्रोत्साहित किया है। SBL की विशिष्ट विशेषता उसकी समय पर वसूली है। कृषि वित्त के संदर्भ में SBL की सदस्यता में किसान परिवारों से 80 प्रतिशत सदस्यता का होना बहुत महत्त्वपूर्ण है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

अपेक्षाकृत हाल ही की एक अन्य संस्थागत पहल माइक्रो वित्त संस्थाओं (MFI) का आविर्भाव है। यद्यपि अधिकांशतः SBL की भांति MFI बहुत पहलुओं में भिन्न है, जैसे– (i) वे सरकार के सांचे में काम नहीं करते हैं; (ii) वे सामाजिक स्तर पर संग्रहण नहीं करते, (iii) पूर्णतः लाभोन्मुखी संगठन हैं, जो ग्रामीण ऋण बाजार में संस्थागत शून्यता को विशुद्ध व्यापार अवसर आदि के रूप में देखते हैं। वे NGO (अर्थात् गैर-सरकारी संगठनों) के माध्यम से कार्य करते हैं जो स्वावलंबन समूह बनाते है जिनका उद्देश्य मात्र छोटे ऋणकर्त्ताओं को ऋण देना और समयबद्ध तरीके से उनसे वसूल करना है। वे जबरदस्ती वसूली प्रक्रिया अपनाने के लिए विशेष रूप से जाने जाते हैं। MFI के कार्य उन स्थानों तक सीमित हैं जहाँ SBL कार्यक्रम सफल हैं। MFL ग्रामीण क्षेत्रों के बहुत अंदर तक फैले हुए है, विशेषकर जहाँ अपर्याप्त संस्थागत ऋण सुविधाएँ हैं। उनका कार्यकरण सामाजिक बैंकिंग की भावना के विपरीत है और बाद में उन्हें ''नए वेश में साहूकार'' नाम दिया गया है।

18.2.4 महत्त्वपूर्ण मुद्दे और राज्य की भूमिका

छोटे/सीमांत किसानों को ऋण के अंश में गिरावट

1981-2002 की अवधि के दौरान संपूर्ण प्रचालित (कृषि अधीन) क्षेत्र में सीमांत किसानों की संख्या बढ़ी है। परंतु उनके ऋण का अंश, उनके द्वारा प्रचालित क्षेत्र के अनुपात में ही बढ़ा है। यह (छोटे/सीमांत किसानों को वितरित बैंक ऋण अंश के 1982 में 1.02 से गिरकर 2003 में 0.41 होने के लिए उत्तरदायी

है। पांच एकड़ से अधिक के फार्मों का तदनुरूपी अनुपात 1.08 से बढ़कर 1.48 हुआ है। छोटे और सीमांत किसानों के ऋण के अंश में गिरावट पर तत्काल कदम उठाने आवश्यक है ताकि कुल वितरित ऋण में उनके अंश में सुधार हो।

क्षेत्रीय असमानताएँ

वितरित ऋण में बड़ी क्षेत्रीय असमानताएँ भी हैं। दक्षिणी क्षेत्र में वितरित कुल कृषि ऋण का लगभग एक-तिहाई वितरित हुआ है, यद्यपि वे देश के कुल किसान परिवारों का पाँचवें भाग से भी कम हैं। पाँच राज्यों अर्थात् आंध्र प्रदेश, उत्तर प्रदेश, तमिलनाडु, कर्नाटक और महाराष्ट्र में बैंक ऋण का 50 प्रतिशत से अधिक वितरित हुआ है। इसके विपरीत ऋण में उत्तर-पूर्वी और पूर्वी क्षेत्रों को अंश काफी कम रहा है। उदाहरण के लिए, कृषि ऋण में बिहार का शेयर मात्र 2.4 प्रतिशत है जबकि किसान परिवारों की कुल संख्या में उसका शेयर 8 प्रतिशत है। आधे भारतीय राज्यों/संघ राज्य क्षेत्रों का ऋण में अंश एक प्रतिशत से भी कम है। भारत के राज्यों में कृषि का इस असमान प्रवाह का समंजन करना आवश्यक है। उत्तर-पूर्वी, पूर्वी और केंद्रीय प्रदेशों के जिलों के ऋण जमा (C-D) अनुपात दक्षिणी प्रदेशों की अपेक्षा निम्न देखे गए हैं।

राज्यों की भूमिका : कृषि की सुस्पष्ट विशेषताएँ, जो इसे सेक्टर की प्रभावशाली ढंग से सेवा करना वित्तीय संस्थाओं के लिए अधिक जोखिमी बनाता है उन पर सरकार की ओर से विशेष प्रयास करना आवश्यक है ताकि वित्त बाजार कृषि सेक्टर और ग्रामीण समुदाय की अधिक प्रभावी ढंग से सेवा कर सके। अधिक सुस्पष्ट रूप में राज्य की भूमिका में निम्नलिखित कार्य शामिल होने चाहिए।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

- बुनियादी ग्रामीण आधारभूत संरचना का सुधार जैसे सड़कें, बिजली, संचार, विपणन, आधारभूत संरचना, सिंचाई आदि। इसे पहले दौर में वित्तीय आबंटन बढ़ाकर और दूसरे में स्वीकृत परियोजनाओं की निगरानी सुधार कर किया जा सकता है।
- ''सार्वजनिक उत्पादन'' जैसे सूचना, HRD के लिए सुविधाएँ और कृषि अनुसंधान की व्यवस्था में सहायता करना।
- समुचित वित्तीय प्रणाली स्थापित करना जो (i) प्रभावकारी वित्तीय मध्यस्थता की संचालन लागत घटाती है और वित्तीय सेवाओं तक किसानों की पहुंच बढ़ाता है, और (ii) वित्तीय संस्थानों की सहायता करने के साथ-साथ सुसंगत भूमि रिकार्ड और काश्तकारी अधिकार स्थापित कर समुचित ऋण वितरण सुकर बनाना।
- द्वितीय स्तर या शीर्षस्थ वित्तीय संस्थाओं के सुदृढ़ीकरण द्वारा प्राथमिक वित्तीय मध्यस्थों के ऋण देने का कार्य सुकर बनाना, और
- जोखिम प्रबंधन क्रियाविधि विकसित करना; जैसे फसल बीमा, ऋण गारंटी योजना (जहाँ वे आर्थिक दृष्टि से उचित हैं और लागत प्रभावी ढंग से प्रशासित हो सकती है)।

बोध प्रश्न 1

लगभग 50 शब्दों में उत्तर लिखिए।

1) कृषि को ऋण सेवाएँ देने में लगी हुई मुख्य सार्वजनिक संस्थाएँ क्या हैं?

....

....

....

....

2) उच्च संचालन लागत कृषि ऋण को किस प्रकार प्रतिकूल रूप से प्रभावित करने वाला कारक है?

....

....

....

....

3) आप सुधारोत्तर वर्षों अर्थात् 1991-2010 के दौरान कृषि की ऋण आवश्यकताएं पूरी करने में RRB और SCB की तुलना में सहकारी बैंकों के निष्पादन का मूल्यांकन कैसे करते हैं?

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

....

....

4) कौन-सा खास कारक 1990 के दशक के दौरान कृषि को संस्थागत वित्त के निष्पादन में गिरावट के लिए उत्तरदायी है? किस सीमा तक इस संबंध में 2000 के बाद के वर्षों में सुधार आया है?

....

....

....

....

5) RIDF स्थापना के पीछे दो मुख्य उद्देश्य क्या हैं?

....

....

....

....

6) 1999 में KCC स्कीम के प्रवर्तन के पीछे मुख्य उद्देश्य क्या था?

....

....

....

....

7) SBL कार्यक्रम के सुस्पष्ट विशेषताएँ क्या हैं जिन्होंने इसे विशालतम माइक्रो वित्त पहल के रूप में विकसित होने में समर्थ बनाया?

....

....

....

....

8) SBL कार्यक्रम से MFI कैसे भिन्न है? हाल ही के वर्षों में MFI अलोकप्रिय क्यों हुआ है?

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

....

....

9) कौन राज्य/क्षेत्र कृषि को संस्थागत ऋण के अंश में पीछे रह गए है? वे सूचक क्या हैं जो इस असमानता को बताते हैं?

....

....

....

....

18.3 संविदा कृषि (CF)

संविदा कृषि की अवधारणा भारतीय कृषि के लिए पूरी तरह से नयी नहीं है। इसके पिछले अनुप्रयोग में औपनिवेशिक अवधि के दौरान नकदी फसलों, जैसे चाय, काफी, रबर आदि के उत्पादन के लिए प्रयोग की गई थी। बाद में, आंध्र प्रदेश में 1920 के दशक में तंबाकू की खेती में इस प्रणाली का पुनःप्रवर्तन

प्रारंभ हुआ। इसका विस्तार कई दशकों में किसानों की भिन्न-भिन्न अनुक्रिया के साथ हुआ है। स्वतंत्रतापूर्व प्रयास, यद्यपि अधिकांशतः छोटे किसान वर्गों का शोषण करने की व्यवस्था थी परंतु स्वातंत्र्योत्तर प्रयास कुछ नवाचारी वानिकी स्कीमों के इर्द-गिर्द केंद्रित रही। इसमें भारत के उत्तरी राज्यों में पहाड़ी पील (पोपला) की खेती अच्छी फार्म अनुक्रिया और सफलता के लिए विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इसकी प्रचालनात्मक विशेषताओं में CF की विधि भिन्न-भिन्न थी जैसे खुली खरीद व्यवस्थाओं से साधारण करार। निवेश व्यवस्था से पर्यवेक्षित उत्पादन, जोखिम कवरेज के साथ आबद्ध ऋण अग्रिम आदि। इसलिए इसके सही परिप्रेक्ष्य में, यह प्रतिस्पर्धात्मक उत्पादन और विपणन पद्धतियों का विकास है।

18.3.1 संविदा कृषि : अवधारणा और प्रकार

संविदा कृषि की परिभाषा उन कृषि और बागवानी उत्पादों के उत्पादन और आपूर्ति की प्रणाली के रूप में की गई है जिसमें उत्पादकों/आपूर्तिकर्त्ताओं तथा क्रेयताओं के बीच वायदा ठेका अंतर्निहित होता है। संविदा किसान द्वारा कतिपय प्रकार की कृषि पण्यवस्तु क्रेयता, सामान्य तथा बड़ी कंपनी को किए गए वायदे के अनुसार सहमत समय, कीमतों और मात्रा में प्रदान करने की प्रतिबद्धता है। संविदा के अनुसार किसान के लिए अपनी भूमि पर संविदाकार की फसल पैदा करेगा और उत्पाद की कतिपय मात्रा उस क्रेता को सौंपेगा, ये मात्रा प्रत्याशित उपज और संविदा युक्त क्षेत्रफल पर आधारित होती है। विशेष किस्म की संविदा वह है जिसमें संविदाकार सामग्री, आदान तथा भूमि और श्रम आपूर्ति करने वाले किसान को खेती के लिए अपेक्षित तकनीकी सलाह भी देता है। आर्थिक उदारीकरण और वैश्वीकरण बाजार के वर्तमान संदर्भ में संविदा कृषि को विशेष रूप से प्रमुख अंतर्राष्ट्रीय दाता एजेंसियों, बहुराष्ट्रीय कंपनियों और सरकार द्वारा भारतीय कृषि की समस्याओं के समाधान के रूप में समझा जा रहा है। यह तर्क दिया जाता है कि निजी क्षेत्र सहभागिता संविदा कृषि के माध्यम से प्रोत्साहित होगी और भूमि पट्टे की व्यवस्था से फसल उत्पादन के लिए, विशेषकर तिलहन, कपास और बागवानी फसलों के लिए प्रौद्योगिकी हस्तांतरण, पूँजी प्रवाह और निश्चित बाजार के निर्माण की प्रक्रिया तेज होगी।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

संविदा कृषि के प्रकार : दो प्रकार के प्रतिमानों अर्थात् प्रत्यक्ष वसूली प्रतिमान और खुला स्रोत मध्यस्थ प्रतिमान बीच संविदा कृषि पर साहित्य में अंतर किया गया है। पूर्वोक्त का संबंध उत्पादन के लिए कच्चे माल का प्रापण और उनका बाह्य विपणन के अनुसार फार्म-फर्म सहबंधन के किस्म से है। पश्चोयुक्त का स्वाभाविक परिणाम द्विपक्षीय/त्रि-पक्षीय प्रतिमान है जिसमें विनिमय की शर्तें अधिक स्पष्ट रूप से परिभाषित की जाती हैं।

प्रत्यक्ष प्रापण मॉडल

इसके अधीन फार्म फर्म सहबंधन के अनेक प्रतिमान हैं ये साधारण विपणन करार से जोखिम भागीदारी, वायदा बाजार और वायदा करार तक हैं। इन सभी व्यवस्थाओं का उद्देश्य ''आपूर्ति श्रृंखला'' गतिशील रखना है, जिसके लिए, प्रसंस्कारी और खुदरा व्यापारी छोटे व्यापारियों से या सरकारी नियमित बाजारों के बदले सीधे किसानों से अपने कच्चे माल का स्रोत चुनते हैं। ऐसे प्रापणन को उसकी कम संचालन लागत से और सरकारी नियमित बाजारों से प्रापण

से संबद्ध गुणवत्ता समस्याओं से बचने के कारण वरीयता दी जाती है। ऐसी व्यवस्थाओं की सुस्पष्ट विशेषता यही है कि साधारणतया किसानों से कोई संविदात्मक अनुबंध नहीं होता है। व्यापारियों/किसानों से गुणवत्ता मानदंड की संतुष्ट की शर्त पर उत्पाद खरीदा जाता है। बहुत से खुदरा व्यापारी कंपनियां जैसे रिलाइन्स, स्पेन्सर्स और फूड बाजार इस समय इसी मॉडल को अपना रहे हैं। परंतु किसानों से सीधा प्रापण केवल उन राज्यों में किया जा सकता है जिन्होंने प्रस्तावित मॉडल अधिनियम, 2003 के आधार पर अपना कृषि उत्पाद विपणन समिति (APMC) अधिनियम संशोधित कर लिया है (जिसमें उत्पादों से क्रेयता सीधे खरीदने की अनुमति दी गई है)। उन राज्यों में जिन्होंने अपने APMC अधिनियम संशोधित नहीं किया है, सरकारी नियमित बाजारों के माध्यम से खरीद की जाती है। परंतु बाद में ऐसे दृष्टांत भी हैं, जहाँ खुदरा व्यापारी और प्रसंस्कारक (जैसे फील्ड फ्रेश, पेप्सिको और निज्जेर) मात्रा, गुणवत्ता और पूर्व-सहमत मूल्य विर्निदिष्ट करते हुए किसानों से संविदात्मक खरीद व्यवस्था का अनुबंध करते हैं। इनमें से कुछ किसानों को विस्तार सेवाएँ, बीजों और अन्य निवेशों आपूर्ति की तथा ऋण सुविधाएँ जैसी (किसानों को दिए गए अंतिम भुगतान में समायोजित लागत के साथ) अन्य सहायताएँ भी प्रदान करते हैं। ऐसा पश्चानुगमन सहबंधन बाजार की मात्रा और गुणवत्ता आवश्यकताओं और ऐसी आवश्यकता द्वारा संचालित होता है कि गुणवत्ता मानकों को पूरा करने के लिए उत्पाद की सुगम और नियमित आपूर्ति सुनिश्चित हो। यह प्रवृत्ति ऐसी बदलती हुई प्रतिस्पर्धात्मक दशाओं का सूचक है जिसमें कच्चे माल की आपूर्ति की अनिश्चितता कंपनियों को अपने व्यापार में अस्थिरता का अनुभव करा रही है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

खुला स्रोत मध्यस्थता प्रतिमान

खुला स्रोत मध्यस्थता प्रतिमान में बाजार कीमतों, फसल, अच्छी कृषि प्रणालियों आदि के बारे में किसानों की जानकारी देने का प्रावधान है। मुख्य उद्देश्य ज्ञान और सूचना के बीच इस अंतर को समाप्त करना है जो कृषि स्तर पर विद्यमान होता है और किसी भी निश्चित करार अवधि के बिना किसानों को आदानों की आपूर्ति भी करना है। उपयुक्त विस्तार सेवाओं की प्रभाविकता के साथ किसानों के खेतों तक नहीं पहुंचने पर अनुसंधान और विकास कार्य अपनी प्रभाविकता खो देते हैं। यही इस प्रतिमान में पहल करने में कंपनियों का अंतर्निहित प्रयोजन है। खुला स्रोत मध्यस्थता प्रतिमान आने वाले समय में किसी निश्चित आपूर्ति लाइन को प्रभावकारी बनाने की संभावना भी दर्शा रहा है।

PPP प्रतिमान

PPP प्रतिमान (अर्थात् पंचायतों और निजी सेक्टर के बीच सार्वजनिक निजी साझेदारी प्रतिमान) में ग्रामीण व्यापार केंद्र या 'कृषि हब'' खुला स्रोत प्रतिमान के रूप भेद हैं। इसमें निगम कंपनियां संविदा के अधीन उत्पाद के लिए निश्चित मार्केट के साथ किसानों के लिए आदान सेवाएँ प्रदान करती हैं। कई निजी क्षेत्र के व्यापारी किसानों तक पहुंचने के लिए व्यापारिक हब की अवधारणा विकसित करने में लगे हुए हैं (जैसे *DSCL हरियाली किसान बाजार, टाटा किसान केंद्र गोदरेज आधार, ITC–ई-चौपाल, चौपाल सभा* आदि) परंतु इन कार्यों का परिमाण अभी ग्रामीण क्षेत्रों की, किसानों की आवश्यकता की तुलना में कम है। ''एग्री हब'' का लाभ है आदानों के साथ किसानों के लिए प्रदान की गई

''एक स्थान पर खरीददारी'' की संभावना। जैसे गुणवत्ता के बीच, प्रौद्योगिकी, ऋण, विस्तार और बीमा सेवाएँ आदि एक ही स्रोत द्वारा किसानों को प्रदान की जाती हैं।

द्विपक्षीय और त्रिपक्षीय प्रतिमान

द्विपक्षीय प्रतिमान केवल कंपनी और किसानों के बीच संविदा है। चित्र 18.1 उत्पादक किसान और कंपनी के बीच सीधा संबंध दिखाता है। जहाँ कंपनी आदान, जैसे बीज, उर्वरक, कीटनाशक आदि उधार पर देती है। अंतिम उत्पाद कंपनी द्वारा नियत कीमत पर खरीदे जाते हैं। इस प्रकार की व्यवस्था भारत में फील्ड फ्रेश, पेप्सिको और निज्जेर के मामले में विद्यमान है। इस प्रतिमान के रूप भेद त्रिपक्षीय प्रतिमान हैं जहाँ सुविधा प्रदाता/बिचौलिया उत्पादक और कंपनी के बीच अंतर्निहित होता है। बिचौलिया सौदाकारी सुकर बनाने में मुख्य भूमिका निभाता है। महाराष्ट्र और कनार्टक में FLI (पेप्सी) पोटेटो, इस प्रकार की व्यवस्था के उदाहरण हैं। चित्र 18.2 दर्शाता है कि संविदा में सम्मिलित तीनों पक्ष कृषि उत्पाद की ''आपूर्ति श्रृंखला'' बढ़ाने में कैसे योगदान करते हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

चित्र 18.1 : द्वपक्षी CF मॉडल

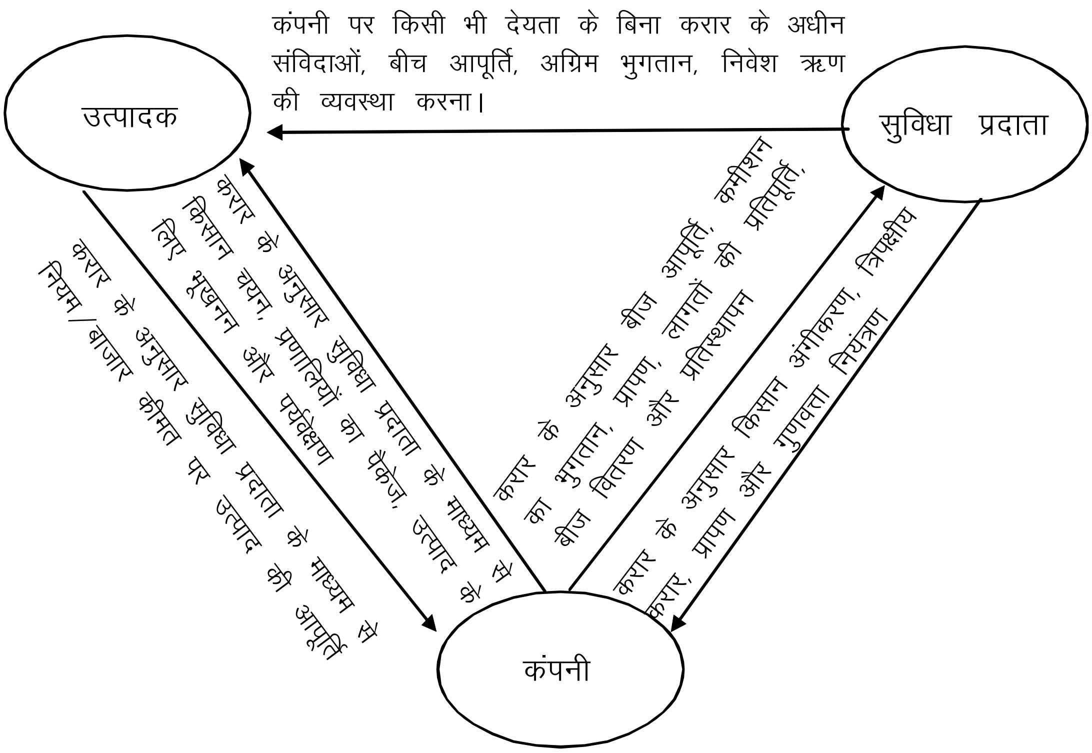

चित्र 18.2 : त्रिपक्षीय CF मॉडल

18.3.2 संविदा कृषि की सीमाएँ : इसकी सफलता के लिए आवश्यक दशाएँ

ऐसे संविदात्मक करार से जो कम सौदाकारी व्यय, निश्चित मार्केट और जोखिमों/अनिश्चितता से निपटने की बेहतर क्रियाविधि प्रदान करता है, से किसानों को लाभ होना एक सिद्धांत मान्य सत्य होगा। दूसरी ओर, संविदाकारी कंपनियों को अधिक निश्चित आपूर्तियों और गुणवत्ता पर पर्याप्त नियंत्रण का लाभ होता है। परंतु इसमें व्यावहारिक समस्याएँ भी हैं परिणामस्वरूप किसानों और कंपनियों दोनों को हानि भी हो सकती है। उदाहरण के लिए, अधिकांश संविदाकारी करार, मौद्रिक या अनौपचारिक स्वरूप के होते हैं। यहां तक कि लिखित संविदाओं के मामले में भी बहुधा भारत में उस प्रकार का कानूनी संरक्षण नहीं मिल पाता जैसा अन्य देशों में विद्यमान है। दूसरे शब्दों में, ऐसी संविदा तैयार करना और प्रवर्तन करना सुकर बनाने के लिए बाजार और क्रियाविधियाँ भारतीय संदर्भ में अभी परिपक्व होने की आवश्यकता है। संविदात्मक प्रावधानों की प्रवर्तनीयता के अभाव के कारण किसी पक्ष द्वारा उनका उल्लंघन किया जा सकता है। भारत में किसानों के ऐसे दृष्टांत हुए हैं कि वे जब बाजार कीमतें संविदा कीमतों से अधिक होती हैं संविदाकारी कंपनियों को बेचना मना कर देते हैं और बाजार दशाओं के कारण कंपनियाँ संविदाकृत मात्रा खरीदना या संविदाकृत कीमतों का भुगतान करना अस्वीकार कर देती हैं। इसके अलावा, न तो संविदाकारी कंपनी और न ही किसान इन मुद्दों को न्यायालय में ले जाने के इच्छुक होते हैं। इसलिए बहुधा यह पारस्परिक समझदारी और विश्वास है जो संविदात्मक संबंधों को संचालित करता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

संविदा कृषि में भिन्न-भिन्न राज्य सरकारों के अनुभवों में पंजाब राज्य (जहाँ राज्य ने CF के पक्ष में तर्क दिया है क्योंकि यह फसल विविधीकरण का सबसे अच्छा उपाय है) का मामला उल्लेखनीय है। पंजाब कृषि में बहुत-सी कंपनियों की रुचि बासमती की खेती में है जो सबसे अधिक जल खपत करता है और इस प्रकार पारिस्थितिक दृष्टि से चिंताजनक है। इसलिए पारिस्थितिक बाधा के प्रश्नों और प्राकृतिक संसाधनों, जैसे जल और मृदा धारणीय रखने के लिए चुनौतियों के बीच (CF) में राज्य का अनुभव मिला-जुला रहा है। यद्यपि पंजाब में संविदा के बारे में तर्क दिया जाता है कि परंपरागत फसलों जैसे गेहूँ या धान की तुलना में सस्ती फसलों की सबसे अधिक श्रम प्रधानता के कारण रोज़गार के अधिक अवसर पैदा होते हैं। पंजाब में किसानों के ऐसे दृष्टांत हैं कि उस प्रणाली के प्रति लगातार असंतोष बढ़ रहा है जिसने उन्हें पूरी तरह से उन निगमों के नियंत्रण में डाल दिया है जो न केवल उगाई जाने वाली फसलों के बारे में निर्णय करते हैं बल्कि प्रापण मूल्य भी निर्धारित करते हैं। ऐसी घटनाएँ भी लगातार बढ़ती जा रही हैं जब फसल की घटिया गुणवत्ता के बहाने पूर्व निर्धारित मूल्य भी कम किए जाते हैं। इससे असंतोष अधिक बढ़ा है। कार्य के लिए बढ़ती हुई प्रतिस्पर्धा के कारण मज़दूरी भी घटाकर इतनी कम की गई है कि यह निर्वाह स्तर पर है। इन उतार-चढ़ावों के बावजूद संविदा खेती के संबंध में पंजाब का अनुभव साधारणतया भारत में अधिक सफलतापूर्ण माना जाता है।

संविदा कृषि व्यवस्था की आलोचना की जाती है कि यह कंपनियों और बड़े ज़मींदारों के पक्ष में पूर्वग्रहग्रस्त है। इस प्रक्रिया में छोटे किसानों की सीमित या खराब सौदाकारी शक्ति का दमन होता है। ऐसी स्थितियों में, छोटे किसानों के सकुल बनाने का व्यावहारिक सुझाव दिया गया है जो बड़े पैमाने पर कार्य के प्रभाव का लाभ दे सकता है और किसानों की सौदाकारी शक्ति भी बढ़ा सकता है। विकासशील संविदा प्रतिमानों या फार्म-फर्म सहबंधनों के अन्य रूप जो छोटे जोत धारकों के प्रभावकारी है कि सफल से प्राप्ति भारतीय कृषि इस प्रकार एक मुख्य चुनौती है। छोटे उत्पादकों की दृष्टि से CF पद्धतियों की सफलता के लिए महत्त्वपूर्ण शर्तों में शामिल हैं : (i) प्रापण के लिए बर्धित प्रतिस्पर्धा (द्विपक्षीय या त्रिपक्षीय मॉडल के मामले में एक ही क्रेता के बदले); (ii) किसान के उत्पाद के लिए गारंटीशुदा बाजार; (iii) कंपनियों से किसानों की सौदाकारी शक्ति बढ़ाने के लिए बाजार सूचना और (iv) किसानों के समूहों के माध्यम से सौदे का अधिक बड़ा स्तर। इस संदर्भ में आप छोटे/सीमांत किसान वर्ग द्वारा कर्नाटक और महाराष्ट्र में CF के सफल प्रयोग स्मरण कर सकते हैं जिसके बारे में आप इस पाठ्यक्रम के खंड 2 के भाग 5.5 में पहले ही पढ़ चुके हैं।

बोध प्रश्न 2

लगभग 50 शब्दों में उत्तर दीजिए।

1) क्या आप सोचते हैं कि ''संविदा कृषि'' का अनुभव भारत के लिए नया है? इसके सही परिप्रेक्ष्य में आप किन शब्दों में CF प्रणाली का वास्तविक सार प्रस्तुत करेंगे?

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

....

....

2) विश्व बाजार नीतियों के विशेष वर्तमान संदर्भ में CF प्रणालियों से आप किन लाभों की आशा करते हैं?

....

....

....

....

3) CF के ''खुला स्रोत मध्यस्थता प्रतिमान'' के पीछे मुख्य उद्देश्य क्या है? इस दृष्टिकोण से होकर इन्हें अपने आप को संचालित करने में निगम सेक्टर की कार्रवाई में निहित प्रयोजन को क्या आप निर्धारित कर सकते हैं?

....

....

....

....

4) CF के PPP प्रतिमान में ''एग्री हब'' प्रणाली में किसानों द्वारा क्या लाभ अनुभव हुए हैं?

....

....

....

....

5) चार शर्तें बताइए जिन्हें भारत में CF प्रणाली की सफलता के लिए महत्त्वपूर्ण समझा गया है।

....

....

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

18.4 खाद्य आपूर्ति श्रृंखला

शब्द ''खाद्य आपूर्ति श्रृंखला' का संबंध खाद्य संबंधी व्यापारिक उद्यमों से है जिनके माध्यम से खाद्य उत्पाद उसके उत्पादन स्थान से उसके उपभोग के अंतिम स्थान तक जाता है। खाद्य आपूर्ति श्रृंखला में छह प्रारूपी संबद्धताओं की पहचान इस प्रकार की जा सकती है : आदान, उत्पादक, प्रसंस्कारक, वितरक, थोक व्यापारी, खुदरा व्यापारी और उपभोक्ता। स्मरण करें कि इकाई 16 (भाग 16.2) में हमने पढ़ा है कि उत्पादक और उपभोक्ता के बीच ''चैनल'' की लंबाई कम-से-कम होनी चाहिए ताकि उत्पादक का प्रतिलाभ अधिकतम हो और इस प्रकार, दक्ष खाद्य श्रृंखला की अपेक्षिताएँ उत्पादक के अधिकतम हित से स्वतः समाकलित हो सके। साथ ही उपभोक्ता भी अच्छी अर्थात् कम कीमत का लाभ प्राप्त कर सके। यदि खाद्य आपूर्ति श्रृंखला इष्टतम है, जैसे : किसान → खुदरा व्यापारी →उपभोक्ता। श्रृंखला लंबाई की यह अनुकूलता भारत में विद्यमान खाद्य आपूर्ति से बिल्कुल भिन्न है, जैसे : किसान, तालुका स्तर पर ग्राम एजेंट, मंडी स्तर पर मार्केट एजेंट, थोक व्यापारी, अर्द्ध थोक व्यापारी, खुदरा व्यापारी और उपभोक्ता। वास्तव में, अपने-अपने अंश हथियाने वाले बहुत से बिचौलिए होने के कारक इसमें कोई आश्चर्य नहीं है कि भारतीय किसान उस कीमत का लगभग 28 प्रतिशत ही पाते हैं जो उपभोक्ता उनके उत्पादों के लिए देता है। यह भी स्पष्ट होता है कि बहुत से उत्पादों, जैसे, फलों और सब्जियों के बारे में शीर्षस्थ क्रम का प्रमुख विश्व उत्पाद होने के बावजूद संसाधित बागवानी उत्पादों के लिए निर्यात मार्केट में भारत का अंश (ब्राजील/ संयुक्त राज्य में 70 प्रतिशत, फिलिपाइन्स

में 78 प्रतिशत, मलेशिया में 83 प्रतिशत आदि की तुलना में) एक प्रतिशत से भी कम है (देखिए इकाई 2 का भाग 2.5)। इस घटिया प्रस्थिति का कारण फसल कटाईबाद की भारतीय प्रबंधन पद्धति है। इसीलिए हमें इन क्षेत्रों पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है, जैसे श्रेणीकरण (ग्रेडिंग), डिब्बा बंद (पैकेजिंग), पूर्व शीतलन (प्री कूलिंग), भंडारण और परिवहन सुविधाएँ। इसमें 'शीत श्रृंखलाओं'' की महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

खाद्य आपूर्ति श्रृंखला में खुदरा आपूर्ति श्रृंखला और मूल्य आपूर्ति श्रृंखला के बीच अंतर किया जा सकता है। यदि पण्यवस्तु उपभोक्ता के पास प्रसंस्करण के बिना वैसे ही रूप में पहुंचती है जैसी किसानों द्वारा पैदा की गई थी तो इसे खुदरा आपूर्ति श्रृंखला कहा जा सकता है। एक उदाहरण टमाटर का है जो अंतिम खरीददार द्वारा सब्जी के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। यदि किसान द्वारा उत्पादित पण्यवस्तु प्रसंस्करण के बाद उपभोक्ता के पास पहुंचती हैं, तो इसे मूल्य श्रृंखला के भाग के रूप में देखा जा सकता है क्योंकि प्रसंस्करण से मूल्य वृद्धि होती है। उपभोक्ता द्वारा खरीदा गया टमाटर कैचप उदाहरण है जिसमें किसान द्वारा उत्पादित टमाटर में मूल्य वृद्धि होती है। इन दो प्रकारों पर चर्चा नीचे की गई है।

18.4.1 शीत श्रृंखला

शीत श्रृंखला को खुदरा आपूर्ति श्रृंखला के भाग के रूप में देखा जा सकता है। शीत श्रृंखला वे संभार तंत्र प्रणालियां हैं जो विनाशशील वस्तुओं की सही भंडारण दशाएँ बनाए रखने के लिए अपेक्षित सुविधाओं की श्रृंखला प्रदान करती हैं। इस प्रकार की सुविधाएँ संपूर्ण खाद्य आपूर्ति श्रृंखला में उत्पादन स्थान से उपभोग स्थान तक स्थापित करना आवश्यक है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

श्रृंखला फार्म स्तर पर प्रारंभ कर और उपभोक्ता स्तर तक पहुँचाना आवश्यक है। सुव्यवस्थित शीत श्रृंखला बर्बादी रोकती है, उत्पाद की गुणवत्ता बनाए रखता है और उपभोक्ताओं को लागत प्रभावी वितरण की गारंटी देता है। शीत श्रृंखला की मुख्य विशेषताएँ यह हैं कि यदि कोई भी एक कड़ी लुप्त होती है या कमजोर होती है तो पूरी प्रणाली विफल हो जाती है। शीत श्रृंखला की आधारभूत संरचना के संभारतंत्र इस प्रकार निर्धारित हो सकते हैं, जैसे पूर्व शीतलन सुविधाएँ→शीत भंडारण→प्रशीतनकृत (रेफ्रिजरेटेड) वाहक→पैकेजिंग→ गोदाम→ सूचना प्रबंधन प्रणाली (अर्थात् पता लगाना और खोजना)।

यह अनुमान लगाया गया है कि भारत की प्रतिवर्ष उगाए गए लगभग 30 प्रतिशत फल और सब्जियां शीत श्रृंखला की कड़ियों में अंतर के कारण नष्ट हो जाते हैं। इसके फलस्वरूप कीमतों में अस्थिरता उत्पन्न होती है, किसान प्रत्याशित प्रतिलाभ प्राप्त नहीं कर पाता। इससे ग्रामीण गरीबी बढ़ती है और किसानों में निराशा की संभावना होती है। बाजार की अन्य कमियों और मूल्य नियंत्रण के साथ मिलकर यह अनुमान लगाया गया है कि फल और सब्जियों के उपभोग की अपेक्षा विनाश अधिक होता है। आपने हाल ही के समाचारपत्रों (मई, 2012) में पढ़ा होगा कि बम्पर फसल परंतु भंडारण सुविधाओं से घटिया तालमेल के कारण भारत राजकोष के लिए भारी सब्सिडी के बोझ पर खाद्यान्न निर्यात करने के लिए बाध्य हुआ है। इसका अभिप्राय यह है कि फसल कटाई पूर्व प्रणालियों

पर यद्यपि उसकी आवश्यकतानुसार उचित मात्रा में ध्यान दिया जाता है परंतु फसल कटाईबाद की समस्याओं की अनदेखी की जाती है। भारतीय शीत भंडारों की प्रचालन लागत का अनुमान $60 प्रतिघन मीटर प्रतिवर्ष लगाया गया है, जबकि विकसित देशों में $30 से कम है। इसके अलावा, भारतीय शीत भंडारणों के कुल व्यय का लगभग 28 प्रतिशत ऊर्जा व्यय आता है, जबकि विकसित देशों में यह मात्र 10 प्रतिशत है। यद्यपि इन कारकों ने भारत में शीत भंडार निर्माण आर्थिक दृष्टि से अव्यावहारिक बनाया है, यह अनुमान लगाया गया है कि "रेफ्रिजरेटेड कंटेनरों में ताजी सब्जियाँ और फलों के परिवहन से 30 से 35 प्रतिशत क्षति कम की जा सकती है (कम कार्यकुशल ट्रकों की तुलना में)। भारत में अपेक्षित रेफ्रिजरेटेड कंटेनरों की कुल संख्या का अनुमान लगभग 20,000 लगाया गया है। यह भी अनुमान लगाया गया है कि फलों और सब्जियों की बर्बादी में प्रति 1 प्रतिशत कमी से 0.13 बिलियन US डालर की बचत हो सकती है। इसके अलावा, इस हानि की अवस्था के अनुसार विभाजन का अनुमान इस प्रकार लगाया गया हैः घटिया संचालन–30 प्रतिशत, घटिया भंडारण–30 प्रतिशत, घटिया परिवहन–30 प्रतिशत, बिचौलिये–5 प्रतिशत, बेहतर संरक्षण तकनीकों की जानकारी का अभाव–5 प्रतिशत। इस फसल कटाई पश्च क्षति को कम करने के लिए अपेक्षित आधारभूत संरचना स्थापित करने में किए गए निवेश की सही नीतिगत सहायता में लगे हुए हमारे श्रम बल के लगभग 50 प्रतिशत का क्षेत्र स्तर सुधारा जा सकता है। यह समस्या का महत्त्वपूर्ण सामाजिक पहलू है जिसकी ओर भारतीय कृषि में इस मौजूदा संकट के समय सरकार को ध्यान देना चाहिए।

DIKSHANT IAS

18.4.2 मूल्य/आपूर्ति श्रृंखला

Call us @7428092240

भारत कृषि प्रसंस्करण से अपनी संभावनाएँ प्राप्त करने में पिछड़ रही है। यह चीन में 23 प्रतिशत की तुलना में भारतीय खाद्य उत्पादों में 7 प्रतिशत मूल्य परिवर्धन से स्पष्ट है। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, खाद्य/शीत श्रृंखला की कमियों को दूर करने के लिए (आगे अधिक निजी निवेश आकर्षित करने के लिए) अपेक्षित सार्वजनिक निवेश कर शुरुआत करनी चाहिए। इसके अलावा, उन राज्यों में APMC में अपेक्षित संशोधन द्वारा खुदरा व्यापारियों के लिए उत्पादों की सीधी उपलब्धता आसान होनी चाहिए जिनमें अभी तक यह नहीं किया गया है। यद्यपि देश में 27,000 से अधिक खाद्य प्रसंस्करण इकाइयां हैं, इनमें से 95 प्रतिशत कम निवेश के साथ गृह उद्योग सेक्टर में हैं। ये इकाइयां प्रौद्योगिकीय विकास का दोहन करने में अपनी अक्षमता के कारण न्यूनतम क्षमता से कार्य करती हैं। यह अंतर्राष्ट्रीय अपेक्षित पादप स्वच्छता मानकों को पूरा करने में रुकावट खड़ी कर रहा है। इसके अलावा, सरकार द्वारा लगाए गए कर पैकेजिंग की लागत छोटे उद्यमियों द्वारा किए गए व्यय का बड़ा भाग है। कानून अनाकर्षक और बड़े क्रेयताओं के प्रवेश के लिए बाधक है जो छोटी प्रसंस्कण इकाइयों का विकास कर सकते हैं तथा छोटी प्रसंस्करण इकाइयों के लिए नियमित व्यापार सुनिश्चित कर सकते हैं। संक्षेप में, भारत में खुदरा व्यापार में बहुराष्ट्रीय कंपनियों को अनुमति देने पर वर्तमान बहस के होते हुए भी सेक्टर की वर्तमान मांगों के आधार पर कृषि विकास के संवर्धन के लिए स्वीकार्य मॉडल की तत्काल आवश्यकता है। यह महत्त्वपूर्ण है कि छोटे और सीमांत किसानों को वर्तमान खुदरा व्यापार की तेजी का लाभ मिलना चाहिए। FMCG (तीव्र

संचलन, उपभोक्ता पदार्थ) कंपनियां, जो छोटे और सीमांत किसानों से उनके उत्पाद लेने के इच्छुक है और अपनी ब्रॉड इक्विटी शक्ति का उपयोग करना चाहते हैं, उन्हें समुचित नियामक ढाँचे के अंतर्गत बाजार विकास में भाग लेने की सुविधा होनी चाहिए। यह बाजारोन्मुखी वर्तमान नीति के आधार पर भारतीय कृषि के विकास के लिए आवश्यक है और विचाराधीन वृद्धि सहसंबद्ध समावेशी विकास प्रतिमान में वितरणात्मक समता सुनिश्चित करने के लिए भी आवश्यक है।

बोध प्रश्न 2

प्रश्न 2 से 6 तक का उत्तर लगभग 50 शब्दों में दीजिए।

1) रिक्त स्थान भरिए –

क) यह अनुमान लगाया गया है कि भारतीय किसान उपभोक्ता द्वारा भुगतान की गई अंतिम कीमत का .... प्रतिशत पाता है। यह अंश संयुक्त राज्य/ब्राजील में .... प्रतिशत, फिलीपाइन्स में .... प्रतिशत, और मलेशिया में .... प्रतिशत की तुलना में बहुत कम है।

ख) अनुमानों के अनुसार प्रतिवर्ष भारत में उगाई गई सब्जियों और फलों का .... प्रतिशत नष्ट हो जाता है।

ग) भारतीय शीत भंडारों की प्रचालन लागत प्रति घन मीटर प्रति वर्ष विकसित देशों में .... की तुलना में .... है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

2) ''खाद्य सुरक्षा श्रृंखला'' शब्द की उसकी छह सहसंबद्धताओं का उल्लेख करते हुए परिभाषा कीजिए।

....

....

....

....

3) सुव्यवस्थित शीत श्रृंखला प्रणाली के उसकी आधारभूत संरचना का संभार तंत्र निर्धारित करते हुए लाभ बताइए।

....

....

....

....

4) भारत में बम्पर खाद्य फसल से उत्पन्न वर्तमान (2012) समस्या का उल्लेख कीजिए और इस विरोधाभासी स्थिति के निहित कारणों की पहचान कीजिए।

....

....

....

5) आप भारतीय कृषि की वर्तमान अवस्था के महत्त्वपूर्ण ''सामाजिक पहलू'' के रूप में किसकी पहचान करेंगे ?

....

....

....

....

6) उन महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों का उल्लेख कीजिए जिन पर सुसाध्यकारी सार्वजनिक नीति की भारतीय कृषि में मूल्य/आपूर्ति श्रृंखला के कार्यकरण की दक्षता सुधारने के लिए तत्काल आवश्यकता है।

....

....

....

....

18.5 सारांश

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

भारतीय कृषि के संबंध में सीमित दृष्टि में परिभाषित शब्द ''संस्थागत वित्त'' में सार्वजनिक निकाय में शामिल है : सहकारी ऋण सहकारी समितियाँ, अनुसूचित वाणिज्यिक बैंक और RRB, विशेषकर भारतीय कृषि की ऋण आवश्यकताएँ पूरा करने के लिए स्थापित। इन तीनों प्रमुख एजेंसियों का 1986-2010 की पर्याप्त दीर्घ समयावधि के दौरान निष्पादन पर विचार करें तो कुल औसत वार्षिक वृद्धि दिए गए ऋण की मात्रा लगभग 18 प्रतिशत थी, भारतीय कृषि को संस्थागत वित्त का निष्पादन घटिया नहीं समझा जा सकता है। इसके अलावा इन सार्वजनिक एजेंसियों के अतिरिक्त कई अन्य पहले भी हुईं जो भारतीय किसानों को संस्थागत कृषि, वित्त का प्रस्थिति सुधारने में अप्रत्यक्ष रूप से योगदान कर सकते हैं। इनमें RIDF, KCC, SBL कार्यक्रम आदि शामिल हैं। यद्यपि इन उपायों ने किसी सीमा तक सुविधाएँ दी परंतु अभी भी वास्तविक आवश्यकता की कमी है। इसने खुला बाजार नीतियों के अनुसरण द्वारा उत्पन्न प्रतिस्पर्धात्मक वातावरण से मिलकर ह्रासमान बाजार दशाओं के लिए अत्यधिक महत्त्वपूर्ण छोटे और सीमांत किसानों के विशाल वर्ग की स्थिति बहुत अस्थिर बना दी। इस पहलू में स्थिति आसान बनाने के लिए संविदा खेती की अवधारणा जिसने अपने भिन्न-भिन्न रूपों में सदियों से प्रथा प्राप्ति से भी चल रही थी। अभी हाल ही में, भारत के बहुत से राज्यों में नए रूप में आजमाई गई हैं। यद्यपि इसका अनुभव मिला-जुला रहा है, कुछ राज्यों में उसके अनुप्रयोग में सफलता का स्तर काफी प्रशंसनीय रहा है। अधिक महत्त्वपूर्ण तो यह है कि उसके दक्ष कार्यकरण के लिए अपेक्षित आदर्श रूप से अपेक्षित दशाएँ स्थापित करने पर फोकस करना अत्यावश्यक है। इनमें शामिल है : (i) बाजार में काम करने के लिए अधिक व्यापारियों को अनुमति देकर वर्धित प्रतिस्पर्धा उत्पन्न करना, (ii) कंपनियों से

किसानों की सौदेबाजी शक्ति बढ़ाने के लिए बाजार सूचना प्रणाली सुधारना, (iii) समूह या सामूहिक कार्रवाई आदि द्वारा छोटे/सीमांत किसानों के सौदे की क्षमता का विस्तार करना। अंतिम रूप से आवश्यक आधारभूत संरचना, (जैसे ''हरित भंडार') से विनाशशील पण्यवस्तुओं (जैसे फल और सब्जियां) की बर्बादी कम होगी जो कुल उत्पादन का 30 प्रतिशत होने का अनुमान लगाया गया है। यह खाद्य/आपूर्ति श्रृंखलाओं पर अपर्याप्तता से जुड़कर हमारे उल्लेखनीय रूप से मात्रा के आधार पर उन्नत उत्पादन का पूरा मूल्य प्राप्त करने में बहुत रुकावट डाल रहा है। इसलिए कृषि उत्पादन की फसल कटाई पश्च दक्ष पद्धतियों पर फोकस करना अत्यन्त आवश्यक है। भारत से कृषि उत्पादों के लिए निर्यात बाजार में वर्तमान नगण्य रूप से कम शेयर बढ़ाने में लंबा रास्ता तय करना होगा।

18.6 शब्दावली

संस्थागत वित्त : अपने विस्तृत कार्य क्षेत्र में किसानों की ऋण संबंधी समस्याओं पर कार्यदल, भारत सरकार, 2010, ने ''संस्थागत वित्त'' की उसकी परिभाषा में निजी सेक्टर के वित्तीय संस्थाओं को भी शामिल किया है। ऐसी संस्थाओं में शामिल है : (i) प्रयोक्ता स्वामित्व की संस्थाएँ जैसे SHG, (ii) अधिक उदार सहकारी कानूनों के अधीन पंजीकृत नई पीढ़ी की बचत और सहकारी समितियां, लाभ के लिए नहीं NBFC और गैर बैंक वित्त कंपनियाँ तथा अन्य लाभ के लिए नहीं NGOs.

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

संविदा कृषि/खेती : कृषि या बागवानी उत्पादों के उत्पादन और आपूर्ति की प्रणाली है। यह उत्पादकों/अभिकर्त्ताओं और क्रेयताओं के बीच वायदा संविदा है जिसके अधीन किसान द्वारा कुछ किस्म की कृषि पण्यवस्तु ज्ञात और वचनबद्ध क्रेयता द्वारा अपेक्षित मात्रा में समय और कीमत पर देने के लिए वचनबद्धता है।

शीत श्रृंखला : विनाशशील वस्तुओं के लिए सही भंडारण दशाएँ बनाए रखने के लिए आदर्श रूप से अपेक्षित सुविधाओं की श्रृंखला देने की संभार तंत्र प्रणाली है।

रेफ्रिजरेटेड कंटेनर : मानक बीस फुट समतुल्य इकाई (TEU) आकार के परिवहन वाहन है जिनमें उनकी छत पर सौर PV पैनलों के 0.24 मिलियन वर्ग मीटर लगे होते हैं जो उनके संचालन के लिए स्वतंत्र विद्युत ग्रिड सुनिश्चित करता है। भारतीय भूभाग दशाओं के लिए ये परंपरागत रेफ्रिजरेटेड ट्रकों की अपेक्षा अधिक कुशल माने जाते हैं।

18.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

ICAR/IFPRI/USDA (2008), Contract Farming in India : A Resource Book, A Product of Indo-US Knowledge Initiative on Agriculture, An Online Resource Book [http:/www.ncap.res.in/contract_% 20farming/index.htm].

Government of India (2010), Report on the Task Force on Credit Related Issues of Farmers, MoAg., June.

Surjit Singh (2012), Recent Experience in Agriculture Finance in India: Concerns for Small Farmers, Institute of Development Studies, Jaipur.

18.8 बोध प्रश्नों के उत्तर/संकेत

बोध प्रश्न 1

1) देखिए भाग 18.2 और उत्तर दीजिए।
2) देखिए भाग 18.2 और उत्तर दीजिए।
3) देखिए उपभाग 18.2.2 और उत्तर दीजिए।
4) देखिए उपभाग 18.2.2 और उत्तर दीजिए।
5) देखिए उपभाग 18.2.3 और उत्तर दीजिए।
6) देखिए उपभाग 18.2.3 और उत्तर दीजिए।
7) देखिए उपभाग 18.2.3 और उत्तर दीजिए।
8) देखिए उपभाग 18.2.3 और उत्तर दीजिए।
9) देखिए उपभाग 18.2.4 और उत्तर दीजिए।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 2

1) देखिए भाग 18.3 और उत्तर दीजिए।
2) देखिए उपभाग 18.3.1 और उत्तर दीजिए।
3) देखिए उपभाग 18.3.1 और उत्तर दीजिए।
4) देखिए उपभाग 18.3.1 और उत्तर दीजिए।
5) देखिए उपभाग 18.3.2 और उत्तर दीजिए।

बोध प्रश्न 3

1) देखिए भाग 18.4 और 18.4.1 और उत्तर दीजिए।
2) देखिए भाग 18.4 और उत्तर दीजिए।
3) देखिए उपभाग 18.4.1 और उत्तर दीजिए।
4) देखिए उपभाग 18.4.1 और उत्तर दीजिए।
5) देखिए उपभाग 18.4.1 और उत्तर दीजिए।
6) देखिए उपभाग 18.4.2 और उत्तर दीजिए।

इकाई 19 खाद्य सुरक्षा

संरचना

19.0 उद्देश्य

19.1 प्रस्तावना

19.2 संकल्पनात्मक रूपरेखा

19.2.1 खाद्य आत्मनिर्भरता

19.2.2 निवल उत्पादन

19.2.3 खाद्य सुरक्षा बनाम खाद्य असुरक्षा

19.2.4 सार्वजनिक वितरण प्रणाली

19.2.5 त्रुटियों पर लक्ष्य साधन : ई और एफ प्रकार की त्रुटियां

19.2.6 खाद्यान्नों का प्रापण (वसूली)

19.2.7 बफर स्टॉक (सुरक्षित भंडार)

19.2.8 न्यूनतम समर्थन मूल्य

19.3 भारत में खाद्यान्न परिदृश्य

19.3.1 क्षेत्रफल, उत्पादन और उत्पादकता

19.3.2 खाद्यान्नों की प्रति व्यक्ति उपलब्धता

19.3.3 खाद्यान्नों की प्रति व्यक्ति खपत

19.4 वैकल्पिक नीति संदर्भों में खाद्य सुरक्षा

19.4.1 मुक्त बाजार प्रचलन

19.4.2 सरकारी प्रापण का प्रभाव

19.4.3 सरकारी प्रापण और वितरण का प्रभाव

19.5 खाद्य सुरक्षा के लिए नीतियां और कार्यक्रम

19.5.1 PDS के अधीन प्रयास

19.5.2 खाद्य आधारित कल्याणकारी योजनाएँ

19.5.3 राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन (NFSM)

19.5.4 राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा (NFS) विधेयक

19.6 सरकारी नीति का प्रभाव

19.7 भावी रणनीति

19.8 सारांश

19.9 शब्दावली

19.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

19.11 बोध प्रश्नों के उत्तर/संकेत

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

19.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप :

- ''खाद्य सुरक्षा'' की समस्या से संबद्ध विभिन्न संकल्पनाओं की परिभाषा दे सकेंगे;
- भारत में खाद्यान्नों की प्रति व्यक्ति उपलब्धता और प्रति व्यक्ति खपत के आधार पर खाद्यान्न परिदृश्य में प्रवृत्ति की चर्चा कर सकेंगे;
- वैकल्पिक नीतिगत विकल्पों के अधीन प्रति व्यक्ति खाद्य उपभोग में ह्रासमान प्रवृत्ति की सैद्धांतिक व्याख्या दे सकेंगे;
- खाद्य सुरक्षा प्रदान करने हेतु अपनाई गई सरकारी नीतियों और कार्यक्रमों को स्पष्ट कर सकेंगे;
- PDS पर सरकारी नीति के सामान्य पणधारियों पर प्रभावों की समीक्षा कर सकेंगे; और
- अपनाई की गई ''खाद्य सुरक्षा'' नीति में त्रुटियों की पहचान कर उनके आलोक में उसके प्रभावकारी क्रियान्वयन के लिए ''भावी रणनीति'' की रूपरेखा निर्दिष्ट कर सकेंगे।

19.1 प्रस्तावना

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

''खाद्य सुरक्षा'' की समस्या में दो पहलू सम्मिलित हैं : पहला, खाद्यान्नों की पर्याप्त उपलब्धता, दूसरा, सभी को उसकी सुलभता सुनिश्चित करने के लिए उसका प्रभावशाली वितरण। उपलब्धता को ''हकदारी'' के रूप में सुनिश्चित किया जाना आवश्यक है, अर्थात् ऐसी दशाओं का निर्माण जिससे वास्तविक जरूरतमंदों को यह आसानी से सुलभ हो सके। इसका अभिप्राय है कि यदि गरीब की क्रयशक्ति खाद्यान्न खरीदने के लिए पर्याप्त नहीं है तो उन्हें या तो कम (सब्सिडी) कीमत पर अनाज सुलभ होना चाहिए या उनकी क्रयशक्ति उपयुक्त ढंग से बढ़ाई जानी चाहिए। पहला पक्ष वितरण नीति द्वारा प्राप्य है, तो दूसरा विशेष कार्यक्रमों के क्रियान्वयन द्वारा प्राप्त हो सकता है। वितरण का कार्य (प्रत्येक परिवार की देहरी तक खाद्य ले जाना, विशेषकर गरीबी की रेखा (BPL) से नीचे रहने वाले परिवारों तक) बहुत विशाल कार्य है जो भारत में सार्वजनिक वितरण प्रणाली (PDS) द्वारा किया जाता है। PDS का क्रियान्वयन देशभर में स्थापित सस्ती दर की दुकानों (FPS) के संचालन द्वारा किया जाता है। ऐसे विशाल वितरण के कार्य से पहले ''न्यूनतम समर्थन मूल्य'' (MSP) नाम की मूल्य समर्थन की नीति के अधीन किसानों से ''खाद्यान्नों का प्रापण'' किया जाता है। पिछले दशकों से ऐसी नीतियों के क्रियान्वयन से (अर्थात् प्रापण और FPS के माध्यम से खाद्यान्न का वितरण, काम के लिए अनाज कार्यक्रम चलाना आदि द्वारा सरकार लाखों गरीब लोगों को ''खाद्य सुरक्षा'' देने में सफल हुई है। इसका प्रभाव समय के चलते गरीबी के घटते हुए अनुपात में देखा गया है। भारत में गरीबी की रेखा से नीचे रहने वाले लोगों के अनुमानों की यथार्थता का आकलन भिन्न-भिन्न वर्गीकरण तरीकों द्वारा किया गया है और यह चर्चाधीन है। परंतु UN रिपोर्ट के अनुसार

केवल 1990 के दशक के सुधारोत्तर वर्षों में ही गरीबी की रेखा से नीचे के गरीबों का अनुपात 1990 में 51.3 प्रतिशत से घटकर 2010 में लगभग 26 प्रतिशत हुआ है। सफलता के इस परिमाण के बावजूद तीन गंभीर समस्याएं हैं जो हमारी खाद्य सुरक्षा नीति की दक्षता पर गंभीर प्रभाव डालती हैं। ये हैं : (i) अपर्याप्त भंडारण के कारण ''बफर स्टॉक'' प्रभावित हो रहा है; (ii) PDS प्रणाली में त्रुटि से PDS लाभ से बहुत से वास्तविक गरीब वंचित हैं (और गैर-गरीब शामिल किए गए हैं) और सबसे गंभीर है; (iii) साहाय्य प्राप्त अधिशेष खाद्यान्न अन्य देशों को निर्यात किया जाता है जिसमें राजकोष को आये दिन बहुत मार पड़ती है। यह विडम्बना है कि लाखों लोग गरीबी का सामना कर रहे हैं (5 वर्ष से कम आयु के बच्चों सहित), गंभीर कुपोषण से पीड़ित हैं (इसके फलस्वरूप शिशु मृत्यु दर अधिक होती है जिसका अनुमान UNICEF द्वारा 2009 में प्रति 1000 जीवित जन्म पर 66 लगाया गया था जो 1990 में 118 से घटकर हुआ है) किंतु हमारा बफर स्टॉक उन देशों को निर्यात किया जाता है जहाँ इसे पशु आहार निर्माताओं द्वारा प्रयुक्त किया जाता है, (जैसे मलेशिया, इंडोनेशिया, ओमान, इराक, फिलिपाइन्स, आदि)। हमने 'खाद्य असुरक्षा' शब्द का प्रयोग उस दुखदायी अवस्था के लिए किया है जहां खाद्य आपूर्ति की प्रचुरता के बावजूद बाल कुपोषण की दशा गंभीर बनी हुई है। इस पृष्ठभूमि के विपरीत इस इकाई में कृषि विकास की समस्या के दो मुख्य मुद्दों पर विचार करने का प्रयास किया है: (i) ''खाद्य सुरक्षा'' की उच्चतर दर प्राप्त करने के लिए सरकार द्वारा अपनाई गई नीतियाँ, और (ii) भावी रणनीति, जो खाद्य सुरक्षा की नीतियाँ अधिक दक्ष बनाने के लिए अपनाई जानी आवश्यक है। हम अंतर्निहित विभिन्न संकल्पनाओं के विवरण से आरंभ करेंगे।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

19.2 संकल्पनात्मक रूपरेखा

हम पहले ही उन कई संकल्पनाओं का परिचय दे चुके हैं जिनका विस्तार से विवरण इस भाग में दिया जाएगा। हम दो शब्दों, अर्थात् खाद्य आत्मनिर्भरता और निवल उत्पादन के विभेद से आरंभ करेंगे।

19.2.1 खाद्य आत्मनिर्भरता

उस देश को ''खाद्य उत्पादन में आत्मनिर्भर'' कहा जाता है जिसमें जनता की खाद्य आवश्यकता से उसके खाद्य उत्पादन का स्तर मेल खाता है। दूसरे शब्दों में, देश अन्य देशों से खाद्यान्न के आयात पर निर्भर रहे बिना अपने स्वयं के घरेलू उत्पादन से अपने लोगों को खिलाने की स्थिति में होता है। दूसरी ओर, अर्थव्यवस्था को खाद्य उत्पादन में अपूर्ण कहा जाता है जब उसका घरेलू उत्पादन उसकी आवश्यकता से कम होता है। यदि कमी अधिक हो तो अन्य देशों से सहायता के अभाव में, अर्थव्यवस्था में भुखमरी फैल सकती है। तथापि यह ध्यान रखना महत्त्वपूर्ण है कि ''खाद्य सुरक्षित'' होने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि देश अपने स्वयं का कृषि उत्पादन विकसित करें। (देखिए नीचे 19.2.3)।

19.2.2 निवल उत्पादन

देश में उत्पादित कुल खाद्यान्न मानव उपभोग के लिए उपलब्ध नहीं है। उसका एक भाग उसकी अनुवर्ती जोताई के लिए बीजों के रूप में प्रयुक्त होगा जबकि

एक अन्य भाग खराब भंडारण के कारण नष्ट हो सकता है। खाद्यान्न उत्पादन का एक भाग पशु आहार के रूप में भी प्रयुक्त किया जाता है। शेष भाग जो मानव उपभोग के लिए उपलब्ध है, उसे ''निवल उत्पादन'' कहा जाता है। कुल उत्पादन में निवल उत्पादन का अनुपात विभिन्न कारकों, जैसे खेती की विधि, खाद्यान्नों का भंडारण और विपणन पर निर्भर करता है। यह अनुपात एक देश से दूसरे में भिन्न-भिन्न हो सकता है। भारत में कुल खाद्यान्न उत्पादन का 87.5 प्रतिशत निवल उत्पादन के रूप में लिया जाता है।

19.2.3 खाद्य सुरक्षा बनाम खाद्य असुरक्षा

राष्ट्रीय स्तर पर, खाद्य सुरक्षा की परिभाषा सभी व्यक्तियों को ''अपेक्षित मात्रा और गुणवत्ता'' में खाद्य की ''उपलब्धता' के रूप में की गई है। उपलब्धता ऐसे तरीके से होनी चाहिए, जो ''स्वस्थ और सक्रिय जीवन'' यापन के लिए पर्याप्त हो। खाद्य सुरक्षा की अगली शर्त के लिए यह भी आवश्यक है कि उपलब्धता स्थायी या अविछिन्न आधार पर जारी रहनी चाहिए। इस प्रकार सिद्धांत रूप से, खाद्य सुरक्षा परिवार, समुदाय, राष्ट्रीय और यहाँ तक कि अंतर्राष्ट्रीय स्तर तक फैले हुए कारकों के संयोजन द्वारा प्राप्त की जाती है। परंतु प्रचालन की दृष्टि से यह व्यक्तिगत स्तर पर लागू की जाती है। इसे ध्यान में रखकर राष्ट्रीय स्तर पर ''खाद्य उत्पादन में आत्मनिर्भरता'' न तो आवश्यक है और न ही व्यक्तिगत स्तर पर ''खाद्य सुरक्षा'' की पर्याप्त गारंटी है। यह तब स्पष्ट होता है जब हम सिंगापुर और हांगकांग जैसे देशों का उदाहरण लेते हैं जो खाद्य आत्मनिर्भर नहीं हैं परंतु उनके लोग खाद्य सुरक्षित हैं जब कि देश के रूप में भारत खाद्य सुरक्षित है परंतु इसके सभी लोग नहीं हैं। इस प्रकार, यद्यपि खाद्य के सभी चार तत्व, अर्थात् उपलब्धता, सुलभता, उपयोग और सुलभता की स्थिरता खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए समान रूप से महत्त्वपूर्ण है, व्यावहारिक रूप में यह उस सीमा पर निर्भर करता है जिस तक व्यक्ति खाद्य के लिए अपनी ''हकदारी'' प्राप्त कर सकता है। इसके अलावा, ''स्वस्थ और सक्रिय जीवन'' यापन करने के लिए खाद्य की उपयोगिता' की स्थिति में खाद्येत्तर मदों (जैसे पर्याप्त आहार, स्वच्छ जल, सफाई और स्वास्थ्य देखभाल) का भी महत्त्व उत्पन्न रहता है। इसलिए, यदि व्यक्ति खाद्य का प्रयोग करने में असमर्थ है क्योंकि वह बीमार है, सहायता का कोई साधन नहीं है तो ''खाद्य उपयोग'' स्थिति असंतोषजनक रहती है। खाद्य उपलब्धता के बारे में भी इसी प्रकार का मामला है। प्रश्न केवल खाद्य की उपलब्धता के बारे में नहीं है बल्कि क्या कोई ऐसी क्रियाविधि है जिससे यह प्रभावी ढंग से उन सभी गरीब व्यक्तियों को वितरित हो पाती हो इसी प्रकार ''सुलभता का स्थायित्व'' गरीबों की ''संवेदनशीलता'' की संभावना को रेखांकित करता है जो अपने आपको उस दिन भोजन के बिना पाते हैं जिस दिन वे रोजगार पाने में असफल रहते हैं। यह इस दृष्टि से है कि ''खाद्य हकदारी'' का तत्व (अर्थात् जिन संसाधनों से व्यक्ति हकदारी के रूप में खाद्य की मांग कर सकता है) महत्त्वपूर्ण हो जाता है। ''खाद्य असुरक्षा की स्थिति, 2000'' नामक रिपोर्ट में उल्लेख किया गया है किः ''यद्यपि विश्व में जनसंख्या का लगभग आधा भाग भूख के प्रति संवेदनशील है, उनमें से 1/7 अल्पपोषित है।'' इस प्रकार ''खाद्य असुरक्षा'' जो खाद्य सुरक्षा का विलोम है, अर्थव्यवस्था अल्पपोषण का प्रसार दर्शाती है। नीति क्रियान्वयन की

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

दृष्टि से, खाद्य असुरक्षा व्यक्तिगत स्तर पर खाद्य सुरक्षा प्राप्त करने के मार्ग में कही अधिक बड़ी चुनौती खड़ी करती है।

19.2.4 सार्वजनिक वितरण प्रणाली (PDS)

परिवारों की आय में असमानताओं से भरी मुक्त बाजार अर्थव्यवस्था में बहुत ऐसे गरीब परिवार होते हैं जो वर्तमान बाजार कीमत पर पर्याप्त खाद्य खरीदने की स्थिति में नहीं होते। इसलिए ऐसे परिवार खाद्य असुरक्षाग्रस्त रहते हैं। ऐसी क्रियाविधि, जिससे ऐसे गरीब परिवारों को सस्ती दर पर खाद्य उपलब्ध कराया जाता है, सार्वजनिक वितरण प्रणाली (PDS) है। PDS दो प्रकार के हैं, अर्थात् सर्वव्यापी PDS(UPDS) और लक्ष्यित PDS(TPDS)। सार्वजनिक वितरण प्रणाली में सभी परिवारों को खाद्यान्न की एकसमान मात्रा दी जाती है। UPDS की सार्वजनिक वितरण प्रणाली जिसमें सभी परिवारों को खाद्यान्न की एकसमान मात्रा दी जाती है। दूसरी ओर, लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली में परिवारों को दो श्रेणियों अर्थात् गरीब और गैर-गरीब में बांटा गया है। गैर-गरीब परिवारों को गरीब परिवारों की अपेक्षा राशन की अधिक मात्रा दी जाती है। इसलिए TPDS मूल रूप से गरीबों को बेहतर खाद्य सुरक्षा प्रदान करने के लिए है।

19.2.5 त्रुटियों पर लक्ष्य साधन : ई और एफ प्रकार की त्रुटियां

खाद्य असुरक्षाग्रस्त परिवारों को राशन कार्ड दिया जाता है जिससे वे सस्ती दर पर (अर्थात् उस दर पर जो बाजार मूल्य से कम है) सस्ती मूल्य की दुकानों से खाद्य खरीद सकते हैं। राशन कार्डों के वितरण की प्रक्रिया में दो प्रकार की त्रुटियां हो सकती हैं : अधिकारी परिवार (गरीब) राशन कार्ड के लाभ से वंचित रखा जा सकता है। इस प्रकार की त्रुटियां **टाइप ई त्रुटि** कहलाती है। दूसरी ओर, गैर-गरीब परिवार PDS से सस्ते खाद्यान्नों के लाभ में शामिल हो सकता है। ऐसी त्रुटि को **टाइप एफ त्रुटि** कहा जाता है। PDS की कार्य दक्षता दोनों प्रकार की त्रुटियों को नियंत्रित करने के लिए सरकार की क्षमता पर निर्भर करता है। इसके अलावा यदि प्रणाली ''चोरी'' या ''भ्रष्टाचार'' (FPs से खुले बाजार में खाद्यान्नों का रिसाव) ग्रस्त हो तो PDS की दक्षता गंभीर रूप से बिगड़ जाती है। गरीब परिवारों को BPL परिवारों के रूप में वर्गीकृत किया गया है (अर्थात् गरीबी की रेखा से नीचे परिवार) जबकि गैर-गरीब परिवारों को APL परिवारों के रूप में वर्गीकृत किया गया है (अर्थात् गरीबी की रेखा से ऊपर परिवार)। संक्षेप में, सार्वजनिक वितरण प्रणाली से गरीबों को आवश्यक वस्तुओं की बढ़ती हुई कीमतों के प्रभाव से बचाकर उन्हें खाद्य सुरक्षा प्रदान करने की आशा की जाती है ताकि इससे न्यूनतम पोषणिक प्रस्थिति बनाई रखी जा सके। FPS के माध्यम से वितरित आवश्यक वस्तुओं में मुख्य रूप से गेहूँ, चावल, मिट्टी तेल और चीनी चार मदें शामिल होती हैं। परंतु बढ़ती हुई कीमतों के प्रभाव से BPL परिवारों की रक्षा करने के लिए सरकार कभी-कभी ''राशन दुकानों'' (FPS के लिए प्रयुक्त वैकल्पिक नाम) के माध्यम से दालें और खाद्य तेल भी सस्ती दरों पर वितरित करती है। PDS सही अर्थों में तभी खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित कर सकता है जब अन्न और गैर-अन्न दोनों मदें (जैसे दालें) PDS के माध्यम से वितरित हों। व्यवहार में केवल अन्न खाद्य वस्तुएं PDS के माध्यम से वितरित की जाती हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

19.2.6 खाद्यान्नों का प्रापण (वसूली)

अच्छे कृषि वर्ष के दौरान कीमतें तेज़ी से घट सकती हैं। इससे किसानों को कम कीमत के कारण हानि उठानी पड़ सकती है। दूसरी ओर, खराब कृषि वर्ष के दौरान उपभोक्ता कीमतें बढ़ने के कारण पीड़ित होते हैं। ऐसी मूल्य वृद्धि का लाभ बिचौलियों और व्यापारियों द्वारा उठाने की संभावना होती है क्योंकि किसान अधिकांशतः निरक्षर और असंगठित होते हैं। इस प्रकार गरीब किसानों को अधिक लाभ नहीं हो सकता। उनके पास बेचने के लिए अधिशेष कम होता है। गरीब किसान भी खाद्यान्न कीमतों में दो फसलों की ऋतुओं के बीच की अवधि में बुरी तरह से प्रभावित होते हैं। उदाहरण के लिए, यद्यपि फसल कटाई के तुरंत बाद, जब कीमतें कम होती हैं, गरीब किसान की आर्थिक दशा उसे अपना उत्पाद बेचने के लिए बाध्य कर सकती है। ऋतु के बाद की अवधि के दौरान उसे काफी ऊँची दर पर खाद्यान्न खरीदना पड़ सकता है। कीमतों में इस प्रकार के चक्रीय उतार-चढ़ाव से किसानों को बचाने के लिए सरकार ने ''प्रापण'' की नीति अपनाई है। इसमें फसल कटाई के समय सरकार किसानों से न्यूनतम समर्थन मूल्य (MSP) नाम की कीमत पर खाद्यान्न खरीदती है। ऐसे प्रापण प्रचालन सरकार को बफर स्टॉक बनाने में सहायक होते हैं जिसे PDS को अनाज आदि देने के लिए प्रयुक्त किया जाता है।

19.2.7 बफर स्टॉक (सुरक्षित भंडार)

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

खाद्य सुरक्षा प्रदान करने के लिए बफर स्टॉक महत्त्वपूर्ण पूर्वापेक्षा है। यह भली-भांति ज्ञात है कि खाद्य की खपत पूरे वर्ष भर होती है जबकि खाद्यान्न का उत्पाद वर्ष की निश्चित अवधि में ही होता है। उत्पादन और खपत में ऋतुओं के बीच की अवधि का अंतर पाटने के लिए ''बफर स्टॉक'' नाम का खाद्यान्न स्टॉक बनाए रखना आवश्यक है। कीमतें स्थिर रखने के लिए मंदी की अवधि में ऐसे बफर स्टॉक से खाद्यान्न लिया जाता है। खाद्यान्न का स्टॉक कृषि उत्पादन में चक्रीय विविधता के कारण कीमतों के उतार-चढ़ाव रोकने के लिए भी आवश्यक है। इन कारणों के अलावा, जैसाकि ऊपर कहा गया है, खाद्यान्नों का स्टॉक PDS चलाने के लिए भी आवश्यक है। सारांश में, सरकार को निम्नलिखित के लिए खाद्यान्न का बफर स्टॉक बनाए रखना आवश्यक है : (i) मंदी के समय मूल्यों के उतार-चढ़ाव के हानिकारक प्रभाव रोकने और (ii) सार्वजनिक वितरण प्रणाली चलाने। इन कारकों के अलावा, बफर स्टॉक का अनुरक्षण उन निजी व्यापारियों के विरुद्ध अनुशासनात्मक युक्ति के रूप में भी कार्य करता है जो कृत्रिम कमी बनाने के लिए जमाखोरी करते हैं जिसके परिणामस्वरूप कीमतें बढ़ सकती हैं।

19.2.8 न्यूनतम समर्थन मूल्य

किसानों को कीमत जोखिम से दूर रखने के लिए सरकार प्रत्येक कृषि ऋतु के प्रारंभ में फसल के लिए अपनी खरीद कीमत की घोषणा करती है। इसे न्यूनतम समर्थन मूल्य या MSP कहा जाता है। फसल कटाई के समय पर यदि बाजार मूल्य MSP से कम है, तब सरकार पूर्व निर्धारित MSP पर किसानों द्वारा मार्केट में लाई गई समस्त फसल खरीदने के लिए तैयार रहती है। यह बहस का विषय है क्या सरकार द्वारा घोषित MSP किसान को पर्याप्त प्रतिलाभ

सुनिश्चित करता है। MSP नीति का क्रियान्वयन फसल दर फसल भिन्न-भिन्न होता है।

बोध प्रश्न 1

नीचे दिए स्थान में अपने प्रश्नों का उत्तर दीजिए।

1) ''खाद्य सुरक्षा'' की समस्या में सम्मिलित किए जाने वाले दो पहलुओं का उल्लेख कीजिए।

....

....

....

....

2) कौन-सा सूचक अपनाई गई खाद्य सुरक्षा की नीतियों का प्रभाव प्रतिबिंबित करता है? किस सीमा तक यह सूचक 1990 से 2010 की अवधि के दौरान घटा है।

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

3) वे तीन गंभीर समस्याएं बताइए जो भारत में अपनाई गई ''खाद्य सुरक्षा'' की दक्षता पर गहरा प्रभाव छोड़ती हैं।

....

....

....

....

4) ''खाद्य सुरक्षा'' शब्द क्या व्यक्त करता है?

....

....

....

....

5) यह कब कहा जाता है, कि किसी देश ने खाद्य आत्मनिर्भरता प्राप्त कर ली है? क्या ऐसी प्राप्ति ''खाद्य सुरक्षा' की प्रस्थिति का दावा करने के लिए आवश्यक या पर्याप्त है?

....

....

....

....

6) किन्हीं तीन कारकों का उल्लेख कीजिए जो ''निवल उत्पादन'' बढ़ाने में योगदान करते हैं। भारत के लिए 'निवल उत्पादन' का अनुमानित अनुपात क्या है?

....

....

....

....

7) सिद्धांततः ''खाद्य सुरक्षा'' सुनिश्चित करने के लिए कौन-से चार कारक महत्त्वपूर्ण हैं?

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

....

8) सर्वव्यापी PDS से लक्षित PDS किस प्रकार भिन्न है। दोनों में से कौन PDS बेहतर 'खाद्य सुरक्षा'' संरक्षण प्रदान करता है और क्यों?

....

....

....

....

9) कौन-सी लक्ष्य साधन त्रुटि गरीब परिवारों को PDS से वंचित करती है? किस प्रकार PDS से गरीबों को ''खाद्य सुरक्षा'' प्रदान करने की आशा की जाती है?

....

....

....

....

10) सरकार द्वारा बफर स्टॉक बनाए रखने के तीन कारण बताइए।

....

....

....

....

19.3 भारत में खाद्यान्न परिदृश्य

खाद्य सुरक्षा की संकल्पना बनाम उसकी प्राप्ति का स्तर समझने के लिए कुछ अनुभवजन्य तथ्यों पर विचार करना महत्त्वपूर्ण है। इस भाग में, हम 1951-2010 के दौरान इन प्रवृत्तियों पर विचार करेंगे : (i) कृषि के अधीन कुल क्षेत्रफल, उसका उत्पादन और उत्पादकता; और (ii) खाद्यान्न की प्रति व्यक्ति उपलब्धता/खपत। जहां क्षेत्रफल/उत्पादन/उत्पादकता/खाद्यान्नों की समग्र उपलब्धता पर प्रकाश डालती है; प्रति व्यक्ति उपलब्धता/खपत खाद्य सुरक्षा से वितरण/नीतिगत विस्तार के लिए संबंध जोड़ने में सहायता करती है। इसके अलावा, विशाल जनसंख्या युक्त कृषि अर्थव्यवस्था के लिए, ''खाद्यान्न की उपलब्धता में वृद्धि करना इसलिए महत्त्वपूर्ण है कि खाद्य उत्पादन की वृद्धि दर जनसंख्या वृद्धि दर से अधिक हो''। इसके अतिरिक्त खाद्यान्न की प्रति व्यक्ति खपत बहुत से अन्य कारकों पर निर्भर होगी जैसे (i) परिवार की प्रति व्यक्ति आय; (ii) खुला बाजार कीमत; (iii) प्रापण की नीति और बफर स्टॉक रिलीज करना, आदि। इस दृष्टिकोण से खाद्यान्नों की प्रति व्यक्ति खपत केवल बढ़ाना आवश्यक नहीं है क्योंकि प्रति व्यक्ति उपलब्धता बढ़ रही है। इसलिए ऐसी स्थिति के लिए खाद्य सुरक्षा प्राप्त करने के लिए कहीं और अधिक नीतिगत पहलें आवश्यक हैं। यद्यपि हम भाग 19.5 में, इस दिशा में किए गए प्रयासों पर विचार करेंगे, इस समय हम खाद्यान्नों की उपलब्धता/खपत पर अनुभवजन्य तथ्यों का विश्लेषण करेंगे। इस विश्लेषण में कृषि उत्पादन में चक्रीय विविधता पर ध्यान नहीं दिया जा रहा।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

19.3.1 क्षेत्रफल, उत्पादन और उत्पादकता

तालिका 19.1 में 1951-2010 की लंबी अवधि के दौरान खाद्यान्नों के क्षेत्रफल, उत्पादन और उत्पादकता में प्रवृत्ति दर्शायी गई है। इन तीन परिवर्तियों में प्रवृत्तियों से यह स्पष्ट होता है:

1) छह दशाब्दी की अवधि में खाद्यान्नों के अधीन क्षेत्रफल में 25 प्रतिशत की वृद्धि हुई। यह वृद्धि एक दशाब्दी से दूसरी में घटती-बढ़ती रही है। उच्चतम वृद्धि 1951-61 की दशाब्दी में (19 प्रतिशत) थी, इसके बाद 1961-71 में (8 प्रतिशत) थी। 1971-81 और 1981-91 की अगली दो दशाब्दियों के दौरान क्रमशः थोड़ी-सी वृद्धि 2 और 1 प्रतिशत थी। 1991-2010 की सुधारोत्तर अवधि के दौरान खाद्यान्न उत्पादन के अधीन क्षेत्रफल में (–5 प्रतिशत) गिरावट रही है। गिरावट का कारण खाद्यान्न से खाद्यान्न-इतर फसलों की ओर रूझान हो सकता है।

तालिका 19.1 : भारत में खाद्यान्नों के क्षेत्रफल, उत्पादन और उपज में प्रवृत्तियाँ

वर्ष	क्षेत्रफल	उत्पादन	उपज
1950-51	97.3	50.8	522
1960-61	115.6	82.0(4.9)	710(3.1)
1970-71	124.3	108.4(2.8)	872(2.1)
1980-81	126.7	129.6(1.8)	1023(1.6)
1990-91	127.8	176.36(3.1)	1380(3.0)
2009-10	121.3	218.2(1.1)	1798(1.4)
1951-2010 के दौरान प्रतिशत वृद्धि	24.7	330(2.5)	244(2.1)

नोट:

i) क्षेत्रफल–मिलियन हेक्टेयर में, उत्पादन- मिलियन टन में और उपज- प्रति हेक्टेयर किलोग्राम में;

ii) दशक से दशक (अर्थात् 1951-61, 1961-71, 1971-81, 1981-91 और 1991-2010) क्षेत्रफल में प्रतिशत परिवर्तन है। क्रमशः 19, 8, 2, 1 और –5;

iii) उत्पादन के लिए तदनुरूपी प्रतिशत परिवर्तन है : 61, 32, 20, 36, 24 और उत्पादकता के लिए : 36, 23, 17, 35, 30; और

iv) कॉलम 3 और 4 में कोष्ठकों के अंदर के आंकड़े इन्हीं दशकों की संयुक्त औसत (वार्षिक) वृद्धि दरें (CAGR) हैं : 1951-61, 1961-71, 1971-81, 1981-91 और 1991-2010।

DIKSHANT IAS

स्रोत : आर्थिक सर्वेक्षण, भारत सरकार।

Call us @7428092240

2) खाद्यान्न उत्पादन में प्रवृत्ति 1951 में 51 मिलियन टन से 2010 में 218 मिलियन टन अर्थात् चार गुणा वृद्धि दिखाती है। उच्चतम वृद्धि (61 प्रतिशत) 1951-61 के दशक में थी जिसमें प्रति वर्ष 6.1 प्रतिशत की वृद्धि हुई। इसके बाद 1981-91 के दौरान 36 प्रतिशत की अगली उच्चतम वृद्धि रही है। 1991-2010 के सुधारोत्तर अवधि में उत्पादन में वृद्धि 24 प्रतिशत थी। इसलिए खाद्यान्न उत्पादन में औसत वार्षिक प्रतिशत वृद्धि प्रति वर्ष की न्यूनतम वृद्धि 1.3 प्रतिशत दर्ज की।

3) खाद्यान्न उत्पादन में वृद्धि के अनुसार 1951-61 के दौरान उच्चतम (4.9 प्रतिशत) हुई है, इसके बाद 1981-91 के दौरान 3.1 प्रतिशत हुई है। खाद्यान्न उत्पादन में 1.1 प्रतिशत की न्यूनतम वृद्धि दर 1991-2010 के सुधारोत्तर वर्षों के दौरान है जिस अवधि के दौरान जनसंख्या वृद्धि 1.8 प्रति वर्ष हुई है। 1951-2010 में खाद्यान्न संयुक्त अवधि वृद्धि दर 2.5 प्रतिशत है जो 2.04 प्रतिशत के इस अवधि में जनसंख्या वृद्धि की अपेक्षा अधिक है। इस प्रकार खाद्यान्न वृद्धि उत्पादन में उच्चतर वृद्धि के बावजूद भारत में खाद्य सुरक्षा की समस्या रही है। इसलिए यही लगता है कि खाद्यान्न उत्पादन में उच्चतर वृद्धि अत्यधिक आबादी वाली कृषि अर्थव्यवस्था में खाद्य सुरक्षा के लिए एक आवश्यक शर्त ही हो सकती है।

4) प्रति हेक्टेयर उत्पादकता (देखिए शब्दावली) लगभग 3.5 गुणा बढ़ी है। (1951 में 522 किग्रा. से 2010 में 1798 किग्रा.) परंतु औसत वार्षिक (संयुक्त) वृद्धि

दर के अनुसार 1951-2010 के दौरान उत्पादकता में वृद्धि 2.1 प्रतिशत है जो केवल 2.04 प्रतिशत की जनसंख्या वृद्धि दर की तुलना में केवल थोड़ी ही अधिक है।

संक्षेप में, इसलिए 1951-2010 की अवधि में : (i) खाद्यान्न उत्पादन के अधीन क्षेत्रफल में 25 प्रतिशत की वृद्धि है, और (ii) खाद्यान्न उत्पादकता में वृद्धि मामूली है।

19.3.2 खाद्यान्नों की प्रति व्यक्ति उपलब्धता

यदि उत्पादन में वृद्धि का उपयोग या तो सरकार द्वारा या निजी एजेंसियों द्वारा स्टॉक बनाने के लिए उपयोग किया जाता है, तब प्रति व्यक्ति उपलब्धता में वृद्धि नहीं होगी। खाद्यान्नों के निर्यात का प्रभाव भी वैसा ही रहेगा। इस प्रकारः

प्रति व्यक्ति निवल उपलब्धता = { निवल उत्पादन – निर्यात + आयात +/– सरकार और निजी एजेंसी के स्टॉक में परिवर्तन } ÷ जनसंख्या

खाद्यान्न की उपलब्धता में प्रवृत्ति (जो उपर्युक्त कुल सूचकों पर आधारित की अपेक्षा खाद्य सुरक्षा का बेहतर मान है) तालिका 19.2 में प्रस्तुत की गई है। मुख्य निष्कर्ष जो इस आंकड़ों से निकाले जा सकते हैं, निम्न प्रकार हैं :

1) कुल मिलाकर (अर्थात् अनाज और दलहन दोनों पर विचार कर) खाद्यान्न की प्रति व्यक्ति उपलब्धता 1955 में लगभग 395 ग्राम से बढ़कर 2009 में 444 ग्राम हुई है। छह दशकों की अवधि के दौरान वृद्धि 12.4 प्रतिशत तक हुई है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

2) दो प्रमुख अनाज, अर्थात् चावल और गेहूँ के अनुसार प्रति व्यक्ति गेहूं की उपलब्धता में वृद्धि चावल की तुलना में काफी अधिक है (जिसकी वृद्धि केवल 19 प्रतिशत है)

3) ''अन्य अनाजों'' की प्रति व्यक्ति उपलब्धता 1951-2009 के दौरान तेज़ी से घटी है (–42 प्रतिशत) परंतु कुल अनाजों के लिए छह दशकों की अवधि में 21 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। दलहनों की प्रति व्यक्ति उपलब्धता में इस अवधि में 40 प्रतिशत तेज़ गिरावट हुई है।

संक्षेप में, इसलिए (i) खाद्यान्नों और श्रेष्ठ अनाजों, जैसे गेहूँ और चावल की प्रति व्यक्ति उपलब्धता में सुधार हुआ है (ii) परंतु दलहनों की प्रति व्यक्ति उपलब्धता में तेज़ गिरावट है।

तालिका 19.2 : भारत में खाद्यान्नों की प्रति व्यक्ति उपलब्धता में प्रवृत्तियां

वर्ष	चावल	गेहूँ	अन्य अनाज	कुल अनाज	दलहन	खाद्यान्न
1951	158.9	65.7	109.6	334.2	60.7	394.9
1961	201.1	79.1	119.5	399.7	69.0	468.7
1971	192.6	103.6	121.4	417.6	51.2	468.8
1981	197.8	129.6	89.9	417.3	37.5	454.8
1991	221.7	166.8	80.0	468.5	41.6	510.1
2001	190.5	135.8	56.2	386.2	30.0	416.2
2005	177.3	154.3	59.4	390.9	31.5	422.9
2009	188.4	154.7	63.9	407.0	37.0	444.0
1951-2010 के दौरान परिवर्तन (%)	19	135	–42	21	–40	12.4

नोट : i) उपलब्धता–ग्राम में प्रतिदिन; ii) कुल (अनाज) =चावल + गेहूँ + अन्य अनाज; iii) खाद्यान्न = कुल अनाज + दलहन।

स्रोत : आर्थिक सर्वेक्षण, भारत सरकार (यद्यपि आर्थिक सर्वेक्षण वार्षिक प्रकाशन है, यह सभी द्वितीयक आंकड़े हैं। ''खाद्य आंकड़ों'' के लिए एक अन्य सुलभ स्रोत है : आर्थिक और सांख्यिकीय निदेशालय, कृषि मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा प्रकाशित ''बुलेटिन ऑन फूड स्टेटिसटिक्स'')।

DIKSHANT IAS

19.3.3 खाद्यान्नों की प्रति व्यक्ति खपत

Call us @7428092240

खाद्यान्न उपलब्धता के अतिरिक्त खाद्यान्नों की प्रति व्यक्ति खपत अन्य कारकों, जैसे परिवार की प्रति व्यक्ति आय, खुले बाजार की कीमतें, लोगों का रुचियां और प्राथमिकताएँ आदि पर भी निर्भर करती है। खाद्यान्नों की खपत का अनुमान पंचवार्षिक अंतरालों पर NSSO द्वारा संचालित परिवार उपभोक्ता व्यय सर्वेक्षण के परिणामों में दिया जाता है। इन आंकड़ों का प्रयोग करते हुए प्रति व्यक्ति खपत के अनुमानित परिणाम तालिका 19.3 में 1973-2010 की अवधि के हैं। दो संदर्भ अवधियों, अर्थात् मासिक खपत पैटर्न (किग्रा. में) और दैनिक खपत पैटर्न (ग्राम में) के अनुसार ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों के आकड़े प्रस्तुत किये गए हैं। ये प्रवृत्तियां प्रकट करती हैं कि 1973-78 के दौरान शहरी क्षेत्र के अलावा शहरी और ग्रामीण दोनों परिवारों के खाद्यान्न की खपत में लगातार गिरावट है। इस गिरावट में योगदान करने वाले उपर्युक्त कारकों के अलावा अन्य कारकों में जो खपत प्रवृत्ति को प्रभावित कर सकते हैं, अपर्याप्त आपूर्ति परिदृश्य हो सकता है यह या तो खुला बाजार में बफर स्टॉक से खाद्यान्न न छोड़ने के कारण हो सकता है या व्यापारियों द्वारा जमाखोरी से उत्पन्न कृत्रिम कमी के कारण हो सकता है। हम पहले भाग 19.4 में इस प्रवृत्ति की सैद्धांतिक व्याख्या करने का प्रयास करेंगे।

तालिका 19.3 : भारत में अनाज की प्रति व्यक्ति खपत में प्रवृत्तियां

क्रम संख्या	वर्ष	शहरी		ग्रामीण	
		क	ख	क	ख
1	1972-73	15.26	509	11.24	375
2	1977-78	15.25	508	11.62	387
3	1983	14.8	493	11.30	377
4	1987-88	14.47	482	11.19	373
5	1993-94	13.40	447	10.63	354
6	2004-05	12.12	404	9.94	331
7	2009-10	11.35	378	9.39	313

नोट :

i) क = 30 दिन की खपत किग्रा. में
ख = दैनिक खपत ग्राम में

ii) दो प्राथमिकता अवधियों, अर्थात् सप्ताह और महीने पर आधारित अनुमानों में भारी अंतर के कारण 1999-2000 के अनुमानों का उल्लेख नहीं किया गया है।

स्रोत : परिवार उपभोक्ता व्यय सर्वेक्षण पर NSSO के विभिन्न दौर।

19.4 वैकल्पिक नीति संदर्भों में खाद्य सुरक्षा

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

एक ओर, बढ़ती हुई प्रति व्यक्ति खाद्य उपलब्धता और दूसरी ओर, घटती हुई प्रति व्यक्ति खपत के बीच अंतर नीति विकल्प और उसके क्रियान्वयन से संबंधित खाद्य सुरक्षा की समस्या खड़ी करता है। सैद्धांतिक दृष्टि से हम तीन वैकल्पिक नीति संदर्भों की चर्चा कर सकते हैं। ये हैं :

19.4.1 मुक्त बाजार प्रचालन

आइए, हम काल्पनिक स्थिति पर विचार करें जहाँ केवल दो उपभोक्ता है : (i) गरीब उपभोक्ता और (ii) धनी उपभोक्ता। माना कि गरीब उपभोक्ता का मांग वक्र D1D1 है और धनी का D2D2 है (चित्र 19.1), जिसमें SS बाजार आपूर्ति वक्र निरूपित करता है। कुल मांग वक्र DD दो अलग-अलग मांग रेखाओं के समस्त जोड़ द्वारा प्राप्त किया गया है। इन दो वक्र रेखाओं का काट बिंदु (बिंदु E) सौदा की जा रही OQ मात्रा से बाजार में विद्यमान संतुलन कीमत OP निरूपित करता है। OP कीमत पर गरीब उपभोक्ता ''Oq_1'' मात्रा खरीदेगा और OQ के बराबर $Oq_1 + Oq_2$ होने से धनी Oq_2 उपभोक्ता मात्रा खरीदेगा। यह संभव है कि गरीब उपभोक्ता द्वारा खरीदे गये खाद्यान्न की मात्रा स्वस्थ जीवन वहन के लिए अपेक्षित खाद्यान्न के न्यूनतम मानक के नीचे हो और धनी द्वारा खरीदे गए खाद्यान्न की गुणवत्ता ऐसे मानक से ऊपर हो सकती है। बाजार में, (अर्थात् OQ) यदि उचित ढंग से वितरित की जाती तो दोनों उपभोक्ता खाद्य सुरक्षित बन सकते हैं। भिन्न-भिन्न आर्थिक पृष्ठभूमि के विविध उपभोक्ताओं के लिए यह स्थिति सामान्य नियम का रूप ले सकती है। इसलिए नीतिगत चुनौती उपलब्ध खाद्यान्न के सफल वितरण के लिए आवश्यक दशाएं बनाना है।

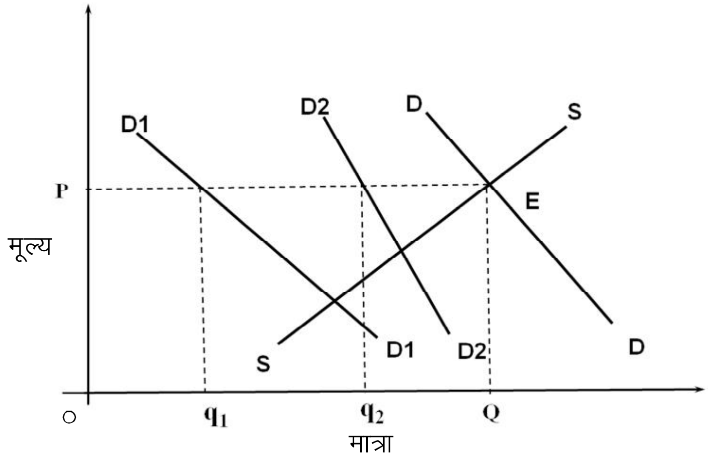

चित्र 19.1 : निर्बाध बाजार प्रचालन

19.4.2 सरकारी प्रापण का प्रभाव

माना कि सरकार उत्पादकों से खाद्यान्न प्रापण कर हस्तक्षेप करती है। इससे बाजार में खाद्यान्न की आपूर्ति घटेगी। परिणामस्वरूप आपूर्ति वक्ररेखा बायीं ओर S1S1 में अंतरित होगी (चित्र 19.2)। इस अंतरण के फलस्वरूप संतुलन मूल्य OP से OP_1 तक बढ़ेगा। यह गरीब उपभोक्ता को खपत कम करने के लिए विवश करेगा, जबकि धनी उपभोक्ताओं के लिए कोई विवशता नहीं है। कुल मिलाकर, OQ से OQ_1 समग्र खपत में कमी होगी। इस प्रकार यद्यपि अर्थव्यवस्था में खाद्यान्न की प्रति व्यक्ति उपलब्धता उच्च हो सकती है, परंतु प्रति व्यक्ति खपत कम होगी (जबकि सरकार केवल खाद्यान्न प्रापणता करती है परंतु उस खाद्यान्न राशि को खुले बाजार के लिए नहीं निकालती है या गरीबों को वितरित नहीं करती है)। इसी प्रकार, परिणाम तब भी उत्पन्न होते हैं जब सरकार खाद्यान्न निर्यात की अनुमति देती है या उसके आयात पर प्रतिबंध लगाती है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

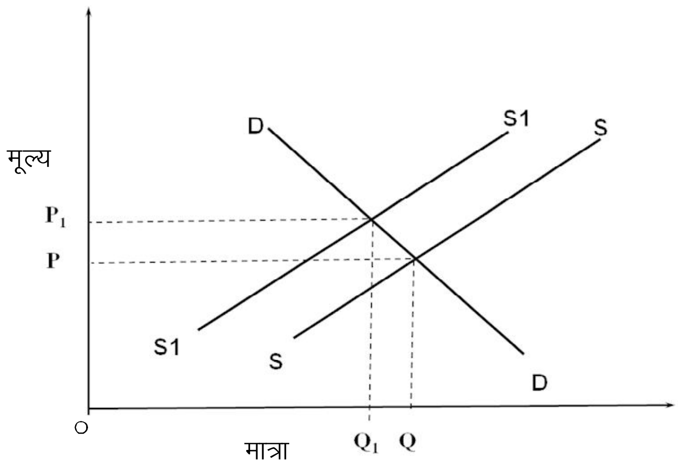

चित्र 19.2 : सरकारी प्रापण का प्रभाव

19.4.3 सरकारी प्रापण और वितरण का प्रभाव

अधिक इष्टतम स्थिति वह है जब सरकार उत्पादकों से न केवल खाद्यान्न प्रापण करती है बल्कि गरीब उपभोक्ता को इसे वितरित भी करती है। जैसा कि

19.4.2 में चर्चा की गई है, प्रापण कार्रवाई आपूर्ति वक्र को बायीं ओर SS से S1S1 में अंतरित करता है। परंतु गरीब उपभोक्ताओं को खाद्यान्न वितरण के कारण खुले बाजार पर उनकी निर्भरता घट सकती है। इसलिए कुल मांग वक्र भी बायीं ओर अंतरित होता है, अर्थात् DD से D1D1 (चित्र 19.3)। आपूर्ति और मांग वक्र रेखाओं के अंतरण के कारण संतुलन कीमत OP_2 होगी। OP (दृष्टांत 1 में विद्यमान कीमत) की अपेक्षा कीमत OP_1 में उच्चतर है, परंतु OP_1 (दृष्टांत 2 में विद्यमान कीमत) की अपेक्षा कम होगी। बाजार में सौदा की गई मात्रा भी उपर्युक्त दो मामलों की अपेक्षा निम्नतर होगी।

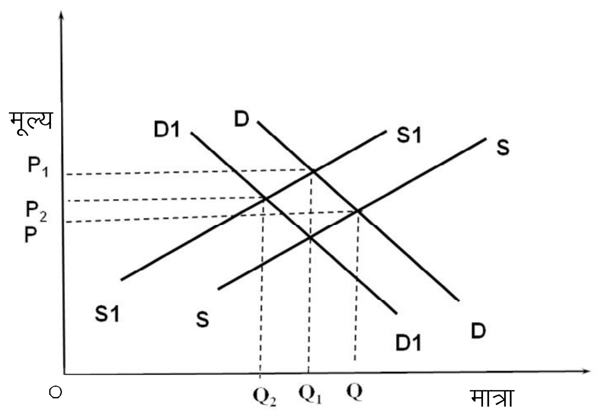

चित्र 19.3 : सरकारी प्रापण और वितरण का प्रभाव

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

जहाँ तक गरीब उपभोक्ताओं की खपत पर इस प्रकार की सरकारी कार्रवाई के प्रभाव का संबंध है, खपत बढ़ने की संभावना है क्योंकि गरीब उपभोक्ता सरकार द्वारा आपूर्ति की गई निम्न दर पर अपनी खाद्य आवश्यकता का कुछ भाग पूरा करने में समर्थ है। परंतु उसे अपनी शेष आवश्यकता खुले बाजार से उच्चतर कीमत पर खरीदनी पड़ती है। गरीब उपभोक्ताओं की खपत पर निवल प्रभाव अन्य कारकों पर भी निर्भर करता है, जैसे : (i) वितरित प्रति व्यक्ति मात्रा; (ii) रियायती कीमत; (iii) बाजार आपूर्ति पर प्रापण का प्रभाव; (iv) बाजार मांग पर वितरण का प्रभाव, आदि।

इस प्रकार, संक्षेप में, अर्थव्यवस्था प्रति व्यक्ति खाद्यान्न खपत तब भी घटती है, जब प्रति व्यक्ति खाद्य उपलब्धता पर्याप्त है। यह तब हो सकता है, जब (i) सरकार घरेलू उत्पादकों से खाद्यान्न लेती है परंतु इसे केवल बफर स्टॉक बनाने के लिए प्रयोग करती है; (ii) सरकार देशी उत्पादकों को निर्यात करने के लिए प्रोत्साहित करती है परंतु आयात पर प्रतिबंध लगाती है; (iii) सरकार घरेलू उत्पादकों से खाद्यान्न लेती है परंतु इसका केवल कुछ भाग उपभोक्ताओं को वितरित करती है और उसका बड़ा भाग बफर स्टॉक बनाने के लिए रोक देती है। पहले दो मामलों में खुले बाजार कीमतें बढ़ सकती हैं जिसके लिए उपभोक्ता, विशेषकर गरीब उपभोक्ता अपनी खाद्यान्न खपत कम कर सकते हैं। तीसरे मामले में, कुल खपत अन्य कारकों, जैसे राशन की मात्रा और उसकी कीमत, खुले बाजार की कीमतों, वितरण दक्षता आदि पर निर्भर करता है।

बोध प्रश्न 2

नीचे रिक्त स्थान में अपना उत्तर लगभग 50 शब्दों में दीजिए।

1) खाद्यान्न उपलब्धता के अलावा किन्हीं तीन कारकों का उल्लेख कीजिए जिन पर खाद्यान्न की प्रति व्यक्ति खपत निर्भर कर सकती है?

....

....

....

....

2) किस अवधि में खाद्यान्न उत्पादन के अधीन क्षेत्रफल में गिरावट आई है'। यह गिरावट कितनी रही है और ऐसी प्रवृत्ति संभवतः क्या दर्शाती है?

....

....

....

....

3) 1951-2010 की अवधि में कौन-सी दो अवधियां खाद्यान्नों के उत्पादन में उच्चतम और न्यूनतम औसत वार्षिक प्रतिशत वृद्धि के लिए जानी जाती हैं?

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

....

....

4) भारत के लिए कौन-से सूचक यह तथ्य निर्दिष्ट करते हैं कि खाद्यान्न उत्पादन में उच्चतर वृद्धि खाद्य सुरक्षा के लिए सबसे अच्छी आवश्यक शर्ते हैं?

....

....

....

....

5) अनुभवजन्य प्रमाण के आधार पर अंतिम विश्लेषण में आप भारत में खाद्यान्न उत्पादकता में वृद्धि का निरूपण कैसे करेंगे?

....

....

....

....

6) अनुभवजन्य दृष्टि से खाद्यान्न की प्रति व्यक्ति उपलब्धता में दो मुख्य निष्कर्ष बताइए।

....

....

....

....

7) कौन-सी एजेंसी/सर्वेक्षण भारत में खाद्यान्न की खपत प्रवृत्तियाँ ज्ञात करने के लिए उपयोगी आंकड़ा देती है। वे दो संदर्भ अवधियाँ कौन हैं जिनके लिए इस स्रोत से आंकड़े मुहैया किये जाते हैं? प्रति व्यक्ति खपत में प्रवृत्ति पर इन आंकड़ों से क्या निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं?

....

....

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

8) प्रति व्यक्ति खाद्य उपलब्धता में वृद्धि होने पर क्या सदैव प्रति व्यक्ति खाद्य खपत में भी सुधार होता है? यदि नहीं, तो बताइए कि इस प्रकार की स्थिति कब पैदा होती है?

....

....

....

....

19.5 खाद्य सुरक्षा के लिए नीतियां और कार्यक्रम

सरकार ने खाद्य सुरक्षा के उद्देश्य प्राप्त करने की दिशा में बहुत-सी नीतियों और कार्यक्रमों का क्रियान्वयन किया है। कुछ कार्यक्रमों का उद्देश्य मज़दूरी रोज़गार बढ़ाकर या लोगों की कौशल और आय क्षमता सुधारकर लोगों का आय स्तर बढ़ाना है। अन्य के लिए उद्देश्य रियायती दर पर खाद्यान्न देकर खाद्य खपत बढ़ाना है। इस प्रकार के कार्यक्रमों में PDS, स्कूल के बच्चों के लिए दोपहर का भोजन, काम के लिए अनाज कार्यक्रम, आदि के अधीन विशिष्ट प्रयास शामिल हैं। इनमें से कुछ कार्यक्रम सर्वव्यापक हैं जबकि अन्य जनसंख्या के खास वर्ग तक सीमित हैं।

19.5.1 PDS के अधीन प्रयास

भारत में खाद्य सुरक्षा कार्यों में सबसे अधिक व्यापक और सार्वजनिक व्यय द्वारा साहाय्य के आधार पर प्रचलित कार्यक्रम PDS है। PDS के मुख्य उद्देश्य हैं: (i) गरीबों को वहनीय कीमत पर आवश्यक उपभोक्ता माल प्रदान करना, (ii) खाद्यान्नों की मुक्त बाजार कीमतों में स्थिरता बनाए रखना, (iii) अधिशेष प्रदेशों से खाद्यान्न प्रापण करना और कमी वाले प्रदेशों में वितरित करना, और (iv) लाभकारी कीमतों पर किसानों से सीधे खाद्यान्न प्रापण कर व्यापारियों के अनुचित व्यवहार से घरेलू खाद्यान्न उत्पादकों का संरक्षण करना। केंद्रीय और राज्य, दोनों सरकारें खाद्यान्नों के प्रापण और वितरण में भाग लेती हैं। प्रापण, भंडारण, परिवहन और आवश्यक वस्तुओं (जैसे गेहूँ, चावल, चीनी, आयातित खाद्य तेल और मिट्टी तेल) को राज्यों को भारी मात्रा में आबंटित करना केंद्रीय सरकार का उत्तरदायित्व है। देश भर में सभी क्षेत्रों में फैले उचित मूल्य दुकानों (FPs) के नेटवर्क के माध्यम से उपभोक्ताओं को उसके वितरण का उत्तरदायित्व राज्य सरकारों का है। केंद्र द्वारा वस्तुएं केंद्रीय निर्गम मूल्य (CIP) नाम की कीमत पर राज्य सरकारों को उपलब्ध की जाती हैं। सामान्यतया CIP खाद्यान्नों की आर्थिक लागत की अपेक्षा कम है जिसमें भंडारण और परिवहन लागत भी शामिल हैं। आर्थिक लागत और CIP के बीच अंतर ''उपभोक्ता साहाय्य'' कहलाता है जिसे केंद्रीय सरकार वहन करती है। PDS के प्रचालन के परिणाम में सरकार की प्रापण कीमत उस कीमत के बीच जिस पर अंत में PDS में बेचा जाता है, भारी अंतर के कारण खाद्य साहाय्य बढ़ रहा है। उदाहरण के लिए, 2011 में जब गेहूँ रु. 11.2 प्रति किलोग्राम की दर से लिया गया था, इसे रु. 4.15 प्रति किलो की दर से BPL परिवारों को तथा रु. 6.10 प्रति किलो की दर से APL परिवारों को बेचा गया था। 1992-2011 की अवधि में उपभोक्ता साहाय्य (1992 में 2850 करोड़ रुपये से बढ़कर 2011 में 62930 रुपये) 16.7 औसत वार्षिक प्रतिशत बढ़ी है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

19.5.2 खाद्य आधारित कल्याणकारी योजनाएँ

सरकार द्वारा गरीब परिवारों के लिए रियायती कीमतों पर खाद्यान्न वितरण से संबंधित बहुत विशेष कार्यक्रम या योजनाएं आरंभ की गईं हैं। इनमें ये प्रमुख हैं : (i) 2000 में प्रारंभ की गई अंत्योदय अन्न योजना (AAY), (ii) 2001 में प्रारंभ की गई अन्नपूर्णा योजना, और (iii) 2001 में प्रारंभ की गई संपूर्ण ग्रामीण रोज़गार योजना (SGRY)। AAY का उद्देश्य गरीब परिवारों में सबसे अधिक गरीब (लगभग 5 करोड़ व्यक्तियों) को रियायती खाद्यान्न (गेहूँ रु. 2 प्रति किलोग्राम और चावल रु. 3 प्रति किलोग्राम की दर से) देना है जो पूरे वर्ष भर स्थायी आधार पर दिन में दो वक्त का भोजन नहीं जुटा पाते हैं। परिवारों की पहचान ग्राम पंचायतों और ग्रामसभाओं द्वारा की जाती है। अन्नपूर्णा स्कीम का लक्ष्य, 65 वर्ष से अधिक आयु के एक करोड़ गरीब वरिष्ठ नागरिकों (और जो वृद्धावस्था पेंशन स्कीम के अंतर्गत नहीं आते हैं) को प्रति माह प्रति व्यक्ति निःशुल्क 10 किग्रा. खाद्यान्न देना है। SGRY रोज़गार आधारित कार्यक्रम प्रारंभ करता है जिसमें (केंद्र द्वारा राज्यों को निःशुल्क आपूर्ति किया गया) खाद्यान्न किए गए कार्यों का भुगतान करने के लिए प्रयुक्त किया जाता है, अर्थात् किए गए कार्य की प्रतिपूर्ति खाद्यान्न के माध्यम से वस्तु रूप में की जाती है। एक अन्य महत्त्वपूर्ण कल्याणकारी स्कीम सरकारी स्कूलों में ''मध्याह्न भोजन कार्यक्रम'' है जिसमें कक्षा I-VIII के बच्चों

को पका हुआ भोजन दिया जाता है। कार्यक्रम का लक्ष्य स्कूल में बच्चों को आने के लिए प्रोत्साहन देने के अलावा गरीब बच्चों का ऊर्जा और प्रोटीन स्तर बढ़ाना है। अतिरिक्त पोषक तत्व, जैसे लौह, फॉलिक एसिड और विटामिन ई अभिसरण की बृहत्तर स्कीम अर्थात् ''राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन'' (NRHM) में पूरक के रूप में गरीब बच्चों को भी दिये जाते हैं''।

19.5.3 राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन (NFSM)

NFSM फसल विकास स्कीम के रूप में 2007 में प्रारंभ किया गया था। मिशन का लक्ष्य चावल, गेहूँ और दलहनों के उत्पादन में क्रमशः 10, 8 और 2 मिलियन टन की वृद्धि प्राप्त करना है। इस उपलब्धि का समय लक्ष्य ग्यारहवीं योजना की समाप्ति तक, अर्थात् 2012 तक था। मिशन ने अतिरिक्त खाद्यान्न के 25 मिलियन टन का उत्पादन अपना लक्ष्य एक वर्ष पहले ही प्राप्त कर लिया है। मिशन की कार्यविधि में शामिल है : नई कृषि पद्धतियों का प्रवर्तन, HYV बीजों का वितरण, उच्चतर उत्पादकता के लिए मृदा की उर्वरता बढ़ाने के लिए उसका उपचार, आदि।

19.5.4 राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा (NFS) विधेयक

प्राथमिकता परिवारों को खाद्यान्नों के प्रावधान पर बल देने के अलावा NFS विधेयक लक्षित PDS में निम्नलिखित द्वारा सुधार करने का प्रस्ताव करता है: (i) खाद्यान्नों का दरवाजे पर वितरण, और (ii) ICT (अर्थात् सूचना और संचार प्रौद्योगिकी) का प्रयोग। पश्चोयुक्त को एकमात्र पहचान संख्या के आबंटन की स्कीम ''आधार'' से लाभभोगियों के सटीक पहचान/निर्धारण में बल मिला है। खाद्यान्नों की आपूर्ति न होने के मामले में विधेयक लाभभोगियों को खाद्य सुरक्षा भत्ता देने का प्रस्ताव करता है। विधेयक सामाजिक लेखा परीक्षा, शिकायत निवारण क्रियाविधि की स्थापना, सतर्कता समितियों का गठन आदि जैसे उपायों से पारदर्शिता और जवाबदेही का प्रावधान करता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

19.6 सरकारी नीति का प्रभाव

प्रापण की सरकार की नीतियों, PDS के अधीन वितरण आदि के खाद्य सुरक्षा पर नकारात्मक और सकारात्मक दोनों प्रभाव हुए हैं। इन्हें निम्न प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है।

अत्यधिक स्टॉक के परिणाम : आवश्यकता को ध्यान में रखे बिना प्रापण की नीति के कई हानिकार प्रभाव होते हैं। पहला, यह उपभोक्ताओं को अनाज की अधिक निर्बाध सुलभता से वंचित करता है। यदि खाद्यान्नों का प्रापण उस सीमा तक नहीं किया गया होता तो बाजार में अधिक मात्रा में उपलब्ध होता। दूसरा, मामला यह नहीं है कि यह अतिरिक्त प्रापण बफर स्टॉक बढ़ाने के हित में था। खाद्यान्नों का स्टाक साधारणतया बफर स्टॉक मानकों से काफी अधिक है और इस अतिरिक्त स्टॉक को भरने से केवल उनके भंडारण की अतिरिक्त लागत होती है। तीसरा, आवश्यकता से अधिक प्रापण कीमतों को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करता है। यदि बाजार में अतिरिक्त आपूर्तियां उपलब्ध होतीं तो इसकी कीमतों पर संतुलित प्रभाव होता। अंत में, यह सामान्य ज्ञान है कि भंडारण के दौरान

क्षतियां भंडारण की अवधि पर निर्भर करती हैं, भंडारण की अवधि जितनी लंबी होगी, क्षतियां भी उतनी अधिक होंगी।

अस्वस्थकर/अधारणीय उत्पादन पद्धतियां : चावल की उच्च प्रापण कीमतों ने किसानों को चावल उत्पादन के लिए प्रोत्साहित किया। यह अत्यधिक जल प्रधान फसल है। अभिजीत सेन समिति द्वारा दीर्घकालिक अनाज प्रबंधन समिति की रिपोर्ट में प्रेक्षण किया कि यह ''एकधा सस्यन प्रणाली'' जो पर्यावरण की दृष्टि से अधारणीय है, उन क्षेत्रों में हुई है जो दीर्घकालिक धारणीयता की दृष्टि से चावल उत्पादन के लिए उपयुक्त नहीं थे। इसके अलावा, किसानों को निःशुल्क विद्युत आपूर्ति से दुर्लभ उभयनिष्ठ संपदा संसाधन जैसे भौमजल का अपव्ययी प्रयोग हुआ, जो लंबे समय तक विद्यमान नहीं चल सकता। सिंचाई के लिए भौमजल के सघन प्रयोग के फलस्वरूप इन क्षेत्रों में भौमजल स्तर क्षीण हो गये। अब किसानों को पानी के लिए अधिक गहरी बोरिंग करनी पड़ती है। इससे सिंचाई लागत में भारी वृद्धि हुई है।

PDS का विकेंद्रीकरण : पिछले कुछ समय से केंद्र ने राज्य सरकारों को सस्ती दरों पर BPL परिवारों के लिए खाद्यान्न के स्थान पर वित्तीय सहायता दे रही है। यद्यपि इस समय उनकी अपनी ही आधारभूत कठिनाइयों के कारण बहुत से राज्य इस नीति को अपनाने के लिए आगे नहीं आए, यह भय है कि विकेंद्रीकृत प्रापण से कम प्रापण की संभावना बढ़ सकती है, यहां तक कि प्रापण बंद हो सकता है जो गरीब किसानों (जो आपात बिक्री करने के लिए विवश होते हैं) के हित के विरुद्ध हो सकता है। अभिजीत सेन समिति ने भी अपनी रिपोर्ट में केंद्र/FCI द्वारा खाद्यान्न के खुले प्रापण की विद्यमान न्यूनतम समर्थन मूल्य आधार प्रणाली जारी रखने की सिफारिश की। परंतु समिति ने किसानों की वास्तविक उत्पादन लागत प्रतिबिंबित करने के लिए MSP के युक्तीकरण की वकालत की है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

खाद्यान्नों का निर्यात : उत्पादन में वृद्धि से भारत खाद्यान्नों का वास्तविक निर्यातक हो गया है। यह तब भी हो रहा है जब देश की जनसंख्या का बहुत बड़ा भाग भूखा रहता है। गेहूँ का निर्यात मूल्य रु. 4310 प्रति टन रखा गया है। इसका अर्थ यह है कि सरकार विदेशी राष्ट्रों को अनाज (गेहूँ और चावल) BPL परिवारों को बेची गई कीमत पर बेच रहा है जो इसकी आर्थिक लागत के आधे से भी कम है। दूसरी ओर, सरकार इस दावे पर BPL परिवारों के लिए प्राचलन कीमत को कम करना अस्वीकार करती है कि इससे साहाय्य का भार आगे अधिक बढ़ेगा। परंतु दूसरी ओर, यह खाद्यान्न निर्यात को भारी साहाय्य देना जारी रख रही है। इस प्रकार भारतीय करदाताओं द्वारा भुगतान किये गये खाद्य साहाय्य का लाभ विदेशी उपभोक्ताओं और पशुचारा विनिर्माताओं द्वारा उपभोग किया जा रहा है। गरीब भारतीय परिवारों जिनके लिए यह अभिप्रेत है, के बदले ये साहाय्य पशुचारा विनिर्माताओं द्वारा (दक्षिण कोरिया, मलेशिया, बंग्लादेश, UAE, इंडोनेशिया, ओमान, इराक और फिलीपाइन्स जैसे देशों में) उपयोग किया जा रहा है।

गरीबी पर PDS का प्रभाव : PDS से गरीबों को आय अंतरण के आधार पर लाभ कम है क्योंकि गरीबी की बहुत बड़ी संख्या वाले राज्यों में PDS प्रभावी नहीं है। परिणामतः PDS के निष्पादन में व्यापारिक राज्यांतरिक अंतर और गरीबी

स्तरों में घटाव हुआ है। बहुत अध्ययनों ने प्रकट किया है कि बहुत गरीब परिवारों को राशन कार्ड से वंचित किया गया है, जबकि बहुत गैर-गरीब परिवार राशन कार्ड प्राप्त करने में सफल हुए हैं। इस प्रकार टाईप ई और टाईप एफ त्रुटियों के उच्च स्तरों ने भारत में PDS की कार्यदक्षता को बाधित किया है। इन कारकों के कारण PDS पर साहाय्य अप्रभावी ढंग से उपयोग किया गया है। NSS उपभोग आंकड़े दिखाते हैं कि PDS ने गरीबों की खाद्य खरीदों का केवल लगभग 8 से 20 प्रतिशत दिया है, शेष खुला बाजार क्रय द्वारा खरीदा गया। इसलिए PDS में अत्यधिक सुधारों की आवश्यकता है। इन कमियों के बावजूद सुलक्षित तरीके से सस्ता PDS गरीबों के लिए खाद्य सुरक्षा का सर्वोत्तम रूप हो सकता है।

19.7 भावी रणनीति

भारत ने साठवें दशक के मध्य से खाद्यान्न उत्पादन में बहुत प्रगति की है। इस समय भारत चावल, गेहूँ, फलों और सब्जियों आदि के उत्पादन में ऊँचे स्थान पर है। यद्यपि 1960 के दशक में प्राप्त प्रौद्योगिकीय विकास की प्रभावशीलता की अवधि अब समाप्त हो रही है। परंतु खाद्यान्न की बढ़ती हुई मांग भी सामान्य लोगों की आय में वृद्धि के कारण साथ-साथ बढ़ी। इसके अलावा, जैसाकि हमने ऊपर नोट किया, सरकार ने खाद्य सुरक्षा अधिनियम प्रवर्तन करने के लिए उपाय प्रारंभ किए हैं जो हमारे घरेलू उत्पादन पर अधिक भार डाल सकते हैं और अन्य देशों से खाद्यान्न आयात करने के लिए हमें विवश कर सकते हैं। अतः इसके लिए समुचित रणनीतियाँ अपनाई जानी आवश्यक हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

सुरक्षा नेट की स्थापना : गरीब खाद्य स्फीति के प्रभाव का सामना करने के लिए साधनहीन होता है, इसलिए उसके कल्याण के लिए सुरक्षा नेट स्थापित करना आवश्यक है। इसके लिए PDS में सुधार करना और उसे आगे अधिक सुदृढ़ किया जाना आवश्यक है। PDS में लक्ष्यित त्रुटियां कम करने का भरसक प्रयत्न किया जाना चाहिए। गरीबों की क्रय शक्ति और उनका खाद्य ग्रहण सुधारने के लिए अधिक कार्यक्रम आरंभ किये जाने आवश्यक हैं। अल्पकालिक उपाय के रूप में, जिस सीमा तक आवश्यक है, आवश्यक वस्तुएं, जैसे दलहन, खाद्य तेल, चीनी, आदि PDS के आपूर्ति के लिए आयात होनी चाहिएं। परंतु दीर्घकालिक रणनीति घरेलू उत्पादन बढ़ाने और उपयुक्त उत्पादनकारी स्वरोज़गार कार्यों द्वारा आय अर्जित करने की स्थायी क्षमता और पूँजी निर्माण से परिसंपत्तियाँ बनाने के लिए ''काम के लिए खाद्यान्न'' जैसे कार्यक्रमों से जोड़ने के लिए होने चाहिए।

AAY का विस्तार : अंत्योदय अन्न योजना का विस्तार बढ़ी हुई हकदारियों के साथ अधिक गरीब परिवारों को शामिल करने के लिए होना चाहिए। AAY स्कीम का प्रशासन बेहतर हो सकता है। इसकी हालत दोपहर के भोजन की भांति नहीं होनी चाहिए जो संभार तंत्र समस्याओं द्वारा बिगड़ गई है। इसके लिए अधिक साहाय्य की आवश्यकता हो सकती है, जिसमें खाद्य सुरक्षा के लिए थोड़ा-सा भुगतान करना पड़ सकता है परंतु गरीबी की रेखा से नीचे रहने वाले लोगों की बहुत बड़ी संख्या को लाभ दे सकता है। यह अत्यधिक खाद्यान्न स्टॉक की समस्या का समाधान भी दे सकता है।

दूसरी हरित क्रांति : यह अनुमान लगाया गया है कि 2020 में अनाज की मांग 224-296 मिलियन टन के बीच हो सकती है। दूसरी ओर, घरेलू उत्पादन के अन्न की उपलब्धता का अनुमान 222 से 268 मिलियन टन के बीच लगाया गया है। इस अंतर को पूरा करने के लिए, दूसरी हरित क्रांति प्राप्त करने की एकीकृत क्रियाविधि पर ध्यान केंद्रित करना आवश्यक है।

बोध प्रश्न 3

नीचे रिक्त स्थान में अपना उत्तर लगभग 50 शब्दों में दीजिए।

1) PDS के चार उद्देश्य बताइए।

....

....

....

....

2) CIP सामान्यतया अपनी ''आर्थिक लागत'' की अपेक्षा कम क्यों है? दोनों के बीच अंतर क्या कहलाता है और 1992-2011 की अवधि में वृद्धि की क्या सीमा रही है?

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

....

....

3) तीन महत्त्वपूर्ण खाद्यान्न आधारित कल्याणकारी कार्यक्रमों का उल्लेख कीजिए। उनमें से कौन ''कार्य के लिए खाद्यान्न'' का कार्यक्रम है?

....

....

....

....

4) NFSM का क्या लक्ष्य रहा है? उसकी प्राप्ति के लिए कौन विशिष्ट दृष्टिकोण अपनाए गए हैं?

....

....

....

....

5) खाद्यान्नों की आपूर्ति न होने के मामलों की प्रतिपूर्ति के लिए NFS विधेयक क्या प्रस्ताव करता है?

....

....

....

....

6) खाद्य सुरक्षा पर सरकार की नीति के प्रभाव के दो क्षेत्र क्या हैं जिन पर अभिजीत सेन समिति ने अपने प्रेक्षण किए हैं? खाद्यान्नों के विकेंद्रीकृत प्रापण की समस्या पर समिति की सिफारिश क्या थी?

....

....

....

....

7) राज्यांतरिक गरीबी में अंतर का क्या कारण है? PDS में क्या कमी है जिसका निवारण इस असमानता को प्रभावी ढंग से न्यूनतम करने के लिए आवश्यक है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

....

....

8) उन तीन क्षेत्रों का उल्लेख कीजिए जिनमें खाद्य सुरक्षा पर हमारी ''भावी रणनीति'' के रूप में संगठित कार्रवाई अपेक्षित है।

....

....

....

....

19.8 सारांश

स्वातंत्र्योत्तर अवधि के दौरान खाद्यान्न उत्पादन में वृद्धि और खाद्यान्न की प्रति व्यक्ति उपलब्धता में सुधार के बावजूद, भारत में अनाज की प्रति व्यक्ति खपत में लगातार ह्रास हुआ है। जनसंख्या के कमजोर वर्ग की खाद्य सुरक्षा बढ़ाने के लिए सरकार ने बहुत कार्यक्रम प्रारंभ किए हैं जिनमें PDS सबसे अधिक प्रचलित है। इन कार्यक्रमों/योजनाओं में विशाल साहाय्य अंतर्निहित है परंतु उसके

अक्षम प्रचालन के कारण लक्ष्य समूहों को प्रत्याशित लाभ नहीं मिले हैं। खाद्यान्न का विशाल बफर स्टॉक बनाने की नीति, अपेक्षाकृत कम कीमत पर निर्यात को प्रोत्साहन, आदि अपने स्वरूप में प्रतिउत्पादनकारी है। भारत में सभी लोगों को खाद्य सुरक्षा का प्रावधान निःसंदेह बड़ी चुनौती है। इस चुनौती का सामना करने के लिए दूसरी हरित क्रांति और PDS में सुधार आवश्यक है। विशेषकर, सरकार को PDS में लक्ष्यित त्रुटियां कम करने और गरीबों की क्रय शक्ति सुधारने के अन्य कार्यक्रम लागू करने के लिए ठोस प्रयास करने चाहिए।

19.9 शब्दावली

उपभोक्ता साहाय्य : उपभोक्ता साहाय्य आर्थिक लागत और केंद्रीय निर्गम कीमत के बीच अंतर है।

आर्थिक लागत : केंद्रीय सरकार द्वारा प्रापण, भंडारण, परिवहन और वितरण पर किया गया व्यय है।

केंद्रीय निर्गम कीमत (CIP) : वह कीमत जिसपर केंद्रीय सरकार उचित दुकानों के माध्यम से वितरण के लिए राज्य सरकारों को खाद्यान्न देती है।

निर्गम कीमत : वह कीमत जिस पर अंतिम उपभोक्ताओं को उचित दर दुकानों के माध्यम से वितरित की जाती है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

खाद्य सुरक्षा : खाद्य साहाय्य उपभोक्ता साहाय्य का योग है और बफर स्टॉक का वहन व्यय है।

न्यूनतम समर्थन मूल्य (MSP) : वह कीमत जिस पर सरकार किसानों से कृषि उत्पाद खरीदती है। किसान इस कीमत पर सरकार को अपने उत्पाद बेच सकते हैं (यदि बाजार में अधिक कीमत पर बेचने में असमर्थ हैं)।

19.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1) Datt and Sundaram : Indian Economy, S.Chand Publisher, Delhi, 2011.

2) Krishnaji, Nand T.N.Krishan: Public Support for Food Security- The Public Distribution System in India, Sage Publicatons, New Delhi, 2000.

3) Radhakrishna R (and Others) : India's Public Distribution System – A National and International Perspective, World Bank Discussion Paper 380, 1997.

19.11 बोध प्रश्नों के उत्तर/संकेत

बोध प्रश्न 1

1) देखिए भाग 19.1 और उत्तर दीजिए।

2) देखिए भाग 19.1 और उत्तर दीजिए।

3) देखिए भाग 19.1 और उत्तर दीजिए।

4) देखिए भाग 19.1 और उत्तर दीजिए।

5) देखिए उपभाग 19.2.1 और उत्तर दीजिए।

6) देखिए उपभाग 19.2.2 और उत्तर दीजिए।

7) देखिए उपभाग 19.2.3 और उत्तर दीजिए।

8) देखिए उपभाग 19.2.4 और उत्तर दीजिए।

9) देखिए उपभाग 19.2.5 और उत्तर दीजिए।

10) देखिए उपभाग 19.2.7 और उत्तर दीजिए।

बोध प्रश्न 2

1) देखिए भाग 19.3 और उत्तर दीजिए।

2) देखिए उपभाग 19.3.1 और उत्तर दीजिए।

3) देखिए उपभाग 19.3.1 और उत्तर दीजिए।

4) देखिए उपभाग 19.3.1 और उत्तर दीजिए।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

5) देखिए उपभाग 19.3.1 और उत्तर दीजिए।

6) देखिए उपभाग 19.3.2 और उत्तर दीजिए।

7) देखिए उपभाग 19.3.3 और उत्तर दीजिए।

8) देखिए उपभाग 19.4.3 और उत्तर दीजिए।

बोध प्रश्न 3

1) देखिए भाग 19.5 और उत्तर दीजिए।

2) देखिए उपभाग 19.5.1 और उत्तर दीजिए।

3) देखिए उपभाग 19.5.2 और उत्तर दीजिए।

4) देखिए उपभाग 19.5.3 और उत्तर दीजिए।

5) देखिए उपभाग 19.5.4 और उत्तर दीजिए।

6) देखिए भाग 19.6 और उत्तर दीजिए।

7) देखिए भाग 19.6 और उत्तर दीजिए।

8) देखिए भाग 19.7 और उत्तर दीजिए।

इकाई 20 कृषि मूल्य नीति और खाद्य स्फीति

संरचना

20.0 उद्देश्य

20.1 प्रस्तावना

20.2 कृषि मूल्यों का प्रभाव

20.2.1 आय प्रभाव

20.2.2 फसलक्रम पर प्रभाव

20.2.3 संसाधन आबंटन

20.2.4 वितरण प्रभाव

20.2.5 औद्योगिक उत्पाद

20.2.6 प्रौद्योगिकी

20.2.7 अंतर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा

20.2.8 खाद्य स्फीति

20.3 कृषि मूल्य नीति के निर्धारक कारक

20.3.1 उचित पारिश्रमिक

20.3.2 न्यायसंगत आय वितरण

20.3.3 स्फीति नियंत्रण के लिए स्थिर कीमतें

20.4 कृषि लागत और मूल्य आयोग

20.4.1 प्रापण (सरकारी खरीद) कीमतों की राजनीतिक अर्थव्यवस्था

20.4.2 आविर्भावी प्रवृत्तियाँ : युक्तीकरण के प्रयास

20.5 खाद्य स्फीति : नीति विकल्प

20.6 सारांश

20.7 शब्दावली

20.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

20.9 बोध प्रश्नों के उत्तर/संकेत

DIKSHANT IAS

Call us @7428092240

20.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप :

- कृषि उत्पादों के उचित ''मूल्य निर्धारण'' का महत्त्व बता सकेंगे;
- पहचान कर सकेंगे कि कृषि कीमतें अर्थव्यवस्था के प्रमुख घटकों को कैसे प्रभावित करती हैं;
- उन कारकों को स्पष्ट कर सकेंगे जिन्हें कृषि मूल्य निर्धारित के समय महत्त्वपूर्ण समझा जाता है;

- कृषि लागत और मूल्य आयोग की भूमिका में अंतर्निहित संस्थागत क्रियाविधि और मूल्य नीतियों पर उसके आग्रहों में परिवर्तन का वर्णन कर सकेंगे; और
- ''खाद्य स्फीति'' की संकल्पना की चर्चा कर सकेंगे और कृषि कीमतों के प्रबंधन और नियंत्रण के लिए नीति विकल्पों का सुझाव दे सकेंगे।

20.1 प्रस्तावना

हमें विदित है कि भारत का आधे से अधिक श्रम बल (प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से) अभी भी कृषि पर आश्रित है और संपूर्ण कृषि और संबद्ध कार्य राष्ट्रीय आय में 15 प्रतिशत से कम योगदान करते हैं। कृषि में उत्पादकता कम है। इसका अभिप्राय है कि कृषि कार्यों में लगे हुए गरीब किसानों की बहुत बड़ी संख्या की आय न्यून है। इसके अलावा, कृषि कार्य अनिश्चित पट्टेदारी की दशाओं, घटिया प्रौद्योगिकी, ऋण विपणन सेवाओं आदि के दबावों के अधीन किए जाते हैं। इसलिए इस सेक्टर में प्रत्यक्ष/अप्रत्यक्ष बेरोज़गारी और गरीबी है। ऐसे परिदृश्य में, जैसाकि इकाई 19 में उल्लेख किया गया है, किसानों को न्यायसंगत और लाभकारी कीमतें प्रदान करने में सरकार की भूमिका ने क्रांतिक महत्त्व ग्रहण कर लिया है। स्मरण करने के लिए, सरकार कृषि उत्पादों की लाभकारी कीमत सुनिश्चित करती है कि : (क) फसल कटाईबाद की अवधि के दौरान किसानों को अपनी फसल बहुत कम कीमत पर बेचने के लिए बाध्य नहीं हों, और (ख) फसल विफलता के वर्ष में कृषि कीमतें नियंत्रण से बाहर नहीं निकलें। दूसरे शब्दों में, कृषि उत्पादों के मूल्य निर्धारण का उद्देश्य (क) न्यूनतम समर्थन मूल्य सुनिश्चित कर उत्पादकों के हितों और (ख) खाद्य कीमतें स्थिर बनाए रखकर उपभोक्ता के हितों के बीच संतुलन बनाए रखना है। इसे प्राप्त करने के लिए सरकार द्वारा स्थापित विभिन्न तंत्र हैं : (i) महत्त्वपूर्ण फसलों के लिए न्यूनतम समर्थन मूल्य (MSP) (या प्रापण मूल्य) की घोषणा करना; (ii) अपनी विभिन्न एजेंसियों, जैसे FCI के माध्यम से MSP पर फसलों का प्रापण; (iii) कृषि विपणन प्रणाली जैसे बाजार आधारभूत संरचना और गोदामों का सुदृढ़ीकरण; (iv) PDS के माध्यम से कम कीमत पर खाद्यान्नों का वितरण; और (v) आंकड़ा संग्रहण, संसाधन और प्रसारण की व्यापक व्यवस्था के माध्यम से नियमित रूप से कीमतें मॉनीटर करना। यद्यपि हम ''खाद्य सुरक्षा'' पर पिछली इकाई में इन समस्याओं के बारे में पहले ही पढ़ चुके हैं, इस इकाई में हम कृषि मूल्य निर्धारण की क्रियाविधि के अध्ययन पर, मुख्य रूप से उन कारकों पर जो कृषि मूल्य निर्धारण की नीति तय करते हैं, CACP (अर्थात् कृषि लागत और मूल्य आयोग) में उस प्रमुख संस्था पर ध्यान केंद्रित करेंगे, जो इस प्रक्रिया के प्रशासन करने के लिए स्थापित की गई हैं। कठिनाइयों और आविर्भावी समस्याओं पर, जिनका सामना CACP) अपने कार्यों के निर्वहन करता है, आदि पर भी ध्यान केंद्रित किया गया है। प्रमुख मुद्दा, जिस पर विशेष रूप से इस इकाई में फोकस किया गया है, ''खाद्य स्फीति'' से संबंधित है। इसमें हम स्थिर कृषि कीमतों द्वारा उसे नियंत्रित करने में निभाई गई भूमिका पर विस्तार से चर्चा करेंगे। हम अर्थव्यवस्था के भिन्न-भिन्न भागों पर कृषि कीमतों के प्रभावों पर एक बार पुनः विचार के साथ अपनी चर्चा प्रारंभ करेंगे।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

20.2 कृषि मूल्यों का प्रभाव

कृषि कीमतों का प्रभाव समझाने के लिए हमें इस बारे में स्पष्ट हो जाना चाहिए कि किस कीमत का उल्लेख किया जा रहा है, क्योंकि, किसान से अंतिम उपभोक्ता तक अपनी यात्रा की भिन्न-भिन्न प्रावस्थाओं पर उसी उत्पाद की अनेक कीमतें नजर आती हैं। इसमें पहली है, ''फार्म गेट कीमत''। यह वह कीमत है जिसे किसान क्रेयता से प्राप्त करता है (जो बहुत मामलों में स्थानीय व्यापारी होता है)। स्थानीय व्यापारी से उत्पाद थोक व्यापारी तक पहुंचने के लिए बिचौलियों के कई स्तरों से होकर गुजरता है। थोक व्यापारी खुदरा विक्रेता को थोक कीमत पर बेचता है जो अंतिम उपभोक्ता को खुदरा मूल्य पर बेचता है। इसलिए जब किसान को लाभकारी कीमत सुनिश्चित करने की बात होती है तो वह ''फार्म गेट कीमत'' होता है। परंतु फार्म गेट कीमत और खुदरा व्यापारी को उपभोक्ता द्वारा भुगतान की गई अंतिम कीमत के बीच ''भारी कीमत विस्तार'' के कारण किसान को उपभोक्ता कीमत का थोड़ा-सा भाग ही प्राप्त होता है (जिसका अर्थ है कि बहुत मोटा लाभ विभिन्न बिचौलियों द्वारा प्राप्त किया जाता है) इस प्रकार

''उपभोक्ता द्वारा दी गई अंतिम कीमत = फार्म गेट कीमत + स्थानीय खरीददार की लाभ सीमा + विक्रेता और अन्य व्यापारियों का लाभ + खुदरा विक्रेता की लाभ सीमा + परिवहन और भंडारण लागत + कर''

तथापि, अन्य कारक इष्टतम रहते हुए, यह केवल उच्चतर फार्म गेट कीमत है जो वास्तविक उत्पादक/किसान को अधिक आय सुनिश्चित कर सकती है। इस संदर्भ में यह नोट करना महत्त्वपूर्ण है कि फार्म उत्पादों की कीमत का निर्धारण करने से (जैसाकि खाद्यान्नों के MSP के मामले में है) या अन्य फसलों के लिए बेहतर फार्म गेट कीमत सुनिश्चित करने से किसानों को अधिक आय सुनिश्चित करने के अलावा अन्य महत्त्वपूर्ण अप्रत्यक्ष प्रभाव भी होते हैं। जैसाकि हम जानते हैं, हमारी एक बिलियन से अधिक जनसंख्या का लगभग एक-चौथाई भाग गरीबी की रेखा से नीचे रहता है, जो अपने भोजन पर अपनी आय का काफी बड़ा भाग व्यय करता है। इसलिए खाद्यान्न कीमतों को नियंत्रण में रखने से ऐसे गरीब परिवारों पर उच्च खाद्यान्न कीमतों का नकारात्मक प्रभाव न्यूनतम किया जा सकता है। दूसरी ओर, कृषि उत्पादों की बेहतर कीमतें अन्य क्षेत्रों में कृषि के पैटर्न को प्रभावित करती हैं और समृद्धि के लिए तथा क्षेत्रीय असमानता के लिए भी निर्धारक कारक हो सकता है। इसका कारण यह है कि किसी नियत फसल के लिए अधिक कीमत से न केवल उन किसानों की आय बढ़ती है जो उस खास फसल की खेती करते हैं परंतु इसके प्रतिस्वरूप अन्य किसानों को भी ऐसी नई प्रौद्योगिकी का प्रयोग अपनाकर अपने फसलक्रम परिवर्तन करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं जो इसके लिए आवश्यक है। इसका व्यापक निहितार्थो से भरा चक्रीय प्रभाव रहता है। इस पर हम आगे विस्तार से विचार करेंगे।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

20.2.1 आय प्रभाव

यदि किसानों को बाजार के निर्बाध कार्यकरण की दया पर छोड़ा जाता है, तो कृषि अर्थव्यवस्था अस्थिर हो सकती है। इसका कारण यह है कि जिन किसानों के पास अपनी बहुत कम भूमि (2 हेक्टेयर से कम) है या जिन किसानों को

''सीमांत और छोटे किसान'' कहा गया है, भारतीय कृषि आबादी में उनकी संख्या काफी अधिक (2002-03 में 86 प्रतिशत) है। जब उत्पाद की कीमत गिरती है, सामान्यतया उत्पादक आपूर्ति कम कर देते हैं ताकि कम कीमत उसे प्रतिकूल रूप से प्रभावित नहीं कर सके। परंतु जब उत्पादक गरीब है, वह आपूर्ति न तो रोक सकता है और न ही घटा सकता है। इसे ही ''आपात बिक्री'' कहा गया है। इसके फलस्वरूप उच्चतर आपूर्ति के कारण कीमतें आगे गिरती हैं जो गरीब किसान की आय के लिए निराशाजनक होता है। बहुधा वे व्यापारियों के कपटपूर्ण व्यवहार से ग्रस्त होते हैं जो समन्वित तरीके में कार्य कर प्रायः कृषि उत्पादों की कीमतें प्रभावित करने की व्यवस्था करते हैं। यह कपट इतना दृढ़ होता है कि व्यापारी किसानों से फसल कम कीमत पर खींच लेते हैं। कम फार्म गेट कीमत अर्थव्यवस्था में गरीबी और असमानता को और गहन बना सकती है।

20.2.2 फसलक्रम पर प्रभाव

किसानों की आय के स्तर के परिवर्तन के प्रतिस्वरूप फसलक्रम में भी परिवर्तन होता है। उदाहरण के रूप में, आइये, हम दो फसलों चावल और गेहूँ पर विचार करें। आइए, हम मान लें कि: (i) इन दो फसलों के उत्पादन में प्रयुक्त आदानों का मूल्य नियत है (ii) जो भूमि चावल उत्पादन के अधीन है, उसे गेहूँ उत्पादन के लिए भी प्रयुक्त किया जा सकता है, और उत्पादन बढ़ाने की प्रौद्योगिकी दोनों फसलों के लिए उपलब्ध है। इस मामले में गेहूँ की कीमत में वृद्धि का निहितार्थ गेहूँ उत्पादकों के लिए अधिक लाभ होगा। यह चावल उत्पादों को अपनी भूमि और पूँजी गेहूँ उत्पादन में लगाने के लिए प्रेरित करेगा। इस प्रकार कीमतों के अंतर के कारण फसलक्रम प्रभावित हो जाता है क्योंकि उत्पादन निर्णय लाभ या आय प्रतिलाभ के प्रति अतिसंवेदनशील है। दूसरे शब्दों में, उत्पाद विशेष की कीमत फसलक्रम निर्णय को प्रभावित कर सकती है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

20.2.3 संसाधन आबंटन

चूंकि किसान कम लाभप्रद फसल के स्थान पर अधिक लाभप्रद फसल चुनता है, जो संसाधन उसके पास है, उन्हें उसने अधिक लाभकारी फसल के उत्पादन के लिए लगा दिया है। यद्यपि यह व्यक्तिशः किसान के स्तर पर ठीक है, परंतु व्यापक स्तर पर भी ऐसा ही प्रभाव हो सकता है। चूंकि अधिक किसान खास फसल की खेती करना प्रारंभ करते हैं, सरकार उस फसल का विपणन सुकर बनाने के लिए संसाधन अपवर्तन करने के लिए बाध्य होगी। उदाहरण के लिए, गन्ने की खेती के लिए चीनी मिलों तक पर्याप्त और शीघ्र परिवहन की आवश्यकता होती है। यदि धान के किसान गन्ने की खेती प्रारंभ करते हैं तो उस क्षेत्र में पर्याप्त सड़कों और परिवहन सेवाओं की आवश्यकता हो सकती है। दूसरे कस्बों में संसाधन उस फसल को उठाने में अंतरित किए जा सकते हैं जिनकी कीमतें उत्पादक के लिए अन्य फसलों की अपेक्षा अधिक लाभकारी हैं। यही है जो पिछले कुछ दशकों में भारतीय कृषि के मामले में हुआ है। 1990 के दशक से पहले, कृषि उत्पादों के निर्यात पर बहुत प्रतिबंध थे। प्रतिबंध हटाए जाने के बाद किसानों को ज्ञात हुआ कि मोटे अनाज की अपेक्षा नकदी फसलें अधिक लाभप्रद हैं, क्योंकि वे अंतर्राष्ट्रीय बाजार में अधिक कीमतों पर बिकती

हैं। परिणामस्वरूप उत्पादन क्रिया में परिवर्तन से ''फसल के अधीन क्षेत्रफल'' में भी अंतर हुआ। उदाहरण के लिए, 1995-96 में ज्वार फसल का क्षेत्रफल प्रतिशत में कुल क्षेत्रफल का 6.3 प्रतिशत था जो घटकर 2007-08 तक 4.9 प्रतिशत हो गया। इसी प्रकार, बाजरा के अधीन क्षेत्रफल भी 5.5 प्रतिशत से घटकर 4.2 प्रतिशत हो गया। परंतु कपास के लिए तदनुरूपी क्षेत्रफल बढ़कर 3.8 प्रतिशत से 4.8 प्रतिशत हो गया। ऐसे परिवर्तन के परिणाम एकसमान रूप से सकारात्मक नहीं हुए हैं। मोटे अनाजों से चारा और ईंधन (जनसंख्या के अधिक वर्गों के भोजन का बड़ा हिस्सा होने के अलावा) भी उपलब्ध होता है। इन फसलों के कम उत्पादन से समुदाय के अधिक गरीब वर्गों को बाजार से खरीदना पड़ता है, इससे उनका व्यय के स्वरूप प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

20.2.4 वितरण प्रभाव

आय वितरण पर कृषि कीमतों में परिवर्तन का प्रभाव विभिन्न चैनलों के माध्यम से कार्य करता है। कृषि मूल्यों में वृद्धि से किसानों के आय स्तर में वृद्धि हो सकती है। दूसरी ओर, जैसे कीमत बढ़ती हैं, क्रेयता के लिए इसका अभिप्राय उसकी क्रय शक्ति सिकुड़ जाती है, अर्थात् वास्तविक आय में ह्रास है। परंतु खाद्य पण्यवस्तु है जिसमें मांग की बहुत कम मूल्य नम्यता होती है। इसका अर्थ है कि यदि खाद्य कीमतें बढ़ती हैं तो खाद्यान्नों की मांग बहुत नहीं घटती है। परंतु कृषि कीमतों में वृद्धि से गरीबों का वास्तविक आय स्तर कम हो सकता है, किंतु धनी वर्ग काफी कम प्रभावित होता है, क्योंकि, खाद्यान्न धनी वर्ग के उपभोग व्यय का छोटा-सा भाग होता है। इस प्रकार कृषि कीमतों का वितरणात्मक प्रभाव धनी और गरीब व्यक्तियों के लिए भिन्न होगा। ऐसे प्रभाव के, विशेषकर गरीब किसानों के लिए, अन्य आयाम भी होते हैं। चूंकि गरीब किसान अपनी खाद्य फसल को फसल कटाई के तत्काल बाद बेच देता है और बाद के समय बाजार से अपनी खाद्य आवश्यकताएं खरीदता है, खाद्यान्न कीमतों में वृद्धि से उनकी गरीबी का स्तर बढ़ने की संभावना होती है। इसलिए यद्यपि मूल्य वृद्धि गरीब किसानों को सकारात्मक रूप से लाभ देती है परंतु मूल्य वृद्धि का नकारात्मक प्रभाव (जिसका सामना वे क्रेयता के रूप में करते हैं), उनके लिए अधिक विकट होता है। परंतु धनी किसान जो विक्रेय अधिशेष उत्पादन करते हैं, (उपभोग आवश्यकता और खाद्यान्न भंडारण की क्षमता से अधिक अतिरिक्त फसल), खाद्यान्न मूल्य में वृद्धि का लाभभोगी है। दूसरे शब्दों में, धनी किसानों की तुलना में गरीब किसानों के लिए वितरणात्मक प्रभाव प्रतिकूल है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

20.2.5 औद्योगिक उत्पाद

कृषि मूल्यों में परिवर्तनों के परिणामस्वरूप मांग और आपूर्ति दोनों क्रियाविधियों से औद्योगिक सेक्टर का उत्पादन प्रभावित होता है। हमने ऊपर देखा है कि कृषि मूल्यों में वृद्धि के परिणामस्वरूप गरीब वर्ग की वास्तविक आय पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसका अर्थ यह भी है कि औद्योगिक माल की मांग में कमी होगी। औद्योगिक माल की कम मांग से औद्योगिक माल का कम उत्पादन किया जाता है। इसके परिणाम में औद्योगिक सेक्टर में कम रोज़गार होता है। आपूर्ति पहलू से अन्य प्रभाव भी है। चूंकि औद्योगिक माल के उत्पादन में आदान के रूप में अनेक कृषि उत्पाद प्रयुक्त किए जाते हैं, इसलिए कृषि मूल्यों में वृद्धि

से ऐसे औद्योगिक माल की उत्पादन लागत बढ़ जाती है। अधिक कीमत से औद्योगिक माल के लिए मांग सामान्यतः गिर सकती है। इस प्रकार मांग और आपूर्ति दोनों पहलुओं पर कृषि कीमतों में वृद्धि के कारण औद्योगिकी उत्पादन का संकुचन होता है।

20.2.6 प्रौद्योगिकी

फसल की उच्च लाभकारिता उत्पादकों को बेहतर प्रौद्योगिकी अपनाकर उस फसल का उत्पादन बढ़ाने के लिए प्रेरित करती है। भारत के संदर्भ में, यही है जो उन राज्यों में हरित क्रांति की अवधि के दौरान हुआ है जहाँ इसका अधिक गहरा प्रभाव हुआ है। ऐसे प्रदेशों से सरकार भी अपनी सार्वजनिक वितरण प्रणाली के लिए खाद्यान्न की काफी अधिक मात्रा खरीदती है। सरकार द्वारा नियमित प्रापण और अधिक सुनिश्चित कीमतें किसानों को उन्नत उत्पादनकारी प्रौद्योगिकियां अपनाने के लिए प्रोत्साहित करता है। कृषि उत्पादों की कीमतों में यह वृद्धि प्रौद्योगिकी प्रभाव है।

20.2.7 अंतर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा

खाद्यान्नों के लिए विश्व बाजार घरेलू बाजार से भिन्न मंच है। विकसित देशों के उपभोक्ता, (जो खाद्यान्न आयात करते हैं), गुणवत्ता के प्रति जागरूक हैं। अंतर्राष्ट्रीय बाजार में भारतीय कृषि उत्पादों को अन्य देशों के उत्पादों से प्रतिस्पर्धा करनी पड़ती है। इस प्रकार प्रतिस्पर्धी कीमतें विश्व कृषि बाजार में पहुँच प्राप्त करने के लिए आवश्यक हैं। इसलिए यह अंतर्राष्ट्रीय प्रभाव के कारण गुणवत्ता जागरूक कृषि उत्पादन के लिए प्रेरक कारक है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

20.2.8 खाद्य स्फीति

विकासशील देशों में खाद्य की बढ़ती हुई कीमतें लोगों को बुरी तरह से प्रभावित करती हैं। यह वास्तविकता है कि खाद्य कीमतों का सामान्य स्फीति दर पर सुस्पष्ट प्रभाव होता है, क्योंकि उपभोक्ता मूल्य सूचकांक का परिकलन करने के लिए बहुत मदों को खाद्य मद के रूप में लिया जाता है। सभी वस्तुओं के सामान्य कीमत स्तर और खाद्य कीमतों को साथ लिया जाता है, इसलिए वृद्धि या गिरावट आगे-पीछे होती है। हाल ही के वर्षों में, विशेषकर 2006 से, भारत में कृषि कीमतें अधिक तीव्र दर से बढ़ी हैं। उदाहरण के लिए, यद्यपि फरवरी, 2004 में खाद्य कीमत 4.4 प्रतिशत प्रति वर्ष से बढ़ी, 2006 में यह 6.1 प्रतिशत, 2007 में 9.2 प्रतिशत बढ़ी और 2010 में 20.2 प्रतिशत के शीर्ष पर पहुंच गई। खाद्य कीमतों की उच्च वृद्धि अपनाए गए नीति उपायों के प्रति अनुक्रिया की कमी दर्शाता है। चित्र 20.1 संक्षेप में, कृषि मूल्य वृद्धि का प्रभाव प्रस्तुत करता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

चित्र 20.1 : कृषि कीमत का प्रभाव

बोध प्रश्न 1

नीचे दिए स्थान में अपने प्रश्नों का उत्तर लगभग 50 शब्दों में दीजिए।

1) कृषि उत्पादों के सरकारी मूल्य निर्धारण के दो उद्देश्य बताइए।

....

....

....

....

2) भारत सरकार द्वारा कृषि मूल्य नीति के अपने उद्देश्य प्राप्त करने के लिए प्रारंभ भिन्न-भिन्न क्रियाविधियों का उल्लेख कीजिए?

....

....

....

....

3) ''फार्म गेट कीमत'' का क्या अभिप्राय है? दो कारण बताइए कि बेहतर फार्म गेट कीमत पर ध्यान केंद्रित करना क्यों महत्त्वपूर्ण है?

....

....

....

....

4) कम फार्म गेट कीमत भारत जैसी कृषि अर्थव्यवस्था में गरीबी और असमानता को कैसे प्रभावित करती है?

....

....

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

5) क्या आप सहमत हैं कि (फसलों में कीमत अंतर के कारण) किसानों का बदलता हुआ आय स्तर फसल क्रम को प्रभावित कर सकता है? कैसे?

....

....

....

....

6) सामान्य स्तर पर ''संसाधन आबंटन'' पर फसलों में विभेदक लाभकारिता स्तर क्या प्रभाव करता है?

....

....

....

....

7) कृषि कीमतों का वितरणात्मक प्रभाव गरीब किसानों के लिए प्रतिकूल क्यों है?

....

....

....

....

8) क्या आप सहमत हैं कि कृषि कीमतों में वृद्धि के परिणामस्वरूप औद्योगिक उत्पादन भी हानि उठाता है? कैसे?

....

....

....

....

9) कृषि उत्पादनों के मूल्यों में वृद्धि के ''प्रौद्योगिकीय प्रभाव'' से आप क्या समझते हैं?

....

....

....

....

10) ''अंतर्राष्ट्रीय प्रतिद्वंदिता'' बेहतर गुणवत्ता कृषि उत्पादन के लिए महत्त्वपूर्ण कारक के रूप में कैसे कार्य करता है?

....

....

DIKSHANT IAS

....

Call us @7428092240

....

11) ''खाद्य कीमतें'' समग्र स्फीति दर पर प्रबल प्रभाव क्यों करती हैं? हाल ही के किस वर्ष के भारत में खाद्य स्फीति ने अपनी चोटी को स्पर्श किया?

....

....

....

....

20.3 कृषि मूल्य नीति के निर्धारक कारक

कृषि की कीमतों की निगरानी करने में सरकार की भूमिका उपर्युक्त चर्चा के अनुसार स्पष्ट है। कीमतें इतनी नीचे नहीं होनी चाहिएं कि उनके कारण उत्पादकों को नुकसान हो, बल्कि वे उच्चतर कृषि उत्पादन, निवेश और वृद्धि के अनुरूप होनी चाहिएं। ये कारक विशेष रूप से विकासशील देशों में बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। दूसरी ओर, कीमतें इतनी अधिक ऊँची नहीं होनी चाहिए कि वे उपभोक्ता की क्रयशक्ति को ही क्षीण कर दें। यदि लोग अपनी खाद्य आवश्यकताओं की पूर्ति करने में अपने बजट का बड़ा भाग खर्च करते हैं तो उद्योगों और सेवाओं में मंदन हो सकता है। तब सरकार के लिए कृषि कीमतें निर्धारित करने के बारे में क्या करना आवश्यक है? इस भाग में, हम समुचित कृषि मूल्य नीति के उद्देश्यों और कारकों पर विचार करेंगे जिन्हें उस नीति के निरूपण में ध्यान में रखा जाना चाहिए।

20.3.1 उचित पारिश्रमिक

80 प्रतिशत से अधिक किसान छोटे और सीमांत किसानों की श्रेणी में आते हैं। मानसून की अनिश्चितता के अलावा, अपने उत्पाद के लिए बाजार कीमतों में उतार-चढ़ाव की प्रवृत्ति का मुख्य जोखिम उन्हें सहना पड़ता है। औद्योगिक उत्पादों के विपरीत, कृषि वस्तुओं में प्रतिस्पर्धी मार्केट की कई विशेषताएँ होती हैं, जैसे (i) उत्पाद स्वरूप में सजातीय होते हैं; (ii) छोटे क्रेयताओं और विक्रेताओं की संख्या बहुत होती है। इन कारकों का अभिप्राय है कि मूल्यों पर उत्पादकों का नियंत्रण नगण्य होता है। इसलिए कृषि कीमतें औद्योगिक माल की अपेक्षा बहुत अधिक अस्थिर होती हैं। उत्पाद की कम कीमत किसान को बर्बाद कर सकती है। इसलिए मूल्य विनियमन प्राधिकरण कीमतें (या कीमतों की रेंज) ऐसे स्तर पर नियत करने का प्रयास करते हैं कि कृषि उत्पादक को न्यूनतम प्रतिलाभ आश्वस्त किये जा सकें। एक अन्य महत्त्वपूर्ण कारक है जिसे ध्यान में रखा जाना चाहिए कि कम संपन्न किसान उत्पादन के लिए भारी राशि उधार लेते हैं। इसे ध्यान में रखते हुए यदि वे कम (अलाभकारी) कीमतें पाते हैं, तो उन्हें कर्ज का भुगतान करना कठिन हो जाता है। महाराष्ट्र के विदर्भ क्षेत्र और अन्य स्थानों जैसे पंजाब, कर्नाटक, आंध्रप्रदेश के कपास किसानों द्वारा हाल ही के वर्षों में आत्महत्या इसके उदाहरण हैं कि यदि लाभकारी कीमतें नहीं होतीं तो क्या हो सकता है। बहुत मामलों में फसल की विफलता भी संकट बढ़ा देती है परंतु कम कीमत बड़ा कारण है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

उत्पादकों के लिए लाभकारी कीमत का मुद्दा आदानों की कीमत से जुड़ा हुआ है। आदानों की कीमत में तेज़ वृद्धि किसान के लाभ पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए, सरकार ने सस्ते आदानों के महत्व पर बल दिया। स्वतंत्रता के बाद दशाब्दियों से इसका अनुसरण किया जा रहा है। पिछली दो दशाब्दियों में आर्थिक सुधारों की नीतियों के प्रवर्तन के बाद बहुत से उत्पादन साहाय्य (जैसे किसानों को निःशुल्क बिजली या कम कीमत पर बिजली, सस्ते उर्वरक, बीज और सिंचाई) वापस लिये गए हैं या लिये जा रहे हैं। इसने उत्पादन की लागत बढ़ाकर किसानों पर प्रतिकूल प्रभाव डाला है। इसके फलस्वरूप उत्पादन की वृद्धि दर और कृषि में निवेश भी पिछले दशकों की तुलना में 1990 के दशक में घटा है। यह समस्या विशेषकर कृषि आधारभूत संरचना विकास में सार्वजनिक निवेश के ह्रास से संबंधित है। उन सभी कारकों पर जो किसानों के उत्पादन की लागत बढ़ाने में योगदान करते हैं, प्रापण के लिए कृषि कीमतों के निर्धारण के समय यथाविधि विचार करना आवश्यक है।

20.3.2 न्यायसंगत आय वितरण

हमने पहले उल्लेख किया है कि कृषि कीमतें सामान्य आय वितरण को और रोज़गार के स्तर दोनों को प्रभावित करती हैं (देखिए उपभाग 20.2.4 और 20.2.5)। इसलिए नियामक प्राधिकरणों को क्या करना चाहिए? स्वातंत्र्योत्तर भारत में, सरकारी दृष्टिकोण प्रापण कीमत के रूप में न्यूनतम समर्थन मूल्य (MSP) निर्धारित करना था। इस प्रकार प्रापण किया गया खाद्यान्न बाद में निर्गम कीमत कहे जाने वाली नियंत्रित सस्ती दरों पर सार्वजनिक वितरण प्रणाली (PDS) के माध्यम से वितरित किया जाता है। चूंकि प्रापण कीमतें प्रायः निर्गम कीमत से

अधिक होती हैं, इसलिए घाटा सरकार द्वारा साहाय्य के रूप में वहन किया जाता है। साहाय्य प्रतिपूर्ति करता है : (i) उपभोक्ता को, क्योंकि PDS दुकानों में निर्गम कीमत खुले बाजार कीमत से कम होती है और (ii) उत्पादकों को, क्योंकि प्रापण कीमत बाजार कीमत से अधिक हो सकती है। चित्र 20.2 इसे रेखाचित्र द्वारा स्पष्ट करता है। यहाँ P_M खुली बाजार कीमत है, जो उचित लाभ अर्जित करने के लिए उत्पादकों के लिए बहुत कम है और अपनी खाद्य आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए उपभोक्ताओं के लिए बहुत अधिक है। इसलिए सरकार बाजार में हस्तक्षेप करती है और कीमत P_C पर किसानों से अनाज खरीदती है जो P_M की अपेक्षा अधिक है।

इसलिए $(P_C - P_M)$ उत्पादों को दिया गया साहाय्य है। बाद में, अनाज सस्ती दर की दुकानों के माध्यम से कीमत P_I पर बेचा जाता है। चूंकि P_I भी P_M की अपेक्षा भी कम है, इस प्रकार $(P_M - P_I)$ उपभोक्ताओं को दिया गया साहाय्य है। इस प्रकार फसल की प्रति इकाई दिया गया कुल साहाय्य प्रापण कीमत (P_C) और निर्गम कीमतें (P_I) के बीच अंतर (अर्थात् $P_C - P_I$) है। परंतु चित्र में दर्शायी गई स्थिति एक आदर्श स्थिति है जो सदा नहीं रह सकती है। कभी-कभी निर्गम कीमत P_I खुला बाजार कीमत P_M की अपेक्षा अधिक हो सकती है। यह तबसे आम बात हो गयी है, जबसे लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली लागू की गई है। लक्षित PDS में गरीबी की रेखा से ऊपर के वर्ग के लिए निर्गम कीमत उच्चतर स्तर पर निर्धारित की जाती है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

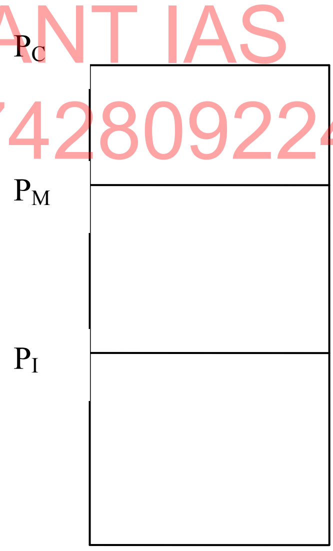

चित्र 20.2 : बाजार कीमत, प्रापण कीमत और निर्गम कीमत

कृषि उत्पादों की कीमतों में सरकार हस्तक्षेप केवल खाद्यान्नों तक ही सीमित नहीं है। कपास, जूट, आदि भी न्यूनतम समर्थन मूल्य के माध्यम से संरक्षित किए जाते हैं। खाद्येत्तर स्वरूप के उत्पादों के लिए विभिन्न एजेंसियां जैसे CCI (भारतीय कपास निगम), JCI (भारतीय जूट निगम) और तंबाकू बोर्ड सुनिश्चित करता है कि कीमतें संतुलनकारी भूमिका अदा करें। उत्पादक और उपभोक्ता पर प्रभाव के अलावा, कृषि मूल्य निर्धारण नीति को विभिन्न प्रदेशों के उत्पादकों के बीच अनाज वितरण पर भी विचार करना चाहिए। इस पर आपने इस पाठ्यक्रम की ''इकाई 12'' में विस्तार से अध्ययन किया है। कुछ प्रदेशों में उत्पादित फसलों

की कीमतें अधिक ऊँची निर्धारित करने से उन प्रदेशों के उत्पादक शेष अन्य क्षेत्रों के उत्पादकों की अपेक्षा बेहतर स्थिति में होते हैं। इसलिए अन्य फसलों के उत्पादक, उन विशेष लाभकारी फसलों के उत्पादन में जा सकते हैं। इससे अन्य प्रदेशों के उत्पादकों में शिकायतें हो सकती हैं। नियामक प्राधिकरणों को प्रापण मूल्य निर्धारित करते समय इसे भी ध्यान में रखना आवश्यक है।

20.3.3 स्फीति नियंत्रण के लिए स्थिर कीमतें

हमने ऊपर देखा है कि छोटे किसानों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है यदि उन कीमतों के बारे में अनिश्चितता होती है जिन्हें वे प्राप्त करने जा रहे हैं। यदि कीमतें उससे अधिक हैं जो न्यूनतम लाभ स्तर अर्जित करने के लिए आवश्यक हैं तो वे बेहतर प्रेरित होते हैं। दूसरी ओर यदि कीमतें इस स्तर से नीचे गिर जाती हैं, तो किसान सामान्यतः (और छोटे किसान विशेषकर) बुरी तरह से प्रभावित होते हैं। चूंकि छोटे किसान प्रायः अपने उत्पादन के लिए ऋण पर निर्भर रहते हैं, कीमतों में ऐसा मंदन उन्हें दिवालिएपन की स्थिति में पहुंचा सकता है। इसलिए मूल्य निर्धारण प्राधिकरणों का उद्देश्य न केवल उत्पादकों को लाभकारी कीमत देना होना चाहिए बल्कि कीमतें स्थिर भी होनी चाहिएं। प्रापण कीमतों में स्थिरता का खुले बाजार कीमत पर स्थिरकारी प्रभाव होता है। कीमतों की स्थिरता निवेश, रोजगार आदि के बारे में उत्पादकों की अनिश्चितता कम करती है। अस्थिर कीमतों से खाद्य स्फीति बढ़ने की संभावना होती है। जैसाकि हमने पहले देखा है, उच्च खाद्य स्फीति से सामान्य स्फीति दर बढ़ जाती है। इसलिए मूल्य निर्धारण के उद्देश्य में स्फीति नियंत्रण द्वारा स्थिरता बनाए रखने के दृष्टिकोण को महत्त्व दिया जाता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 2

नीचे रिक्त स्थान में अपना उत्तर लगभग 50 शब्दों में दीजिए।

1) बहुत कम और बहुत ऊँची कृषि कीमतों के हानिकारक परिणाम क्या हैं?

....

....

....

....

2) क्या आप सोचते हैं कि कृषि बाजार पूर्णतः प्रतिस्पर्धी है? किस प्रकार यह उत्पादकों को प्रभावित करता है?

....

....

....

....

3) उत्पादकों के लिए लाभकारी कीमत की समस्या निवेशों की कीमत से किस प्रकार अंतःसंबद्ध है? किस तरीके में इस संबंध में वर्तमान नीति की प्रवृत्तियों ने कृषि उत्पादन और निवेश को प्रभावित किया है?

....

....

....

....

4) ''निर्गम मूल्य'' क्या है? प्रापण कीमत और निर्गम कीमत के बीच घाटा किस प्रकार पूरा किया जाता है?

....

....

....

....

5) क्या ''खुले बाजार की कीमत'' की अपेक्षा ''निर्गम मूल्य'' अधिक हो सकता है? कब?

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

....

....

6) क्या आप सोचते हैं कि प्रापण मूल्य के निर्धारण में क्षेत्रीय मुद्दे भूमिका निभाते हैं? कैसे और क्यों?

....

....

....

....

7) क्या आप सहमत हैं कि उच्च खाद्य कीमतें सामान्य कीमत स्तर को भी प्रभावित करती हैं? कैसे?

....

....

....

....

20.4 कृषि लागत और मूल्य आयोग

भारत सरकार ने 1965 में कृषि मूल्य आयोग (APC) गठित किया। आयोग को ''संतुलित और एकीकृत'' मूल्य ढांचा विकसित करने की दृष्टि से कृषि पण्यवस्तुओं की मूल्य नीति पर सरकार को सलाह देनी थी। इसमें सामान्य रूप से अर्थव्यवस्था की समग्र आवश्यकताओं के परिप्रेक्ष्य और विशेष रूप से उत्पादकों और उपभोक्ताओं के हितों को ध्यान में रखा जाना था। मूल्य नीति और सापेक्ष मूल्य ढांचे की सिफारिश करते हुए आयोग ने निम्नलिखित को भी ध्यान में रखा: (i) उत्पादकों को उत्पादन अधिक से अधिक करने के लिए उन्नत प्रौद्योगिकी अपनाने के लिए प्रोत्साहन देने की आवश्यकता, और (ii) शेष अर्थव्यवस्था पर, विशेषकर निर्वाह व्यय, लागत मज़दूरी, उद्योग पर प्रभाव, आदि पर मूल्य नीति का संभावित प्रभाव। आप इससे यह देख सकते हैं कि इस बात पर बल है कि उपभोक्ता के हितों के महत्त्व से किसानों के इस प्रयोजन के लिए आवश्यक निवेश द्वारा उन्नत प्रौद्योगिकी अपनाने के लिए प्रोत्साहन की अवहेलना नहीं होनी चाहिए।

यद्यपि लिखित एवं घोषित नीति यही है, परंतु प्रचालन की दृष्टि से कई विषयों में, विशेषकर स्फीति प्रवृत्तियाँ नियंत्रित करने के बारे में असफल हुई हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि सरकार द्वारा प्रापण प्रक्रिया से प्रायः खुले बाजार में कीमतें बढ़ जाती हैं। बहुत सी राज्य सरकारों ने अनुभव किया कि सरकार की मूल्य निर्धारण नीति उपभोक्ता की अपेक्षा उत्पादकों के पक्ष में अधिक रही है। इसलिए उन्होंने प्रापण नीति के अधीन निर्धारित कीमत स्तर की उच्चतम सीमा निश्चित कर उपभोक्ताओं के संरक्षण का प्रयास किया। फिर भी, कृषि प्रापण कीमतों की लागत में वृद्धि में बढ़ने की प्रवृति उत्पादन लागत में वृद्धि और उत्पादकों के हित या भावना भी बनाए रखना दोनों कारणों से जारी रही। 1985 में सरकार ने APC का नाम बदलकर कृषि लागत और मूल्य आयोग (CACP) रखा। इससे बल स्पष्ट रूप से लागत पर लाया गया। छठी योजना (1980-85) प्रलेख ने यह प्रेक्षण करते हुए स्थिर कृषि निष्पादन और कीमतों पर बल दिया : (i) कृषि पण्यवस्तुओं की कीमतें समग्र या सामान्य मूल्य स्तर के व्यवहार पर प्रबल प्रभाव डालती हैं; (ii) विगत अनुभव बताता है कि सामान्य मूल्य स्तर में सापेक्ष स्थिरता बहुधा अच्छी फसल के वर्षों के साथ होती है और सामान्य समग्र स्फीति दबाव बहुधा कृषि उत्पाद में गिरावट द्वारा उत्पन्न होता है और परिणामतः कृषि मूल्यों में वृद्धि होती है। इसे ध्यान में रखते हुए योजना ने बल दिया कि छठीं योजना में कृषि उत्पादन कार्यनीतियां अल्प आपूर्ति वाली पण्यवस्तुओं का उत्पादन बढ़ाने की आवश्यकता पर आधारित होनी चाहिए। इससे कीमत स्थिरता बनाए रखने में सहायता होगी। सातवीं योजना (1985-90) में प्रेक्षण किया गया कि : (i) प्रोत्साहन कीमतों द्वारा सहायता प्राप्त उच्च उपज की किस्मों के प्रयोग और सरकारी खरीद ने कुछ फसलों, विशेष रूप से गेहूँ के उत्पादन में उल्लेखनीय योगदान किया; (ii) इसके परिणामस्वरूप अधिशेष का निर्माण हुआ जो शीघ्रता से खपाया नहीं जा सकता था, जबकि कुछ अन्य पण्यवस्तुओं के मामले में कमी बनी रही; (iii) कृषि मूल्य नीति आवश्यक है जिससे फसलों के सापेक्ष मूल्य समुचित स्तर बनाए रखने से संबंधित हो ताकि भिन्न-भिन्न पण्यवस्तुओं की आपूर्ति उनकी मांग के अनुरूप होती रहे और (iv) प्रापण क्रियाएं चावल,

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

तिलहन और दलहन जैसी फसलों के उन क्षेत्रों में सुदृढ़ होनी चाहिए। जहां विपणन आधारभूत संरचना पर्याप्त रूप में विद्यमान नहीं है, जिससे सुनिश्चित किया जा सके कि उत्पादक सरकार द्वारा निर्धारित कीमतों पर बेच सकते हैं। इस सभी के फलस्वरूप CACP द्वारा कृषि कीमतों की सिफारिश करते समय ध्यान में रखे जाने वाले कारकों की सूची तैयार की। कारकों में शामिल हैं : (i) उत्पादन की लागत, (ii) आदानों की कीमतों में परिवर्तन, (iii) आदान-निर्गम कीमत समानता, (iv) बाजार कीमतों में प्रवृत्तियां, (v) अंतर्फसल कीमत समानता, (vi) मांग और आपूर्ति स्थिति, (vii) औद्योगिक लागत ढांचे पर प्रभाव, (viii) सामान्य कीमत स्तर पर प्रभाव; (ix) जीवन निर्वाह लागत पर प्रभाव, और (x) भुगतान की गई कीमत और किसान द्वारा प्राप्त कीमत के बीच समानता (व्यापार की शर्तें)।

20.4.1 प्रापण (सरकारी खरीद) कीमतों की राजनीतिक अर्थव्यवस्था

प्रापण/न्यूनतम समर्थन मूल्य निर्धारित करने का मामला वास्तविकता में आसान नहीं है। चूंकि प्रापण कीमत आय के वितरण को प्रभावित करती है, भिन्न-भिन्न दबाव समूह सरकारी प्रापण कीमतों के निर्धारण की प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं। प्रतिस्वरूप में, यह अनाज प्रापण की मात्रा को प्रभावित करता है। उच्च कीमत किसानों को अपनी फसल की अधिक मात्रा सरकार को बेचने के लिए प्रेरित करती है। परंतु यह सदा उपयोगी नहीं होता है क्योंकि परिवहन और भंडारण के व्यय हैं। हाल ही के वर्षों में, भारत को FCI गोदामों में खाद्यान्नों की ढेर लगने का अनुभव हुआ है। इस समय खाद्य भंडार सिफारिश किए गए बफर स्टॉक मानक का दुगुना है। इससे अनाज की चोरी और बर्बादी हुई है। उच्चतम न्यायालय ने आदेश दिया कि सरकार को खाद्यान्न सड़ने के बदले गरीबों में निःशुल्क वितरित करना चाहिए। ऐसी स्थिति में क्षतियों को कम करने के लिए अनाज का निर्यात प्रारंभ करने की सरकार की पद्धति की आलोचना की गई है क्योंकि इससे देशीय खाद्य समस्या की अनदेखी होती है। क्षेत्रीय रूप से संकेंद्रित धनी किसानों की लॉबी बहुधा यह सुनिश्चित करने में सफल हो जाती है कि अनाज के प्रापण का बड़ा भाग परंपरागत हरित क्रांति क्षेत्रों से हो। इस प्रकार धनी उत्पादक सरकार के मूल्य निर्धारण को अपने पक्ष में मोड़ लेते हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

20.4.2 आविर्भावी प्रवृत्तियाँ : युक्तीकरण के प्रयास

1990 के दशक के प्रारंभ से सरकार ने नई नीति पैकेज अपनाई है जिसमें साहाय्य और बजट घाटा कम करना शामिल है। स्मरण करें कि प्रापण कीमत और निर्गम कीमत के बीच अंतर साहाय्य (subsidy) है जिसे सरकार देती है। इस साहाय्य को कम करने का एक तरीका प्रापण कीमत कम करना है। दूसरा तरीका, PDS के अधीन निर्गम कीमत बढ़ाना है। किसान लॉबियों से दबाव के कारण प्रापण कीमतें कम करना या प्रापण कार्य कम करना सफल नहीं हुआ। PDS की मात्रा घटाने का एक तरीका था ताकि कुल साहाय्यों में कमी हो। पिछली इकाई के अपने अध्ययन से याद करें कि विकल्प के रूप में सरकार ने दो निर्गम कीमतों की नीति अपनाई है : एक गरीबी के रेखा (APL) से ऊपर के लोगों के लिए और दूसरा, गरीबी की रेखा से नीचे (BPL) के लोगों के लिए। इससे सुनिश्चित हुआ है कि BPL जनसंख्या PDS की मुख्य लाभभोगी है क्योंकि APL के लिए कीमतें बहुधा बाजार कीमत के समान होती है।

इस बात पर चर्चा हुई है कि PDS में छीजन कम कैसे किया जाए और मूल्य नियंत्रण उपाय की कार्यक्षमता कैसे बढ़ाई जाए। आपको विदित ही है कि सर्वेक्षण में त्रुटियों और सरकारी कुप्रबंधन के कारण BPL जनसंख्या के लिए निर्दिष्ट खाद्य अभिप्रेत लक्ष्य समूह तक नहीं पहुंचता है। इसके अलावा BPL आबादी की पहचान भ्रष्टाचार और कुप्रबंधन से ग्रस्त है, जैसे प्रायः बहुत धनी और प्रभावशाली लोग साहाय्य लेने के लिए अपने आपको BPL सूची में रिकार्ड करवा लेते हैं। यह अनुमान लगाया गया है कि उस जनसंख्या के आधे सदस्य जिन्हें BPL कार्ड मिलना चाहिए था, सरकार की BPL सूची में नहीं हैं। इसे ध्यान में रखते हुए सरकार BPL समाप्त करने पर विचार कर रही हैं। इसका प्रस्तावित विकल्प BPL उपभोक्ताओं को खाद्य कूपन (या सीधे नकद) देना है जिसे बाजार से खाद्यान्न खरीदने के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है।

बोध प्रश्न 3

नीचे दिये गए स्थान में अपना उत्तर लगभग 50 शब्दों में लिखिए।

1) 1965 में APC के गठन के समय वे कौन दो कारक थे जिन पर अधिकतम ध्यान दिया गया था? इस संदर्भ में अतिरिक्त बल क्या दिया गया था?

....

....

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

2) स्थिर कृषि निष्पादन और कीमतों पर बल देने के लिए छठी योजना में तीन प्रेक्षण क्या थे?

....

....

....

....

3) सरकार की कृषि मूल्य नीति में आवश्यक पुनर्भिविन्यास पर बल देने के लिए सातवीं योजना के प्रेक्षणों का उल्लेख कीजिए।

....

....

....

....

4) 1980 के दशक के अंत तक कृषि मूल्यों की सिफारिश करते समय CACP द्वारा किन कारकों को ध्यान में रखे जाने के लिए आवश्यक रूप में पहचान की गई है?

....

....

....

....

5) उन समस्याओं का उल्लेख कीजिए जो उच्च प्रापण कीमतों के कारण उत्पन्न हुई और किस तरीके में ऐसी स्थिति का सामना किया गया। इस संदर्भ में उच्च बफर स्टॉक भंडार के पीछे क्या राजनीति अर्थव्यवस्था आयाम है?

....

....

....

....

6) निर्गम और बाजार कीमतों के बीच कीमत में अंतर के संदर्भ में, साहाय्य बिल के न्यूनतमीकरण के लिए सरकार द्वारा क्या रणनीति अपनाई गई है?

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

20.5 खाद्य स्फीति : नीति विकल्प

खाद्य कीमतें CPI–स्फीति में लिए बड़ा योगदान करती है। (देखें पाठयक्रम BCCE –002 के उपभोक्ता मूल्य सूचकांक स्फीतिः 'इकाई 8'' कीमत और कीमत सूचकांक पर भाग 8.2)। यह समय के चलते लोगों के उपभोग स्वरूप पर मूल्य प्रभाव को दर्शाता है। यह खाद्य और ऊर्जा कीमतें हटाने के बाद परिकलित ''कोर स्फीति'' से भिन्न है। बढ़ती हुई आय से उपभोग स्वरूप, सामान्यतया खाद्य मदों और खाद्येत्तर मदों के बीच अंतर करते हुए तेज़ी से बढ़ता है। इसके अलावा, उच्चतर प्रोटीन खाद्य मदों की ओर झुकाव होता है। खाद्य स्फीति में भारत में हाल ही की प्रवृत्तियां प्रोटीन समृद्ध खाद्य वस्तुओं की बढ़ती हुई मांग को दर्शाती है जिनमें फल और सब्जियां, अंडे, गोश्त और डेयरी उत्पाद शामिल हैं। उच्चतर प्रोटीन समृद्ध खाद्य में यह परिवर्तन सभी प्रदेशों/वर्गों में देखा जा सकता है। खासतौर पर ग्रामीण भारतीय परिवारों के लिए अनाज पर खाद्य बजट का अनुपात 1987-88 में 40 प्रतिशत था जो गिरकर 2007-08 में 30 प्रतिशत हुआ। इस प्रकार आय स्तरों में वृद्धि होने से अनाज पर मांग दबाव में घटने की प्रवृत्ति होती है। प्रवृत्तियों से आगे प्रकट होता है कि यद्यपि सामान्यतः भोजन की खपत प्रति वर्ष लगभग 3 प्रतिशत से बढ़ रही है, खाद्य मदों के बीच वृद्धि प्रोटीन समृद्ध वस्तुओं के लिए उच्चतर 4 प्रतिशत पर है और अनाज के लिए निम्नतर 1.5 प्रतिशत पर है।

प्रचुरता की समस्या : FCI द्वारा प्रापण की लागत के आधार पर 24 खाद्य वस्तुओं के लिए MSP अधिसूचित किया गया है। FPS के माध्यम से सस्ती दरों पर उन्हें जारी करने के लिए अधिशेष राज्य से कमी वाले राज्यों में अनाज FCI ले जाता है। खुली प्रापण नीति का अनुसरण किया जाता है जिसमें FCI विनिर्दिष्ट अवधि के अंदर प्रापण केंद्रों में लाई गई कोई भी मात्रा खरीदता है। विशेषकर यह गेहूँ और चावल के समग्र उत्पादन का लगभग एक-तिहाई खरीदता है। प्रापण की मात्रा खुले बाजार की कीमत के सापेक्ष MSP के आकर्षण पर निर्भर करता है। इसके परिणामस्वरूप कभी-कभी स्टॉक का संचय भंडारण क्षमता से कई गुणा अधिक हो जाता है। विशाल संचय बफर फसल वर्ष में ''प्रचुरता की समस्या'' पैदा करता है जिससे बर्बादी बहुत अधिक होती है। परंतु इस प्रकार की अत्यधिक आपूर्ति खुले बाजार की कीमतें नीचे नहीं ला सकती, क्योंकि प्रापण कीमतें स्वयं अधिक हैं। सामान्य कारकों, जैसे परिवहन लागत, थोक/खुदरा मार्जिन आदि, विफल मानसून के कारणों से आपूर्ति बाधाएं, नष्ट हुई फसल, जमाखोरी की प्रथा आदि खुले बाजार की कीमतों को ऊँचा रखने में सहायक होते हैं। यही कारण है जो भारत में प्रचुर स्टाक होने के साथ-साथ उच्च्च कीमतों की स्थिति होती है। प्रापण में वृद्धि से वित्तीय लागतों में पर्याप्त बढ़ोतरी होती है। भारत में ''खाद्य और उर्वरक'' के कारण साहाय्य 1990 के मध्य में GDP के लगभग 1 प्रतिशत से 2009 में GDP का लगभग 1.5 प्रतिशत बढ़ा है। इसलिए वित्तीय समेकन मांग नियंत्रण और प्रतिघातों का सामना करने के लिए वित्तीय गुंजाइश निर्माण दोनों के लिए प्राथमिकता होनी चाहिए। एक तर्क यह भी दिया जाता है कि खाद्य साहाय्य के बदले कृषि में सार्वजनिक निवेश और विस्तार सेवाओं पर व्यय किया जाए क्योंकि ये कृषि उत्पादन बढ़ा सकते हैं जिससे कीमतें नीचे आ सकती हैं। एक अन्य तर्क प्रस्तुत किया गया है कि चूंकि प्राइवेट सेक्टर की संचालन और भंडारण लागत FCI की अपेक्षा काफी कम है, इसलिए प्रापण और वितरण प्रबंधन में निजी सेक्टर की भूमिका पर विचार किया जाए।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

नीति विकल्प : उपर्युक्त चर्चा से ''खाद्यान्न स्टॉक प्रबंधन'' का महत्त्व स्पष्ट होता है, यह पहली नीति विकल्प के रूप में महत्त्वपूर्ण है। दूसरा, ऐसी व्यापक रणनीति द्वारा ''कृषि उत्पादन और उत्पादकता'' बढ़ाना है जिसमें प्रौद्योगिकी, उन्नत जल प्रबंधन, ग्रामीण आधारभूत संरचना विकास, कृषि विविधीकरण, खाद्य सुरक्षा, विपणन और कृषि उद्योग विकास आदि में निजी क्षेत्र के निवेश पर फोकस हो। इस संदर्भ में, गुजरात की सफलता का एकमात्र ऐसे उदाहरण के रूप प्रस्तुत किया जाता है कि ऐसा बृहद दृष्टिकोण कैसे कार्य कर सका। सुझाया गया तीसरा विकल्प है, खाद्यान्न विपणन में निजी सेक्टर की बढ़ती हुई भूमिका द्वारा ''गेहूँ और चावल का प्रत्यक्ष सार्वजनिक प्रापण से सुरक्षा नेट असंबद्ध करना है''। यह विकल्प साहाय्य प्राप्त खाद्य वितरण समाप्त करने के लिए नहीं है बल्कि उद्देश्य हानियों के न्यूनतमीकरण द्वारा प्रबंधन में कार्यक्षमता बढ़ाना है। चौथा विकल्प ''जोखिमों के नियंत्रण के लिए बाजार आधारित साधनों के विकास पर फोकस करना है''। विनिमय/ब्याज दरों में अस्थिरता के कारण पण्यवस्तुओं की कीमतें अप्रत्याशित शिखर पर पहुँच गई हैं। अनिश्चित, राजनीतिक और आर्थिक दशाओं के कारण इनके कम होने की संभावना नहीं है। यह विवाद का आम विषय हो गया है। इसने उधार लेने वालों में और जोखिमों के नियंत्रण में

सहायता के लिए बाजार आधारित साधनों में नीति योजनाकारों में नवीकृत रुचि उत्पन्न की है।

20.6 सारांश

कृषि कीमतें विकासशील देश में प्रमुख भूमिका निभाती हैं जहाँ जनसंख्या का बड़ा भाग कृषि पर निर्भर है। यह दो चैनलों के माध्यम से समग्र अर्थव्यवस्था को प्रभवित करता है। पहला, यदि कीमतें अलाभकारी हैं, यह किसानों के लाभ को प्रभावित करता है जो भिन्न-भिन्न फसलों के अधीन क्षेत्र को प्रभावित करता है और फसलक्रम भी प्रभावित होता है। यह उसी तर्क द्वारा व्यक्तिगत और समग्र स्तरों पर दोनों संसाधन आबंटन को प्रभावित करता है। प्रौद्योगिकी का अंगीकरण और उससे संबद्ध निवेश निर्णय भी कीमतों में वृद्धि द्वारा प्रभावित होते हैं। दूसरा यह खरीददारों की वास्तविक आय को प्रभावित करता है। यदि कृषि कीमतें तेज़ी से बढ़ती हैं तो यह पहले से ही गरीब लोगों पर और सामान्य गरीबी स्तर पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। उत्तरोत्तर प्रभाव से यह औद्योगिक उत्पादों की मांग भी घटाता है। इसके फलस्वरूप औद्योगिक वस्तुओं की कीमतें और औद्योगिक उत्पाद तथा रोज़गार को हानि उठानी पड़ती है।

अतः कृषि उत्पादों के मूल्य निर्धारण में स्थिरता की अवस्था बनाए रखने पर उचित ध्यान देना आवश्यक है। परंतु भारत के संदर्भ में हम पाते हैं कि मूल्य निर्धारण नीति उपभोक्ताओं की अपेक्षा उत्पादकों के पक्ष में अधिक झुकी होती है। साहाय्य प्रापण मूल्य और निर्गम मूल्य में अंतर पूरा करने के लिए प्रदान किया जाता है। साहाय्यों को घटाने के लिए PDS दुकानों पर निर्गम कीमतें बढ़ाए जाने की आवश्यकता है। 1990 के दशक के बाद अपनाए गए आर्थिक सुधारों के संदर्भ में ये मुद्दे नया महत्त्व धारण कर रहे हैं। यद्यपि सरकार साहाय्य को कम करने के लिए बाध्य है, परंतु राजनीतिक दबाव के कारण प्रापण नीतियां नहीं बदली जा सकी हैं। इन सभी से अनाज खपत गिरी है, प्रोटीन समृद्ध खाद्य वस्तुओं की मांग बढ़ी है और बुनियादी खाद्यान्नों, अर्थात् गेहूँ और चावल में PDS स्टाक का अपव्ययी संचयन बढ़ा है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

20.7 शब्दावली

कीमत विस्तार : खाद्य मदों की फार्म गेट कीमत और खुदरा कीमत के बीच अंतर को कीमत विस्तार कहा जाता है। यह संसाधन, परिवहन, विभिन्न बिचौलिये, जैसे थोक और खुदरा व्यापारियों, के लाभ कराधान मार्जिन आदि की गुंजाइश दर्शाता है।

अंतर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा : यह निर्धारित करता है कि माल और सेवाएं विश्व बाजार में बेचे जाने योग्य है कि नहीं। यह उन कारकों पर निर्भर करता है, जैसे कीमत जिस पर कोई माल अंतर्राष्ट्रीय बाजार में बिक्री के लिए प्रस्तुत किया गया है, उसकी गुणवत्ता और

व्यापार की शर्तें तथा विश्व बाजार में स्थिति।

निर्गम कीमत : कीमत जिस पर PDS दुकानों के माध्यम से माल बेचा जाता है। गरीब वर्गों की क्रय शक्ति, बाजार कीमत स्तर और सरकार की वित्तीय स्थिति पर साहाय्य प्रभाव को ध्यान में रखकर इस कीमत का निर्णय किया जाता है।

खुला बाजार कीमत : किसी बाहरी हस्तक्षेप के बिना माल के लिए मांग और उसकी आपूर्त्ति की अंतःक्रिया द्वारा यथा निर्धारित बाजार में प्रचालन कीमत।

मांग की मूल्य नम्यता : यह माल के लिए उसकी इकाई कीमत में परिवर्तन के लिए मांग की अनुक्रियाशीलता मापता है। साधारणतया खाद्य वस्तुओं में विशेषकर गरीब लोगों के लिए मांग की मूल्य नम्यता निम्न होती है। भोजन आवश्यक होने के कारण होता है, आवश्यक मात्रा में कमी पर कीमत वृद्धि का प्रभाव कम होता है।

प्रापण (सरकारी खरीद) मूल्य : भिन्न-भिन्न फसलों के लिए सरकार द्वारा निर्धारित मूल्य जिस पर यह किसानों से फसलें खरीदती है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

व्यापार की शर्त : यह दो सेक्टरों में प्रचलित कीमतों का अनुपात है। उदाहरण के लिए, यदि कृषि कीमत P_A है, और औद्योगिक कीमत P_B है तब सेक्टरों के बीच व्यापार की शर्त P_A/P_B होगी।

20.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1) Kapila, U. (ed.), 2009, *Indian Economy Since Independence 2008-09,* Academic Foundation, New Delhi.

2) Misra, S.K. and V.K. Puri, 2010, *Indian Economy,* Himalaya Publishing House, New Delhi.

3) Patnaik, U., 1999, *The Long Transition,* Tulika Publicaions, New Delhi.

4) Raj, K.N., 1990, *Organisational Issues in Indian Agriculture,* Oxford University Press, New Delhi.

20.9 बोध प्रश्नों के उत्तर/संकेत

बोध प्रश्न 1

1) देखिए भाग 20.1 और उत्तर दीजिए।

2) देखिए भाग 20.1 और उत्तर दीजिए।

3) देखिए भाग 20.2 और उत्तर दीजिए।
4) देखिए उपभाग 20.2.1 और उत्तर दीजिए।
5) देखिए उपभाग 20.2.2 और उत्तर दीजिए।
6) देखिए उपभाग 20.2.3 और उत्तर दीजिए।
7) देखिए उपभाग 20.2.4 और उत्तर दीजिए।
8) देखिए उपभाग 20.2.5 और उत्तर दीजिए।
9) देखिए उपभाग 20.2.6 और उत्तर दीजिए।
10) देखिए उपभाग 20.2.7 और उत्तर दीजिए।
11) देखिए उपभाग 20.2.8 और उत्तर दीजिए।

बोध प्रश्न 2

1) देखिए भाग 20.3 और उत्तर दीजिए।
2) देखिए उपभाग 20.3.1 और उत्तर दीजिए।
3) देखिए उपभाग 20.3.1 और उत्तर दीजिए।
4) देखिए उपभाग 20.3.2 और उत्तर दीजिए।
5) देखिए उपभाग 20.3.2 और उत्तर दीजिए।
6) देखिए उपभाग 20.3.2 और उत्तर दीजिए।
7) देखिए उपभाग 20.3.3 और उत्तर दीजिए।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 3

1) देखिए भाग 20.4 और उत्तर दीजिए।
2) देखिए भाग 20.4 और उत्तर दीजिए।
3) देखिए भाग 20.4 और उत्तर दीजिए।
4) देखिए भाग 20.4 और उत्तर दीजिए।
5) देखिए उपभाग 20.4.1 और उत्तर दीजिए।
6) देखिए उपभाग 20.4.2 और उत्तर दीजिए।

इकाई 21 कृषि प्रगति का पर्यावरणी प्रभाव

संरचना

21.0 उद्देश्य

21.1 प्रस्तावना

21.2 संकल्पनाएं

21.2.1 जैव विविधता

21.2.2 ग्रीनहाऊस गैस

21.2.3 कृषि आर्थिक पद्धतियां

21.2.4 जल विभाजक प्रबंधन

21.3 पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले कारक

21.3.1 सघन कृषि क्रियाएँ

21.3.1.1 एकधा सस्यन

21.3.1.2 निरंतर खेती

21.3.1.3 जोताई

21.3.1.4 पर्वतीय पार्श्व क्षेत्रों में सघन खेती

21.3.1.5 सघन पशुधन पद्धतियां

21.3.2 सघनता से संबद्ध आदान

21.3.2.1 अजैव उर्वरक

21.3.2.2 परजीवीनाशी

21.3.2.3 सिंचाई प्रणालियां

21.3.2.4 बीज की नई किस्में

21.3.3 सघन चावल उत्पादन

21.3.4 औद्योगिक फसल संसाधन

21.4 नीतिगत मुद्दे

21.5 सारांश

21.6 शब्दावली

21.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

21.8 बोध प्रश्नों के उत्तर/संकेत

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

21.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप :

- कृषि प्रगति के पर्यावरणी प्रभाव से संबंधित संकल्पनाओं की परिभाषा दे सकेंगे;
- पर्यावरण पर कृषि प्रगति का प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले कारकों की पहचान कर सकेंगे;

- पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव करने वाली कृषि क्रियाओं का वर्णन कर सकेंगे;
- पर्यावरण पर नकारात्मक प्रभाव उत्पन्न करने वाले निवेशों के सघन प्रयोग से संबद्ध कारकों को स्पष्ट कर सकेंगे; और
- धारणीय कृषि प्रगति के बाधाकारी/पुनःस्थापक मुद्दों से संबंधित नीतिगत समस्याओं की रूपरेखा दे सकेंगे।

21.1 प्रस्तावना

कृषि प्रगति के पर्यावरणी प्रभाव की समस्या उसके उत्पादन के कारण मृदा, भूमि, जल, वायु पारिस्थितिक तंत्र के अन्य पदार्थों (प्राकृतिक संसाधनों आदि) के अधारणीय अवक्षय और निम्नीकरण से संबंधित है। इस समस्या पर चिंता हाल में इतनी सुस्पष्ट हुई है कि आपने देखा होगा कि पिछली अधिकांश इकाइयों में भी हमने उन इकाइयों के विषय की सीमा में रहते हुए इस पहलू पर चर्चा की है। उदाहरण के लिए, इकाई 2 में मृदा अपरदन को प्रभावित करने वाले कारकों के बारे में चर्चा की गई है, इकाई 11 में हरित क्रांति की हमारी उपलब्धि के संदर्भ में कृषि प्रगति पर सकारात्मक और नकारात्मक दोनों प्रभावों पर चर्चा की गई है। इकाई 14 में ''धारणीयता संबंधी पद्धतियों'' और ''संरक्षण कृषि पद्धतियों'' पर चर्चा की गई है और हाल में उच्चतर उत्पादन प्राप्त करने पर ध्यान केंद्रित करते समय भी पर्यावरणी क्षति न्यूनतमीकरण के महत्त्व पर जागरूकता जताई गयी है। इस पृष्ठभूमि में इस इकाई का उद्देश्य और विस्तार (विस्तारित चर्चा द्वारा संपूरित सार-संक्षेप द्वारा) पहले चर्चा किए गए विभिन्न पहलुओं को समेकित कर इसके नीति आयामों पर विचार करना है। इसमें उन नीतिगत पहलों, जो पर्यावरण निम्नीकरण सहायक हुए हैं, और वे जो अब उन्हें उलटने के लिए किए गए हैं, दोनों पर चर्चा की जाएगी। हमेशा की तरह हम इकाई के विषय में कुछ प्रासंगिक संकल्पनाओं के अध्ययन से प्रारंभ करेंगे।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

21.2 संकल्पनाएं

कृषि प्रगति पर पर्यावरण प्रभाव के संदर्भ में, सबसे पहले यह जानना आवश्यक है कि पर्यावरण क्या है? इसके लिए हमें शब्द ''जैव विविधता'' का अर्थ और विस्तार जानना आवश्यक है। स्पष्टतः आधारभूत प्राकृतिक संसाधनों, जैसे वायु, जल, वन आदि के अलावा जैव विविधता में बहुत से अन्य जीव और सूक्ष्मजीव शामिल हैं, जो सभी धारणीय तरीके में पर्यावरण संतुलित रखने में अपनी भूमिका निभाते हैं। उच्चतर कृषि उत्पादन प्राप्त करने की पद्धतियां बृहत्तर पारितंत्र पद्धति को कितना प्रभावित कर सकती हैं? हम इस भाग में इस विषय से संबंधित कुछ शब्दों की परिभाषा से परिचित होंगे।

21.2.1 जैव विविधता

शब्द जैव विविधता या जैविक विविधता का संबंध पारिस्थिति तंत्रों में परिवर्तनशीलता से है। ये भिन्न-भिन्न पारिस्थितिक तंत्र, जैसे समुद्र और सागर, नदियां और झील, मरुस्थल और घास स्थल, वन और पर्वत, मुख्य भूमि और भीतरी भूमि आदि हैं। ये पारिस्थितिक तंत्र सप्राण जीवों (जैसे मनुष्यों, पौधों, पशुओं और रोगाणुओं)

के समुदाय के लिए आवास और पर्यावरण के प्राणहीन घटकों, जीवन-यापन के लिए महत्त्वपूर्ण, जैसे वायु, जल, मृदा, आदि प्रदान करते हैं। प्रत्येक पारिस्थितिक तंत्र में सप्राण जीवों की विभिन्न प्रजातियां हैं जिसमें प्रत्येक आनुवंशिक रूप से भिन्न-भिन्न है। पारिस्थितिक तंत्र के अंदर इस विविधता को इस कारण से संरक्षित किया जाना आवश्यक है कि ग्रह (अर्थात् पृथ्वी) पर संपूर्ण जीवन प्रणाली एक दूसरे पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष निर्भरता से परस्पर संबद्ध है जिसे ''जीवन का जाल'' (web of life) कहा जाता है। इसके कारण यदि एक विलुप्त प्रजाति अन्य प्रजाति को भी प्रभावित करती है। अंततः एक प्रतिक्रिया श्रृंखला प्रारंभ होती हैं जिसके कारण कई प्रजातियों की मृत्यु हो जाती हैं। इससे चिरस्थायी तरीके में पारिस्थितिक तंत्र बाधित होता है। कृषि के संदर्भ में, अधिक कृषि भूमि बनाने के लिए वन में वृक्षों की कटाई से एक ओर वन आवरण कम होने की संभावना होती है तो दूसरी ओर बहुत से वन्य पशुओं के वास स्थल भी बाधित होते हैं। इसी प्रकार जलाशयों के प्रदूषण से मछलियां भी प्रभावित होती हैं। इसी प्रकार रासायनिक उर्वरकों के अत्यधिक उपयोग और बहुत गहराई से भौमजल निकालने के कारण मृदा भी अपनी उर्वरता खो सकती है। भूमि, जल, मृदा और वायु की गुणवत्ता का ह्रास पर्यावरण क्षति का अल्पकालिक घटक बनता है। इसके विपरीत, पारिस्थितिक परिवर्तनों के अनुसार पर्यावरण बाधाएं अपेक्षाकृत लंबे समय के बाद होती हैं। जैव विविधता परिवर्तन, जिनके कारण पर्यावरण का ह्रास होता है, मानव स्वास्थ्य पर सकारात्मक और नकारात्मक दोनों प्रभाव डालता है। यद्यपि जल और मृदा से कृषि उत्पाद संदूषित होते हैं, जो उसके उपभोक्ताओं के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है, जैव विविधता की क्षति (जैसे HYV बीजों के प्रयोग द्वारा) बहुत-सी देशी प्रजातियों का विस्थापन और मूल्यवान जीन कोश का विलोपन कर सकती है (देखिए 1.3.2.2)। यद्यपि ये कृषि प्रगति के नकारात्मक पर्यावरणी प्रभाव के उदाहरण हैं परंतु खाद्य सुरक्षा की प्राप्ति और बहुत से औषधीय उत्पादों की खोज (जिनमें से अधिकांश प्राकृतिक वनभूमि में उगने वाले/रहने वाले पादपों और पशुओं से प्राप्त होते है, मानव जाति के लिए इसका विशुद्ध लाभ जैव विविधता संरक्षण के सकारात्मक आयाम हैं। कृषि के लिए विशिष्ट जैव विविधता का प्रकार ''कृषि जैव विविधता'' है। यह कृषि के लिए सुसंगत जीव के सभी रूपों जैसे विरल बीज किस्म सभी पशु नस्लों सहित अन्य जीव जैसे खरपतवार, नाशकजीव आदि का संकेत देता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

21.2.2 ग्रीनहाऊस गैस

पिछले कुछ समय से इस बात पर आग्रह हो रहा है कि संवृद्धि की प्रक्रिया में धारणीयता और समाहन के सरोकार पर ध्यान दिया जाना चाहिए। वैसे तो यह विचार समूची अर्थव्यवस्था पर मान्य होता है – किंतु कृषि के संदर्भ में इसके ये आयाम होंगेः (i) खाद्य सुरक्षा संबंधी चिंताएं, और (ii) कृषि विविधीकरण की आवश्यकता के साथ-साथ गैर-कृषि क्षेत्र का संवर्धन। यहां पर्यातंत्र में विक्षोभ पैदा कर रही गैर-धारणीय कार्य पद्धतियों पर नियंत्रण एक बड़ी नीतिगत चुनौती सिद्ध हो रही है। सभी अंतर्निहित संबंधों को समझने की कुंजी एक ही हैः आधुनिक यंत्रों एवं उपकरणों सहित सभी जीवधारियों को अपने कार्य निष्पादन के लिए ऊर्जा की आवश्यकता होती है। किंतु ऊर्जा के उत्पादन एवं उपयोग क्रम में वातावरण में हानिकर गैसों का उत्सर्जन/निःसरण होता है। इसी कारण

जैविक विविधता का संतुलन बनाए रखने में पर्यावरण की भूमिका एक निर्णायक रूप धारण कर जाती है। इसकी कार्यविधि इस प्रकार रहती है:

प्राकृतिक प्रक्रिया में सूर्य की किरणों से विकिरण की मात्रा वायुमंडलीय गैसों द्वारा छानी जाती है और पृथ्वी इष्टतम स्तर पर गर्म बनी रहती है। इससे पृथ्वी जीवों के रहने योग्य रहती है। परंतु संवृद्धि प्रक्रिया को बढ़ाने के लिए आवश्यक विद्युत/ऊर्जा की बढ़ी हुई मांग वायुमंडल में प्रदूषकों की बहुत बड़ी मात्रा छोड़ता है। अधिकांश मामलों में, यह किसी न किसी गैसीय रूप में छोड़ी जाती है। ये गैसें (जो मोटे तौर पर पांच अर्थात् जल वाष्प, कार्बन डाइआक्साइड, मीथेन, नाइट्रस आक्साइड और ओजोन) ग्रीनहाऊस गैस (GHG) कहलाती हैं। जब इन गैसों का उत्पादन आत्मसात करने या अवशोषण करने की प्रकृति की क्षमता से अधिक होता है तो अवशोषित न किया गया भाग पृथ्वी की सतह की ओर विकिरित होता है (जिसे पुनर्विकिरण कहा जाता है)। इससे पृथ्वी पर औसत तापमान बढ़ता है। यह परिघटना **ग्लोबल वार्मिंग** के नाम से जानी जाती है। पर्यावरण की महत्त्वपूर्ण भूमिका ग्रीनहाऊस गैसों के उत्सर्जनों के अवशोषण में होती है। परंतु उसकी अवशोषणात्मक शक्ति चहुंमुखी प्रौद्योगिकीय विकास की मांग के कारण मनुष्य द्वारा अपनाई गई प्रक्रियाओं की धारणीय/अधारणीय सीमा द्वारा निर्धारित होता है। पर्यातन्त्र की यह धारण क्षमता हरित आवरण के ह्रास के कारण कम हो सकती है। जब ग्रीनहाऊस गैसों का उत्सर्जन कम किया जाता है तो इस धारण क्षमता में सुधार होता है। इसे ध्यान में रखते हुए वनीकरण और प्राकृतिक संरक्षी उपायों में तालमेल का महत्त्व स्वयं सिद्ध हो जाता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

विश्व भर में यह अनुमान लगाया गया है कि कृषि ग्रीनहाऊस गैस उत्सर्जन के लगभग 20 प्रतिशत के लिए उत्तरदायी है। इसलिए संवृद्धि प्रयासों को ऐसा संतुलित बनाना नीतिगत चुनौती है कि GHG उत्सर्जन (उसके परिणामतः पुनर्विकिरण प्रभाव सहित) पृथ्वी की उनके नकारात्मक प्रभावों के अवशोषण और समाप्त करने की क्षमता से अधिक न हो। हम पहले ही देख चुके हैं कि इस उत्सर्जन को बदलती हुई कृषि क्रियाओं और फसल कटाईबाद की उन्नत सुविधाओं (जैसे शीतागारों की श्रृखलाएं और प्रोसेसिंग सुविधाएं) की स्थापना से बहुत बढ़ावा मिला है। साथ ही, सार रूप में इनकी भी चर्चा हो सकती है : (i) अवनीकरण जिससे वायु में कार्बन डाइआक्साइड का संकेंद्रण होता है, (ii) अवैज्ञानिक पशु खाद प्रबंधन पद्धतियां और मीथेन के अधिक उत्सर्जन में सहायक सघन चावल उत्पादन, और (iii) अधिक नाइट्रस आक्साइड उत्सर्जन में सहायक रासायनिक उर्वरकों का अत्यधिक प्रयोग। ग्रीनहाऊस गैसों का माप ग्लोबल वार्मिंग में उसके योगदान की शक्ति के आधार पर होता है। दूसरे शब्दों में, ग्रीनहाऊस गैस की शक्ति का उसकी ग्लोबल वार्मिंग शक्ति के रूप में उल्लेख किया जाता है। कार्बन डाइआक्साइड की इकाइयों के बराबर ली गई मात्रा से यह अनुमान लगाया जाता है कि मीथेन की शक्ति 23 गुणा अधिक है, और नाइट्रस आक्साइड की शक्ति कार्बन डाइआक्साइड की अपेक्षा 310 गुणा अधिक है। इससे दो कृषि उत्सर्जनों द्वारा पर्यावरण पर प्रभाव की सीमा स्पष्ट रूप से समझी जा सकती है।

21.2.3 कृषि आर्थिक पद्धतियां

प्रौद्योगिकीय परिवर्तन, जो पर्यावरणी प्रभाव के लिए चालक के रूप में कार्य करते

हैं, क्षेत्र विशेष में कृषि आर्थिक पद्धति (AES) द्वारा भी प्रभावित होते हैं। इस दृष्टि से पर्यावरणी प्रभाव, अर्थात् जैव विविधता (जिसके वायु, जल, मृदा, आदि भाग हैं) के प्रमुख क्षेत्र के अलावा, AES स्वयं प्रभाव का क्षेत्र हो जाता है। AES अपनी भौगोलिक विशेषताओं द्वारा वर्गीकृत की जाती हैं, जैसे (i) शुष्क या सूखा क्षेत्र, (ii) तटीय क्षेत्र, (iii) पहाड़ी और पर्वतीय क्षेत्र, (iv) वर्षा प्रधान क्षेत्र, (v) सिंचित क्षेत्र, आदि। AES पर पर्यावरणी प्रभाव या तो प्रौद्योगिकी विकास के कारण कृषि संवर्धक सुविधाओं की स्थापना के या उस क्षेत्र के लिए प्राकृतिक रूप से अनुपयुक्त कृषि पद्धति के अंगीकरण के परिणाम है। इस प्रकार के उदाहरणों में शामिल हैं : (i) क्षेत्र के शुष्क लक्षण समाप्त करने के लिए (शुष्क भूमि कृषि प्रोत्साहित करने के बदले) सिंचाई के लिए बांधों का निर्माण, (ii) अत्यधिक चराई और सस्यन प्रयोजनों के लिए सामान्य भूमि का परिवर्तन, इससे भूमि शुष्क हो जाती है और पशुओं के लिए घास दुर्लभ हो जाता है, (iii) जल अभाव क्षेत्र में जल सघन फसल उगाना, इससे भौम जल स्तर नीचे चला जाता है (HYV बीज विकास के फलस्वरूप) आदि। परंतु हम नोट कर सकते हैं कि दुष्प्राप्य संसाधनों का पुनर्वितरण, जैसे अधिशेष क्षेत्रों से जल की कमी वाले क्षेत्रों में नहर बनाकर उसका मार्ग बनाना, किसानों को अधिक आय देने के लिए फसल की वाणिज्यिक व्यावहार्यता को ध्यान देना ताकि पानी बर्बाद न जा सके। ये ऐसे महत्त्वपूर्ण मुद्दे हैं जो अपने आप में तर्कसम्मत हैं। परंतु उस सीमा तक कि अधारणीय संसाधन प्रयोग से सघन कृषि कार्य के परिणाम उनके प्रतिकूल पर्यावरणी प्रभाव नहीं हो। इसके लिए संतुलित और वैज्ञानिक दृष्टि से निश्चित कार्रवाई करना आवश्यक है। {आठवीं योजना अवधि (1992-99) से आगे} अपनाई गई भारतीय कृषि विकास नीतिगत बल, देश को (कृषि जलवायु क्षेत्रीय योजना दृष्टिकोण के अधीन) निश्चित कृषि आर्थिक क्षेत्रों (AES) में विभाजित करने और विकास के लिए उसकी विशिष्ट विशेषताओं पर रहा है। नीति आयाम की एक अन्य विशेषता जल विभाजक प्रबंधन पद्धति का अंगीकरण रहा है जिसे सातवीं योजना अवधि (1983-90) के दौरान प्रारंभ किया गया था।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

21.2.4 जल विभाजक प्रबंधन

जल विभाजक प्रबंधन को, धारणीय तरीके से भूमि, जल, और पादप संसाधनों के इष्टतम विकास के लिए जल निकास की प्राकृतिक सीमा के अंदर प्रौद्योगिकियों के एकीकरण के रूप में परिभाषित किया गया है। नीति के क्षेत्र में लगभग पिछले तीन दशकों के दौरान उनका महत्त्व माइक्रो स्तर संरक्षण पद्धति में अंतरण निर्दिष्ट करता है। जल विभाजक प्रबंधन का उद्देश्य क्षेत्र में जल के निरंतर प्रवाह के कारण मृदा का अपरदन न्यूनतम कर उसकी उत्पादकता सुधारना है क्योंकि अभी तक क्षेत्र का, अधिकांश जल न केवल व्यर्थ जाता है बल्कि बाढ़ आने से मानवीय विपत्ति भी उत्पन्न होती है। कृषि में इस दृष्टिकोण का उद्देश्य क्षेत्र में प्राकृतिक संरचना के अनुकूल उपयुक्त प्रौद्योगिकी विकसित कर वर्षा पर आश्रित क्षेत्र में कम उपज की समस्या सुधारना है। विशेष तकनीकों का उद्देश्य शुष्क क्षेत्रों में फसलों की उत्पादकता सुधारने के लिए वर्षा जल दक्षता प्राप्त करना है। जल विभाजक अध्ययन इस दृष्टिकोण के लाभों का इस प्रकार उल्लेख करते हैं : (i) फसल क्षेत्रफल और फसल सघनता में वृद्धि, (ii) मृदा अपरदन का न्यूनतमीकरण या उन्मूलन, (iii) (रागी, जैसे परंपरागत कम उपज या कम मूल्य

अनाज के बदले) अधिक मूल्य की फसलों, जैसे मूंगफली का संवर्धन, (iv) गैर जल विभाजक क्षेत्रों की तुलना में प्रति वर्ष कार्य दिवसों की संख्या में वृद्धि, (v) 10 से 100 प्रतिशत तक उपजों में वृद्धि, और (vi) गुणात्मक सुधार में परिणाम जैसे भौमजल स्तरों में वृद्धि। इस प्रकार जल विभाजक प्रबंधन के सिद्धांत के पर्यावरणी महत्त्व के लाभ इस सोदाहरण सूची से स्पष्ट हैं।

बोध प्रश्न 1

नीचे दिए स्थान में अपना उत्तर लगभग 50 शब्दों में दीजिए।

1) शब्द ''जैव विविधता'' का क्या अभिप्राय है। इसके विभिन्न घटकों का उल्लेख कीजिए।

....

....

....

....

2) जैव विविधता का संरक्षण करना क्यों आवश्यक है? कृषि के लिए इसका महत्त्व निर्दिष्ट करने के लिए उदाहरण दीजिए।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

....

....

3) पर्यावरण पर जैव विविधता परिवर्तन के प्रभाव सकारात्मक और नकारात्मक दोनों हैं। अपने कथन की पुष्टि में उदाहरण दीजिए।

....

....

....

....

4) पाँच मुख्य ग्रीनहाऊस गैस (GHG) क्या है? किस तरीके में पर्यावरण पृथ्वी पर उनके प्रतिकूल प्रभाव नियंत्रित करने में भूमिका निभाता है?

....

....

....

....

5) उन तीन विशिष्ट तरीकों का उल्लेख कीजिए जिनमें कृषि जैव विविधता संतुलन बिगाड़ने में योगदान करती है। इस संबंध में संतुलन पुनःस्थापित करने के लिए आप क्या निश्चित उपाय सुझाना चाहेंगे।

....

....

....

....

6) परिमाणात्मक आधार पर GHG उत्सर्जन में कृषि द्वारा अनुमानित विश्वस्तरीय योगदान कितना है? इसे किस प्रकार की इकाईयों में मापा गया है? इस संबंध में कृषि विकास के द्वारा पर्यावरणी क्षति में संभावित कौन से दो GHG उत्सर्जन हैं और उनकी कितनी मात्रा का मापन का योगदान रहता है।

....

....

....

....

7) भौगोलिक दृष्टि से पांच भिन्न-भिन्न कृषि आर्थिक प्रणालियां (AES) कौन-सी हैं जो जैव विविधता पर पर्यावरणी प्रभाव की क्षेत्र भी हैं?

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

....

....

8) उन तरीकों को निर्दिष्ट करने के लिए कोई तीन उदाहरण दीजिए जिनमें कृषि वृद्धि के लिए प्रौद्योगिकी विकास योगदान करते हैं?

....

....

....

....

9) दो नीतिगत अनुक्रियाओं का उल्लेख कीजिए जिन्हें कृषि संवृद्धि द्वारा पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव का सामना करने के लिए अपनाया गया है।

....

....

....

....

10) विभिन्न आर्थिक और पर्यावरणी लाभ बताइए जिन्हें भारत की कृषि में जल विभाजक पद्धतियां अपनाने से प्राप्त किया गया है।

....

....

....

....

21.3 पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले कारक

हम पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले कृषि कारकों/पद्धतियों को चार श्रेणियों में वर्गीकृत कर सकते हैं : (i) सामान्यतः सघन कृषि क्रियाएं, (ii) सघनता से संबद्ध आदान, (iii) विशेषतः सघन चावल उत्पादन, और (iv) औद्योगिक फसल प्रोसेसिंग। प्रत्येक वर्ग में अन्य बातों के अलावा हम यह भी चर्चा करेंगे कि सामान्यतः वे जैव विविधता के विक्षोप और/या GHG उत्सर्जन में किस प्रकार योगदान करते हैं जो विशेष रूप से इस प्रक्रिया में निसृत होता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

21.3.1 सघन कृषि क्रियाएं

इसके अधीन, हम कृषि क्रियाओं के पांच प्रकारों, अर्थात् एकधा सस्यन, निरंतर सस्यन, जोताई, पहाड़ी पार्श्व क्षेत्रों में सघन खेती और सघन पशुधन पद्धतियों पर चर्चा करेंगे।

21.3.1.1 एकधा सस्यन

एकधा सस्यन का संबंध खेत में एक ही फसल प्रजाति की खेती से है। यह बहु सस्यन के समान नहीं है जिसमें पालतू पशुओं की देखभाल या वृक्ष रोपण जैसे अन्य कार्यों के साथ मिश्रित किया जाता है या छितराया जाता है, एकधा सस्यन आर्थिक दृष्टि से उच्चतर उपज प्राप्त करने के लिए अपनाई जाती है। परंतु इस पद्धति का प्रभाव जैव विविधता पर नकारात्मक रूप से पड़ता है क्योंकि यह बहु सस्यन खेतों की अपेक्षा फसलों के लिए वास की कम श्रेणी प्रदान करता है। पद्धति को अधिक रासायनिक परजीवी की आवश्यकता भी हो सकती है क्योंकि फसलें कीट संक्रमण और अन्य पादप विषाणुओं के लिए अधिक संवेदनशील होती हैं। जल गुणवत्ता, वन्यजीव संख्या और मानव स्वास्थ्य पर परिणाम नकारात्मक प्रभाव डालते हैं।

21.3.1.2 निरंतर खेती

हाल ही में, निरंतर खेती पद्धति को वरीयता देते हुए पलिहर (खाली) अवधियां रखने की पुरानी पद्धति त्याग दी गई है। यह खाद्य की बढ़ती हुई मांग और आर्थिक विकास के कारण लोगों की बढ़ती हुई आय से संबद्ध खाद्य वरीयताओं में परिवर्तन के कारण हो रहा है। परंतु इससे मृदा की दशा पर हानिकारक

प्रभाव हुआ है। लगातार फसल चक्र मृदा के पोषक तत्वों की आपूर्ति घटाते हैं। अच्छी वर्षा या सिंचाई सुविधा के क्षेत्रों में यह समस्या उर्वरकों के प्रयोग से हल हो सकती है। परंतु ऐसे क्षेत्रों में भी समय के चलते मृदा में सूक्ष्म पोषक की कमियां उत्पन्न हो सकती हैं। निरंतर खेती के दीर्घकालिक प्रभाव से प्राकृतिक परजीवी संतुलनों का लाभ लेने की किसान की क्षमता समाप्त हो सकती है और इससे जैव विविधता में परिवर्तन हो सकता है। इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुए मृदा उर्वरता का स्तर पुनःस्थापित करने के लिए फलीदार फसल आवर्तन के साथ-साथ पलिहर अवधि देने पर बल दिया गया है।

21.3.1.3 जोताई

जोताई मृदा की जैव पदार्थ मात्रा को कम करती है। इससे मृदा जल अवशोषण और धारण की अपनी क्षमता खो देती है जिससे मृदा अपरदन और अपवाह प्रवण हो जाती है। समग्र मृदा गुणवत्ता का महत्त्वपूर्ण सूचक उसकी जैव पदार्थ मात्रा है जिसे पशुओं और पादपों के पातन से प्राप्त करती है। मृदा जैव पदार्थ (या SOM) मृदा और फसलों को बहुत लाभ प्रदान करता है, जैसे (i) मृदा कणों के बंधन और स्थिरीकरण द्वारा अपरदन से संरक्षण, (ii) मृदा सूक्ष्मजीवों के लिए ऊर्जा प्रदान करना, (iii) जल और पोषक तत्व आदि के संरचण और भंडारण बढ़ाना, सघन जोताई से SOM स्तर घट सकते हैं, वायु तथा जल गुणवता को नकारात्मक रूप से प्रभावित कर सकते हैं। जोताई कार्बन डाइआक्साइड उत्सर्जन भी बढ़ाता है। इसे ध्यान में रखते हुए, शून्य जोताई पद्धति अपनाने की ओर झुकाव है जिस पर आपने इकाई 14 के भाग 14.5 में अध्ययन किया है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

21.3.1.4 पर्वतीय पार्श्व क्षेत्रों में सघन खेती

पर्वतीय क्षेत्रों की तीखे ढालों में खेती मैदानी क्षेत्रों में खेती की अपेक्षा भिन्न प्रकार का पर्यावरणी प्रभाव उत्पन्न करता है। कृषि पर निर्भर रहने वाले विशाल जनसमुदाय द्वारा भूमि की दुष्प्राप्यता के कारण उचित मृदा संरक्षण तकनीकों के बिना सघन कृषि तरीके अपनाने की प्रवृत्ति लगातार बढ़ रही है। यह मृदा गुणवत्ता घटाती है। ऐसी मृदा पर जब वर्षा गिरती है तो वह अवसाद और पोषक तत्वों को निचले क्षेत्रों में ले जाती है, ऊपरी ढालू क्षेत्रों में कम उर्वर मृदा रह जाती है। इसके अलावा, उर्वरकों और रासायनिक कणों का अपवाह नदी की गुणवत्ता को घटाता है और अग्रवर्ती जन समुदाय के लिए संदूषित बनाता है। समय के चलते सघन खेती क्रियाएं क्षेत्र के पारिस्थितिक तंत्र पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकती है।

21.3.1.5 सघन पशुधन पद्धतियां

पशुधन, जैसे मवेशी, भेड़, बकरी आदि भी मृदा संवृद्धि में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं : (i) उर्वरकों के लिए जैव खाद देते हैं, (ii) कृषि कार्यों के लिए कर्षण बल देते हैं, (iii) खाद्य और आय, आदि के विविधीकृत स्रोत के रूप में कार्य करते हैं। परंतु तेज़ी से बढ़ी हुई पशुधन संख्या द्वारा अत्यधिक चराई के कारण वे कर सकते हैं: (i) घास स्थलों का मरुभूमि में परिवर्तन, (ii) जल संसाधन पर अधिक मांग, (iii) मृदा संघनन और अपरदन, (iv) नदी तटों को अस्थिर बनाना और भंगुर जलीय पारिस्थितिक तंत्रों में अवसाद की विशाल मात्रा छोड़ना, (v)

मूल घास स्थल पादपों को बदलकर प्राकृतिक घास के मैदानों का पुनः बीज रोपण की आवश्यकता; (vi) अजैव उर्वरक के अत्यधिक प्रयोग द्वारा जल गुणवत्ता का ह्रास (जिसे सामान्यतया पुनः रोपण की आवश्यकता होती है) और पशु मल के निपटान की अवैज्ञानिक पद्धति आदि। निम्नीकृत जल गुणवत्ता मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए भी जोखिम खड़ा कर सकती है, (जो अपने पेयजल के लिए खुले जल संसाधनों पर निर्भर रहते हैं)। संक्षेप में, जैव विविधता और जल गुणवत्ता/मात्रा सघन पशु पालन द्वारा कृषक परिवारों के लिए उसके कुछ लाभों के साथ पर्यावरण संकट भी खड़ा करते हैं।

21.3.2 सघनता से संबद्ध आदान

सघनता से संबद्ध आदानों के कारण पर्यावरणी प्रभाव चार शीर्षकों, अर्थात् (i) अजैव उर्वरकों, (ii) परजीवी, (iii) सिंचाई प्रणाली, और (iv) नई बीज किस्मों के अधीन हो सकते हैं।

21.3.2.1 अजैव उर्वरक

संश्लिष्ट संपूरकों के प्रयोग ने प्रति वर्ष उपज में उल्लेखनीय वृद्धियां की हैं। परंतु उनका अकुशल अनुप्रयोग और फसल उद्ग्रहण ने मृदा उर्वरता, जल और वायु गुणवत्ता प्रभावित की है तथा प्रचुर GHG उत्सर्जन किया है। उदाहरण के लिए, मृदा में रसायन रिसाव की प्रक्रिया के कारण मृदा पर प्रभाव होता है, जिसे अम्लीकरण और नाइट्रेट विक्षालन कहा जाता है। जलीय पारिस्थितिक तंत्र में इसी प्रकार अवशोषित न हुए नाइट्रोजन के अंश का संचयन और अन्य पोषक तत्वों का रिसाव होता है इससे अत्यधिक पोषक तत्वों के संकेंद्रण की अवस्था उत्पन्न हो जाती है। इसके फलस्वरूप आक्सीजन की क्षीणता होती है और मछलियों की संख्या तथा प्रजाति विविधता कम होने लगती है। वायु गुणवत्ता पर प्रभाव नाइट्रिक एसिड गैस के उत्सर्जन में होता है। यह धूम, कोहरा और अम्ल वर्षा में सहायक होता है। अवशोषित न हुई नाइट्रोजन नाइट्रस आक्साइड GHG, के रूप में उत्सर्जित होती है जो कुल विश्व कृषि GHG उत्सर्जन का 38 प्रतिशत होता है। इसके अलावा, अजैव उर्वरक बनाने के लिए प्राकृतिक गैस का प्रयोग कार्बन डाइआक्साइड गैस उत्सर्जन का स्तर बढ़ाने में सहायक होता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

21.3.2.2 परजीवीनाशी

1900 के मध्य से परजीवी और पादप रोगों से फसल क्षतियां नियंत्रित करने के लिए रासायनिक परजीवीनाशियों के बढ़े हुए प्रयोग ने पशु और मानव स्वास्थ्य को नुकसान पहुंचा कर जैव विविधता प्रभावित की है। परजीवीनाशी प्रयोग की अनुमानित दक्षता दरें कुछ अनुमानों में उर्वरकों की तुलना में काफी अधिक कम हैं। फसलों पर प्रयोग किए गए परजीवीनाशी का 0.1 प्रतिशत से भी कम अभिप्रेत वास्तविक परजीवी तक पहुंचता है। इसलिए शेष मात्रा मृदा में संचित होती है जो नीचे भौमजल स्रोतों में रिसती है और सूक्ष्मजीवों, जलीय पशुओं और मनुष्यों के लिए विषैली सिद्ध होती है। पालतू पशु भी परजीवीनाशी से प्रभावित होते हैं। परजीवीनाशी के अत्यधिक प्रयोग से खरपतवार फैलता है और परजीवी भी इनके प्रति प्रतिरोध विकसित कर लेते हैं। इसके फलस्वरूप परजीवीनाशी की नई

किस्में लगातार विकसित करने की आवश्यकता होती है। यह नकारात्मक जैव विविधता प्रभावों की एक श्रृंखला उत्पन्न कर देती है।

21.3.2.3 सिंचाई प्रणालियां

अति सिंचाई और घटिया जल निकास से जल भराव तथा मृदा लवणीकरण उत्पन्न होता है जो मृदा की उत्पादकता घटाता है। यह पादप जड़ों को पर्याप्त आक्सीजन लेने से रोकता है। अत्यधिक सिंचाई का सबसे अधिक आम नकारात्मक पर्यावरणी प्रभाव कृत्रिम रूप से भौमजल स्तर की वृद्धि है। जैसे ही भौमजल स्तर मृदा पृष्ठ पर पहुंचता है, जलवाष्पीकरण अपने पीछे लवण छोड़ता है जो लवणता का स्तर बढ़ाता है। इससे मृदा उत्पादकता गिर जाती है। लवणता की समस्या कम वर्षा के कारण अर्ध शुष्क और शुष्क क्षेत्रों को खासतौर पर प्रभावित करती है, जो अन्यथा संचित लवण के निकास में सहायक होती है। परंतु ऐसा अपवाह अनुप्रवाह प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र को क्षति पहुंचाता है। सिंचाई प्रवाह में से बहुत घुलनशील कण भी होते हैं। यह भौम और पृष्ठीय जल गुणवत्ता के निम्नीकरण का एक अन्य कारक होता है।

21.3.2.4 बीज की नई किस्में

प्रौद्योगिकीय प्रगति ने पादपों की जीनों को प्रभावित करने की क्षमता बहुत अधिक बढ़ाई है। इससे जीन क्रांति में विकास हुआ है जो अधिक उपज और बेहतर परजीवीरोधी दोनों मुहैया करने के लिए संकर बीज के विकास से संबंधित है। कुल मिलाकर विकासशील देशों में 80 प्रतिशत गेहूँ की खेती आधुनिक अर्ध बौने गेहूँ की किस्मों की होती हैं। ऐसे बीजों को लेकर पर्यावरणी चिंता उनकी अधिक आदान आवश्यकताओं और जैव विविधता पर प्रभाव से संबंधित है। इसका कारण ऐसे संकर बीजों की उच्च संभावना प्राप्त करने के लिए उर्वरकों की वर्धित मात्रा, पोषक संपूरकों और जल की आवश्यकताएँ होती हैं। हम मृदा और जलीय जीवों पर ऐसे अत्यधिक आदानों के नकारात्मक प्रभाव का अध्ययन कर चुके हैं। ऐसे बीजों से नए बीजों के भावी विकास के लिए महत्त्वपूर्ण समझी गई जैनेटिक विविधता भी प्रभावित होने का खतरा है। उदाहरण के लिए, परंपरागत प्रजनन और जैव प्रौद्योगिकी पर्यावरणी दशाओं के लिए अनुक्रियाशील बीजों में निहित जैव विविधता का प्रयोग करती है। संकर या जैव रूप से निर्मित बीजों के अधिक प्रयोग से परंपरागत जैव विविधता समाप्त हो सकती है। ऐसी क्षतियों से बचाने के लिए, देशों ने जीन बैंकों को स्टोर करने के लिए केंद्र स्थापित किए हैं। परंतु ऐसे स्वस्थानी संग्रह प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र में उपलब्ध प्राकृतिक बीज गुणों को पृथक करते है। वैज्ञानिक भी ट्रांसजीनिक फसलों और जंगली पादप समुदाय के बीच जैव विनियम के परिणामों के बारे में चिंतित हैं। आप इन चिंताओं के बारे में पहले ही इकाई 11 के भाग 11.5 में पढ़ चुके हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

21.3.3 सघन चावल उत्पादन

HYV बीज प्रौद्योगिकी द्वारा सघन चावल उत्पादन के लिए एकधा सस्यन, निरंतर सस्यन, सिंचाई, उर्वरक और परजीवीनाशी प्रयोग आदि सभी तरीके आवश्यक हैं। इसलिए संदूषित जल प्रवाह और गिरते हुए जलस्तरों, पोषक तत्वों की कमी आदि के माध्यम से इस उत्पादन का पर्यावरणी प्रभाव मृदा, जल मात्रा और गुणवत्ता, मानव और पशु स्वास्थ्य पर पड़ता है। कम जल आपूर्ति के क्षेत्रों में यह अन्य

क्षेत्रों में जल आपूर्ति क्षीण कर सकता है। यह तमिलनाडु में हुआ है। वहाँ 80 प्रतिशत धान के खेतों की सिंचाई की जाती है और एक दशाब्दी में जल स्तर 25 से 30 मीटर तक गिर गया है। यूरिया का प्रयोग जो चावल को 80 प्रतिशत नाइट्रोजन आवश्यकता पूरी करता है, सिंचित जल में नाइट्रोजन को घोल देता है। ऐसा जल जब अन्य क्षेत्रों में बहता है, जल प्रदूषण उत्पन्न करता है, और अनुप्रवाह पारिस्थितिक तंत्र में मछलियों के लिए घातक होता है। जल प्लावित (जलमग्न) चावल/धान की अल्प आक्सीजन स्थितियां जलमग्न मृदा को मैथीन उत्पादन करने वाले सूक्ष्मजीवों के लिए आदर्श आवास बनाता है। यही कारण है कि सघन चावल उत्पादन भी वातावरण में पर्याप्त मीथेन गैस का उत्सर्जन करता है। भूमंडलीय दृष्टि से चावल प्रणालियां 11 प्रतिशत कृषि GHG उत्सर्जन के लिए उत्तरदायी हैं। दक्षिण और पूर्व एशिया में वे कुल मीथेन उत्सर्जन के 82 प्रतिशत के लिए उत्तरदायी हैं। सघन चावल कृषि का पर्यावरणी प्रभाव इससे स्पष्ट हो जाना चाहिए।

21.3.4 औद्योगिक फसल संसाधन

कृषि निर्यात अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का महत्त्वपूर्ण मद होने और उनमें नकदी फसलों का महत्त्वपूर्ण समग्र भाग होने से फसल कटाईबाद के प्रसंस्करण ने औद्योगिक आयाम ग्रहण कर लिया है। ऐसी फसलों में काफी, कपास, कोकोआ, आदि शामिल हैं, ये सभी जल मात्रा और गुणवत्ता, वायु गुणवत्ता और जलवायु परिवर्तन पर प्रभाव डालते हैं। इसके अलावा, प्रसंस्करण के लिए जल की पर्याप्त मात्रा की आवश्यकता होती है जिसका प्रयोग प्रोसेसिंग के लिए अपनाई गई विधि के अनुसार भिन्न-भिन्न होता है। उदाहरण के लिए, खराब कॉफी बीजों को अच्छे बीजों से अलग करने के लिए प्रयुक्त कॉफी बीजों की ''वेट विधि'' प्रसंस्करण काफी दानों से भूसी बहाती है जिससे अन्य मानव प्रयोग के लिए जल की आपूर्ति संकट में पड़ सकती है। प्रसंस्करण के लिए प्रयुक्त जल उत्पादन चक्र की सभी अवस्थाओं में रसायन और अन्य भारी धातुओं से दूषित हो जाता है। ऐसे अनुपचारित जल को कानूनों या उनके सख्त क्रियान्वयन में ढिलाई के कारण नदियों या जलाशयों में छोड़ा जाता है। इस प्रकार ऐसे बहिःस्त्राव का क्षीण आक्सीजन के कारण मछलियों पर नकारात्मक प्रभाव हो सकता है। इन कारकों के अलावा ऊर्जा प्रधान प्रसंस्करण मशीनरी कार्बन डाइआक्साइड उत्सर्जन के स्रोत है। प्रसंस्करण संयंत्रों से उत्सर्जन अम्ल वर्षा और ओजोन क्षीणता में योगदान कर वायु गुणता का भी ह्रास करता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 2

नीचे रिक्त स्थान में अपना उत्तर लगभग 50 शब्दों में दीजिए।

1) उन चार मुख्य क्षेत्रों का उल्लेख कीजिए जिनमें प्रतिकूल पर्यावरणी प्रभाव में योगदान करने वाली कृषि क्रियाओं को वर्गीकृत किया जा सकता है। उन चार शीर्षकों का भी उल्लेख कीजिए जिनमें कृषि आदानों का सघन प्रयोग वर्गीकृत किया जा सकता है?

....

....

....

....

2) किस तरीके में ''एकधा सस्यन'' क्षेत्र की जैव विविधता को नकारात्मक रूप से प्रभावित करता है?

....

....

....

....

3) परंपरागत सस्य क्रम योजना और आधुनिक सस्यन क्रम योजना के बीच विभेदकारी लक्षण बताइए। किस तरीके में पश्चोयुक्त मृदा गुणवत्ता को प्रभावित करता है? निरंतर सस्यन योजना में जैव विविधता पर दीर्घकालिक प्रभाव क्या हैं?

....

....

....

DIKSHANT IAS

....

4) 'जोताई (कर्षण)'' मृदा गुणवत्ता को कैसे प्रभावित करता है? यह कौन-सा विशेष GHG उत्सर्जन करता है?

Call us @7428092240

....

....

....

....

5) पहाड़ों में क्षेत्र के पारिस्थितिक तंत्र पर सघन कृषि कैसे प्रतिकूल प्रभाव डालती है?

....

....

....

....

6) वे विभिन्न तरीके बताइये जिनमें सघन पशु पालन प्रणालियां अत्यधिक चराई द्वारा पर्यावरणी संकट खड़े करती हैं?

....

....

....

....

7) कौन-से दो GHG उत्सर्जन कृषि में अजैव उर्वरकों के प्रयोग द्वारा छोड़े जाते हैं? यह क्षेत्र की जलीय जीवन को कैसे प्रभावित करता है?

....

....

....

....

8) सिंचाई सुविधा किस प्रकार क्षेत्र के पारिस्थितिक तंत्र को क्षति पहुंचाने में योगदान करता है?

....

....

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

9) ''नई बीज किस्में'' किस प्रकार पर्यावरण चिंता पैदा करती हैं? जैव विविधता को इससे उत्पन्न संकट से बचाने के लिए क्या उपाय किए गए हैं? इस उपाय के बावजूद, मानवजाति को किन मुख्य समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है?

....

....

....

....

10) 'सघन चावल उत्पादन' द्वारा उत्पन्न किए गए भिन्न-भिन्न प्रतिकूल पर्यावरणी प्रभाव बताइए। इस उत्पादन प्रणाली द्वारा कौन सा GHG उत्सर्जन छोड़ा जाता है?

....

....

....

....

11) प्रतिकूल पर्यावरणी प्रभाव में ''औद्योगिक सस्य प्रसंस्करण'' कैसे योगदान करता

है? यह क्षेत्र की जलीय जीवन और वायु गुणवत्ता के लिए कौन-सा विशेष नकारात्मक प्रभाव उत्पन्न करता है?

....

....

....

....

21.4 नीतिगत मुद्दे

नकारात्मक पर्यावरणी प्रभाव प्रकट करने वाले विभिन्न विकास कार्यों के साथ-साथ, इन प्रभावों का निवारण करने के लिए विभिन्न संरक्षण उपाय प्रारंभ हो चुके हैं। हम उनमें से कुछ के बारे में इकाई 14 में अध्ययन कर चुके हैं। पर्यावरण पर कृषि प्रगति के उन सकारात्मक प्रभावों के साथ-साथ कुछ अन्य उपाय हैं: (i) यांत्रिक और सस्यीय मृदा तथा जल संरक्षण (SWC) उपाय (जैसे समोच्च कृषि, समोच्च पट्टी फसल, मिश्रित फसल, जोताई और पृष्ठीय मल्च बनाना, शून्य जोताई आदि) (ii) भूमि प्रयोग में परिवर्तन (जैसे शुष्क AES क्षेत्रों में पशुपालन, पर्वतीय क्षेत्रों में कृषिवानिकी, तटीय क्षेत्रों में समाकलित कृषि कार्य आदि), (iii) टंकियों के माध्यम से जल संचय; (iv) जल विभाजक आधारित प्रबंधन प्रणाली; (v) संसाधन संरक्षणी प्रौद्योगिकियां (RCTs) (जैसे चावल गेहूँ संयोजन या गेहूँ/चावल के लिए फसल स्थापना विकल्प, स्थान विशिष्ट पोषण प्रबंधन आदि); (vi) समाकलित परजीवी और पोषण प्रबंधन आदि। पर्यावरण पर सकारात्मक और नकारात्मक दोनों प्रभाव अंशतः कृषि विकास के लिए प्रारंभ की गई सरकार की नीति और अंशतः आधुनिक पद्धतियों के समुचित उपयोग पर जागरूकता के अभाव के कारण हैं। इस भाग में, हम संक्षेप में, इन नीतिगत पहलुओं में से कुछ का वर्गीकरण तथा चर्चा करेंगे जिनका पर्यावरण पर इन प्रभावों में योगदान रहा है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

उत्पादन मूल्य नीतियां : जैसाकि इकाई 19 और 20 में पहले ही उल्लेख किया गया है, चावल और गेहूँ फसलों के लिए न्यूनतम समर्थन मूल्य की नीति 1980 के बाद अधिक सुदृढ़ हुई। इसके फलस्वरूप विशाल अनाज भंडारों का संचयन हुआ। इसके अलावा 1980 के दशक के अनुवर्ती वर्षों में फसल विशिष्ट नीतियों ने तिलहनों को काफी संरक्षण दिया। इन नीतियों ने उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों की संपन्नता की पूरी उपेक्षा कर किसानों को अन्य फसलें उगाने को प्रोत्साहित किया है।

आदान साहाय्य नीति : उच्चतर उत्पादन समर्थन मूल्य नीतियां भी जल, उर्वरक और बिजली पर आदान साहाय्य के साथ लाई गई थीं। इन तीन कारकों पर आदान साहाय्य कृषि सेक्टर के लिए कुल साहाय्य का बहुत बड़ा अंश रहा है। 1980 से 1990 की दशाब्दी की अवधि के दौरान GDP के प्रतिशत के रूप में इन मदों पर साहाय्य 1980-81 के दौरान 3.4 प्रतिशत से बढ़कर 1995-96 के दौरान 9.8 प्रतिशत हुई। उर्वरकों के बढ़े हुए प्रयोग के कारण 1999-2000 के दौरान उर्वरकों का उत्पादन खपत से 27 प्रतिशत कम हुआ। खाद्य उत्पादन

तेज करने के लिए सरकार की नीति ने अधिक/ बेहतर सिंचाई सुविधाओं वाले राज्यों के पक्ष में पूर्वाग्रह प्रारंभ हुआ। इन राज्यों में इसने सिंचाई प्रधान फसलों, जैसे, गेहूँ और चावल का उत्पादन प्रोत्साहित किया। इस पूर्वाग्रह को सुधारने के लिए बहुत अनुसंधानकर्त्ताओं ने सुझाव दिया कि उत्तर-पूर्व, मध्य प्रदेश, राजस्थान और हिमाचल प्रदेश जैसे राज्यों में कृषि को बढ़ावा देने के लिए नीतियों का पुनराभिविन्यास आवश्यक है (जहां कृषि अधिक जोखिम प्रवण और अपेक्षाकृत कम विकसित है)। यद्यपि यह अनुवर्ती वर्षों में किया भी गया, और अब स्पष्ट हो रहा है कि उनमें से कुछ राज्य प्रमुख कृषि उत्पादक हो रहे हैं। इन राज्यों में उर्वरकों के संतुलित और समाकलित प्रयोग प्रोत्साहित करने पर नीतिगत बल रहा है। उदाहरण के लिए, कार्बनिक/जैव उर्वरक के विकास और प्रयोग पर राष्ट्रीय परियोजना बड़े पैमाने पर दसवीं पंचवर्षीय योजना अवधि के दौरान प्रारंभ की गई। समाकलित परजीवी प्रबंधन (IPM) नीतियों के अधीन रासायनिक परजीवी-नाशियों का प्रयोग कम करने की नीतिगत पहलें भी 1985 से प्रारंभ की गईं थीं। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि कृषि विकास का सर्वधन करने के प्रयासों (जो पर्यावरण ह्रास में सहायक रहे हैं) के साथ-साथ 1980 के दशक से ही प्राकृतिक संरक्षण उपाय भी अपनाए गए हैं।

सिंचाई : सिंचाई संभावनाओं का निर्माण उनकी इष्टतम उपयोगिता के संवर्धन की नीतियों के अनुरूप था। यह कम दरों पर कृषि के लिए जल प्रयोग प्रभार के निर्धारण के तरीके में किया गया था। यह आलोचना हुई है कि ये दरें यदि उसकी आपूर्ति की पूँजीगत लागतों को छोड़ भी दिया जाए तो सेवा प्रदान करने की लागत को भी पूरा नहीं करती हैं। सिंचाई पर कम प्रभार ने किसानों को उन दक्ष जल प्रयोग पद्धतियां अपनाने से रोका, जिनके फलस्वरूप मीथेन उत्सर्जन स्तर कम हो सकता था। इसके अलावा, फसलों और राज्यों के बीच जल प्रभार में व्यापक विविधता भी है। इससे किसानों को पर्यामित्र के स्थान पर जल सघन फसलें चुनने को प्रोत्साहन मिला है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

विद्युत : कम जल प्रभार के अलावा, सिंचाई का स्तर बढ़ाने और भौमजल के अति निष्कर्षण में बिजली पर भारी साहाय्य का बहुत योगदान रहा है। साहाय्य की नीति सिंचित कृषि के लिए पूर्वाग्रह भरी थी जिसके फलस्वरूप फसलक्रम योजना में परिवर्तन चावल जैसी जल सघन फसलों के पक्ष में हुआ। अब, पर्यावरणी बाध्यताओं के मुख्य कारक के रूप में इसकी पहचान की गई है। भौमजल स्तर घटने के कारण जल निष्कर्षण की बढ़ती हुई लागत किसानों की निजी लागत में नहीं दिखाई जा रही, क्योंकि वे नलकूल चलाने के लिए स्थिर दर पर विद्युत प्रभार दे रहे थे। दूसरे शब्दों में, भौमजल निष्कर्षण की लागत शून्य थी। इस प्रकार साहाय्यों के कारण : (i) जल सघन फसलों के पक्ष में फसलक्रम योजना में सीमांत विकृति; (ii) प्रतिकूल पर्यावरणी प्रभाव, जैसे जल भराव और लवणता; (iii) भौमजल स्तर की क्षीणता और (iv) अधिकांश लाभ सिंचित क्षेत्रों में जाने के कारण कृषि विकास में अंतःक्षेत्रीय असमानताओं के गंभीर दीर्घकालिक विषमताएं उभर कर आई हैं।

ऋण, निवेश और व्यापार नीतियां : कृषि के लिए ऋण प्रवाह ग्रामीण सेक्टर के कुछ ही क्षेत्रों में और समृद्ध किसानों तक सीमित रहे हैं। जैसाकि पहले इकाई 18 में उल्लेख किया गया है, पूर्वी और मध्यवर्ती राज्य अपने कम ऋण

अंश के कारण खासतौर पर प्रभावित हुए हैं। यद्यपि जोतों की अधिकांश संख्या छोटे और मध्यम किसानों के वर्ग से है, परंतु ऋण प्रणाली उनकी ऋण आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पर्याप्त नहीं है। इसने पर्यावरणी और प्राकृतिक संसाधन समस्याओं की दृष्टि से आवश्यक पद्धति अपनाने से किसानों के बहुत बड़े समुदाय को भी रोका है। पूँजीगत निवेश नीतियों ने भी अधिक बड़े सिंचाई कार्यों का पक्ष लिया और अन्य श्रेणियों में निवेश की अनदेखी/बहिष्कार किया। इससे विशाल क्षेत्र जलाक्रांत और लवणीय हुआ। व्यापार उदारीकरण भी बागवानी, पुष्प कृषि, मत्स्य पालन आदि के लिए अधिक उत्साहवर्धक है। बागवानी और पशुधन उत्पादनों में उनके तुलनात्मक लाभ को ध्यान में रखते हुए पूर्वी/शुष्क भूमि/अकृष्यभूमि क्षेत्रों के लिए आवश्यक रणनीतियां भिन्न हैं। इन क्षेत्रों में ऐसे विविधीकृत उत्पादों की निर्यात संभावना का दोहन करने के लिए इन क्षेत्रों की ओर व्यापार/निवेश नीतियों का पुनर्भिविन्यास करना आवश्यक है। इससे इन क्षेत्रों में अपनाई जा रही चावल जैसी जल सघन फसल की खेती को निरुत्साहित करने से क्षेत्रों में प्राकृतिक संसाधन आधार का ह्रास कम होगा।

संस्थागत समस्याएं और लोगों की सहभागिता : तर्क दिया जाता है कि संरक्षण और धारणीयता परिप्रेक्ष्य से काश्तकारी सुधारों से मृदा संरक्षण के लिए निवेश प्राप्त होने की संभावना कम है। परंतु विधायी उपाय, जैसे 73वाँ और 74वाँ संविधान संशोधनों ने प्राकृतिक संसाधनों, जैसे भूमि, जल, और वनों के प्रबंधन में स्थानीय निकायों को निश्चित भूमिका प्रदान की है। इसकी संरक्षण उपाय अपनाने में छोटे किसानों की असमर्थता समाप्त करने के लिए धारणीय विकास के लिए सर्वश्रेष्ठ संस्थाओं के रूप में सामूहिक संरचनाओं, जैसे सहकारी समितियों का सुझाव दिया गया है। आने वाले वर्षों में सक्रियता से इसका अनुपालन करना आवश्यक है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 3

नीचे दिए गए स्थान में लगभग 50 शब्दों में अपना उत्तर दीजिए।

1) कुछ प्रमुख नीतिगत उपायों का उल्लेख कीजिए जिन्होंने कृषि प्रगति के कारण पर्यावरण पर सकारात्मक प्रभाव में योगदान किया है।

....

....

....

....

2) क्या आप सहमत हैं कि उत्पादन मूल्य नीतियों ने नकारात्मक बाध्यताओं का योगदान किया है? कैसे?

....

....

....

....

3) तीन कृषि आदान क्या हैं जिन्हें भारी साहाय्य रूपी समर्थन प्राप्त हुए हैं? किस तरीके से इसने पर्यावरण समस्या में योगदान किया है?

....

....

....

....

4) कुछ मुख्य नीति उपायों का उल्लेख कीजिए जिन्हें प्राकृतिक संसाधनों के संतुलित और समाकलित प्रयोग के संवर्धन के लिए पिछली योजना अवधियों के दौरान प्रारंभ किया गया?

....

....

....

....

5) साहाय्य प्राप्त जल प्रभार ने पर्यावरण निम्नीकरण में योगदान कैसे किया है?

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

....

....

6) किस विशिष्ट पहलू में कृषि को साहाय्य युक्त विद्युत आपूर्ति की नीति ने पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव डालने में योगदान किया?

....

....

....

....

7) ऋण और निवेश नीतियों ने पर्यावरणी और प्राकृतिक संसाधनों के निम्नीकरण में किस प्रकार योगदान किया?

....

....

....

....

8) क्या आप सोचते हैं, वाणिज्यिक कृषि पद्धतियों के संवर्धन की रणनीतियों का पुनर्भिविन्यास आवश्यक है? किस प्रकार यह प्राकृतिक संसाधन निम्नीकरण न्यूनतम करने में सहायक हो सकता है?

....

....

....

....

9) आप कैसे कह सकते हैं कि काश्तकारी सुधारों के संवर्धन ने प्राकृतिक संसाधनों के निम्नीकरण में योगदान किया? आप इस स्थिति को सुधारने के लिए क्या रणनीति सुझाना चाहेंगे?

....

....

....

DIKSHANT IAS

....

21.5 सारांश

Call us @7428092240

पिछली कुछ दशाब्दियों के दौरान कृषि प्रगति की उपलब्धि के देश की प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र पर सकारात्मक और नकारात्मक दोनों प्रभाव हुए। इनमें से बहुत से तो कृषि वृद्धि बढ़ाने के लिए अपनाई गई नीति के प्रत्यक्ष परिणाम हैं। कृषि क्रियाओं से पर्यावरणीय क्षति न्यूनतम करने के लिए बहुत-सी निश्चित नीतिगत पहलें भी क्रियान्वित की गई हैं। GHG उत्सर्जन और असंतुलित क्षेत्रीय विकास के अनुसार पर्यावरणीय विकृतियों और असंतुलित क्षेत्रीय विकास भारत में कृषि प्रगति की उपलब्धि में स्पष्ट देखी गई है। परंतु पूर्वोक्त (अर्थात् GHG उत्सर्जन) में प्रवृत्ति केवल भारत में ही अनूठी नहीं है। यह विश्वव्यापी परिदृश्य है जिसमें जलवायु परिवर्तन में प्रतिकूल प्रभाव डालने के कारण आधुनिक कृषि क्रियाओं का योगदान अंतर्राष्ट्रीय चिंता का मामला बन गया है। उन कारकों में, जिन्होंने पर्यावरण पर इस प्रतिकूल प्रभाव में योगदान किया है, सघन कृषि क्रियाएँ, जैसे एकधा सस्यन, निरंतर खेती, जोताई आदि है तो दूसरी ओर अजैव उर्वरकों, परजीवीनाशियों, नई किस्म के बीजों आदि का सघन प्रयोग गिनाए जा सकते हैं। विशेषकर भारत जैसी कृषि अर्थव्यवस्थाओं के संबंध में धारणीय कृषि क्रियाओं के अपनाने पर सामूहिक सहभागिता स्थापित करने के लिए रणनीतियों का पुनर्भिविन्यास करना आवश्यक है।

21.6 शब्दावली

ग्लोबल वार्मिंग (वैश्विक ऊष्णन) : सामान्यतया जब सूर्य का प्रकाश और उसका विकिरण (अर्थात् ऊष्मा और ऊर्जा) पृथ्वी के वायुमंडल में पहुंचती है, इसका कुछ भाग वायुमंडलीय गैसों द्वारा और शेष पृथ्वी द्वारा अवशोषित किया जाता है। यह प्रक्रिया पृथ्वी के जलवायु को इष्टतम स्तर पर रखने के लिए पर्यावरण की क्षमता बनाए रखता है। परंतु **GHG** के अधारणीय उत्सर्जन की उपस्थिति में पर्यावरण की यह इष्टतम क्षमता बाधित हो जाती है। फलस्वरूप अनावशोषित भाग वापस पृथ्वी पर विकिरित हो जाता है। यह पृथ्वी को गर्म बनाता है जिससे पृथ्वी का औसत तापमान बढ़ता है। यह ग्लोबल वार्मिंग प्रभाव कहलाता है।

जल विभाजक प्रबंधन : जल विभाजक वह जलीय इकाई है जिसके जल के अपवाह/पृष्ठीय प्रवाह निकास के लिए केवल एक ही निर्गम मार्ग हो। जल विभाजक प्रबंधन का संबंध स्वस्थाने (अर्थात् स्थानिक क्षेत्र या स्थान में) क्षेत्र की सीमा के अंदर की वर्षा के इष्टतम प्रयोग के लिए उसके नियंत्रण से है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

जल आक्रांति और जल अपवाह : जल आक्रांति का संबंध अत्यधिक सिंचाई और घटिया जल निकास सुविधा से है। इससे लवणीकरण में वृद्धि होती है और मृदा उर्वरता में कमी होती है। दूसरी ओर, जल अपवाह पहाड़ी क्षेत्रों में उपरि क्षेत्रों से निचले क्षेत्रों में जल प्रवाह की समस्या है। इससे संदूषणकारी सामग्री, जैसे रासायनिक पदार्थों के वहन से अनुप्रवाह जल स्रोतों को प्रदूषित और मनुष्यों तथा पशुओं के उपयोग के लिए हानिकारक बनाता है।

21.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1) Jenifer Wightman, Production and Mitigation of Greenhouse Gases in Agricutlre, http://www.climateandfarming.org/pdfs/FactSheets/IV.IGHGs.pdf

2) Katherin Killebrew and Hendrik Wolff, Emvironmental Imapacts of Agricutural Technoligies, EPAR Brief No. 65, University of Washington, March, 2010. [http://faculty.washington.eduhgwolff/cv.pdf]

3) Sudhakar Yedla and Sowjanya Peddi, India Environment National Assessment, October, 2003.

[ftp://ftp.fao.org/es/esa/roa/pdf/2_Environment/Environment_IndiaNA.pdf]

4) V.P. Sharma & Hrima Thaker, Fertiliser Subsidy in India: Who are the Beneficiaries?, Special Article, EPW, Vol. XLV, No. 12, March, 2010.

21.8 बोध प्रश्नों के उत्तर/संकेत

बोध प्रश्न 1

1) देखिए उपभाग 21.2.1 और उत्तर दीजिए।
2) देखिए उपभाग 21.2.1 और उत्तर दीजिए।
3) देखिए उपभाग 21.2.1 और उत्तर दीजिए।
4) देखिए उपभाग 21.2.2 और उत्तर दीजिए।
5) देखिए उपभाग 21.2.2 और उत्तर दीजिए।
6) देखिए उपभाग 21.2.2 और उत्तर दीजिए।
7) देखिए उपभाग 21.2.3 और उत्तर दीजिए।
8) देखिए उपभाग 21.2.3 और उत्तर दीजिए।
9) देखिए उपभाग 21.2.3 और उत्तर दीजिए।
10) देखिए उपभाग 21.2.4 और उत्तर दीजिए।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 2

1) देखिए उपभाग 21.3.1 और 21.3.2 और उत्तर दीजिए।
2) देखिए उपभाग 21.3.1.1 और उत्तर दीजिए।
3) देखिए उपभाग 21.3.1.2 और उत्तर दीजिए।
4) देखिए उपभाग 21.3.1.3 और उत्तर दीजिए।
5) देखिए उपभाग 21.3.1.4 और उत्तर दीजिए।
6) देखिए उपभाग 21.3.1.5 और उत्तर दीजिए।
7) देखिए उपभाग 21.3.2.1 और उत्तर दीजिए।
8) देखिए उपभाग 21.3.2.3 और उत्तर दीजिए।
9) देखिए उपभाग 21.3.2.4 और उत्तर दीजिए।
10) देखिए उपभाग 21.3.3 और उत्तर दीजिए।
11) देखिए उपभाग 21.3.4 और उत्तर दीजिए।

बोध प्रश्न 3

1) देखिए भाग 21.4 और उत्तर दीजिए।

2) देखिए भाग 21.4 और उत्तर दीजिए।

3) देखिए भाग 21.4 और उत्तर दीजिए।

4) देखिए भाग 21.4 और उत्तर दीजिए।

5) देखिए भाग 21.4 और उत्तर दीजिए।

6) देखिए भाग 21.4 और उत्तर दीजिए।

7) देखिए भाग 21.4 और उत्तर दीजिए।

8) देखिए भाग 21.4 और उत्तर दीजिए।

9) देखिए भाग 21.4 और उत्तर दीजिए।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इकाई 22 नई कृषि रणनीति

संरचना

22.0 उद्देश्य

22.1 प्रस्तावना

22.2 रणनीतिक पहलें

22.2.1 सुधारपूर्व अवधि : विहंगावलोकन

22.2.2 आर्थिक सुधार अवधि : 1990 की दशाब्दी

22.3 नई कृषि नीति : 2000

22.3.1 मुख्य विशेषताएं

22.3.2 विचाराधीन मुद्दे

22.3.2.1 धारणीय कृषि

22.3.2.2 खाद्य और पोषण सुरक्षा

22.3.2.3 प्रौद्योगिकी का सृजन और हस्तांतरण

22.3.2.4 आदान प्रबंधन

22.3.2.5 कृषि के लिए प्रोत्साहन

22.3.2.6 कृषि में निवेश

22.3.2.7 संस्थानिक संरचना

22.3.2.8 जोखिम प्रबंधन (नियंत्रण)

22.4 दसवीं और ग्यारहवीं योजना अवधियों के दौरान निष्पादन

22.4.1 संवृद्धि में क्षेत्रीय विभिन्नताएं

22.4.2 विशेष पहलें और कार्यक्रम

22.5 सारांश

22.6 शब्दावली

22.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

22.8 बोध प्रश्नों के उत्तर/संकेत

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

22.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप :

- ''योजना'' और ''रणनीतिक योजना'' शब्दों के बीच भेद कर सकेंगे;
- सुधारपूर्व अवधि के दौरान अपनाई गई विभिन्न कृषि रणनीतियों की रूपरेखा प्रस्तुत कर सकेंगे;
- 1990 के दशक के सुधारपश्च वर्षों के दौरान कृषि विकास नीतियों के पुनर्भिविन्यास करने के लिए अपनाया गया दृष्टिकोण निर्दिष्ट कर सकेंगे;
- ''नई कृषि नीति'' (NAP) 2000 के उद्देश्य बता सकेंगे;

- NAP 2000 का, उसकी विशिष्ट नीतिगत विशेषताओं के अनुसार दृष्टिकोण की रूपरेखा प्रस्तुत कर सकेंगे;
- NAP 2000 में फोकस के अधीन समस्याओं का समाधान करने के लिए प्रस्तावित पथ स्पष्ट कर सकेंगे; और
- दसवीं और ग्यारहवीं योजना अवधियों के दौरान कृषि सेक्टर के कार्य निष्पादन पर 2000 के बाद के वर्षों की प्रवृत्ति का विश्लेषण कर सकेंगे।

22.1 प्रस्तावना

हम पहले ही इकाई 11 में हरित क्रांति के अधीन किए गए प्रयासों की चर्चा कर चुके हैं। हमने संक्षेप में (भाग 11.4) भी नोट किया है कि पहली हरित क्रांति अवधि के लाभों के बाद 1980 के दशक के दौरान किए गए हरित क्रांति पश्च प्रयास कम होने लगे। ये प्रयास खाद्य उत्पादन में आत्मनिर्भर बनना और जिन क्षेत्रों तक अभी तक हरित क्रांति नहीं पहुंची थी, वहां तक उसका विस्तार करना था। इन्हीं का ''नई कृषि नीति'' के रूप में उल्लेख किया गया है। हमने भारतीय कृषि में विविधीकरण प्रवृत्तियों पर इकाई 8 में अध्ययन किया है। यद्यपि खाद्यान्न उत्पादन में भारत को आत्मनिर्भर बनाने का उद्देश्य हरित क्रांति अवधि के दौरान अपनाई गई रणनीतियों द्वारा प्राप्त किया गया है, परंतु वे चुनौतियां जिनका सामना हमारा कृषि सेक्टर आर्थिक सुधार पश्च अवधि में कर रहा है, स्पष्ट रूप से भिन्न है। इसका सामना करने के लिए सरकार ने सुधार पश्च वर्षों की भिन्न-भिन्न योजना अवधियों के दौरान विभिन्न रणनीतियां बनाईं और क्रियान्वित कीं। इस इकाई में हम पहले सुधारपूर्व अवधि में लिए गए रणनीतिक पहलों के बारे में संक्षेप में ज्ञात करेंगे। फिर हम उन रणनीतिक पहलों के बारे में अधिक ज्ञात करने पर फोकस करेंगे जिन्हें नब्बे की दशाब्दी के प्रारंभ में देश में आर्थिक सुधार के प्रारंभ के बाद की अवधि में भारी चुनौतियों के सामने के संदर्भ में शुरू किया गया है। इस पर चर्चा करने से पहले हम योजना, नीति और रणनीति शब्दों के बीच विभेद करेंगे।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

योजना किन्हीं उद्देश्यों को परिभाषित करने और निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए अनुसरण किए जाने के लिए अपेक्षित कार्रवाई का ब्यौरेवार रूपरेखा तैयार करने की प्रक्रिया है। इसमें उनकी प्राप्ति के लिए अपेक्षित वित्तीय संसाधनों के आबंटन के साथ-साथ लक्ष्य निर्धारित करना शामिल है। इस प्रकार योजना बौद्धिक कार्य है जो तर्कसंगत ढंग से इस तरीके में उपलब्ध उन विकल्पों में से चयन करने के प्रयास करता है जो पूर्व परिभाषित उद्देश्यों की प्राप्ति के सबसे अधिक उपयुक्त होता है। यह निर्णयकारी प्रक्रिया है जो योजनाकारों की उद्देश्यों की समझ पर आधारित होती है और इसमें व्यय के वित्तीय अनुमान शामिल होते हैं। योजना का प्रयोजन ''हम कहाँ हैं'' और ''हम कहाँ होना चाहते हैं'' के बीच अंतर को पाटना होता है। भारत में कृषि सेक्टर के विकास के लिए हमारी योजना की पहली कुछ दशाब्दियों में चार स्पष्ट उद्देश्यों को ध्यान में रखा गया था। ये हैं : (i) कृषि उत्पादन बढ़ाना, (ii) रोजगार के अवसर बढ़ाना; (iii) भूमि पर आबादी का दबाव घटाना (कृषि में काम करने वाले लोगों की संख्या घटाकर) और (iv) ग्रामीण क्षेत्रों में आय असमानता घटाना। परंतु योजना का विकास अपने आप में पर्याप्त नहीं है, क्योंकि आबंटित वित्तीय संसाधन बहुत बार पूरी तरह

से व्यय नहीं किए जाते हैं। इसलिए योजना का वास्तविक क्रियान्वयन अत्यंत महत्त्व का है क्योंकि दोषपूर्ण क्रियान्वयन और व्यवस्था में छीजन से योजना परियोजनाओं का क्रियान्वयन त्रुटिपूर्ण रह जाता है। इस संदर्भ में नीतियां वे सामान्य दिशा-निर्देश हो जाती हैं जो निर्णय करने में मार्ग दर्शन करते हैं। नीतियों का संबंध किसी निश्चित क्षेत्र से होता है जिसके विषय में निर्णय किया जाना है और यह सुनिश्चित करना है कि निर्णय का क्रियान्वयन ऐसे तरीके से किया जाए जो निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति के अनुकूल है। निर्णय करने के लिए मार्गदर्शन के रूप में नीतियां कुछ सीमा तक विवेकाधिकार भी होती हैं जो उन्हें नियमों से भिन्न बनाता देता है। नीति का हमेशा एक वक्तव्य के रूप में होना आवश्यक नहीं है। यह कुछ कार्य करने का अलिखित तरीका भी हो सकता है।

''नीति'' और ''रणनीति'' शब्द बहुधा पर्यायवाची रूप में प्रयुक्त किये जाते हैं। परंतु फिर भी, उनके बीच अंतर है। रणनीति का संबंध बृहद् कार्य योजना से है, यह उससे भी अधिक है जो नीति में कहे जाने की आशा की गई है। इसमें यह भी विवरण होता है कि उल्लिखित उद्देश्य कैसे प्राप्त होंगे। रणनीति, उन चुनौतियों का, जो रास्ते में आ सकती हैं, सामना करते हुए उद्देश्य प्राप्ति के अवसर अधिकतम करने के लिए मानवीय और भौतिक संसाधनों के परिनियोजन की दिशा में निर्दिष्ट करते हुए कार्य योजना की सुस्पष्ट रूपरेखा प्रस्तुत करती है। दूसरे शब्दों में, रणनीति एक **गेम प्लान** है जिसे यह स्थिति कि ''हम जहाँ अब हैं'' से ''हमें कहां होना चाहिए'' प्राप्त करने के लिए प्रयुक्त किया जाता है। इस प्रकार यह उन विकल्पों को प्रतिबिंबित करता है जिन्हें योजनाकारों और प्रशासकों ने बनाया है। भारत में कृषि सेक्टर के योजना उद्देश्यों को देखते हुए अपनाई गयी रणनीतियों में शामिल हैं : (i) कृषि उत्पादन और ग्रामीण रोजगार बढ़ाने की दिशा में कार्य योजनाएं (जैसे देशभर में सामुदायिक विकास कार्यक्रमों और कृषि विस्तार सेवाओं का क्रियान्वयन, सिंचाई सुविधाओं का विस्तार, बीजों की अधिक उपज देने वाली किस्मों के प्रयोग का संवर्धन, उर्वरक, पादप संरक्षण रासायन और कृषि मशीनरी तथा परिवहन का विस्तार, विपणन और ऋण आधारभूत सुविधाएँ); (ii) कृषि से कृषीत्तर कार्यों की ओर लोगों का अंतरण प्रोत्साहित कर ग्रामीण कृषीत्तर सेक्टर का विकास (जैसे कृषि उद्योगों और हस्तकला का संवर्धन); और (iii) भूमि सुधार संबंधी रणनीतियां जिनका उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में असमानता घटाना और सामाजिक न्याय सुनिश्चित करना है। इस इकाई में हम उन स्पष्ट रणनीतियों में से कुछ पर ध्यान केंद्रित कर रहे हैं जिन्हें उन चुनौतियों का सामना करने के लिए अपनाया गया है जिनसे कृषि सेक्टर का पिछले दो दशकों में वास्ता रहा है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

22.2 रणनीतिक पहलें

जैसाकि ऊपर उल्लेख किया गया है, रणनीति एक कार्य योजना है जिसे वांछित उद्देश्य प्राप्त करने के लिए क्रियान्वित किया जाता है, अर्थात् ''हमारी वर्तमान स्थिति'' से ''ऐसी स्थिति/परिस्थिति की ओर संचलन करना 'जहां हम होना' चाहते हैं''। इसलिए रणनीतिक पहल के लिए आवश्यक है कि इस पर अच्छी तरह से विचार किया जाए और क्रियान्वय के दौरान सावधानीपूर्वक नियंत्रण और

निगरानी की जाए। ऐसी रणनीतिक पहलों के लिए विभिन्न परिणामसूचक निर्धारित किए जा सकते हैं। ये परिणामसूचक रणनीतिक पहलों की सफलता का स्तर प्रकट करते हैं। उदाहरण के लिए, उन पहलों और चुनौतियों के स्वरूप के आधार पर जिनका सामना किया जा रहा है, कृषि और संबद्ध सेक्टर के लिए कुछ सामान्य सूचक हो सकते हैं : (i) उत्पादन या GDP में योगदान (मूल्य के आधार पर मापा गया और उपयुक्त समय सीमा जैसे दशाब्दी या पंचवर्षीय योजना अवधि के दौरान वृद्धि दर के रूप में व्यक्त); (ii) परिमाणात्मक रूप में उत्पादन और उत्पादकता में परिवर्तन सुनिश्चित शब्दों में व्यक्त या क्रमशः प्रति हेक्टयर/प्रति पशु के आधार पर व्यक्त); (iii) कृषि पण्य वस्तुओं के निर्यात में बढ़ती हुई प्रवृत्ति (प्रतिशत में व्यक्त); (iv) कृषि/पशुधन उत्पादन में रोज़गार में घटता हुआ अंश और कृषीत्तर सेक्टर में उसके तदनुरूप वृद्धि; (v) भिन्न-भिन्न उप-सेक्टरों/कार्यों आदि के लिए निर्धारित दरों की तुलना में प्राप्त वास्तविक वृद्धि दर) आदि। इस भाग में हम अनुसरण की गई कृषि रणनीति की मुख्य विशेषताओं का अध्ययन करेंगे तथा भिन्न-भिन्न योजनाओं में निश्चित प्रमुख क्षेत्रों के लिए निर्धारित भिन्न-भिन्न अवधियों में उपलब्धियां नोट करेंगे।

22.2.1 सुधारपूर्व अवधि : विहंगावलोकन

सुधारपूर्व वर्षों के दौरान अनुसरण की गई कृषि नीति को तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है, अर्थात् (i) 1950-51 से 1960 के दशक के मध्य तक की अवधि (हरित क्रांति पूर्व अवधि); (ii) 1960 के दशक से 1970 के दशक के अंत तक (हरित क्रांति नाम की अवधि); और (iii) 1980 के दशक की व्यापक प्रौद्योगिकी विस्तार की अवधि।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

हरित क्रांति पूर्व अवधि (i) मुख्य कृषि संबंधी सुधार; और (ii) मुख्य सिंचाई परियोजनाओं के विकास के लिए संस्थागत परिवर्तन के लिए जानी जाती है। इस अवधि की अन्य नीतिगत पहलों में शामिल है : (i) खाद्य वितरण नेटवर्क की स्थापना; (ii) ग्राम विकास के लिए राष्ट्रव्यापी सामुदायिक विकास कार्यक्रम; (iii) भूमि उपयोग दक्षता बढ़ाने के लिए बंजर भूमि को कृषि के अंतर्गत लाना; (iv) सिंचित कृषि पर बल; (v) मृदा संरक्षण कार्यक्रम; (vi) सहकारी संस्थाओं और राष्ट्रीय विस्तार सेवा का विकास; (vii) सामुदायिक विकास नेटवर्क के माध्यम से प्रौद्योगिकी का प्रसार; (viii) भूमि उत्पादकता बढ़ाने के लिए उन्नत प्रौद्योगिकी का अंगीकरण; (ix) विकास के लिए क्षेत्र विकास दृष्टिकोण का अंगीकरण; (x) ग्रामीण क्षेत्रों में कृषीत्तर कार्यों का विस्तार, आदि। 1951-61 की दशाब्दी के दौरान GDP में ''कृषि और संबद्ध'' सेक्टर का योगदान 2.7 प्रतिशत था। परंतु यह दशाब्दी 1961-70 के दौरान घटकर 1.5 प्रतिशत हो गया। दो अवधियों के दौरान फलों और सब्जियों के उत्पादन में रही उल्लेखनीय संवृद्धि 1951-60 में 0.6 प्रतिशत से बढ़कर 1961-70 के दौरान 5.8 प्रतिशत के स्तर पर पहुँच गई।

हरित क्रांति अवधि 1960 के दशक के प्रारंभ के खाद्य संकट की स्थिति का प्रतिकार था। खाद्य सहायता और आयात पर बढ़ती हुई निर्भरता के कारण कृषि उत्पादन में तुरंत समाधान की बहुत व्यग्रता से खोज हो रही थी। इस अवधि में गेहूँ के और बाद में धान के बौनी नस्ल (HYV) का विकास और विस्तार देखा। ये HYV रासायनिक उर्वरकों और सिंचाई के अत्यधिक अनुक्रियाशील थे

और इस रणनीति ने गेहूँ और चावल के उत्पादन में भारी वृद्धि से शीघ्र परिणाम उत्पन्न किए। 1965-66 से 1971-72 तक छह वर्षों की अल्प अवधि में भारतीय कृषि ने 1951-65 की तुलना में खाद्यान्न के 30 मिलियन टन की वृद्धि देखी। यह नई कृषि नीति की सबसे बड़ी उपलब्धि की विशेषता थी कि देश ने खाद्यान्न में आत्मनिर्भरता प्राप्त की। इस अवधि में कृषि आदान उद्योग में भी तीव्र संवृद्धि हुई। नीति क्षेत्र में अनुसंधान और विस्तार, आदान आपूर्ति, ऋण, विपणन, मूल्य समर्थन और प्रौद्योगिकी का विस्तार पर सबसे अधिक ध्यान दिया गया। चौथी और पांचवीं योजना अवधियों (अर्थात् 1969-74 और 1974-79 के दौरान इन क्षेत्रों पर विशिष्ट नीतिगत बल था : (i) उच्चतर सस्यन सघनता, (ii) कृषि मूल्य नीति का आविर्भाव, (iii) भूमि चकबंदी अधिनियमों और जोतों की चकबंदी सहित भूमि सुधार की दूसरी प्रावस्था, (iv) 20 सूत्री आर्थिक कार्यक्रम का क्रियान्वयन, (v) क्षेत्र विकास रणनीति की निरंतरता, (vi) सूखा प्रवण क्षेत्र विकास परियोजनाएं, (vii) शुष्क भूमि खेती के लिए प्रोत्साहन, (viii) सिंचित कमाण्ड क्षेत्र में भूमि निम्नीकरण और भूमि प्रबधन की समस्याओं पर ध्यान, और (ix) विशेष सिंचाई कमाण्ड क्षेत्रों में सिंचाई का आधुनिकीकरण। इन पहलों के बावजूद इस अवधि में GDP में ''कृषि और संबद्ध सेक्टर'' के योगदान में वृद्धि मामूली हो रही है। यह 1961-70 में 1.5 प्रतिशत से 1971-80 के दौरान 1.7 प्रतिशत हुआ। दो विशिष्ट क्षेत्रों, जिनमें तुलनात्मक दृष्टि से 1961-70 और 1971-80 की दो अवधियों में उच्चतर वृद्धि देखी गई, वे हैं : (i) गैर बागवानी क्षेत्र में वृद्धि 1.1 प्रतिशत से 1.6 प्रतिशत, और (ii) पशुधन में 0.4 प्रतिशत से 3.9 प्रतिशत।

DIKSHANT IAS

हरित क्रांति पश्च अवधि का प्रारंभ 1980 के दशक के प्रारंभ से माना जाता है। इस अवधि में हरित क्रांति प्रौद्योगिकी का व्यापक विस्तार देखा गया। इसमें नए क्षेत्रों में और नई फसलों के लिए बीज उर्वरक क्रांति का तेज़ विस्तार हुआ जिससे मुख्य खाद्यान्नों में उत्पादकता वृद्धि हुई। इस अवधि के दौरानः (i) कई क्षेत्रों/पॉकेटों में वास्तविक फार्म उत्पादन में वृद्धि के साथ कृषि सेक्टर में वृद्धि, (ii) साहाय्यों में पर्याप्त वृद्धि और कृषि सेक्टर को सहायता, और (iii) आधारभूत संरचना विकास के लिए कृषि में सार्वजनिक सेक्टर व्यय में गिरावट। परंतु किसानों द्वारा अधिक निजी निवेश के कारण ग्रामीण अर्थव्यवस्था में विविधीकरण देखा गया जिससे खाद्यान्न से भिन्न उत्पादों, जैसे दूध, मत्स्य पालन, कुक्कुट पालन, फलों और सब्जियों आदि में अधिक तेज़ संवृद्धि हुई। इस प्रकार की संवृद्धि अधिकांशतः बाजार चालित थी जिसने 1980 के दशक के दौरान कृषि GDP में संवृद्धि के लिए पर्याप्त योगदान किया। कृषि GDP में वृद्धि 1970 के दशक के दौरान 1.7 प्रतिशत से बढ़कर (1980 के दशक के दौरान 3.0 प्रतिशत हुई)। विशेषकर फसल उत्पादन (अर्थात् मुख्य कृषि) से GDP में योगदान 1.9 प्रतिशत से 3.1 प्रतिशत, मत्स्य पालन में 2.9 प्रतिशत से 5.8 प्रतिशत बढ़ा। इस अवधि के दौरान कृषि के विकास के लिए मुख्य नीतिगत बल में शामिल थे : (i) सूखा प्रवण क्षेत्र और अकृष्य भूमि विकास कार्यक्रम, (ii) हरित क्रांति लाभ से पिछड़े क्षेत्रों पर विशेष ध्यान, (iii) मृदा अपरदन और भूमि निम्नीकरण पर विशेष ध्यान, (iv) राष्ट्रीय जल विभाजक विकास कार्यक्रम के अधीन बढ़ावा प्राप्त करने वाले जल संरक्षण प्रयास, (v) तिलहन और दलहन विकास कार्यक्रमों का प्रारंभ और, (vi) भूमि प्रबंधन की दृष्टि से दीर्घकालिक शुरुआत।

Call us @7428092240

22.2.2 आर्थिक सुधार अवधि : 1990 दशाब्दी

1990 की सुधार दशाब्दी (आठवीं योजना 1992-97) निम्नलिखित पर बल देते हुए से प्रारंभ हुई : (i) व्यापार क्षेत्र के प्राथमिकताएं : निर्यात के लिए अधिशेष कृषि उत्पादन, (ii) तिलहन क्षेत्र पर अधिक बल, (iii) कृषि जलवायु क्षेत्रीय योजना दृष्टिकोण का समावेश, (iv) उत्पादकता वृद्धि स्कीमों का प्रारंभ, (v) बागवानी सेक्टर का संवर्धन, (vi) ग्राम स्तर पर भूमि प्रबंधन में लोगों की सहभागिता का संस्थानीकरण, (vii) जल विभाजक विकास दृष्टिकोण पर बल, और (viii) जल विभाजक विकास कार्यक्रमों से मृदा संरक्षण का विलय नौवीं योजना (1997-2002) में कृषि को प्राथमिक सेक्टर के रूप में स्वीकार किया गया। नीति का मुख्य बल था– (i) कृषि अनुसंधान को बढ़ावा, (ii) निर्यात के लिए बागवानी फसलों पर बल, (iii) खेती के लिए कम उपयोग की गई भूमि कर्षण के अधीन लाकर अकृष्य भूमि का प्रबंधन, और (iv) ग्राम भूमि विकास के लिए प्रबंधन के परिणामस्वरूप दशाब्दी 1991-2000 के दौरान कृषि GDP में वृद्धि 3.3 प्रतिशत हुई जो 1981-90 की दशाब्दी 3.1 प्रतिशत थी। विशेषकर फलों और सब्जियों के उत्पादन में प्रभावशाली वृद्धि देखी गई। 1981-90 के दौरान इसकी संवृद्धि 2.4 प्रतिशत थी जो 1991-2000 के दौरान बढ़कर 6.00 प्रतिशत हो गई। परंतु कृषि क्षेत्र द्वारा सामना की गई चुनौतियां अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के सेक्टर खुलने के कारण गंभीर हो रही थीं। 1990 के दशक तक कृषि व्यापार राज्य व्यापार के माध्यम से होता था। यह उच्च सीमा शुल्कों और परिमात्रात्मक प्रतिबंधों द्वारा सख्ती से विनियमित किया जाता था। परंतु 1990 के दशक के मध्य में WTO समझौते से नये अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए घरेलू बाजार का खोलना आवश्यक था। भारतीय कृषि पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की आशंका हुई। इन परिवर्धनों से सरकार वर्ष 2000 में नई कृषि नीति विवरण लाने के लिए विवश हुई। इसलिए हम इस भाग को यह नोट करते हुए समाप्त कर सकते हैं कि 1951-2000 की लंबी अवधि में भारतीय कृषि (अर्थात् कृषि और संबद्ध सेक्टर) 2.6 प्रतिशत की औसत वार्षिक दर से बढ़ी, साथ ही इसके तीन उप-सेक्टर इस औसत वार्षिक संवृद्धि दर की अपेक्षा उच्चतर दर से बढ़े। ये हैं : पशुधन (3.1 प्रतिशत), फल और सब्जियां (4 प्रतिशत) और मत्स्य पालन (4.3 प्रतिशत)।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 1

नीचे दिए स्थान में अपने प्रश्नों का उत्तर लगभग 50 शब्दों में दीजिए।

1) ''रणनीतिक योजना'' के विभेदकारी तत्व बताइए।

....

....

....

....

2) किन्हीं चार परिणाम सूचकों का उल्लेख कीजिए जो कृषि विकास पर ''रणनीतिक नीति पहलों'' का प्रभाव प्रकट कर सकते हैं।

....

....

....

....

3) हरित क्रांति पूर्व वर्षों के दौरान नीतिगत बल के चार मुख्य क्षेत्र क्या थे?

....

....

....

....

4) हरित क्रांति पूर्व वर्षों के विशिष्ट नीतिगत पहलों का उल्लेख कीजिए।

....

....

....

....

5) मोटे तौर पर हरित क्रांति पूर्व दो दशकों के दौरान ''कृषि और संबद्ध सेक्टरों'' द्वारा GDP में योगदान में प्रवृत्ति बताइए।

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

....

6) चौथी और पांचवीं योजना अवधियों के दौरान कृषि विकास के लिए विशिष्ट नीति पहलों का उल्लेख कीजिए।

....

....

....

....

7) 1980 के दशक के दौरान किन कारकों ने कृषि के विविधीकरण में योगदान किया? इन दो उप-सेक्टरों की संवृद्धि कितनी थी?

....

....

....

....

8) आठवीं और नौवीं योजना अवधियों के दौरान कृषि विकास पर दिया गया विशिष्ट नीतिगत बल का उल्लेख कीजिए।

....

....

....

....

9) कृषि के किस उपसेक्टर विशेष ने 1990 के दशक के दौरान प्रभावशाली वृद्धि दिखाई? इस संवृद्धि की परिमात्रा क्या थी?

....

....

....

....

10) उन परिस्थितियों का उल्लेख कीजिए जिसने वर्ष 2000 में नई कृषि नीति विवरण लाने के लिए सरकार को बाध्य किया।

....

....

....

....

DIKSHANT IAS

11) कुल मिलाकर आप 1951-2000 के पांच दशकों की समयावधि में भारतीय कृषि के संवृद्धि प्रोफाइल के रूप में कैसे वर्गीकरण करेंगे? किन उपसेक्टरों ने इस समस्त वृद्धि दर का बेहतर निष्पादन किया है?

Call us @7428092240

....

....

....

....

22.3 नई कृषि नीति : 2000

नई कृषि नीति 2000 (NAP-2000) का सामान्य उद्देश्य वर्ष 2020 तक इस सेक्टर को 4 प्रतिशत वार्षिक से अधिक दर पर उत्पादन संवृद्धि के लिए सहायता देना है। निम्नलिखित उपायों पर आधारित बहुपक्षीय दृष्टिकोण द्वारा यह लक्ष्य प्राप्त करने का प्रयास करना है : (i) अधिक तेज़ कृषि विकास की सहायता करने के लिए ग्रामीण आधारभूत संरचना सुदृढ़ करना; (ii) कृषि-व्यापार की वृद्धि तेज कर मूल्य परिवर्धन प्रोत्साहित करना; (iii) एक ओर उच्चतर जीवन स्तर प्राप्त करने के लिए ग्रामीण क्षेत्रों में रोज़गार के अवसर उत्पन्न करना, दूसरी ओर शहरी क्षेत्रों में प्रवासन निरुत्साहित करना; और (iv) घरेलू और निर्यात दोनों बाजारों का ध्यान रख कर आर्थिक उदारीकरण से उत्पन्न होने वाली चुनौतियों का सामना करना। NAP का दृष्टिकोण इस प्रकार है :

22.3.1 मुख्य विशेषताएँ

NAP 2000 में उल्लिखित उद्देश्य प्राप्त करने के लिए दृष्टिकोण को नीचे उसकी सुनिश्चित विशेषताओं के अनुसार निम्न प्रकार स्पष्ट किया गया है :

क) ठेका कृषि विधियों के संवर्धन द्वारा निजी सेक्टर की अधिक सहभागिता,

ख) फसल असफलता, जैसी अप्रत्याशित स्थितियों का सामना करने के लिए राष्ट्रीय कृषि बीमा योजना (NIAS) के प्रवर्तन द्वारा सहायता प्राप्त किसानों को मूल्य संरक्षण प्रदान करना,

ग) देशभर में कृषि पण्यवस्तुओं की आवाजाही पर प्रतिबंध समाप्त करना,

घ) सिंचाई संभावना के इष्टतम प्रयोग के लिए देश के जल संसाधनों के विवेकपूर्ण उपयोग को प्रोत्साहित करना,

ङ) संबद्ध (समवर्गी) कृषि कार्यों, जैसे बागवानी, पशुपालन, कुक्कुटपालन, डेयरी और मत्स्य पालन, को उच्च प्राथमिकता देना,

च) फसल उत्पादन के लिए निश्चित बाजार सहित पूँजीप्रवाह के लिए अनुकूल वातावरण स्थापित करना,

छ) आधारभूत संरचना के लिए आवश्यक कृषि भूमि के अनिवार्य अधिग्रहण से प्राप्त आय पर पूँजीगत लाभ कर से छूट,

ज) अंतर्राष्ट्रीय मूल्यों की लगातार मानीटरिंग द्वारा पण्यवस्तु कीमतों में घट-बढ़ न्यूनतम करने के उपयुक्त उपाय करना,

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

झ) पादप किस्मों के संरक्षण के लिए कानून बनाना,

ञ) किसानों को पर्याप्त और समयोचित तरीके से अच्छी गुणवत्ता के आदानों की आपूर्ति,

ट) ग्रामीण विद्युतीकरण को उच्च प्राथमिकता देना, और

ठ) ग्राम क्षेत्रों में कृषीत्तर रोजगार पैदा करने के लिए कृषि प्रोसेसिंग इकाइयां स्थापित करना।

22.3.2 विचाराधीन मुद्दे

NAP में बहुमुखी रणनीति निर्दिष्ट की गई है जिसमें महत्त्वपूर्ण चिंता के कई क्षेत्रों को शामिल किया गया है ताकि धारणीय और न्यायसंगत तरीके में संकल्पित संवृद्धि लक्ष्य प्राप्त करने के लिए निश्चित नीति विवरण विकसित किया जा सके। इसे प्राप्त करने के लिए NAP निम्नलिखित मुख्य केंद्रीय क्षेत्रों के अनुसार दिशा निर्दिष्ट करती है : (i) धारणीय कृषि, (ii) खाद्य और पोषण सुरक्षा, (iii) प्रौद्योगिकी निर्माण और हस्तांतरण, (iv) आदान प्रबंधन, (v) कृषि के लिए प्रोत्साहन, (vi) कृषि के लिए निवेश, (vii) संस्थागत संरचना और (viii) अन्य प्रबंधन सुधारों सहित जोखिम नियंत्रण।

22.3.2.1 धारणीय कृषि

NAP उल्लेख करती है कि भारत के पादप और पशु जननिक (जेनेटिक) संसाधन आधार के अपरदन और संकीर्णन ने देश की जैव विविधता को प्रभावित किया

है। इस स्थिति को सुधारने के लिए NAP ने निम्नलिखित सुस्पष्ट रणनीतियों का सुझाव दिया हैः (i) देश की विशाल कृषि जैव विविधता को सूचीबद्ध करने, तालिका बनाने और वर्गीकरण करने के लिए समयबद्ध तरीके में जननिक स्रोतों का सर्वेक्षण, (ii) उन पादप प्रजातियों का विकास करने के लिए जैव प्रौद्योगिकी का संवर्धन, वे हैं – (क) सूखा/परजीवी प्रतिरोधी, (ख) अधिक पोषण युक्त और कम जलभोगी, (ग) पर्यावरण की दृष्टि से अधिक मैत्रीपूर्ण तरीके में अधिक उपज देने वाले आदि। (iii) जैव पिंड, कार्बनिक और अकार्बनिक उवर्रकों के संतुलित और संयुक्त प्रयोग तथा समाकलित पोषक तत्वों और परजीवी नियंत्रण प्रणालियों द्वारा कृषि रासायनों के नियंत्रित प्रयोग के बारे में कृषि समुदाय को सुग्राही बनाना, (iv) कृषि प्रणाली में जैव मात्रा संतुलन और संवृद्धि के लिए कृषि वानिकी और सामाजिक वानिकी को प्रोत्साहन, आदि।

इस समय भारत में कृषि और संबद्ध सेक्टर के समक्ष बड़ी चुनौती जलवायु संबंधी परिवर्तनशीलता के कारण उत्पादन पर संभव प्रतिकूल प्रभाव है। यह अनुभव किया गया है कि जलवायु परिवर्तन और अत्यंत भीषण मौसमी घटनाओं के कारण प्रतिकूल प्रभाव गंभीर हो सकता है। यदि समुचित अनुकूलन और न्यूनीकरण रणनीतियां नहीं अपनाई गईं तो खाद्य वस्तुओं की कमी और बढ़ती हुई कीमतों के गंभीर परिणाम हो सकते हैं जो देश की खाद्य और आजीविका सुरक्षा को नकारात्मक रूप से प्रभावित कर सकते हैं। इस चुनौती का सामना करने के लिए विशिष्ट रणनीति के रूप में भारत सरकार ने धारणीय कृषि के लिए राष्ट्रीय मिशन प्रारंभ किया है जो फसलों और पशु पालन के क्षेत्र में उपयुक्त अनुकूलन और न्यूनीकरण उपायों द्वारा जलवायु उच्चावचन को सहन करने वाली प्रणाली में भारतीय कृषि का रूपांतरण करने का प्रयास करता है। इसे प्राप्त करने के लिए मिशन–(i) अनुसंधान और विकास कार्य संचालित करेगा, (ii) उन्नत प्रौद्योगिकी और सर्वश्रेष्ठ पद्धति अपनाएगा, (iii) भौतिक और वित्तीय, आधारभूत संरचना तथा संस्थागत ढांचा निर्मित करेगा, और (iv) सूचना सुलभता आसान बनाएगा तथा क्षमता निर्माण प्रोत्साहित करेगा। शुष्क भूमि कृषि के लिए उपयुक्त सूखा सह और परजीवी प्रतिरोधी फसल किस्मों के विकास पर फोकस होगा और इस प्रयोजन के लिए पर्याप्त संस्थागत सहायता सुनिश्चित करने के अलावा वर्षा प्रधान क्षेत्रों में पशुधन और मत्स्य पालन के प्रबंधन से कृषि पद्धति का समाकलन करेगा। यह सुनिश्चित करने के लिए कि धारणीय तरीके में कृषि उत्पादन बढ़ना जारी रहता है, मिशन कृषि जलवायु क्षेत्र स्तर पर रणनीतिक योजना शुरू करने, प्रयास करता है, उत्पादकता बढ़ाने के लिए अनुकूल हस्तक्षेप विकसित करने का प्रयास करता है, सूचना की आसान सुलभता और संस्थागत सहायता सुनिश्चित करने तथा भूमि से प्रयोगशाला को जोड़ने का प्रयास करता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

22.3.2.2 खाद्य और पोषण सुरक्षा

खाद्य और कृषि आधारित उद्योगों के लिए आवश्यक कच्चे माल की बढ़ती हुई मांग पूरा करने के लिए फसलों की उत्पादकता और उत्पादन बढ़ाना आवश्यक है। इसके लिए क्षेत्रीय (कृषि विज्ञान, जलवायु और पर्यावरणी दशा को ध्यान में रखकर) बनाई गई रणनीति का अनुसरण किया जाएगा। पशुपालन को प्रोत्साहित करने के लिए राष्ट्रीय पशुधन प्रजनन रणनीति विकसित की जाएगी जिससे दूध, गोश्त, अंडे और पशु उत्पादों की मांग पूरी हो सकेगी। सहकारी समितियों और

निजी सेक्टर द्वारा कुक्कुट पालन और डेयरी का विकास प्रोत्साहित किया जाएगा। पुष्प कृषि और बागवानी में, मुख्य बल वर्षा प्रधान और सिंचित प्रणाली के विकास पर होगी।

यह विशेष रूप से फोकस करेगा – (i) पादपरोपण फसलों, विशेषकर मूल और कंद तथा गंधीय और औषधीय पादपों के प्रोत्साहन पर, (ii) मधुमक्खी पालन पर, (iii) टिशू कल्चर प्रयोगशालाओं पर, (iv) बीज फार्मों, आदि पर। मत्स्य पालन में धारणीय जलकृषि तैयार करने तथा प्रोत्साहित करने का समाकलित दृष्टिकोण अपनाया जाएगा। यह विशेष रूप से देश के विशिष्ट आर्थिक क्षेत्र की विशाल संभावना का लाभ उठाने के लिए गहरे समुद्र में मछली पकड़ने पर फोकस करेगा।

खाद्य सुरक्षा सुधारने के लिए अपनाई गई विशिष्ट रणनीति राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन है। यह 19 राज्यों के 311 जिलों में 2007-08 में प्रारंभ की गई केंद्र प्रायोजित योजना है। मिशन के उद्देश्य हैं : (i) क्षेत्रफल के विस्तार द्वारा चावल, गेहूँ और दलहनों के उत्पादन बढ़ाना और व्यक्तिगत फार्म स्तर पर मृदा उर्वरता तथा उत्पादकता की पुनर्स्थापना द्वारा देश के कतिपय निर्धारित जिलों में धारणीय तरीके में उत्पादकता बढ़ाना, (ii) रोजगार के अवसर पैदा करना, और (iii) किसानों में विश्वास बहाल करने के लिए अलग-अलग फार्म स्तर पर अर्थव्यवस्था को बढ़ावा देना। मिशन कार्यक्रम की योजना, निष्पादन और मॉनीटरिंग में सभी पणधारियों को सम्मिलित करने का प्रयास करता है। उन्नत प्रौद्योगिकियों (जैसे बीज, पोषण, पादप संरक्षण, मृदा सुधार, संसाधन संरक्षण, फार्म मशीनें और औजार) के संवर्धन और विस्तार के माध्यम से चावल, गेहूँ और दलहनों का उत्पादन क्रमशः 10, 8 और 2 मिलियन टन तक बढ़ने की संभावना व्यक्त की गई है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

22.3.2.3 प्रौद्योगिकी का सृजन और हस्तांतरण

प्रौद्योगिकी अनुप्रयोग में, सीमांत विज्ञान जैसे बायो-टेक, दूर-वीक्षण, ऊर्जा संरक्षण आदि में परिवर्धन स्थान विशिष्ट कृषि और बागवानी फसलें विकसित करने में प्रयुक्त हो सकता है। यह दृष्टिकोण पशुधन प्रजाति और जल कृषि के विकास के लिए भी प्रयुक्त हो सकता है। अनुसंधान और विस्तार सहसंबंध इसके व्यापक आधार बनाने के लिए सहायक रहेंगे और फसल, पशुधन, मत्स्य पालन आधारित उत्पादन पद्धतियों को सशक्त बनाएंगे। मांग चालित उत्पादन पद्धतियों के संवर्धन के लिए KVK (कृषि विज्ञान केंद्रों), NGO (गैर-सरकारी संगठनों), किसान संगठनों, सहकारी समितियों, निगम सेक्टर आदि की भूमिका को प्रोत्साहित किया जाएगा। समुचित संरचनात्मक, प्रचालनात्मक और संस्थागत उपाय महिलाओं के सशक्तीकरण और उनकी क्षमताओं का निर्माण करने के लिए शुरू किये जाएंगे ताकि आदानों, प्रौद्योगिकी और अन्य कृषि संसाधनों तक उनकी पहुंच सुधारी जा सके।

22.3.2.4 आदान प्रबंधन

जैव परजीवीनाशी, कृषि मशीनरी और उचित दर पर ऋण सहित गुणवत्ता संपन्न आदानों की पर्याप्त और ठीक समय पर आपूर्ति प्रदान करने का प्रयास होगा। कार्यक्षम पोषकों का प्रयोग, जैव और जैव उर्वरक युक्त रासायनिक उर्वरकों का संतुलित इष्टतम प्रयोग प्रोत्साहित किया जाएगा। बीजों की आपूर्ति, विशेषकर

प्राकृतिक विपत्तियों द्वारा प्रभावित क्षेत्रों को आपूर्ति, सुनिश्चित करने के लिए राष्ट्रीय बीज तंत्र स्थापित किया जाएगा। कृषि को दक्ष और प्रतिस्पर्धी बनाने के लिए समुचित प्रौद्योगिकी द्वारा चयनात्मक और पारिस्थितिक मैत्रीपूर्ण फार्म मशीनरीकरण को प्रोत्साहित किया जाएगा। व्यक्तिशः अनुसंधानकर्त्ताओं और कार्पोरेट अभिकर्त्ताओं के संपदा अधिकार की सुरक्षा करने पर फोकस के साथ निजी सेक्टर में नई किस्मों के अनुसंधान और प्रजनन को प्रोत्साहित किया जाएगा।

बीजों के मामले में ''गुणवत्ता संपन्न बीजों के उत्पादन और वितरण के लिए आधारभूत संरचना सुविधाओं का विकास और सुदृढ़ीकरण'' नाम की केंद्र प्रायोजित योजना दसवीं योजना के दौरान प्रारंभ की गयी थी। बीज बैंक योजना 1999-2000 में प्रारंभ की गई थी, जिसका उद्देश्य किसानों को, विशेषकर आकस्मिकता स्थितियों के दौरान, गुणवत्तापूर्ण बीजों की उपलब्धता सुनिश्चित करना और बीजों के भंडारण के लिए आधारभूत संरचना विकसित करना है। बीजों के मामले में महत्त्वपूर्ण रणनीति ''बीज ग्राम'' योजना है। 2002 की नई बीज नीति स्थानीय स्तर पर बीजों के उत्पादन और समय पर उपलब्धता बढ़ाने के लिए इस योजना को सुदृढ़ बनाने का प्रयास करती है।

22.3.2.5 कृषि के लिए प्रोत्साहन

कृषि में पूँजी निर्माण बढ़ाने के प्रयोजन से अनुकूल आर्थिक वातावरण बनाने के लिए (i) सेक्टरों के बीच प्रोत्साहन ढांचे में विकृतियां कृषि बनाम उद्योग के लिए व्यापार की शर्तें सुधार कर समाप्त की जाएंगी, और (ii) आवश्यक कर सुधार लागू कर विदेशी और घरेलू बाजारों का यौक्तिकरण किया जाएगा। विश्व बाजारों में अनावश्यक कीमतों के उतार-चढ़ाव के प्रतिकूल प्रभाव से घरेलू उत्पादकों के संरक्षण के लिए पण्यवस्तुवार रणनीतियां बनाई जाएंगी। इसमें विपणन के अन्य पहलुओं जैसे गुणवत्ता, विकल्प, स्वास्थ्य और जैव सुरक्षा मानकों का संवर्धन भी अंतर्निहित होगा। निर्यात संवर्धन के लिए (i) कृषि उत्पादन की विविधता, और (ii) सहयोगशील सार्वजनिक प्रबंधन प्रणाली की स्थापना की दुमुखी रणनीति अपनाई जाएगी। पश्चोयुक्त में कृषि में प्रयुक्त विनिर्मित पण्यवस्तुओं पर आयात शुल्क का योक्तीकरण भी शामिल है। देशभर में घरेलू कृषि बाजार में कृषि पण्यवस्तुओं की आवाजाही पर सभी प्रतिबंध हटाकर उदार बनाया जाएगा। अन्य प्रोत्साहन, जैसे कृषि भूमि के अनिवार्य अधिग्रहण पर किसानों को पूँजीगत लाभ कर से छूट और कृषि सेक्टर को नियामक तथा कर संग्रहण पद्धतियों से बाहर रखने के उपाय भी अपनाए जाएंगे।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

22.3.2.6 कृषि में निवेश

कृषि में निजी निवेश को बढ़ावा देने के लिए अनुकूल वातावरण स्थापित किया जाएगा। यह मूल्य और व्यापार संबंधी सुधारों के मिश्रण द्वारा किया जाएगा। ग्रामीण और कृषि आवश्यकताओं के लिए गुणवत्तापूर्ण विद्युत आपूर्ति को उच्च प्राथमिकता देकर सुधारा जाएगा। इसके लिए निम्नलिखित उपाय प्रारंभ किए जाएंगे (i) निर्मित और प्रयुक्त सिंचाई संभावना के बीच अंतर समाप्त करना, (ii) सिंचाई आधारभूत संरचनाओं के आधुनिकीकरण के लिए सभी चालू परियोजनाएं पूरी करना, और (iii) कृषि प्रयोजनों के लिए ऊर्जा को नये और पुनर्नवीय स्रोतों के प्रयोग को प्रोत्साहित करना। फसल कटाई के बाद की क्षतियां कम करने की दृष्टि

से कृषि उत्पादों के संरक्षण, भंडारण और परिवहन के लिए विपणन आधारभूत संरचना और तकनीकों के विकास पर उचित बल देना। PRI की सक्रिय सहभागिता और प्रत्यक्ष नियंत्रण से रियातु बाजारों की तर्ज पर उत्पादक बाजारों को पूरे देश में बढ़ावा दिया जाएगा। बाजार आसूचना की कोटि के सुधार और प्रसारण पर खास ध्यान दिया जाएगा। उत्पादक सहकारी समितियों और कंपनी सेक्टर के बीच कृषि प्रसंस्करण उद्योग को बढ़ावा देने के लिए प्रोत्साहित किया जाना।

22.3.2.7 संस्थानिक संरचना

भारतीय कृषि में छोटे और सीमांत कृषकों की प्रधानता के कारण ग्राम विकास और भूमि सुधार की नीति निम्नलिखित पर फोकस करेगी : (i) चकबंदी, (ii) भूमिहीनों, बेरोजगारों आदि में अतिरिक्त और अकृष्य भूमि का पुनर्वितरण, (iii) काश्तकारी सुधारों के मामले में काश्तकारों और बटाईदारों के अधिकारों को मान्यता, (iv) आवश्यक कानूनी प्रावधान बनाकर जोतों के आकार में वृद्धि की अनुमति देने के लिए पट्टा बाजारों का विकास, (v) भूमि रिकार्डों का अद्यतनीकरण और कंप्यूटरीकरण और किसानों को उनकी जोतों पर पास बुक देने के अंतिम उद्देश्य से उसका कंप्यूटरीकरण और (vi) भूमि स्वामित्व के मामले में महिलाओं के अधिकारों को मान्यता। भूमि सुधारों के क्रियान्वयन की प्रक्रिया PRI, स्वयंसेवी समूहों, सामाजिक सक्रियतावादियों और सामुदायिक नेताओं को सम्मिलित करेगी। संविदा खेती और भूमि पट्टा व्यवस्थाओं के माध्यम से त्वरित प्रौद्योगिकी हस्तांतरण की अनुमति के लिए निजी सेक्टर की सहभागिता को प्रोत्साहित किया जाएगा। बचत, निवेश और जोखिम नियंत्रण को बढ़ावा देने के लिए ग्रामीण ऋण संस्थाओं को सक्रिय किया जाएगा। संस्थागत और वित्तीय दुर्बलता को समाप्त करने के लिए सहकारी समितियों को सशक्त करने के विशेष उपाय किए जाएंगे और कृषि ऋण की स्वीकृति और पुनर्वितरण की सरल प्रक्रिया विकसित की जाएगी।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

22.3.2.8 जोखिम प्रबंधन (नियंत्रण)

राष्ट्रीय कृषि बीमा योजना (NAIS) के कार्यक्षेत्र में सभी किसान और सभी फसलें होंगी। प्राकृतिक विपत्तियों, कीमतों की घट-बढ़ आदि के कारण उत्पन्न वित्तीय संकट से किसानों को अलग रखने के लिए अंतःनिर्मित प्रावधान होंगे। MSP की घोषणा द्वारा लाभकारी कीमतें सुनिश्चित करने की प्रणाली जारी रहेगी। अनुकूल आर्थिक वातावरण सुनिश्चित करने के लिए मूल्य संरचना और व्यापार क्रियाविधियों की समीक्षा लगातार होती रहेगी। आपात बिक्री रोकने के लिए देशी बाजार कीमतों की निगरानी बहुत निकटता से होगी और सार्वजनिक तथा सहकारी विपणन समितियों को सुदृढ़ किया जाएगा। भावी बाजार का विस्तार सभी पण्यवस्तुओं को शामिल करने के लिए प्रभावी रूप से बढ़ाया जाएगा ताकि पण्यवस्तुओं की कीमतों में व्यापक उतार-चढ़ाव का प्रतिकूल प्रभाव न्यूनतम हो सके। अन्य प्रबंधन सुधारों के मामलों में केंद्रीय सरकार अंतःक्रिया विधा में निरूपित तथा राज्यों से भागीदारी की भावना से क्रियान्वित फसल/क्षेत्रफल/लक्ष्य समूह प्रयासों के माध्यम से राज्य सरकारों के प्रयासों को संपूरित करेगी। निर्यात वृद्धि के लिए उत्पादों के श्रेणीकरण और मानकीकरण को बढ़ावा दिया जाएगा। अनुमानों और पूर्वानुमानों को अधिक विश्वसनीय तथा योजना और नीति निर्माण की प्रक्रिया

में उपयोगी बनाने के लिए कृषि सेक्टर का आंकड़ा संचय (डाटा बेस) सुदृढ़ किया जाएगा। किसानों के लाभ के लिए फार्मों और बाजारों से निकलने वाले संकेतों का विश्लेषण करने के लिए कृषि मूल्यों पर ''अनुक्रिया सह आंकड़ा'' संग्रह करने, मिलान करने और प्रसारित करने के लिए दूर वीक्षण और IT की तकनीकों का अधिक प्रयोग किया जाएगा।

बोध प्रश्न 2

नीचे रिक्त स्थान में अपना उत्तर लगभग 50 शब्दों में दीजिए।

1) NAP–2000 के चार प्रमुख उद्देश्य क्या हैं?

....

....

....

....

2) NAP–2000 में निर्दिष्ट विशिष्ट दृष्टिकोणों में एक बताइए जिसका उद्देश्य कृषि सेक्टर को मूल्य, बीमा, कर और बेहतर पूँजी प्रवाह के लाभ प्रदान करना है?

....

DIKSHANT IAS

....

Call us @7428092240

....

....

3) आठ प्रमुख केंद्रीय क्षेत्र क्या हैं, जिसके अधीन NAP–2000 में विशिष्ट नीति विवरण विस्तार से दिया गया है?

....

....

....

....

4) NAP–2000 में देश के अस्थिरता ग्रस्त जैव विविधता आधार में संतुलन स्थापित करने के लिए किन चार विशिष्ट दृष्टिकोणों का सुझाव दिया गया है?

....

....

....

....

5) संबद्ध कृषि के बागवानी और पुष्पकृषि को बढ़ावा देने के लिए NAP–2000 में निर्दिष्ट चार प्रमुख केंद्रीय क्षेत्र बताइए।

....

....

....

....

6) NAP में भारतीय कृषि में निम्नलिखित के लिए कौन-से दो विशिष्ट दृष्टिकोण/रणनीतियां निर्दिष्ट की गई हैं? (i) पूँजी निर्माण के लिए अनुकूल आर्थिक वातावरण सृजन (ii) निर्यात संवर्धन।

....

....

....

....

7) कृषि और ग्रामीण विकास के लिए आवश्यक गुणवत्तापूर्ण विद्युत की आपूर्ति सुनिश्चित करने के लिए NAP–2000 में प्रारंभ किए जाने वाले किन विशिष्ट उपायों की संकल्पना की गई है?

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

....

....

8) भारत में ''छोटे और सीमांत किसानों'' के विशाल वर्ग की सहायता करने के लिए NAP–2000 में क्रियान्वित किए जाने वाले क्या विशिष्ट संस्थागत सुधार सुझाए गए हैं?

....

....

....

....

9) NAP–2000 में 'जोखिम प्रबंधन' की समस्या का समाधान कैसे किया जाना चाहिए?

....

....

....

....

10) किन क्षेत्रों में साझेदारी की अंतःसक्रियता की भावना कृषि विकास की नीतियों के क्रियान्वयन में राज्य सरकारों से बेहतर समन्वय प्राप्त करने के लिए अनुसरण करने का प्रयास किया गया है।

....

....

....

....

22.4 दसवीं और ग्यारहवीं योजना अवधियों के दौरान निष्पादन

भाग 22.2 में आर्थिक सुधार अवधि के दौरान नीतिगत पहलों पर संक्षिप्त निर्देशात्मक चर्चा में हमने नोट किया है कि 1991-2000 की दशाब्दी के दौरान कृषि GDP की संवृद्धि 3.3 प्रतिशत थी। इसमें आठवीं योजना अवधि (1992-97) कृषि सेक्टर की संवृद्धि कहीं उच्चतर (4.8 प्रतिशत) थी परंतु नौवीं योजना अवधि (1997-2002) की कृषि संबंधी स्थिति में गिरावट के कारण इस समय के दौरान कृषि सेक्टर की संवृद्धि 2.5 प्रतिशत रह गई। वर्ष 2000 तक दशकीय वृद्धि दर गिरकर 3.3 प्रतिशत थी। इसके अलावा, जैसाकि हमने पहले देखा कि सेक्टर को बढ़ाने के लिए व्यापक रणनीति लाना सरकार की विवशता थी, इसके फलस्वरूप वर्ष 2000 में सबसे पहली राष्ट्रीय नीति की घोषणा हुई।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

NAP-2000 की घोषणा के अनुवर्ती वर्षों में की गई विभिन्न पहलों के बावजूद, दसवीं पंचवर्षीय योजना अवधि (2002-07) के दौरान भी कृषि GDP की संवृद्धि 2.4 प्रतिशत ही रही थी। किंतु बाद में ग्यारहवीं योजना में इस सेक्टर ने 2006-11 के चार वर्षों की अवधि के दौरान वार्षिक 3.9 प्रतिशत दर पर संवृद्धि की। परंतु ग्यारहवीं योजना अवधि के दौरान वर्ष दर वर्ष संवृद्धि बिल्कुल भिन्न-भिन्न रही है। यद्यपि सेक्टर ने 2010-11 के दौरान अब तक की उसकी सबसे अधिक 7 प्रतिशत की दर पर संवृद्धि की (2004-05 की स्थिर कीमतों पर), परंतु 2011-12 के अनुवर्ती वर्ष में सेक्टर की संवृद्धि अचानक घटकर 2.5 प्रतिशत हो गई। यह गिरावट 2011-12 में अच्छी फसल के बावजूद थी जिसमें कुल खाद्यान्न उत्पादन ने 250.4 मिलियन टन का नया शिखर स्पर्श किया। स्पष्टतः अधिक बड़े ''कृषि और संबद्ध'' सेक्टर में संवृद्धि न केवल कुल खाद्यान्न उत्पादन द्वारा प्रभावित हुई है बल्कि उसके संबद्ध उपसेक्टरों और निष्पादन में अंतरराज्य अंतरों का प्रभाव भी रहा है। इन कारणों से संपूर्ण ग्यारहवीं योजना अवधि (2007-12) के लिए ''कृषि और संबद्ध सेक्टर'' में औसत वृद्धि लगभग 3.5 प्रतिशत रखी गई है। कृषि सेक्टर में वृद्धि पैटर्न में अस्थिरता 1990 के दशक (1.1) की तुलना में 2000 के दशक में विभिन्नता (1.6) परिणमन गुणांक द्वारा भी प्रकट हुई है। यह अंतर देश की समग्र GDP संवृद्धि की अपेक्षा कहीं अधिक (लगभग छह गुणा अधिक) है। इस प्रकार के अस्थिरता (जो जलवायु परिवर्तन (या ग्लोबल वार्मिंग) के कारण विद्यमान रहने की आशा की जाती है), कृषि (और संबद्ध) सेक्टर में दीर्घकालिक औसत वार्षिक 4 प्रतिशत वृद्धि के लिए अपेक्षित गति टिकाऊ रखना स्पष्टतः प्रत्यक्ष नीति निर्धारण के कार्य में एक बड़ी चुनौती होगी।

22.4.1 संवृद्धि में क्षेत्रीय विभिन्नताएं

चूंकि कृषि राज्य का विषय है, इसलिए कृषि का समग्र निष्पादन भिन्न-भिन्न राज्य सरकारों की पहलों और उपलब्धियों पर अत्यधिक निर्भर करता है। अखिल भारतीय स्तर पर सेक्टर की वर्ष दर वर्ष वृद्धि में उपर्युक्त विशाल अंतर के स्पष्टीकरण के रूप में, हम उल्लेख कर सकते हैं कि 2000 की दशाब्दी के दौरान कुछ अधिक बड़े राज्यों के अल्प निष्पादन का इस कुल निष्पादन में योगदान रहा है। उदाहरण के लिए, 2001-09 के दौरान यद्यपि राजस्थान, गुजरात और बिहार राज्यों ने बेहतर निष्पादन (क्रमशः 8.2, 7.7 और 7.1 प्रतिशत) किया। परंतु प्रमुख राज्यों, उत्तर प्रदेश और पश्चिम बंगाल ने (क्रमशः 2.3 और 2.4 प्रतिशत पर) घटिया निष्पादन किया। अन्य राज्य (जिन्होंने कृषि में अपने पिछले घटिया निष्पादन स्तरों से सुधार कर) मजबूत वृद्धि निष्पादन दिखाई है), उड़ीसा (3.2 प्रतिशत) और छत्तीसगढ़ (6 प्रतिशत) तथा हिमाचल प्रदेश (5.1 प्रतिशत) हैं।

तुलनात्मक महत्त्व की एक अन्य विशेषता यह है कि आठवीं, नौवीं, दसवीं और ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना अवधियों में क्रमशः 6.5, 5.7, 7.6 और 8.2 प्रतिशत की उच्च दर पर अर्थव्यवस्था ने प्रगति की है। किंतु कृषि सेक्टर की संवृद्धि क्रमशः 4.8, 2.5, 2.4 और 3.5 प्रतिशत की दर पर रही है। बहुत से विश्लेषणकर्त्ताओं ने उल्लेख किया है कि यह ''कृषि और संबद्ध सेक्टर'' की संवृद्धि और कुल अर्थव्यवस्था की संवृद्धि प्रवृत्ति में बढ़ता हुआ विचलन दर्शाता है। कृषि का अपेक्षाकृत हीन निष्पादन का संबंध कुछ विशिष्ट चालकों से जोड़ा गया है। ये हैं : (i) 1990 के दशक के दौरान कृषि GDP के प्रतिशत में GCFC (सकल पूँजी निर्माण) में कम सार्वजनिक निवेश (अर्थात् आठवीं और नौवीं योजना अवधियों के दौरान जब यह 10 प्रतिशत स्तर के नीचे गिर गया था (जिसे 10वीं और 11वीं योजना अवधियों के दौरान क्रमशः 12.9 और 18.7 प्रतिशत के स्तर तक बढ़ाने के लिए बाद में सुधारा गया था), (ii) साहाय्यों पर अधिक व्यय, जिसका प्रभाव कृषि अनुसंधान, सिंचाई, ग्रामीण सड़कों और विद्युत में सार्वजनिक निवेश पर पड़ा, और (iii) सार्वजनिक और निजी निवेश अनुपात का बदलता हुआ ढांचा (जो 1980 के दशक में लगभग बराबर था परंतु 2000 के दशक के प्रारंभ के दौरान प्रतिकूल ढंग से बदला, इसमें 2004-05 कीमतों पर निजी निवेश सार्वजनिक निवेश के अपेक्षा बहुत अधिक था)।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

22.4.2 विशेष पहलें और कार्यक्रम

2004-05 से कुछ मिशन विधा योजनाओं/पहलों द्वारा फसल और बागवानी सेक्टरों में उत्पादन बढ़ाने को प्राथमिकता दी गई है। इनमें शामिल हैं : (i) राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन (NFSM) (जिसे आप इकाई 19 के उपभाग 19.5.3 में पढ़ चुके हैं।), (ii) राष्ट्रीय कृषि विकास योजना (RKVY), (iii) तिलहन, दलहन, तेल ताड़ और मकई (ISO POM) की एकीकृत योजना, (iv) राष्ट्रीय बागवानी मिशन (NHM), (v) कृषि की समष्टि प्रबंधन (MMA) योजना आदि।

RKVY मुख्यतया परियोजनामुखी योजना है जिसका उद्देश्य राज्यों की कृषि जलवायुवीय दशाओं को ध्यान में रखकर राज्यों को कृषि और संबद्ध सेक्टरों में सार्वजनिक निवेश बढ़ाने के लिए प्रोत्साहित करना है। (RKVY) के अधीन 2011-12 में बहुत नई उपयोजनाएं विशेष वित्तीय आबंटन के साथ प्रारंभ की गईं हैं। ये हैं : (i) पूर्वी क्षेत्र में हरित क्रांति लाना (BGRaI), (ii) वर्षा प्रधान क्षेत्रों

में दलहनों के लिए 60,000 ग्रामों का समाकलित विकास, (iii) तेलताड़ क्षेत्र विस्तार पर विशेष कार्यक्रम; (iv) शहरी संकुलों के लिए सब्जी पहल, (v) सघन मकई संवर्धन द्वारा पौषणिक सुरक्षा के लिए पहल, (vi) प्रोटीन संपूरकों के लिए राष्ट्रीय मिशन, (vii) त्वरित चारा विकास कार्यक्रम, (viii) वर्षा प्रधान क्षेत्र विकास कार्यक्रम और (ix) केसर मिशन आर्थिक पुनरुद्धार कार्यक्रम। यद्यपि ये पहल कार्य अपना प्रभाव आने वाले वर्षों में दिखाएंगे, परंतु 2000 के बाद के प्रयासों ने, विशेषकर वर्ष 2006-12 के दौरान महत्त्वपूर्ण परिणाम दिए है। उदाहरण के लिए, यद्यपि 1990 की दशाब्दी (1.1 प्रतिशत) के दौरान संवृद्धि दर की तुलना में दशाब्दी 2001-02 (2.2 प्रतिशत) के दौरान संवृद्धि दर के आधार पर कुल ''खाद्यान्न'' उत्पादन दुगुना हुआ है। वर्ष 2001-12 के दौरान इसका निष्पादन 3.1 प्रतिशत था। यह प्रभाव सामान्यतः ''धान्य'' की समग्र संवृद्धि में देखा गया है। इसके अलावा, दलहनों और तिलहनों के मामले में वृद्धि वर्ष 2007-12 और 2001-11 के दौरान वार्षिक औसत वृद्धि क्रमशः 4.0 और 5.9 प्रतिशत से आधी हुई है। इसी प्रकार केंद्र प्रायोजित NHM योजनाओं के फलस्वरूप 2001-11 में अवधि में खेती के अधीन क्षेत्रफल का महत्त्वपूर्ण विस्तार हुआ है। इसके अंतर्गत बहुत-सी बागवानी फसलें, जैसे फल और सब्जियां, मसाले, पादपरोपण फसलें औषधीय और सुवासित पादप, कंद और मूल, पुष्प आदि आते हैं। बहुत-सी महिला किसानों सहित लगभग 2.93 लाख किसानों को बागवानी के विभिन्न पहलुओं में प्रशिक्षित किया गया है। संकुल दृष्टिकोण के साथ अग्रानुबंधन और पश्चानुबंधन सुनिश्चित कर इस योजना ने उत्पादकों को समुचित प्रतिलाभ आश्वस्त करने के लिए उत्पादन, कटाई पश्च प्रबंधन, प्रसंस्करण और विपणन पर फोकस किया है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

तालिका 22.1 : खाद्य सुरक्षा मिशन का प्रभाव : 1991-2011/12

वर्ष	खाद्यान्न	चावल	गेहूँ	धान	दलहन	तिलहन
1990-91	176.4	74.3	55.1	162.1	14.3	18.6
2000-01	196.8	85.0	69.7	185.7	11.0	18.4
2005-06	208.6	91.8	69.4	195.2	13.4	28.0
2006-07 (NFSM पूर्व)	217.3	93.4	75.8	-	14.2	
2010-11	244.8	96.0	86.9	-	18.2	32.5
2011-12	250.4	102.8	88.3	233.1	17.3	-
वृद्धि दर						
1991-01	1.1	1.4	2.4	1.4	-2.6	-0.1
2001-11	2.2	1.2	2.2	-	5.2	5.9
2001-12	2.2	1.7	2.2	2.1	4.2	-
2006-12	3.1	1.9	4.1	3.0	4.3	-
2007-12	2.9	1.9	3.1	-	4.0	-

स्रोत : आर्थिक सर्वेक्षण 2010-11, तालिका A-17 और भारतीय कृषि की स्थिति पर रिपोर्ट 2011-12 (तालिका 4.1 पृ. 90)।

टिप्पणी :

(i) संवृद्धि दर बिंदुशः मूल्यों पर आधारित है और औसत वार्षिक है।

(ii) 2009-10 सूखे का वर्ष था। इसके उत्पादन आंकड़ों में बड़ी गिरावट थी।

MMA योजना राज्यों में कृषि विकास के लिए विशिष्ट हस्तक्षेप द्वारा केंद्रीय सहायता का संकेंद्रित व्यय सुनिश्चित करने के लक्ष्य से 2000-01 में प्रारंभ हुई। योजना में उन नए मानदंडों पर आधारित कोष आबंटित किए गए जिनमें राज्यों को ''सकल फसलयुक्त क्षेत्रफल'' और ''छोटे तथा सीमांत जोतों के अधीन क्षेत्रफल के लिए 100 प्रतिशत अनुदान के लिए चुना गया था। 2008-09 में MMA का संशोधन किया गया ताकि यह (i) राज्य में कृषि परिदृश्य के लिए अधिक सुसंगत हो और (ii) ''खाद्य सुरक्षा'' का बुनियादी उद्देश्य प्राप्त कर सके। इसके लिए फसल उत्पादन और प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन से संबंधित बहुत नई उपयोजनाएं भी स्वीकार की गईं।

ऋण, बीमा और सार्वजनिक निवेश : किसान साख ऋण कार्ड (KCC) योजना का प्रवर्तन वर्ष 1999 में हुआ। इसके फलस्वरूप कृषि सेक्टर में ऋण का प्रवाह बढ़ा। वित्त की अल्पकालिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अनौपचारिक सेक्टर से उधार लेने में पर्याप्त कमी आई। संस्थागत कृषि ऋण की उपलब्धता (GDP के प्रतिशत के रूप में) 2002-01 में 11.5 प्रतिशत से बढ़कर 2010-11 में 32.2 प्रतिशत हुई। इसके अलावा, 1999 में प्रारंभ की गई NAIS-योजना के अधीन 2010-11 तक कुल 176 मिलियन किसानों को बीमा सुरक्षा में सम्मिलित किया गया। फिर भी, दिए गए ऋण पर अध्ययन दिखाते हैं कि किसानों की संस्थागत ऋण की प्रणाली अभी भी ऐसे कारकों से पीड़ित है, जैसे (i) गैर किसान मैत्रीपूर्ण व्यवहार, (ii) ऋण वितरण में विलंब, और (iii) संपार्श्विक समस्याएं। बीमा पर किए गए अध्ययनों से प्रकट होता है कि इसके बीमाकृत राशि में भारी क्षेत्रीय और फसल पूर्वाग्रह है। GDP के प्रतिशत के रूप में कृषि में सार्वजनिक निवेश जो 2002-01 में 1.8 प्रतिशत के निम्न स्तर तक गिर गया था, 2006-07 में 3.7 प्रतिशत बढ़ा है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इस प्रकार, उपर्युक्त से स्पष्ट है कि वर्ष 2000 से ही क्रियान्वित विशेष योजनाओं में दशक मध्य से तेजी आयी है। इसके बावजूद इन प्रयासों के आलोचनात्मक मूल्यांकन से प्रकट हुआ है कि मिशन विधा प्रयासों में भी कम उत्पादन करने वाले जिलों की अवस्थिति विशिष्ट आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए महत्त्वपूर्ण रणनीतिक और अनुकूली अनुसंधान से संबंधित घटकों का अभाव रहा है। इस दिशा में कमी दूर करने के लिए सरकार ने 12वीं पंचवर्षीय योजना (2012-17) के लिए ''कृषि अनुसंधान और शिक्षा'' पर उपाय सुझाने के लिए विशेष कार्यदल का गठन किया था। दल की रिपोर्ट ने चार क्षेत्रों में अनुसंधान रणनीति का सुझाव दिया है : (i) प्रत्याशित चुनौतियों का समाधान कर प्रौद्योगिकी प्रवाह तेज करने के लिए अनुप्रयुक्त अनुसंधान में आधारभूत और रणनीतिक अनुसंधान सुदृढ़ करना, (ii) उन्नत प्रौद्योगिकी उत्पादन प्राप्त करने के लिए अनुसंधान समाकलन के विशेष कार्यक्रम प्रारंभ करना, (iii) साझेदारी विधा में कृषि के रूपांतरण सुकर बनाने के लिए प्रौद्योगिकियों का विस्तार करना, और (iv) विशेष प्रयासों द्वारा प्रमुख विस्तार कार्यक्रमों की सुलभता सुदृढ़ करना।

बोध प्रश्न 3

प्रश्न 2 से 7 का उत्तर लगभग 50 शब्दों में दीजिए।

1) रिक्त स्थान भरो –

क) आठवीं योजना अवधि (1992-97) के दौरान कृषि सेक्टर में संवृद्धि दर ..... प्रतिशत थी जो नौवीं योजना अवधि (1997-2002) के दौरान ....से ...... प्रतिशत हुई।

ख) दसवीं योजना अवधि (2002-07) के दौरान कृषि सेक्टर में संवृद्धि दर ...... प्रतिशत थी जो ग्यारहवीं योजना अवधि (2007-12) के दौरान .... से .... प्रतिशत हुई।

ग) भारतीय कृषि सेक्टर में उच्चतम वृद्धि दर ....वर्ष में थी और .....संवृद्धि दर...... प्रतिशत रिकार्ड की गई।

घ) 2001-09 की अवधि के दौरान उच्चतम कृषि संवृद्धि दर रिकार्ड करने वाले तीन राज्य .... और हैं। तीन राज्यों में क्रमशः ...., ... और .... प्रतिशत की संवृद्धि दर दर्ज की गई।

2) वे तीन मुख्य चालक क्या हैं जो अवधि 1992-2012 के दौरान (समग्र अर्थव्यवस्था वृद्धि दर की तुलना में) कृषि सेक्टर के अल्प निष्पादन के सापेक्ष के कारण हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

....

....

3) 2004 के बाद की अवधि के दौरान फल और बागवानी सेक्टरों में प्रारंभ किए गए पांच मुख्य मिशन विधा पहलों का उल्लेख कीजिए। विशेषकर 2011-12 में RKVY के अधीन प्रारंभ की गई नई उप परियोजनाएँ क्या थीं?

....

....

....

....

4) 2006 के बाद के वर्षों में किए गए उपायों के फलस्वरूप, मिशन विधा पहलों से क्या प्रमुख संवृद्धि प्रोफाइल निकाली जा सकती है?

....

....

....

....

5) दो नए मानदंड क्या हैं जिनके आधार पर MMA योजना के अधीन राज्य सरकारों को 100 प्रतिशत अनुदान प्रदान किया गया? वे दो उद्देश्य क्या थे जिनसे 2008-09 में MMA योजना संशोधित की गई थी?

....

....

....

....

6) 2000 के बाद के वर्षों में कृषि को संस्थागत ऋण की उपलब्धता में प्राप्त सुधार किस सीमा तक था? इसके बावजूद किस संबंध में इस दिशा में कमियां होने का उल्लेख किया गया?

....

....

....

....

7) सरकार ने बारहवीं योजना अवधि के दौरान मिशन विधा पहलों में कमियां दूर करने के लिए क्या विशेष पहल की? चार विषय क्या थे जिन पर इस संबंध में रणनीति सुझाई गई हैं?

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

....

....

22.5 सारांश

भारत सरकार द्वारा स्वतंत्रता प्राप्ति के समय से ही कृषि सेक्टर के कार्य निष्पादन सुधारने के लिए विभिन्न कृषि रणनीतियां अपनाई हैं। 1965 से पहले के वर्षों के दौरान भूमि सुधारों के प्रथम दौर और मृदा संरक्षण, सिंचाई, प्रौद्योगिकी प्रसार आदि जैसे उपाय थे। परंतु ये उपाय देश की बढ़ती हुई खाद्य आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अपर्याप्त थे। इस स्थिति से निपटने के लिए रणनीतिक नीति अनुक्रिया के रूप में सरकार ने हरित क्रांति उपायों का क्रियान्वयन अपनाया। 6-7 वर्षों के छोटे से अंतराल में इसने देश को अपना खाद्यान्न उत्पादन काफी बढ़ाने में सहायता की और देश खाद्य में आत्मनिर्भर बन गया। परंतु हरित क्रांति उपायों से पर्यावरण की दृष्टि से बहुत अधारणीय लक्षण उत्पन्न हुए। इसके अलावा इसके लाभ देश के बहुत से क्षेत्रों तक नहीं पहुंचे। इस स्थिति का सामना करने के लिए सरकार ने 1980 के दशक के दौरान बहुत-सी बाजार चालित नीतियां अपनाईं। इससे 1980 के दशक के दौरान कृषि GDP को सम्मानजनक 3 प्रतिशत वृद्धि करने में सहायता मिली। 1990 का अनुवर्ती दशक भारतीय कृषि के लिए मुख्यतया–आर्थिक उपायों के अंगीकरण के कारण अधिक चुनौतीपूर्ण था। इस अवधि के दौरान कृषि में सार्वजनिक निवेश में तेज गिरावट भी आई। इसके

अलावा, सरकार ने NAP-2000 के नाम से ज्ञात व्यापक कृषि नीति की घोषणा की। अन्य निर्देशों में (NAP) 2000 ने वर्ष 2020 तक 4 प्रतिशत के वार्षिक औसत से संवृद्धि करने की आवश्यकता पर बल दिया। अनुवर्ती वर्षों में बहुत सी मिशन विधा पहलें प्रारंभ की गई। इन पहलों के कारण 10वीं पंचवर्षीय के दौरान दर्ज की गई अल्प कृषि वृद्धि दर अनुवर्ती ग्यारहवीं योजना अवधि (5 वर्षीय औसत वृद्धि दर लगभग 3.5 होने पर) में उत्तर दिया गया था। यदि हम ग्यारहवीं योजना के अंतिम वर्ष (अर्थात् 2012) को शामिल नहीं करें तो सेक्टर ने 2007-11 के दौरान 3.9 प्रतिशत की दूसरी उच्चतम वृद्धि दर प्राप्त की थी (8वीं योजना अवधि के दौरान उच्चतम 4.8 प्रतिशत की तुलना में)। इस अवधि के दौरान सेक्टर के निष्पादन में अत्यधिक अंतरराज्य अंतर प्रकट हुए हैं। यद्यपि यह होना सामान्य है परंतु महत्त्वपूर्ण बात यह है कि बहुत से राज्यों ने 7 प्रतिशत अंक पार करने में सफलता प्राप्त की। सरकार के दृष्टिकोण में मुख्य लुप्त कड़ी की पहचान ''रणनीतिक और निदेशात्मक अनुसंधान'' के रूप में की गई। अब इस कमी को ठीक करने के लिए कदम उठाए गए हैं और आने वाले वर्षों के दौरान इसका सामना करने के लिए चौमुखी रणनीति का सुझाव दिया गया है।

22.6 शब्दावली

योजना : इसके दो घटक होते हैं: लक्ष्य निर्धारित करना और उन्हें प्राप्त करने के लिए अपेक्षित वित्तीय संसाधन प्रदान करना।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

रणनीतिक योजना : इसका संबंध लक्ष्यों सहित निर्धारित उद्देश्य प्राप्त करने के लिए समयबद्ध कार्य योजना से है। यह नियत लक्ष्य प्राप्त करने के मार्ग में आने वाली सभी संभव बाधाओं की संकल्पना करती है और प्रत्याशित बाधाओं से निपटने के लिए क्रियान्वयन में पर्याप्त समन्वय प्रदान करती है। इससे यह आबंटित वित्तीय संसाधनों के दक्ष व्यय पर फोकस करती है।

नई कृषि नीति : इसका संबंध वर्ष 2000 तक कृषि में 4 प्रतिशत औसत वार्षिक दर का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए व्यापक दृष्टिकोण के संबंध में सरकार की अनुक्रिया से है।

22.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1) Government of India, Agricultural Strategy for the eleventh Plan : Some Critical Issues, Planning Commission, New Delhi. [http://planningcommission.nic.in/aboutur/speech/spemsa/AgricutureStrategy.doc]

2) Government of India (2011)] Agricutural Research and aducation for the XII Five year Plan : 2012-17, Planning Commission, New Delhi.

(http://planningcommission.nic.in/aboutur/committeetwrkgrp12/agri/wgrep_research.pdf]

3) IARI, Agricultural Policy:Vision 2020, New Delhi [http://www.planningcommission.nic.in/reports/genrep/bkpap2020/24_bg2020.pdf]

4) State of Indian Agriculture:2011-12. [http://agricoop.nic.in/SIA111213312.pdf]

5) Vijay Paul Sharma (2011), India's Agricutural Development under the New economic Regime: Policy Perspective and Strategy for the 12th Five Year Plan, W.P.No. 2011-11-01, November 211, IIM, Ahmadabad. [http://www.iimahd.ernet.in/assests/snippets/workingpaperpdf/16179126012011-11-01.pdf]

22.8 बोध प्रश्नों के उत्तर/संकेत

बोध प्रश्न 1

1) देखिए भाग 22.1 और उत्तर दीजिए।

2) देखिए भाग 22.2 और उत्तर दीजिए।

3) देखिए उपभाग 22.2.1 और उत्तर दीजिए।

4) देखिए उपभाग 22.2.1 और उत्तर दीजिए।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

5) देखिए उपभाग 22.2.1 और उत्तर दीजिए।

6) देखिए उपभाग 22.2.1 और उत्तर दीजिए।

7) देखिए उपभाग 22.2.1 और उत्तर दीजिए।

8) देखिए उपभाग 22.2.2 और उत्तर दीजिए।

9) देखिए उपभाग 22.2.2 और उत्तर दीजिए।

10) देखिए उपभाग 22.2.2 और उत्तर दीजिए।

11) देखिए उपभाग 22.2.2 और उत्तर दीजिए।

बोध प्रश्न 2

1) देखिए भाग 22.3 और उत्तर दीजिए।

2) देखिए उपभाग 22.3.1 और उत्तर दीजिए।

3) देखिए उपभाग 22.3.2 और उत्तर दीजिए।

4) देखिए उपभाग 22.3.2.1 और उत्तर दीजिए।

5) देखिए उपभाग 22.3.2.2 और उत्तर दीजिए।

6) देखिए उपभाग 22.3.2.5 और उत्तर दीजिए।

7) देखिए उपभाग 22.3.2.6 और उत्तर दीजिए।

8) देखिए उपभाग 22.3.2.7 और उत्तर दीजिए।

9) देखिए उपभाग 22.3.2.8 और उत्तर दीजिए।

10) देखिए उपभाग 22.3.2.8 और उत्तर दीजिए।

बोध प्रश्न 3

1) क) से घ) तक देखिए भाग 22.4 और उत्तर दीजिए।

2) देखिए उपभाग 22.4.1 और उत्तर दीजिए।

3) देखिए उपभाग 22.4.2 और उत्तर दीजिए।

4) देखिए उपभाग 22.4.2 और तालिका 22.1 और उत्तर दीजिए।

5) देखिए उपभाग 22.4.2 और उत्तर दीजिए।

6) देखिए उपभाग 22.4.2 और उत्तर दीजिए।

7) देखिए उपभाग 22.4.2 और उत्तर दीजिए।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इकाई 23 कृषि कराधान, साहाय्य और बीमा

संरचना

23.0 उद्देश्य

23.1 प्रस्तावना

23.2 करों के प्रकार

23.2.1 एकमुश्त कर

23.2.2 प्रति इकाई कर

23.2.3 मूल्यानुसार कर

23.2.4 उत्पादकों की आय पर कर

23.3 कृषि आय के लिए कर नीति

23.4 साहाय्य

23.4.1 साहाय्यों का औचित्य

23.4.2 साहाय्यों के प्रकार

23.4.3 अंतर्राष्ट्रीय प्रोफाइल

23.5 कृषि बीमा

23.6 सारांश

23.7 शब्दावली

23.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

23.9 बोध प्रश्नों के उत्तर/संकेत

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

23.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद, आप :

- भिन्न-भिन्न प्रकार के करों और उत्पादों तथा कीमतों पर उनके प्रभाव स्पष्ट कर सकेंगे;
- कृषि आय पर कर नीति के मुख्य मुद्दों पर चर्चा कर सकेंगे तथा इन मुद्दों से निपटने के लिए प्रस्ताव दे सकेंगे;
- कृषि साहाय्यों की संकल्पना, तर्काधार और प्रकारों का वर्णन कर सकेंगे;
- साहाय्यों के विरुद्ध दिए गए तर्कों का उल्लेख कर सकेंगे तथा कृषि साहाय्यों का अंतर्राष्ट्रीय प्रोफाइल प्रस्तुत कर सकेंगे;
- कृषि बीमा की सुस्पष्ट विशेषताएँ बता सकेंगे; और
- भारत में क्रियान्वित की जा रही कृषि बीमा की मुख्य विशेषताएँ बता सकेंगे।

23.1 प्रस्तावना

सरकार करों के माध्यम से लोगों से रुपए एकत्र करती है। साहाय्यों के माध्यम से यह जरूरतमंदों को धन का अंतरण भी करती है। इसलिए यह आवश्यक नहीं है कि जो लोग कर देते हैं, वे साहाय्यों से लाभान्वित हों। साहाय्य इस तरीके से लोगों को अंतरित किए जाते हैं, जिससे असमानता की समस्या का समाधान हो। इसके अलावा, कराधान द्वारा सरकार सार्वजनिक महत्त्व की सेवाओं (जैसे, सड़क, बाजार, उपयोगिता सेवाओं आदि) पर अपने विभिन्न अन्य व्यय के वित्त पोषण के लिए आय उत्पन्न करती है। यह दक्ष आर्थिक कार्यकरण के लिए आवश्यक महत्त्वपूर्ण आधारभूत सेवाएं प्रदान करता है। इस प्रकार, कर और साहाय्य, एक ओर ''सामाजिक न्याय'' के लिए समता के दोहरे उद्देश्य प्राप्त करने और दूसरी ओर, माल और सेवाओं के उत्पादन के लिए निवेश आकर्षित करने का बुनियादी माध्यम प्रदान करने के लिए सरकार द्वारा प्रयुक्त दो साधन हैं। यद्यपि ये करों और साहाय्यों के दो प्रत्यक्ष उद्देश्य हैं, परंतु उगाही किए गए करों के स्तर का उत्पादन के स्तर पर प्रभाव होता है। यदि कर बहुत भारी और बोझिल हैं तो उत्पादक उत्पादन करने का प्रोत्साहन खो देंगे। यह निम्न वृद्धि से अर्थव्यवस्था को रोक देगा, इसके परिणाम में बेरोजगारी जैसी मुश्किलें उत्पन्न होंगी। इसके अलावा, प्रायः कीमतों और मांग के घट-बढ़ से उत्पन्न होने वाली अप्रत्याशित परिस्थितियों के कारण उत्पादकों को हानि हो सकती है। यहां पर उत्पादों को उनकी हानि में से कुछ क्षतिपूर्ति करने के लिए बीमा सहायता के लिए आता है। करों, साहाय्यों और बीमा की अन्यान्यक्रिया साधारणतया आर्थिक प्रणाली के दक्ष कार्यकरण निर्धारित करती है। इस इकाई में, हम पहले करों के विभिन्न प्रकारों और कीमतों तथा उत्पादन पर उनके प्रभावों पर विचार करेंगे। फिर हम सरकार की कृषि कर नीति पर सरसरी तौर पर चर्चा करेंगे। तद्नुपरांत कृषि साहाय्य के तर्काधार और इसके भिन्न-भिन्न प्रकारों और अंतर्राष्ट्रीय तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य में यह किस प्रकार दिखता, पर चर्चा करेंगे। अंत में, कृषि बीमा (कृषीत्तर उत्पादों से भिन्न) की विशेषता विनिर्दिष्ट करने में की गई चर्चा के संदर्भ में हम भारत में प्रचालित भिन्न-भिन्न कृषि बीमा प्रकारों पर विचार करेंगे। उपर्युक्त रूपरेखा के अनुसार कराधान और साहाय्य नीतियों के नियत उद्देश्य से यह स्पष्ट है कि सरकार को अपनी कर नीतियां इस प्रकार बनानी चाहिएं कि यह आर्थिक वृद्धि और सामाजिक कल्याण के लिए सहायक हो। इस दृष्टि से हम इकाई में विश्लेषण करेंगे : क्या भारत में सरकार ने कृषि सेक्टर के विकास के लिए कराधान और साहाय्य साधनों का प्रयोग दक्षतापूर्वक किया है?

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

23.2 करों के प्रकार

साधारणतया करों के चार प्रकार हो सकते हैं। ये हैं : (i) एकमुश्त कर; (ii) (उत्पादकता) प्रति इकाई कर; (iii) मूल्यानुसार कर; और (iv) लाभ कर। इस भाग में हम विश्लेषण करेंगे कि इनमें से प्रत्येक कर उत्पादक के उत्पाद और मूल्य निर्णयों को कैसे प्रभावित करते हैं। हम पूर्णतः प्रतिस्पर्धी बाजार की कल्पना कर रहे हैं। इसका आशय है कि अकेला एक उत्पादक बाजार में कीमत प्रभावित नहीं कर सकता है क्योंकि वह पूरे बाजार की तुलना में बहुत छोटा है। दूसरा, उत्पाद में कोई भिन्नता नहीं है, अर्थात् उत्पादक द्वारा बेचा गया उत्पाद किसी

अन्य उत्पादक के उत्पाद के समरूप है। पूर्णतः प्रतिस्पर्धी बाजार में, उत्पादक (इस मामले में किसान) कीमत ग्रहणकर्त्ता है क्योंकि वह विद्यमान बाजार कीमत स्वीकार करता है। विद्यमान कीमत पर वह जितना चाहे, उतना बेच सकता है। दूसरी ओर, यदि उत्पादक को एकाधिकार शक्ति प्राप्त है तो वह आपूर्ति सीमित कर बाजार कीमत को प्रभावित कर सकता है। भारतीय कृषि के मामले में, यदि हम किसानों को पर्याप्त प्रतिलाभ सुनिश्चित करने के लिए लाभकारी कीमतें नियत करने के बारे में सरकार के हस्तक्षेप की उपेक्षा करते हैं, तो बाजार पूरा प्रतिस्पर्धी स्थिति का सामना करता है। ऐसे किसान बहुत हैं जिनमें से प्रत्येक बाजार को कुल आपूर्ति की नगण्य मात्रा आपूर्ति करते हैं। इसके अलावा, उत्पाद अधिकांशतः स्वरूप में एक जैसे होते हैं। इसलिए कोई भी अकेला किसान बाजार भाव को प्रभावित करने की स्थिति में नहीं होता।

23.2.1 एकमुश्त कर

एकमुश्त कर उत्पादित उपज के स्तर पर ध्यान दिए बिना उत्पादकों पर लगाया जाता है। उदाहरण के लिए, किसान-उत्पादक को 1000 रुपए कर के रूप में देना आवश्यक हो सकता है, भले ही, उसने कितनी भी अधिक मात्रा में उपज पैदा की हो। इस मामले में यद्यपि कर से उत्पादक की लागत बढ़ जाती है, परंतु यह स्थिर लागत है। हमें विदित है कि यद्यपि स्थिर लागत उत्पादन में लागत में जुड़ती है, परंतु यह वह लागत नहीं है जिस पर उत्पादित की जाने वाली कृषि उपज के स्तर पर किसान द्वारा निर्णय लिया जाता है। वह तो सीमांत लागत है जिसे उत्पादक द्वारा ध्यान में रखा जाता है। चूंकि सीमांत लागत किसान पर एकमुश्त लगाए गए कर द्वारा अप्रभावित होता है, इसलिए यह तब तक इसके उत्पादन निर्णय को प्रभावित नहीं करता है, जब तक यह बहुत अधिक नहीं होता है। परंतु बहुत अधिक एकमुश्त कर उत्पादन के लिए निरुत्साहन के रूप में कार्य करता है और उत्पादक के लाभ स्तर में पर्याप्त कमी कर सकता है। इस प्रकार सामान्य दृष्टि से एकमुश्त कर व्यक्तिशः किसान का उत्पाद स्तर प्रभावित नहीं करता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

23.2.2 प्रति इकाई कर

प्रति इकाई कर उत्पादित उपज की इकाइयों पर कर के रूप में लगाया जाता है। उदाहरण के लिए, उपज की प्रत्येक इकाई के लिए उत्पादक को 5 रुपये सरकार को देने आवश्यक हो सकते हैं। इस मामले में, उत्पादक कितना कर देता है, यह उत्पाद के स्तर पर निर्भर करता है। प्रति इकाई कर उत्पाद की अतिरिक्त इकाई (अर्थात् सीमांत लागत) उत्पादन करने की लागत को प्रभावित करता है, जो उत्पाद का स्तर निर्धारित करने में उत्पादक के लिए महत्त्वपूर्ण होता है। जिसके बाद कोई अधिक इकाई उत्पादित करना उसके लिए लाभकारी नहीं होता है। यह रेखाचित्र द्वारा (चित्र 23.1) दर्शाया जा सकता है जहां उत्पादित उपज की मात्रा क्षैतिज अक्ष के साथ निरूपित की गई है और कीमत/लागत ऊर्ध्व अक्ष पर मापी गयी है।

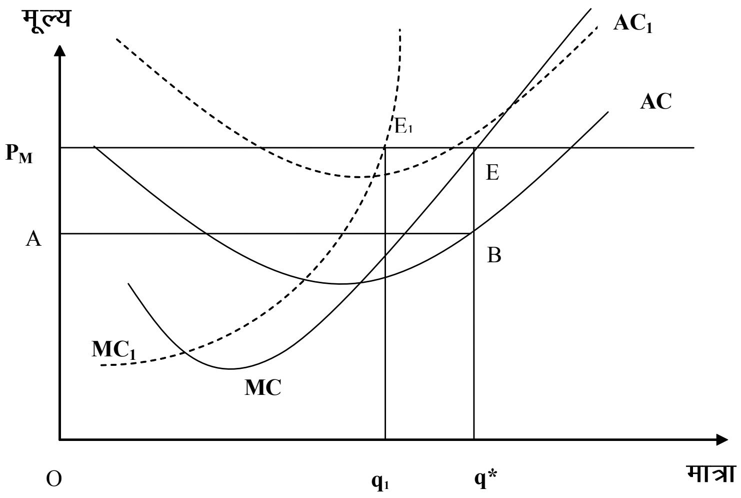

चित्र 23.1 : प्रति इकाई कर का प्रभाव

बाजार कीमत (P_M) इस कल्पना पर क्षैतिज सीधी रेखा के रूप में दिखाई गई है कि कम-से-कम अल्प समय के दौरान कीमतें पर्याप्त रूप से स्थिर रहती हैं। AC वक्र रेखा उत्पादन की औसत लागत और MC वक्ररेखा उत्पादन की सीमांत लागत सूचित करता है। यद्यपि AC को ''उत्पादित उपज की इकाइयों की संख्या द्वारा विभाजित कुल लागत'' के रूप में परिभाषित किया गया है। MC ''कुल लागत (वक्र रेखा के ''ढलान'' द्वारा प्रदत्त) में परिवर्तन की दर'' मापता है, यदि उत्पादक उपज का स्तर बढ़ाने का निर्णय करता है। उत्पादक का संतुलन उपज के उस स्तर पर है जहां MC और P_M का काट है जो बिंदु E पर हो रहा है। रेखा Eq* क्षैतिज अक्ष पर लंब है। इससे हमें उत्पाद का संतुलन स्तर Oq* मिलता है। उत्पाद के इस स्तर पर लाभ प्रति इकाई (जो औसत लागत तथा कीमत के बीच अंतर है) EB है। कुल अर्जित लाभ EB × Oq* = $ABEP_M$ का क्षेत्रफल है। यदि उत्पादित उपज ऐसे स्तर पर है जहां MC < P_M (अर्थात् E के बाईं ओर) पर हो, वहां अनप्रयुक्त संभावना होती है जिसे उच्चतर आगम या लाभ अर्जित करने के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में, उत्पादन की लागत प्रतिकूल रूप से बढ़ाए बिना अधिक इकाई उत्पादित कर लाभ बढ़ाया जा सकता है। दूसरी ओर, उत्पाद के स्तर पर जहां MC > P_M (अर्थात् E की दाहिनी ओर), उत्पादक q तक उत्पाद का स्तर कम कर अपनी रणनीति संशोधित करने के लिए बाध्य हो जाता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

प्रति इकाई कर लगाने से सीमांत और औसत लागत वक्र रेखाएं MC_1 और AC_1 तक ऊपर की ओर (उठ) जाएंगी। यह कटान बिंदु (P_M और MC_I के बीच) में E_1 (जो E के बाएं है) जाने से होता है। इस प्रकार, जब कर उत्पाद की प्रति इकाई के आधार पर लगाया जाता है, इससे उत्पाद स्तर में गिरावट आती है और परिणामतः उत्पादक का लाभ गिर जाता है।

23.2.3 मूल्यानुसार कर

मूल्यानुसार कर उत्पाद स्तर पर नहीं लगाया जाता है बल्कि बाजार में वसूल की गई कीमत पर लगाया जाता है। माना कि मूल्य रेखा '' P_M'' द्वारा दिखाई गई है। तब कर 't' लगाने के बाद कीमत (जो उत्पादक द्वारा प्राप्त की गई

है), $(1-t) \times P_M$ है। इस मामले में, यद्यपि दो लागत वक्र रेखाओं में परिवर्तन नहीं है। मूल्य रेखा P_M नीचे की ओर $(1-t) \times P_M$ तक जाती है। परिणामतः करोत्तर स्थिति में उत्पाद के लाभ में ह्रास है।

23.2.4 उत्पादकों की आय पर कर

उत्पादकों की आय उनके द्वारा अर्जित लाभ है जो कुल आगम ऋण कुल लागत के बराबर है। यदि लाभ का कर 't' प्रति इकाई लगाया जाता है, तब उत्पादक के पास लाभ का करोत्तर अंश रहता है जैसे $(1-t) \times$ लाभ। इस प्रकार यह कर लगाते समय उत्पाद का स्तर प्रभावित होने नहीं जा रहा है। परंतु उत्पादक की आय गिरती है। यदि यह कुछ न्यूनतम स्तर से नीचे गिरती है तो वह उत्पादन पैदा करने का प्रोत्साहन खो सकता है और उत्पादन पूरी तरह से बंद कर सकता है। दूसरे शब्दों में, उत्पादित उपज शून्य तक गिर सकती है। यह मामला 23.2.1 में उल्लिखित एकमुश्त कर मामले की समान है।

बोध प्रश्न 1

नीचे रिक्त स्थान में अपना उत्तर लगभग 50 शब्दों में दीजिए।

1) करों और साहाय्यों के दोहरे उद्देश्य क्या हैं? करों के स्तर को इष्टतम स्तर पर रखना क्यों आवश्यक है?

....

DIKSHANT IAS

....

Call us @7428092240

....

....

2) क्या आप सहमत हैं कि भारत में कृषि बाजार पूर्णतः प्रतिस्पर्धी है? क्यों?

....

....

....

....

3) एकमुश्त कर क्या है? क्या कर के इस प्रकार का उत्पादक किसान के उत्पाद स्तर पर कोई गंभीर प्रभाव होता है?

....

....

....

....

4) किस तरीके में ''औसत लागत'' ''सीमांत लागत'' से भिन्न है? इन दोनों

में से किसान-उत्पादक द्वारा उत्पादित किया जाने वाला उत्पाद का स्तर कौन निर्धारित करता है?

....

....

....

....

5) प्रति इकाई कर का भार दो लागत वक्र रेखाओं को कैसे प्रभावित करता है? इसके दो परिणाम क्या हैं?

....

....

....

....

6) मूल्यानुसार कर क्या है? ''मूल्य रेखा'' पर इस प्रकार के कर का क्या प्रभाव है? यह उत्पादक को कैसे प्रभावित करता है?

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

....

....

7) शब्द ''लाभ'' की परिभाषा कीजिए। किसान-उत्पादक के लाभ के स्तर पर कर के प्रभाव बताइए। किस तरीके से इस कर के उच्च स्तर का प्रभाव एकमुश्त कर के समान होता है?

....

....

....

....

23.3 कृषि आय के लिए कर नीति

भारत में श्रम बल का बहुत बड़ा वर्ग अपनी आजीविका के लिए कृषि पर आश्रित बना हुआ है, परंतु कृषि से प्रति व्यक्ति आय अभी भी कम बनी हुई है। अर्थव्यवस्था की समग्र प्रति व्यक्ति आय की तुलना में कृषि से प्रति व्यक्ति आय कम ही है। वैसे भारत में प्रति व्यक्ति आधार पर ''कृषि श्रमिकों की आय भी समय के चलते बढ़ रही है। कृषि में निम्न प्रति व्यक्ति आय सापेक्ष निम्न कृषि

उत्पादकता के कारण है जिसे आप पहले ही इकाई 13 (उपभाग 13.4.1) में अध्ययन कर चुके हैं। स्मरण करने के लिए इस स्थिति के सहायक कुछ निश्चित कारक हैं : (i) छोटे और सीमांत वर्ग की विशाल संख्या द्वारा धारित जोतों के छोटे आकार, (ii) निजी पूँजी निवेश के लिए छोटे किसानों की कम क्षमता, (iii) संस्थागत ऋण की अपर्याप्त उपलब्धता, आदि। परिणामस्वरूप इस सेक्टर की निम्नलिखित लक्षणों से पहचान बनी रही : (i) अल्परोजगार का उच्च स्तर (अर्थात् कामगार उससे अपेक्षाकृत बहुत कम काम पाते हैं जितना वे करने में सक्षम हैं), (ii) भूमि का समताहीन वितरण, (iii) कम मज़दूरी आदि। इस स्थिति में कृषि आय के कराधान का विषय विवादास्पद रहा है। सेक्टर से आय पर कर लगाने पर कोई स्पष्ट नीति न होने की स्थिति के परिणामस्वरूप सरकार को निवेश योग्य अधिशेष की हानि हो रही है। दो प्रमुख मुद्दों का, जिनके कारण कृषि करों पर नीति निरूपण में बाधा उत्पन्न हुई है, निर्धारण निम्न प्रकार हो सकता है:

कृषि आय : शब्द की परिभाषा फार्म सेक्टर कार्यों से (प्रसंस्करण अवस्था से पूर्व) अर्जित आय के रूप में किया गया है। इस प्रकार प्रसंस्करण अवस्था से आगे आय को सही ढंग से कृषीत्तर आय के रूप में माना जाता है जबकि फार्म हाऊस से आय (भले ही यह कृषीत्तर प्रयोजनों के लिए प्रयुक्त किया जाता हो) कृषि आय के रूप में मानी जाती है। इस प्रावधान से धनी जमींदारों द्वारा अपने उपयोग के लिए भूमि का उपयोग बताकर कर वंचना की गुंजाइश होती है। साधारणतया द्वितीयक कार्यों, जैसे मिट्टी हटाना, खुदाई आदि सहित भूमि पर (जैसे खेती, फसल उगाई) सभी बुनियादी कार्यों से आय को कृषि आय समझा जाता है और कर से छूट होती है। परंतु वृक्षों की बिक्री, पशुओं के प्रजनन, मत्स्य पालन कार्यों, कुक्कट पालन से आय को भी कृषि आय के रूप में वर्गीकृत किया गया है। पिछले वर्षों के दौरान इस तथ्य के कारण कि कृषि राज्य का विषय है, कृषि कराधान पर निर्णय बहुत से राजनीतिक/क्षेत्रीय कारकों के दबाव में रहा है। कुछ राज्यों में केवल भूमि कर समाप्त कर दिया गया है, तो अन्य राज्यों की अवस्था लगभग ऐसा ही है (क्योंकि कई वर्षों से कराधान की दर संशोधित नहीं की गई है)। इन संकल्पनात्मक और नीतिगत कमियों को ध्यान में रखते हुए कृषि आय और उसके कराधान का मुद्दा बहुत से छोटे और सीमांत किसानों की कीमत पर बड़े किसानों को लाभ देता जा रहा है, जबकि प्रत्येक सेक्टर को कराधान तथा निजी निवेश द्वारा अपने लिए निवेश योग्य अधिशेष उत्पन्न करना चाहिए। इसने सामान्यतया भारतीय कृषि विकास को, और विशेष रूप से छोटे और सीमांत किसानों को, प्रभावित किया हुआ है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

कृषि में लगान आय: कृषि से आय पर कर लगाने से संबंधित विवादास्पद मुद्दा स्वयं खेती नहीं की गई भूमि से 'लगान' आय का है। यद्यपि भारत में काश्तकारी व्यापक रूप से प्रचलित है फिर भी जो जमींदार भूमि को पट्टे पर देते हैं, वे काफी समृद्धशाली और प्रभावशाली होते हैं। अतः लगान आय को छूट देने की नीति का कोई औचित्य नहीं है। सरकार की कृषि कर नीति की इस कमी को महसूस करते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय दिया था कि उन व्यक्तियों द्वारा कृषि कार्यों से अर्जित आय पर कर लगाया जाना चाहिए जो प्रत्यक्ष रूप से स्वयं उत्पादन कार्य से जुड़े हुए नहीं हैं। इस स्थिति का सामना

करने के लिए कृषि को प्रत्यक्ष कर के अंतर्गत लाने के लिए प्रयास किए गए हैं। इनमें निम्नलिखित शामिल हैं :

क) **स्वामित्व के आधार पर भूमि पर कर लगाना** – यह तर्क देते हुए कि सीमांत और छोटे किसानों को कर से छूट होनी चाहिए, यह प्रस्ताव कर लगाने के मानदंड के रूप में भूमि के स्वामित्व पर बल देता है। संक्षेप में, प्रस्ताव सभी दूरवासी जमींदारों को कर के दायरे में लाने का प्रयास करता है।

ख) **कृषि आय के रूप में बताई गई कृषीत्तर आय** – रिपोर्टिंग की इस समस्या से निपटने के लिए प्रस्ताव में तर्क दिया गया है कि भूमि पर कर उस पर उगाई गई फसलों के स्वरूप के अनुसार लगाया जाना चाहिए। जहां कहीं फसल कार्यों के लिए इसे प्रयुक्त नहीं किया गया है, उसके प्रयोग को ध्यान न रखते हुए भूमि कर लगाने का प्रस्ताव किया गया है। यह भी विवाद है कि इस प्रकार का कर मृदा की संभावित उर्वरता के आधार पर होना चाहिए, मृदा जितनी अधिक उर्वर हो, उतना अधिक कर लगाया जाना चाहिए। इससे जुड़ा हुआ सुझाव है कि ऐसी भूमि की तुलना में, अधिक कीमती फसलों वाली भूमि पर उच्चतर दर से कर लगाया जाना चाहिए, जिसमें अलाभकारी फसल उगाई जाती हैं।

उपर्युक्त विषयों पर वाद-विवाद पिछली कुछ दशाब्दियों से चला आ रहा है, कृषीत्तर प्रयोजनों के लिए कृषि भूमि का उपयोग, जैसे विशाल फार्म हाऊस, होटल, पर्यटन, अन्य औद्योगिक प्रयोजन आदि पर कर से छूट लेने का प्रयास अभी जारी है। दूसरे शब्दों में, छोटे और सीमांत किसानों की गरीबी के साथ-साथ धनी किसान फसल कार्यों में प्रयुक्त नहीं की गई अपनी भूमि से अर्जित आय से कर छूट का लाभ भोग रहे हैं। इस स्थिति से नीति की त्रुटियां स्पष्ट होती हैं। यह सत्य है कि औसत भारतीय किसान दुर्बल वर्ग का सदस्य है और उसे कर लाभ प्रदान किए जाने चाहिए। परंतु ये लाभ कृषि आय संबंधी नीतिगत कमियों के कारण अधिकतर अपात्र को जाता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

23.4 साहाय्य

साहाय्य कर का विपरीत है। कर किसानों की आय घटाता है तो दूसरी ओर, आदान और कीमतों पर साहाय्य किसानों की आय बढ़ाता है। यह आदान अधिक सस्ता बनाकर अप्रत्यक्ष रूप से तथा उत्पाद लाभकारी बनाकर प्रत्यक्ष रूप से लाभ बढ़ाता है। हम प्रचलित कृषि साहाय्यों के औचित्य और प्रकारों पर चर्चा द्वारा देखेंगे यह कैसे होता है।

23.4.1 साहाय्यों का औचित्य

भारत जैसी कृषि संबंधी अर्थव्यवस्था में, जहां छोटे और सीमांत प्रकार के किसानों की बहुत बड़ी संख्या है, कृषि साहाय्य का औचित्य आसानी से समझा जा सकता है। बहुत से किसानों की आय जीवन निर्वाह के स्तर के समीप है, इसलिए साहाय्य उन्हें उत्पादन और उपभोग कार्यों के निर्वहन में लगाए रखता है। यद्यपि साहाय्य के लिए यह आधारभूत तर्काधार है, फिर भी कई अन्य उद्देश्य हैं जिनसे किसानों को साहाय्य दिए जाते हैं।

क) **उत्पादकता वृद्धि** : बीज, उर्वरक, कीटनाशक, जल, विद्युत आदि आदानों पर साहाय्य किसानों के लिए आदानों को अधिक सस्ता बनाता है। इसके फलस्वरूप किसानों के लिए प्रति इकाई उत्पादन की लागत कम होती है। इसलिए उत्पादकता स्तर बढ़ाने में इसका प्रभाव होता है।

ख) **प्रौद्योगिकी का संवर्धन** : उन्नत आदानों और प्रौद्योगिकी के प्रवर्तन के लिए सरकार साहाय्य प्राप्त फार्म मशीनरी (जैसे हार्वेस्टर, ट्रैक्टर, सिंचाई यंत्र) या तो सीधे या कम ब्याज दरों पर दिए गए बैंक ऋण के माध्यम से प्रदान कर सकती है। इससे प्रौद्योगिकी प्रयोग के प्रोत्साहन में सहयता मिलती है।

ग) **आधारभूत संरचना विकास** : कुछ फसलों के उत्पादन को प्रोत्साहित करने के लिए सरकार द्वारा कीमत और अन्य साहाय्यों का विस्तार किया जा सकता है। यह निम्नलिखित रूप से हो सकता है : (i) तैयार फसल विपणन के लिए सस्ती परिवहन व्यवस्था, (ii) भंडारण सुविधाओं की स्थापना, (iii) उच्चतर प्रापण मूल्य देना, आदि। खास फसलों के संवर्धन के अलावा, इस प्रकार के साहाय्यों से क्षतियां कम कर और लाभ बढ़ाकर किसानों का प्रतिलाभ सुधारने में अप्रत्यक्ष प्रभाव होता है।

घ) **निर्यात संवर्धन** : निर्यात के लिए उत्पादन करने के लिए साहाय्य प्रदान किया जा सकता है। इस प्रकार का साहाय्य किसान को विश्व बाजार में अधिक प्रतिस्पर्धी होने में सहायक होता है। यह उन्हें विश्व बाजार का अधिक बड़ा भाग प्राप्त करने में भी सहायक होता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

23.4.2 साहाय्यों के प्रकार

साहाय्यों के कई प्रकार हो सकते हैं जिनमें से प्रत्येक का उद्देश्य निश्चित प्रयोजन प्राप्त करना है। यहां हम उन पर संक्षेप में चर्चा करेंगे।

क) **आदान साहाय्य** : साहाय्य बाजार कीमत की तुलना में कम कीमत पर आदानों के वितरण द्वारा प्रदान किया जा सकता है। आदान साहाय्य प्रति इकाई साहाय्य की भांति है क्योंकि ये उत्पादन की प्रति इकाई लागत को नीचे लाता है। इसलिए ऐसे साहाय्य का प्रभाव सीमांत और औसत लागत पर होगा, इससे लाभ में वृद्धि होगी। ये किसानों को अधिक उत्पादन करने के लिए भी प्रेरित करते हैं, जिससे कृषि माल की कीमत घटती है। कई प्रकार के साहाय्य इस श्रेणी में सूचीबद्ध किए जा सकते हैं।

i) **उर्वरक साहाय्य** : यह किसानों को सस्ते रासायनिक (या अरासायनिक) उर्वरकों के वितरण द्वारा दिए जाते हैं। यह विनिर्माताओं को भी अपनी लागत कम करने के लिए राहत के रूप में भी दिया जाता है ताकि वे अपनी कीमतें कम रखें। इसलिए इस प्रकार का साहाय्य सुनिश्चित करता है : (क) किसानों को सस्ता आदान; (ख) विनिर्माता को युक्तियुक्त प्रतिलाभ, (ग) उर्वरक की कीमतों में स्थिरता, और (घ) उर्वरक की नियमित आपूर्ति (अर्थात् उपलब्धता)। कुछ मामलों में इस किस्म का साहाय्य उर्वरक के आयात पर सीमा शुल्क हटाकर दिया जाता है।

ii) **सिंचाई साहाय्य** : किसानों को सिंचाई सुविधा सुनिश्चित करने के

लिए सरकार द्वारा वहन की गई लागत है। यह प्रति इकाई प्रचालन और सिंचाई की आधारभूत संरचना के अनुरक्षण लागत तथा किसान से वसूल किया गया वास्तविक प्रति इकाई सिंचाई प्रभार के बीच अंतर है। सरकार नहरों और बांधों का निर्माण कर इस प्रकार की साहाय्य का वहन करती है और किसानों को दी गई सिंचाई सुविधा के लिए कम कीमत वसूलती है।

iii) **विद्युत साहाय्य** : यह स्वरूप में सिंचाई साहाय्य के समान है। इसका संबंध विद्युत सृजन और वितरण की प्रति इकाई लागत तथा उसके उपयोग के लिए किसानों से वसूली गई कीमत के बीच अंतर से है। ऐसे साहाय्य का उद्देश्य किसानों को पम्पसेट, बेध कूप (bore well) आदि में निवेश करने के लिए प्रोत्साहित करना है।

iv) **बीज साहाय्य** : इसका संबंध किसानों को कम कीमत पर सरकार द्वारा उच्च उपज देने वाले बीज प्रदान करने से है। इसमें ऐसे बीजों का उत्पादन करने के लिए अनुसंधान और विकास (R&D) में निवेश भी शामिल है।

v) **ऋण साहाय्य** : इसका संबंध किसानों से लिए गए ब्याज और ऋण देने की वास्तविक लागत के बीच अंतर से है। इसमें अन्य लागतें, जैसे डूबी रकम को बट्टे खाते में डालना, प्रशासनिक व्यय आदि भी शामिल हैं। सरकार इस प्रकार से साहाय्य प्रदान कर सकती है : (क) विशेष रूप से कृषि ऋण देने के लिए ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक बैंक स्थापित करने पर आवर्ती व्यय द्वारा, (ख) ब्याज की कम दर लगाकर, (ग) ऋण की शर्तों में ढील देकर, जैसे सहवर्ती आवश्यकताएं आदि।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

ख) **कीमत साहाय्य** : यह उन कीमतों के बीच अंतर है जिस कीमत पर सरकार किसानों से खाद्यान्न खरीदती है तथा जिस कीमत पर PDS के माध्यम से वितरित करती है। इस किस्म का साहाय्य सरकार द्वारा बाजार भाव कम होने पर किसानों को हानि से बचाने के लिए दिया जाता है। इस प्रकार की स्थिति में सरकार किसानों से बाजार भाव की अपेक्षा अधिक कीमत पर खरीदती है। इस किस्म का साहाय्य मूल्यानुसार कर के विपरीत है (जिसका उत्पाद और लाभ पर परिवर्तक प्रभाव होता है) क्योंकि यह किसान का लाभ बढ़ाता है और उन्हें अधिक उत्पादन करने के लिए प्रेरित कर सकता है।

ग) **आधारभूत संरचना, विकास और फसल संवर्धन** : कृषि कार्यों के दक्षतापूर्वक प्रचालन के लिए अच्छी सड़कें, शीत भंडारण की सुविधाएं, विद्युत की नियमित आपूर्ति, बाजार सूचना सेवा, परिवहन सेवाएं आदि महत्त्वपूर्ण हैं। ऐसी सार्वजनिक सेवाओं की स्थापना का व्यय केवल सरकार द्वारा वहन किया जाता है। ऐसी सार्वजनिक सेवाओं की लागत भी बहुत अधिक होती है जिसे केवल सरकार द्वारा वहन किया जा सकता है। ऐसी सेवाएं ''सार्वजनिक माल'' के प्रभाव क्षेत्र हैं क्योंकि ऐसी सुविधाओं का लाभ उस क्षेत्र में सभी किसानों को मिलता है। इसलिए ऐसा निवेश किसानों को उनकी क्षतियां न्यूनतम कर अप्रत्यक्ष साहाय्य प्रदान करना है जो अन्यथा ऐसी महत्त्वपूर्ण सेवाओं के अभाव में किसानों के लिए बहुत अधिक हो सकती है।

घ) **निर्यात साहाय्य** : इस किस्म का साहाय्य किसानों को निर्यात बाजार के लिए उत्पादन प्रोत्साहन करने के लिए दिया जाता है। ये विदेशी मुद्रा अर्जित करने में सहायता करते हैं। जैसाकि हमने पहले नोट किया है कि निर्यात संवर्धन करना महत्त्वपूर्ण है ताकि हम कृषि में अपनी प्रतिस्पर्धात्मक स्थिति का लाभ ले सकें और विश्व बाजार में स्थान प्राप्त कर सकें। इसलिए सरकार द्वारा साहाय्य प्रदान कर कृषि निर्यात को प्रोत्साहित किया जाता है। परंतु घरेलू आवश्यकताओं की पूर्ति को पर्याप्त ध्यान देकर यह उद्देश्य प्राप्त करना महत्त्वपूर्ण है।

हमें ध्यान में रखना चाहिए कि यद्यपि साहाय्य कुछ किसानों का लाभ स्तर बढ़ाते हैं परंतु यह उन कृषि श्रमिकों को किसी भी तरीके में लाभ नहीं देते हैं जो कृषि में लगे हुए व्यक्तियों के लगभग 40 प्रतिशत है। उन्हें विशेष रूप से 'भूमिहीन श्रमिक' कहा जाता है। इस प्रकार यदि सरकार का प्रयोजन सबसे अधिक गरीब वर्ग के रहन-सहन की दशा सुधारना है तो इसे साहाय्य से भी आगे जाना चाहिए। इसके लिए इस न्यूनतम आय अधिनियम प्रभावशाली ढंग से क्रियान्वित करना, बढ़ती कीमतों की प्रतिपूर्ति के लिए कृषि मजदूरी से नियमित संशोधन गंभीरतापूर्वक भूमि सुधार, आदि क्रियान्वित करने चाहिए। भूस्वामी किसानों के लिए भी सस्ता पम्पसेट, उर्वरक, बिजली, आदि प्राप्त करने के लिए किसानों के पास भूमि और पूँजी की न्यूनतम मात्रा होनी चाहिए। क्योंकि नई प्रौद्योगिकी संसाधनों के संबंध में प्रयोग के पैमाने से निरपेक्ष (अर्थात् उत्पादता संसाधनों की कुछ इष्टतम मात्रा से सुधरती है), इसलिए साहाय्यों ने एक बार फिर धनी किसानों को ही लाभ पहुंचाया है। गरीब किसान की दशा न केवल बहुत नहीं सुधरी है बल्कि बहुत मामलों में वह आदानों की कीमत बढ़ने से कारण अधिक गरीब हुआ है। वह खाद्य कीमतों में वृद्धि से भी प्रभावित हुआ है क्योंकि वह खाद्य मदों का वास्तविक खरीददार है। इसके अलावा, साहाय्य सरकार के व्यय ढांचे में प्रमुख समस्या रहे हैं। खाद्य साहाय्य (सार्वजनिक वितरण प्रणाली प्रचालन के कारण) और आदान (विशेषकर उर्वरक) भारत में कुछ साहाय्यों के मुख्य घटक हैं। विद्युत, सड़क परिवहन और सिंचाई जैसे सेक्टरों में अल्प उपभोक्ता प्रभार ने राज्य सरकारों के बजटों को क्षति पहुंचाई है परंतु पिछले वर्षों के दौरान यह घटा है। फिर भी उपभोक्ता प्रभारों को युक्तिसंगत बनाना और ऐसे तरीके विकसित करना जिससे साहाय्य केवल वास्तविक जरूरतमंदों को ही लक्षित हो, के लिए अत्यंत सावधानी के साथ प्रयास करना आवश्यक है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

23.4.3 अंतर्राष्ट्रीय प्रोफाइल

OECD देशों की तुलना में भारत में कृषि साहाय्य काफी कम है। तालिका 23.1 अन्य विकसित देशों से कृषि में भारत द्वारा दिए गए साहाय्यों की तुलना दी गई है। यद्यपि प्रस्तुत आंकड़े 1999 तक के हैं, फिर भी ये हमें बताते हैं कि कृषि के लिए हमारे साहाय्य अन्य उन्नत देशों के कृषि साहाय्य की तुलना में बहुत कम हैं। साहाय्यों के प्रश्न पर अंतर्राष्ट्रीय (जो मुख्यतया WTO अनिवार्यताओं के कारण है और जिस पर आप इस पाठ्यक्रम की इकाई 27 में अध्ययन करेंगे) और राजकोषीय विवेकशीलता पर घरेलू दबावों के संदर्भ में बहुत वाद-विवाद हुआ है। उनका तर्क है कि साहाय्य बाजार को दक्षतापूर्वक संसाधन आबंटित नहीं करने देते और इस प्रकार कीमतें बिगाड़ देते हैं। अन्य

ने तर्क दिया कि इससे राजकोषीय घाटा उच्चतर होता है जिसके कारण अधिक स्फीति, भुगतान संतुलन कठिनाइयां और विनिमय दर में गिरावट होती है। यह भी तर्क दिया जाता है कि साहाय्यों से सार्वजनिक निवेश कम होता है, जिसका परिणाम अल्प पूँजी निर्माण होता है (अर्थात् सरकार के पास उपलब्ध संसाधन सीमित होने के कारण, क्योंकि साहाय्यों पर उस सीमा तक संसाधन खर्च हो जाते हैं कि आधारभूत संरचना विकास के लिए उनकी उपलब्धता कम हो जाती है)। एक संबद्ध तर्क भी है कि साहाय्यों का ''क्षमता निर्माण'' में योगदान नहीं होता है जबकि दक्षता और आधारभूत संरचना विकास कार्यक्रमों पर व्यय किए गए संसाधन बेहतर उत्पादनकारी कार्य के लिए लाभभोगियों की क्षमता बढ़ाकर इनमें वृद्धि करते हैं। परंतु जैसाकि हमने ऊपर देखा है, साहाय्य अल्पकालिक स्वरूप के बहुत से उपयोगी प्रयोजन पूरा करते हैं। इसे ध्यान में रखते हुए साहाय्यों के स्वरूप और स्तर परिवर्तन से पूर्व निर्णय उनके परिणामों के समुचित ढंग से मूल्यांकन करने के बाद किया जाना चाहिए।

तालिका 23.1 : OECD देशों और भारत में कृषि साहाय्य (अमरीकी डालरों में)

देश	1966–68		1997		1998		1999	
	प्रति किसान	प्रति हेक्टेयर	प्रति किसान	प्रति हेक्टेयर	प्रति किसान	प्रति हेक्टेयर	प्रति किसान	प्रति हेक्टेयर
कनाडा	12000	75	7000	42	8000	48	9000	52
यूरोप	11000	707	16000	815	18000	890	17000	831
जापान	15000	10048	21000	10211	22000	10005	26000	11792
संयुक्त राज्य अमेरिका	17000	98	12000	73	19000	116	21000	129
OECD	11000	187	10000	189	11000	209	11000	218
भारत	11	8	55	43	61	46	66	55

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

स्रोत : कृषि और सहकारिता विभाग, कृषि मंत्रालय, भारत सरकार (http//agricoop.nic/statestics/stock2htm)

बोध प्रश्न 2

नीचे रिक्त स्थान में अपना उत्तर लगभग 50 शब्दों में दीजिए।

1) वे दो मुख्य मुद्दे क्या हैं जिनके कारण भारत में कृषि कर पर सुस्पष्ट नीति नहीं बन पाई है? इन दो में से आप किसे कृषि कराधान पर नीति बनाने में संकल्पनात्मक कमी मानते हैं? क्यों?

....

....

....

....

2) किन दो कारणों से भारत में कालांतर में ''भूमि कर'' वास्तविक रूप से स्थिर रहा है? किस तरीके में इसने भारतीय कृषि विकास को प्रभावित किया है?

....

....

....

....

3) उपर्युक्त प्रश्न 1 के लिए निर्धारित दो मुद्दों में कौन भारतीय कृषि में काश्तकारी प्रणाली से जुड़ा है? युक्तिसंगत आधार के अभाव के कारण इसकी आलोचना किस आधार पर की गई है?

....

....

....

....

4) कृषि को प्रत्यक्ष कर के अंतर्गत लाने के लिए दो प्रस्ताव क्या हैं? इनमें से कौन-सा प्रस्ताव सिद्धांत रूप विभेदकारी है? कैसे?

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

....

....

5) साहाय्य किस प्रकार करों के विपरीत हैं? भारतीय कृषि की कौन-सी विशेषता कृषि साहाय्यों के लिए ''आधारभूत औचित्य'' प्रदान करती है?

....

....

....

....

6) क्या आप सहमत हैं कि साहाय्यों की प्रौद्योगिकी अपनाने को बढ़ावा देने में भूमिका है? कैसे?

....

....

....

7) आदान साहाय्य के चार प्रकार बताइए। वे किसानों का लाभ बढ़ाने में कैसे योगदान करते हैं?

....

....

....

....

8) कौन-सा आदान साहाय्य प्रौद्योगिकी अंगीकरण को बढ़ावा देता है? कैसे?

....

....

....

....

9) कौन-से साहाय्य में ''सार्वजनिक माल'' का स्वरूप होता है? यह किसानों के लिए किस प्रकार लाभदायक है?

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

....

10) ''निर्यात साहाय्य'' प्रदान करने के पीछे उद्देश्य बताइए।

....

....

....

....

11) क्या कृषि पर आश्रित सभी वर्गों के व्यक्ति साहाय्यों से लाभांवित होते हैं? यदि नहीं, तो इस विसंगति के उन्मूलन के लिए किस दिशा में प्रयास करने आवश्यक हैं?

....

....

....

....

....

12) साहाय्यों के कारण उत्पन्न अन्य समस्याएं क्या हैं? इस प्रतिकूल स्थिति को सुधारने के लिए आप क्या सुझाव दे सकते हैं?

....

....

....

....

13) 1990 के दशक के बाद के वर्षों में भारत में प्रति किसान और प्रति हेक्टेयर साहाय्य की अन्य विकसित देशों से तुलना कैसे की गई है?

....

....

....

....

14) कृषि में साहाय्यों के विरुद्ध दिए गए तीन तर्क क्या हैं?

....

....

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

23.5 कृषि बीमा

बीमे का उद्देश्य जोखिम को भिन्न-भिन्न उत्पादकों और समय अवधियों में विभाजित करने से है। बीमाकर्त्ता को प्रीमियम कही जाने वाली कुछ राशि प्रति वर्ष या माह देकर उत्पादक संभावित घटना के निर्दिष्ट कारकों के कारण उत्पादन में हुई किसी भी क्षति की प्रतिपूर्ति बीमाकर्त्ता से प्राप्त कर सकता है। प्रीमियम की राशि बीमाकृत राशि (वह राशि जिसका क्षति की दशा में उत्पादक को भुगतान किया जाता है) के अनुसार भिन्न-भिन्न हो सकती है। बीमा कंपनी लाभ कमाती है, क्योंकि कोई भी क्षति या हानि सभी उत्पादकों को नहीं हो सकती है। इस प्रकार केवल कुछ ही किसानों को दावा की गई हानि का भुगतान किया जाएगा जो अन्य उन उत्पादकों से प्राप्त प्रीमियम से पूरा किया जा सकता है जिन्हें उत्पाद में कोई हानि नहीं हुई है। इसके अलावा, हानि सभी अवधियों में नहीं होती, अतः किसी समय विशेष में हुई हानि की क्षतिपूर्ति का भुगतान अन्य अवधियों में प्राप्त प्रीमियम की राशि में से हो सकता है। यद्यपि यह तर्क सामान्यतः और कुछ सीमा तक कृषि में भी काम करता है, परंतु हमें नोट करना चाहिए कि कृषि क्रियाओं में कुछ खास विशेषताएँ होती हैं, जिनके कारण बीमा कंपनियां अधिक सतर्क रहती हैं। ये हैं : (क) क्षेत्र में सभी किसानों को होने वाली फसल क्षति की अधिक संभावना; और (ख) किसानों के कार्यकलाप की

निगरानी करना कठिन है क्योंकि खेती कार्य लंबे समय तक और विस्तृत भू-भाग में फैले होते हैं। इस कारण से जब किसान की निगरानी नहीं हो रही हो, वह ऐसे कार्य कर सकता है, जो उत्पादन के लिए जोखिम पैदा कर सकते हैं और इसलिए बीमा कंपनी को देयता में ''नैतिक संकट'' की समस्या का सामना हो सकता है। ऐसे मामलों में, बीमा कंपनी को प्रत्याशित की अपेक्षा अधिक हानि के लिए भुगतान करना होगा जो उसे दिवालिया भी कर सकता है। इन कारकों को ध्यान में रखते हुए निजी क्षेत्र कृषि बीमा बहुत देशों में सफल नहीं रहा है। फिर भी, कृषि बीमा के महत्त्व को व्यापक स्तर पर स्वीकारा गया है और इसका विभिन्न देशों में तथा क्षेत्रों में प्रसार हो रहा है। इसके अलावा, यह देखा गया है कि बीमाकृत किसान अबीमाकृत किसानों की अपेक्षा अनेक उपायों का प्रयोग कर बहुत अधिक उत्पादकता पाने के प्रयास करते हैं। सुविचारित उत्तरदायित्वपूर्ण कार्रवाई का ऐसा तरीका सेक्टर के दीर्घकालिक रूप से आत्मनिर्भर होने का संकेत देता है जिसके प्रति सरकार और बीमा सेक्टर को कार्य करना चाहिए। भारत में, सरकार और कुछ निजी कंपनियों ने पिछले कुछ वर्षों के दौरान बहुत-सी कृषि बीमा योजनाएं प्रारंभ की हैं। हम संक्षेप में, इस भाग में उनकी समीक्षा करेंगे।

i) **फसल बीमा योजना (CIS) 1972-78** : यह विशिष्ट केंद्रित दृष्टिकोण पर आधारित भारत में प्रारंभ की गई बीमा योजनाओं में से एक है। योजना खास फसलों, जैसे मूंगफली, H4 कपास, गेहूँ और आलू पर लागू की गई। योजना को स्वैच्छिक आधार पर और छह राज्यों में शुरू किया गया था। लगभग 3000 किसानों को योजना में शामिल किया गया। योजना के अधीन निपटाए गए वास्तविक दावों की राशि (0.38 करोड़ रुपये) एकत्र की गई कुल प्रीमियम राशि (0.05 करोड़ रुपये) से बहुत अधिक थी। ''प्रीमियम और दावों'' का अनुपात 1 : 76 था।

ii) **प्रायोगिक फसल बीमा योजना (1979-85)** : यह योजना क्षेत्र केंद्रित थी और इसमें अनाज, मोटे अनाज, तिलहन, कपास, आलू और चने शामिल किए गए। योजना में छोटे और सीमांत किसानों के लिए 50 प्रतिशत सहायता के साथ ऋणी किसानों को स्वैच्छिक आधार पर शामिल किया गया। इसमें कुल 6.23 लाख किसानों को शामिल किया गया। एकत्र किया गया कुल प्रीमियम (1.95 करोड़ रुपए) निपटाए गए कुल दावों (1.56 करोड़ रुपए) से अधिक था। इस प्रकार, प्रीमियम से दावे का अनुपात 1 : 0.8 रहा।

iii) **वृहद फसल बीमा योजना (1985-99)** : यह योजना भी क्षेत्र केंद्रित थी और इसमें खाद्यान्न तथा तिलहन शामिल थे। योजना सभी ऋणी किसानों के लिए अनिवार्य रूप से की गई। इसके अंतर्गत कुल 7.63 लाख किसान थे। निपटाए गए दावों की राशि (2303 करोड़ रुपये) थी जो एकत्र की गई प्रीमियम की कुल राशि (404 करोड़ रुपये) से कहीं ज्यादा थी। परिणामस्वरूप प्रीमियम दावों का अनुपात 1 : 5.7 था।

iv) **प्रायोगिक फसल बीमा योजना (1997-98)** : इस क्षेत्र-योजना में अनाज, दलहन और तिलहन थे। कर्जदार किसानों के अलावा और कर्जदार छोटे और सीमांत किसानों के लिए लागू इस योजना के अधीन लगभग 4.78

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

लाख किसान थे। निपटाए गए दावे (39.78 करोड़ रुपये) कुल एकत्र किए गए प्रीमियम (2.86 करोड़ रुपए) से बहुत अधिक थे। इस प्रकार, प्रीमियम दावे का अनुपात 1 : 13.9 था।

v) **राष्ट्रीय कृषि बीमा योजना (1999-आज तक)** : यह योजना व्यक्ति और क्षेत्र दोनों पर केंद्रित है। इसमें सभी किसानों को दस प्रतिशत साहाय्य दिया जाता है। योजना में खाद्यान्न, तिलहन, वार्षिक वाणिज्यिक और बागवानी फसलें शामिल की गई हैं। इसमें अब तक की सभी योजनाओं से अधिक (971 लाख) किसान हैं। इसके अलावा, ''प्रीमियम निपटाया गया दावा'' अनुपात 2944 : 9857 (करोड़ रुपये) रहा है। यह भी 1 : 3.3 (प्रतिकूल) है।

vi) **फार्म आय बीमा योजना (2003-04** : यह ऐसी योजना थी जो अनिवार्य रूप से ऋणी किसानों के लिए थी, उन्हें उत्पादन और बाजार जोखिमों के विरुद्ध आश्वस्त करने के लिए इसे एक वर्ष के लिए प्रचलित किया गया था। यह क्षेत्र केंद्रित योजना थी, इसमें कुल 2.22 लाख किसानों की गेहूँ और चावल की फसलें शामिल थीं। यह दूसरी योजना है जिसके लिए प्रीमियम (15.68 करोड़ रूपये) से दावे (1.5 करोड़ रुपये) का अनुपात अनुकूल (1 : 0.10) था।

vii) **मौसम/वर्षा बीमा योजना (2003-04 से आज तक)** : एक विशिष्ट केंद्रित योजना है जिसमें विनिर्दिष्ट खंडों में प्राप्त वर्षा पर आधारित सभी किसान शामिल थे। यह खाद्यान्न, तिलहन, वार्षिक वाणिज्यिक और बागवानी फसल, जैसे उत्पादों के लिए थे। इसमें कुल 5.39 लाख व्यक्ति शामिल थे।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बीमा योजनाओं में शामिल रहे किसानों की संख्या अनुमानित कुल संख्या के 15 प्रतिशत कम होने से योजनाओं के उपर्युक्त ब्यौरे (भारत में पिछले चार दशकों के दौरान क्रियान्वित) हमें बताते हैं कि योजनाएं बहुत अधिक राज्य समर्थित हैं। उन्हें आत्मनिर्भर बनाने में, वांछित दिशा ले जाने के लिए भारत में कृषि बीमा को अभी बहुत लंबा रास्ता तय करना है।

बोध प्रश्न 3

नीचे रिक्त स्थान में अपना उत्तर लगभग 50 शब्दों में दीजिए।

1) कृषि बीमा की तीन खास विशेषताएँ बताइए जो इसे साधारणतया लाभ निरपेक्ष उद्यम बनाती हैं।

....

....

....

....

2) कृषि सेक्टर में उपर्युक्त विशेषता होने के बावजूद इसके आगे चलकर आत्मनिर्भर होने की क्षमता के महत्त्व पर प्रकाश डालने के लिए क्या तर्क दिए जाते हैं?

....

....

....

....

3) पिछले चार दशकों की अवधि में भारत में क्रियान्वित सात कृषि बीमा योजनाएं क्या हैं? इन अधिकांश योजनाओं में क्या खास विशेषता सामान्य रूप से पाई जाती है?

....

....

....

....

4) अभी तक क्रियान्वित की गई सभी बीमा योजनाओं में से कौन दो योजनाएं उनके ''दावे से प्रीमियम'' का अनुकूल अनुपात के लिए उल्लेखनीय हैं? ये अनुपात क्या हैं? शेष बीमा योजनाओं में से राष्ट्रीय बीमा योजना में सबसे अधिक उल्लेखनीय बात क्या है?

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

....

23.6 सारांश

भारत में औसत कृषि आय बहुत कम है। इसे ध्यान में रखते हुए सरकार ने सेक्टर पर कर न लगाने की नीति चुनी है। परंतु धनी किसान ऐसी छूट से अधिक से अधिक लाभान्वित होते हैं। यह कृषीत्तर धनी वर्ग के लिए भी सत्य है, जो अपनी आय कृषि से दिखाते हैं और लाभ कमाते हैं। भूमि कर तर्कसंगत बना कर और कर दायरे में दूरवासी जमींदारी को लाकर इस स्थिति को सुधारना आवश्यक है। सरकार विभिन्न कारणों से कृषि साहाय्य देती है। साधारणतया साहाय्य उत्पाद और लाभ में वृद्धि करते हैं और कुछ मामलों में कीमत कम करते हैं। भारत में साहाय्य ने बहुत संकटपूर्ण अवसरों पर अपना-अपना प्रयोजन पूरा किया है तथा गरीब किसानों का जीवन स्तर सुधारने में सहायता की है। परंतु ये चयनात्मक रूप से गरीब किसानों और चुनिन्दा फसलों के लिए दिए जाने चाहिएं। इन सभी में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है कि इसने खाद्य संकट कम किया है। परंतु साहाय्य के असमान वितरण से बहुत असमानता उत्पन्न हुई है। उपाय साहाय्य समाप्त करना नहीं है, बल्कि उन्हें गरीब किसानों और उपभोक्ताओं के लिए समुचित ढंग से लक्ष्यित करना है। अधिकांश भारतीय किसानों की अत्यधिक दरिद्रता और गरीब वर्ग की खाद्य सुरक्षा की आवश्यकता ने सरकार को बाध्य किया है कि साहाय्यों को जारी रखा जाए। करों और साहाय्यों के

अलावा बीमा उत्पादकों को जोखिम उठाने के लिए विश्वास प्रदान करने में उपयोगी महत्त्वपूर्ण साधन होगा। लगभग चार दशकों के दौरान भारत में बहुत-सी बीमा योजनाएं संचालित हुई हैं। उनमें अधिकांश को भारी राज्य सहायता दी जाती है। परंतु बीमा को सिद्धांत रूप से आत्मनिर्भर होना आवश्यक है। इसका अभिप्राय किसानों की बड़ी संख्या को छोटे प्रीमियम पर बीमा खरीदना चाहिए और स्वयं को संभावित क्षति से सुरक्षित रखना चाहिए। बीमाकृतों की अपेक्षा क्षतिपूर्ति के दावों की संख्या कम होना बीमा कंपनियों को लाभकारी बनाएगा। परंतु ''प्रीमियम से निपटाया दावों'' का अनुपात देखने पर कृषि में भारतीय बीमा अनुभव प्रतिकूल रहा है। इसके दो अपवाद हैं : (i) प्रायोगिक फसल बीमा योजना (1 : 0.8), और (ii) फार्म आय बीमा योजना (1 : 0.10)। NAIS 1999 में प्रारंभ की गई (और क्रियाशील है) ऐसी योजना है जो प्रीमियम दावे के अपने अपेक्षाकृत कम अनुपात (1 : 3.3) के लिए उल्लेखनीय है। यद्यपि अन्य सभी योजनाओं के प्रीमियम की अपेक्षा दावे तीन गुणा से भी अधिक हैं, इसलिए इस योजना की अपेक्षाकृत निम्नतर देयता महत्त्वपूर्ण है। इस निष्पादन विवरण से स्पष्ट है कि कृषि बीमा को अभी एक लंबी यात्रा करनी है।

23.7 शब्दावली

अपूर्ण प्रतिस्पर्धी बाजार : इसका संबंध उस बाजार से है, जहां उत्पादकों की संख्या कम है माल विभेदनीय है (अर्थात् प्रत्येक उत्पादक ऐसा माल उत्पादन करता है जो दूसरों से कुछ भिन्न होता है) इसलिए प्रत्येक उत्पादक को बाजार कीमत प्रभावित करने की सीमित शक्ति प्राप्त होती है परंतु कीमत बढ़ाई जाती है तो मांग वक्र के अधोमुखी होने के कारण उपज गिरती है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

पूर्ण प्रतिस्पर्धी बाजार : इसका संबंध उस बाजार से है जहां सभी उत्पादकों द्वारा उत्पादित माल एकसमान होता है और प्रत्येक उत्पादक बाजार में उत्पादित कुल उत्पाद का बहुत न्यून अंश उत्पादन करता है। इसके फलस्वरूप कोई भी उत्पादक कीमत को प्रभावित नहीं कर सकता।

कृषि प्रति व्यक्ति आय : GDP में कृषि का अंश 1980 में 39 प्रतिशत से गिरकर 2010 में 18 प्रतिशत हुआ है। कृषि पर आश्रित जनसंख्या का प्रतिशत भी 1980 में 70 प्रतिशत से गिरकर 2010 में 56 प्रतिशत हुआ है। इससे कृषि प्रति व्यक्ति आय को अंश 1980 में 56 प्रतिशत से गिरकर 2010 में 32 प्रतिशत हुआ है, (यद्यपि प्रति व्यक्ति कृषि आय 1980 में रुपये 4745 से बढ़कर 2010 में रु. 10865 हुई है, अर्थात् तीन दशकों में 2.3 गुणा वृद्धि)। इसके

विपरीत समग्र अर्थव्यवस्था की प्रति व्यक्ति आय 1980 में रु. 8540 से बढ़कर 2010 में रु. 33802 हुई है (अर्थात् तीन दशकों में लगभग 4 गुणा वृद्धि)। इसका अभिप्राय है कि कृषि प्रति व्यक्ति आय अन्य सेक्टरों जैसे विनिर्माण और सेवा सेक्टर की अपेक्षा अधिक धीमी रही है।

सार्वजनिक माल : ये वे माल हैं जिनकी उपयोगिता एक या दो व्यक्तियों तक सीमित नहीं रहती है, जैसी बेहतर सड़कों जैसे आधारभूत संरचना में सुधार। दूसरे शब्दों में, एक व्यक्ति द्वारा ऐसे माल का उपभोग किसी भी अन्य को इसके उपभोग से वंचित नहीं कर सकता है।

कृषि बीमा : यह कृषि क्रियाओं जैसे वर्षा की कमी, फसल विफलता, प्राकृतिक आपदा आदि के लिए प्रदान किया गया बीमा है। अन्य बीमा योजनाओं की भांति बीमा पॉलिसी धारक, बीमा कंपनी को उल्लिखित कारकों से कृषि उत्पाद की क्षति के लिए पॉलिसी धारक को प्रतिपूर्ति के बदले बीमा कंपनी को नियमित अंतरालों पर प्रीमियम देता है। प्रतिपूर्ति राशि को बीमाकृत राशि कहा जाता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

23.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1) Kapila, U, (ed.), 2009, *Indian Economy Since Independence 2008-09,* Academic Foundation, Delhi.

2) Parikh, K.S., 1997, *India Development Report 1997,* Oxford University Press.

3) Patnaik, U., 1999, *The Long Transition,* Tulika Publications, New Delhi.

4) Raj, K.N., 1990, *Organizational Issues in Indian Agriculture,* Oxford University Press, New Delhi.

23.9 बोध प्रश्नों के उत्तर/संकेत

बोध प्रश्न 1

1) देखिए भाग 23.1 और उत्तर दीजिए।

2) देखिए भाग 23.2 और उत्तर दीजिए।

3) देखिए उपभाग 23.2.1 और उत्तर दीजिए।

4) देखिए उपभाग 23.2.2 और उत्तर दीजिए।

5) देखिए उपभाग 23.2.2 और उत्तर दीजिए।

6) देखिए उपभाग 23.2.3 और उत्तर दीजिए।

7) देखिए उपभाग 23.2.4 और उत्तर दीजिए।

बोध प्रश्न 2

1) देखिए भाग 23.3 और उत्तर दीजिए।

2) देखिए भाग 23.3 और उत्तर दीजिए।

3) देखिए भाग 23.3 और उत्तर दीजिए।

4) देखिए भाग 23.3 और उत्तर दीजिए।

5) देखिए उपभाग 23.4.1 और उत्तर दीजिए।

6) देखिए उपभाग 23.4.1 और उत्तर दीजिए।

7) देखिए उपभाग 23.4.2 और उत्तर दीजिए।

8) देखिए उपभाग 23.4.2 और उत्तर दीजिए।

9) देखिए उपभाग 23.4.2 और उत्तर दीजिए।

10) देखिए उपभाग 23.4.2 और उत्तर दीजिए।

DIKSHANT IAS

11) देखिए उपभाग 23.4.2 और उत्तर दीजिए।

Call us @7428092240

12) देखिए उपभाग 23.4.2 और उत्तर दीजिए।

13) देखिए भाग 23.1 और उत्तर दीजिए।

14) देखिए उपभाग 23.4.3 और उत्तर दीजिए।

बोध प्रश्न 3

1) देखिए भाग 23.5 और उत्तर दीजिए।

2) देखिए भाग 23.5 और उत्तर दीजिए।

3) देखिए भाग 23.5 और उत्तर दीजिए।

4) देखिए भाग 23.5 और उत्तर दीजिए।

इकाई 24 कृषि श्रमिक और मजदूरी

संरचना

24.0 उद्देश्य

24.1 प्रस्तावना

24.2 कृषि श्रम की विशेषताएँ

24.2.1 रोजगार और आय में अनियमितता

24.2.2 गरीबी

24.2.3 असंगठित रोजगार

24.2.4 मजदूरी रोजगार और स्वरोजगार

24.3 कृषि श्रम में प्रवृत्तियां

24.3.1 कृषि श्रमिकों/कामगारों की वृद्धि/प्रतिशत

24.3.2 सीमांत किसानों की बढ़ती हुई संख्या

24.3.3 आय/उपभोग व्यय में कमी

24.4 कृषि श्रमिक की आजीविका प्रस्थिति सुधारने के लिए कार्यक्रम

24.4.1 कृषि उन्मुख कार्यक्रम

24.4.2 स्वरोजगार कार्यक्रम

24.4.3 मजदूरी रोजगार कार्यक्रम

24.4.4 क्षेत्र विकास कार्यक्रम

24.4.5 राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन (NRLM)

24.4.6 ग्यारहवीं योजना की पहलें

24.4.7 बारहवीं योजना का दृष्टिकोण

24.5 कृषि मजदूरियां : आंकड़ा स्रोत और प्रवृत्तियां

24.5.1 आंकड़ा स्रोत

24.5.2 कृषि मजदूरियों में प्रवृत्तियां

24.6 सारांश

24.7 शब्दावली

24.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

24.9 बोध प्रश्नों के उत्तर/संकेत

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

24.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद, आप

- भारत में कृषि श्रम की विशेषताओं की चर्चा कर सकेंगे;
- 1951-2010 की अवधि में कृषि श्रमिकों/कामगारों में प्रवृत्तियों का विश्लेषण कर सकेंगे;

- भारत सरकार द्वारा भारत में कृषि श्रमिकों की आजीविका प्रस्थिति सुधारने के लिए प्रारंभ किए गए उपायों का विवेचन कर सकेंगे;
- ''कृषि मजदूरी'' पर आंकड़ों का स्रोत बता सकेंगे; और
- कृषि मजदूरियों में लिंग और कृषि बनाम कृषीत्तर सेक्टर के बीच उसकी असमानता पर फोकस के साथ प्रवृत्तियों का विश्लेषण कर सकेंगे।

24.1 प्रस्तावना

भारत की जनगणना के अनुसार कृषि कामगारों का कुल ग्रामीण जनसंख्या से अनुपात 1951-2001 के पांच दशकों के लंबे समय तक कमोबेश स्थिर रहा है। (यह 1951 में 32.6 प्रतिशत और 2001 में 31.5 प्रतिशत था)। यद्यपि कुल जनसंख्या में कृषि कामगारों का अंश प्रतिशत इस अवधि में 20 प्रतिशत बिंदु तक नीचे आया, परंतु ''ग्रामीण जनसंख्या में कृषि कामगारों'' का अनुपात लगभग वैसा ही रहा। यह अनेक कारकों के गतिशील पारस्परिक प्रभाव के कारण है, जैसे बढ़ती हुई जनसंख्या, बढ़ता हुआ शहरीकरण, कृषीत्तर रोजगार विस्तार की गति, कम से कम प्राथमिक शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों के लिए उपयुक्त कृषीत्तर रोजगार का स्वरूप आदि। इस प्रकार यद्यपि अनुपात में दोनों कारकों ने परिवर्तन किया है परंतु (ग्रामीण आबादी से कृषि कामगारों का) अनुपात इसमें कोई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन के बिना लगभग स्थिर रहा है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

जनगणना ''कृषि कामगारों'' को दो समूहों में वर्गीकृत करती है, अर्थात् (i) किसान और (ii) कृषि श्रमिक। आपने ''छोटे और सीमांत किसानों'' के बारे में इस पाठ्यक्रम की इकाई 2 (भाग 2.7) में पढ़ा है। स्मरण करें कि उन्हें 2 हेक्टेयर से कम भूमि के स्वामित्व के किसान के रूप में परिभाषित किया गया है (जिन किसानों के स्वामित्व में 0.4 से 1 हेक्टेयर भूमि है उन्हें सीमांत किसानों और जिनके स्वामित्व में 1 से 2 हेक्टेयर है, उन्हें छोटे किसान कहा गया है और जो मिलकर 2005-06 में भारत में प्रचालनात्मक भूमि जोतों के 83.3 प्रतिशत का संचालन कर रहे थे। राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण संगठन (NSSO) (अन्य महत्त्वपूर्ण आंकड़ा स्रोत) ने भूमि जोत खंडों को पांच उपवर्गों में विभाजित किया है, अर्थात् (i) भूमिहीन किसान, जिनके पास 0.01 हेक्टेयर से कम भूमि है); (ii) उपसीमांत किसान (0.01 और 0.4 हेक्टेयर); (iii) सीमांत किसान (0.4 से 1 हेक्टेयर); (iv) छोटे किसान (1 से 2 हेक्टेयर) और मध्यम तथा बड़े किसान (2 हेक्टेयर से अधिक) वाले इसके अलावा NSSO ने पट्टा भूमि पर खेती करने वाले आसामी किसान को (भूमिहीन) किसान वर्गीकृत किया है। इन उपवर्गों को ध्यान में रखते हुए कृषि कामगारों पर आंकड़ा जनगणना की अपेक्षा NSSO द्वारा किए गए सर्वेक्षणों में अधिक विभाजन उपलब्ध है।

इस इकाई के विश्लेषण क्षेत्र में किसानों के सभी उपवर्ग शामिल हैं ताकि किसानों की भिन्न-भिन्न श्रेणियों में बदलती हुई प्रवृत्तियां की तुलना की जा सके। यद्यपि ''सीमांत और छोटे किसानों'' के पास कुछ भूमि होती है परंतु संस्थागत ऋण और दक्ष विपणन जैसी महत्त्वपूर्ण सेवा प्राप्त करने में उनकी कठिनाई के कारण उनकी दशा कम संकटपूर्ण नहीं है। इसे ध्यान में रखते हुए सीमांत और छोटे किसान बहुधा अपने जीवन निर्वाह के लिए मजदूरी रोजगार पर निर्भर रहते हैं।

दोनों मिलकर वे ''कृषि कामगारों के 20 प्रतिशत से अधिक'' होते हैं। कृषि कामगारों/श्रमिकों को कैसे परिभाषित किया जाता है? उनकी संख्या कितनी है? और कालांतर में उनकी प्रस्थिति कैसे बदलती है? उनकी प्रस्थिति सुधारने के लिए सरकार द्वारा उठाए गए कई कदमों के बावजूद उनकी अवरुद्ध स्थिति में योगदान करने वाले विशिष्ट लक्षण क्या हैं? ये क्या उपाय हैं और किस सीमा तक उनकी आजीविका प्रस्थिति सुधारने में वे सहायक हुए हैं? ये विशिष्ट प्रश्न हैं जिनका उत्तर हम इस इकाई में देने का प्रयास करेंगे।

24.2 कृषि श्रम की विशेषताएँ

भारत में कृषि श्रमिकों की पहचान NSSO द्वारा ''कृषि श्रमिक परिवारों'' के आधार पर की है। इसे ध्यान में रखते हुए कृषि श्रमिकों की कुल संख्या का अनुमान प्राप्त करने के लिए कृषि परिवारों में व्यक्तियों की औसत संख्या द्वारा गुणा कर आवश्यक होता है।

दूसरी ओर, जनगणना सीधे ''कृषि कामगारों'' और कृषि श्रमिकों की अनुमानित संख्या देती है। ''कृषि श्रमिक परिवार'' को एक ऐसे परिवार के रूप में परिभाषित किया गया है जो अपनी आय का 50 प्रतिशत से अधिक कृषि से प्राप्त करते हैं। कृषि श्रमिकों/कामगारों के कुछ खास विशेषताएँ हैं जिनके कारण नीति/योजनाकारों को वर्ष के दौरान उनके कार्य दिवसों को बढ़ाने के लिए विशेष रोजगार पैदा करने वाले कार्यक्रम तैयार करना और क्रियान्वित करना होता है। इन विशेषताओं में रोजगार और आय की उपलब्धता के क्षेत्र शामिल होते हैं: रोजगार और आय की उपलब्धता, रोजगार की गुणवत्ता को निम्न बनाने वाला असंगठित स्वरूप, कृषि कामगारों में विद्यमान गरीबी का अत्यधिक प्रभाव (जो केवल उपर्युक्त दो कारकों की ही प्रतिछाया है), आदि।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

24.2.1 रोजगार और आय में अनियमितता

कृषि संबंधी अर्थव्यवस्था के लिए कृषीत्तर सेक्टरों में रोजगार के स्वरूप से कृषि में रोजगार के स्वरूप में विभेद करना आवश्यक है। इस प्रयोजन के लिए अंतर्राष्ट्रीय आम सहमति का अनुसरण करते हुए, NSSO ने रोजगार का आकलन करने के लिए तीन दृष्टिकोण विकसित किए हैं: अर्थात् सामान्य स्थिति दृष्टिकोण, वर्तमान प्रचलित साप्ताहिक प्रस्थिति दृष्टिकोण और वर्तमान प्रचलित दैनिक दृष्टिकोण। यद्यपि सामान्य प्रस्थिति दृष्टिकोण पर्याप्त स्थायी आधार पर कई एक वर्ष की अवधि के बड़े भाग में नियुक्त व्यक्ति की रोजगार अवस्था दर्शाता है। अन्य दो दृष्टिकोण ''सप्ताह में दिनों'' और ''दिन में घंटों'' के दौरान किए गए कार्यकलाप/कार्य की मात्रा पर फोकस कर कृषि में अल्परोजगार के स्वरूप को स्पष्ट करते हैं। जनगणना, 2011 द्वारा उपलब्ध अद्यतन आंकड़ों के अनुसार कृषि श्रमिक कुल कृषि कामगारों का 46 प्रतिशत है। इसके अलावा, NSSO के अनुसार 2004-05 में औसत कृषि श्रमिकों ने रु. 40.00 की औसत दैनिक मजदूरी, अर्थात् लगभग रु. 700.00 प्रति व्यक्ति की औसत मासिक आय से वर्ष में लगभग 209 दिन काम पाया था। किंतु गरीबी रेखा तो रु. 1800 प्रति माह थी। अतः एक कृषि परिवार के न्यूनतम 3 सदस्यों के लिए रोजगार पाना नितांत अनिवार्य था। वह भी वर्ष में कम-से-कम 200 दिनों का, ताकि ऐसे कृषि श्रमिक परिवार अपने आपको गरीबी की रेखा से ऊपर बनाए रखने में समर्थ हों। परंतु वास्तविकता

में, चूंकि बहुत से कृषि श्रमिक परिवारों को रोजगार के बहुत से दिनों से वंचित किया जाता है, इसलिए बहुत से कृषि परिवार गरीबी की रेखा से नीचे निर्वाह करते हैं। इस आयाम पर हम आगे चलकर विचार करेंगे।

24.2.2 गरीबी

2004-05 में राष्ट्रीय स्तर पर भारत में ग्रामीण गरीबी की घटनाएं शहरी जनसंख्या (25.7 प्रतिशत) की अपेक्षा अधिक (28.3 प्रतिशत) थी। विशेषकर ''सभी कृषि कामगारों'' के परिवारों का गरीबी अनुपात 31.1 प्रतिशत पर था। इसके अलावा, कृषि में लगे हुए ग्रामीण परिवारों में कृषि श्रमिक परिवारों का गरीबी अनुपात 46.4 प्रतिशत के उच्चतम स्तर पर था। विशेष रूप से, किसानों के लिए तद्नुरूपी अनुपात 21.5 प्रतिशत पर काफी कम था। परंतु कृषि परिवारों के गरीबी अनुपात में उच्चतर भूमि जोतों के साथ उत्तरोत्तर ह्रास हुआ। किसान के भूमिहीन होने के भिन्न-भिन्न वर्गों के गरीबी अनुपात का स्तर तद्नुरूपी 22 प्रतिशत था, इसमें उपसीमांत 20.2 प्रतिशत, सीमांत 18.1 प्रतिशत, छोटे 14.8 प्रतिशत और मध्यम तथा बड़े 9.8 प्रतिशत थे। इस प्रकार परिवारों की दोनों श्रेणियों (अर्थात् भूमिहीन और भूमिधारक) में यह अनुपात 15.2 प्रतिशत था। यह ''कृषि श्रमिक परिवारों'' के लिए तीन गुणा से भी अधिक था। इस प्रकार ''भूमि जोतों'' की सीमा उनके भूमि जोतों के आकार द्वारा परिभाषित किसानों के सभी वर्गों में गरीबी स्तर निर्धारित करने में मुख्य कारक था। इससे स्पष्ट है कि (खेती करने वाले किसानों को स्वामित्व अधिकार प्रदान करने के लिए) भूमि सुधार उपायों का प्रभावकारी क्रियान्वयन तथा खेती के लिए आवश्यक विस्तार सेवाओं सहित आदानों की आसान सुलभता सुकर बनाने के लिए नीति फोकस महत्त्वपूर्ण है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

24.2.3 असंगठित रोजगार

भारत में श्रम बल संकल्पनात्मक रूप से संगठित और असंगठित सेक्टर रोजगार में विभाजित किया गया है। संगठित का संबंध नियोक्ता द्वारा प्रदान किये गये कम से कम एक या अन्य सांविधिक विनियमों (अर्थात् कार्य घंटों की संख्या, न्यूनतम मजदूरी भुगतान, सवेतन अवकाश आदि) के प्रावधानों के साथ कामगारों को प्राप्त रोजगार में सुरक्षा की भावना से है। परंतु भारत में ऐसा रोजगार बहुत कम है (कुल रोजगार का लगभग 7 प्रतिशत) और अधिकांशतः औपचारिक शिक्षा या प्रशिक्षण का कुछ स्तर प्राप्त कामगारों के लिए कृषीत्तर उपक्रमों में उपलब्ध है। कृषि श्रमिक अपनी कम साक्षरता और परिणामतः अल्प दक्षता के कारण लगभग पूर्णतः असंगठित या अनौपचारिक सेक्टर श्रमिक बल के अंश होते हैं। कृषि श्रमिकों की इस विशेषता का प्रत्यक्ष परिणाम यह होता है कि उनमें अपने सांविधिक अधिकारों के संरक्षण की शक्ति का अभाव होता है। इससे वे न्यूनतम मजदूरी अधिनियम द्वारा गारंटीशुदा नियत न्यूनतम मजदूरी पाने से भी वंचित रह जाते हैं। कृषि कामगारों के इस लक्षण ने राष्ट्रीय सांख्यिकीय आयोग (2012) को यह प्रेक्षण करने के लिए बाध्य किया कि भारत के संदर्भ में कृषि कार्यों में लगे हुए लगभग 52 प्रतिशत कामगारों (या ग्रामीण सामान्य प्रस्थिति कामगारों लगभग 65 प्रतिशत और शहरी सामान्य प्रस्थिति कामगारों का 7 प्रतिशत) को NSSO के रोजगार बेरोजगार सर्वेक्षणों से पृथक रखा गया है और विशेषकर अनौपचारिक सेक्टर पर फोकस किया गया है। आगे उल्लेख करते हुए कि

2004-05 में कृषि और वानिकी के असंगठित क्षेत्र में कार्यों में लगे श्रमिकों का अनुमानित भाग 99.9 प्रतिशत था और कि मत्स्य पालन में 98.7 प्रतिशत था। आयोग ने आगे प्रेक्षण किया कि ''देश के राष्ट्रीय आय के अनुमानों के लिए कृषि और संबद्ध कार्यों के लगे हुए विशाल असंगठित रोजगार के आर्थिक योगदान का गंभीर अल्प अनुमान इसका प्रभाव है।'' इसलिए कृषि में अनौपचारिक या असंगठित सेक्टरों की ऐसी विशाल संख्या की मौजूदगी इस प्रकार, दोनों, व्यक्ति तथा राष्ट्र के लिए भी आर्थिक क्षति है। सिद्धांत रूप से बल के औपचारिकीकरण की मात्रा ऐसे विकासक्रम से घटने की आशा की जाती है जिसके लिए अधिक पूँजीगत निवेश आवश्यक हो। इसके लिए, कृषि में छोटे और सीमांत किसानों के लिए पूँजी की उपलब्धता होनी आवश्यक है जिससे वे प्राप्य प्रौद्योगिकी प्रगति को अधिकाधिक अपनाकर अपनी भूमि पर लाभकारी खेती कर सकें। साथ-साथ नीति प्रयासों का फोकस अपेक्षित विस्तार प्रशिक्षण से कृषि में लगे हुए कामगारों की प्रौद्योगिकी अंगीकरण क्षमता बढ़ाने पर होना चाहिए।

24.2.4 मजदूरी रोजगार और स्वरोजगार

2009-10 की रोजगार-बेरोजगार सर्वेक्षण रिपोर्ट (श्रम ब्यूरो भारत सरकार-2010) में कृषि में स्वरोजगार युक्त परिवार अनुमानतः 28.8 प्रतिशत हैं। यह कृषीत्तर में तद्नुरूपी अनुपात (13.9 प्रतिशत) का दुगुना है। मजदूरी रोजगार परिवारों का अनुमानित अनुपात 41.2 प्रतिशत है। मजदूरी रोजगार की परिभाषा उन लोगों को शामिल करने के लिए की गई है जो नियमित आधार पर प्राप्त वेतन या मजदूरी के बदले अन्य व्यक्तियों के फार्म या फार्म से भिन्न उपक्रमों में कार्य करते हैं। (अर्थात् दैनिक या आवधिक पुनर्नवीयनयोग्य ठेका कार्य के आधार पर नहीं हैं) ये सड़कों, बांधों आदि के निर्माण में लगे होते हैं। इस प्रकार वे अल्पकालिक आय प्रदान करने तथा विशेष रूप से स्व-रोजगारमुक्त कामगारों की उत्पादकता बढ़ाने के लिए सार्वजनिक आधारभूत संरचना निर्माण का दोहरा कार्य करते हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

दूसरी ओर, स्वनियोजित व्यक्तियों को इस प्रकार परिभाषित किया गया हैः वे व्यक्ति जो अपने कृषि या कृषीत्तर उपक्रम प्रचालन करते हैं या किसी व्यवसाय या व्यापार में स्वतंत्र रूप से लगे होते हैं। स्वनियोजित व्यक्ति की आवश्यक विशेषता यह है कि उन्हें कार्य करने की (कैसे, कहां और कब उत्पादन करना है) और (बाजार, प्रचालन की मात्रा और उनके धन के बारे में) स्वायत्तता होती है। स्वनियोजित द्वारा प्राप्त शुल्क या पारिश्रमिक के दो भाग हैं – उनके श्रम का भाग और उपक्रम का लाभ। दूसरे शब्दों में, उनके पारिश्रमिक का निर्धारण पूर्णतः या मुख्यतया उस माल या सेवा की बिक्री या लाभ द्वारा किया जाता है जिसे वे उत्पादित करते हैं। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि कृषि श्रमिकों की बहुत बड़ी संख्या रोजगार के लिए दिन प्रति दिन तलाश पर निर्भर होते हैं, सरकार ने दशाब्दियों से ग्रामीण कृषि कामगारों की आवश्यकताओं के अनुकूल कई विशेष रोजगार संवर्धन कार्यक्रम प्रारंभ किये हैं। इन कार्यक्रमों का मुख्य उद्देश्य अतिरिक्त रोजगार के ''व्यक्ति दिन'' बनाने हैं (अर्थात् नियमित और धारणीय स्वरूप के रोजगार के बदले तत्काल अधिक रोजगार पैदा करना है) ताकि अकुशल कामगारों के रोजगार या अल्परोजगार की मात्रा कम की जा सके)। हम इन कार्यक्रमों के बारे में इस इकाई के भाग 24.4 में अधिक विस्तार से पढ़ेंगे।

बोध प्रश्न 1

नीचे दिए गए स्थान में अपना उत्तर लगभग 50 शब्दों में दीजिए।

1) भारत में ''कुल ग्रामीण जनसंख्या से कृषि कामगारों'' का क्या अनुपात है? क्या आप बता सकते हैं इस अवरुद्धता के सहायक कारक क्या हैं?

....

....

....

....

2) जनगणना ''कृषि कामगारों'' का वर्गीकरण कैसे करती है? इस संबंध में NSSO द्वारा आगे क्या उपवर्गीकरण किये गये हैं?

....

....

....

....

3) ''कृषि श्रमिक परिवार'' की परिभाषा किस प्रकार की गई है? भारत में ''सीमांत/ छोटे किसानों और कृषि कामगारों'' का मिलकर कुल कृषि कामगारों से कितना अनुपात है?

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

....

....

4) NSSO ने भारत में कृषि रोजगार मापने के लिए कौन-से तीन दृष्टिकोण अपनाए हैं? क्या आंकड़े सुझाते हैं कि भारत में औसत कृषि परिवार गरीबी की रेखा से ऊपर जीवन यापन करने के लिए पर्याप्त आय अर्जित कर सकता है?

....

....

....

....

5) 2004-05 में ''कृषि श्रमिकों'' का अनुमानित गरीबी अनुपात क्या था? खेतिहर किसानों के औसत गरीबी अनुपात की तुलना यह कैसे करता है?

....

....

....

....

6) भारत में ''असंगठित क्षेत्र कामगार'' को कैसे परिभाषित किया जाता है?

....

....

....

....

7) निम्नलिखित पर राष्ट्रीय सांख्यिकीय आयोग (NSO) का क्या प्रेक्षण है : (i) उन असंगठित कृषि कामगारों का संख्या, जिन्हें रोजगार-बेरोजगार सर्वेक्षण में शामिल नहीं किया गया है और (ii) राष्ट्रीय अनौपचारिक सेक्टर सर्वेक्षणों में शामिल न किए गए कृषि कामगारों की ऐसी विशाल संख्या का प्रभाव?

....

DIKSHANT IAS

....

Call us @7428092240

....

....

8) ऊपर प्रश्न 7 में उल्लिखित स्थिति सुधारने के लिए आप किस दिशा में नीति प्रयासों को फोकस किए जाने की आवश्यकता समझते हैं?

....

....

....

....

9) भारत में रोजगार-बेरोजगार सर्वेक्षणों में मजदूरी रोजगार को किस प्रकार परिभाषित किया गया है?

....

....

....

....

10) ''अनियत मजदूरी श्रमिक'' और ''मजदूरी कर्मचारी'' में बुनियादी अंतर क्या है?

....

....

....

....

11) स्वनियोजित व्यक्ति की परिभाषा कैसे की गई है? इस संबंध में स्वनियोजित व्यक्ति मजदूरी नियोजित व्यक्ति से भिन्न कैसे है?

....

....

....

....

12) यह कहा जाता है कि भारतीय कृषि में मजदूरी रोजगार पर आश्रित कामगारों का संख्या अत्यधिक है। सरकार द्वारा प्रारंभ किए गए रोजगार सृजन कार्यक्रमों का मुख्य उद्देश्य क्या है?

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

24.3 कृषि श्रम में प्रवृत्तियाँ

कृषि श्रमिकों की संख्या और अनुपात में बदलती हुई प्रवृत्तियों को 1951-2001 के पांच दशकों की अवधि के दौरान जनगणना आंकड़ा द्वारा आंका जा सकता है। इसके अलावा, कृषि परिवारों की, (उनके जोतों की श्रेणी द्वारा) औसत मासिक आय के बारे में अनुमान 2002-03 के ''किसानों की स्थिति आकलन सर्वेक्षण (SAS)'' पर केंद्रित NSSO सर्वेक्षण द्वारा किया जा सकता है। इन आंकड़ों का प्रयोग करते हुए और औसत सूचकों, जैसे संवृद्धि दर और प्रतिशत का अभिकलन प्रयोग कर हम संदर्भाधीन छह दशाब्दी अवधि के दौरान कृषि परिवारों की दशा में परिवर्तन जान सकते हैं।

24.3.1 कृषि श्रमिकों/कामगारों की वृद्धि/प्रतिशत

तालिका 24.1 में 1951-2001 के छह दशकों की अवधि के दौरान कृषि श्रमिकों/कामगारों में विद्यमान प्रवृत्तियों पर जनगणना के आंकड़े प्रस्तुत हैं। कुल ग्रामीण जनसंख्या संबंधी आंकड़े छोड़कर, किसानों, कृषि श्रमिकों आदि पर आंकड़े केवल 2001 तक उपलब्ध हैं। आंकड़ों से ये मुख्य तथ्य स्पष्ट होते हैं :

तालिका 24.1 : कृषि श्रम में प्रवृत्तियां 1951-2011

	आंकड़े मिलियन में				प्रतिशत	
वर्ष	ग्रामीण जनसंख्या	किसान (सीमांत/ छोटे किसान)	कृषि श्रमिक (AL)	कुल कृषि कामगार (TAW)	TAW और कुल ग्रामीण जनसंख्या का प्रतिशत	AL से TAW
1	2	3	4	5	6	7
1951	298.6	69.9(23.4)	27.3	97.2	32.6	28.1
1961	360.3	99.6(27.6)	31.5	111.1	36.6	24.0
1971	439.0	78.2(17.8)	47.5	125.7	28.6	37.8
1981	523.9	92.5(17.7)	55.5	148.0	28.2	37.5
1991	628.9	110.7(17.6)	74.6	185.3	29.5	40.3
2001	742.6	127.3(17.1)	106.8	234.1	31.3	45.6
2011	833.1	–	–	–	–	–
GR* %	1.8	1.2	2.8	1.8	–	–

स्रोत : कृषि सांख्यिकी–2011 कृषि मंत्रालय, भारत सरकार।

टिप्पणी : संवृद्धि दरें (GR) 1951-2001 की अवधि की हैं। कालम 3 में कोष्ठक के अंदर आंकड़े, कॉलम 3 के कॉलम 2 से प्रतिशत हैं।

1) ''कृषि श्रमिकों'' की वृद्धि दर (2.8 प्रतिशत) ''ग्रामीण जनसंख्या'' (1.8 प्रतिशत) से अधिक रही है। विशेषकर 1951-2001 के दौरान यद्यपि ग्रामीण जनसंख्या 2.5 गुणा (1951-2011 दौरान 2.8 गुणा) बढ़ी है, परंतु कृषि श्रमिक 3.9 गुणा बढ़े हैं। इसने ग्रामीण सेक्टर में ''कृषि श्रमिकों'' की घनता बढ़ाई है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

2) ''कुल कृषि कामगारों'' की वृद्धि दर 1951-2001 की 5 दशाब्दी की अवधि में ग्रामीण जनसंख्या (1.8 प्रतिशत) के समान है।

3) उपर्युक्त प्रवृत्तियां संकेत देती हैं कि कृषि से कृषीत्तर में श्रमिक स्थानांतरण बहुत धीमा था। चूंकि इस प्रक्रिया को कामगारों (विशेषकर ग्रामीण पुरुषों) के कुशलता स्तर से जोड़ा गया है, इसलिए हमें इस संबंध में अन्य अध्ययनों के निष्कर्षों पर विचार करना आवश्यक है।

4) अधिक अंतरण (और गरीबी के घटाव) में कृषीत्तर सेक्टर की असमर्थता का कारण यह तथ्य है कि ''अधिकांश रोजगार जो इसने पैदा किए हैं, वे निरक्षर या प्राथमिक स्तर तक शिक्षित व्यक्तियों नहीं बल्कि शिक्षित कामगारों के लिए है।'' (EPW, 2009)।

5) उपर्युक्त प्रवृत्तियों के फलस्वरूप ''कुल कृषि कामगारों का कृषि श्रमिक'' प्रतिशत 1951 में 28.1 से तेज़ी से बढ़कर 2001 में 45.6 प्रतिशत हुआ है।

6) ''किसान ग्रामीण जनसंख्या'' का प्रतिशत (अर्थात् कॉलम 3 का 2 से) 1971 (17.8 प्रतिशत) और 2001 (17.1 प्रतिशत) लगभग अवरुद्ध रहा है। ये प्रवृत्तियाँ इस अवधि के दौरान वास्तविक किसान को भूमि का स्वामित्व प्रदान करने के लिए भूमि सुधार उपायों के घटिया क्रियान्वयन की अभिव्यक्ति हैं।

24.3.2 सीमांत किसानों की बढ़ती हुई संख्या

तालिका 24.2 में 1961-2006 की अवधि के दौरान किसानों की भिन्न-भिन्न श्रेणी के लिए प्रचालनाधीन जोतों का विवरण प्रस्तुत है। तालिका से प्रकट होने वाली मुख्य प्रवृत्तियां निम्नलिखित हैं :

1) छोटे, मध्यम और बड़े किसानों के अनुपात में ह्रास और सीमांत किसानों के अनुपात में तद्नुरूपी तीव्र वृद्धि हुई है। सीमांत किसानों के प्रतिशत में वृद्धि 1961-2006 की अवधि में महत्त्वपूर्ण 25.7 प्रतिशत बिंदु रही है।

2) अधिक बड़े जोतों वाले किसानों की अन्य तीन श्रेणियों में मध्यम आकार के किसानों की संख्या में अति तीव्र ह्रास है; यह ह्रास 18.4 प्रतिशत बिंदु तक है।

3) सीमांत किसानों की श्रेणी में बढ़ती हुई प्रवृत्ति के कारण है – एक ओर बढ़ती हुई जनसंख्या और दूसरी ओर, जोतों का विखंडन।

चूंकि किसानों की सभी श्रेणियों में गरीबी विद्यमान है (यद्यपि अधिक बड़े जोतों के किसानों में यह उत्तरोत्तर कम हुई है), परंतु प्रश्न औसत कृषि परिवार द्वारा प्राप्त आय पर और गरीबी की रेखा से ऊपर जीवन निर्वाह करने के लिए उसकी पर्याप्तता पर उठता है। हम 2003 में NSSO द्वारा संचालित किसानों की स्थिति आकलन पर विशेष सर्वेक्षण के परिणामों के द्वारा इस स्थिति का आकलन कर सकते हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

तालिका 24.2 : किसानों की श्रेणी द्वारा प्रचालनाधीन जोतों का विवरण (%) – 1961-2006

किसानों की श्रेणी	1960-61	1970-71	1980-81	1990-91	2000-01	2005-06
सीमांत	39.1	45.8	56.0	62.8	62.3	64.8
छोटे	22.6	22.4	17.8	16.3	19.0	18.5
मध्यम	33.8	28.8	21.8	18.1	17.3	15.4
बड़े	4.5	3.1	1.9	1.3	1.4	1.3
सभी	**100.0**	**100.0**	**100.0**	**100.0**	**100.0**	**100.0**

स्रोत : कृषि सांख्यिकीय 2001 (2000-01 और 2005-06) पपोला 2010 (1961-1991 के लिए)

नोट : मध्यमों में उपमध्यम भी शामिल हैं।

24.3.3 आय/उपभोग व्यय में कमी

तालिका 24.3 में कार्यकलापों के भिन्न-भिन्न स्रोतों से ''कुल आय'' और किसानों के भिन्न-भिन्न श्रेणियों के लिए किए गए कुल उपभोग व्यय पर आंकड़े प्रस्तुत हैं। यह ''कुल उपभोग व्यय'' के संबंध में ''आय के अभाव'' का प्रतिशत भी प्रस्तुत करता है। आंकड़ों से जो मुख्य अंतर प्रकट होते हैं, वे इस प्रकार हैं:

1) औसतन किसानों की सभी श्रेणियों की प्रति माह आय रु. 655.00 तक ही होती है। दूसरे शब्दों में किसानों की सभी श्रेणियों को औसतन रूप से

लगभग 24 प्रतिशत आय का अभाव रहता है। किसानों की एक श्रेणी, जिसके पास अधिशेष आय है, मध्यम और उच्च श्रेणी है (अधिशेष लगभग रु. 4208.00 है)।

2) आय के अभाव का स्तर भिन्न-भिन्न होता है। भूमिहीन की आय लगभग 40 प्रतिशत और छोटे किसानों की लगभग 20 प्रतिशत कम है। उपसीमांत और सीमांत श्रेणी के किसान की कमी प्रायः वैसी ही (लगभग 30 प्रतिशत) है।

3) आय के स्रोत के रूप में मजदूरी स्वाभाविक रूप से भूमिहीन वर्ग में उच्चतम (77.9 प्रतिशत) थी। जोतों के आकार में वृद्धि से मजदूरी से आय का स्रोत उत्तरोत्तर घटता है, उपसीमांत (60 प्रतिशत), सीमांत (40 प्रतिशत) छोटे (25 प्रतिशत) और मध्यम तथा उच्च (9 प्रतिशत) हैं।

4) आय के अभाव का एक परिणाम यह है कि ''मध्यम और उच्च'' श्रेणी को छोड़कर सभी वर्ग के किसान संभवतः ऋणग्रस्त हैं। जब कोई परिवार अपने बजट में कमी अनुभव करता है, तो वह ऋण से ही उस कमी को पूरा करता है। यह महत्त्वपूर्ण है।

2003 की ''स्थिति आकलन सर्वेक्षण (SAS)'' रिपोर्ट ने, आगे किसानों में ऋणग्रस्तता की सीमा और स्रोत का (जहां से वे इसे पूरा कर सकें) अध्ययन किया है। यद्यपि जोतों की सभी श्रेणियों के किसान ऋणग्रस्त थे, परंतु जो अधिक बड़े जोत समूह में थे, वे भूमिहीन की तुलना में प्रायः अधिक ऋणग्रस्त थे, यद्यपि औसतन 49 प्रतिशत किसान परिवार ऋणग्रस्त थे, किंतु, हमें जोत आकार के दो श्रेणियों के तद्नुरूप प्रतिशत आंकड़े ही उपलब्ध हैं : (i) वे जिनके पास कोई भूमि नहीं है या 1 हेक्टेयर तक है, 46 प्रतिशत, और (ii) वे जिनके पास 2 हेक्टेयर भूमि है, 58 प्रतिशत। इसके अलावा, यद्यपि मध्यम और उच्च किसान परिवारों की बहुत बड़ी संख्या संस्थागत स्रोतों से ऋण ले सकती है (67 प्रतिशत) परंतु छोटे और सीमांत किसान की तद्नुरूपी प्रतिशत अपेक्षाकृत कम है। (क्रमशः 58 प्रतिशत और 47 प्रतिशत) ''ऋण का प्रयोजन'' पर आंकड़े दर्शाते हैं कि लगभग 30 प्रतिशत ने पूँजीगत व्यय के लिए, 35 प्रतिशत ने चालू उत्पादन

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

तालिका 24.3 : किसानों की श्रेणी द्वारा आय (रु.) में कमी, 2002-03

किसानों की श्रेणी (परिवार)	औसत मासिक आय से				कुल आय (कमी)	कुल उपभोग व्यय
	खेती	मजदूरी	पशुपालन	कृषीत्तर व्यापार		
भूमिहीन	11	1075	64	230	1380(40.0)	2297
उपसीमांत	296	973	94	270	1600(31.7)	2390
सीमांत	784	720	112	193	1809(32.3)	2672
छोटे	1578	635	102	178	2493(20.8)	3148
मध्यम और उच्च	15682	1680	182	1393	18937(*)	14729
सभी श्रेणियां	969	819	91	236	2115(236)	2770

स्रोत : भल्ला 2008

नोट : (*) इस श्रेणी के लिए कोई आय कमी नहीं है।

व्यय के लिए और 35 प्रतिशत ने उपभोग व्यय के लिए ऋण लिया है। किसानों की श्रेणी के अनुसार लगभग 61 प्रतिशत भूमिहीनों ने उपभोग व्यय के लिए ऋण लिया। चालू उपभोग व्यय के लिए लिए गए ऋण भूमिजोतों के आकार में वृद्धि से होने पर कम रह जाते हैं। कुल मिलाकर, कृषि द्वारा आजीविका में धारणीयता और सुधार किसानों के बहुत बड़े भाग की मुख्य चिंता थी।

बोध प्रश्न 2

नीचे दिए गए स्थान में अपना उत्तर लगभग 50 शब्दों में दीजिए।

1) कृषि श्रमिकों में विद्यमान प्रवृत्तियों के आधार पर भारत में श्रम-अंतरण की प्रक्रिया के बारे में क्या कहा जा सकता है? यह ऐसा क्यों है?

....

....

....

....

2) निम्नलिखित के बारे में क्या प्रवृत्ति रही है : (i) कुल कृषि कामगारों से कृषि श्रमिकों का अनुपात और (ii) कुल ग्रामीण समुदाय से किसानों की किस श्रेणी का अनुपात तेज़ी से बढ़ा है? यह किन कारकों के कारण है?

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

....

....

3) 1961-2006 की अवधि में किसानों की किस श्रेणी का अनुपात तेज़ी से बढ़ा है? यह किन कारकों के कारण है?

....

....

....

....

4) किसानों की श्रेणी के अनुसार ''आय का अभाव'' पर प्रवृत्ति भारत में औसत किसान परिवार के बारे में क्या सूचित करती है?

....

....

....

....

5) भारत में किस सीमा तक किसान परिवारों की भिन्न-भिन्न श्रेणियाँ ''संस्थागत ऋण'' पाने में समर्थ रही हैं?

....

....

....

....

6) लिए गए ऋण का कितना अनुपात उत्पादनकारी परिसंपत्तियों के निर्माण के लिए था? उपभोग व्यय के लिए लिया गया ऋण किसानों की श्रेणी तथा उनकी जोतों के आकार के अनुसार कैसे भिन्न होता है?

....

....

....

....

24.4 कृषि श्रमिकों की आजीविका प्रस्थिति सुधारने के लिए कार्यक्रम

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

1960 के दशक के मध्य में सरकार ने अनुभव किया कि कृषि श्रमिकों और सीमांत/छोटे किसानों के लिए विशेष सहायता आवश्यक है ताकि वे कृषि संवृद्धि की प्रक्रिया से लाभ प्राप्त कर सकें। इससे विशेषकर कृषि कार्यों की मंदी के मौसम के दौरान रोजगार प्राप्त करने में उनकी सहायता करने के लिए बहुत से कार्यक्रम क्रियान्वित किए गए हैं। इनमें से कुछ कार्यक्रम कृषि उन्मुख हैं जबकि अन्य का उद्देश्य स्व-रोजगार संवर्धन है। समय-समय पर बहुत से पिछले कार्यक्रमों का विलय नए कार्यक्रमों से किया गया। इस भाग में हम इन कार्यक्रमों में विहंगावलोकन करेंगे।

24.4.1 कृषि उन्मुख कार्यक्रम

चौथी पंचवर्षीय योजना (1969-74) के दौरान दो एजेंसियों, अर्थात् (i) छोटे किसान विकास एजेंसी (SFDA) और (ii) सीमांत किसान और कृषि श्रमिक विकास एजेंसी (MFALDA) की स्थापना की गई। इन एजेंसियों को ऐसे कार्यक्रम शुरू करने थे : छोटी सिंचाई साधनों (भूमि विकास और मृदा संरक्षण कार्य प्रारंभ करके) की स्थापना से भूमिहीन श्रमिकों और सीमांत/छोटे किसानों की सहायता करना और संबद्ध कृषि कार्यों द्वारा आय अर्जित करने के लिए अपने साधनों का विस्तार कर पशुओं का उपार्जन करना। इसे ध्यान में रखते हुए उन्हें मुख्यतः जिला स्तर पर स्थापित किया गया। 1980 तक इस के संरक्षण में अनुमानतः 8 मिलियन व्यक्तियों की सहायता की गई। अनुवर्ती वर्षों में दो कार्यक्रमों/एजेंसियों का विलय 'एकीकृत ग्राम विकास कार्यक्रम' IRDP में किया गया।

24.4.2 स्वरोजगार कार्यक्रम

गरीब परिवारों में स्वरोजगार प्रोत्साहित करने पर 1970 के दशक के अंत में IRDP के प्रारंभ से विशेष बल दिया गया था। कार्यक्रम का उद्देश्य गरीबों को भूमि से भिन्न परिसंपत्तियां अर्जित करने की सहायता देना था। इसके लिए कार्यक्रम ने साहाय्य और बैंक ऋण के लिए सहायता दी। 1979-1999 तक इस कार्यक्रम के अंतर्गत के 20 वर्षों के दौरान अनुमानतः 54 मिलियन परिवारों को सहायता दी गई। IRDP के बहुत से मूल्यांकन अध्ययनों से ज्ञात हुआ है कि गरीब परिवारों की आय संपूरित करने के लिए कार्यक्रम का योगदान महत्त्वपूर्ण था। जो इस कार्यक्रम की सहायता से गरीबी की रेखा से ऊपर उठ सके, उन परिवारों की अनुमानित संख्या लगभग 15 प्रतिशत थी। IRDP की मुख्य आलोचना यह थी कि यद्यपि यह स्वरोजगार उद्यम की सफलतापूर्वक स्थापना के लिए अपेक्षित सभी सहायता प्रदान करने की दृष्टि से ''एकीकृत'' थी परंतु व्यवहार में यह बहुत ही कम एकीकृत सिद्ध होती थी। इसके अलावा प्रत्येक परिवार को औसत रूप से रु. 9000/– की निवेश सहायता दी गई जो किसी उद्यम को शुरू करने और उसे चलाने के लिए बहुत कम समझा गया था। 1999 में IRDP को ''स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना'' (SGSY) द्वारा प्रतिस्थापित किया गया। SGSY ने स्वावलंबन समूहों (SHGs) के गठन द्वारा सामाजिक जागरूकता से माइक्रो उद्यम के विकास पर ध्यान केंद्रित किया। इसके अलावा, अति आवश्यक एकीकृत स्वरूप सुधारने के लिए इसने ऐसे उपाय अपनाए : (i) कार्यकलापों के संकुलों की योजना, (ii) आधारभूत संरचना निर्माण, (iii) प्रौद्योगिकी सहायता, और (iv) विपणन संयोजन। 2009-10 तक लगभग 10 मिलियन SHG स्वरोजगार समूहों और 4 मिलियन वैयक्तिक स्वरोजगारिकों को इस कार्यक्रम के अधीन सहायता दी गई। प्रतिस्वरोजगारी औसत निवेश (ऋण और साहाय्य) 2009-10 में रु. 32,009.00 था। यद्यपि यह IRDP के अधीन प्रति स्व-रोजगारयुक्त व्यक्ति द्वारा प्राप्त सहायता की अपेक्षा अधिक थी, फिर भी इसे 1,00,000 की राशि से बहुत कम पाया गया जिसे स्वरोजगार उद्यम के लिए न्यूनतम निवेश आवश्यकता माना गया था। इसके अलावा सबसे अच्छा निष्पादन करने वाले राज्यों (जैसे आंध्र प्रदेश और केरल) में भी लाभभोगियों को प्रति मास केवल 2000 रुपये की मासिक आय अर्जित करता हुआ पाया गया है। इसे ध्यान में रखते हुए ग्रामीण परिवारों को अपनी आय संपूरित करने के लिए मजदूरी श्रम सहित कई कार्य करने पड़ते हैं। इसके आलोक में ''ऋण संबंधी समस्याओं पर समिति'' (राधाकृष्ण समिति, 2009) ने SGSY की पुनर्संरचना करने और इसे कुशलता आधारित मजदूरी रोजगार कार्यक्रमों से मिलाने की सिफारिश की।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

24.4.3 मजदूरी रोजगार कार्यक्रम

ग्रामीण गरीबों की सहायता करने के लिए मजदूरी रोजगार अवसर देने की आवश्यकता बहुत लंबे समय से अनुभव की जा रही थी। परंतु इसे 1990 के दशक के प्रारंभ में प्रोत्साहन मिला जब NSSO के रोजगार-बेरोजगार सर्वेक्षणों द्वारा तैयार की गई बेरोजगारी के पंचवर्षीय अनुमान उपलब्ध हुए। दूसरे शब्दों में, इन अनुमानों ने योजनाकारों की ग्रामीण क्षेत्रों में पैदा किए जाने वाले रोजगार के परिमाणात्मक अनुमान तैयार करने में सहायता की। प्राकृतिक आपदाओं के दौरान सामूहिक राहत प्रदान करने के लिए श्रम प्रधान सार्वजनिक कार्य कार्यक्रमों

के लंबे अनुभव से प्रथम मजदूरी रोजगार कार्यक्रम, ''राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम'' (NREP) 1980 में प्रारंभ किया गया। गरीबी उन्मूलन प्रयास के नाम से प्रारंभ किये गये, NREP के दो उद्देश्य थे : (i) ग्रामीण गरीबों को मजदूरी आय प्रदान करना, और (ii) ग्रामीण आधारभूत संरचना का निर्माण करना। 1983 में ''ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम'' (RLEGP) ग्रामीण भूमिहीनों को 100 दिनों की रोजगार गारंटी देने के उद्देश्य से शुरू किया गया था। एक अन्य कार्यक्रम अर्थात् ''रोजगार आश्वासन योजना'' (EAS) भी 1983 में चुनिन्दा पिछड़े क्षेत्रों में 100 दिनों के रोजगार देने के वैसे ही उद्देश्य से प्रारंभ की गई थी। NREP और RLEGP को ''जवाहर रोजगार योजना'' (JRY) में विलय किया गया। बाद में, 2001 में सभी मजदूरी रोजगार कार्यक्रमों को ''संपूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना'' (SGRY) में विलय किया गया। किसी भी नियत एक वर्ष के दौरान मजदूरी रोजगार कार्यक्रम रोजगार ''व्यक्ति दिन'' की पर्याप्त संख्या पैदा कर सकते थे। उदाहरण के लिए, 1998-99 में रोजगार के लगभग 4.4 मिलियन व्यक्ति वर्ष, अर्थात् उस वर्ष के कुल श्रम बल व्यक्ति वर्षों को लगभग 1.5 प्रतिशत पैदा किये गये थे। इन सभी प्रयासों के बावजूद यह देखा गया कि ये सभी कार्यक्रम अपेक्षित संपूरक रोजगार के केवल छोटे से अंश को पूरा कर सकते थे, और इसलिए 1990 के दशक और उसके बाद साधारणतया ग्रामीण परिवारों की पारिवारिक आय में बहुत कम योगदान कर पाते थे। इसके फलस्वरूप 2004 में ''राष्ट्रीय किसान आयोग'' का गठन हुआ। आयोग ने वर्ष 2004-06 के दौरान अपनी कई रिपोर्ट प्रस्तुत कीं, उन्होंने अपनी रिपोर्टों में कृषि वृद्धि में मंदगति पर गंभीर चिंता उठाई और विशेषकर वर्षा प्रधान क्षेत्रों के सीमांत तथा छोटे किसानों की दशा को ''विपत्ति'' की संज्ञा दी। इसके परिणाम में 2005 में राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम बनाया गया। हम इसके बारे में पाठ्यक्रम की अगली इकाई में अध्ययन करेंगे।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

24.4.4 क्षेत्र विकास कार्यक्रम

स्वरोजगार और मजदूरी रोजगार कार्यक्रमों की उपयुक्तता और प्रभावशीलता अलग-अलग क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न होती है क्योंकि यह क्षेत्र में अन्यान्य संसाधनों की विद्यमानता पर निर्भर करता है। इसे प्राप्त करने में क्षेत्र विशेष के विकास और किसान तथा कार्यक्रमों पर भी ध्यान केंद्रित करने के प्रयास किए जाते हैं, इस श्रेणी के अधीन ''सूखा प्रणव क्षेत्र कार्यक्रम'' (DPAP) 1973-74 में शुरू प्रथम प्रयास था। इसका ध्येय उत्पादकता, जल और मानव संसाधनों की आवश्यकताओं पर ध्यान केंद्रित कर फसलों के उत्पादन और पशुओं पर सूखे के प्रतिकूल प्रभावों न्यूनीकरण करना था। कार्यक्रम का अंतिम उद्देश्य ऐसे क्षेत्रों को ''सूखा सह'' बनाना था। यद्यपि DPAP टिकाऊ परिसंपत्तियों का निर्माण करने में सफल था परंतु सूखे के प्रतिकूल प्रभाव नियंत्रित करने पर समग्र रूप से प्रभावकारी नहीं था। हनुमंथाराव समिति (1993) ने DPAP कार्यक्रम की समीक्षा की। उसने क्रियान्वयन के ''भौगोलिक रूप से और कार्यकलाप अनुसार अत्यधिक असंबद्ध और अव्यवस्थित स्वरूप'' को घटिया निष्पादन का कारण बताया। इसके बाद DPAP की पुनर्रचना कर इसे जलविभाजक विकास कार्यक्रम की संज्ञा दी गई। इसके बाद के वर्षों में DPAP के प्रकल्पों के साथ-साथ जलविभाजक और बंजर विकास विभाजक कार्यक्रमों को समन्वित रूप से चलाया गया। अधिक समाकलित दृष्टिकोण के लिए इन तीनों के लिए उभयनिष्ठ दिशा-निर्देश जारी किए गए थे। ग्यारहवीं

योजना (2007-15) में तीन कार्यक्रमों को एक ही कार्यक्रम अर्थात् ''एकीकृत बंजर भूमि प्रबंधन कार्यक्रम'' (IWMP) में समेकित कर दिया गया।

24.4.5 राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन (NRLM)

NRLM 2010 के बाद की पहल है, यह ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी की रेखा (BPL) से बीच के परिवारों में गरीबी कम करने के उद्देश्य से क्रियान्वित की गई। मिशन ने निम्नलिखित द्वारा ग्रामीण गरीबों की आजीविका सुदृढ़ करने के लिए बहुआयामी दृष्टिकोण अपनाया है : (i) SHG का संवर्धन, और (ii) कुशलता विकास और नौकरी दिलाकर विद्यमान व्यवसायों को सुधारना। मिशन ''जिला ग्राम विकास एजेंसियों'' (DRDA) के माध्यम से विकेंद्रीकृत आधार पर क्रियान्वित किया गया है। यह स्वीकार करते हुए कि स्वरोजगार का संवर्धन अकेले ही सभी परिवारों के लिए समाधान नहीं हो सकता है, मिशन के साथ-साथ मजदूरी और वेतन आधारित रोजगार अपनाने के लिए ऐसे कुशलता संपन्न परिवारों में कामगारों को तैयार करने के प्रयास अपना रहा है। इसके लिए, मिशन अपने प्रयास ''राष्ट्रीय कुशलता विकास मिशन''(NSDM) के प्रयासों से संबद्ध कर रहा है। इस माध्यम से मिशन संकल्पना करता है: कई ''ग्राम स्वरोजगार प्रशिक्षण संस्थान'' (RSETI) स्थापित करना, और (iii) विद्यमान आधारभूत प्रशिक्षण संरचना का उपयोग कर नियोजन योग्य कुशलता में प्रशिक्षण देना और ग्रामीण युवकों की कुशलता विकास के लिए मास्टर शिल्पी का प्रशिक्षण देना।

24.4.6 ग्यारहवीं योजना की पहलें

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

ग्यारहवीं योजना का उद्देश्य कृषि में सार्वजनिक निवेश कृषि (GDP) के 3 प्रतिशत से 4 प्रतिशत बढ़ाकर कृषि सेक्टर की गतिशीलता पुनःस्थापित करना था। इसके अलावा, कृषि में 4 प्रतिशत संवृद्धि सुनिश्चित करने के लिए वर्षा प्रधान क्षेत्रों के लिए विशेष कार्यक्रम प्रारंभ किये गए। आप इस पाठ्यक्रम के पिछले खंड (इकाई 22) में पहले से प्रारंभ की गई कई योजनाओं के बारे में पढ़ चुके हैं, जैसे (i) राष्ट्रीय कृषि विकास योजना (RKVY), और (ii) कृषि योजना का मैक्रोप्रवर्धन (MMAS)। ग्यारहवीं योजना का महत्त्वपूर्ण पहलू ''सामाजिक संदर्भ'' पर उसका विशेष ध्यान था। इसमें भूमि सुधार, जनजाति लोगों के भूमि अधिकारों का संरक्षण, वासभूमि अधिकारों की सुरक्षा और काश्तकारी अधिकारों की समस्याओं पर विशेष ध्यान देने का प्रयास किया गया। इस प्रकार के दृष्टिकोण को पिछली दशाब्दियों में अपनाई गई उत्पादन केंद्रित रणनीतियों से विचलन प्रतिबिंबित करने वाला कहा गया था।

24.4.7 बारहवीं योजना का दृष्टिकोण

बारहवीं योजना, विशेषकर देश के वर्षा प्रधान क्षेत्रों में कृषि संबंधी संकट की निरंतर मौजूदगी को स्वीकार करती है। आठवीं योजना अवधि में प्रारंभ किए गए उपचारी कार्य बारहवीं योजना में भी जारी रखने का प्रस्ताव किया गया। इन कार्यों में योजना आबंटन में पर्याप्त वृद्धि शामिल है : (i) ग्रामीण आधारभूत संरचना के लिए भारत निर्माण (BNRI) के लिए, (ii) MGNREGA के अधीन भूमि और जल संरक्षण से रोजगार सुरक्षा जोड़ने के लिए (देखिए इकाई 25), और (iii) अधिक गरीब क्षेत्रों में पंचायती राज संस्थाओं (PRI) को पिछड़ा क्षेत्र अनुदान

निधि (BRGF) के अधीन बजट संबंधी सहायता के लिए अपनी योजनाएं स्वयं बनाने के लिए सक्षम बनाना।

बोध प्रश्न 3

नीचे दिए गए स्थान में अपना उत्तर लगभग 50 शब्दों में दीजिए।

1) चौथी पंचवर्षीय योजना के दौरान स्थापित दो फार्म उन्मुखी कार्यक्रमों का क्या उद्देश्य था? 1980 तक उनकी प्रगति क्या थी?

....

....

....

....

2) IRDP का क्या उद्देश्य था? अपने जीवनकाल में उसकी उपलब्धि क्या है?

....

....

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

3) IRDP के मूल्यांकनकर्त्ताओं द्वारा की गई दो मुख्य आलोचनाएं क्या थीं?

....

....

....

....

4) IRDP में कमियों को उसके उत्तरवर्ती कार्यक्रम SGSY में दूर कैसे किया गया? इसके लिए SGSY द्वारा अपनाया गया दृष्टिकोण क्या था?

....

....

....

....

5) SGSY किस संबंध में और किस सीमा तक IRDP से अधिक सुधार कर सकता है? इसके बावजूद SGSY पर ''ऋण संबंधी समस्याओं'' पर समिति के क्या प्रेक्षण थे?

....

....

....

....

6) 1980 के दशक के दौरान प्रारंभ किए गए दो मजदूरी रोजगार कार्यक्रमों के दो मुख्य उद्देश्यों का उल्लेख कीजिए। किस सीमा तक मजदूरी रोजगार कार्यक्रम ग्रामीण गरीबों की रोजगार आवश्यकताएं पूरी कर सका?

....

....

....

....

7) 1970 के दशक के प्रारंभ में शुरू किया गया ''क्षेत्र विकास कार्यक्रम'' क्या था? 1990 के दशक में इसे पुनःरचित क्यों किया गया?

....

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

8) ग्रामीण गरीबी कम करने के लिए 2010 के बाद पहल का नाम बताइए, इसके दृष्टिकोण के दो तत्व क्या हैं?

....

....

....

....

9) NRLM ग्रामीण कामगारों में कुशलता विकसित करने के उसके उद्देश्य प्राप्त करने का उद्देश्य कैसे करता है?

....

....

....

....

10) ग्यारहवीं योजना ने भारतीय कृषि सेक्टर में गतिशीलता पुनःस्थापित करने का प्रयास कैसे किया? अपनी पिछली अंगीकृत रणनीतियों से विचलन में उसका दृष्टिकोण क्या था?

……………………………………………………………………………………

……………………………………………………………………………………

……………………………………………………………………………………

……………………………………………………………………………………

11) बारहवीं योजना कृषि संबंधी संकट की समस्या का समाधान करने के लिए किस दिशा में जाने का प्रस्ताव करती है?

……………………………………………………………………………………

……………………………………………………………………………………

……………………………………………………………………………………

……………………………………………………………………………………

24.5 कृषि मजदूरी : आंकड़ा संसाधन और प्रवृत्तियां

सामान्यतः मजदूरियों और विशेष रूप से कृषि मजदूरियों की महत्त्वपूर्ण विशेषता उनमें कार्यों और लिंग के अनुसार अंतर है। यद्यपि न्यूनतम मजदूरी अधिनियम (1948) कृषि कामगारों के लिए सांविधिक न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करता है, परंतु व्यवहार में विद्यमान मजदूरी दर बहुत कम है। इसके अलावा, यद्यपि न्यूनतम मजदूरी अधिनियम अवस्थिति या लिंग का लिहाज किए बिना राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी विनिर्दिष्ट करता है, कृषि सेक्टर में लिंग के बीच मजदूरियों में अंतर है और कृषि और कृषीत्तर सेक्टरों के बीच कामगारों के लिए भिन्न है। दूसरे शब्दों में, मजदूरियों के मामले में ये अंतर सेक्टर और अंतरा सेक्टर असमानताएं हैं। इन आयामों को शामिल करते हुए हम इस भाग में आंकड़ा स्रोतों और प्रवृत्तियों की दृष्टि से कृषि मजदूरी का विहंगावलोकन करेंगे।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

24.5.1 आंकड़ा स्रोत

ग्रामीण श्रम जांच (RLE) की रिपोर्टें कृषि और संबद्ध कार्यों जैसे जोताई, बोआई, रोपाई, निराई और फसल कटाई, खेती, वानिकी, प्लांटेशन, पशुपालन और मत्स्य पालन के भिन्न प्रकारों के लिए अर्जन पर आंकड़े देती हैं। 1977-78 से RLE रिपोर्टों के लिए आंकड़ा एकत्र करने का कार्य NSSO के पंचवर्षीय रोजगार-बेरोजगार सर्वेक्षणों से समाकलित दिया गया है। NSSO द्वारा आंकड़ा एकत्र करने के बाद ''ग्रामीण श्रमिक परिवारों की मजदूरियों और अर्जन'' पर (RLE) की रिपोर्टें श्रम ब्यूरो द्वारा संकलित और प्रकाशित की जाती है। इस संबंध में प्रकाशित अद्यतन रिपोर्ट वर्ष 2004-05 के लिए 61वें NSSO दौर की है (2010 में छह वर्ष के अंतर से प्रकाशित। इससे पहले कि हम (वर्ष 1993-94, 1999-2000 और 2004-05 की तीन पूर्ववर्ती रोजगार-बेरोजगार सर्वेक्षण रिपोर्टों में आंकड़ों से) कृषि कामगारों की मजदूरियों में प्रवृत्ति का अध्ययन करें, ''उन'' दो विशिष्ट लक्षणों का उल्लेख करना उचित होगा जिनका सुसंगति आयाम पर प्रभाव होता है। एक का संबंध उनकी ''अनुमानित संख्या'' से है और दूसरे का उनके ''अर्जन/मजदूरियों'' से है।

1) **अनुमानों में अंतर** : पहले हमने उपभाग 24.3.1 में नोट किया था कि 2001 की जनगणना रिपोर्ट के अनुसार ''कृषि श्रमिकों'' की संख्या 106.8 मिलियन थी और ''कुल कृषि कामगारों'' का प्रतिशत के रूप में (अनुमानित 234.1 मिलियन) कृषि श्रमिक 45.6 प्रतिशत थे। अनौपचारिक या असंगठित सेक्टर कामगारों की इतनी विशाल संख्या की समस्याओं का समाधान करने के महत्त्व को महसूस करते हुए भारत सरकार ने 2004 में ''राष्ट्रीय असंगठित सेक्टर उद्यम आयोग'' (NCEUS) गठित किया। अन्य बातों के साथ आयोग को ''भारत में असंगठित क्षेत्र कामगारों की उनके आकार, विस्तार, कार्यक्षेत्र और रोजगार की परिमात्रा के अनुसार प्रस्थिति की समीक्षा करने'' का कार्य सौंपा गया। आयोग कई रिपोर्टें प्रस्तुत कर चुका है और इन्हें भारत में असंगठित सेक्टर पर महत्त्वपूर्ण आंकड़ा स्रोत के रूप में उल्लिखित किया जा सकता है। ''कार्य की दशाएं और आजीविकाओं का संवर्धन'' (NCEUS, 2007) पर अपनी रिपोर्ट में आयोग ने प्रेक्षण किया कि (i) प्रायः सभी कृषि श्रमिक मजदूरियों के बदले (घंटे के आधार पर या काम के अनुसार दर पर भुगतान) कृषि में हाथ के काम पर निर्भर अनियत श्रमिक है, और (ii) 2004-05 में भारत में कृषि श्रमिकों की अनुमानित संख्या 87 मिलियन है जो भारत में कुल 253 मिलियन कृषि कामगारों का 34 प्रतिशत है। NSSO आंकड़ा पर आधारित कृषि श्रमिकों की अनुमानित संख्या, इस प्रकार जनगणना के आंकड़ों से कम थी। इसलिए, यह नोट करना महत्त्वपूर्ण है कि आंकड़ा संग्रहण की सीमाओं के कारण भिन्न-भिन्न स्रोतों द्वारा अनुमान पर्याप्त अलग हो सकते हैं। उदाहरण के लिए, NCEUS ने प्रेक्षण किया कि ''असंगठित सेक्टर पर LB के सर्वेक्षण में पारिवारिक श्रम द्वारा संचालित छोटे उद्यम में स्व-नियोजित कामगार शामिल नहीं हैं।'' यह हमें भिन्न-भिन्न स्रोतों द्वारा आंकड़ों का प्रयोग करते समय आंकड़ों के संग्रहण के लिए अपनाई गई संकल्पना और परिमात्रा का सावधानी के साथ विश्लेषण से अनुमानों/अनुपातों की सीमा के अनुसार जाने का महत्त्व बताता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

2) **न्यूनतम मजदूरी के लिए दो मानदंड** : 2004-05 कीमत में शहरी-ग्रामीण अवस्थिति को ध्यान में रखे बिना न्यूनतम मजदूरी अधिनियम द्वारा निर्धारित हाथ के काम के लिए राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी 66 रुपये है। परंतु यह प्रेक्षण करते हुए कि 2002 में कामगारों की बड़ी संख्या न्यूनतम मजदूरी अधिनियम के संरक्षण के बाहर रही, NCEUS ने ग्रामीण क्षेत्रों के लिए 49 रुपए वैकल्पिक ''बुनियादी न्यूनतम मजदूरी'' का प्रस्ताव किया।

24.5.2 कृषि मजदूरियों में प्रवृत्तियां

तालिका 24.4 में लिंग और कृषि/कृषीत्तर कार्यों में मजदूरी की असमानता में प्रवृत्तियां दिखाई गई हैं। मुख्य अनुमान जो आंकड़ों से निकलता है और राज्यों द्वारा मजदूरियों में प्रवृत्तियों पर कुछ अतिरिक्त तथ्य इस प्रकार हैं :

1) कृषि में 2004-05 में मजदूरी (2004-05 कीमतों पर) NCEUS द्वारा प्रस्तावित बुनियादी न्यूनतम मजदूरी से भी थोड़ी कम थी।

2) लिंग के अनुसार महिलाओं को पुरुषों की अपेक्षा 31 प्रतिशत कम मजदूरी मिली। पुरुष मजदूरी से महिला मजदूरी का अनुपात 1994-2005 की अवधि में लगभग वैसा ही रहा है।

3) दोनों लिंगों के लिए मजदूरी में वृद्धि दर 1994-00 की अवधि की तुलना में 2000-05 के दौरान बहुत तेजी से मंदन हुए (पुरुषों के लिए 2.8 से 1.4 प्रतिशत और महिलाओं के लिए 2.9 से 1.5 प्रतिशत)। परंतु, पुरुष और महिला दोनों कामगारों के लिए मजदूरी में वृद्धि 1994-2005 की 11 वर्ष की अवधि में वैसी ही (2.2 प्रतिशत) थी। यह 2000 के दशक के पूर्वार्ध में 1990 के दशक के उत्तरार्ध की तुलना में स्थायित्व सूचित करता है।

तालिका 24.4 : कृषि मजदूरियों में असमानता 1993-94 से 2004-05

लिंग/अनुपात	वर्ष	मजदूरी रुपए/श्रम दिवस 2004-05 कीमतें	वृद्धि दर (%) अवधि
पुरुष	1993-94	37.9	2.8 (1994-00)
	1999-00	44.8	1.4 (2000-05)
	2004-05	48.1	2.2 (1994-05)
महिला	1993-94	26.5	2.9 (1994-00)
	1999-00	31.6	1.3 (2000-05)
	2004-05	33.4	2.2 (1994-05)
महिला का पुरुष मजदूरी से अनुपात	1993-94	0.70	
	1999-00	0.71	
	2004-05	0.69	
कृषि का कृषीत्तर से अनुपात	1993-94	0.66	
	1999-00	0.62	
	2004-05	0.65	

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

स्रोत : NCEUS, 2007

4) औसत कृषि मजदूरी दर का कृषीत्तर मजदूरी दर से अनुपात 1994-2005 की अवधि के दौरान लगभग 0.65 के आस-पास बना रहा। यह संकेत देता है कि कृषि श्रमिक को कृषीत्तर कार्य के लिए मजदूरी दो-तिहाई कम मिली।

5) न्यूनतम मजदूरी मानकों की कमी सभी राज्यों में थी। परंतु केरल, जम्मू और कश्मीर तथा हिमाचल प्रदेश अपवाद रहे। वहां कृषि श्रमिकों की बड़ी संख्या (71–83 प्रतिशत) राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी रुपये 160.00 से अधिक मजदूरी प्राप्त कर रही थी।

6) उपर्युक्त प्रतिशत कृषि की दृष्टि से समृद्ध राज्यों, अर्थात् पंजाब और हरियाणा में असाधारण रूप से कम था। हरियाणा में 58 प्रतिशत कृषि श्रमिक और पंजाब में 60 प्रतिशत 66 रु. के राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी से अधिक मजदूरी पा रहे थे।

बोध प्रश्न 4

नीचे दिए गए रिक्त स्थान में अपना उत्तर लगभग 50 शब्दों में लिखिए।

1) कृषि श्रमिकों की संख्या और उनकी मजदूरी पर आंकड़ों का स्रोत क्या है?

....

....

....

....

2) हमें भिन्न-भिन्न स्रोतों से ''कृषि श्रमिकों की संख्या का कुल कृषि कामगारों'' पर अनुपात के अनुपातों में व्यापक अंतर क्यों मिलता है? इसे ध्यान में रखकर सामान्य विशेषताओं पर भिन्न-भिन्न स्रोतों द्वारा संकलित आंकड़े प्रयोग करते समय क्या करना चाहिए?

....

....

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

3) कृषि में हाथ के काम के लिए निर्धारित ''न्यूनतम मजदूरी'' क्या है? NCEUS ने क्या कारण दिए जब उसने भारत में कृषि के लिए ''राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी'' से बहुत कम ''बुनियादी न्यूनतम मजदूरी'' का सुझाव दिया?

....

....

....

....

4) भारत में लिंग के अनुसार कृषि मजदूरी में असमानता की सीमा क्या है? भारत में (1993-94 और 2004-05 की अवधि में) कृषि और कृषीत्तर मजदूरी के बीच असमानता की सीमा क्या थी?

....

....

....

....

5) कृषि श्रमिकों के लिए न्यूनतम मजदूरी के संबंध में कौन-से तीन राज्य अपवाद थे? वे किस सीमा तक भिन्न थे?

....

....

....

....

6) कृषि मजदूरी परिस्थिति उपर्युक्त (5) में उल्लिखित की तुलना में कृषि की दृष्टि से समृद्ध राज्यों, पंजाब, हरियाणा में कृषि मजदूरी पर स्थिति की तुलना कैसे की गई?

....

....

....

....

24.6 सारांश

NSSO अनुमान है कि भारत में 2004-05 में कुल 253 मिलियन कृषि कामगारों में कृषि श्रमिकों की संख्या 34 प्रतिशत (87 मिलियन) है। कृषि श्रमिकों को कार्य की घटिया दशा से विभेद किया जाता है और परिणामतः ये घोर गरीबी से ग्रस्त होते हैं। वे सभी असंगठित क्षेत्र में हैं जिसमें विनियमन या सामाजिक सुरक्षा व्यवस्था का अभाव है। इस दशा को अनुभव करते हुए सरकार ने उनकी मजदूरी और स्वरोजगार अवसर बढ़ाने के लिए समय-समय पर कई कार्यक्रम प्रारंभ किए। समय-समय पर संचालित मूल्यांकन अध्ययनों ने उनकी सफलता और विफलता प्रकट की । इन जानकारियों को ध्यान में रखते हुए, सरकार ने कृषि श्रमिकों की दशा सुधारने के लिए कई नए उपाय किए। स्वतंत्रता के बाद पिछले छह दशकों में शुरू किए गए इन उपायों के बावजूद, अभी भी कृषि कामगार पर्याप्त काम तलाशने तथा हाथ के काम के लिए सांविधिक न्यूनतम मजदूरी प्राप्त करने में मजबूरियां झेल रहे हैं। कृषि/कृषीत्तर सेक्टर में कार्यों और लिंग के आधार दी गई मजदूरी में असमानता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

24.7 शब्दावली

कृषि श्रमिक : निम्नलिखित व्यवसायों में से किसी में भी नकद या वस्तु में दी गई मजदूरी के लिए अपने हाथ से कार्य करने वाला व्यक्ति (i) खेती, जोताई आदि सहित कृषि कार्य, (ii) डेयरी कार्य, (iii) उत्पादन, खेती और बागवानी पण्यवस्तुओं की कटाई, (iv) पशुपालन, मधुमक्खी या कुक्कुट पालन, और (v) वानिकी शहतीर बनाना, भंडारण/बाजार तक वितरण या विपणन के लिए परिवहन।

मजदूरी रोजगार : वे कार्य जो पूर्णकालिक या अंशकालिक आधार पर कार्य करने पर कार्यानुसार दर या वेतन (प्रशिक्षण भुगतान सहित) देता है। ऐसे काम दैनिक या आवधिक रूप से नवीकृत ठेका कार्य नहीं है।

अनियमित मजदूरी रोजगार : वे कार्य जिनमें भुगतान दैनिक या ठेके की अवधि के अनुसार देते हैं। ये सरकारी एजेंसियों या स्थानीय निकायों द्वारा प्रायोजित सार्वजनिक कार्यों पर निर्भर हैं। उन्हें सार्वजनिक कार्यों में अनियमित श्रमिक और अन्य प्रकार के कार्यों में अनियमित श्रमिक कहा जाता है।

24.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1) Agriculture Statistics at a Glance-2011, Table 2.3(1), Directorate of Eclonomics and Statistics, Department of Agriculture and Cooperation, Ministry of Agriculture, GoI, 2012.

2) Bhalla, G.S. (2008), Condition of Peasantry, National Book Trust, New Delhi.

3) Government of India (2011), Faster, Sustainable and More Inclusive Growth : An Approach to the Twelth Five Year Plan, Planning Commission, October, New Delhi. pp 67-68.

4) Labour Bureau (2010), Report on Employment and Unemployement Survey (2009-10), GoI, Chandigarh.

5) Mukesh, E. (et al.) (2009), Sectroal Labour Flows and Agricultural Wages in India, 1983-2004: Has Growth Tricked Down? EPW, January 10, pp 46-55.

6) National Statistical Commission (NSC), Report of the Committee on Unorganised Sector Statistics (Chairman : R. Radhakrishna), GoI, February, 2012.

7) National Commission for Enterprises in the Unorganises Sector (NCEUS) (2007), Report on Conditions of Work and Promotion of Livelihoods in the Unorganised Sector, Chapter 8 on Agricultural Labourers, pp 122-124.

8) Papola, P.S. (2010), Livelihood in Agriculture – Status, Policies and Prospects in State of India's Livelihoods Report 2010 (Ed. By Shankar Datta and Vipin Sharma), sage-Access.

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

24.9 बोध प्रश्नों के उत्तर/संकेत

बोध प्रश्न 1

1) देखिए भाग 24.1 और उत्तर दीजिए।

2) देखिए भाग 24.1 और उत्तर दीजिए।

3) देखिए भाग 24.1 और 24.2 और उत्तर दीजिए।

4) देखिए उपभाग 24.2.1 और उत्तर दीजिए।

5) देखिए उपभाग 24.2.2 और उत्तर दीजिए।

6) देखिए उपभाग 24.2.3 और उत्तर दीजिए।

7) देखिए उपभाग 24.2.3 और उत्तर दीजिए।

8) देखिए उपभाग 24.2.3 और उत्तर दीजिए।

9) देखिए उपभाग 24.2.4 और उत्तर दीजिए।

10) देखिए उपभाग 24.2.4 और उत्तर दीजिए।

11) देखिए उपभाग 24.2.4 और उत्तर दीजिए।

12) देखिए उपभाग 24.2.4 और उत्तर दीजिए।

बोध प्रश्न 2

1) देखिए उपभाग 24.3.1 और उत्तर दीजिए।

2) देखिए उपभाग 24.3.1 और उत्तर दीजिए।

3) देखिए उपभाग 24.3.1 और उत्तर दीजिए।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

4) देखिए उपभाग 24.3.2 और उत्तर दीजिए।

5) देखिए उपभाग 24.3.3 और उत्तर दीजिए।

6) देखिए उपभाग 24.3.3 और उत्तर दीजिए।

बोध प्रश्न 3

1) देखिए उपभाग 24.4.1 और उत्तर दीजिए।

2) देखिए उपभाग 24.4.2 और उत्तर दीजिए।

3) देखिए उपभाग 24.4.2 और उत्तर दीजिए।

4) देखिए उपभाग 24.4.2 और उत्तर दीजिए।

5) देखिए उपभाग 24.4.2 और उत्तर दीजिए।

6) देखिए उपभाग 24.4.3 और उत्तर दीजिए।

7) देखिए उपभाग 24.4.4 और उत्तर दीजिए।

8) देखिए उपभाग 24.4.5 और उत्तर दीजिए।

9) देखिए उपभाग 24.4.5 और उत्तर दीजिए।

10) देखिए उपभाग 24.4.6 और उत्तर दीजिए।

11) देखिए उपभाग 24.4.7 और उत्तर दीजिए।

बोध प्रश्न 4

1) देखिए उपभाग 24.5.1 और उत्तर दीजिए।

2) देखिए उपभाग 24.5.1 और उत्तर दीजिए।

3) देखिए उपभाग 24.5.1 और उत्तर दीजिए।

4) देखिए उपभाग 24.5.2 और उत्तर दीजिए।

5) देखिए उपभाग 24.5.2 और उत्तर दीजिए।

6) देखिए उपभाग 24.5.2 और उत्तर दीजिए।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इकाई 25 छोटे किसानों की विपत्ति और मनरेगा

संरचना

25.0 उद्देश्य

25.1 प्रस्तावना

25.2 राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (नरेगा–NREGA), 2005

25.2.1 क्रियान्वयन में मुख्य प्रक्रियाएँ

25.2.2 खास विशेषताएँ

25.2.3 महत्त्वपूर्ण पहलू

25.3 NREGA की प्रस्थिति : पंचवर्षीय आकलन

25.4 MNREGA : नई पहलें

25.4.1 शिकायत निपटान और सरलीकरण

25.4.2 सामाजिक समीक्षा सुदृढ़ीकरण

25.4.3 UIDA और राष्ट्रीय हेल्पलाइन से भागीदारी

25.5 अभिसरण

25.5.1 प्रत्याशित परिणाम

25.5.2 प्रगति

25.6 सारांश

25.7 शब्दावली

25.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

25.9 बोध प्रश्नों के उत्तर/संकेत

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

25.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप :

- छोटे किसानों की विपत्ति की समस्या की रूपरेखा उसके प्रमुख तत्वों/आयामों के अनुसार प्रस्तुत कर सकेंगे;
- NREGA की क्रियान्वयन प्रक्रिया का उसके महत्त्वपूर्ण पहलुओं पर फोकस के साथ वर्णन कर सकेंगे;
- क्रियान्वयन में पांच वर्षों के अनुभव के आधार पर NREGA का प्रस्थिति आकलन कर सकेंगे;
- 2009-10 में NREGA/MNREGA में शामिल नई पहलों को बता सकेंगे; और
- MNREGA में ''अभिमुखता'' की संकल्पना को अभी तक इस दृष्टिकोण के अधीन की गई प्रगति द्वारा समझा सकेंगे।

25.1 प्रस्तावना

जैसाकि हमने पिछली इकाई के उपभाग 24.2.1 में नोट किया था, 2004-05 में हाथ का काम करने वाले श्रमिक के लिए विद्यमान दैनिक मजदूरी दर पर कृषि श्रमिक परिवार के कम-से-कम तीन सदस्यों के लिए वर्ष में 200 से अधिक दिनों का रोजगार प्राप्त करना आवश्यक था ताकि वह अपने गरीबी के स्तर से ऊपर उठ सके। हमने यह भी नोट किया कि वास्तव में बहुत से परिवारों के लिए इतना अधिक रोजगार प्राप्त करना कठिन है, इसलिए ग्रामीण परिवारों में अभी भी गरीबी है। इस कारण से हमने पिछली इकाइयों में पुनः आग्रह किया था कि जमीनी वास्तविकता में चिंताजनक प्रवृत्तियां बनी हुई हैं। उदाहरण के लिए, हमने इकाई 19 में देखा है, जब सामान्यतया (अर्थात् ग्रामीण + शहरी क्षेत्रों में) खाद्यान्न की उपलब्धता 1990-91 में लगभग 510 ग्राम से घटकर 2009 में लगभग 444 ग्राम पर आ गई तब ग्रामीण परिवारों में प्रति व्यक्ति खाद्यान्न की खपत अपेक्षाकृत 1987-81 में 373 ग्राम से घटकर 2009-10 में 313 ग्राम रह गई थी। इसके अलावा, समय के चलते सीमांत किसानों के अनुपात में लगातार वृद्धि के अलावा (देखिए तालिका 24.2) कृषि परिवारों की तीनों श्रेणियों में (अर्थात् भूमिहीन, सीमांत और छोटे किसानों में) अपनी न्यूनतम उपभोग आवश्यकताएं पूरी करने के लिए आय में (20 से 40 प्रतिशत तक) भारी कमी रही है (तालिका 24.3)। परिणामस्वरूप ग्रामीण परिवारों को उपभोग आवश्यकताएं पूरी करने के लिए अनौपचारिक ऋण स्रोतों पर आश्रित होने की विवशता के कारण भूमिहीन/सीमांत/छोटे किसान ऋणग्रस्त हैं। अधिक स्पष्ट रूप से यद्यपि ग्रामीण परिवारों का लगभग 50 प्रतिशत ऋण ग्रस्त है, 60 प्रतिशत से अधिक भूमिहीन श्रमिक अपना खाद्य व्यय पूरा करने के लिए ऋण लेते हैं। ग्रामीण श्रमिकों को भुगतान की गई मजदूरी सांविधिक न्यूनतम मजदूरी से बहुत कम होती है और लिंग, स्थान और कार्य के स्वरूप के अनुसार उसमें भेद किया जाता है। इन चिंताजनक प्रवृत्तियों के कारण सरकार ने दसवीं योजना (2002-07) के मध्यावधिक मूल्यांकन में कृषि श्रमिकों और सीमांत/छोटे किसानों द्वारा अनुभव की जा रही ''विपत्तियों'' पर गंभीर चिंता जताई और सरकार ने उनकी कठिनाइयां कम करने के लिए कई कदम उठाए हैं। इस दिशा में सरकार की महत्त्वपूर्ण पहलों में एक हाथ से काम करने वाले अकुशल ग्रामीण श्रमिकों के लिए गारंटीशुदा मजदूरी रोजगार के अवसर प्रदान करने के लिए 2005 में कानून बनाना था (अर्थात् राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम, NREGA। यह अधिनियम उन सभी व्यक्तियों को सांविधिक न्यूनतम रोजगार की गारंटी देता है जो वर्ष में कम से कम 100 दिनों का अकुशल हाथ का काम चाहते हैं। इसके बाद 2007 में किसानों के लिए राष्ट्रीय नीति की घोषणा की गई, इसमें केवल उत्पादन पर बल देने के अलावा किसानों के आर्थिक कल्याण पर ध्यान देने की आवश्यकता पर बल दिया गया। NREGA के प्रारंभिक वर्षों के क्रियान्वयन के आकलन से प्रकट हुआ है कि यद्यपि इसमें चिंताजनक कमियां हैं, परंतु बहुत से पहलुओं में कार्यक्रम के गति पकड़ने के संकेत भी हैं। इन दृष्टियों से अब इसकी प्रभाविकता सुधारने के लिए लागू की गई ''नई पहलों'' के साथ योजना का पुनराभिन्यास किया गया है। इस पृष्ठभूमि में वर्तमान इकाई NREGA, 2005 की खास विशेषताओं का परिचय देता है। 2009 में उसके नये नाम, अर्थात् MNREGA को कुछ संशोधनों के साथ लागू किया गया। तब इकाई में ''अभिमुखता'' की संकल्पना

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

की चर्चा की गई है जिसे आगे ले जाने के लिए MNREGA में सरकार द्वारा कई अन्य प्रयास प्रारंभ किए गए हैं। कुछ राज्य सरकारों द्वारा की गई पहलों के अनुसार अभिमुखता पहलू में प्राप्त प्रगति पर भी इस इकाई में चर्चा की गई है।

25.2 राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (NREGA), 2005

गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों जैसे IRDP, RLEG, DPAP, EGS, SGSY, SGRY आदि के दो उद्देश्य थे। एक को मुख्य और दूसरे को अनुपूरक माना गया था। मुख्य उद्देश्य अकुशल शारीरिक श्रम के लिए मजदूरी रोजगार के अवसर पैदा करना और अनुपूरक उद्देश्य उन कार्यक्रमों/योजनाओं में प्रारंभ किए गए कार्यों के परिणामस्वरूप उत्पादनकारी/स्थायी परिसंपत्तियां पैदा करना था। इन दो उद्देश्यों की उपलब्धियां भिन्न-भिन्न थीं। ऐसे कार्यक्रमों के कई मूल्यांकनों में एक यह था कि इनकी प्रणाली में छीजन के कारण (जैसे प्रशासनिक तंत्र पर व्यय, बिचौलियों की उपस्थिति और परिणामतः श्रमिकों को कम मजदूरी का भुगतान कार्य के लिए ठेकेदारों को लगाने आदि) लाभभोगियों द्वारा प्राप्त मजदूरी से बढ़ी हुई आय का वास्तविक लाभ बहुत कम था। इस अनुभव के आधार पर NREGA के प्राथमिक उद्देश्यों में एक ऐसी क्रियाविधि स्थापित करनी थी जिससे न केवल ऐसी छीजन को न्यूनतम किया जाए बल्कि कामगारों को मजदूरी का प्रभावकारी भुगतान उच्चतम हो। इसे प्राप्त करने के लिए अधिनियम द्वारा उल्लिखित स्पष्ट उद्देश्यों में दो थे : (i) शासन व्यवस्था में पारदर्शिता और जवाबदेही लाकर लोकतंत्र की मूलतम प्रक्रिया सुदृढ़ करना, और (ii) योजना निर्माण, निगरानी और क्रियान्वयन में पंचायती राज संस्थाओं (PRI) को प्रमुख भूमिका देकर विकेंद्रीकृत दृष्टिकोण अपनाना। अधिनियम के अन्य उद्देश्य है : (i) ऐसे कार्यों के माध्यम से प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन सुदृढ़कर ग्रामीण गरीबों की आजीविका स्तर सुधारना, जिनसे चिरकालिक गरीबी, सूखा, निर्वनीकरण और मृदा अपरदन के कारणों का समाधान करना और (ii) प्रारंभ किए गए कार्यों से धारणीय विकास पद्धतियां अपनाने के लिए प्रोत्साहित करना। इस प्रकार इस अधिनियम के बारे में विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण बातें ये हैं : (क) यह एक ऐसा पहला कार्यक्रम/अधिनियम है जो ''कार्य का अधिकार'' दृष्टिकोण पर आधारित है, और (ख) यह ग्रामीण क्षेत्रों में असंगठित कामगारों की सामाजिक सुरक्षा के लिए महत्त्वपूर्ण योगदान करता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

25.2.1 क्रियान्वयन में मुख्य प्रक्रियाएँ

अधिनियम/योजना की अवस्थाओं में क्रियान्वयन की प्रक्रिया निम्न प्रकार है :

1) **नामों का प्रस्तुतीकरण और जॉब कार्ड प्रेषण** – ग्रामीण परिवार के वयस्क सदस्य अपने नाम, आयु, पता और फोटो के विवरण ग्राम पंचायत (GP) को प्रस्तुत कर सकते हैं। आवेदन पत्र में कार्य चाहने वालों का ब्यौरा विश्वसनीय स्थानीय स्रोतों से सत्यापित करवाया जाता है। ताकि जॉब कार्ड गलती से जारी न किया जा सके। समुचित जांच के बाद ग्राम पंचायत पंजीकरण करता है और सदस्य के ब्यौरे और फोटो युक्त जॉब कार्ड जारी करता है।

2) **काम के लिए आवेदन करने की पात्रता** – पंजीकृत व्यक्ति कार्य के लिए आवेदन करने का पात्र होता है। आवेदकों के लिए कम-से-कम लगातार 14 दिनों के काम के लिए आवेदन करना आवश्यक है। पंचायत या कार्यक्रम अधिकारी वैध आवेदन पत्रों को स्वीकार करता है और पावती देता है। काम देने का पत्र आवेदक को भेजा जाता है और पंचायत कार्यालय में प्रदर्शित किया जाता है।

3) **रोजगार या बेरोजगारी भत्ता देना** – रोजगार आवेदन पत्र की प्राप्ति से 15 दिनों के अंदर 5 किलोमीटर के अंतर्गत दिया जाएगा। यद्यपि भिन्न-भिन्न क्षेत्रों के लिए अलग-अलग दरें हो सकती हैं परंतु दिए गए कार्य के लिए प्रतिदिन मजदूरी रु. 60 प्रतिदिन से कम नहीं होगी। दिया गया रोजगार प्रति वर्ष प्रति बार कम-से-कम 100 दिन का काम होगा। यदि समय सीमा के अंदर काम नहीं दिया जाता है तो आवेदक को दैनिक बेरोजगार भत्ता दिया जाएगा। यदि दिया गया कार्य 5 कि.मी. से अधिक दूरी पर है तो अतिरिक्त मजदूरी दी जाएगी। दिये गये बेरोजगारी भत्ते की दर राज्य सरकार द्वारा अधिसूचित की जाएगी और वित्त वर्ष के दौरान पहले तीन दिनों के लिए राज्य द्वारा नियत मजदूरी का 25 प्रतिशत से कम नहीं होगा और वित्त वर्ष के शेष भाग के लिए 50 प्रतिशत से कम नहीं होगा। इसके अलावा, समय पर बेरोजगार भत्ता न बांटने की स्थिति में कार्यक्रम अधिकारी यथाविधि विनिर्दिष्ट भुगतान न करने के कारणों सहित जिला कार्यक्रम अधिकारी को मामले की रिपोर्ट देगा।

DIKSHANT IAS

4) **लागत सहभाजन** – केंद्रीय और राज्य सरकार अधिनियम के अधीन प्रारंभ किए गए कार्य की लागत 3 : 1 के अनुपात में बांटा करेगी, अर्थात् 75 प्रतिशत केंद्रीय सरकार द्वारा और 25 प्रतिशत राज्य सरकार द्वारा।

Call us @7428092240

25.2.2 खास विशेषताएँ

अधिनियम के उद्देश्यों को उपर्युक्त प्रक्रियाओं से करने का प्रयास किया गया है। इसके लिए उपर्युक्त प्रक्रिया के अलावा अधिनियम की कुछ अन्य खास विशेषताएँ भी हैं। ये निम्नलिखित हैं:

1) **समयबद्ध स्वरूप** – काम देने के लिए 15 दिनों की समय सीमा की शर्त और आगे मजदूरी भुगतान के लिए 15 दिनों की समय सीमा की शर्त, काम और भुगतान सुनिश्चित करने के लिए समयबद्ध स्वरूप प्रदान करता है।

2) **प्रोत्साहन/हतोत्साहन** – 15 दिन की निर्धारित अवधि के अंदर रोजगार देने में विफलता के मामले में बेरोजगारी भत्ते का भुगतान राज्य सरकार द्वारा अपने व्यय पर किया जाता है। इस प्रकार कार्यों के क्रियान्वयन की क्रियाविधि में प्रोत्साहन और हतोत्साहन अन्तःनिर्मित हैं।

3) **श्रम प्रधान कार्य पर बल** – अधिनियम ठेकेदार और मशीन प्रयोग करना निषिद्ध करता है और इस संबंध में कुल लागत का अधिकतम भाग श्रम प्रधान कार्य द्वारा करने पर बल देता है। अधिनियम सुनिश्चित करता है कि कुल लागत का अधिकतम भाग लाभभोगियों को मजदूरी के रूप में दिया

जाता है। इसके लिए अधिनियम विर्निदिष्ट करता है कि कुशल और अकुशल कामगारों की मजदूरी सहित परियोजनाओं की सामग्रीगत लागत कार्य की कुल लागत के चालीस प्रतिशत से अधिक नहीं होगी।

4) **महिलाओं के अधिकारों का संरक्षण** – अधिनियम रोजगार चाहने वाली महिलाओं को कार्य का 30 प्रतिशत भाग आबंटित करना अनिवार्य बनाता है। इस प्रकार उच्चतर महिला कार्यबल सहभागिता सुनिश्चित करना अधिनियम की समर्थकारी विशेषता है।

25.2.3 महत्त्वपूर्ण पहलू

सुनिश्चित करना (i) दुरुपयोग का परिहार करते हुए वास्तविक लाभभोगियों की सही मजदूरी का भुगतान, (ii) वास्तविक कार्य चाहने वालों को दिए जा रहे जॉब कार्ड, (iii) किए जाने वाले कार्य की अग्रिम योजना तैयार करना ताकि निर्धारित समय में कार्य दिया जा सके, आदि। इसके लिए कुछ पहलुओं को अग्रिम रूप में सुनिश्चित करना आवश्यक है। यह निम्नलिखित तरीके में प्राप्त किया जा सकता है:

i) **अग्रिम योजना** – समय रहने बनाए रखने का अभिप्राय कार्यक्रम अधिकारी की सहायता से ग्राम सभाएं अधिनियम के अधीन क्रियान्वित किए जाने वाली ''परियोजनाओं के वर्गो'' के निर्धारण के लिए अग्रिम योजना बनाना है। इन्हें रोजगार मांग और कार्य आबंटन से पर्याप्त पहले बनाया जाना चाहिए।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

ii) **पारदर्शिता और जवाबदेही** – ग्राम सभा द्वारा प्रारंभ किए जाने वाले सभी कार्यों के चयन के अलावा एक अतिरिक्त शर्त है कि कम-से-कम आधा कार्य ग्राम सभा द्वारा संचालित किया जाना चाहिए। अंतिम रूप दिए गए कार्यों की सूची सार्वजनिक करने के लिए खुले रूप में प्रदर्शित होनी चाहिए और मजदूरी सामग्री अनुपात (अर्थात् 60 : 40) के मानदंड के अनुसार होगा तथा कार्य ठेके पर नहीं होगा।

iii) **कार्य स्थल पर कार्ड धारकों की उपस्थिति नामावली** – ठेकेदार संचालित कार्य और काल्पनिक (जाली) कार्य रिकार्ड रोकने के लिए प्रत्येक कार्य स्थान पर कार्ड धारकों की उपस्थिति नामावली बनाए रखना आवश्यक है। यह सार्वजनिक संवीक्षा के लिए उपलब्ध की जाती है और ''कार्य के माप'' के लिए तथा यह सुनिश्चित करने के लिए प्रयुक्त की जाती है कि भुगतान निर्धारित दरों पर किया गया है।

iv) **मजदूरी का भुगतान** – वास्तविक लाभभोगियों की सही भुगतान सुनिश्चित करने के लिए अधिनियम बैंकों या डाकघरों के माध्यम से मजदूरी का भुगतान अनिवार्य बनाता है। इसका अभिप्राय ठेकेदारों के मार्ग बंद करना तथा मजदूरी का कम भुगतान रोकना और भ्रष्टाचार समाप्त करना है।

v) **महिलाओं की नियुक्ति सुकर बनाना** – अधिनियम कार्य स्थलों पर सुविधाओं की स्थापना विनिर्दिष्ट करता है, जैसे ''बच्चे के लिए शेड'' और ''जहां महिला कामगारों के साथ छह वर्ष से कम आयु के बच्चों की संख्या पांच या अधिक हैं'', तो बच्चों की देखभाल करने के लिए मजदूरी के साथ एक महिला की नियुक्ति की जानी चाहिए।

बोध प्रश्न 1

नीचे दिए स्थान में अपने प्रश्नों का उत्तर लगभग 50 शब्दों में दीजिए।

1) उन तीन अनुभवजन्य सूचकों का उल्लेख कीजिए जो बढ़ती हुई ''छोटे किसानों की विपत्ति'' की ओर संकेत करते हैं।

....

....

....

....

2) ''छोटे किसानों की विपत्ति'' की समस्या से निपटने के लिए 2005 में सरकार द्वारा क्या महत्त्वपूर्ण कदम उठाए गए थे? यह कार्रवाई क्या सांविधिक गारंटी देता है?

....

....

....

....

DIKSHANT IAS

3) NREGA, 2005 के बुनियादी उद्देश्य क्या हैं? ये उद्देश्य उनके क्रियान्वयन कैसे पूरा करते हैं?

Call us @7428092240

....

....

....

....

4) धारणीय विकास के मुद्दे को NREGA के माध्यम से ग्रामीण गरीबों की आजीविका बढ़ाने के बुनियादी उद्देश्य के साथ किस तरीके से समाकलित किया गया है?

....

....

....

....

5) ग्राम सभा को NREGA के अधीन जॉब कार्यों के क्रियान्वयन के संबंध में सौंपी गई निश्चित भूमिका बताइए।

....

....

....

....

6) गारंटीशुदा कार्य प्रावधान और मजदूरी भुगतान पर NREGA की क्या शर्त है?

....

....

....

....

7) NREGA की क्रियान्वयन प्रक्रिया में राज्य सरकारों की सहभागिता सुनिश्चित करने के लिए किन प्रोत्साहनों/हतोत्साहनों का प्रावधान किया गया है?

....

....

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

8) NREGA किस तरीके में सुनिश्चित करता है कि कार्य आबंटन और भुगतान के आधार पर श्रमिकों के हित संरक्षित किए जाते हैं?

....

....

....

....

9) NREGA किस तरीके में सुनिश्चित करता है कि अपंजीकृत और अनुपस्थित कामगारों को बोगस भुगतान नहीं किया जाता है?

....

....

....

....

10) आप ऐसे ही उद्देश्यों से प्रारंभ किए गए पिछले कार्यक्रमों की तुलना में NREGA, 2005 के विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण पहलू की क्या पहचान करेंगे?

....

....

....

....

25.3 NREGA की प्रस्थिति : पंचवर्षीय आकलन

2006-07 में 200 जिलों को शामिल कर प्रारंभ करते हुए वर्ष 2010-11 तक देश के सभी 626 जिलों को शामिल करने के लिए कार्यक्रम/ NREGA का विस्तार किया गया है। दिया गया कुल संचित रोजगार मिलियन श्रम दिनों में मापा गया और यह उत्तरोत्तर बढ़ते हुए 2006-07 में 905 मिलियन से 2009-10 में 2836 मिलियन हुआ। इस संबंध में 2010-11 में कमी आई और 2571 मिलियन श्रम दिवस का रोजगार पैदा किया गया। प्रति परिवार को दिए गए रोजगार के श्रम दिवसों में भी वृद्धि हुई। यह 2006-07 में 40 दिनों से 2007-08 में 42 दिन, 2008-09 में 48 दिन और 2009-10 में 54 दिन थे परंतु 2010-11 में गिरकर 47 दिन हुए। परंतु प्रतिदिन प्रतिश्रम दिवस औसत मजदूरी निरंतर बढ़ी। यह 2006-07 में रु. 65 से 2007-08 में रु. 75, 2008-09 में रु. 84, 2009-10 में रु. 91 और 2010-11 में 117 हुआ। दिए गए रोजगार के श्रम दिनों से प्रतिश्रम दिन औसत अर्जन (आय) गुणा करने पर हमें ज्ञात होता है कि कार्यक्रम में कार्य से प्रत्येक सहभागी परिवार का औसत अर्जन सभी पांच वर्षों में निरंतर बढ़ा है। वास्तव में 2010-11 में रु. 5999.00 की वृद्धि से ग्रामीण क्षेत्रों में गरीब परिवारों की आय में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। इस कार्यक्रम का उद्देश्य भी रोजगार के मुख्य स्रोत से परिवार की आय के साथ उसे और अतिरिक्त आय प्रदान करना ही था।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

तालिका 25.1 : NREGA : प्रगति और निष्पादन (2007-2011) के किसानों की विपत्ति और NREGA

ब्यौरे	2006-07	2007-08	2008-09	2009-10	2010-11
सम्मिलित जिले	200	330	615	619	626
दिया गया रोजगार (मिलियन श्रम दिन)	905.0	1435.9	2163.2	2835.9	25715
महिला कामगारो का प्रतिशत	40	43	45	49	48
प्रति परिवार रोजगार श्रम दिन	40	42	48	54	47
औसत मजदूरी प्रति श्रम दिन (रु. 64)	65	75	84	91	117
सहभागी परिवार (पंक्ति 5 x 6 की अतिरिक्त आय/ रुपयों में)	2600	3150	4032	4914	5499
बजट परिव्यय (रुपये अरब में)	113	120	300	397	412
व्यय (प्रतिशत)	73	82	73	68	58
मजदूरी पर व्यय (%)	66	68	67	69	72

स्रोत : पपोला और साहू (http://nrega.nic.in/netnergampr)।

यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि महिला कामगारों का प्रतिशत न केवल अधिनियम में निर्धारित स्तर से ऊपर रहा है बल्कि 2010-11 में किंचित गिरावट के साथ कार्यक्रम के क्रियान्वयन के पहले चार वर्षों में अविछिन्न रूप से बढ़ा

है, इसके अलावा, प्रारंभ किए गए कार्यों में मजदूरी पर व्यय बढ़ रहा है और यह उसका बड़ा भाग है। ये अधिनियम के अधीन क्रियान्वित कार्यों के सकारात्मक पहलू हैं।

उपर्युक्त प्रवृत्ति से प्रकट होता है कि यद्यपि परिवार को कार्यक्रम के अधीन दिया गया रोजगार अधिनियम द्वारा आश्वस्त कार्य के कम से कम 100 दिन से बहुत कम था, इसमें ग्रामीण गरीब परिवारों के आजीविका स्तर में सुधार अवश्य हुआ है। 2007-08 तक देश के 330 जिलों में अधिनियम क्रियान्वयन पर मूल्यांकन अध्ययन प्रकट करता है कि NREGA कार्य के लिए सामूहिक मांग विद्यमान है (सर्वेक्षण किए गए लगभग 98 प्रतिशत व्यक्तियों ने कम-से-कम 100 दिनों के काम की इच्छा व्यक्त की)। ऐसे व्यक्तियों का वास्तविक प्रतिशत केवल 14 था, जो 100 दिनों की सीमा तक रोजगार पाने में सफल हुए। कार्यक्रम खुला मांग चालित कार्यक्रम होने के कारण 2009-11 वर्षों के दौरान उपलब्ध बजट के ह्रासमान उपयोग की प्रवृत्ति रही है। तालिका 25.1 दर्शाती है कि क्रियान्वयन के लिए तैयार रखे जाने वाली ''परियोजनाओं की सूची'' की दिशा में कमी है (ग्राम सभा में अपेक्षाकृत घटिया प्रबंधन दर्शाता है जो कार्यक्रम के लिए उत्तरदायी है)। इस संबंध में ग्राम परिषदों की योग्यता सुधारने पर फोकस करना आवश्यक है। राज्यों द्वारा निष्पादन के आधार पर प्रति परिवार रोजगार की औसत संख्या में बहुत अंतर है : राजस्थान में 69 दिन और आंध्र प्रदेश में 68 दिन से बिहार और पंजाब में यह 28 दिन तक है। अधिक स्पष्ट रूप से तुलना के लिए आधार के रूप में प्रति परिवार कार्य के 48 दिनों का राष्ट्रीय औसत लेते हुए दिए गए कार्य की तीव्रता के इस मापदंड से आकलन किया जाए तो 15 राज्यों का औसत इस आंकड़े से भी कम था। दूसरा आधार ''ग्रामीण BPL परिवारों में उनके अंश से कार्यक्रम के अधीन उत्पन्न किए गए श्रम दिवसों में राज्यों के अंश'' से तुलना का है। इसमें, उत्तर प्रदेश और बिहार घटिया निष्पादन करने वाले राज्यों के रूप में उभरे हैं। ग्रामीण परिवारों में उनके अंश की अपेक्षा उनमें उत्पन्न रोजगार 10 प्रतिशत कम था। इस मापदंड के अनुसार राजस्थान और आंध्र प्रदेश ने अच्छा निष्पादन किया।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

जैसाकि ऊपर उल्लेख किया गया है, कमीशन के लिए काम पाने में गरीब लोगों की सहायता करने के लिए बिचौलियों का उन्मूलन या सामान्यतया भ्रष्टाचार और प्रबंधन में अदक्षता कम करना मुख्य आवश्यकता के रूप में अनुभव किया गया है। इसे NREGA कार्यों में फोकस में रखने की आवश्यकता समझी गई। मूल्यांकन अध्ययनों ने प्रकट किया कि NREGA के अधीन कार्यों के क्रियान्वयन में दुर्बलताएं निम्नलिखित क्षेत्रों में हैं : (i) मांग पर कार्य का प्रावधान न होना, (ii) कार्य की अनुसूची पर आधारित मजदूरी की गणना करने में पारदर्शिता का अभाव, (iii) न्यूनतम मजदूरी का भुगतान न करना, (iv) निर्धारित 15 दिनों की समय सीमा के अंतर्गत मजदूरियों का भुगतान न करना, (v) ठेकेदारों का उनके निषेध के बावजूद प्रयोग, (vi) रोजगार/बेरोजगार भत्ते का भुगतान न करना, (vii) कार्यस्थल पर सुविधाओं की व्यवस्था न करना, आदि। हकदारियां ''बेचने'' के लिए ''झूठी'' उपस्थिति पंजियों के मामलों की भी रिपोर्ट हुई है। ऐसे भी क्षेत्र हैं जिनमें अधिनियम के अधीन कार्यों के क्रियान्वयन प्रक्रिया सुधारने के लिए ठोस प्रयास आवश्यक है।

उपर्युक्त कमियों के बावजूद जिन पर सुधार के लिए प्रयास किए जाने की आवश्यकता है, बिहार, झारखंड, राजस्थान और हिमाचल प्रदेश के चार राज्यों में ग्रामीण महिलाओं पर NREGA के सशक्तीकरण प्रभावों का विश्लेषण करने के अध्ययनों से ज्ञात हुआ है कि महिला कामगारों को योजना से लाभ हुआ है। उनके लाभ मुख्यतया निम्नलिखित में देखे जा सकते हैं : (i) आय-उपभोग प्रभाव; (ii) अंतः परिवारिक प्रभाव, और (iii) चयन और क्षमता की वृद्धि। अन्य लाभों में ग्रामीण श्रम बाजार में प्रचलित लिंग भेदभाव मजदूरी का संतुलन कर समान मजदूरी प्राप्त करना शामिल है। परंतु यह भी उल्लेख किया गया है कि चूंकि बाजार मजदूरी NREGA दरों की अपेक्षा अधिक ऊँची है, पुरुष साधारणतया उसके कार्यक्रमों में कार्य के लिए उपलब्ध नहीं होते हैं और यह अधिकांशतः महिलाएं होती हैं जो उनमें काम करने के लिए तैयार होती है। वास्तव में, महिलाएं केरल में 90 प्रतिशत कामगार और तमिलनाडु में 83 प्रतिशत हैं जबकि राष्ट्रीय औसत 2009-10 में 48 प्रतिशत था। फिर भी, यह प्रेक्षण NREGA कार्यों में महिला रोजगार पर अनुकूल निष्कर्ष अपने आप में उल्लेखनीय उत्साहवर्धक संकेत है।

बोध प्रश्न 2

नीचे रिक्त स्थान में अपना उत्तर लगभग 50 शब्दों में दीजिए।

1) वर्ष 2007-11 के दौरान NREGA के अधीन कार्य के निष्पादन में क्या प्रवृत्ति रही है : (i) सहभागी परिवारों को दिए गए रोजगार के श्रम दिनों के आधार पर और (ii) प्रतिश्रम दिवस औसत मजदूरी के आधार पर?

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

....

....

2) क्या आप सहमत हैं कि गरीब सहभागी परिवार आय में वृद्धि उनकी आजीविका प्रस्थिति में अंतर लाने में सक्षम हुई है? क्यों?

....

....

....

....

3) NREGA के अधीन रोजगार चाहने वाले व्यक्तियों का कितना प्रतिशत 100 दिनों तक का काम पा सका है? इसका क्या कारण हो सकता है और इस दिशा में सुधार के लिए किस पर ध्यान देने की आवश्यकता है?

....

....

....

....

4) राज्यों के अनुसार NERGA के निष्पादन में असमता की क्या सीमा रही है?

....

....

....

....

5) निष्पादन तुलना के दो चरम शीर्षों पर स्थित दो राज्य कौन-से हैं? इस प्रकार की तुलना करने के लिए प्रयुक्त दो मापदंड क्या थे?

....

....

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

6) NREGA के अधीन कार्यों के क्रियान्वयन में दुर्बल स्थलों के रूप में निर्धारित पहचान किए गए दो क्षेत्रों का उल्लेख कीजिए?

....

....

....

....

7) NREGA को किस विशिष्ट संबंध में महिला कामगारों के लिए अनुकूल पाया गया है?

....

....

....

....

25.4 MNREGA : नई पहलें

सरकार ने NREGA कार्य को अधिक पारदर्शी और उत्तरदायित्वपूर्ण तरीके में कार्य करने के लिए कई नई पहलें प्रारंभ की हैं। इसे ध्यान में रखते हुए उसने 2009 में कार्यक्रम का नाम बदल कर MNREGA किया (कार्यक्रम के संचालन

में अधिक पारदर्शिता और दक्षता के लिए वचनबद्धता व्यक्त करते हुए राष्ट्रपिता की स्मृति में कार्यक्रम समर्पित किया) और सिंचाई सुविधा की व्यवस्था, बागवानी, पादपरोपण और SC तथा ST तथा अन्य BPL परिवारों को उनके स्वामित्व की भूमि के विकास आदि को शामिल करने के लिए कार्य के क्षेत्र का विस्तार किया। अधिनियम के अधीन मजदूरियों पर उच्चतम सीमा आगे इस प्रावधान के साथ बढ़ाकर रु. 100 की है कि जो राज्य इस उच्चतम सीमा से अधिक देना चाहते है, वे रु. 100 की उच्चतम सीमा से अधिक भाग को अपनी निधि से प्रदान कर सकते हैं। इसके अलावा, यह सुनिश्चित करने के लिए कि मजदूरी वास्तविक लाभभागियों को दी जाती है, उसने अनिवार्य किया है कि MNREGA के कामगारों को मजदूरी बैंक/डाकघर खातों के माध्यम भुगतान किया जाता है राज्य और जिला स्तरों पर ''सतर्कता और निगरानी समितियों'' को सुदृढ़ करने के अलावा प्रभाव आकलन तथा निगरानी के लिए सदस्य के रूप में प्रमुख संस्थानों और विश्वविद्यालयों के साथ व्यावसायिक संस्थानिक नेटवर्क (PIN) गठित किया गया है। PIN द्वारा संचालित अध्ययन प्रकट करते हैं कि MNREGA के उत्पादनकारी और प्रवर्धन प्रभावों में शामिल है : (i) भौमजल में सुधार, (ii) उन्नत कृषि उत्पादकता और सस्य सघनता, और (iii) ग्रामीण क्षेत्रों में आजीविका विविधीकरण। कुछ अन्य की गई विशिष्ट पहलें निम्नलिखित हैं :

25.4.1 शिकायत निपटान और सरलीकरण

राज्यों को जिला स्तर पर लोकपाल की नियुक्ति के लिए दिशा-निर्देश जारी किए गए हैं जो MNREGA कामगारों और अन्य से शिकायतें प्राप्त करने सहायता करेगा, ऐसी शिकायतों पर विचार करेगा तथा कानून के अनुसार उनका निपटान सरल बनाएगा। इस प्रकार के लोकपाल में लोकप्रशासन कानून, शिक्षा, सामाजिक कार्य और प्रबंधन में अनुभवी सिविल सोसाइटी से सुप्रसिद्ध व्यक्ति होने चाहिए।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

25.4.2 सामाजिक संवीक्षा सुदृढ़ीकरण

''सामाजिक संवीक्षा'' को महत्त्वपूर्ण साधन मानते हुए अधिनियम को सामाजिक संवीक्षा संचालित करने संबंधी प्रक्रिया मुहैया करने के लिए संशोधित किया गया है। इनका उद्देश्य ग्रामीण समुदायों को MNREGA कार्यों की गुणवत्ता, स्थायित्व और उपयोगिता निगरानी करने के लिए सक्षम बनाना है। अपने कार्य के दौरान संवीक्षा दलों को लोगों में जागरूकता पैदा करना और कामगारों के अधिकार प्रवर्तन करने का कार्य सौंपा जाता है। ऐसी संवीक्षाओं से मिलान की गई सूचनाएं अब आसान सार्वजनिक सुलभता के लिए वेबसाइट पर उपलब्ध की जा रही हैं जिन पर जॉब कार्डो, उपस्थिति नामावलियों, मजदूरी भुगतानों, दिए गए रोजगार के दिनों की संख्या और निष्पादन किया जा रहे कार्यों आदि जैसे सभी महत्त्वपूर्ण पक्षों पर आंकड़े ऑन लाइन उपलब्ध किए जाते हैं।

25.4.3 UIDA और राष्ट्रीय हेल्पलाइन से भागीदारी

आसानी से बैंक खाता खोलना सरल बनाने और जॉब कार्डो की अनुलिपि तथा छद्म लाभभागियों के उन्मूलन के लिए ICT (सूचना और संचार प्रौद्योगिकी) विशेष रूप से विशिष्ट पहचान विकास प्राधिकरण (UIDA) से समाकलन बायोमेट्रिक्स MNREGA द्वारा स्थापित की गयी है। इसके अलावा, राष्ट्रीय हेल्पलाइन

(1800110707) स्थापित किया गया है ताकि अधिनियम के अधीन कामगारों के अधिकारों और हकदारियों के संरक्षण के लिए शिकायतें और पूछताछ प्रस्तुत की जा सकें। यह ICT समर्थित और MNREGA हेल्पलाइन का राष्ट्रीय नेटवर्क बनाने के लिए राज्य और जिला स्तर हेल्पलाइन से संबद्ध भी किया जा रहा है।

उपर्युक्त के अलावा MNREGA के अधिक समावेश और विस्तार के लिए दो अन्य पहलें लागू की गई हैं : (i) गरीब परिवारों में ''जागरूकता निर्माण अभियान'' तेज करने के लिए MNREGA कार्यों के क्रियान्वयन के निर्मित सभी नक्सल प्रभावित राज्यों को अनुदेश जारी करना और (ii) ग्रामीण परिवारों को सार्वजनिक सेवा के वितरण और जानकारी के प्रचार के केंद्रों के रूप में ''सेवा केंद्रों का निर्माण। सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है कि MNREGA (महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना)'' जो विकल्पतः साहित्य में NREGA/MNREGA में अदल-बदल कर प्रयुक्त किया जाता है। भिन्न-भिन्न योजनाओं और कार्यक्रमों के अभिसरण के संबंध में मार्ग निर्देश जारी किए गए हैं। इसके बारे में हम अधिक जानकारी इस इकाई के अगले भाग में प्राप्त करेंगे।

बोध प्रश्न 3

नीचे रिक्त स्थान में अपना उत्तर लगभग 50 शब्दों में दीजिए।

1) MNREGA में हाल ही में कौन-से दो महत्त्वपूर्ण पहलें प्रवर्तित की गई थीं जिन्हें पारदर्शिता और जवाबदेही के उच्च स्तर की ओर कदमों के रूप में पहचाना जा सकता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

....

....

2) MNREGA में व्यावसायिक संस्थागत नेटवर्क PIN की स्थापना से क्या उद्देश्य प्राप्त करने के प्रयास किये गये हैं? तीन विषयों में PIN द्वारा मूल्यांकन अध्ययन संचालित किए गए हैं क्या वे MGNREGA में प्रारंभ किए गए कार्यों से प्राप्त उत्पादकता और गुणक लाभ दर्शाते हैं?

....

....

....

....

3) MNREGA में स्थापित नई पहलों के अधीन ''शिकायत निवारण और सरलीकरण'' कैसे किया जाता है?

....

....

....

....

4) MNREGA में नई पहलों के अधीन ''सामाजिक समीक्षा'' के संचालन को क्या महत्त्व दिया गया है?

....

....

....

....

5) MNREGA कार्यों में ''अनुलिपि जॉब कार्डों'' की समस्या का समाधान कैसे किया जाता है?

....

....

....

....

6) MNREGA कार्यक्रम के ''अधिक समावेशन और विस्तार'' के लिए दो प्रमुख पहलें क्या हैं?

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

....

....

25.5 अभिसरण

ग्रामीण गरीबों की टिकाऊ परिसंपत्तियों के निर्माण और आजीविका संसाधन आधार सुदृढ़ करने के विचार से MNREGA में प्रारंभ किया गया। कार्य का तत्समान उद्देश्यों वाले कई अन्य कार्यक्रमों से सामंजस्य स्थापित किया जा रहा है। इसलिए अभिसरण संकल्पना/योजना को ग्रामीण क्षेत्र में सार्वजनिक निवेश से योजनाबद्ध और समन्वित कार्यों द्वारा MNREGA कार्यों का महत्त्व बढ़ाने के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।'' इसमें सभी क्रियान्वयन अभिकरणों की सहभागिता की आवश्यकताओं की पहचान तथा अग्रता निर्धारण उपयुक्त ''परियोजनाओं की श्रेणी'' की तैयारी अंतर्निहित है। अधिक स्पष्ट रूप से यह राष्ट्रीय बागवानी मिशन (NHM), राष्ट्रीय कृषि विकास योजना, भारत निर्माण, जल विभाजक विकास कार्यक्रमों, आदि के उद्देश्यों से इसे मिलाकर MNREGA के गुणक प्रभावों को इष्टतम करने का प्रयास करता है। इसके लिए केंद्रीय प्रायोजित योजनाओं (जैसे SGSV, पिछड़ा क्षेत्र अनुदान निधि, BRGF आदि) के अधीन अन्य स्रोतों (जैसे

राष्ट्रीय वित्त आयोग, राज्य वित्त आयोग, राज्य सरकार के विभागों) पंचायतीराज संस्थाओं (PRI) के पास उपलब्ध निधि को स्थायी सामुदायिक परिसंपत्तियों के निर्माण के लिए MNREGA निधियों से मिलाया जा सकता है। इसलिये अभिसरण के व्यापक उद्देश्य इस प्रकार परिभाषित किए जा सकते हैं : (i) आम प्रयोजन के लिए अन्य क्रियान्वयन अभिकरणों की कार्य योजनाओं में विविधता जोड़ना, (ii) अन्य कार्यों द्वारा निर्मित पूरी न की गई महत्त्वपूर्ण मांगे पूरी करना ताकि उत्पादकता स्तर बढ़ाना आसान हो सके और ग्रामीण परिवारों की आय के स्तर बढ़ सकें, (iii) नई प्रौद्योगिकी अंतरण से धारणीय आर्थिक/सामाजिक प्रतिलाभ प्राप्त करना, और (iv) समान उद्देश्यों से बनाए गए संचित प्रयासों के परिणाम के रूप में बेहतर प्रतिलाभ सुनिश्चित करना। इस दृष्टि से 23 राज्यों में कुल 115 अभिसरण प्रायोगिक जिलों की पहचान की गई है और राष्ट्रीय ग्रामीण विकास संस्थान ने निगरानी के स्वतंत्र संगठन स्थापित किए गए हैं। ऐसी अभिसरण कार्रवाई के प्रत्याशित परिणामों की पहचान निम्न प्रकार की जा सकती है।

25.5.1 प्रत्याशित परिणाम

अभिसारी कार्रवाई से प्रत्याशित परिणाम निम्नलिखित हैं:

1) **भौतिक/सामाजिक पूँजी में वृद्धि :** भूमि उत्पादकता बढ़ाने के अतिरिक्त स्थायी परिसंपत्तियों के निर्माण से आशा की जाती है कि उन्नत प्रबंधन और उत्पादन द्वारा भिन्न-भिन्न पणधारियों द्वारा सामूहिक योजना क्रियान्वयन के माध्यम से सामाजिक पूँजी में वृद्धि होगी।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

2) **पारिस्थितिकी सहक्रिया का सरलीकरण :** वनीकरण, सूखा रोधी, बाढ़ रोधी और जल विभाजक के कार्यों से प्राकृतिक संसाधनों के पुनर्जनन द्वारा पर्यावरण की दृष्टि से धारणीय विकास होने की आशा की जाती है। वे इसके प्रतिस्वरूप ''जलवायु परिवर्तन'' जैसे CO_2 उत्सर्जन, औद्योगिक प्रदूषण और ग्लोबल वार्मिंग (देखिए इकाई 21, उपभाग 21.2.2 और 21.2.4) जैसी समस्याओं का समाधान कर सकते हैं।

3) **धारणीय विकास सुकर बनाना :** स्थायी परिसंपत्तियों के निर्माण, ग्रामीण संबद्धता, उत्पादकता वृद्धि और क्षमता विकास के प्रयासों से मिश्रित पारिस्थितिकीय सहक्रिया की प्राप्ति से धारणीय विकास हो सकता है।

4) **लोकतांत्रिक प्रक्रिया सुदृढ़ करना :** अभिसरण जागरूकता और निम्नतम स्तर पर योजना निर्माण से परियोजना प्रतिपादन में लोगों की सहभागिता बढ़ सकेगी। यह ग्रामीण क्षेत्रों में निम्नतम स्तर पर लोकतांत्रिक प्रक्रिया को सुदृढ़ करेगा।

25.5.2 प्रगति

MNREGA अभिसरण क्रियाविधि के प्रारंभिक साक्ष्य दिखाते हैं कि बहुत राज्यों (जैसे मध्य प्रदेश, पश्चिम बंगाल, आंध्र प्रदेश) ने इस दिशा में अच्छी पहल की है। उदाहरण के लिए, मध्य प्रदेश सरकार ने कई उपयोजनाएं (जैसे कपिल धारा सिंचाई, संरचनात्मक, निजी भूमि पर बागवानी कार्यों के लिए नन्दन फलोद्यान, निजी भूमि पर ''फार्म बांध निर्माण'' के लिए भूमि शिल्प, सामुदायिक बंजर भूमि पर

पादपरोपण के लिए वन्य, सामुदायिक भूमि में तथा निजी भूमि में भी रेशम उत्पादन के लिए रेशम, सामुदायिक पेयजल के कुंओं तथा टंकियों के निर्माण के लिए निर्मल नीर, गड्ढे खोदने और फलदार वृक्षारोपण के लिए निर्मल वाटिका, मत्स्य पालन कार्यों के लिए मीनाक्षी, नहरों के साथ माइक्रो सिंचाई संरचनाओं के लिए सहस्त्रधारा, आदि) MNREGA कार्यों के माध्यम से स्थायी परिसंपत्तियों निर्माण के लिए आरंभ की है। पश्चिम बंगाल में ''एकीकृत प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन'' (INRM) के लिए स्थानीय PRI कर्मियों तथा जिला अधिकारियों के प्रशिक्षण के लिए ''विकास कार्य योजना के लिए व्यावसायिक सहायता'' (PRADAN) स्थापित किया गया है। महिला SHG (स्वावलंबी समूह) की सहायता से INRM के मुख्य घटक के रूप में विकेंद्रित जलाशयों का निर्माण करने के लिए MNREGA कार्य शुरू किये गये हैं। उपचार के लिए 2000 हेक्टेयर क्षेत्र के लिए वृहद योजना MNREM, NHM (राष्ट्रीय बागवानी मिशन) आदि के अभिसरण के माध्यम से बनाई गई है। केरल में MGNREGA सरकार द्वारा प्रायोजित गरीब उन्मूलन के लिए महिला नेटवर्क, कुटुम्बश्री के माध्यम से क्रियान्वित किया जा रहा है। योजना का क्रियान्वयन स्थानीय सरकारों द्वारा पूर्णतः नियंत्रित किया जाता है, इसमें प्रत्येक ''ग्राम पंचायत'' का अभिसरण के लिए अपना मॉडल होता है। आंध्र प्रदेश में वेब आधारित सॉफ्टवेयर के माध्यम से अभिसरण प्रयास संरचित किए गए हैं, इसका प्रयोग काम चाहने वालों के पंजीकरण, कार्य आबंटन और निष्पादन, काम के लिए भुगतान और बेरोजगारी भत्ते के समय पर वितरण आदि के कार्यों की निगरानी, उपयोगी सूचना ज्ञात करने तथा अद्यतन करने के लिए किया जाता है। ऐसे विशेष क्षेत्रों में पूरे वर्ष के दौरान रोजगार देने के लिए विशेष प्रावधान भी किए गए हैं, जो सूखा ग्रस्त और प्रवासी प्रवण है। UMDP की सहायता प्रारंभ किए गए अध्ययन (ACCESS–2010) से प्राप्त अभिसरण कार्रवाई के प्रारंभिक साक्ष्य ने प्रमाण दिए हैं कि राज्य में किसानों को अभिसरण कार्यों से पर्याप्त लाभ हुआ है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

अन्य राज्यों, जैसे उड़ीसा, उत्तराखंड, महाराष्ट्र, राजस्थान और उत्तर-पूर्व के कुछ भागों में अभिसरण कार्य एजेण्डा तेज़ी से बढ़ रहा है। MNREGA से मिलकर सरकार के दो कार्यक्रम राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन और राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन से भारतीय कृषि में पर्याप्त सुधार होने की आशा की जाती है। इससे अपनी अंतःशक्ति से यह होने की आशा की जाती है कि एक ओर यह धारणीय पद्धतियों पर अपना ध्यान केंद्रित कर भारत को हरित करने की दिशा में योगदान करेगा, और दूसरी ओर अभिसारी कार्रवाई द्वारा सीधे सीमांत और छोटे किसानों को लाभ पहुंचाएगा।

बोध प्रश्न 4

नीचे दिये गए स्थान में अपना उत्तर लगभग 50 शब्दों में लिखिए।

1) MNREGA और कृषि विकास के संदर्भ में ''अभिसरण'' की संकल्पना की परिभाषा कीजिए।

....

....

....

....

2) ''अभिसरण'' पहल/योजना के व्यापक उद्देश्य बताइए।

....

....

....

....

3) ''अभिसरण'' योजना के चार संभावित परिणाम क्या हैं? उनमें से कौन धारणीय विकास के उद्देश्यों को प्रोत्साहित कर सकता है? कैसे?

....

....

....

....

4) अभी तक ''अभिसरण'' की संकल्पना के क्रियान्वयन में किन राज्यों ने अग्रता प्राप्त की है? अभिसरण कार्यक्रम के मूल्यांकन से प्रारंभिक प्रमाण क्या हैं?

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

....

....

25.6 सारांश

कृषि श्रमिकों और सीमांत तथा छोटे किसानों की बहुत बड़ी संख्या के रोजगार की कमी समस्या का सामना MNREGA/NREGA द्वारा की जाने की व्यवस्था की गई है। किसी वित्तीय कठिनाई रहित मांग चालित कार्यक्रम योजना में उसके क्रियान्वयन में पारदर्शिता और जवाबदेही के निर्मित बहुत-सी विशेषताएँ अंतनिर्हित है। NREGA के क्रियान्वयन के पहले पांच वर्षों के दौरान मूल्यांकन के परिणाम प्रकट करते हैं कि यद्यपि सहभागी परिवारों के प्राप्त अतिरिक्त रोजगार के दिनों की संख्या बढ़ने की प्रवृत्ति भी बढ़ रही है परंतु रोजगार के दिनों की वास्तविक संख्या अभी भी 50 से कम है, जो अधिनियम के अधीन रोजगार के नियत 100 दिनों के काफी कम है। इस घटिया क्रियान्वयन के कारणों में ''स्वीकृत परियोजनाओं की श्रेणी'' तैयार रखने में ग्राम परिषद की ओर से प्रबंधकीय कुशलता का अभाव है। यह आबंटित वित्तीय बजट उपयोग के घटते हुए प्रतिशत से प्रकट होता है। इसके अलावा, 100 दिनों का रोजगार पाने वाले कामगारों का प्रतिशत बहुत कम (मात्र 14 प्रतिशत) है। परंतु महिला लाभभोगियों की संख्या

में बढ़ती हुई प्रवृत्ति अधिनियम के अधीन नियत न्यूनतम एक-तिहाई उच्च सीमा से अधिक है। इसका कारण खुले बाजार में अपेक्षाकृत अधिक मजदूरी है और परिणामतः पुरुष श्रमिक NREGA के अधीन कार्य लेने के लिए अनिच्छुक होते हैं। फिर भी महिलाओं की बढ़ती हुई सहभागिता ऐसी प्रवृत्ति है जो सशक्तीकरणमुखी है। सहभागी परिवार द्वारा अर्जित आय और जब रोजगार के निश्चित दिनों की औसत संख्या का मिलान करने पर सहभागी परिवार की कुल आय में उल्लेखनीय वृद्धि दिखाई देती है। इसे ध्यान से देखते हुए मूल्यांकनकर्त्ताओं ने भी NREGA कार्यों में बहुत कमियों का उल्लेख करते समय पिछली चार दशाब्दियों के दौरान क्रियान्वित सभी गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों में इस योजना को सबसे अच्छा कहा है। इसके अलावा, इस दृष्टिकोण से मूल्यांकन करने पर कि अधिनियम का अभिप्राय रोजगार के अन्य साधारण क्षेत्रों का संपूरक है न कि विकल्प, ये प्रवृत्तियां परियोजना के सकारात्मक परिणाम का संकेत देती हैं। सरकार ने कई नई पहलें प्रारंभ की हैं (i) अधिनियम के अधीन भूमि विकास कार्यों को शामिल करने के लिए निष्पादित किये जाने वाले कार्यों के क्षेत्र का विस्तार करना; (ii) यह विनिर्दिष्ट करना कि ऐसे कार्य विशेष रूप से SCèST और BPL परिवारों की भूमि में प्रारंभ होने चाहिए; (iii) भुगतान की जाने वाली मजदूरी की उच्चतम सीमा बढ़ाकर रु.100 करना, और सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण, (iii) एक समान उद्देश्यों वाले अन्य कई अन्य कार्यक्रमों से ''अभिसरण'' की योजना की घोषणा करना, ताकि MNREGA के अधीन शुरू किए गए कार्यों से स्थायी परिसंपत्तियों की योजनाओं का पुनराभिविन्यास हो सके। अभिसरण योजना के क्रियान्वयन के मूल्यांकन परिणामों ने उत्पादकता तथा गुणक प्रभावों के दृष्टिकोण से उत्साहवर्धक संकेत दिए हैं। राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन और राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन के अधीन किये जा रहे संयुक्त प्रयासों और कई संस्थागत क्रियाविधियों द्वारा प्रदान सहायता MNREGA की निगरानी और क्रियान्वयन में प्रारंभ की गई। आशा की जाती है कि इससे देश में गरीब कृषि श्रमिकों की आजीविका प्रस्थिति के उल्लेखनीय योगदान होगा।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

25.7 शब्दावली

NREGA/MNREGA : एक-दूसरे के लिए अंतरबदल रूप से प्रयुक्त शब्दों का संबंध अधिनियम से है और अधिनियम या कार्यक्रम के अधीन निष्पादित कार्य का उद्देश्य मांग पर गांरटीशुदा रोजगार या बेरोजगार भत्ता देना है (यदि किसी स्वेच्छा से काम चाहने वाली किसी भी वयस्क व्यक्ति को 15 दिनों की अवधि के अंदर गारंटीशुदा रोजगार नहीं दिया जाता है)। अधिनियम/कार्यक्रम पिछले कई गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों से काफी भिन्न है। यह अधिकार आधारित है और पारदर्शिता तथा जवाबदेही इसकी क्रियाविधि के अंतनिर्मित प्रावधान हैं।

NPF, 2007 के अनुसार किसान : NPF, 2007 ऐसे व्यक्ति के रूप में परिभाषित करता है जो या तो फसल उगाकर और/या

अन्य मुख्य कृषि पण्यवस्तुओं के उत्पादन से आर्थिक और/या आजीविका संवर्धन कार्यों में सक्रिय रूप से लगा हुआ है। इसमें खेती, कृषि श्रमिक, बटाईदार काश्तकार, कुक्कुट पालन और पशुपालन, मत्स्य पालन, मधुमक्खी पालन, बागवानी रोपाई, रेशम उत्पादन, कृषि पालन और कृषि वानिकी जैसे कार्यों में लगे हुए व्यक्ति भी शामिल हैं। शब्द में जनजाति परिवार और स्थानांतरी संग्रहण कृषि और काष्ठेत्तर वन उत्पाद के प्रयोग और बिक्री में लगे लोग भी शामिल हैं।

अभिसरण : इसका संबंध ''ग्रामीण क्षेत्रों में सार्वजनिक निवेश द्वारा योजनाबद्ध और समन्वित कार्य करने की क्षमता द्वारा **MNREGA** कार्यों का महत्त्व बढ़ाने से है। इसमें सभी क्रियान्वयन एजेंसियों की समुचित सहभागिता से उपयुक्त ''परियोजनाओं की श्रेणी'' तैयार करना और आवश्यकताओं की प्राथमिकता निर्धारण करना अंतर्निहित है। यह उत्पादकता वृद्धि के लिए स्थायी परिसंपत्तियां निर्माण करने की दृष्टि से अन्य योजनाओं के अधीन प्रारंभ किए गए वैसे ही कार्यों से **NREGA** कार्यों के प्रयासों का समन्वय करता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

25.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1) ACCESS (2010), *Study on Convergece Monitoring,* Access Development Services, New Delhi.

2) Ashok Pankaj, *Right to Work in Rural India: Working of the Mahatma Gandhi National Rural Employment Guarantee Scheme (MGNREGS),* Sage Publications, New Delhi, 2012.

3) K.P. Kannan and Jan Breman (Eds). *The Long Rong Road to Social Security:Assessing the Implementation of National Social Security Initiatives for the Working Poor,* Oxford University Press, New Delhi, 2012.

4) National Policy for Farmers 2007, Development of Agriculture & Cooperation, Ministry of Agriculture, Government of India.

5) Pankaj Ashok and Rukmini Tanka (2010), Empowerment Effects of the NREGS on Women Workers: Study in Four States, *Economic and Political Weekly,* 24 July 2010, Vol. XLV, No. 30.

6) Papola, T.S. and Sahu, P.P. (2012), *Growth and Structure of Employment in India: Long-Term and Post-Reform Performance and the Emerging Challenge,* Institute for Studies in Industrial Development, pp 77-80.

7) Suryamani Roul, *Greening India Through* MGNREGA – *Convergent Action for Benefits Beyound Employment Generation,* Chapter 3, State of India"s Liverlihoods Report 2010, The 4P Report (ed. Sankar Datta & Vipin Sharma).

8) Reetika Khera (ed.), *The Battle for Employment Guarantee,* Oxford University Press, 2011.

25.9 बोध प्रश्नों के उत्तर/संकेत

बोध प्रश्न 1

1) देखिए भाग 25.1 और उत्तर दीजिए।

2) देखिए भाग 25.1 और उत्तर दीजिए।

3) देखिए भाग 25.2 और उत्तर दीजिए।

4) देखिए भाग 25.2 और उत्तर दीजिए।

5) क) आवेदन पत्र ग्रहण करना और पावती जारी करना।

   ख) आवेदन पत्र में ब्यौरों की समीक्षा/सत्यापन करना, जॉब कार्ड जारी करना और आवेदक को कार्य का प्रस्ताव भेजना।

   ग) परियोजनाओं की श्रेणियों की तैयारी के लिए अग्रिम योजना, और

   घ) कार्य का चयन और कम-से-कम आधा कार्य वास्तव में करना।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

6) देखिए उपभाग 25.2.1 और उत्तर दीजिए।

7) देखिए उपभाग 25.2.1 और 25.2.2 और उत्तर दीजिए।

8) देखिए उपभाग 25.2.2 और उत्तर दीजिए।

8) देखिए उपभाग 25.2.3 और उत्तर दीजिए।

बोध प्रश्न 2

1) देखिए भाग 25.3 और उत्तर दीजिए।

2) देखिए भाग 25.3 और उत्तर दीजिए। अधिनियम का उद्देश्य संपूरण करना है, न कि प्रतिस्थापन करना।

3) देखिए भाग 25.3 और उत्तर दीजिए।

4) देखिए भाग 25.3 और उत्तर दीजिए।

5) देखिए भाग 25.3 और उत्तर दीजिए।

6) देखिए भाग 25.3 और उत्तर दीजिए।

7) देखिए भाग 25.3 और उत्तर दीजिए।

बोध प्रश्न 3

1) देखिए भाग 25.4 और उत्तर दीजिए।

2) देखिए भाग 25.4 और उत्तर दीजिए।

3) देखिए उपभाग 25.4.1 और उत्तर दीजिए।

4) देखिए उपभाग 25.4.2 और उत्तर दीजिए।

5) देखिए उपभाग 25.4.3 और उत्तर दीजिए।

6) देखिए भाग 25.4 का अंतिम अनुच्छेद और उत्तर दीजिए।

बोध प्रश्न 4

1) देखिए भाग 25.5 और उत्तर दीजिए।

2) देखिए भाग 25.5 और उत्तर दीजिए।

3) देखिए उपभाग 25.5.1 और उत्तर दीजिए।

4) देखिए उपभाग 25.5.2 और उत्तर दीजिए।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इकाई 26 कृषि माल का विदेश व्यापार

संरचना

26.0 उद्देश्य

26.1 प्रस्तावना

26.2 कृषि वस्तुओं के व्यापार को प्रभावित करने वाले कारक और उनके निहितार्थ
- 26.2.1 आर्थिक कारक
- 26.2.2 नीति संबंधी कारक
- 26.2.3 संस्थागत कारक

26.3 भारत का कृषि व्यापार
- 26.3.1 निर्यात में प्रवृत्तियाँ
- 26.3.2 आयात में प्रवृत्तियाँ

26.4 व्यापार नीति
- 26.4.1 परिमाणात्मक प्रतिबंध और सीमा शुल्क
- 26.4.2 व्यापार करार
- 26.4.3 नई विदेश व्यापार नीति (2009-14) और कृषि निर्यात
- 26.4.4 प्रतिकूल प्रभाव

26.5 सारांश

26.6 शब्दावली

26.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

26.8 बोध प्रश्नों के उत्तर/संकेत

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

26.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप :

- कृषि वस्तुओं के अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को प्रभावित करने वाले कारकों की चर्चा कर सकेंगे;
- भारत के कृषि निर्यात/आयात में प्रवृत्तियों का विश्लेषण कर सकेंगे;
- कृषि निर्यात/आयात के लिए वर्गीकरण ढांचे को भारत व्यापार वर्गीकरण (ITC) सुसंगत प्रणाली (HS) की व्यवस्था के अनुसार विनिर्दिष्ट कर सकेंगे;
- ''परिमाण प्रतिबंधों'' की व्यापार नीति प्रपत्रों और उनकी सापेक्ष दक्षता की तुलना में उनके आर्थिक निहितार्थों के बीच विभेद कर सकेंगे;
- भारत द्वारा हस्ताक्षरित प्रमुख कृषि व्यापार करारों का उल्लेख कर सकेंगे; और
- हमारे कृषि निर्यात को तेज करने के लिए प्रारंभ किए गए उपायों के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए नई व्यापार नीति (2009-14) के तत्व बता सकेंगे।

26.1 प्रस्तावना

इस पाठ्यक्रम की पिछली इकाइयों में आपने भारत के निर्यात में कृषि के महत्त्व के बारे में अध्ययन किया है। उदाहरण के लिए, इकाई 7 (उपभाग 7.4.3) में आपने पढ़ा है कि कृषि से निर्यात अर्जन हमारे कुल निर्यात अर्जन के 50 प्रतिशत से अधिक था परंतु हाल के वर्षों में नीचे आ गया है। यह ह्रास आर्थिक वृद्धि और अर्थव्यवस्था के विविधीकरण के कारण कृषि माल के आयात-निर्यात की कुल मात्रा में बढ़ती हुई प्रवृत्तियों के बावजूद रहा। इसके अलावा, इकाई 20 (उपभाग 20.2.7) में हमने देखा कि कृषि उत्पादों के लिए विश्व बाजार घरेलू बाजारों से भिन्न मंच है क्योंकि घरेलू उत्पादकों को अन्य विकसित बाजारों/देशों में उपभोक्ताओं द्वारा अपेक्षित उच्चतर गुणवत्ता के अनुरूप होना आवश्यक हो जाता है। इसे ध्यान में रखते हुए यद्यपि हमारे कृषि निर्यात को बढ़ाने के लिए उपाय अपनाना महत्त्वपूर्ण है परंतु उन रणनीतियों पर फोकस करना भी समान रूप से उतना महत्त्वपूर्ण है जो हमारे कृषि सेक्टर की सीमाओं और संभावनाओं के अनुरूप हैं। इस पृष्ठभूमि से हमने वर्तमान इकाई का उन कारकों पर सामान्य विचार करते हुए प्रारंभ किया है जो कृषि में अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के वातावरण को नियंत्रित करते हैं। इसे करने में, हम अपने आपको उन दशाओं से परिचित करेंगे जो कृषि उत्पादों की मांग और मूल्य पर प्रभाव डालते हुए कृषि माल के अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को प्रभावित करते हैं। इसके बाद कृषि उत्पादों के हमारे निर्यात और आयात में आम प्रवृत्तियां का अध्ययन किया गया है। तद्नन्तर हम कृषि निर्यात के लिए अपनी नई विदेश व्यापार नीति के अधीन (जिसका उद्देश्य भारतीय कृषि निर्यात का भाग बढ़ाना है) कृषि उत्पादों के अपने निर्यात का पुनर्भिन्यास करने के लिए सरकार द्वारा निर्धारित प्राथमिकताओं का अध्ययन करेंगे।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

26.2 कृषि वस्तुओं के व्यापार को प्रभावित करने वाले कारक और उनके निहितार्थ

उन कारकों को समझने के लिए जो दो राष्ट्रों के बीच व्यापार प्रभावित करते है, पहले हमें यह जानना आवश्यक है कि देश व्यापार **क्यों** करते हैं? देश कई कारणों से व्यापार में लगे हुए हैं : **एक,** देश में विशेष संसाधन या कच्चे माल (जैसे तेल) की कमी हो सकती है जिसे यह उन देशों से आयात द्वारा पूरा करने का प्रयास करता है, जो उस संसाधन में समृद्ध है, ताकि उस माल या सेवाओं का उत्पादन सुकर हो सके जिनमें यह संसाधन प्रयोग होता है। **दूसरा,** यह मूल्यवर्धित उत्पादों, जैसे संसाधित खाद्य पदार्थ या मशीनरी, उपकरणों और औद्योगिक उत्पादों और प्रौद्योगिकी उत्पादों (जैसे कार, निर्माण उपकरण और सॉफ्टवेयर) का उत्पादन करने के लिए देश में पूँजी और अपेक्षित प्रौद्योगिकी का अभाव हो सकता है। जिन देशों में श्रम प्रचुर मात्रा में है, उनमें श्रम प्रधान उत्पादों, जैसे वस्त्र और उपभोक्ता माल का उत्पादन करने की प्रवृत्ति होती है जिन्हें उन देशों द्वारा आयात किया जाता है जहां श्रमिकों की कमी है और जहां श्रमिक लागत बहुत अधिक है। इसी प्रकार, जिन देशों में प्रचुर भूमि होती है, वहां भूमि प्रधान पण्यवस्तुओं, जैसे कृषि उत्पादों का उत्पादन करने की प्रवृत्ति होती है। संक्षेप में, देशों में उन पण्यवस्तुओं का उत्पादन करने की प्रवृत्ति होती है जिनमें उन्हें सापेक्ष लाभ होता है और वे अन्य पण्यवस्तुएँ व्यापार द्वारा प्राप्त करते हैं।

इसलिए (i) प्राकृतिक संसाधनों में विविधता, (ii) उपभोक्ताओं की रुचियों और प्राथमिकताओं में अंतर, और (iii) उत्पादन की लागतों में अंतर प्रमुख कारक हैं जो राष्ट्रों के बीच व्यापार को संचालित करते हैं। ये कारक जो व्यापार को प्रभावित करते हैं, इसलिए मोटे तौर पर इस प्रकार वर्गीकृत किये जा सकते है : (i) आर्थिक, (ii) नीति संबंधी और (iii) संस्थागत कारक। ये कारक साथ मिलकर देश के प्रतियोगित्व का निर्धारण करते हैं (जो उसके व्यापार को प्रभावित करता है)। इसके अलावा, चूंकि ये कारक गतिशील होते हैं और समय के चलते बदलते हैं, इसलिए वे परिणामतः व्यापारिक पण्यवस्तुओं की किस्मों और आयात के स्रोतों तथा निर्यात के गंतव्य स्थानों में परिवर्तन करते हैं।

भूमंडलीकरण की नीतियों से संसाधित और अधिक मूल्य के कृषि खाद्य उत्पादों में तेज वृद्धि हुई है। प्रतिस्वरूप बहुत से देशों में खुदरा सुपर बाजारों का क्रांतिकारी विस्तार हुआ है। यद्यपि इसे आधुनिक युग में भूमंडलीकरण की ''दूसरी लहर'' के रूप में वर्णित किया गया है, परंतु इसने निम्नलिखित समस्याएं भी दी हैं : (i) पर्यावरण ह्रास (जैसे वायु, जल, जैव विविधता आदि), (ii) उपभोक्ता (पशु सहित) कल्याण, और (iii) जलवायु परिवर्तन, आदि। इन समस्याओं ने जैव ईंधन के लिए कृषि फसलों का प्रयोग करने की गुंजाइश के साथ मिलकर अंतर्राष्ट्रीय एजेण्डा पर कृषि व्यापार के मुद्दे को ऊँचे स्तर पर पहुँचा दिया है। इस परिदृश्य में, कृषि में अंतर्राष्ट्रीय (या विदेश व्यापार) को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारकों की पहचान मोटे तौर पर निम्न प्रकार की है :

26.2.1 आर्थिक कारक

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

देश के सकल घरेलू उत्पाद, अर्थव्यवस्था में कीमतों का स्तर, पण्यवस्तुओं की मांग, पण्यवस्तुओं के उत्पादन की लागत और विनिमय दर उत्पादन के स्तर वे प्रमुख आर्थिक कारक हैं जो राष्ट्रों के बीच व्यापार को प्रभावित करते हैं।

सकल घरेलू उत्पाद : देश का सकल घरेलू उत्पाद (GDP) देश में आर्थिक कार्यकलापों का स्तर (अर्थात् देश में उत्पादित किया जा रहा कुल माल और सेवाएं) और सेवाओं को प्रतिबिंबित करता है। यह उपभोग स्तर को भी प्रभावित करता है और इस प्रकार पण्यवस्तुओं की मांग को भी। यह देश में औद्योगिकीकरण की सीमा और आधारभूत संरचना के विकास के स्तर का सूचक भी है। इसलिए उच्च GDP देश में आय और उत्पादन के उच्च स्तरों का संकेत देता है। जैसे-जैसे GDP बढ़ता है, वैसे-वैसे आयात भी बढ़ सकता है, क्योंकि (क) विदेशी उपभोक्ता माल की मांग बढ़ती है, और (ख) विदेशी आदान देश में उत्पादित माल के भाग हो सकते हैं। प्रतिस्वरूप यह निर्यात को प्रभावित करता है। अतः व्यापार द्वारा GDP प्रभावित होता है क्योंकि निवल निर्यात देश के GDP का एक घटक है।

(GDP = उपभोग + निवेश + सरकारी व्यय + निवल निर्यात)

मांग, आपूर्ति और कीमतें : कृषि पण्यवस्तुओं के लिए मांग उपभोक्ताओं की रुचि और वरीयताओं द्वारा प्रभावित होती है। कृषि पण्यवस्तुओं की आपूर्ति संसाधनों की उपलब्धता और उपलब्ध प्रौद्योगिकी के अनुसार उत्पादन क्षमता पर निर्भर करती है। कृषि उत्पाद की कीमतें मांग, आपूर्ति की स्थिति और बाजार की क्षमता द्वारा प्रभावित होते हैं। यद्यपि मांग वृद्धि (अर्थात् जनसंख्या और बढ़ती

हुई प्रति व्यक्ति आय के कारण) के बावजूद आपूर्ति दबाव (अर्थात् सीमित भूमि क्षेत्र) कृषि उत्पाद की कीमतें बढ़ाने में योगदान करता है, परंतु उत्पादकता वृद्धि कृषि उत्पादन की लागत घटाती है। उत्पादकता वृद्धि के परिणामस्वरूप उपभोक्ताओं के लिए कीमतें घटती हैं इसलिए यह आवश्यक है कि उत्पादकता वृद्धि को कृषि उत्पाद की खाद्य और खाद्येत्तर मांग में वृद्धि से अधिक होना चाहिए। इसके अलावा बाजार में अदक्षता कृषि उत्पादों के दक्ष वितरण (क्षेत्रीय और अंतर्राष्ट्रीय सीमाओं भर में) को प्रभावित करता है जिससे कीमतों में अस्थिरता रहती है। हाल ही में, इसके कारण खाद्य कमी अनुभव करने वाले देशों में खाद्य दंगे हुए हैं। इसे ''बाजार अस्थिरता के क्षयकारी आर्थिक प्रभाव'' के रूप में उल्लिखित किया गया है। इन समस्याओं पर कृषि व्यापार बाधाओं को दूर करने के लिए नीतिगत ध्यान देना आवश्यक है। मांग गतिशील होने के कारण, यह बढ़े हुए प्रभावों और संचार में विकास से उत्पन्न बढ़ती हुई जागरूकता द्वारा प्रभावित हुई है। इन सभी कारकों के परिणामस्वरूप हाल ही की दशाब्दियों में संसाधित और उच्च कीमत कृषि खाद्य उत्पादों का तेजी से विस्तार हुआ है। इससे कई देशों में खाद्य उत्पादों में संगठित खुदरा व्यापार का क्रांतिकारी विस्तार हुआ है। इतना ही नहीं, बल्कि इसे आधुनिक युग में भूमंडलीकरण की ''दूसरी लहर'' कहा गया है। इसने संसाधित खाद्य उत्पादों के आयात को भी सकारात्मक रूप से प्रभावित किया है।

विनिमय दरें – आयात की लागत और निर्यात की कीमतें :

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

विनिमय दर अन्य मुद्राओं के अनुसार मुद्रा की कीमत है। विशेष मुद्रा के लिए मांग से विनिमय दरों में उतार-चढ़ाव होता है। विनिमय दर आयात की लागतों और निर्यात के लिए प्राप्त कीमतों को प्रभावित करती है। इस प्रकार व्यापार की शर्तें और व्यापार संतुलन भी प्रभावित होते हैं। विदेशी और घरेलू पण्यवस्तुओं की तुलनात्मक कीमतें आयात की मांग को निर्धारित करती हैं। यदि देश की मुद्रा विनिमय दर बढ़ने के कारण उसी आयातित माल की कीमत की तुलना में घरेलू पण्यवस्तु की कीमत बढ़ती है तो विदेशी पण्यवस्तुओं की मांग बढ़ती है। इसी प्रकार देश के निर्यात को आयात करने वाले देश के अपने उत्पाद और उन पण्यवस्तुओं की सापेक्ष कीमतों पर निर्भर करेगा।

पण्यवस्तु कीमतें और व्यापार स्थिति : विकासशील देशों में माल के विनाशशील स्वरूप और घटिया भंडारण सुविधाओं के कारण कृषि उत्पादकता में वृद्धि के लाभ उस सीमा तक उत्पादकों/उपभोक्ताओं तक नहीं पहुंचते हैं जो उच्चतर उत्पादकता द्वारा उचित सिद्ध होता है। इस क्षेत्र की त्रुटियों के कारण उत्पादकता के लाभ पर उन संसाधनकर्त्ताओं का अधिकार हो जाता है जो अधिकांशतः पूँजी तथा भंडारण सुविधा संपन्न उद्योगपति हैं। औद्योगिक माल के लिए ऐसा नहीं है क्योंकि इन वस्तुओं के लिए बाजार न केवल अपूर्ण है बल्कि उत्पाद अपने शीघ्र-अविनाशशील स्वरूप के कारण आसानी से संरक्षित किए जा सकते हैं। दूसरे शब्दों में, **व्यापार शर्तों** में ''ग्रामीण परिधि'' के विरुद्ध और ''औद्यागिक केंद्रों'' के पक्ष में जाने की प्रवृत्ति होती है। इन कारणों से कृषि कीमतों का ऊर्ध्वाधर संचलन पीछे अनेक वर्षों में निरंतर दिखाई पड़ा है और इसके दीर्घकालीन आधार पर विद्यमान रहने का भय है। विश्व स्तर पर यह ऊर्ध्वगामी प्रवृत्ति मुख्य रूप से तीन परिदृश्यों के कारण है, अर्थात् (i) आविर्भावी

देशों (जैसे चीन, भारत और ब्राजील) में तीव्र आर्थिक संवृद्धि से उनके दैनिक आहार में सुधार, (ii) कृषि में ऊर्जा व्यय बढ़ाने वाली तेल कीमतों में अस्थिरता जिसके प्रतिस्वरूप जैव ईंधन विनिर्माण के लिए सरकारी साहाय्य प्रारंभ हुआ, और (ii) घटते हुए अनुसंधान व्यय के कारण कृषि में तकनीकी प्रगति में अवरुद्धता। खाद्य आत्मनिर्भर होने वाली अत्यधिक आबादी और आर्विभावी अर्थव्यवस्थाओं की खाद्य आयात आवश्यकताएँ न्यूनतम होंगी। इसका प्रभाव अंतर्राष्ट्रीय बाजारों में खाद्य कीमतों पर होगा।

26.2.2 नीति संबंधी कारक

विभिन्न देशों द्वारा व्यापार आसान बनाने या सीमित करने के लिए और अंतर्राष्ट्रीय वचनबद्धताएं पूरी करने के लिए भी नीतियां बनाई और क्रियान्वित की जाती हैं। इस अधीन प्रयुक्त उपाय, व्यापार प्रोत्साहित करने या सीमित करने के लिए विभिन्न प्रकार के कर या अन्य प्रतिबंध हैं। व्यापार पर प्रतिबंध सामान्यतया घरेलू उत्पादकों या उद्योगों का संरक्षण करने की आवश्यकता के कारण आवश्यक हो जाते हैं। निर्यात प्रोत्साहित करने और निर्यात बाजारों के लिए उत्पादन करने वाले उद्योगों के लिए अनुकूल वातावरण पैदा करने के लिए छूट दी जाती है। कुछ नीतियां अंतर्राष्ट्रीय वचनबद्धताओं, जैसे बाजार सुलभता और परिमाणात्मक उपायों के शुल्कीकरण जैसी WTO व्यवस्था को पूरा करने के लिए आवश्यक होती हैं। इन पर विस्तार से चर्चा अगली इकाई में की गई है।

कर और सीमा शुल्क व्यवस्था को नियमित करने के लिए प्रयुक्त महत्त्वपूर्ण नीति उपाय हैं। सीमा शुल्क वह कर है जो आयातित पण्यवस्तु पर लगाया जाता है। यह उस पण्यवस्तु पर लगाया जाता है जिसे स्वदेश में ही उत्पादित किया जाता है। यह देश की सरकार के लिए राजस्व उत्पन्न करता है, जो सरकारी व्यय के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है। जहां देशी उत्पादक आयात द्वारा नकारात्मक ढंग प्रभावित होने की संभावना होती है, आयातित पण्यवस्तुओं को अधिक मंहगा बनाने के लिए और आयात/निर्यात निरुत्साहित करने के लिए अधिक सीमा शुल्क लगाया जाता है। यह मामला उन पण्यवस्तुओं के विपरीत है जिनका घरेलू उपभोग के लिए अपेक्षित पर्याप्त मात्रा में उत्पादित नहीं हो पाता है। उदाहरण के लिए, खाद्य तेल के मामले में भारत सरकार ने सीमा शुल्क कम रखा है क्योंकि तिलहन और खाद्य तेल का घरेलू उत्पादन मांग पूरी करने के लिए अपर्याप्त है। ऐसी नीति के माध्यम से न केवल देशी उत्पादकों के हितों की रक्षा की जाती है, बल्कि घरेलू उत्पादन बढ़ाने के लिए भी प्रोत्साहित किया जाता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

व्यापार के लिए गैर-शुल्क रहित अवरोध : सीमा शुल्क से इतर अवरोध कई रूप ले सकते हैं जैसे (i) आयात पर पूर्ण प्रतिबंध, (ii) आयात कोटा और परिमाणात्मक प्रतिबंध, और (iii) खाद्य सुरक्षा और गुणवत्ता प्रतिबंध। जब विशेष पण्यवस्तु या उद्योग को संरक्षित किया जाना आवश्यक है या जब घरेलू उपभोक्ताओं का कल्याण दाव पर लगा हो, पण्यवस्तु के निर्यात या आयात पर पूर्ण या आंशिक प्रतिबंध लगाया जा सकता है। हाल ही के वर्षों में, कृषि पण्यवस्तुओं में चावल निर्यात के मामले में समय-समय पर इस उपाय का सहारा लिया गया था। किसी वर्ष विशेष में किन्हीं वस्तुओं की आयात की जा सकने वाली मात्राओं की सीमाओं का निर्धारण घरेलू किसानों के संरक्षण के लिए किया

गया है। परंतु WTO की शर्तों के अधीन सभी सदस्य देशों को चरणबद्ध तरीके में सभी परिमाणात्मक प्रतिबंध हटाना और सीमा शुल्क लगाना शुरू करना आवश्यक है।

गैर-शुल्क रहित बाधा का महत्त्वपूर्ण रूप WTO के अस्तित्व में आने के बाद प्रकट हुआ है। यह सुरक्षा और गुणवत्ता के आधार पर आयातों पर प्रतिबंधों से संबंधित है। अन्य विवादास्पद विषय निर्यात का संवर्धन करने के लिए साहाय्य का प्रयोग है। बहुत से देशों ने निर्यात को आर्थिक सहायता देना जारी रखा है, इस प्रकार वे आयात करने वाले देशों की घरेलू रूप से उत्पादित पण्यवस्तुओं की तुलना में अपने उत्पादों को अधिक सस्ता बना रहे हैं।

निर्यात नीति और बाजार अस्थिरता : अवांछित आयात से घरेलू किसानों का संरक्षण करने की दृष्टि से कृषि आयातों को हतोत्साहित करना और निर्यात वृद्धि प्राप्त करने के लिए आर्थिक सहायता प्राप्त निर्यात को प्रोत्साहित करना बहुत से देशों द्वारा अपनाई गई नीतियाँ रही हैं। अधिक उत्पादन वाले देशों द्वारा ''डम्पिंग'' अर्थात् उत्पादन लागत से भी सस्ते दामों पर बेचना, नाम की परिघटना न केवल खाद्य भंडार का निकास करती है बल्कि बाजार पर अधिकार करने की आक्रामक निर्यात नीति होती है अनेक देशों ने साहाय्य प्राप्त उत्पादनों का भी बड़े स्तर पर निर्यात किया है। भारत में भी 1990 के दशक से खाद्यान्नों का अधिक मात्रा में निर्यात व्यापार नीति की एक विशेषता रही है। यह इस तथ्य के बावजूद है कि विश्व बाजार में हमारे अनाज को मानक अंतर्राष्ट्रीय कीमतों से काफी कम दाम मिले हैं। उदाहरण के लिए, 2001 में गेहूँ $103 प्रति टन बेचा गया था जबकि उस समय विश्व जार में प्रचलित कीमत $130 थी। उसकी असाधारण विशेषता यह है कि ऐसे निर्यातों को बहुत अधिक आर्थिक सहायता दी जाती है। उदाहरण के लिए, 2001 में FCI के लिए एक टन गेहूँ की आर्थिक लागत रु. 8300 थी, जबकि यह रु. 4000 प्रति टन की कीमत पर निर्यात किया गया था। अभी हाल ही 2012 में, रु. 1 बिलियन की भारी साहाय्य पर गेहूँ का अतिरिक्त स्टॉक निर्यात करने का निर्णय किया गया था। ऐसे कदम का विरोध कुछ सक्रियतावादियों द्वारा किया गया जो देश में विद्यमान गंभीर कुपोषण को देखते हुए ऐसे निर्यात के विरुद्ध हैं। परंतु ऐसी नीति के ''आर्थिक औचित्य'' इन कारकों से जोड़े गए हैं, जैसे (i) अवैज्ञानिक ढंग से स्टोर किए गए खाद्यान्न की चूहों, नमी आदि से भारी क्षति के कारण राजकीय कोष को अनुमानित क्षति (रु. 20,000) बहुत अधिक होती है, (ii) स्फीति में चीनी, अन्नोत्पादों और सब्जियों की कीमतों का योगदान खाद्यान्न (गेहूँ/चावल) से कम माना गया है, जिसके कारण अधिशेष गेहूँ का निर्यात अधिक विवेकपूर्ण समझा गया, और (iii) अंतर्राष्ट्रीय दृष्टि से USSR जैसे कुछ गेहूँ, निर्यात देशों में भारी सूखे के कारण आपूर्ति में गिरावट है। इसके अलावा, राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम (देखिए इकाई 9, उपभाग 19.5.4) की वचनबद्धता पूरी करने के लिए आवश्यकता तो FCI गोदामों में विद्यमान स्टॉक की अपेक्षा बहुत कम है। फिर भी यह सत्य है कि देश के अंदर आपूर्ति की स्थिरता बनाए रखने के लिए निर्यात कर लगाने की पद्धति देश बनाते हैं और इस प्रकार के आयात से घरेलू उत्पादकों के संरक्षण के लिए ऊँचा आयात शुल्क लगाते हैं। परंतु ऐसी पद्धति कुछ देशों में कृषि उत्पादों के आधिक्य की स्थिति बनाकर अंतर्राष्ट्रीय बाजार को अस्थिरता की ओर ले जाती है। दूसरे शब्दों में, घरेलू और अंतर्राष्ट्रीय बाजारों के बीच मूल्य संचलन

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

का संप्रेषण कम करने के अलावा, इष्टतम क्षेत्र के लिए तुलनात्मक लाभ वाले देश द्वारा अधिक उत्पाद का औचित्य ऐसी नीति से पराजित हो जाता है।

घरेलू सरोकार बनाम अंतर्राष्ट्रीय व्यापार बाध्यताएं : कृषि में अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए व्यापार बाधा कम करने के उद्देश्य से खाद्य सुरक्षा के घरेलू उद्देश्यों, बाजार अस्थिरता और (भारी कृषि साहाय्यों द्वारा उत्पन्न) मैक्रो आर्थिक असंतुलन के बीच संतुलन स्थापित करने की नीतियों को घरेलू आर्थिक अनिवार्यताओं से संघर्ष करना पड़ता है। इसके अलावा, देशों की घरेलू नीतियां संरक्षणवाद से लाभ उठाने वाले गुटों द्वारा व्यय की गई विशाल धनराशि से प्रभावित हो सकती है। अध्ययनों ने एक ओर घरेलू कृषि समस्याओं का प्रबंध करने के लिए नीतियों, अनिवार्यताओं और दूसरी ओर कृषि में अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए वरीय वातावरण के लिए ऐसी नीतियों के नकारात्मक प्रभावों के बीच निकट संबंध प्रदर्शित किया है। दो के बीच अपेक्षित समीकरण की स्थापना के लिए महत्त्वपूर्ण आयाम यह है कि ''कच्चे तेल की कीमतें खाद्य कीमतों को कैसे प्रभावित करती हैं।'' कच्चे तेल की ऐसी कीमतें स्थापित करने के लिए जिन पर खाद्य कीमतें आगे अप्रभावित रहें, कृषि से जैव ईंधन की संभावना व्यापार समीकरण में संभावित कारक/चर के रूप में उभरी है।

26.2.3 संस्थागत कारक

आयात और निर्यात दोनों के लिए आधारभूत संरचना देश के व्यापार स्तर को निर्धारित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। कृषि व्यापार के मामले में आधारभूत संरचना को पण्यवस्तुओं के विनाशशील स्वरूप के कारण और अधिक महत्त्व मिलता है। दक्ष परिवहन और संचालन सुविधाएं कृषि व्यापार के लिए अनिवार्य पूर्वापेक्षाएं हैं। इतनी ही अनिवार्य संचार की आधारभूत सुविधाएं हैं। फल-सब्जी तथा फूल जैसी वस्तुओं के मामले में शीत भंडार श्रृंखला उत्पाद की गुणवत्ता बनाए रखने में और उसका शेल्फ जीवन बढ़ाने में बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

भौतिक आधारभूत संरचना के साथ कतिपय गुणवत्ता पैरामीटर सुनिश्चित करने के लिए पण्यवस्तुओं के पूर्वापचार की सुविधाएं भी अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को प्रभावित करती हैं। उदाहरण के लिए, कई देश फलों को स्वीकार करने से पहले उन्हें वाष्प ऊष्मा उपचारित किया हुआ चाहते हैं।

बोध प्रश्न 1

नीचे दिए स्थान में अपना उत्तर लगभग 50 शब्दों में दीजिए।

1) संक्षेप में दो कारण बताइए, विदेश व्यापार की ओर देश क्यों आकर्षित होते हैं?

....

....

....

....

2) वे मुख्य कारक क्या हैं जो कृषि वस्तुओं में विदेश व्यापार को प्रभावित करते हैं?

....

....

....

....

3) वह शर्त बताइए जिसके पूरा होने पर कृषि में उत्पादकता वृद्धि के लाभ कम कीमतों के रूप में उपभोक्ताओं तक पहुँच सकते हैं।

....

....

....

....

4) हाल ही की घटना के किस परिदृश्य का वर्णन बाजार अस्थिरता के 'क्षयकारी प्रभाव' के रूप में किया गया है? वे क्या आर्थिक कारक हैं जिन्होंने उसकी उपस्थिति में मुख्य रूप से योगदान किया है?

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

....

....

5) उत्पाद/बाजार के कृषि और उद्योग माल के बीच विशेषणीय लक्षण क्या हैं जो कृषि के विरुद्ध जाने के लिए व्यापार की शर्तों प्रभावित करते हैं?

....

....

....

....

6) तीन मुख्य भूमंडलीय परिघटनाएं बताइए जिनसे कृषि कीमतों में ऊर्ध्व प्रवृत्ति जारी रहने का भय है। यह अंतर्राष्ट्रीय बाजार में खाद्य कीमतों को कैसे प्रभावित करेगा?

....

....

....

7) डम्पिंग क्या है? मुख्य कारण क्या हैं? इसे व्यवहार में क्यों लाया जाता है?

....

....

....

....

8) साहाय्यी खाद्यान्न निर्यात करने के संबंध में भारत सरकार के हाल के निर्णय पर सक्रियतावादियों की क्या चिंता है? ऐसे निर्णय के लिए आप क्या आर्थिक औचित्य निर्दिष्ट कर सकते हैं?

....

....

....

....

9) अंतर्राष्ट्रीय बाजारों में करों/आयात शुल्कों द्वारा कृषि उत्पादों का निर्यात/आयात कम करने के दो कारण बताइए।

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

....

10) कृषि में अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए अनुकूल वरीयतापूर्ण वातावरण स्थापित करने के लिए अपेक्षित नीतियाँ बनाने में किन घरेलू चिंताओं के आयामों का सामना किया जाना है?

....

....

....

....

11) कृषि में संस्थागत कारक विशेष रूप से अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में कैसे महत्त्वपूर्ण हैं?

....

....

....

26.3 भारत का कृषि व्यापार

भारत में कृषि व्यापार में बदलती हुई प्रवृत्तियों का विश्लेषण करने के लिए हमें भारत के निर्यात और आयात के आंकड़ों के स्रोत के बारे में जानना आवश्यक है। वाणिज्य मंत्रालय के अधीन वाणिज्यिक अधिसूचना और सांख्यिकी महानिदेशालय (DGCIS) व्यापार पर आंकड़ा संकलित करता है। ये आंकड़े मासिक और वार्षिक काल श्रृंखला में नियमित रूप से प्रकाशित किए जाते हैं। वार्षिक आंकड़े वाणिज्य मंत्रालय की वेबसाइट पर भी उपलब्ध हैं। कई अन्य संगठनों, जैसे RBI, वित्त मंत्रालय (MoF), केंद्रीय सांख्यिकी संगठन (CSO) आदि के प्रकाशन भी व्यापार आंकड़ों की रिपोर्ट देते हैं। विशेषकर RBI अपने प्रकाशन हैंडबुक ऑफ स्टेटिस्टिक्स इन इंडियन इकानॉमी में, वित्त मंत्रालय अपने वार्षिक आर्थिक सर्वेक्षण रिपोर्टों और CSO अपने वार्षिक प्रकाशन स्टेटिस्टिक्ल एब्स्ट्रेक्ट में व्यापार पर आंकड़े प्रकाशित करते हैं। किंतु इनके प्रकाशनों में अधिकांशतः सामान्य वार्षिक आंकड़े ही होते हैं, पण्यवस्तुवार ब्यौरेवार सूचना को HS आंकड़े कहते हैं (इसकी रूपरेखा नीचे दी गई है) और आयात के स्रोत तथा निर्यात के गंतव्य स्थानों (जो व्यापार की दिशा निर्दिष्ट करता है) की विस्तृत जानकारी DGCIS प्रकाशन में उपलब्ध है। कृषि और संबद्ध उत्पादों के 15 मुख्य समूहों के निर्यात पर आंकड़े प्रकाशित किये जाते हैं अर्थात् (i) चाय, (ii) कॉफी, (iii) चावल, (iv) गेहूँ, (v) कपास, (vi) तंबाकू, (vii) काजू, (viii) गर्म मसाले, (ix) तेल, (x) फल और सब्जियां, (xi) संसाधित फल और जूस, (xii) समुद्री उत्पाद, (xiii) चीनी और सीरा, (xiv) गोश्त उत्पाद, और (xv) अन्य कृषि उत्पाद। कृषि और संबद्ध उत्पादों के आयात पर तद्नुरूपी आंकड़े चार सामान्य वस्तु शीर्षों में प्रकाशित किए जाते हैं, अर्थात् (i) धान्य और संबद्ध उत्पाद, (ii) खाद्य तेल, (iii) दलहन, और (iv) चीनी। यद्यपि इनका संबंध ''विपुल उपभोग माल'' (जैसे खाद्य, कृषि कच्चा माल, कपास, तंबाकू आदि) के अधीन वर्गीकृत किया गया है, परंतु कुछ अन्य आयातित कृषि मदों, जैसे कागज, कच्चा रबड़ और पल्प को ''अन्य विपुल मदों के अधीन अलग से प्रकाशित किया जाता है। नीचे उपभाग 26.3.2 में किए गए भारत के आयात के विश्लेषण में कृषि और संबद्ध उत्पादों को कुल पांच पण्यवस्तु समूहों के अधीन आयात मदें बनाते हुए उपर्युक्त तीन मदों को ''अन्य'' के अधीन सम्मिलित किया गया है। इन विर्दिष्ट पण्यवस्तु मदों के लिए निर्यात और आयात पर आंकड़े अलग से रुपयों और डालरों में प्रकाशित किये जाते हैं। व्यापार के विश्लेषण के लिए अन्य देशों के व्यापार आंकड़ों की भी आवश्यकता हो सकती है। व्यापार पर ऐसे अंतर्राष्ट्रीय आंकड़े विश्व बैंक और खाद्य तथा कृषि संगठन (FAO) से उपलब्ध हैं। FAO की वेबसाइट FAOSTAT के नाम के अधीन विभिन्न पहलुओं पर आंकड़े रखती है। पण्यवस्तु के अनुसार और देश के अनुसार आंकड़े अंतर्राष्ट्रीय व्यापार केंद्र, जनेवा से भी सुलभ हो सकते हैं।

व्यापार सांख्यिकी पर आंकड़ों/सूचना की दृष्टि से {विदेश व्यापार महानिदेशालय (DGFT), वाणिज्य मंत्रालय द्वारा प्रकाशित} निर्यात और आयात का ''भारत व्यापार वर्गीकरण'' (सुमेल प्रणाली) { ITC-(HS) } का प्रकाशन दूसरा महत्त्वपूर्ण स्रोत है। कृषि और संबद्ध उत्पादों के लिए हम दो स्तर अर्थात् अनुभाग और अध्याय पर ITC (HS) में किए गए वर्गीकरण का उदाहरण दे सकते हैं। विस्तृत–I अंक अनुभागीय स्तर पर ITC(HS) कृषि और संबद्ध उत्पाद के लिए चार वर्गीकरण

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

करता है अर्थात् I जीवित पशु, पशु उत्पाद आदि, II वनस्पति उत्पाद, III पशु या वनस्पति वसा या तेल आदि, और TF तैयार खाद्य पदार्थ, पेय पदार्थ आदि। HS अध्याय नाम का वियोजन के द्वितीय स्तर पर (2 अंक स्तर) पर कृषि उत्पादों के आगे आठ संसाधित खाद्य उत्पादों (कोड कोष्ठकों के अंदर) में वितरित किया जाता है, अर्थात् (i) डेयरी उत्पाद, अंडे, शहद आदि (ii) पशु और वनस्पति वसा तथा तेल, आदि (15), (iii) गोश्त, मछली आदि की तैयारियां (16), (iv) चीनी और चीनी मिष्ठान (17), (v) कोको और कोको उत्पाद (18), (vi) धान्य, स्टार्च या दूध, पेस्ट्री पके हुए उत्पाद (19), (vii) सब्जियां, फल, मेवा आदि तैयार करना (20), और (viii) विविध भोज्य पदार्थ तैयार करना (21)। उच्चतम स्तर पर पण्यवस्तुएं ITC (HS) में 6–अंक स्तर पर वर्गीकृत की जाती है। ITC (HS) कोड प्रौद्योगिकी/उत्पादों में परिवर्तन के लिए समय-समय पर संशोधित/अद्यतन किए जाते हैं।

हम भारत की कृषि आयात और निर्यात में प्रवृत्तियों का अध्ययन करते समय इन बातों पर विशेष ध्यान देंगे : (i) कृषि + कृषि पण्यवस्तुओं के कुल निर्यात/आयात के अनुपात के रूप में कृषि पण्यवस्तुओं के निर्यात में प्रवृत्तियाँ, (ii) अपने सापेक्ष शेयर/रैंक के अनुसार निर्यात में अग्रणी वस्तुएं, और (ii) 1990 के/2000 के दशक की निर्दिष्ट पंचवर्षीय अवधियों में आयात/निर्यात में वृद्धि दर।

26.3.1 निर्यात में प्रवृत्तियाँ

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

1996-2011 की अवधि में कुल निर्यातों में कृषि निर्यात का अंश घटता रहा है (तालिका 26.1)। गिरावट 1996-97 के 20.5 प्रतिशत से 2010-11 के 9.7 प्रतिशत तक है (वर्ष 2011-12 में कुछ वृद्धि होकर यह 12.3 प्रतिशत गया है)। यह कमी तुलनात्मक ही है, वैसे यदि इसी अवधि में कृषि निर्यात के कुल मूल्य पर विचार करें तो यह 4.5 गुणा से अधिक की वृद्धि है। यदि हम 2011-12 के अनंतिम आंकड़ों पर विचार करें तो यह वृद्धि 7.4 गुणा हो जाती है। अन्य निष्कर्ष जो हम इस संबंध में निकाल सकते हैं, निम्न प्रकार हैं:

तालिका 26.1 : कृषि और संबद्ध उत्पादों में मुख्य पण्यवस्तुओं का निर्यात 1997-2012

(रुपये बिलियन में)

पण्यवस्तु		1996-97	2000-01	2005-06	2010-11	2011-12
1	चाय	10.4	17.9	17.3	33.5	41.4
2	कॉफी	14.3	11.9	15.9	30.1	45.3
3	चावल	31.7 (III)	29.3(III)	62.2(III)	115.9 (IV)	241.2(II)
4	गेहूँ	7.0	4.2	5.6	0.01	10.2
5	कपास	15.8 (V)	2.2	29.0(V)	131.6(II)	216.2(III)
6	तंबाकू	7.6	8.7	13.3	39.9	40.1
7	काजू	12.9	20.5(V)	25.9	28.5	44.5

8	गरम मसाला	12.0	16.2	21.2	80.4	131.8
9	तेल	35.0 (II)	20.5(IV)	48.8(IV)	110.7(V)	117.6
10	फल-सब्जी (F&V)	5.8	8.4	21.3	49.1	57.1
11	संसाधित फल (सब्जी)	10.9	13.2	15.9	36.7	54.6
12	समुद्री उत्पाद	40.1(I)	63.7(I)	70.4(II)	119.2(III)	165.9(IV)
13	चीनी और शीरा	10.8	5.1	6.0	56.3	89.8
14	गोश्त और संबद्ध	7.1	14.7	27.5	89.6	141.1(V)
15	अन्य	22.5(IV)	36.6(III)	72.0(I)	181.5	396.5
क	योग (1 से 15)	243.6	272.9	452.2	1103.0	1793.3
	शीर्ष पांच उत्पादों का शेयर (प्रतिशत)	145.1(59.6)	170.6(62.5)	282.4(62.5)	658.9(59.7)	1160.9(64.7)
ख	कुल निर्यात (कृषि + कृषीत्तर)	1188.2	2035.7	4564.2	11429.2	14592.8
	ख के % के रूप में क	20.5		9.9	9.7	12.3
	1995-96 = 100 पर सूचकांकित कृषि निर्यात	100.0	111.9	185.4	452.2	753.3
5 वार्षिक वृद्धि दर (%)		–	2.3	10.6	19.5	

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

स्रोत : RBI, भारतीय अर्थव्यवस्था पर सांख्यिकी हैंडबुक, 2012।

नोट : (i) कोष्ठकों के अंदर रोमन अंक मूल्य स्थिति में शीर्ष पांच उत्पादों को निर्दिष्ट करते हैं।

(ii) 2011-12 के आंकड़े अनंतिम हैं।

1) शीर्ष पांच प्रमुख उत्पाद जो मिलकर कृषि निर्यात का लगभग 60 प्रतिशत है उनमें चावल, कपास, तेल और समुद्री उत्पाद शामिल हैं। इस समूह में अन्य उत्पाद विविध मदों के हैं जिन्हें ''अन्य'' के अधीन सम्मिलित किया जाता है जिनका समग्र कृषि निर्यात में अंश कृषि की सभी पण्यवस्तुओं के निर्यात में 1996-2012 में लगातार बढ़ा है। वर्ष 2005 तक इस ''अन्य उत्पाद'' समूह ने शीर्ष स्थान प्राप्त कर लिया था और तब से 2006-12 अवधि में ये नियमित रूप से बढ़ते हुए 5.5 गुणा हो गया है।

2) अन्य उत्पाद, जिनका निर्यात स्थिर गति से बढ़ा है, वे हैं : तंबाकू, काजू, गर्म मसाले, फल और सब्जियाँ, संसाधित फल और जूस तथा गोश्त और गोश्त उत्पाद।

3) मूल्य श्रृंखला का सूचकांकन (1995-96 के लिए गुणक कारक 100 ÷ 243.6

प्रयोग कर अर्थात् आधार वर्ष का मूल्य) करने पर यदि 1996-2000, 2000-05, 2005-10 (या अंतिम वर्ष बिंदुओं को लेकर 1997-2001) की तीन पंचवर्षीय अवधियों में वृद्धि दरों की तुलना करें तो हम देखते हैं कि 1996-2000 की अवधि में कृषि निर्यात क्रमशः 2.3 प्रतिशत, 10.6 प्रतिशत और 19.5 प्रतिशत की चक्रवर्धी वार्षिक औसत से लगातार बढ़ा है। इन प्रवृत्तियों से 2005-10 की अवधि कृषि निर्यात के लिए सबसे अधिक उत्पादनकारी रही है। 1997-2011 की 15 वर्ष की अवधि में कृषि निर्यात में दीर्घकालिक औसत चक्रवर्धी वार्षिक वृद्धि दर 10.6 प्रतिशत है और 1997-2012 की 10 वर्षों की अवधि में यह 13.3 प्रतिशत है। ऐसी दीर्घकालिक वृद्धि दर वर्ष प्रति वर्ष बराबर होती है। इस मानदंड से भारतीय कृषि निर्यात ने लगातार, विशेषकर 2000 के बाद के वर्षों में, अधिक अच्छा निष्पादन किया है।

26.3.2 आयात में प्रवृत्तियाँ

कृषि आयात के मूल्य में प्रवृत्ति 1997-99 पर ध्यान दें तो इनका मान 75.3 बिलियन रुपए से बढ़कर 2011-12 (वर्तमान कीमतों पर) 866.2 रुपए हो गया है। सुधार पश्च वर्षों, अर्थात् 1996-2012 (तालिका 26.2) की 17 वर्षों की अवधि में आयात मूल्य 11.5 गुणा बढ़ा है। परंतु ''कुल उत्पादों से कुल कृषि आयात'' के अनुपात के रूप में 1996-97 में यह 5.4 प्रतिशत से घटकर 2011-12 में 3.7 प्रतिशत रह गया। पण्यवस्तु उत्पादों के अनुसार हमारे आयात की बड़ी मात्रा ''खाद्य तेल'' है, इसके बाद 'अन्य कृषि उत्पाद' अर्थात् अन्य और दलहन हैं। अन्नोत्पाद और चीनी का संयुक्त सापेक्ष अंश 2010-11 में 5.3 से सिकुड़कर 2011-12 में 1 प्रतिशत से भी कम रहा है। {**नोट** : ये प्रतिशत तालिका 26.2 में नहीं दर्शाई गई है, इनकी गणना 100 मानकर 'क' में योग को लेकर की जा सकती है।} कृषि आयात का मूल्य (1996-97 = 100 के) स्थिर आधार में बदलकर कीमतों में वृद्धि का प्रभाव प्रति संतुलन किया जा सके और समयानुसार तुलना करते हुए, हम इन तीन अन्य निष्कर्षों तक पहुँच पाये हैं:

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

1) कृषि आयात में पंचवर्षीय औसत वृद्धि दर 1996-2000 में 7.2 प्रतिशत से बढ़कर 2000-05 के दौरान 14.4 प्रतिशत हुई और आगे 2005-10 में 24.9 प्रतिशत हुई।

2) कुल कृषि और संबद्ध GDP निर्यात (अंतिम पंक्ति तालिका 26.2) से कुल कृषि विदेश व्यापार (अर्थात् आयात + निर्यात) का प्रतिशत 1996-97 में 9 प्रतिशत से बढ़कर 2011-12 में 18.8 प्रतिशत हुआ। ये प्रवृत्तियाँ कृषि व्यापार विनियमों के धीरे-धीरे बढ़ते हुए उदारीकरण का सूचक हैं; और

3) कृषि निर्यात और आयात (तालिका 26.2 में ग और क) में दो जोड़ों की तुलना करने पर हम देखते हैं कि भारत कृषि पण्यवस्तुओं (अर्थात् ग – क > 0) का निवल निर्यातक रहा है।

तालिका 26.2 : कृषि और संबद्ध उत्पादों में बड़ी मात्रा में उपभोक्ता वस्तुओं का आयात—1997-2012

(रुपये बिलियन में)

पण्यवस्तु		1996-97	2000-01	2005-06	2010-11	2011-12
1		2	3	4	5	6
1	धान्य और संबद्ध	4.9	0.9	1.6	5.5	3.4
2	खाद्य तेल	29.3	59.8	89.6	298.6	462.4
3	दलहन	8.9	5.0	24.8	71.5	87.7
4	चीनी	0.03	0.3	6.5	27.9	3.1
5	अन्य	32.2	40.4	85.5	228.9	309.6
क	योग (1 से 5)	75.3	106.3	208.0	632.4	866.2
ख	कुल आयात (सभी उत्पाद : कृषि + कृषीत्तर)	1389.2	2308.7	6604.1	16834.7	23459.7
	1) ख के प्रतिशत के रूप में क	5.4	4.6	3.1	3.8	3.7
	2) 1995-96=100 पर सूचकांकित कृषि आयात	100.0	141.4	276.7	841.1	1152.0
	3) 5 वार्षिक वृद्धि दर (%)	—	7.2	14.4	24.9	—
ग	कुल कृषि निर्यात	243.6	273.9	452.2	1103.0	1793.3
	कुल व्यापार (क + ग)	318.9	379.2	660.2	1735.4	2659.5
घ	कृषि और संबद्ध	3531.42	4606.08	6377.72	12698.88	14173.66
	ग से घर का अनुपात (%)	9.0	8.2	10.4	13.7	18.8

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

स्रोत : RBI, भारतीय अर्थव्यवस्था पर सांख्यिकी हैंडबुक।

नोट : अन्य में शामिल हैं – कागज, रबड़, लुग्दी आदि कृषि उत्पाद।

बोध प्रश्न 2

नीचे रिक्त स्थान में अपना उत्तर लगभग 50 शब्दों में दीजिए।

1) कौन-से तीन सरकारी स्रोत भारत के कृषि व्यापार पर आंकड़े प्रकाशित करते हैं? मुख्य एजेंसी कौन है जो यह आंकड़े एकत्र करती है?

....

....

....

....

2) प्रथम दो स्तर क्या हैं जिनमें ITC (HS) यथाकथित व्यापार पर आंकड़े प्रकाशित करता है? उन आठ कृषि उत्पादों के नाम बताइए जिन्हें ITC में उसके वर्गीकरण के दूसरे स्तर में शामिल किया गया है।

....

....

....

....

3) उन मुख्य कृषि और संबद्ध पण्यवस्तुओं को बताइए जिनके लिए निर्यात पर आंकड़े प्रकाशित किए जाते हैं।

....

....

....

....

4) वे पांच सामान्य पण्यवस्तु शीर्ष क्या हैं जिन पर कृषि और संबद्ध उत्पादों के आयात पर आंकड़े प्रकाशित किए जाते हैं?

....

....

....

....

5) 1996-2011 की अवधि में हमारे कृषि निर्यात में (प्रतिशत के अनुसार) क्या प्रवृत्ति रही है?

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

....

....

6) उन पांच शीर्ष कृषि पण्यवस्तुओं की पहचान कीजिए जिन्होंने मिलकर भारतीय निर्यात पर प्रभुत्व किया और उसे आगे ले गयीं। इनमें से किसने हाल ही के वर्षों में अपन श्रेणीक्रम/शेयर निरंतर सुधारा है?

....

....

....

....

7) भिन्न-भिन्न समयावधियों में कृषि वृद्धि की तुलना करने के लिए परिकलनात्मक आवश्यकता के रूप में की जाने वाली विशेष सावधानी की आवश्यकताएँ क्या हैं? बताइए। तालिका 26.2 प्रस्तुत कृषि आयात दर आंकड़ा के लिए आंकड़ा श्रृंखला में यह समायोजन को कैसे प्रभावित करता है?

....

....

....

....

8) कृषि निर्यात में वृद्धि दर के अनुसार 1996-2012 की अवधि में कौन सी विशेष अवधि भारतीय कृषि निर्यात के लिए सबसे अधिक उत्पादनकारी रही है?

....

....

....

9) 1997-2012 की लंबी अवधि में कृषि निर्यात में वृद्धि दर क्या रही है? यह वृद्धि दर भारत में कृषि उत्पादों के लिए समग्र निर्यात प्रवृत्ति पर क्या संकेत देती है?

....

....

....

10) कृषि निर्यात में 1997-2012 की अवधि में सामान्य प्रवृत्ति बताइए।

....

DIKSHANT IAS

....

Call us @7428092240

....

11) पण्यवस्तु समूहों के अनुसार वर्ष 2010-11 और 2011-12 में धान्य और चीनी निर्यात के संयुक्त अंश में क्या प्रवृत्ति रही है?

....

....

....

12) 1997-2012 की अवधि में ''कुल कृषि और संबद्ध GDP से ''कुल कृषि विदेश व्यापार'' के अनुपात में क्या प्रवृत्ति है?

....

....

....

26.4 व्यापार नीति

भारत में व्यापार नीति वाणिज्य और उद्योग मंत्रालय द्वारा घोषित निर्यात-आयात नीति (या एक्जिम नीति) में विनिर्दिष्ट प्रावधानों में निहित होती है। सामान्य एक्जिम नीति पांच वर्षों में एक बार घोषित की जाती है। वर्तमान एक्जिम नीति के अंतर्गत 2009-14 की अवधि आती है। एक्जिम नीति को प्रत्येक वर्ष 31 मार्च को पुनः नवीकृत की जाती है और घोषित संशोधित प्रक्रियाएं प्रत्येक वर्ष की पहली अप्रैल

से लागू होती हैं। ऐसे संशोधन आम बजट में की गई घोषणा को समाहित करते हैं, जैसे (i) आयात को अधिक सस्ता/मंहगा बनाने के लिए सीमा शुल्क कम करना/बढ़ाना; (ii) अतिरिक्त निर्यात मंहगा/सस्ता बनाने के लिए शुल्क लगाना या उसे कम करना; और (iii) देश में आयात शुल्कों की दरों में परिवर्तनों की घोषणा की जाती है। 1980 के दशक के प्रारंभ तक आयात प्रतिस्थापन का अनुसरण करने के बाद बाद भारत ने 1980 के दशक में पहले औद्योगिक वस्तुओं के लिए पहले व्यापार उदारीकरण की आंशिक प्रावस्था में प्रवेश किया और बाद में कृषि माल के लिए 1990 के दशक के उत्तरार्ध में कदम उठाए। इसे ध्यान में रखते हुए हमारा फोकस कृषि में उदारीकरण की नीतियों के अध्ययन पर 1990 के दशक के बाद प्रारंभ किए गए उपायों तक सीमित रहेगा। इसके अलावा दो विशिष्ट उपायों अर्थात् (i) परिमाणात्मक प्रतिबंधों और सीमा शुल्क (साधारणतया विदेश व्यापार नियंत्रित करने में प्रयुक्त) को ध्यान में रखते हुए हम मुख्यतया इन दो पहलुओं में परिवर्तनों पर ध्यान केंद्रित करेंगे। नीति लक्ष्य का अन्य क्षेत्र व्यापार संवर्धन करने के लिए देशों के बीच किए गए द्विपक्षीय और बहुपक्षीय करारों से संबंधित है। इस दृष्टि में हम कुछ खास करारों के सोदाहरण विवरण के साथ इस इकाई में अपने विचारों को शामिल करेंगे।

26.4.1 परिमाणात्मक प्रतिबंध और सीमा शुल्क

संकल्पनात्मक दृष्टि से सामान्यतया परिमाणात्मक प्रतिबंधों का संबंध ''कोटा'' से है। विशेषकर आयात कोटा का आर्थिक प्रभाव आयातित माल की घरेलू कीमतें अधिक महंगी बनाना है। दूसरी ओर, सीमा शुल्क आयात या निर्यात की मात्रा को सीमित किए बिना आयातित या निर्यातित माल पर शुल्क या उपकर लगाना है। इस प्रकार यद्यपि पण्यवस्तु की कीमत पर ''शुल्क'' लगाने का प्रभाव कोटा के समान है, फिर भी इन दोनों में बड़ा अंतर है। अंतर यह है कि शुल्क सरकार को राजस्व देता है, परंतु कोटा कोई राजस्व नहीं देता है। इसके विपरीत यदि यह आयात के लिए शुल्क है, तो यह कीमत स्तरों में विरूपण की लागत पर अधिक लाभ अर्जित करने में आयातकर्त्ता की सहायता करता है। किंतु ''आयात कोटा'' के रूप में बाजार में एकाधिकार के मामले की तुलना में ''आयात शुल्क'' से घरेलू कीमतों में वृद्धि अपेक्षाकृत कम होती है। दूसरे शब्दों में, आयात करने वाले देशों के लिए कोटा की लागत शुल्क की अपेक्षा अधिक है। इस प्रकार राजस्व अर्जन करने का कार्य इस तथ्य के अलावा शुल्क की विभेदकारी विशेषता है कि यह व्यापार बातचीत में प्रयोग के लिए अधिक आसान उपाय है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

भारत में, कृषि में सुधारों की गति 1993-94 के बाद तेज हुई। भारत में कृषि आयात पर कराधान के तीन घटक हैं, अर्थात् (i) मूल शुल्क, (ii) VAT और वैसे ही घरेलू उत्पादों के लिए लागू अन्य कर के समान अतिरिक्त प्रति शुल्क), और (iii) 2 प्रतिशत अधिभार (जिससे प्राप्त राजस्व बच्चों के लिए दोपहर के भोजन सहित प्राथमिक शिक्षा निधीयन के लिए प्रयुक्त किया जाता है। इन तीन घटकों पर शुल्क की दरें पिछले वर्षों में भिन्न-भिन्न रही हैं। WTO के दिशा-निर्देशों को ध्यान में रखते हुए कृषि पण्यवस्तुओं जैसे (i) गेहूँ और गेहूँ उत्पाद, (ii) चावल, (iii) दलहन, और (iv) तिलहन के आयात पर परिमाणात्मक प्रतिबंध 2000 के तत्काल बाद हटाए गए हैं।

वर्ष 2005-06 के अंत तक आठ HS-अध्याय कृषि उत्पादों (उल्लिखित) का औसत सीमा शुल्क काफी घटाया गया। परंतु विशिष्ट उत्पादों की दरों के अनुसार खाद्य उत्पादों (2005-06 में) के लिए लागू कुल आयात शुल्क 30 प्रतिशत से (कोको और कोको उत्पादों तथा विविध खाद्य उत्पादों के लिए) बढ़ाकर 75.5 प्रतिशत (पशु और वनस्पति वसा तथा तेल) किया गया (तालिका 26.3)।

खाद्य उत्पादों के आयात को विशेष रूप से दो स्थितियों में प्रोत्साहित किया गया, अर्थात् (i) कुछ खाद्य मदों की घरेलू आपूर्ति में लगातार कमी (जैसे दलहन) या (ii) घरेलू संसाधन उद्योगों (जैसे कपास और चीनी) के कार्य करने में बाधा उत्पन्न करने वाली आपूर्ति में अस्थायी विघटन। यद्यपि कुल आयात शुल्क में कटौती खाद्य उत्पादों के लिए काफी थी। पहले विद्यमान स्तरों की तुलना में, अर्थात् 1986 में कृषि पण्यवस्तुओं के लिए औसत शुल्क 150 प्रतिशत था और 1992 में यह 115 प्रतिशत था। यह सोचते हुए कि 2006-07 में औद्योगिक शुल्कों में से लगभग 90 प्रतिशत 12.5 प्रतिशत दर पर थे, कृषि उत्पादों के लिए शुल्क (37.6 प्रतिशत पर) अभी भी कृषीत्तर वस्तुओं के लिए लागू शुल्क के औसत स्तर की तुलना में तीन गुणा था। इस संबंध में कृषि और कृषीत्तर वस्तुओं के बीच अंतर की मात्रा इस तथ्य से सुसंगत थी कि : (i) औद्योगिक माल के लिए बाजार पहले प्रारंभ किए गए, और (ii) कृषि बाजार न केवल कुछ वर्ष बाद खोले गए बल्कि चरणबद्ध तरीके में इस सेक्टर को धीरे-धीरे खोलने की नीति द्वारा प्रतिस्पर्धात्मक दबाव से पृथक रखना अभिप्राय था। यह बात विशेषकर भारतीय अर्थव्यवस्था के कृषि संबंधी स्वरूप और असाधारण घरेलू समस्याओं के कारण है जहां कामगारों का बड़ा भाग न केवल आजीविका के लिए कृषि पर आश्रित है बल्कि उनकी उत्पादकता/दक्षता स्तर सुधारने के बारे में अपेक्षित संस्थागत सहायता प्रणालियां भी अभी तक पर्याप्त विकसित नहीं हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

तालिका 26.3 : भारत में संसाधित खाद्य उत्पादों के लिए औसत शुल्क (%)

HS अध्याय कोड	HS अध्याय में खाद्य उत्पाद का विवरण	औसत शुल्क (%)
04	डेयरी उत्पाद, अंडे, शहद आदि	34.1
15	पशु और वनस्पति वसा और तेल उत्पाद	75.5
16	गोश्त, मछली आदि प्रसंस्करण	34.1
17	चीनी और चीनी मिष्ठान	35.4
18	कोको और कोको प्रसंस्करण	30.0
19	सीरियल, स्टार्च या दूध आदि का प्रसंस्करण	31.2
20	सब्जियां, फलों, नट्स आदि का प्रसंस्करण	30.2
21	विविध खाद्य प्रसंस्करण	30.0
	8 संसाधित खाद्य मदों का औसत	37.6

स्रोत : WB 2008, पृष्ठ 12

26.4.2 व्यापार करार

व्यापार करार दो या अधिक देशों के बीच संविदात्मक व्यवस्था है। वे द्विपक्षीय व्यापार करार (BTAs) कहलाती है यदि देशों की सहभागिता में दो तक सीमित

रखी जाती है और बहुपक्षीय करार (MTAs) यदि देशों की संख्या दो से अधिक होती है। अधिकांश देशों में अंतर्राष्ट्रीय व्यापार बाधाओं, जैसे सीमा-शुल्क, गैर-शुल्क बाधाओं जैसे QRs (परिमाणात्मक बाधाओं) आदि द्वारा विनियमित किए जाते हैं। संधियों का उद्देश्य सम्मिलित देशों के लिए अपेक्षित ''लेवल प्लेइंग फील्ड'' द्वारा बाधाओं में कमी करना होता है। निर्णीत रियायतों की सीमा निर्धारित करती है कि क्या यह करार मुक्त व्यापार करार है या व्यापार वरीयता करार है। जब तक वांछित लाभ नहीं होता कोई भी देश व्यापार करार का हस्ताक्षरकर्त्ता नहीं हो सकता। आदान-प्रदान सभी व्यापार करारों की आवश्यक विशेषता है। एक अन्य साधारण विशेषता परममित्र राष्ट्र (MFN) खंड की है जो इस संभावना को रोकता है कि करार का हस्ताक्षरकर्त्ता किसी अन्य देश को कम शुल्क का लाभ दे सकता है। सामान्यतया व्यापार करार भी ''राष्ट्रीय गैर-शुल्क प्रतिबंध व्यवहार'' खंड भी शामिल करते हैं जिसका अभिप्राय है कि सम्मिलित देश शुल्क इतर बाधाएं जैसे (i) भेदभावपूर्ण विनियम, (ii) चयनात्मक उत्पाद कर, (iii) कोटा या (iv) विशेष लाइसेंस अपेक्षिताएं लगाकर दी गई शुल्क सुविधा व्यर्थ नहीं करेंगे।

भारत ने अभी तक 40 से अधिक व्यापार करार किए हैं जिनमें से लगभग 11 (या 27 प्रतिशत) MTA हैं और 30 (73 प्रतिशत) BTA हैं। उदाहरण के लिए, SAFTA (दक्षिण एशिया मुक्त व्यापार करार) और APTA (एशिया प्रशान्त व्यापार करार) बहुराष्ट्रीय करार हैं। MTA का एक अन्य उदाहरण, भारत और चार लेटिन अमेरिकी देशों (अर्थात् ब्राजील, अर्जेंटाईना, यूराग्वे और पराग्वे) के बीच हस्ताक्षरित मेर्कोसुर व्यापार वरीयता करार है जिनमें मेर्कोसर देशों से भारत को निर्यातित 14 कृषि खाद्य पण्यवस्तुओं और भारत से मेर्कोसुर देशों को निर्यातित 11 कृषि खाद्य पण्यवस्तुओं को अधिमान व्यवहार दिया गया है। BTA में भारत और सिंगापुर के बीच वृहद आर्थिक सहयोग करार (CECA) ऐसा उदाहरण है जहां उदारीकृत शुल्क व्यवहार के लिए कृषि खाद्य मदों को शामिल किया गया है। सिंगापुर और भारत के बीच कुल 11,666 उत्पादों में से 1446 (अर्थात् 12.4 प्रतिशत) उत्पाद कृषि खाद्य वस्तुएं ही हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

26.4.3 नई विदेश व्यापार नीति (2009-14) और कृषि निर्यात

कृषि निर्यात

2009-14 की अवधि के लिए घोषित नई विदेश व्यापार नीति के दो मुख्य उद्देश्य हैं अर्थात् (i) 2014 तक भारत के माल और सेवाओं का निर्यात दुगुना करना, और (ii) 2020 तक विश्व व्यापार में भारत का शेयर दुगुना करना (जो 2008 में लगभग 1.5 प्रतिशत था) विभिन्न उपायों के मिश्रण द्वारा निर्यात प्रोत्साहित करने के लिए नीतिगत प्रयास करना, जैसे वित्तीय प्रोत्साहन, (iii) संस्थागत परिवर्तन, (iii) प्रक्रियात्मक युक्तिकरण, और (iv) निर्यात बाजार के विविधीकरण द्वारा बाजार सुलभता बढ़ाना। विशेषकर भारत का कृषि निर्यात बढ़ाने के लिए ''विशेष कृषि और ग्राम उद्योग योजना'' (VKGUY) नाम की विशेष योजना प्रारंभ की गई है। शहरी और अर्ध-शहरी क्षेत्रों में रोजगार पैदा करने के बढ़ावा देने के नीति का उद्देश्य समायोजित करने के लिए VKGUY का लक्ष्य, (i) कृषि उत्पाद और उनके मूल्यवर्धित उत्पाद, (ii) लघु वन उत्पाद और उनके मूल्यवर्धित रूप, और (iii) समय-समय पर यथा अधिसूचित अन्य उत्पादों का निर्यात करना है।

इसके अलावा, लेन-देन और संचालन लागत कम करने के लिए विनाशशील कृषि उत्पाद का निर्यात आसान बनाने के लिए नई व्यापार नीति के अधीन ''एकल पटल प्रणाली'' प्रारंभ की गई है।

26.4.4 प्रतिकूल प्रभाव

निर्यात बढ़ाने पर लक्ष्यित की व्यापार नीति के प्रतिकूल प्रभाव भी हैं। इसका अनुभव प्रारंभ में ही हुआ जब संस्थागत प्रणालियां छोटे किसानों की सहायता और संरक्षण के लिए सुस्थापित नहीं थी। ऐसे प्रमाद लोगों की रुचि और वरीयताओं में परिवर्तन के कारण उत्पन्न होते हैं जिससे खास किस्म के माल की मांग बढ़ती है, संभावित मांग के कारण खेती पद्धति में परिवर्तन करने पड़ते हैं परंतु स्थितियों में आकस्मिक परिवर्तन के कारण मांग/कीमतों में अचानक गिरावट हो सकती है। उदाहरण के लिए, केरल में वेनिला, महाराष्ट्र में सोयाबीन आदि के लिए सस्यक्रम बदलने में कीमतों के भ्रामक संकेतों का योगदान रहा। वास्तव में, केरल में पैदा की गई अन्य सभी फसलों की कीमतें गिर रही थी, केवल वेनिला की कीमतें बढ़ रही थी। वेनिला की कीमत में असामान्य वृद्धि का कारण मेडागास्कर में (अधिकतम निर्यातक देश) उत्पादन में अचानक गिरावट आ गई थी। परंतु मेडागास्कर में उत्पादन पुनः हुआ। स्थिति में परिवर्तन से केरल के देशी उत्पादकों के लिए कीमतों में भी भारी गिरावट हो गई थी। जिन्होंने वेनिला उत्पादन करने के लिए सस्यक्रम परिवर्तन किया था, अपनी पहले की फसल (कॉफी) की और वापस नहीं जा सकते थे। ऐसे स्थिति से अनावश्यक कठिनाई उत्पन्न हुई, ऐसी स्थिति का सामना करने के लिए अच्छी तरह से बनाई गई और अन्य संस्थागत प्रणालियों द्वारा संपूरित फसल बीमा योजना होना आवश्यक है। जैसाकि पिछली इकाई में उल्लेख किया गया है, बहुत सी ऐसी सहायता प्रणालियां धीरे-धीरे विकसित हो रही हैं, परंतु, भारत में अभी अच्छी तरह से विकसित नहीं हैं। अंतर्राष्ट्रीय प्रासंगिकता के अन्य मामलों को उपयुक्त नीति और संस्थागत क्रियाविधि द्वारा यथाविधि संपोषित किया जाना आवश्यक है। हम उनके बारे में इस पाठ्यक्रम की अंतिम इकाई (इकाई 27) में अधिक विस्तार से पढ़ेंगे।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 3

नीचे रिक्त स्थान में अपना उत्तर लगभग 50 शब्दों में दीजिए।

1) विदेश व्यापार विनियमित करने के लिए प्रयुक्त दो विशिष्ट उपाय क्या हैं? इनमें से कौन-सा अधिक अपनाया जाता है और क्यों?

....

....

....

....

2) ''शुल्कों'' का कौन-सा विशेष लक्षण इन्हें ''परिमाणात्मक प्रतिबंधों'' (QR) से भिन्न करता है? ''आयात शुल्क'' कीमत स्तर को कैसे प्रभावित करता है?

....

....

....

....

3) किन चार विशिष्ट उत्पादों के लिए कृषि आयात पर QR भारत में वर्ष 2001 तक हटाए गए थे?

....

....

....

....

4) भारत में वर्ष 2005-06 की किस सीमा तक ''आठ संसाधित QR खाद्य अध्यायों'' के लिए औसत शुल्क नीचे लाया गया था? इस कटौती के बावजूद कृषीत्तर माल के लिए शुल्क के तद्नुरूपी स्तर से इसकी कैसे तुलना की गई?

....

....

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

5) भारत में किन दो स्थितियों में खाद्य उत्पादों का आयात विशेष रूप से प्रोत्साहित किया गया?

....

....

....

....

6) क्या आप सोचते हैं कि कृषि और कृषीत्तर माल के बीच शुल्क दरों में अंतर नीति की दृष्टि से सुसंगत था? यदि ऐसा है तो इसका समर्थन करने के लिए आप क्या तर्काधार सुझा सकते हैं?

....

....

....

....

7) BTA और MTA के बीच अंतर बताइए। व्यापार करारों का सामान्य उद्देश्य क्या है? सभी व्यापार करारों की आवश्यक विशेषता क्या है?

....

....

....

....

8) MFN प्रस्थिति का क्या अभिप्राय है? हस्ताक्षरकर्त्ता देश के लिए MFN खंड के समावेश का अनिवार्य रूप से क्या निहितार्थ है?

....

....

....

....

9) कृषि में भारत द्वारा किए गए BTA और MTA का एक-एक उदाहरण दीजिए।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

....

....

10) भारत की नई विदेश व्यापार नीति (2009-14) के दो विशिष्ट उद्देश्यों का उल्लेख कीजिए। भारत का कृषि निर्यात बढ़ाने के लिए प्रारंभ की गई खास योजना क्या है?

....

....

....

....

11) उन स्थितियों का उल्लेख कीजिए जिनके अधीन कृषि निर्यात संवर्धन की नीति कुछ किसानों के हितों के विरुद्ध कार्य कर सकती है। ऐसी स्थिति से उनका संरक्षण करने के लिए क्या उपाय अपेक्षित हैं।

....

....

....

26.5 सारांश

सिद्धांत रूप से उच्च आर्थिक संवृद्धि की अवधियों में विदेश व्यापार की गति भी बढ़ने की आशा की जाती है। भारतीय अर्थव्यवस्था द्वारा अनुभव किए गए उच्च वृद्धि दरों से सुसंगत यह आशा 1996-2012 की अवधि में भारतीय कृषि में विदेश व्यापार के संबंध में सत्य सिद्ध हुई। भारत ने विदेश व्यापार के लिए अपना कृषि सेक्टर धीरे-धीरे खोलने की नीति अपनाई। सेक्टर के उदारीकरण की पहली प्रावस्था में इसने वर्ष 2001 कृषि उत्पादों पर परिमाणात्मक प्रतिबंध समाप्त किए। बाद में कृषि उत्पादों के लिए आयात शुल्क घटाए गए। 1996-2012 की अवधि में कृषि निर्यात की औसत वृद्धि 13.3 प्रतिशत और कृषि आयात की 11.5 प्रतिशत है। निर्यात और आयात के संयुक्त मूल्य पर विचार करने पर और इसे कुल कृषि GDP से संबद्ध करने पर 1996-2012 की अवधि भारतीय कृषि में प्राप्त व्यापार के उदारीकरण की सीमा दुगुनी, अर्थात् 1996-97 में 9 प्रतिशत से 2011-12 में 18.8 प्रतिशत देखी गई है। इसके अलावा, सरकार ने ''विशेष कृषि उत्पाद स्कीम'' प्रारंभ की है और देश से कृषि निर्यात संवर्धन करने के लिए ''विशिष्ट कृषि निर्यात संसाधन क्षेत्र'' स्थापित करने के उपाय किए हैं। इन उपायों से 2020 तक विश्व निर्यात में अपना वर्तमान शेयर दुगुना करने का लक्ष्य है। सरकार ने कई द्विपक्षीय और बहुपक्षीय करार भी किए हैं जिनमें कृषि पण्यवस्तुएं धीरे-धीरे बढ़ रही हैं। यद्यपि इन उपायों से विश्व व्यापार में भारत का शेयर बढ़ने की आशा की जाती है परंतु प्रारंभ में ऐसी नीतियों का प्रतिकूल प्रभाव हो सकता है। ऐसे प्रतिकूल प्रभावों का सामना करने के लिए कृषि बीमा की दिशा में संस्थागत सहायता का विस्तार और विभिन्न अन्य सहायता सेवाओं के सुदृढ़ीकरण की आवश्यकता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

26.6 शब्दावली

शुल्क (सीमा शुल्क) : यह आयातित माल पर लगाया गया सीमा शुल्क है। ये आयातित माल को उन्हीं के समान स्थानीय रूप से उत्पादित (अर्थात् घरेलू) माल की अपेक्षा अधिक कीमत लाभ देते हैं। वे सरकार को राजस्व भी देते हैं। ''WTO के यूराग्वे दौर'' वार्त्ता में देशों को ''शुल्क'' घटाने तथा देशों को अपने सीमा शुल्क ''सीमित'' रखने के लिए वचनबद्ध किया जिससे उनकी वृद्धि का एकपक्षीय कार्य नहीं होगा। दोहा में अनुवर्ती दौर में ''कृषि और कृषीत्तर'' बाजार सुलभता पर इस दिशा में प्रयास जारी रखे।

परिमाणात्मक प्रतिबंध (QR) : साधारणतया इसका संबंध ''आयात कोटा'' से है। वे उस माल की मात्रा किसी वस्तु के आयात की उच्चतम सीमा निर्धारित कर देते हैं। QR का एक प्रभाव वैसा ही है जैसा आयात शुल्क का होता है अर्थात् आयातित माल की कीमत अधिक हो जाती है।

ITC-HS प्रणाली : इसका संबंध पण्यवस्तुओं का व्यापार करने के लिए ''सुमेलित पण्यवस्तु विवरण और कोड प्रणाली'' से है। जैसे-जैसे देशों के बीच व्यापार का विस्तार हुआ, ऐसी सुमेलित या एकसमान वर्गीकरण की आवश्यकता महसूस की गई। फलस्वरूप 1988 में उन पण्यवस्तुओं के लिए छह अंकों वाली प्रणाली के रूप में HS प्रणाली विकसित की गई जिनका व्यापार देशों के बीच होता है। इस प्रकार यह शुल्क दर के साथ माल के लिए नियत वर्गीकरण है। HS वर्गीकरण की समीक्षा नियमित आधार पर समय-समय में की जाती है ताकि इसे प्रौद्योगिकी की गति के अनुरूप रखा जा सके। इस अंतर्राष्ट्रीय संधि के हस्ताक्षरकर्त्ताओं को ''सुमेलित प्रणाली के अनुभागों, अध्यायों, शीर्षकों या उपशीर्षकों को संशोधित करने की अनुमति नहीं है। यह प्रावधान HS के एकसमान प्रबंधन बनाए रखने के उद्देश्य से किया गया है। ITC-HS का अर्थ इंडियन ट्रेड क्लासिफिकेशन-हार्मोनाइज्ड सिस्टम है।

DIKSHANT IAS

26.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Call us @7428092240

1) Economic Survey 2012, Ministy of Finance, Government of India.

2) Handbook of Statistics on the Indian Economy, RBI, Government of India.

3) OECD (2007), Agricultual Policies in Non-OECD Countries, Chapter 5 – India, pp. 92-94.

4) World Bank (2008), Trade Policy Overview Report, Chapter 3, [http://siteresources.worldbank.org/SOUTHASIAEXT/Resources/223546-1168296540386/ch3.pdf]

5) Understanding International Trade in Agricultre Products: One Hundred Years of Contriutions by Agricultural Economists, American Journal of Agricutural Economics, Vol. 93 (2), January 2010, pp. 424-426.

26.8 बोध प्रश्नों के उत्तर/संकेत

बोध प्रश्न 1

1) देखिए भाग 26.2 और उत्तर दीजिए।

2) देखिए भाग 26.2 और उत्तर दीजिए।

3) देखिए उपभाग 26.2.1 और उत्तर दीजिए।

4) देखिए उपभाग 26.2.1 और उत्तर दीजिए।

5) देखिए उपभाग 26.2.1 और उत्तर दीजिए।

6) देखिए उपभाग 26.2.1 और उत्तर दीजिए।

7) देखिए उपभाग 26.2.2 और उत्तर दीजिए।

8) देखिए उपभाग 26.2.2 और उत्तर दीजिए।

9) देखिए उपभाग 26.2.2 और उत्तर दीजिए। (अंतर्राष्ट्रीय बाजार स्थिरता और घरेलू तथा अंतर्राष्ट्रीय बाजारों के बीच कीमतों के उतार-चढ़ाव के संप्रेषण में कमी)।

10) खाद्य सुरक्षा बाजार स्थिरता मैक्रो आर्थिक संतुलन और जैव ईंधन साहाय्य।

11) देखिए उपभाग 26.2.3 और उत्तर दीजिए।

बोध प्रश्न 2

1) देखिए भाग 26.3 और उत्तर दीजिए।

2) देखिए भाग 26.3 और उत्तर दीजिए।

3) देखिए भाग 26.3 और उत्तर दीजिए।

4) देखिए भाग 26.3 और उत्तर दीजिए।

5) देखिए उपभाग 26.3.1 और उत्तर दीजिए।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

6) देखिए उपभाग 26.3.1 और उत्तर दीजिए।

7) देखिए उपभाग 26.3.1 और उत्तर दीजिए।

8) देखिए उपभाग 26.3.1 और उत्तर दीजिए।

9) देखिए उपभाग 26.3.1 और उत्तर दीजिए।

10) देखिए उपभाग 26.3.2 और उत्तर दीजिए।

11) देखिए उपभाग 26.3.2 और उत्तर दीजिए।

12) देखिए उपभाग 26.3.2 और उत्तर दीजिए।

बोध प्रश्न 3

1) देखिए भाग 26.4 और उत्तर दीजिए।

2) देखिए उपभाग 26.4.1 और उत्तर दीजिए।

3) देखिए उपभाग 26.4.1 और उत्तर दीजिए।

4) देखिए उपभाग 26.4.1 और उत्तर दीजिए।

5) देखिए उपभाग 26.4.1 और उत्तर दीजिए।

6) देखिए उपभाग 26.4.1 और उत्तर दीजिए।

7) देखिए उपभाग 26.4.2 और उत्तर दीजिए।

8) देखिए उपभाग 26.4.2 और उत्तर दीजिए।

9. देखिए उपभाग 26.4.2 और उत्तर दीजिए।

10) देखिए उपभाग 26.4.3 और उत्तर दीजिए।

11) देखिए उपभाग 26.4.4 और उत्तर दीजिए।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इकाई 27 अंतर्राष्ट्रीय वचनबद्धताएँ

संरचना

27.0 उद्देश्य

27.1 प्रस्तावना

27.2 कृषि व्यापार में अंतर्राष्ट्रीय चिंताओं के क्षेत्र

27.2.1 बाजार सुलभता

27.2.2 घरेलू उत्पादन हेतु सहायता

27.2.3 निर्यात साहाय्य

27.3 स्वास्थ्य/स्वच्छता के मुद्दे और तकनीकी मानक

27.3.1 सफाई और पादप स्वच्छता (SPS) उपाय

27.3.2 तकनीकी व्यापारिक बाधाएँ (TBT) करार

27.4 दोहा विकास एजेण्डा (DDA)

27.5 अंतर्राष्ट्रीय वचनबद्धताओं के प्रति निहितार्थ

27.5.1 व्यापार प्रतिस्पर्धता

27.5.2 खाद्य और आजीविका सुरक्षाएं

27.5.3 सीमांत और छोटे किसान

27.6 WTO वचनबद्धताओं के प्रति दृष्टिकोण

27.6.1 भावी मार्ग

27.7 सारांश

27.8 शब्दावली

27.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

27.10 बोध प्रश्नों के उत्तर/संकेत

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

27.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप :

- कृषि में अंतर्राष्ट्रीय व्यापार बनाम कृषि के बहुप्रकार्यात्मक स्वरूप की असाधारण विशेषताओं की रूपरेखा प्रस्तुत कर सकेंगे;
- "कृषि में व्यापार" के संदर्भ में अंतर्राष्ट्रीय चिंताओं के प्रमुख क्षेत्रों का वर्णन कर सकेंगे;
- SPS और TBT अपेक्षिताओं के अनुसार स्वास्थ्य/स्वच्छता और तकनीकी मानकों के कारण उत्पन्न होने वाले मुद्दों की चर्चा कर सकेंगे;
- उन सिद्धांतों का उल्लेख कर सकेंगे, जिन्हें TBT करार के अधीन पूरा किए जाने की आशा की जाती है;

- दोहा विकास एजेण्डा की अंतर्राष्ट्रीय वचनबद्धताओं के निहितार्थों की व्याख्या कर सकेंगे; और
- भारत द्वारा अनुसरण किए जाने वाले दृष्टिकोण निर्दिष्ट कर सकेंगे ताकि ''निर्बाध और निष्पक्ष'' अंतर्राष्ट्रीय व्यापार व्यवस्था की स्थापना द्वारा उत्पन्न अवसरों से लाभ प्राप्त हो सके।

27.1 प्रस्तावना

राजनीतिक दृष्टि से कृषि बहुत संवेदनशील मुद्दा है, इसलिए इस सेक्टर का उदारीकरण कठिन समस्या है। कृषि के बहु-प्रकार्यात्मक स्वरूप के अलावा विकसित और विकासशील दोनों देशों का अपनी-अपनी कृषि के एक या अन्य पहलुओं के संरक्षण के लिए दांव लगा है। भारत, जैसे विकासशील देशों के लिए कृषि न केवल आर्थिक कार्य है, बल्कि, जीवन-शैली भी है और ग्रामीण श्रमिक बल के अधिकांश की आजीविका का साधन है। इसके अलावा, खाद्य सुरक्षा इन देशों के लिए मुख्य चिंता है, क्योंकि अंतर्राष्ट्रीय बाजार में कीमतों की अस्थिरता इसमें लगे हुए लोगों की बहुत बड़ी संख्या की आजीविका की प्रस्थिति को संकट में डाल सकती है। दूसरी ओर, विकसित देशों में (जैसे EU और US) किसानों को दिए गए भारी साहाय्य के कारण कृषि व्यापार उदारीकरण में कठिनाई उत्पन्न होती है, जो अप्रत्यक्ष रूप से बड़ी कृषि व्यापारिक कंपनियों को अपने संसाधित उत्पादों के लिए सस्ता कच्चा माल प्राप्त करने में सहायक होता है और इससे उन्हें अंतर्राष्ट्रीय बाजारों में अपने प्रतिपक्षियों पर प्रतिस्पर्धात्मक लाभ मिलता है। यही कारण है, WTO के क्रियान्वयन के 15 से भी अधिक वर्षों के बाद भी WTO विनियमों के पूरे प्रावधानों के क्रियान्वयन पर प्रगति धीमी रही है, जबकि सभी स्वीकार करते हैं कि कृषि में निर्बाध व्यापार सही अर्थों में सभी देशों के लिए लाभकारी होगा।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

1986-94 के दौरान उरुग्वे दौर (UR) संधिवार्त्ताओं के समापन के बाद पहली बार कृषि को WTO की बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली के अंतर्गत लाया गया। UR निम्नलिखित द्वारा कृषि व्यापार में सभी प्रकार की व्यापारिक विकृतियों के उन्मूलन की संकल्पना की गई थी : (i) निर्यात और उत्पादन साहाय्य घटाना; (ii) आयात अवरोधों की समाप्ति; और (iii) सभी शुल्क इतर अवरोधों का उन्मूलन। यहाँ WTO का उद्देश्य अपने सदस्यों को कृषि में ''निर्बाध, निष्पक्ष और बाजारोन्मुखी'' व्यापार करने के लिए वचनबद्ध करना है। ''कृषि पर अनुबंध'' (AoA) इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर WTO द्वारा तैयार किया गया है। इस पृष्ठभूमि से आप इस इकाई में पहले कृषि व्यापार से संबंधित अंतर्राष्ट्रीय चिंता के मुख्य क्षेत्रों के बारे में पढ़ेंगे। विकासशील देशों के कृषि सेक्टर के लिए इन वचनबद्धताओं के बड़े महत्त्वपूर्ण निहितार्थ हैं। उदाहरण के लिए, आयात और उत्पादन साहाय्य में कटौती के प्रभावकारी अनुपालन के अभाव में व्यापार पर परिमाणात्मक प्रतिबंध (QR) की समाप्ति घरेलू कीमतों को बाधित करते हुए अधिक सस्ता कृषि आयात आकर्षित करेगा और इससे गरीब किसानों का हित प्रभावित होगा। इसलिए आप इस इकाई में विशेष रूप से, भारतीय कृषि के लिए अंतर्राष्ट्रीय वचनबद्धताओं के निहितार्थों का अध्ययन करेंगे। इन निहितार्थों और कृषि में व्यापार के करार करने वाले में देशों के आगे खड़ी चुनौतियों की पूर्वापेक्षा में AoA का अनुच्छेद 20 अंतर्राष्ट्रीय

वचनबद्धताओं पर बातचीत का प्रावधान करता है। दोहा दौर-2001 की चर्चाओं में ही इन संभावित वार्त्ताओं और सौदेबाजियों का आधार रखा गया था। इसे भावी चर्चाओं के लिए 'एजेंडा' के रूप में प्रस्तावित किया गया है। इसमें ''कृषि, विनिर्माण और सेवाओं में बाजारों के विकास और उन्हें और खुला करने पर ध्यान केंद्रित किया गया है। इसके आलोक में, आप इस इकाई में यथा प्रयोज्य दोहा विकास एजेण्डा (DDA) की प्रगति और कार्यविधियों के बारे में पढ़ेंगे। अंत में, इन परिवर्धनों द्वारा प्रस्तुत चुनौतियों का सामना करने की निर्दिष्ट अत्यावश्यकता के संदर्भ में आप WTO चर्चाओं में अपनाई जाने वाली अपेक्षित रणनीति और AoA व्यवस्था के बाद भारतीय कृषि की प्रतिस्पर्धा सुधारने और एक लाभप्रद स्थिति पाने के लिए किए जाने वाले उपायों का अध्ययन करेंगे।

27.2 कृषि व्यापार में अंतर्राष्ट्रीय चिंताओं के क्षेत्र

कृषि में विश्व व्यापार एक ओर भारी निर्यात और औद्योगिक देशों द्वारा अपने किसानों को दी गई घरेलू साहाय्यों के कारण और दूसरी ओर विकासशील देशों के कृषि उत्पादों को अल्प बाजार सुलभता देने के कारण विकृत हुआ है। बाजार सुविधा प्रदान करने के कारण AoA निम्नलिखित के माध्यम से कृषि व्यापार के प्रगामी उदारीकरण के लिए एजेण्डा सुव्यवस्थित करता है : (i) उन्नत बाजार सुलभता; (ii) उत्पादन स्तरों या कीमतों से घरेलू सहायता का अयुग्मन; और (iii) निर्यात साहाय्यों का उन्मूलन। इनके माध्यम से करार ऐसी विकृत व्यापारिक व्यवस्था से विश्व कृषि व्यापार में संरचनात्मक परिवर्तन लाने का प्रयास करता है जिसमें अधिक दक्ष उत्पादक लाभ प्राप्त करने के लिए खड़े हो सकें। AoA में इस प्रकार तीन क्षेत्र हैं जिन पर यह फोकस करता है, अर्थात् बाजार सुलभता, घरेलू सहायता और निर्यात साहाय्य। अब हम इनमें से प्रत्येक पर चर्चा करेंगे।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

27.2.1 बाजार सुलभता

बाजार सुलभता पर करार के दो आयाम हैं : (i) शुल्क की कटौती; और (ii) शुल्क दर कोटा (TRQ) के माध्यम से न्यूनतम बाजार सुलभता। शुल्क की कटौती संबंधी उपाय के लिए आवश्यक है कि सभी आयातों {जैसे परिमाणात्मक आयात प्रतिबंध (QRS), परिवर्ती आयात उद्ग्रहण, न्यूनतम आयात कीमतें और विवेकाधीन आयात लाइसेंस प्रक्रिया आदि} को एक ही ''बाध्य'' शुल्क दर द्वारा प्रतिस्थापित किया जाना चाहिए। इसके अलावा, ऐसा बाध्य शुल्क संबंधित देश की आधार अवधि (1986-88 लिया गया) में कृषि माल के लिए प्रदान किया गया अंकित संरक्षण की समतुल्यता रखते हुए निर्धारित किया जाता है। ऐसी प्रक्रिया से परिणामी शुल्क कृषि उत्पादों पर अन्य शुल्कों के साथ (जैसा भी मामला हो), विकसित देशों के मामले में वर्ष 2000 तक 36 प्रतिशत के सामान्य औसत (या प्रति शुल्क लाइन 15 प्रतिशत का न्यूनतम) और विकासशील देशों के मामले में वर्ष 2004 में 24 प्रतिशत (10 प्रतिशत प्रति शुल्क लाइन की न्यूनतम कटौती से) कटौती की जानी थी। अल्पतम विकसित देशों को ऐसी कटौती वचनबद्धता से छूट दी गई है परंतु उनके लिए आधार स्तर से ऊपर संरक्षण का स्तर बढ़ाए बिना अपनी आधार अवधि के लिए शुल्क बाध्य करना आवश्यक है।

न्यूनतम बाजार सुलभता प्रदान करने पर करार ''शुल्क दर कोटा'' (TRF) द्वारा

अनुबद्ध किया जाता है। दो प्रभावी शुल्क दरें होंगी : कोटा की निर्धारित मात्रा से कम आयातों के लिए लागू निम्नतर शुल्क दर और कोटा की निर्धारित मात्रा से अधिक आयात पर लागू उच्चतर शुल्क। इसके अलावा, प्रत्येक सदस्य देश को घरेलू उपभोग के भाग के रूप में निर्धारित कृषि उत्पादों का न्यूनतम स्तर आयात करना आवश्यक है। देशों को प्रत्येक अलग-अलग उत्पाद के लिए सुलभता का अपना आधार वर्ष बनाए रखना भी आवश्यक है और जहां आधार वर्ष में आयात का आधार स्तर नगण्य है, न्यूनतम सुलभता आधार वर्ष के दौरान घरेलू उपभोग का 3 प्रतिशत से कम नहीं होना चाहिए। यह न्यूनतम दर विकसित देशों के मामले में वर्ष 2000 तक और विकासशील देशों के मामले में, वर्ष 2004 तक 5 प्रतिशत बढ़ाई जानी थी। जब पोत लदान कतिपय संदर्भ स्तरों से कम कीमत पर किए गए हों या जब आयात में आकस्मिक वृद्धि हुई हो तब अतिरिक्त शुल्क के प्रयोग की अनुमति के लिए ''विशेष संरक्षण प्रावधान'' (SSP) भी है। जब प्रश्नास्पद पण्यवस्तु ''विकासशील देश का ''परम्परागत प्रधान माल'' हो, वहाँ बाजार सुलभता प्रावधान लागू नहीं होते। भारत ने अपनी शुल्क दरें मुख्य कृषि उत्पादों पर 100 प्रतिशत पर, संसाधित खाद्य पदार्थों पर 150 प्रतिशत पर और खाद्य तेलों पर 350 प्रतिशत पर सीमित की हैं। परंतु विभिन्न कृषि उत्पादों पर वास्तविक शुल्क दरें बाध्य दरों की अपेक्षा काफी नीचे हैं।

अतः संभवतः यह उचित है कि विकासशील देशों को विकसित देशों की तुलना में बाजारों की सुलभता बेहतर प्राप्त हो सकती है यदि विकसित देशों के मामले में उच्चतर कटौती अपेक्षिताएं पूरी तरह से और स्पष्ट रूप से क्रियान्वित की जाती हैं। परंतु करार में अस्पष्टता के कारण विकसित देश अभी भी संरक्षण का उच्चतर स्तर बनाए रख सकते हैं। उदाहरण के लिए, शुल्कों में 36 प्रतिशत की अभारित औसत कटौती से पण्यवस्तुओं के लिए विभेदकारी व्यवहार हो सकता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इस प्रकार देश कम महत्त्वपूर्ण उत्पादों पर थोड़ी शुल्क कटौती कर या अधिक महत्त्वपूर्ण उत्पादों पर शुल्क में कोई कटौती नहीं करके 36 प्रतिशत की कुल कटौती कर सकता है। इस प्रकार के दृष्टिकोण का आशय होगा कि वास्तविक शुल्क उतना ही अधिक संरक्षण प्रदान कर सकता है जितना NTB के रूप में मिलता है। इस समय विकसित देशों में कृषि शुल्क औद्योगिक उत्पादों पर शुल्क की अपेक्षा बहुत अधिक है। इसके अलावा, न्यूनतम सुलभता शुल्क कोटा वचनबद्धता घरेलू आयातकों के लिए पर्याप्त लचीलापन छोड़ते हुए कुल के अपेक्षाकृत उच्चतर स्तरों पर रखा गया है। ऐसे व्यवहार से वचनबद्धताओं की भावना विरुद्ध जाकर बाजार को सीमित कर दिया जाता है।

बोध प्रश्न 1

नीचे दिए स्थान में अपने प्रश्नों का उत्तर लगभग 50 शब्दों में दीजिए।

1) कारण बताइए, WTO की वचनबद्धताओं के क्रियान्वयन ने अभी तक कृषि में अंतर्राष्ट्रीय व्यापार पर अधिक प्रगति नहीं की है।

....

....

....

....

2) किन तीन क्षेत्रों/आयामों में कृषि उत्पादों में व्यापार विकृति उन्मूलन के लिए संकल्पित वार्ताओं का दौर उरुग्वे दौर कहलाता है?

....

....

....

....

3) बताइए, किस तरीके में WTO-AoA वचनबद्धताओं ने भारत जैसे विकासशील देशों के कृषि क्षेत्र को और उलझाया है?

....

....

....

....

4) दोहा विकास एजेण्डा (DDA) को विकसित करने की क्या पृष्ठभूमि थी? मूलतः DDA क्या प्रदान करता है?

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

....

....

5) किन तीन बुनियादी पहलुओं/क्षेत्रों में कृषि व्यापार के प्रगामी उदारीकरण के लिए एजेण्डा स्थापित करना AoA का उद्देश्य है? यह इस उद्देश्य को किस प्रकार प्राप्त करना चाहता है?

....

....

....

....

6) ''आबद्ध शुल्क दरों'' से क्या अभिप्राय है? यह कैसे निर्धारित की जाती है?

....

....

....

....

7) किस विकसित और विकासशील देशों के लिए ''अंतिम शुल्कों'' को अपने-अपने किस शुल्क स्तर पर और किस अवधि के स्तर से घटाना था?

....

....

....

....

8) किस क्रियाविधि से AoA द्वारा प्रस्तावित ''न्यूनतम बाजार सुलभता'' की प्राप्ति सुनिश्चित करने का उद्देश्य है? किन परिस्थितियों के अधीन बाजार सुलभता प्रावधान किसी देश पर लागू नहीं होता है?

....

....

....

DIKSHANT IAS

....

9) SSP का क्या अर्थ है? उन्हें कब लागू किए जाने का प्रस्ताव है?

Call us @7428092240

....

....

....

....

10) क्या आप सोचते हैं कि ''कटौती आवश्यकता'' के निर्धारित स्तरों की स्थापना से विकासशील देश लाभान्वित हो सकते हैं?

....

....

....

....

11) प्रस्तावित शुल्क संरचना में क्या खास अस्पष्टता विकसित देशों के पक्ष में (और विकासशील देशों के हित के विरुद्ध) काम करने के लिए अभी भी प्रयुक्त हो सकती है?

....

....

....

....

27.2.2 घरेलू उत्पादन हेतु सहायता

घरेलू सहायता में मूल रूप से देश द्वारा अपनी कृषि के लिए दी गई साहाय्य शामिल है। ये साहाय्य उत्पाद विशिष्ट या उत्पाद इतर विशिष्ट हो सकती हैं। AoA इस सहायता को इस प्रकार वर्गीकृत करता है : (i) व्यापार विकृति; और (ii) व्यापार इतर सहायता विकृति। केवल व्यापार विकृति करने वाली साहाय्य AoA विनियमों के अनुसार कटौती वचनबद्धता करती है। मोटे तौर पर घरेलू सहायता उपाय चार पृथक श्रेणियों में विभाजित किए जाते हैं : (i) ग्रीन बॉक्स उपाय; (ii) ब्लू बॉक्स उपाय (iii) विशेष और विभेदीय (S&D) उपचार; और (iv) अम्बर बॉक्स सहायता/उपाय।

ग्रीन बॉक्स उपाय : ग्रीन बॉक्स उपायों में कृषि व्यापार पर ''शून्य'' या न्यूनतम विकृत प्रभावकारी कृषि साहाय्य सम्मिलित हैं। AoA के कई सामान्य और उपाय विशिष्ट मानदंड निर्धारित करता है जिन्हें पूरा करने वाले उपायों को ग्रीन बॉक्स में रखा जा सकता है। ऐसे उपाय कटौती वचनबद्धता से मुक्त हैं और किसी भी वित्तीय सीमा के बिना ऐसे साहाय्य बढ़ाए जा सकते हैं। उन्हें सार्वजनिक निधि से वित्त प्रदत्त सरकारी कार्यक्रम के अंतर्गत प्रदान किया जाना चाहिए। इसमें उपभोक्ता से अंतरण शामिल नहीं होना चाहिए और उत्पादकों को कीमत सहायता प्रदान करने का प्रभाव नहीं होना चाहिए। यद्यपि ग्रीन बॉक्स उपायों का प्रावधान विकसित और विकासशील दोनों देशों पर लागू होता है, विकासशील देशों के मामले में शहरी और ग्रामीण गरीबों को साहाय्यी खाद्य प्रदान करने के लिए सरकारी खाद्य सुरक्षा कार्यक्रम के संबंध में विशेष व्यवहार किया जाता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

ब्लू बॉक्स सहायता : ''ब्लू बॉक्स'' में कृषि उत्पादन को सीमित करने के लिए दी गई सहायता है जो उत्पादन वृद्धि को रोकने के लिए दी जाती है। यह विकसित देशों की इस दृष्टि से प्रासंगिक है। विकासशील देशों में यह विरले ही दिखाई देती है। उनमें क्षेत्रफल या पशुओं की संख्या से भुगतान सीधे जुड़ा होता है। इस प्रकार की सहायता उत्पादन कोटा लगाकर उत्पादन सीमित करती है, किसानों की अपनी भूमि का भाग अप्रयुक्त रखने के लिए कहा जाता है। ब्लू बॉक्स कृषि की सहायता करने और सुधार करने के लिए तथा कतिपय व्यापार इतर उद्देश्य जैसे पर्यावरण संरक्षण प्राप्त करने के लिए महत्त्वपूर्ण है।

विशेष और विभेदक व्यवहार : विशेष और विभेदक व्यवहार केवल विकासशील देशों पर लागू होते हैं और कृषि के लिए सामान्य निवेश सहायता के रूप में होता है, जैसे अल्प आय संसाधन हीन किसानों के लिए आदान साहाय्य। उनमें उत्पादकों को साहाय्य सहायता, नियोजित कीमतों पर खरीदे गए खाद्य सुरक्षा भंडार से खरीदें शामिल हैं, हाँ ये ''सहायता के कुल उपायों'' की गणना में शामिल होनी चाहिए (नीचे स्पष्ट किया गया है)। इसके अलावा, विकासशील देशों को शहरी और ग्रामीण गरीबों की आवश्यकताएं पूरी करने के लिए साहाय्य सहित खाद्य वितरण की अनुमति है। विकासशील देशों के लिए वे निवेश साहाय्य भी

शामिल नहीं हैं जो साधारणतया निम्न आय और संसाधन गरीब किसानों के लिए उपलब्ध हैं।

अम्बर बॉक्स सहायता/उपाय : ये घरेलू सहायता उपाय हैं, जो उत्पादन स्तर से बंधे हैं, जैसे कि न्यूनतम सहायता मूल्य। इन्हें उत्पादन और व्यापार विकृत करने वाला समझा जाता है तथा इसलिए ये कटौती वचनबद्धता के अधीन होते हैं।

सहायता के कुल उपाय (AMS) : उपर्युक्त उपाय के अधीन सहायता दो शीर्षों के अधीन परिकलित की जाती है : (i) उत्पाद विशिष्ट ''सहायता के कुल उपाय'' (AMS), और (ii) साधारणतया (उत्पाद इतर विशिष्ट साहाय्य नामक) कृषि उत्पादकों को दी गई सहायता) उत्पाद विशिष्ट AMS की गणना अंतर्राष्ट्रीय कीमत से घरेलू कीमत घटाकर और उत्पादन की मात्रा से परिणामी अंक को गुणा करके की जाती है। इस प्रकार यदि किसी वस्तु की अंतर्राष्ट्रीय कीमत की घरेलू कीमत से कम है तो उत्पाद-विशिष्ट AMS धनात्मक होगा। उदाहरण के रूप में, माना कि पण्यवस्तु की घरेलू कीमत रु. 1000 है और अंतर्राष्ट्रीय कीमत रु. 800 है। इसलिए उत्पाद विशिष्ट AMS (उत्पादित गुणक मात्रा छोड़कर) 1000-800 है जो धनात्मक है। दूसरी ओर, यदि अंतर्राष्ट्रीय कीमत रु. 1200 है, उत्पाद विशिष्ट AMS का गुणक घटक (1000-1200) है जो ऋणात्मक है।

भारत कुछ कृषि उत्पादों के लिए न्यूनतम समर्थन मूल्य (MSP) के अलावा कोई उत्पाद विशिष्ट समर्थन नहीं देता है। संदर्भाधीन अवधि (1986-88) के दौरान भारत का 22 उत्पादों के लिए मूल्य समर्थन कार्यक्रम था। इसका कुल AMS मान (–) रु. 24,442.00 करोड़ था। इसके अतिरिक्त आधार संदर्भ के दौरान कुल उत्पाद इतर विशिष्ट AMS केवल (+) रु. 4581 करोड़ था। इस प्रकार उत्पाद विशिष्ट और उत्पाद इतर विशिष्ट AMS दोनों को ध्यान में रखकर कुल AMS (–) 19,861 करोड़ रुपये था जो कुल कृषि उत्पाद के मूल्य का लगभग (–) 18 प्रतिशत था। वर्ष 1995-96 की तद्नुरूपी गणना दिखाती है कि कुल कृषि उत्पादन के मूल्य का उत्पाद विशिष्ट AMS (–) 38 प्रतिशत था और उत्पाद इतर विशिष्ट AMS 2.5 प्रतिशत था। हम इन परिकलनों में से निम्न आय और संसाधन गरीब किसानों को AoA के अनुच्छेद 16 के अधीन प्रदत्त घरेलू सहायता घटा सकते है। इसके बाद हमारा कुल AMS अनुभत्त 10 प्रतिशत के स्तर से नीचे रह गया। साधारणतः WTO के प्रारंभ से अंतर्राष्ट्रीय बाजार में कृषि पण्यवस्तुओं की कीमतें भारत में घरेलू समर्थन कीमतों से कम थीं, इससे AMS धनात्मक बना।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

गैर उत्पाद विशिष्ट साहाय्य (De Minimis) : इनका संबंध समग्र रूप में कृषि सेक्टर के लिए समर्थन के कुल स्तर जैसे उर्वरक, विद्युत, सिंचाई, बीज, ऋण आदि के लिए साहाय्य से है। AoA के अधीन विकसित देशों को कृषि उत्पाद के अंक कुल मूल्य के 5 प्रतिशत के बराबर फार्म साहाय्य देने की अनुमति है जबकि विकासशील देशों के लिए तद्नुरूपी अंक 10 प्रतिशत है। व्यापार इतर विकृति समर्थन के निर्धारण के लिए दो मानदंड प्रयुक्त किए जाते हैं : (i) इसका भुगतान सरकार के बजट से होना चाहिए, और (ii) इसका प्रभाव उत्पादक के लिए मूल्य समर्थन देने जैसा नहीं होना चाहिए। परिणामस्वरूप इन उपायों में

ये सरकारी सेवाएं शामिल हैं : (i) कृषि अनुसंधान, (ii) रोग नियंत्रण, (iii) आधारभूत संरचना, (iv) विस्तार और खाद्य सुरक्षा प्रयोजनों के लिए सुरक्षित (बफर) स्टॉक, (v) घरेलू खाद्य सहायता, (vi) उत्पादकों को सीधा भुगतान, (vii) वियोजित आय समर्थन, (viii) आय बीमा और आय सुरक्षा नेट कार्यक्रमों में सरकारी सहायता, (ix) पर्यावरण और क्षेत्रीय सहायता कार्यक्रमों के अधीन भुगतान, (x) प्राकृतिक आपदाओं की स्थिति में सहायता, (xi) विपणन और संवर्धन सेवाएं, आदि। यदि दी गई सहायता का कुल मूल्य संबद्ध कुल कृषि उत्पादन के मूल्य का 5/10 प्रतिशत उच्चतम सीमा से अधिक नहीं है, AoA के de minimis के अधीन उस वर्ष में ऐसी घरेलू सहायता घटाने की कोई आवश्यकता नहीं है।

ब्लू बॉक्स साहाय्यों पर विवाद : घरेलू सहायता का अयुग्मन WTO के मंत्रीस्तरीय सम्मेलन में सबसे अधिक विवादास्पद मुद्दों में से एक होकर उभरा है। विशेषकर, कटौती वचनबद्धताओं से उत्पादन सीमित करने के लिए ''ब्लू बॉक्स'' उत्पादों का बहिष्करण भारत जैसे विकासशील देशों के विरुद्ध अनुचित भेदभाव के रूप में माना गया है। यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि ब्लू बॉक्स सहायता के अधीन साहाय्य व्यापार को विकृत करता है और इसलिए व्यापार अनुशासन उपायों के अधीन होना चाहिए। हाल के वर्षों में AoA के क्रियान्वयन के कारण, यद्यपि अम्बर बॉक्स सहायता बहुत से विकसित देशों में घटी है परंतु ब्लू और ग्रीन बॉक्स नीतियों के अधीन सहायता उल्लेखनीय रूप से बढ़ी है। दूसरे शब्दों में, विकसित देश निषिद्ध अम्बर बॉक्स से ग्रीन और ब्लू बॉक्सों की अनुमत्य श्रेणियों में घरेलू सहायता अंतरित कर रहे हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

27.2.3 निर्यात साहाय्य

निर्यात साहाय्य पर वचनबद्धता दो विषयों पर है : (i) साहाय्य द्वारा सम्मिलित निर्यात की कुल मात्रा में कटौती, और (ii) निर्यात साहाय्य पर कुल बजटीय परिव्यय में कटौती। विकसित देशों को 2000 तक साहाय्यी निर्यात की मात्रा 21 प्रतिशत तक और निर्यात साहाय्यों पर व्यय में 36 प्रतिशत तक कटौती करनी है। विकसित देशों के लिए 2004 तक प्राप्त किए जाने वाले तद्नुरूपी कटौती स्तर क्रमशः 14 और 24 प्रतिशत है। विकसित और विकासशील दोनों देशों के कृषि निर्यात परिवहन, प्रसंस्करण और पैकेजिंग पर दी गई साहाय्यों को कटौती की आवश्यकता से छूट दी गई है।

अपेक्षाकृत विकसित देशों के निर्यात साहाय्य विकासशील देशों को निर्यात संभावनाओं गंभीर रूप से सीमित करता है क्योंकि अधिकांश विकासशील देश बजट संबंधी कठिनाइयों के कारण कृषि उत्पादों को निर्यात साहाय्य प्रदान करने की स्थिति में नहीं होते। इसके आलोक में, कटौती आवश्यकताएं पूरी करने के बाद भी विकसित देश अपने कृषि निर्यात को पर्याप्त साहाय्य देकर लाभ प्राप्त कर रहे हैं। भारत AoA में कटौती वचनबद्धता के लिए सूचीबद्ध में से किसी भी मद को भी निर्यात साहाय्य नहीं देता है। 2004 से पहले निर्यातकों को उपलब्ध केवल साहाय्य (अनुभाग 80 HHC के अधीन) आय कर में निर्यात बिक्री से लाभ पर छूट, और भाड़े की लागत, विपणन और पशुधन उत्पादों के निर्यात के पोतवहन पर अंतर्राष्ट्रीय/ आंतरिक परिवहन की लागतों पर साहाय्य के रूप में थे।

बोध प्रश्न 2

नीचे रिक्त स्थान में अपना उत्तर लगभग 50 शब्दों में दीजिए।

1) किस विशेष प्रकार की ''घरेलू सहायता'' कटौती वचनबद्धता के अधीन है? क्यों?

....

....

....

....

2) उत्पाद विशिष्ट AMS क्या है? इसका अभिकलन कैसे किया जाता है?

....

....

....

....

3) उत्पाद विशिष्ट AMS के लिए ऋणात्मक संकेत का क्या निहितार्थ है?

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

....

....

4) कुछ व्यापार इतर विकृतकारी साहाय्यों के उदाहरण दीजिए। इस संबंध में AoA ने क्या सीमा निर्धारित की है?

....

....

....

....

5) व्यापार इतर विकृतकारी सहायता के निर्धारण के लिए दो मानदंड क्या हैं?

....

....

....

....

6) कटौती वचनबद्धता से ''ब्लू बॉक्स सहायता उपाय'' की छूट विवादास्पद क्यों है?

....

....

....

....

7) वे दो विषय क्या हैं जिन पर निर्यात साहाय्य पर वचनबद्धता को कम किया जाना अपेक्षित है? क्या आप सोचते हैं कि इस कटौती से विकासशील देशों को लाभ होगा।

....

....

....

....

27.3 स्वास्थ्य/स्वच्छता के मुद्दे और तकनीकी मानक

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

खाद्य उत्पादों का आयात जो घरेलू उपभोक्ताओं, पशुओं और पादपों के स्वास्थ्य के लिए सुरक्षित और अहानिकार है, आयात करने वाले देशों की मुख्य चिंता है। फलस्वरूप आयात करने वाले देशों की सरकारों को असुरक्षित और अस्वास्थकर आयातित खाद्य उत्पादों से अपने उपभोक्ताओं की सुरक्षा और सुरक्षित करने के लिए अनिवार्य कानूनों और विनियमों को लागू करना पड़ता है। परंतु कुछ देश कभी-कभी अन्य देशों से खाद्य उत्पादों का आयात सीमित करने के लिए उन्हें अवरोध के रूप में प्रयोग करते हैं। इस प्रकार के दुरुपयोग से बचाव के लिए स्वच्छता और पादप स्वच्छता (SPS) उपायों और व्यापार में तकनीकी बाधा (TBT) करारों को WTO के बहुपक्षीय करारों में समाविष्ट किया गया था।

27.3.1 सफाई और पादप स्वच्छता (SPS) उपाय

SPS की परिभाषा AoA निम्नलिखित पर अनुप्रयुक्त किसी भी उपाय के रूप में करता है : (क) जीवन या स्वास्थ्य, कीटों, रोगों, रोगवाहक या रोग के जीवों के प्रवेश या प्रसार से उत्पन्न होने वाले जोखिमों से सदस्य देश के राज्य क्षेत्र के अंदर पशु या पादप जीवन की रक्षा करना; (ख) खाद्य पदार्थों, पेय पदार्थों या पशु खाद्य पदार्थों में योजकों, संदूषण, आविष या रोग पैदा करने वाले जीवों से उत्पन्न जोखिमों से सदस्य देश के राज्य क्षेत्र के अंदर मानव या पशु जीवन या स्वास्थ्य की रक्षा करना; (ग) पशुओं, पादपों या उसके उत्पादों में कीटों के प्रवेश, स्थापना या प्रसार द्वारा वाहित रोगों से उत्पन्न होने वाले जोखिमों से सदस्य देश के राज्य क्षेत्र के अंदर मानव जीवन या स्वास्थ्य की रक्षा करना; और (घ) परजीवियों के प्रवेश, स्थापना या प्रसार से सदस्य देशों के राज्य क्षेत्र के अंदर अन्य क्षति सीमित करना या रोकना।

करार के दो बुनियादी सिद्धांत हैं : (i) अविभेदीकरण का सिद्धांत और (ii) वैज्ञानिक औचित्य प्रतिपादन का सिद्धांत। खाद्य सुरक्षा के संबंध में सुमेलन की आवश्यकता के अनुसरण में, SPS करार ने ऐसे अंतर्राष्ट्रीय निकायों द्वारा स्थापित कुछ मानकों, दिशा-निर्देशों और सिफारिशों की पहचान की है तथा चुना है जो मानव, पशु और स्वास्थ्य क्षेत्रों में अपने विशिष्टीकरण और विशेषज्ञता के लिए जाने जाते हैं। इन मानकों को आधारिक कसौटी के रूप में स्वीकार किया गया है जिनके आधार पर सदस्य देशों के उपायों और विनियमों का मूल्यांकन किया जाता है। SPS पर करार सुनिश्चित करता है कि ये उपाय यादृच्छिक, विभेद मूलक और संरक्षणवादी नहीं होने चाहिए तथा वैज्ञानिक औचित्य प्रतिपादन पर आधारित होने चाहिए। परंतु व्यवहार में बहुत विकसित देश अपने मानक (जो WTO के अधीन अनुमत है) अंतर्राष्ट्रीय रूप से निर्धारित मानकों से अधिक ऊंचे स्तरों पर निर्धारित कर रहे हैं। इसके अलावा, मानक प्रायः विकासशील देशों की सहभागिता के बिना और उनकी समस्याओं तथा कठिनाइयों को ध्यान में रखे बिना अपनाए गए हैं।

सामान्यतया अंतर्राष्ट्रीय मानक विकसित देशों में विद्यमान मानकों के अनुरूप बनाए जाते हैं। विकासशील देशों द्वारा इन उपायों का अनुपालन कठिन सिद्ध हुआ है, इस प्रकार इन देशों से निर्यात सीमित किया जा रहा है। इस प्रकार ये उपाय व्यापार बाधा होते हैं: (i) आयात के मानकों की तुलना में घरेलू मानक अधिक नीचे होते हैं, (ii) मानक अनुरूपता देशभर में भिन्न-भिन्न है या (iii) जब एक देश दूसरे देशों के उपायों को मान्यता नहीं देता है। इन कारकों को ध्यान में रखते हुए विकसित देशों में खाद्य सुरक्षा का राजनीति एजेण्डा में बहुत ऊँचा स्थान बना हुआ है। यह अंशतः इस तथ्य द्वारा भी स्पष्ट हो सकता है कि खाद्य सुरक्षा को श्रेष्ठ पदार्थ माना जाता है। इसकी मांग की आय नम्यता उच्च होती है, जैसे आय बढ़ती है, खाद्य उत्पादों की उच्चतर SPS उपायों मांग भी बढ़ती है। विश्वभर में उपभोक्ता संगठन और NGOs भी अस्वास्थ्यकर तथा असुरक्षित खाद्य उत्पादों से मनुष्य, पशु पादप जीवन या स्वास्थ्य की रक्षा करने में अधिक आग्रही हैं। इन दोनों कारकों ने भारत जैसे विकासशील देशों से निर्यात की संभावना पर नकारात्मक प्रभाव बढ़ाने में योगदान किया है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

SPS उपायों के अनुपालन में विकासशील देशों के लिए दो प्रकार की लागतें हैं : (i) उत्पादन लागत और (ii) अनुरूपता लागत। उत्पादन लागत में SPS उपायों के अनुसार माल के उत्पादन में सम्मिलित नए निर्देशों और प्रौद्योगिकी लागत समाविष्ट है। अनुरूपता लागत में प्रमाणीकरण और नियंत्रण की लागतें शामिल हैं। इस प्रकार विकासशील देशों की अनुपालन की कुल लागत विकसित देशों की अपेक्षा अधिक ऊँची है। इसका कारण यह है कि उपयुक्त SPS नियंत्रण प्रणाली स्थापित करने की लागत बहुत छोटी निर्यात मात्रा को ही वहन करनी पड़ती है।

इसके अलावा, चूंकि SPS मानक विकसित देशों में विद्यमान मानकों के अधिक अनुरूप है, इसलिए किसी भी नई SPS आवश्यकताओं में विकासशील देशों में अपेक्षाकृत अधिक लागत अंतर्निहित होगी। इसने अंतर्राष्ट्रीय बाजार में विकासशील देशों के उत्पादों को कम प्रतिस्पर्धी बना दिया है, फलस्वरूप इन देशों से निर्यात की मात्रा पर बहुत बुरा प्रभाव हुआ है। उदाहरण के लिए, विकसित देशों,

विशेषकर EU द्वारा अपनाए गए SPS उपायों के उच्च मानकों के कारण उनके बाजारों में भारतीय गोश्त और डेयरी उत्पादों का प्रवेश वास्तविक रूप में असंभव हो गया है। इसके अलावा यदि SPS वचनबद्धताओं के उल्लंघन के आधार पर देश में एक देश का निर्यात निषिद्ध हो जाता है तो उस उत्पाद की कीमत घरेलू बाजार में भी गिर सकती है। इससे देश के उत्पादन सेक्टर में रोजगार और आय की क्षति की संभावना होती है।

विकासशील देशों द्वारा प्रारंभ में उपर्युक्त कठिनाइयों को अनुभव किए जाने के बावजूद इसमें कोई संदेह नहीं कि आगे चलकर बेहतर SPS मानकों से स्वास्थ्य जोखिम कम होंगे और उपभोक्ताओं को लाभ होगा। परंतु जिस तरीके में ये मानक लागू किए जा रहे हैं उससे विकासशील देशों के लिए तीन प्रकार की समस्याएं हुई हैं। **पहला** संस्थागत समस्याएं हैं, जैसे निरीक्षण और अनुरूपता (अनुपालन) (आंतरिक या प्रवेश स्थल) और विवादों को निपटाने का वैज्ञानिक आधार कौन प्रदान करेगा? इसके अलावा इन अपेक्षिताओं के सुमेलन के लिए निर्यातकों को तकनीकी सहायता का अभाव है। **दूसरा,** आवधिक रूप में SPS मानकों में परिवर्तन से प्राप्त किए जाने वाले स्तर बढ़ रहे हैं, अनुपालन की लागत निरंतर निषेधात्मक हो रही है। **तीसरा** इस तथ्य के बावजूद कि AoA विनिर्दिष्ट SPS उपायों की समानता की पारस्परिक मान्यता पर बहुपक्षीय करारों को प्रोत्साहित करता है, सदस्य देश द्विपक्षीय समानता करार करते हैं। यह पद्धति अन्य के बदले कुछ देशों से आयात करने का पक्ष लेती है जिसका परिणाम अन्य सदस्यों के विरुद्ध भेदभाव होता है।

DIKSHANT IAS

27.3.2 तकनीकी व्यापारिक बाधाएँ (TBT) करार

Call us @7428092240

TBT पर करार में तकनीकी विनियम मानक और मूल्यांकन प्रक्रिया की समरूपता शामिल है। कपटपूर्ण पद्धति रोकने के अभिप्राय से तकनीकी विनियम सरकारों की अनिवार्य अपेक्षिताएं हैं ताकि मनुष्य और पशु स्वास्थ्य की तथा पर्यावरण की भी रक्षा की जा सके। इसलिए TBT करार का उद्देश्य पैकेजिंग, चिन्हांकन और लेबल लगाने की आवश्यकताओं सहित तकनीकी अपेक्षिताएं और मानक सुनिश्चित करना है।

यह आवश्यक कार्रवाई करने के लिए सरकारों के उत्तरदायित्वों और अधिकारों को सुनिश्चित करने के लिए स्वीकार करता है कि उन द्वारा वैध उद्देश्य पूरे किए गए हैं और अपनाए गए व्यापार उपाय अविभेदात्मक तथा असंरक्षणवादी हैं। TBT पर करार में 15 अनुच्छेद और तीन अनुलग्नक हैं। परंतु संक्षेप में, TBT करार का उद्देश्य पांच सिद्धांत पूरा करना है।

TBT करार के सिद्धांत – यद्यपि TBT करार का उद्देश्य उपभोक्ताओं और पर्यावरण की रक्षा करना है परंतु वास्तविकता में बहुत से उपाय देशी उत्पादकों के हितों की रक्षा करते हैं। यह विशेष रूप से विकसित देशों के मामले में है जो इस धारणा पर बहुत बार विकासशील देशों के उत्पादों के लिए बाजार सुलभता में बाधा डालते हैं कि 'उनका' का मानक 'हमारे' के अनुरूप नहीं है। कृषि उत्पादों के मामले में जब कभी विकसित देशों में इन उत्पादों पर शुल्क कम किया जाता है तो ऐसे उपायों के वर्धमान रूप से महत्त्वपूर्ण होने की संभावना होती है (क्योंकि भिन्न-भिन्न देशों के उत्पादों के लिए बाजार अंश प्रभावित होने

की संभावना होती है)। इसलिए TBT करार के प्रभावशील अनुपालन के लिए यह आवश्यक है कि निम्नलिखित सिद्धांत का अनुसरण अक्षरशः होना चाहिए। साथ ही, यह विकासशील देशों के लिए अपने मानक सुधारने भी समान रूप से आवश्यक है ताकि इन सिद्धांतों का पालन यथाविधि किया जा सके।

- **अविभेदीकरण** : तकनीकी विनियम और समरूपता मूल्यांकन प्रक्रिया तैयार करने, अंगीकरण करने और अनुप्रयोग करने के आधार पर।
- **सुमेलन** : अंतर्राष्ट्रीय मानक विकसित करना और प्रयोग करना इस आवश्यकता को पूरा करने के लिए 'अच्छे व्यवहार' की संहिता सुस्पष्ट रूप से विस्तृत होनी चाहिए।
- **न्यूनतम व्यापार प्रतिबंधात्मक उपाय** : व्यापार की अनावश्यक बाधाओं का परिहार करने के लिए।
- **समानता** : पारस्परिक स्वीकृति के आधार पर व्यापारी भागीदारों के बीच मूल्यांकन प्रक्रियाओं और तकनीकी अपेक्षिताओं पर करार।
- **पारदर्शिता** : सभी मानकों और विनियमों पर प्रकाशित और अधिसूचित विनियमों/दिशा निर्देशों। सदस्यों को नियमों, मानकों और अन्य संबद्ध मामलों के बारे में विचार विनिमय सुकर बनाने के लिए स्थापित समुचित पूछताछ बिंदुओं सहित नए विनियम पर सम्मति देने के लिए पर्याप्त समय मिलना चाहिए।

DIKSHANT IAS

27.4 दोहा विकास एजेण्डा (DDA)

Call us @7428092240

AoA का अनुच्छेद 20 अंतर्राष्ट्रीय वचनबद्धताओं में बातचीत करने का प्रावधान करता है। दोहा विकास एजेण्डा (DDA) ने अनुच्छेद 20 में प्रदान किए गए समझौते की बातचीत के अधिदेश का आगे सविस्तार प्रतिपादन किया है। एजेण्डा विकास और कृषि, विनिर्माण और सेवाओं में बाजार खोलने पर फोकस करता है। DDA की क्रियान्वयन प्रक्रिया दिसंबर, 2004 में समाप्त होनी थी। परंतु एजेण्डा के क्रियान्वयन में प्रगति ''देशों के भिन्न-भिन्न समूहों के'' हितों के टकराव के कारण संतोषजनक नहीं रही है। एजेण्डा में शामिल हैं : (i) औद्योगिक माल और सेवाओं में कटौती; (ii) कृषि उत्पादकों के लिए साहाय्य समाप्त करना; (iii) सीमा पार निवेश की बाधाएं कम करना; और (iv) डम्पिंग विरोधी कानून का प्रयोग सीमित करना। इस इकाई में हम केवल कृषि संबंधी मुद्दों पर ध्यान देंगे।

DDA में प्रधान कृषि संबंधी मुद्दे, इस प्रकार हैं : (i) धनी देशों द्वारा अपनी कृषि के लिए दी गई व्यापार को विकृत करने वाली घरेलू साहाय्य का उच्च स्तर कम करना; (ii) कृषि निर्यात साहाय्यों की मात्रा सुमेल करना; और (iii) विकासशील देशों के कृषि उत्पादों के निर्यात पर आयात शुल्क कम करना। DDA अपेक्षा करता है : (i) कुल AMS घटाना, (ii) कई देशों के लिए ''de minimis'' प्रारंभ कम करना, और (iii) ब्लू बॉक्स उपायों पर सीमा लागू करना। यह ग्रीन बॉक्स उपायों को नियंत्रित करने पर भी बल देता, जो विकसित देशों की कृषि को असीमित समर्थन देते हैं और अन्य संभवतः उत्पादन केंद्रित और मांग स्थिरीकरण उपायों को सीमित करते हैं, (जैसे संयुक्त यूरोपीय संघ और ब्राजील

में ''जैव ईंधन कार्यक्रम'')। इसका मुख्य आधार जैव ईंधन कार्यक्रम के संभावित योगदान के कारण है : (i) अंतर्राष्ट्रीय बाजार में खाद्य कीमतों पर प्रभाव, और (ii) उससे विश्व खाद्य सुरक्षा के लिए उत्पन्न उलझन।

DDA की मुख्य उपलब्धियां – DDA व्यापार विकृत करने वाली कृषि साहाय्यों पर बड़ी कटौती करने के लिए EU, US और जापान को राजी करने में सफलता प्राप्त कर सका है। WTO समझौता बातचीत के पिछले दौरों से तुलना में DDA की यह महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। DDA की एक अन्य विशेषता है कि भारत जैसे विकासशील देशों में आजीविका और संसाधनहीन किसानों के लिए ''de minimis'' कार्यक्रमों के संबंध में S&D व्यवहार का स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया था। इसके आलोक में भारत निम्नलिखित चार मुद्दों पर मोटे तौर पर ध्यान केंद्रित करते हुए DDA पर यथातथ्यात्मक रूप से बातचीत कर रहा है : (i) खाद्य सुरक्षा, (ii) बाजार सुलभता, (iii) निर्यात साहाय्यें में विकृतियों का उन्मूलन और (iv) घरेलू साहाय्यों में कटौती। भारत के विकासशील देशों के इस परिप्रेक्ष्य पर बल देता है कि विकासशील देशों की खाद्य और आजीविका सुरक्षा के मुद्दे को DDA पर बातचीत में प्राथमिकता दी जानी आवश्यक है। इस दिशा में भारत ने खाद्य और आजीविका सुरक्षा के आधार पर संसाधनहीन गरीब, छोटे और सीमांत किसानों का संरक्षण आसान बनाने के लिए (AoA) में ''खाद्य सुरक्षा बॉक्स'' के प्रवर्तन का सुझाव दिया है।

DDA में निम्नतम स्तर के बिंदु : DDA की घोषणा के एक दशक बाद भी DDA का एजेण्डा अभी तक अधूरा है। कृषि व्यापार अभी भी विभिन्न संरक्षणों के अधीन है। राजनीतिक विचार इन समझौते की बातचीत के लिए अधिक खुला होने से प्रायः किसी भी राष्ट्र को रोक देते हैं। विकासशील देशों की चिंताएं अभी भी एजेण्डा पर बातचीत में पर्याप्त रूप से हल नहीं की गई है। परंतु यह आमतौर पर माना गया है कि यदि DDA का अक्षरशः क्रियान्वयन किया जाता है तो यह भारत जैसे विकासशील देशों को प्रचुर लाभ होगा। WTO के लिए अभी तक औद्योगिक देशों द्वारा अपने किसानों को भुगतान की गई ऐसी विशाल साहाय्य घटाने पर सहमति बनाना संभव नहीं हुआ है जो विकासशील देशों में गरीब किसानों की आजीविका को अभी जोखिम में डाले हुए है। इनके आलोक में, 2011 में जेनेवा में आयोजित WTO की मंत्रीस्तरीय बैठक ने निर्णय किया कि DDA कहीं नहीं जा रहा है, और अपने वर्तमान रूप में यह शीघ्र ही किसी तर्कसंगत निर्णय पर नहीं पहुंच पाएगा।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 3

नीचे दिये गए स्थान में अपना उत्तर लगभग 50 शब्दों में लिखिए।

1) आयात करने वाले देशों के उपभोक्ताओं की रक्षा करने के लिए WTO करारों में किन दो विशिष्ट सुरक्षणों का समावेश किया गया है? वे दो सुरक्षण आधारभूत रूप में क्या सुरक्षा करते हैं?

....

....

....

....

2) SPS उपायों का बुनियादी उद्देश्य क्या है? उसके दो बुनियादी सिद्धांत क्या हैं?

....

....

....

....

3) तीन स्थितियां बताइए जब SPS उपाय व्यापार के लिए बाधा बन सकते हैं?

....

....

....

....

4) उन दो कारकों की पहचान कीजिए जिन्होंने ''खाद्य सुरक्षा'' का मुद्दे को विकसित देशों के राजनीतिक एजेण्डा में उच्च स्थान पर रखा है?

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

....

....

5) विकासशील देशों के लिए SPS उपायों के अनुकूल होने में अंतर्निहित लागत के दो प्रकार क्या हैं? इन दोनों में मूलतः क्या समाविष्ट है?

....

....

....

....

6) निर्यात के लिए SPS उपायों का अपालन अर्थव्यवस्था के घरेलू सेक्टर में रोजगार और आय क्षति को कैसे प्रभावित करता है?

....

....

....

....

7) SPS उपायों के बावजूद व्यापारिक मामलों में भेदभाव जारी है?

....

....

....

....

8) TBT व्यवस्था का मूल उद्देश्य क्या है? सिद्धांत बताइए कि TBT करार के ठीक से कार्य करने के सिद्धांत क्या हैं?

....

....

....

....

9) कृषि संबंधी तीन मुद्दे क्या हैं जो दोहा विकास एजेण्डा (DDA) में प्रबल रहे हैं?

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

....

....

10) जनेवा में 2011 में आयोजित WTO मंत्रीस्तरीय सम्मेलन किन कारणों से WTO प्रक्रिया की प्रगति पर निराशाजनक राय व्यक्त करने के लिए बाध्य हुआ?

....

....

....

....

27.5 अंतर्राष्ट्रीय वचनबद्धताओं के प्रति निहितार्थ

अंतर्राष्ट्रीय वचनबद्धताओं के भारतीय कृषि के लिए प्रमुख निहितार्थ हैं। परंतु चूंकि भारत कृषि उत्पादों का सकल निर्यातक है, इसलिए यह आशा की जाती है कि यदि AoA प्रभावी ढंग से क्रियान्वित किया जाता है और व्यापार विकृतियां

समाप्त की जाती हैं तो भारत और अन्य विकासशील देश तथा संक्रमणशील अर्थव्यवस्थाएं कृषि व्यापार में लाभ प्राप्त करने की ओर बढ़ेंगे। इन वचनबद्धताओं का प्रभाव निम्न प्रकार तीन मुख्य पहलुओं के आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है।

27.5.1 व्यापार प्रतिस्पर्धता

व्यापार प्रतिस्पर्धा दो कारकों पर निर्भर करती है : (i) उत्पादकता और (ii) उत्पादन की लागत। WTO विनियमों के क्रियान्वयन के बाद सोचा गया था कि कृषि व्यापार में विकृति कम हो जाएगी और विकासशील देशों से उत्पादों के निर्यात की गुंजाइश बढ़ जाएगी। ऐसा निष्पक्ष व्यापार व्यवस्था से सबसे पहले उनके उत्पादों के लिए अधिक अच्छी कीमतों के माध्यम से कुशल उत्पादकों की सहायता करने की आशा की गई थी और बाद में कृषि कामगारों के निम्नतर वर्गों तक व्यापार के लाभ पहुंचने की भी आशा की गई थी। परंतु पिछला अनुभव और WTO के क्रियान्वयन का डेढ़ दशक दर्शाता है कि विकसित देशों में अत्यधिक विशाल मात्रा में साहाय्यी यंत्रीकृत कृषि ने विकासशील देशों की कृषि को विश्व बाजार में कम प्रतिस्पर्धी बना दिया है। दूसरे शब्दों में, औद्योगिक देशों द्वारा अंतर्राष्ट्रीय वचनबद्धताओं के अपालन द्वारा बढ़े हुए लाभ प्राप्त करने से विकासशील देशों के उत्पादक प्रभावित हुए हैं। इसके अलावा, AoA में विभिन्न बचाव के रास्तों ने विकसित देशों के लिए अपनी कृषि को भारी साहाय्य देने की गुंजाइश प्रदान की है। इस प्रकार यद्यपि AoA ने अंतर्राष्ट्रीय के नियमों की परिभाषा के अनुसार बहुत कुछ प्राप्त किया है, उसकी उपलब्धि बाजार खुलने/सुलभता के आधार पर सीमित रही है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

विभिन्न समितियों और मंत्रीस्तरीय सम्मेलनों में विकसित देशों द्वारा की गई चर्चा, एजेण्डा, प्रस्ताव और तर्क प्रकट करते हैं कि यद्यपि विकसित देश (विशेषकर EU और US) {शुल्क कटौती, शुल्क दर कोट (TRO) में वृद्धि के माध्यम से} विकासशील देशों में अपने कृषि उत्पादों के लिए बेहतर बाजार सुलभता के लिए सौदा करते हैं, वे अपने ही देशों में निर्यात साहाय्य के उन्मूलन और घरेलू सहायता की कटौती के बातचीत करने से बचते हैं। फलस्वरूप, अंतर्राष्ट्रीय बाजारों में कृषि कीमतें पर्याप्त रूप में मंदी है। ये भारत जैसे विकासशील देशों की व्यापार प्रतिस्पर्धा प्रभावित कर रही हैं।

जैसाकि पहले उल्लेख किया गया है, भारत ने अपना QR समाप्त कर दिया है। इसके अलावा, इनका कुल AMS बहुत से कृषि उत्पादों के लिए लगातार ऋणात्मक रहा है। भारत भी कटौती वचनबद्धता के लिए सूचीबद्ध कृषि उत्पादों को कोई निर्यात साहाय्य नहीं देता है। इस प्रकार यदि विकसित देश बचनबद्धता का अपना भाग का अनुपालन करते हैं तो यह विश्व बाजार में विकासशील देशों के उत्पादों को अधिक प्रतिस्पर्धा बनाकर कृषि उत्पादों की अंतर्राष्ट्रीय कीमतें स्थिर करेगा। परंतु यदि विश्व बाजार में वृद्धि है तो यह उन अल्प विकसित देशों के कल्याण को प्रतिकूल ढंग से प्रभावित करेगा जो खाद्यान्नों के निवल आयातकर्त्ता है। इसलिए व्यापार उदारीकरण के कारण विशिष्ट उत्पाद के मामले में देश को लाभ या हानि, इस पर निर्भर होगा कि क्या यह उस उत्पाद का निवल निर्यातक है या निवल आयातक। इन सभी के आधार पर भारत कृषि

उत्पादों का निवल निर्यातक है। इसलिए यदि व्यापार संबंधी सभी विकृतियाँ समाप्त की जाती हैं, भारत कृषि निर्यात के अपने शेयर में लाभ प्राप्त करने के लिए आगे बढ़ सकेगा।

27.5.2 खाद्य और आजीविका सुरक्षाएं

विकसित देशों में 3 से 5 प्रतिशत जनसंख्या कृषि पर निर्भर है। परंतु अधिकांश विकासशील देशों में 50 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या प्रत्यक्ष रूप से कृषि पर निर्भर है। व्यापार उदारीकरण खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित नहीं कर सकता है परंतु अंतर्राष्ट्रीय बाजार में खाद्य कीमतों में कोई भी अस्थिरता कृषि उत्पादकों की आजीविका प्रस्थिति को प्रतिकूल रूप से प्रभावित कर सकती है। इसे ध्यान में रखते हुए, गरीब किसान की खाद्य और आजीविका आवश्यकताओं की सुरक्षा करने के लिए विशेष सुरक्षणों की आवश्यकता है जिसके लिए मांग और आपूर्ति दोनों कारकों को ध्यान में रखा जाना चाहिए। खाद्य सुरक्षा न केवल खाद्य आपूर्तियों की उपलब्धता और स्थिरता को शामिल करती है बल्कि खाद्य के अपेक्षित मात्रा की अधिप्राप्ति के लिए आवश्यक संसाधनों के अनुसार इसमें आपूर्ति की सुलभता के मुद्दों को भी शामिल करती है। इसे ध्यान में रखते हुए जिन देशों में जनसंख्या का बहुत बड़ा भाग कृषि पर आश्रित है, उत्पादकता सुधारने, आय स्तरों का विस्तार करने, बाजार घट-बढ़ की संवेदनशीलता घटाने, कीमत स्थिरता सुनिश्चित करने आदि के प्रति अपनी घरेलू कृषि नीतियों के निर्धारण में कुछ न कुछ स्वायतत्ता और नम्यता रखना चाहेंगे। भारत अपने न्यायसंगत अव्यापारिक समस्याओं का अनुसरण करने के लिए विकासशील देशों के लिए AoA में अपेक्षित लचीलापन चाहता है। साधारणतया विकासशील देशों को न केवल खाद्य सुरक्षा की चुनौतियों का सामना करने के लिए, बल्कि, उसके सहसंबंधों जैसे ग्रामीण रोजगार की व्यवहार्यता के लिए भी अपनी कृषि को घरेलू सहायता प्रदान करने की अनुमति की आवश्यकता है। यह तथ्य कि विकासशील देशों को अपने गरीब वर्ग की खाद्य और आजीविका सुरक्षाओं की रक्षा करने के लिए पर्याप्त संरक्षणों की आवश्यकता है, कृषि पर WTO बातचीत में भारत और अन्य देशों द्वारा प्रकाश में लाया गया है। इन सुरक्षणों ने इस तथ्य की दृष्टि से भी अधिक महत्त्व ग्रहण कर लिया है कि AoA विकसित देशों में कृषि साहाय्य को नियंत्रित करने में बहुत अकुशल रहा है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

27.5.3 सीमांत और छोटे किसान

नवीनतम कृषि गणना 2010-11 के अनुसार भारत में स्वकर्षित जोतों की संख्या 2010-11 में 138 मिलियन थी। 2001-11 की अवधि में स्वकर्षित जोतों की संख्या में **दशाब्दी** वृद्धि 22.5 प्रतिशत थी। छोटे किसानों की संख्या की तद्नुरूप वृद्धि 8.9 प्रतिशत थी। इस वृद्धि/बढ़ोतरी के कारण इन दो खंडों का संयुक्त अंश 2001-2011 की अवधि के दस वर्षों के दौरान 82 प्रतिशत से बढ़कर 85 प्रतिशत हो गया। अब सीमांत और छोटे किसान कुल स्वकर्षित क्षेत्रफल के 44 प्रतिशत और स्वकर्षित जोतों की संख्या के 85 प्रतिशत हैं। देश के किसानों के 85 प्रतिशत की आजीविका निर्वाह आवश्यकताएं भारत के लिए मुख्य विकास और नीति चुनौतियों में से एक है।

भारतीय कृषि अपनी छोटी जोतों के स्वरूप के कारण यांत्रिक खेती प्रारंभ करने में असमर्थ-सी रहती है और जब तक विशाल स्तर में विस्तार कार्यक्रम नहीं चलता है, नई प्रौद्योगिकी का अंगीकरण कठिन है। कृषि वृद्धि को धारणीय बनाए रखने और खाद्य सुरक्षा का उद्देश्य प्राप्त करने का एकमात्र रास्ता आदानों, जैसे सिंचाई, बिजली, उर्वरक, कीटनाशक, तकनीकी जानकारी, HYV बीज, आधार मूल संरचना विकास और बाजार समर्थन आदि बढ़ी हुई सरकारी सहायता है। बढ़े हुए आदान के वित्तीय भार का बड़ा भाग सरकारी साहाय्यों द्वारा पूरा करना होगा। इसलिए छोटे किसानों की आवश्यकताएं WTO वार्त्ताओं में यथाविधि हल की जानी चाहिएं क्योंकि ये किसान विकसित देशों के विशाल आकार की यांत्रिक खेती से प्रतिस्पर्धा नहीं कर सकते हैं। बाजार सुलभता और संयुक्त राष्ट्र, जापान तथा अन्य विकसित देशों में दी गई निर्यात साहाय्य और घरेलू सहायता की कटौती के अभाव में (अन्य देशों द्वारा वचनबद्धता की पूर्ति के बिना) व्यापार उदारीकरण नीतियों का अनुसरण किया जाता है तो भारत जैसे देशों को गंभीर प्रतिकूल प्रभाव भुगतने होंगे।

27.6 WTO वचनबद्धताओं के प्रति दृष्टिकोण

औद्योगिक राष्ट्रों द्वारा अत्यधिक व्यापार विकृतिकारी निर्यात और अपने किसानों को दिए गए घरेलू साहाय्यों की मौजूदगी में QRs की समाप्ति हमारी कृषि को अपने प्रतिकूल परिणाम दिखा चुकी है। इसलिए भारत को घटाये हुआ उपर्युक्त शुल्क कोटा के माध्यम से बढ़ी हुई बाजार सुलभता की प्राप्ति के लिए विकसित देशों की घरेलू सहायता और निर्यात साहाय्य में कटौती के लिए DDA के मंच पर प्रबलता से बातचीत करनी चाहिए। इसके अलावा, चूंकि भारत में ऋणात्मक उत्पाद विशिष्ट AMS है, इसलिए हमें पर्याप्त रूप में लाभ हो सकता है यदि देशों द्वारा अपने कृषि उत्पादकों को सहायता की कटौती पर वचनबद्धता पूरी की जाती है। चूंकि भारत कृषि को किसी भी प्रकार की निर्यात साहाय्य नहीं देता है, इसलिए WTO में उसकी रणनीतिक युक्ति को घरेलू सहायता की कटौती और निर्यात साहाय्य के उन्मूलन पर दबाव डालना चाहिए। चूंकि भारत ने कृषि आयात पर QRs हटा दिया है, इसलिए कुछ कृषि उत्पादों जैसे मक्खन और पनीर पर प्रतिकूल प्रभाव हो सकता है। इसके लिए, ऐसे मामलों में, अपेक्षाकृत रूप से उच्च आबद्ध शुल्क रखने से इन उत्पादों की अंतर्राष्ट्रीय कीमतों में घट-बढ़ को सहन किया जा सकता है। भारतीय समझौता बातचीत के वार्त्ताकारों को WTO सम्मेलनों और बैठकों में देश के हितों की रक्षा करने के लिए विभिन्न WTO प्रावधानों के सभी विधिक, आर्थिक और राजनीतिक पहलुओं पर सकल रूप से विचार करना चाहिए। अल्प अवधि में देश को कृषि तथा पशुधन उत्पादों का निर्यात को बढ़ावा देने के लिए पड़ोसी देशों को निर्यात करना चाहिए, वहाँ वैसे ही या न्यूनतर गुणवत्ता मानक लागू हैं। दीर्घकालिक रणनीति SPS और TBT प्रावधानों का अनुपालन करने के लिए कार्यदक्ष संस्थागत ढाँचे का निर्माण करना होना चाहिए ताकि भविष्य में बाजार की विशाल संभावना का लाभ उठाया जा सके। इसके अलावा, SPS उपायों का अनुपालन से घरेलू मानव, पशु और पादप स्वास्थ्य में भी सुधार होंगे जो भविष्य में देश को बड़ा लाभ प्रदान कर सकते हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

27.6.1 भावी मार्ग

आने वाले वर्षों में भारतीय और बहुत से अन्य विकासशील देशों की कृषि WTO विनियमों से लाभान्वित हो सकती है यदि AoA का अक्षरशः क्रियान्वयन किया जाता है और व्यापार संबंधी विकृतियां हटाई जाती हैं। इस अवसर का उपयोग करने के लिए हमें भारत में दुहरी रणनीति अपनानी चाहिए। **एक** हमें विश्व बाजार में अपनी कृषि प्रतिस्पर्धा का विस्तार करना चाहिए जो मूलतः दो घटकों से बनी हुई है : (i) कीमत प्रतिस्पर्धा; और (ii) उत्पाद गुणवत्ता। भारत को औद्योगिक देशों में उत्पादन और निर्यात साहाय्यों की कटौती प्राप्त करने के लिए विभिन्न WTO मंचों में सहयोगी विकासशील देशों की सहायता जुटानी चाहिए। **दूसरा** उत्पाद की गुणवत्ता निर्यात के सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण निर्धारक तत्वों में से एक है। वर्तमान समय में उपभोक्ता गुणवत्ता सजग है और ऐसे उत्पादों की मांग करते हैं जो उनके स्वास्थ्य के लिए सुरक्षित और अहानिकार हैं। इसलिए SPS और TBT आवश्यकताओं को पूरा करने वाले उत्पादों की गुणवत्ता सुनिश्चित करने के लिए प्रभावशाली नियामक प्रणाली विकसित की जानी चाहिए। खाद्य गुणवत्ता के विनियमन तथा निगरानी के लिए विद्यमान कानूनों को SPS और TBT के समरूप बनाने के लिए उन्हें समुचित ढंग से संशोधित किया जाना चाहिए।

प्रतिस्पर्धा सुधारने के लिए अतिरिक्त उपाय

भारत के अधिकांश कृषि उत्पाद अंतर्राष्ट्रीय मानकों पर खरे नहीं हैं। इसलिए कृषि के निर्यातोन्मुखी परियोजनाओं में विदेशी सहयोग प्रोत्साहित किया जा सकता है ताकि WTO के बाजार सुलभता प्रावधानों के अधीन लाभ प्राप्त किए जा सकें। विदेशी सहयोग कृषि व्यापार में व्यावसायिकता बढ़ा सकता है क्योंकि बहुत कम भारतीय कृषि उत्पादों को यूरोपीय और उत्तर अमेरिकी बाजारों में ब्रॉड समानता प्राप्त है। राज्य सरकारें कृषि परियोजनाओं के लिए विदेशी सहयोग के साथ निवेश की शर्तें अनुकूल बना सकती हैं। कृषि उत्पादों के विश्व बाजार में अधिक अस्थिरता से अंतर्राष्ट्रीय कीमतों में अत्यधिक ह्रास भारतीय किसानों के लिए अनर्थकारी हो सकता है। देश में तिलहन उत्पादक इस किस्म की अस्थिरता के कारण समस्याओं का सामना कर चुके हैं। इसलिए इस किस्म के प्रतिघातों के प्रभावों से किसानों की रक्षा करने के लिए उपयुक्त नीतियाँ प्रारंभ की जानी चाहिएं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 4

नीचे दिये गए स्थान में अपना उत्तर लगभग 50 शब्दों में लिखिए।

1) कारण बताइए, कि पिछले 15 वर्षों से WTO विनियमों के क्रियान्वयन के बावजूद क्यों विकासशील देश प्रत्याशित प्रतिलाभ प्राप्त नहीं कर सके हैं?

....

....

....

....

2) क्या आप सोचते हैं यदि WTO विनियमों को निर्बाध और निष्पक्ष तरीके में लागू किया जाता है? भारत को कृषि व्यापार से लाभ होगा? क्यों?

....

....

....

....

3) विकासशील देशों में गरीब किसानों की आजीविका की आवश्यकताओं के संरक्षण के लिए क्या सुरक्षण आवश्यक है?

....

....

....

....

4) भारतीय कृषि के छोटी जोत आधारित स्वरूप में 2001-11 की अवधि में किस सीमा तक वृद्धि हुई है? भारतीय कृषि के इस लक्षण के प्रकाश में WTO बातचीतों में छोटे किसानों की चिंताएं दूर करने के लिए क्या उपाय हैं?

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

....

....

5) अंतर्राष्ट्रीय कीमतों में उतार-चढ़ाव के प्रतिकूल प्रभावों का निराकरण करने के लिए और WTO बातचीतों में प्रभावी ढंग से निपटने के लिए भारत द्वारा क्या उपाय किए जाने की आवश्यकता है?

....

....

....

....

6) ''भावी मार्ग'' में अपनाई जाने वाली दोहरी रणनीति के क्या तत्व हैं जिनसे भारतीय कृषि को व्यापार उदारीकरण उपायों से लाभ प्राप्त हो सके?

....

....

....

7) उन अतिरिक्त पहलों का उल्लेख कीजिए जिन्हें अंतर्राष्ट्रीय बाजारों में भारतीय कृषि प्रतिस्पर्धा सुधारने के लिए भारत में राज्य सरकारों द्वारा किया जा सकता है?

....

....

....

....

27.7 सारांश

कृषि राजनीतिक दृष्टि से बहुत संवेदनशील विषय है और इसलिए इस सेक्टर का उदारीकरण कठिन कार्य है। इसे ध्यान में रखते हुए विकसित और विकासशील दोनों विभिन्न पहलुओं पर अपनी कृषि के लिए किसी न किसी प्रकार का संरक्षण करना चाहेंगे। AoA का उद्देश्य निर्यात और उत्पादन साहाय्य घटाकर और गैर-शुल्क बाधाओं सहित आयात बाधाओं को हटाकर कृषि में विकृतियां समाप्त करना है। परंतु WTO विनियमों के क्रियान्वयन के डेढ़ दशक बाद भी कृषि में विश्व व्यापार अभी भी अत्यधिक विकृत है, इसका मुख्यकारण यह है कि विकसित देशों ने अपने कृषि उत्पादकों को दी गई सहायता घटाने की अपनी वचनबद्धता पूरी नहीं की है। चूंकि विकसित देशों के मामले में कटौती आवश्यकता विकासशील देशों की अपेक्षा अधिक है, इसलिए सिद्धांत रूप से यह आशा की जाती है कि विकासशील देश विकसित देशों के बाजार में अपेक्षाकृत बेहतर सुलभता प्राप्त कर सकेंगे। परंतु इसके लिए विकासशील देशों द्वारा अपने उत्पादकों को SPS और TBT उपायों के अनुकूल बनाना आवश्यक है। AoA में बचाव के रास्तों को ध्यान में रखते हुए विकसित देशों के लिए किसी न किसी रूप में उपायों को बहाल कर संरक्षण का उच्च स्तर बनाए रखने के विपुल अवसर है। इस प्रणाली को ''विकृत शुल्कीकरण'' के रूप में उल्लेख किया जाता है और विशेषकर राजनीतिक दृष्टि से संवेदनशील उत्पादों के लिए प्रयुक्त देखा जाता है। असंयोजित सहायता के लिए छूट दी गई है जो उन भुगतानों से संबंधित है जो चालू उत्पादन स्तरों, उत्पाद कीमतों, आदान प्रयोग या आदान कीमतों (ग्रीन बॉक्स उपाय) और उत्पादन सीमा के लिए सहायता (ब्लू बॉक्स सहायता) से संबद्ध नहीं है। घरेलू सहायता का असंयोजन WTO मंत्रीस्तरीय सम्मेलन में सबसे अधिक विवादास्पद विषयों में से एक के रूप में उभरकर आया। एक ओर मूल्य समर्थन और आदान साहाय्य के बीच और ''ग्रीन बॉक्स और ब्लू बॉक्स'' साहाय्य के बीच निर्मित कृत्रिम अंतर तथा कटौती वचनबद्धता से इस व्यवस्था को भारत जैसे विकासशील देशों के विरुद्ध अनुचित भेदभाव समझा गया है। विकसित देश विकासशील देशों के कृषि उत्पादों का अपनी सीमाओं के प्रवेश सीमित करने के लिए SPS और TBT का प्रयोग भी करते हैं। चूंकि अंतर्राष्ट्रीय मानक सामान्यतया विकसित देशों में विद्यमान मानकों के अनुरूप बनाए जाते हैं, विकासशील देशों द्वारा इन उपायों का अनुपालन उनकी प्रतिस्पर्धा कम करते हुए उत्पादन लागत बढ़ाता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

भारत कृषि लाभ प्राप्त करेगा यदि DDA प्रभावी ढंग से क्रियान्वित किया जाता है और भारत सिंचाई, यातायात, अनुसंधान और विस्तार में पर्याप्त निवेश करता है (जिन पर व्यय WTO की घरेलू सहायता कटौती वचनबद्धता से छूट प्राप्त है)। भारत के कुछ अल्प शुल्क बंधनों पर पुनः बातचीत की जा सकती है। उत्पाद विशिष्ट AMS के अंतर्गत मूल्य सहायता की गणना में ऋणात्मक AMS का समायोजन भी ठीक से नहीं किया गया है। खाद्य गुणवत्ता के विनियमन और निगरानी के लिए विद्यमान कानूनों को उन्हें SPS और TBT के समरूप बनाने के लिए समुचित रूप से संशोधित करना आवश्यक है। कृषि प्रसंस्करण का आधुनिकीकरण न केवल हमारी निर्यात मार्केट संभावना बढ़ाएगा बल्कि घरेलू खाद्य गुणवत्ता सुधारने में भी सहायता करेगा।

27.8 शब्दावली

कृषि का बहु प्रकार्यता स्वरूप : इसका संबंध उन बहुत से कार्यों से है जिन्हें कृषि समाज के लिए करती है। खाद्य, चारा, ईंधन और कृषि प्रसंस्करण उद्योगों को कच्चा माल देने के अलावा कृषि सामाजिक-आर्थिक से पर्यावरणीय कार्यों तक भी करती है। भारत जैसे विकासशील देशों के लिए कृषि ग्रामीण लोगों की आजीविका का मुख्य स्रोत है और खाद्य के लिए भौतिक और आर्थिक सुलभता प्रदान करने का स्रोत है। दूसरी ओर, विकसित देशों में कृषि को पारितंत्र सेवाएं बढ़ाने के लिए कृषि उत्पादन सीमित कर मृदा उर्वरता तथा पर्यावरण का संरक्षण करने के लिए भारी साहाय्य दी जाती है। इस प्रकार खाद्य रक्षा, खाद्य सुरक्षा, पर्यावरण संरक्षण और ग्रामीण रोजगार मुख्य समस्याएं हैं जिनके लिए बहुत स्तरों पर नीतियां और निवेश की आवश्यकता है। इसे ध्यान में रखते हुए WTO बैठकों की बातचीत में कृषि की बहुप्रकार्यता को विकसित और विकासशील दोनों द्वारा अपनी कृषि का संरक्षण करने के लिए महत्त्वपूर्ण तर्क के रूप में प्रयुक्त किया गया है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

शुल्क दर कोटा : यह कृषि उत्पादों के लिए ''न्यूनतम बजार सुलभता'' का अनुबंध करने के लिए प्रयुक्त माप है। इसके अधीन दो शुल्क दरें होंगी, निम्नतर शुल्क निर्धारित सीमा से कम आयातित मूल्य या मात्रा के लिए प्रयोज्य है और दूसरा उच्चतर दर शुल्क दर निर्धारित सीमा से अधिक मात्रा में आयातित के लिए प्रयुक्त होता है।

सहायता का कुल माप AMS : यह ज्ञात करने का सूचक है कि दी गई संचयी सहायता अनुमत्त सीमा के अंतर्गत है या नहीं। यह इस दृष्टि से उत्पाद विशिष्ट है कि AMS सूचक की प्रत्येक उत्पाद के लिए गणना अलग-अलग की जाती है। दो कीमतों, अर्थात् पण्यवस्तु की घरेलू कीमत और अंतर्राष्ट्रीय कीमत के बीच अंतर को देश में उस वर्ष के अंतर उस पण्यवस्तु की उत्पादन की मात्रा से गुणा कर AMS मूल्य निकाला जाता है। यह मूल्य (अर्थात् AMS मूल्य) ऋणात्मक है जब अंतर्राष्ट्रीय कीमत से घरेलू कीमत कम होती है। इस मामले में दी गई सहायता की सीमा घटाने के लिए आगे कोई कदम नहीं उठाने आवश्यक है। जब मूल्य धनात्मक हो तो जब तक यह विकासशील देशों के लिए अनुमतीय निर्धारित से 10 प्रतिशत नीचे है, दी गई सहायता कम करने की आवश्यकता नहीं है। दूसरे शब्दों में, AMS मूल्य देश के प्रशासकों को संकेत देता है कि उनके किसानों को दी गई व्यापार विकृति सहायता की सीमा कम करने की दिशा में ली जाने वाली कोई सुधारक क्रियाविधि की आवश्यकता है या नहीं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

गैर उत्पाद विशिष्ट साहाय्यों की निम्नतम सीमा : कृषि क्षेत्र या कृषि उत्पादकों के WTO के ग्रीन, बल्यू तथा S&D प्रावधानों द्वारा अनुमत्त साहाय्यों के अतिरिक्त सभी साहाय्य कटौती प्रतिबद्धता के अंतर्गत आते हैं। किंतु यहां भी एक **न्यूनतम स्तर** निर्धारित है। उस स्तर से अधिक होने पर ही उन साहाय्यों में कटौती अनिवार्य होती है। इसी न्यूनतम स्तर को de minimis कहा गया है। दूसरे शब्दों में, भले ही कोई साहाय्य व्यापार विकृति कर हो, किंतु जब तक उसका स्तर एक घोषित सीमा का (अनुमत्त सीमा का) अतिक्रमण नहीं करता, उस साहाय्य को कम करने पर आग्रह नहीं होगा। विकसित देशों में ऐसा साहाय्य किसी उत्पाद विशेष कुल उत्पादित मूल्य के 5 प्रतिशत तथा विकासशील देशों में 10 प्रतिशत से अधिक होने पर ही कटौती की वचनबद्धता प्रभावित होती है।

असंयोजित सहायता : इसका संबंध उस भुगतान से है जो उत्पादन सीमाओं (ब्लू बॉक्स सहायता) के अधीन चालू

उत्पादन स्तरों, उत्पाद कीमतों आदान प्रयोग या आदान कीमतों (ग्रीन बॉक्स पाप) सहायता उत्पादन सीमाओं में है।

SPS और TBT उपाय : इसका संबंध उन उपायों से है जिनका उद्देश्य उपभोक्ताओं (अर्थात् मनुष्य, पशु, पादप, पर्यावरण आदि) की स्वच्छता, स्वास्थ्य और पर्यावरण के अनुसार आयात करने के बाद देश के कल्याण का संरक्षण करना है।

27.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1) Chand Ramesh (2002), *Trade Liberalization, WTO and Indian Agriculture,* Mittal Publications, New Delhi.

2) Chakraborthy Debashis (2004), Recent Negotiations and Trend on Agriculture under WTO, RGICS working Paper No. 47, 2004, Rajai Gandhi Institute for Contemporary Studies.

3) Deodhar, S.Y. (1999), WTO Agreement and Indian Agriculture : Retrospection and Prospects, IIMA Working paper #99-11-06, Indian Institute of Management, Ahmedabad.

4) Dhar Biswajit. Agriculture and the WTO: An Indian Perspective http://wbwto.iift.ac.in/Downloads/WSII/WTO%20and%20Indian%20Agriculture.pdf

5) Kumar Rajiv and Swapna Nair (2009), *India :Strategies at the Doha Development Agenda—July and Beyond,* Working Paper, Indian Council for Research on Internatinal Economic Relations, New Delhi.

6) Martin Will and Kym Anderson (2008), 'Agricltural Trade Reform Under the Doha Agenda: Some Key Issues', *The Australian Journal of Agricultural and Resource Economics,* Vol. 52, pp 1-16.

7) Some useful links:

WTO, Agreement on Sanitary and Phytosanitary Measures, Geneva, World Trade Organisation.

http://www.wto.org/english/docs_e/legal_e/15-sps.pdf

WTO, Agreement on Technical Barrier to Trade. Geneva, World Trade Organisation.

http://www.wto.org/english/docs_e/legal_e/17-tbt.pdf

WTO, Agreement on Agriculture, Geneva, World Trade Organisation

http://www.wto.org/english/docs_e/legal_e/17-tbt.pdf

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

27.10 बोध प्रश्नों के उत्तर/संकेत

बोध प्रश्न 1

1) देखिए भाग 20.1 और उत्तर दीजिए।
2) देखिए भाग 27.1 और उत्तर दीजिए।
3) देखिए भाग 27.1 और उत्तर दीजिए।
4) देखिए भाग 27.1 और उत्तर दीजिए।
5) देखिए भाग 27.2 और उत्तर दीजिए।
6) देखिए उपभाग 27.2.1 और उत्तर दीजिए।
7) देखिए उपभाग 27.2.1 और उत्तर दीजिए।
8) देखिए उपभाग 27.2.1 और उत्तर दीजिए।
9) देखिए उपभाग 27.2.1 और उत्तर दीजिए।
10) देखिए उपभाग 27.2.1 और उत्तर दीजिए।
11) देखिए उपभाग 27.2.1 और उत्तर दीजिए।

बोध प्रश्न 2

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

1) देखिए भाग 27.2 और उत्तर दीजिए।
2) देखिए उपभाग 27.2.2 और उत्तर दीजिए।
3) देखिए उपभाग 27.2.2 और उत्तर दीजिए।
4) देखिए उपभाग 27.2.2 और उत्तर दीजिए। विकसित देशों के लिए कृषि उत्पाद के कुल मूल्य का 5 प्रतिशत और विकासशील देशों के लिए 10 प्रतिशत।
5) देखिए उपभाग 27.2.2 और उत्तर दीजिए।
6) देखिए उपभाग 27.2.2 और उत्तर दीजिए।
7) देखिए उपभाग 27.2.3 और उत्तर दीजिए।

बोध प्रश्न 3

1) देखिए भाग 27.3 और उत्तर दीजिए।
2) देखिए उपभाग 27.3.1 और उत्तर दीजिए।
3) देखिए उपभाग 27.3.1 और उत्तर दीजिए।
4) देखिए उपभाग 27.3.1 और उत्तर दीजिए।
5) देखिए उपभाग 27.3.1 और उत्तर दीजिए।

6. देखिए उपभाग 27.3.1 और उत्तर दीजिए।
7. देखिए उपभाग 27.3.1 और उत्तर दीजिए।
8. देखिए उपभाग 27.3.2 और उत्तर दीजिए।
9. देखिए भाग 27.4 और उत्तर दीजिए।
10. देखिए भाग 27.4 और उत्तर दीजिए।

बोध प्रश्न 4

1. देखिए उपभाग 27.5.1 और उत्तर दीजिए।
2. देखिए उपभाग 27.5.1 और उत्तर दीजिए।
3. देखिए उपभाग 27.5.2 और उत्तर दीजिए।
4. देखिए उपभाग 27.5.3 और उत्तर दीजिए।
5. देखिए भाग 27.6 और उत्तर दीजिए।
6. देखिए उपभाग 27.6.1 और उत्तर दीजिए।
7. देखिए उपभाग 27.6.1 और उत्तर दीजिए।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240